संतो, मगन भया मन मेरा

प्रवचन-क्रम

1. सदगुरु चरण ही शरण है..2
2. संसार है परमात्मा में सुषुप्ति...22
3. म्हारो मंदिर सूनो राम बिन...42
4. संन्यासः अस्तित्व के साथ प्रेम की एक कला..66
5. रस की प्यास आस नहिं औरां..91
6. प्रेम परमात्मा है...114
7. मन रे, करु संतोष सनेही...137
8. अहेतुक प्रेम भक्ति है...157
9. राम रंगीले के रंग राती..178 10..ठहर जाना पा लेना है
.... 202
11...राम बिन सावन सह्यो न जाइ
.... 222
12...नीड़-निर्माण का मजाः जब आँधी हो
.... 244
13...गुरु की याद में रंग भी बहुत, नूर भी बहुत
.... 267
14..उपासना चेष्टारहित चेष्टा है
.... 290
15...बिरहिण बिहरे रैनदिन
.... 314
16...गुरु दर्पण है
.... 336
17..परमात्मा के बिना कोई भराव नहीं
.... 359
18...मैं स्वागत हूँ
.... 383
19..रज्जब आपा अरपिदे
.... 403
20..प्रभु की खोज को एक लपट बनाओ
.... 425

संतो, मगन भया मन मेरा
पहला प्रवचन

सदगुरु चरण ही शरण है

रामराय, महा कठिन यहु मया।
जिन मोहि सकल जग खाया।।
यहु माया बह्मा सा मोह्या, संकर सा अटकाया।
महाबली सिध, साधक मारे, छिन में मान गिराया।।
यह माया शट दरसन खाए, बातनि जगु बौराया।
छलबल सहित चतुरजन चकरित, तिनका कछु न बसाया।।
मारे बहुत नाम सूं न्यारे, जिन यासूं मन लाया।
रज्जब मुक्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया।।

संतो, आवै जाय सु माया।
आदि न अंत मरै नहि जीवै, सो किनहूं नहिं जाया।।
लोक असंखि भये जा माहिं, सो क्यूं गरभ समाया।
बाजीगर की बाजी ऊपर, यहु सब जगत भुलाया।।
सुन्न सरूप अकलि अविनासी, पंचतत्त नहिं काया।
त्यूं औतार अपार असति ये, देखत दृष्टि बिलाया।।
ज्यूं मुख एक देखि दुई दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी विधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।।

हर आन यहां सहबाए-कुहन इक सागरे-नौ में ढलती है कलियों से हुस्न टपकता है, फूलों से जवानी उबलती है यां हुस्न की बर्क चमकती है, यां नूर की बारिश होती है हर आह यहां इक नग्माः है, हर अश्क यहां इक मोती है
हर शाम है, शामे-मिस्त्र यहां, हर शब है, शबे-सीराज यहां है सारे जहां का सोज यहां और सारे जहां का साज यहां
यह दश्ते-जुनूं दीवानों का, यह बज्मे-वफा परवानों की यह शहर तरब रूमानों का, यह खुल्दे-बरी अरमानों की
इस फर्श से हमने उड़-उड़ कर अफलाक के तारे तोड़े हैं
नाहीद से की है सरगोशी, परवीन से रिश्ते जोड़े हैं
इस बज्म में तेगें खींची हैं, इस बज्म में सागर तोड़े हैं
इस बज्म में आंख बिछाई है, इस बज्म में दिल तक जोड़े हैं
इस बज्म में नेजे फेंके हैं, इस बज्म में खंजर चूमे हैं
इस बज्म में गिर-गिर तड़पे हैं, इस बज्म में पीकर झूमे हैं

एक ही जगत है--यही जगत। फिर चाहो नरक बना लो, चाहे स्वर्ग। जगत मात्र
एक अवसर है। कोरी किताब। क्या तुम लिखोगे, तुम पर निर्भर है। और केवल तुम पर! किसी और की कोई जिम्मेवारी नहीं। नरक में जीना हो नरक बना लो, स्वर्ग में जीना हो स्वर्ग बना लो--तुम्हारे हाथों का ही सारा निर्माण है। यहां सब मौजूद है। युद्ध करना हो तो युद्ध और प्रेम की छाया में जीना हो तो प्रेम की छाया। शांति के फूल उगाने हों तो कोई रोकता नहीं, निर्वाण के दीये जलाने हों तो कोई बुझाता नहीं--और अगर जख्म ही छाती में लगाने हों तो भी कोई हाथ रोकने आएगा नहीं।
तुम मुत्त हो। तुम स्वतंत्र हो। मनुष्य की यही महिमा है। यही उसका विषाद भी। विषाद, कि मनुष्य स्वतंत्र है; गलत करने को भी स्वतंत्र है। स्वतंत्रता में गलत करने की स्वतंत्रता सम्मिलित है। अगर ठीक करने की ही स्वतंत्रता होती तो उसे स्वतंत्रता ही क्या कहते! स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है, गलत होने की स्वतंत्रता भी है। चाहो तो मिटा लो, चाहो तो बना लो। चाहो तो गिर जाओ मिट्टी में और कीचड़ हो जाओ और चाहो तो कमल बन जाओ।
जीवन एक कोरा अवसर है--बिल्कुल कोरा अवसर! जैसे कोरा कैनवास हो और चित्रकार उस पर चित्र उभारे; कि अनगढ़ पत्थर हो, कि मूर्तिकार उसमें मूर्ति

निखारे। शब्द उपलब्ध हैं; चाहो गालियां बना लो और चाहे गीत। इस बात को जितने गहरे में उतर जाने दो हृदय में, उतना ही अच्छा है। भूल कर भी मत सोचना कि कोई तुम्हारे भाग्य का निर्माण कर रहा है। उस बात में बड़ा खतरा है। फिर आदमी अवश हो जाता है। फिर जो हो रहा है, हो रहा है। फिर सहने के सिवाय कोई उपाय नहीं। फिर आदमी मिट्टी का लौंदा हो जाता है; उसके प्राण सूख जाते हैं; उसमें जीवन की धार नहीं बहती। चुनौतियों को अंगीकार करने की सामर्थ्य खो जाती है। और जहां चुनौतियों को अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं, वहां आत्मा का जन्म नहीं। आत्मा जन्मती है चुनौतियों के स्वीकार करने से। तूफानों में पैदा होती है आत्मा। आंधियों-अंधड़ों में पैदा होती है आत्मा।
और बड़ी से बड़ी आंधी यही है कि तुम अपनी स्वतंत्रता को स्वीकार कर लो। कठिन होगी बात, क्योंकि सारा दायित्व सिर पर आ जाएगा। अभी तो सोचने के लिए बहुत उपाय हैं कि क्या करें, किस्मत, भाग्य, कर्म, भगवान... क्या करें? अभी तो दूसरे पर टालने का उपाय है। लेकिन यह तुम्हारी तरकीब है--और चालबाज तरकीब है। ये सिद्धांत तुम्हारे गढ़े हुए हैं और बेईमानी से भरे हैं। इन सिद्धांतों की आड़ में तुमने अपने को खूब छिपा लिया। और पाया क्या छिपाने से? इतना ही पाया कि नरक बनाने की सुविधा मिल गई और स्वर्ग बनाने की क्षमता खो गई।
उस मनुष्य के जीवन में धर्म की शुरूआत होती है, जो इस पहले कदम को उठाता है--जो कहता है मैं निर्णायक हूं। नरक जाऊंगा तो मेरा निर्णय, जिम्मेवारी किसी पर थोपूंगा नहीं। तो इस बात को जान कर जाऊंगा कि मुझे नरक ही जाना है। कम से कम इतना तो आश्वासन रहेगा, इतनी तो सांत्वना रहेगी, इतना तो संतोष रहेगा कि अपने ही निर्णय से जीया हूं।
लेकिन अगर तुम्हें यह पक्का पता हो जाए कि नरक तुम अपने ही निर्णय से जाते हो, तो क्या तुम नरक जाना चाहोगे? कौन जाना चाहेगा? दुख का कोई निर्माण नहीं करना चाहता। इसलिए जैसे ही यह तीर तुम्हारे प्राणों में चुभ जाए कि मैं स्वतंत्र हूं, वैसे ही स्वर्ग का निर्माण शुरू हो जाता है। पृथ्वी यही है, स्थान यही है। यहीं कोई बुद्ध की तरह जी लेता है और यहीं कोई बुद्धुओं की तरह। यहीं कोई परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है और समाधि की सुवास में नाचता है और यहीं कोई सड़ता है। यहीं! ठीक एक ही जगह है! लेकिन यहां उतनी ही दुनियाएं हो गई हैं, जितने यहां लोग हैं।
आज जिस अनूठे आदमी की वाणी में हम यात्रा शुरू करेंगे, वह आदमी निश्चित अनूठा था। कभी-कभी ऐसे अनूठे आदमी होते हैं। और उनके जीवन से जो पहला पाठ तुम्हें मिल सकता है, वह यही है।
रज्जब की जिंदगी बड़े अदभुत ढंग से शुरू हुई। तुमने सोचा भी न होगा कि ऐसे भी कहीं जिंदगी बदलती है! यह भी कोई जिंदगी के बदलने का ढंग है! रज्जब मुसलमान थे--पठान थे--किसी युवती के प्रेम में थे। विवाह का दिन आ गया। बारात सजी। बारात चली। रज्जब घोड़े पर सवार। मौर बाँधा हुआ सिर में। बाराती साथ हैं, बैंड-बाजा है, इत्र का छिड़काव है, फूलों की मालाएं हैं। और बीच बाजार में, अपनी ससुराल के करीब पहुँचने को ही थे, दस-पाँच कदम और, स्वागत के लिए तैयार थे ससुराल के लोग--और यह क्रांति घटी! घोड़े के पास एक अजीब सा, फक्कड़ सा आदमी आकर खड़ा हो गया और उसने गौर से रज्जब को देखा। आंख से आंख मिली। वे चार आंखें संयुत्त हो गयीं। उस क्षण में क्रांति घटी। वह आदमी रज्जब का होने वाला गुरु था--दादू दयाल। और जो कहा दादू दयाल ने, वे शब्द बड़े अदभुत हैं! उन छोटे से शब्दों में सारी क्रांति छिपी है। दादू दयाल ने भर-आंख रज्जब की तरफ देखा, आंखें मिलीं और दादू ने कहा--
रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर
आया था हरि भजन कूं, करै नरक को ठौर
बस इतनी-सी बात। देर न लगी, रज्जब घोड़े से नीचे कूद पड़ा, मौर उतार कर फेंक दिया, दादू के पैर पकड़ लिए। और कहा कि चेता दिया, समय पर चेता दिया। और सदा के लिए दादू के हो गए। बारातियों ने बहुत समझाया--भीड़ इकट्ठी हो गई, सारा गांव इकट्ठा हो गया, ससुराल के लोग आ गए, पर रज्जब तो बस एक ही बात दोहराने लगा, बार-बार--

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बाँधा मौर
आया था हरि भजन कूँ, करै नरक को ठौर
एक क्षण में ऐसी क्रांति संभव है? संभव है। क्रांति क्षण में ही होती है। जो कहते हैं समय लगाएंगे, वे तो केवल टालते हैं, स्थगित करते हैं। जो कहते हैं कल., वे तो करना नहीं चाहते। कल की बात ही झूठों की बात है। जो होना है आज होना है, अभी होना है, यहां होना है--अभी या कभी नहीं।
रज्जब ने यह न कहाः यह भी कोई बात है? यह कोई समय है? विवाह को जाता हूं, बड़ी आतुरता से! ... और यह कोई साधारण विवाह न था--प्रेम-विवाह था। ऐसे ही कोई माता-पिता के द्वारा आयोजित जबरदस्ती लड़के को घोड़े पर नहीं बिठा दिया गया था। बड़ी मुश्किल से यह विवाह हो रहा था, बड़ी कठिनाई थी--यह प्रेम-विवाह था। परिवार पक्ष में न थे, बड़ी जिद्द से रज्जब ने यह विवाह करने की ठानी थी। और ऐसे लौट पड़ा! फेंक दिया उतार कर मौर! याद आ गई कोई। तीर चुभ गया। यह शब्द बाण हो गया। यह गुरु का आंख में आंख डाल कर देख लेना, यह जरा सा सैन, यह जरा सा इशारा... समझदार को इतना काफी है।
सोचो जरा, कितनी आशाएं न बांधी होंगी रज्जब ने! अपनी प्रेयसी को मिलने
जा रहा था, कितने सपने न देखे होंगे! क्या-क्या मनसूबे, क्या-क्या ताशों के महल, कितने सुहावने गीत न रचे होंगे मन में! और एक क्षण में, ऐसे झटके में सब तोड़ दिया! और एक फक्कड़ से आदमी के आंख में आंख डालने से यह बात हो गई। इसलिए कहता हूं रज्जब गजब का आदमी था।
हुस्ने यूसूफ से तुझको क्या निसबत
तू जमाने में बेमिसाल हुआ
कोई मुकाबला नहीं रज्जब का। बहुत लोग संत हुए हैं, मगर ऐसी त्वरा, ऐसी तीव्रता, ऐसी सघनता! वर्षों सोचते हैं लोग, विचार करते हैं, चिंतन-मनन करते हैं, आगा-पीछा देखते हैं, हिसाब लगाते हैं, गणित बिठाते हैं, तर्क जुड़ाते हैं--तब कहीं लोग संतत्व में कदम लेते हैं। पर ऐसे!
यह कैसे हुआ होगा?
मनुष्य की स्वतंत्रता है, इसलिए। तुम चाहो तो अभी हो, इस क्षण हो। लेकिन तुम चाहते नहीं कि अभी हो। और बेईमान तुम ऐसे हो कि तुम कहते हो, मैं क्या करूं? अपने किए क्या होगा? विधि में जब होगा तब होगा। प्रभु की जब मर्जी होगी तब होगा। तुम बड़े सुंदर शब्दों में बड़ी असुंदर भावनाओं को छिपाते हो। तुम बहाने खोजते हो। और बहाने ऐसे कि लगे धार्मिक हैं। बहाने ऐसे कि शास्त्रों का सहारा है उनको। शास्त्र भी तुम्हारे लिखे हुए हैं। तुम जैसे ही बेईमानों के वहां भी हस्ताक्षर हैं।
लेकिन मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि चाहो तो अभी हो जाए। और न चाहो,
तो कभी भी न होगा। तुम कुछ नए थोड़े ही हो। तुम उतने ही प्राचीन हो जितना प्राचीन यह अस्तित्व है। हिमालय नया है, तुम ज्यादा प्राचीन हो।
क्या हुआ होगा उस घड़ी में? दादू दयाल ने क्या याद दिलाई? यह दादू को इस युवक के पीछे पड़ने की जरूरत क्या थी? और यह कोई घड़ी थी, यह कोई मौसम था, यह कोई वक्त था! इतनी बेरहमी तो न करनी थी। थोड़ी तो करुणा करते। दो-चार दिन तो इसे सुख में रह लेने देते। विवाह तो हो जाने देते। सुहागरात तो बीत जाने देते। इतनी क्या जल्दी थी?
और क्या कहा? और क्यों कहा? ... यह पहचान पुरानी होगी। यह आश्वासन पुराना होगा। यह वायदा नया नहीं था। इसलिए बात तत्क्षण बैठ भी गई। देखा होगा कि फिर चला भूल में पड़ने, फिर गिरा गड्ढे में। फिर शुरू होती है एक कहानी। शुरू हो जाए तो लौटानी कठिन होती चली जाती है, क्योंकि हर कहानी की अपनी जटिलता है। पत्नी है, फिर जिम्मेवारी है; फिर बच्चे हैं, फिर बच्चों की जिम्मेवारी है। फिर जिम्मेवारियों से जिम्मेवारियों का जन्म होता है। फिर एक से दूसरा सिलसिला शुरू होता है।
मेरे हिसाब से ठीक ही समय में पकड़ लिया; जरा देर और, फिर जिम्मेवारियों का जाल गहरा हो जाता। मगर यह पुराना वायदा रहा होगा। यहां भी बहुत हैं, जिनसे मेरी पुरानी पहचान है। यहां भी बहुत हैं, जो नए नहीं हैं। तुम आकस्मिक थोड़े ही आ जाते हो। और फिर मेरे-जैसे आदमी के पास कोई आकस्मिक तो नहीं आ जाता। यह कोई सस्ता धर्म तो नहीं है। इससे प्रतिष्ठा तो

नहीं मिलती। होगी भी प्रतिष्ठा तो खो जाएगी। इससे कोई अहंकार, मान-मर्यादा तो नहीं बढ़ती। होगी भी तो मिट्टी में मिल जाएगी। मुझसे दोस्ती बनानी तो महंगा काम है। फिर भी कोई खींच लिए आती है। सारी दुनिया खिलाफ होगी, सारी दुनिया विरोध करती होगी, फिर भी तुम चले आए हो। शायद तुम्हें भी याद न हो, कहीं कोई पुराना गठबंधन होगा, कोई पुरानी भांवर पड़ी होगी। याद भूल गई है। तुम्हें भूल गई होगी, मुझे नहीं भूली है।
दादू ने देखा होगा--कोई पुराना साथी-संगी, कोई पुराना शिष्य। पहले भी कभी बैठ चुका होगा दादू की संगत में। फिर चला उलझने। फिर चला गड्ढे की ओर। पीछे बहुत रोया होगा, शायद किसी और जन्म में बहुत रोया होगा कि अब क्या करूँ, पत्नी है, फिकर करनी होगी, और बच्चे हैं और इनका विवाह तो करना ही होगा और इनको शिक्षा तो देनी ही होगी। अब आप कहते हो कि जागो! यह कोई वक्त है जागने का? थोड़ी देर रुको। अभी सब अधूरा-अधूरा है, सब जमा देने दो। अभी गृहस्थी कच्ची है, थोड़ी पक्की हो जाने दो। आऊंगा, जरूर आऊंगा, आना ही है, कब तक रुक सकता हूं, लेकिन अभी समय नहीं आया। आने दो मौसम, पकने दो फल, जरूर आऊंगा। ऐसा कभी कहा होगा। आज चूकने जैसा समय नहीं था। दादू ठीक समय पर आ गए। वह जो आंख में आंख डाली, वह सिर्फ अचेतन में दबी हुई स्मृतियों को जगाने का उपाय था।
जब गुरु शिष्य की आंख में आंख डालकर देखता है, तो जिन बातों का शिष्य
को भी पता नहीं रह गया है और जो उसके अचेतन गर्भ में पड़ी हैं, उनको सक्रिय कर देता है। याददाश्तें भूली-बिसरी पुनरुज्जीवित हो उठती हैं। बीज जो पड़े रह गए हैं, अंकुरित हो आते हैं। आकांक्षाएं, अभीप्साएं जाग उठती हैं, प्रबल वेग से।
वो जो क्षण भर को दादू का रज्जब की आंखों में देखना है, उसी क्षण क्रांति हो गई। पहचान गया होगा रज्जब कि अब बचने का कोई उपाय नहीं, इस आदमी ने अब ठीक समय में पकड़ा। अब मैं यह नहीं कह सकता--पत्नी है, बच्चे हैं; घर-गृहस्थी है, कच्ची है; सब व्यवस्थित कर देने दो, जिम्मेवारी ली है, उसे पूरा कर लेने दो, आऊंगा, जरूर आऊंगा--अब यह नहीं कह सकता, अब इस आदमी ने ठीक समय पकड़ा है। ठीक ससुराल के द्वार पर पकड़ा है। गड्ढे के किनारे ही था, गिरने को ही था और पकड़ा है।
"रज्जब तैं गज्जब किया।" और बात भी बड़ी प्यारी कही कि तुमने भी खूब गजब किया! पहले मुझे धोखा देता रहा कि अभी यह उलझन, अभी यह उलझन... और अब यह तू... अब यह कर रहा है, जब कोई उलझन नहीं! अभी जबकि सब सुलझ सकता है, अभी जबकि मार्ग साफ है, अभी इधर मुड़ कि उधर मुड़ अभी चौराहे पर खड़ा है, नरक की तरफ जा कि स्वर्ग की तरफ जा, माया में पड़ कि प्रभु को खोज ले... अब तू यह गजब कर रहा है! अपने हाथ से अपना आत्मघात कर रहा है! आया था हरिभजन कूं... ! और मुझसे वायदे किए थे तूने कि अगली बार आऊंगा तो बस हरिभजन करना है और कुछ भी नहीं। और मैं तुमसे कहता हूं, तुमने भी बहुत बार इस तरह वायदे किए हैं कि अगली बार बस... । यह जीवन देख लिया बहुत, भोग लिया बहुत, बस हो गया बहुत, इतना काफी है, अगली बार अगर मौका मिल जाएगा तो अब तो हरिभजन करना है। अब तो उस प्राण-प्यारे को खोजना है। मगर जैसे ही मर जाते हो, स्मृति पर पर्दा पड़ जाता है। नया जन्म, भूल गए पुराना सब; फिर अ ब स; फिर शुरूआत। फिर वहीं भूलें, फिर वही पुनरुत्ति।
नया कुछ करने को यहां है भी नहीं। नया करोगे क्या? वही क्रोध है, वही काम है, वही लोभ है, वही माया, वही मोह--सब वही है। वही वर्तुल घूमता है। वही चाक है संसार का।
सदगुरु के महत्वपूर्ण कामों में एक काम है कि वह तुम्हें याद दिला दे
कि जो तुम कर रहे हो, पहले भी बहुत बार कर चुके हो; नया कुछ भी नहीं। इतने उत्तेजित मत हो उठो। इतने दीवाने मत हो जाओ। जरा याद करो, स्मरण करो, खोजो अपने भीतर। क्योंकि तुम्हारी दबी हुई स्मृतियों में सब पड़ा है; जो भी तुम कभी रहे हो उस सब की याददाश्त तुम्हारे भीतर मौजूद है। जरा वहां अपनी चेतना के प्रकाश को ले जाओ। जरा परतें उघाड़ो। जरा पर्दे हटाओ। और तुम भी पाओगे कि बहुत बार मरते वक्त तुम भी यह कह कर गए थे कि अब की बार अगर आना हो

तो हरिभजन करना है। मगर वह मरते हुए आदमी की बात थी और जिंदा आदमी भूल जाता है। चलो यह तो पुरानी है, इसे छोड़ दो।
जब तुम दुख में होते हो, तब परमात्मा को याद कर लेते हो, जब सुख आ जाता है, भूल जाते हो। मौत आती है, याद कर लेते हो, जीवन मिल गया, फिर भूल जाते हो। असफलता मिलती है तो मन में संन्यास का भाव उठने लगता है। सफलता मिलती है, तुम कहते हो--अभी कोई वक्त है यह? बूढ़े होते तो सोचते हो संन्यास ले लें। जवान होते हो, तो सोचते हो अभी तो मैं जवान हूं। और मन के धोखे ऐसे हैं कि बूढ़े से बूढ़ा आदमी, दूसरे उसे बूढ़ा मानते हैं, वह थोड़े ही अपने को बूढ़ा मानता है।
अमरीका का एक करोड़पति नब्बे वर्ष की उम्र तक जीया। जब वह नब्बे वर्ष
का हो गया, उसके मित्रों ने पूछा कि आप अब भी क्यों कमाए चले जाते हैं? इतना तो है, बहुत है! और अब जिंदगी कितनी? अब कमाने की फिकर, अब झंझट? अब भी दफ्तर जाने की जरूरत है? पता है नब्बे वर्ष के बूढ़े आदमी ने क्या कहा? बुढ़ापे के लिए कुछ तो इकट्ठा करूं!
नब्बे वर्ष का आदमी भी बुढ़ापे के लिए इकट्ठा कर रहा है! कोई मानता थोड़े ही है कि मैं बूढ़ा हूं। लोग कहते हैं, हो गया होगा शरीर बूढ़ा, इससे क्या फर्क पड़ता है। जवानी तो मन की बात है! मन तो जवान है! शरीर से क्या फर्क पड़ता है? लोग इस-इस तरह की बातें करके अपने को समझा लेते हैं। दुख होता है तो सोचने लगते हैं, दुःख गया कि भूल जाते हैं।
ऐसा तुमने कितनी बार किया है! जब क्रोध में होते हो तो सोचा कि क्रोध
अब नहीं। जलाता है, दग्ध करता है, जहर है; लेकिन कितनी देर यह याद टिकती है? धुएं की लकीर की तरह कब मिट जाती है, पता नहीं चलता। फिर जरा सी बात और फिर वही आग, फिर वही क्रोध, फिर वही जहर। कितनी बार तुम काम के अनुभव में गए हो और कितनी बार पछताए हो! लेकिन फिर कोई वासना मन को पकड़ लेती है और झकझोर जाती है। और हर बार तुम यह कहते हो--बस एक बार और! मगर वह एक बार चुकता नहीं।
गजब का आदमी रहा होगा रज्जब। गुरु ने आंख डाली और जैसे सारा विस्फोट
हो गया! याद आ गई उसे कि क्या वचन दिया था। फिर क्षण भर की देर न की। क्षणभर की देर अगर करता तो चूकता। उसी क्षण मौर उतारकर फेंक दिया। बात खत्म हो गई। मौर को उतार कर फेंका यानी संसार उतार कर फेंक दिया। गुरु के चरणों में सिर रख दिया। उस दिन के बाद, लोग चकित हुए, लोगों को भरोसा नहीं था कि इतनी त्वरा में, इतनी तीव्रता में लिया गया संन्यास गहरा हो सकेगा। लोग सोचते थे कि दो-चार दिन में अकल आ जाएगी। और अभी तो जवान था, और अभी कैसे संन्यस्त हो जाएगा! बड़े-बूढ़ों ने सोचा होगा कि घबड़ाओ मत, दो-चार दिन में बुद्धि लौट आएगी। मगर जो हो गई बात तो हो गई बात।
निर्णय की बात है। निर्णय पर्याप्त है। आचरण को साधना नहीं होता-- साधते कमजोर हैं--जिनके पास थोड़ी भी जीवंतता है, उनका निर्णय ही उनका आचरण बन जाता है। एक निर्णय ले लिया, बात खत्म हो गई। फिर लौट कर पीछे देखना कमजोरों का काम है। नहीं उसने लौट कर पीछे देखा। दादू तक को, कहते हैं, उस पर दया आई। दादू भी सोचने लगे होंगे कि अभी जवान था बेचारा! और मैं बीच बारात से लौटा लाया हूँ। थोड़ा सुख ले लेने देता। यह मैंने क्या किया?
तो दो-चार-आठ दिन के बाद दादू ने खुद रज्जब को कहा कि देख, तू अभी जवान है, तूने मेरी बात मानी, सो ठीक; अब मुझे थोड़ा-थोड़ा पछतावा होता है। तूने मुझे झंझट में डाला है। तू मुझे माफ कर। यह मेरी भूल थी, जो मैंने तुझे बीच बारात में रोका।
शायद दादू दयाल ने भी सोचा नहीं था कि यह हो जाएगी बात। लोग ऐसे काहिल, ऐसे सुस्त, ऐसे कायर हैं कि होती कहां है ऐसी बात! दादू दयाल ने सोचा होगा डाल आऊंगा बीज, होते-होते होगी, वर्षों लगेंगे, लेकिन बीज तो डाल आऊं। यह नहीं सोचा था कि बीज डालते ही फल लग जाएंगे। इतना चमत्कार नहीं सोचा होगा। पछताने लगे होंगे। मन में लगने लगा होगा कि यह मैंने क्या किया? इस भोले जवान को देखते होंगे रोज, हरिभजन में बैठे, तो खुद ही सोचते होंगे कि यह मैंने और एक उपद्रव कर दिया। अभी इसे कुछ दिन भोग ही लेने देना था। फिर यह

भी मन में लगता होगा--अभी जवान है, कहीं डांवाडोल हो जाए, भूल-चूक हो जाए, गिर जाए... ! इतनी तेजी से छलांग ले ली है, इतनी ही तेजी से गिर भी सकता है। तो कहते हैं, दादू ने कुछ महीनों के बाद उसे कहा कि रज्जब, तूने ठीक किया कि मेरी बात मान ली, अब मेरी एक बात और मान--तू संसार में अभी उतर ही जा।
रज्जब ने जिस आंख से दादू की आंख में देखा, तो दादू भी तिलमिला गए होंगे। फिर दुबारा वह बात नहीं उठाई। वह चमक, वह लपट, वे जलती हुई दो आंखें। कहते हैं, रज्जब ने एक शब्द नहीं कहा, सिर्फ गुरु की आंख में देखा। और सब कह दिया कि यह भी कोई बात है! और आप से सुनूँ यह बात! सारे लोग समझा रहे हैं, वह ठीक है; वे नासमझ हैं, उनको समझाने दो; मगर आप से सुनूँ यह बात! यह बात दुबारा उठाना भी मत! लेकिन यह कहा भी नहीं, बस उन आंखों की चमक ने कह दिया।
छाया की तरह दादू दयाल के साथ रज्जब रहा। उनकी सेवा में लग गया। वे चरण उसके लिए सब-कुछ हो गए। उन चरणों में उसने सब पा लिया। अद्भभुत प्रेमी था रज्जब। जब दादू दयाल अंतर्धान हो गए, जब उन्होंने शरीर छोड़ा, तो तुम चकित होओगे... शिष्य हो तो ऐसा हो! ... उसने आंख बंद कर ली, तो फिर कभी आंख नहीं खोली। लोग कहते कि आंख क्यों नहीं खोलते, तो वह कहता, देखने योग्य जो था उसे देख लिया, अब देखने को क्या है?
कई वर्षों तक रज्जब जिंदा रहा दादू के मरने के बाद, लेकिन आंख नहीं खोली। देखने योग्य देख लिया। जो दर्शनीय था, उसका दर्शन हो गया। अब देखने- योग्य क्या है? आंख किसलिए खोलनी है?
ऐसा यह अदभुत व्यत्ति! इसके वचनों को बहुत प्रेम और सहानुभूति से समझना। ये वचन किसी सिद्धांतवादी के वचन नहीं हैं--क्रांति से गुजरी हुई एक चेतना से बही अमृत की धार हैं। ये वचन वचन ही नहीं हैं, ये तीर हैं। और अगर तुम राजी होओ तो ये तुम्हें छेदेंगे। ये तुम्हें भी रूपांतरित कर सकते हैं। रज्जब जैसे लोगों के वचनों की छाया में बैठना क्रांति से दोस्ती बनानी है।
इसके पहले कि सूत्रों में हम उतरें, कुछ और बातें इस अपूर्व घटना के संबंध में समझ लेना चाहिए। क्योंकि यह घटना सिर्फ रज्जब और दादू के बीच घटी, ऐसा नहीं है; यह शिष्य और गुरु के बीच घटने वाली अनिवार्य घटना है। ढंग अलग-अलग होते होंगे, रूप-रंग अलग होते होंगे, तर्ज-तरन्नुम अलग होता होगा, लेकिन यह घटना अनिवार्य घटना है। इसके बिना गुरु और शिष्य का संबंध निर्मित नहीं होता।
एक तरह से देखो, तो लगता है दादू ने भी बड़ा बेमौका चुना। दूसरी तरफ से देखो, तो लगता है इससे सुंदर मौका कोई और हो नहीं सकता था। क्यों? क्योंकि प्रेम से भरा हुआ यह हृदय, प्रेम से भरी हुई यह धारा... रज्जब के प्राण प्रेम से आंदोलित थे। प्रेयसी से मिलने जा रहा था! प्रेम तो तैयार था, जरा सा रुख बदलने की बात थी। यह मौका ठीक मौका था। लोहा जब गर्म हो तब चोट करनी चाहिए। एक तरह से देखो तो लगता है कि यह ठीक नहीं था, मौजूं नहीं थी यह बात, यह जरा फक्कड़पन की बात मालूम पड़ती है, दादू ने कुछ संगत बात नहीं की। लेकिन और गहरे झांक कर देखो तो लगेगा, इसके पीछे एक पूरा मनोविज्ञान है।
यह जानकर तुम हैरान होओगे कि दुनिया में जब भी कोई धर्म जिंदा होता है, नया-नया पैदा होता है, तो उसके प्रति जो लोग आकर्षित होते हैं वे जवान होते हैं। और जब कोई धर्म बूढ़ा हो जाता है और मर जाता है, मुर्दा हो जाता है, तो फिर मंदिर-मस्जिदों में सिर्फ बूढ़े और बुढ़ियाएं दिखाई पड़ते हैं। क्या कारण होगा? कारण है। जीवन-ऊर्जा! जिनका प्रेम ही सूख गया हो उनको परमात्मा की तरफ भी कैसे मोड़ोगे? प्रेम तो प्रेम है--चाहे किसी स्त्री की तरफ बहता हो और चाहे किसी पुरुष की तरफ बहता हो, यही मुड़ जाए तो उस परम प्यारे की तरफ बहने लगता है।
रज्जब बड़े भाव से भरा होगा। उस घड़ी की जरा कल्पना करो। रज्जब के हृदय
का थोड़ा चित्र उभारो!
आ कि वाबस्ता हैं, उस हुस्न की यादें मुझसे
जिसने इस दिल को परीखाना बना रक्खा है

जिसकी उल्फत में भुला रक्खी थी दुनिया हमने दहर को दहर का अफसाना बना रक्खा है

आश्ना हैं तेरे कदमों से वे राहें जिन पर उसकी मदहोश जवानी ने इनायत की है
कारवां गुजरे हैं जिनसे उसी रानाई के जिसकी इन आंखों ने बेसूद इबादत की है

तुझसे खेली हैं वो महबूब हवाएं जिनमें उसके मलबूस की अफसुर्दा महक बाकी है
तुझ पे भी बरसा है उस बाम से महताब का नूर जिसमें बीती हुई रातों की कसक बाकी है

तूने देखी है वह पेशानी, वो रुखसार, वो होंठ जिंदगी जिनके तसव्वुर में लुटा दी हमने
तुझ पै उट्ठी हैं वो खोई हुई साहिर आंखें
तुझको मालूम है क्यों उम्र गंवा दी हमने?

हम पै मुश्तरका हैं एहसान गमे-उल्फत के
इतने एहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या सीखा है?
जुज तेरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं
एक फूल खिल रहा होगा अभी! न मालूम कितनी अभीप्साओं से भरा! प्रेयसी की आंखें, उसका सौंदर्य, उसकी देह की गंध, उसकी देह की उष्णता!
तूने देखी है वह पेशानी, वो रुखसार, वो ओंठ
जिंदगी जिनके तसव्वुर में लुटा दी हमने
तुझ पै उट्ठी हैं वो खोई हुई साहिर आंखें
तुझको मालूम है क्यों उम्र गंवा दी हमने?

हम पै मुश्तरका हैं एहसान गमे-उल्फत के
इतने एहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है क्या सीखा है
जुज तेरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं
दीवाना था रज्जब। पागल था रज्जब। उस एक स्त्री के लिए सब कुछ दांव पर लगाया था उसने। यह घड़ी थी--लोहा आग था, सुर्ख अंगार था! दादू ने ठीक समय चोट की। वही प्रेम जो संसार की तरफ बहा जाता था, वही प्रेम जो देह की तरफ बहा जाता था, वही प्रेम जो आज नहीं कल नरक बन जाता, उसी प्रेम को मोड़ लिया। उसी प्रेम को अपनी आंखों की तरफ मोड़ लिया। उसी प्रेम को अपनी आंखों के पीछे छिपे परमात्मा की तरफ मोड़ लिया।
प्रेम ही है, चाहे संसार से करो और चाहे परमात्मा से करो। धन्यभागी हैं वे, जिनके हदृय में प्रेम है। एक ही ऊर्जा है तुम्हारे पास। वही प्रेम जो प्रेयसी से था, वही लगाव, वही रस गुरु से हो गया। उस प्रेयसी के बिना रज्जब जीना नहीं चाहता था। न मिलती प्रेयसी तो मर गया होता। वही प्रेम एक दिन जब गुरु ने देह छोड़ी तो उसी प्रेम में फिर आंखें नहीं खोलीं। देखने योग्य कुछ न रहा। परमात्मा जैसा आदमी देख लिया था, अब और देखने योग्य क्या हो सकता था! आखिरी कमल देख लिया था, अब घास-पात को क्या देखना था!
यह प्रेमी की ही क्रांति है। इसलिए मैं तुम्हें याद दिलाऊं--प्रेम को मार मत डालना, और तुमसे जिन लोगों ने कहा है, प्रेम को नष्ट कर दो, वे तुम्हारे दुश्मन हैं। उन्होंने तुम्हारे जीवन को मरुस्थल कर दिया है। प्रेम को मारना नहीं हैं, प्रेम का दिशा-रूपांतरण करना है। प्रेम की यात्रा बदलनी है। प्रेम एक तरफ जा रहा है, उसे तीर्थ की तरफ ले जाना है। प्रेम को तीर्थयात्रा बनाना है। भत्ति के मार्ग का इतना ही अर्थ है। और ये सारे वचन भत्ति के वचन हैं।

रज्जब अदभुत प्रेमी है! एक लपट में यात्रा बदल गई प्रेम की। तूफान रहा होगा प्रेम का, बड़ी भयंकर ऊर्जा रही होगी प्रेम की। गया होता तो बड़ा नरक निर्मित किया होता। निश्चित है। संसार में उतरा होता तो बड़ा फैलाव किया होता, बड़ा पसार किया होता, बड़ा पसारी बना होता। नहीं गया संसार में तो परमात्मा में उतरा और खूब गहरा उतरा।
रज्जब के गीतों में उसी प्रेम की गंध बार-बार तुम्हें मिलेगी। सूत्र-- रामराय, महा कठिन यहु माया।
जिन मोहि सकल जग खाया।।
राम से बात कर रहे हैं--रामराय, महा कठिन यहु माया।
भत्त की बात तो भगवान से है। उसकी गुफ्तगू भगवान से है। आदमी से भी बोलता है तो भी बस निमित्त, बोलता भगवान से ही है। क्योंकि भत्त को भगवान के अतिरित्त और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। अब यह हो सकता है कि रज्जब ने यह गीत अपने शिष्यों, अपने सत्संगियों के सामने कहा हो--रामराय, महा कठिन यहु माया! लेकिन कहा राम को ही है। कहा है तुम्हारे भीतर छिपे राम को, कि हे राजाराम, यह माया बड़ी कठिन है!
माया का क्या अर्थ होता हैः माया का अर्थ होता हैः जो नहीं है, जो वस्तुतः नहीं है, पर ऐसी प्रतीति होती है कि है। सपना। रात तुम देखते हो, सुबह जागकर पाते हो नहीं है। मगर जब देखा था तब था और ऐसा लगता था खूब है। डर भी गए थे सपने में। आह्लादित भी हो गए थे सपने में। धन पा लिया था तो छाती से लगा लिया था। डाकुओं ने हमला कर दिया था तो रो लिए थे, तड़प लिए थे, सब हो गया था। तुम्हारे सपने में सारा संसार तो हो जाता है। फिर भी तुम्हें एक बात ख्याल नहीं आती कि जब संसार सारा का सारा सपने में हो जाता है, तो कहीं ऐसा न हो कि सारा का सारा संसार सपना ही हो!
ऐसा क्या है संसार में जो तुम्हारे सपने में नहीं होता? तुमने ऐसी कोई चीज देखी है संसार में जो सपने में नहीं होती या नहीं हो सकती? या ऐसी कोई अनिवार्यता है कि सपने में न हो सके? जब सबकुछ सपने में हो सकता है, जो बाहर हो रहा है, तो कभी तो जागकर सोचो, कभी तो इस पर विचार करो--कहीं यह भी खुली आंख का सपना न हो!
फिर रात तुम इस सपने को भूल जाते हो। तुम भिखारी हो; रात तुम भूल जाते
हो कि तुम भिखारी हो और वृक्ष के नीचे सोये हो। रात तुम सपना देखते हो कि सम्राट हो, सोने के महल हैं तुम्हारे। और दिन भर वर्षों-वर्षों की याददाश्त कि मैं भिखारी हूं, ऐसे बह गई जैसे पानी पर लिखी लकीर! जरा भी याद नहीं आती। जरा भी ख्याल नहीं आता कि पागल, तू यह क्या सोच रहा है, कहां के सोने के महल! सड़क के किनारे सोया है और वह आ रहा है सिपाही, अभी उठाएगा बीच रात में और भगाएगा यहां से। तू कहां के सपने देख रहा है? और कितने दिन से तुम भिखमंगे हो, हो सकता है पचास साल से तुम भिखमंगे हो! लेकिन पचास साल का निरंतर का अनुभव इतना काफी नहीं है कि एक सपने को तोड़ दे?
नहीं, नहीं काफी है। क्या मूल्य होगा इस सचाई का, जो पचास साल की सचाई
और एक क्षण भर में उठे हुए सपने की तरंग को भी नहीं तोड़ पाती? सपने से ज्यादा नहीं हो सकती। इस सचाई का कोई मूल्य नहीं है। यह भी एक और तरह का सपना है, बस।
और भी तुमने एक बात ख्याल की कि जब तुम सुबह जागते हो तो रात का सपना
तो थोड़ा-थोड़ा याद भी रह जाता है कभी-कभी, लेकिन दिन का सपना जब तुम रात सोते हो तो बिल्कुल याद नहीं रहता। इसका क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ होगा कि दिन का सपना रात के सपने से भी कमजोर सपना है। यह तो सीधे गणित की बात है। रात का सपना याद रह जाता है कभी-कभी। थोड़ा-बहुत सरकता याद रह जाता है। धुंधला- धुंधला सा। लेकिन दिन के सपने तो रात में धुंधले भी याद नहीं रहते। जरूर रात के सपने की लकीर ज्यादा गहरी है, थोड़े दिन में भी प्रवेश करती है। मगर दिन का सपना बिल्कुल झूठा मालूम पड़ता है, रात में जरा भी प्रवेश नहीं करता।
माया का अर्थ हैः स्वप्न। जो है नहीं, पर प्रतीत होता है कि है। और चूंकि प्रतीत होता है, तुम सब-कुछ उस पर दांव लगा देते हो। और सब-कुछ दांव

पर लगाकर गंवा देते हो, क्योंकि वहां कुछ है नहीं; मिलने को कुछ भी नहीं है, दांव कितना ही लगाओ।
जिंदगी में पाओगे क्या? एक दिन जब मरोगे तो तुम्हारे हाथ खाली होंगे। पछतावे के सिवाय तुम्हारी आत्मा में और कुछ भी न होगा।
जरा सोचो! और ऐसा नहीं कि जिंदगी तुमने ऐसे ही गंवाई थी। तुमने बड़ी कमाई की थी। तुमने पद पाया, प्रतिष्ठा पाई, यश पाया, नाम कमाया, धन कमाया, यह, वह, बड़े मकान बनाए, महल बनाए--और मरते वत्त... जरा सोचो, कल्पना करो कि मौत आ गई। अब तुम्हारे हाथ में क्या है? सब कमाई गंवाई हो गई। सब महल सपने जैसे खो गए।
रात सो जाते हो, तभी तुम्हें दिन के महलों की याद नहीं रह जाती, जरा मौत की नींद का तो कुछ ख्याल करो। जब मौत की गहरी नींद आएगी, सब सपाट हो जाएगा। फिर न तो पत्नी की है याद, न पति की, न बेटे की, न यश, न अपयश। सब पड़ा- धरा रह गया। इस स्थिति का नाम माया है।
रज्जब कहते हैंः "रामराय"... हे राजाराम... "महा कठिन यहु माया"। है तो झूठी, पर बड़ी जटिल! बड़ी लुभावनी! बड़ी मनभावनी! खींच-खींच लेती है। भूल-भूल जाते हैं।
तुमने कभी देखा, फिल्म देखने गए हो, जानते हो अच्छी तरह, भलीभांति कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है, फिर भी भूल-भूल जाते हो। लोगों की आंखें गीली हो आती हैं, आंसू गिरने लगते हैं; संकोच आता है, जल्दी से अंधेरे में आंसू पोंछ लेते हैं अपने रूमाल से। ख्याल भी आ जाता है कि मैं यह क्या कर रहा हूं, किस बात के लिए रो रहा हूं? वहां कुछ भी नहीं है पर्दे पर, सिर्फ धूप-छांव का खेल है। मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, थोड़ी देर में फिर तुम भूल गए। फिर लीन हो गए। फिर मानने लगे वह जो पर्दे पर है उसको सच।
एक देहात में फिल्म आई। पहली ही फिल्म थी। जो लोग गांव के देखने आए थे, उन्होंने पहला "शो" भी देखा और दूसरे "शो" में भी वे टिकट लिए बैठे रहे, वे जाएं ही न। फिल्म वही, तीसरे "शो" में भी। मैनेजर ने कहा कि भई तुम जाओ, दूसरे लोग... । उन्होंने कहाः हम जाएंगे ही नहीं। पूछताछ की तो वे एक-दूसरे की तरफ देख कर हंसे। तो उन्होंने कहाः कुछ बताओ भी, तुम जाते क्यों नहीं? फिल्म तुम देख चुके दो बार, फिर दूसरे लोगों को भी देखना है, पूरा गांव देखने को उत्सुक है, तुम हटते ही नहीं! वे कहते हैं, आप पैसा ले लो, हम जाते नहीं यहां से। तब एक आदमी ने बताया कि अब आप नहीं मानते हैं तो हम बताये देते हैं। फिल्म में एक दृश्य आता है। एक तालाब है और उस पर एक सुंदर स्त्री अपने कपड़े उतार कर स्नान करने उतर रही है। उसने करीब-करीब सारे कपड़े उतार दिए हैं, बस आखिरी कपड़ा उतारने को है, तभी एक रेलगाड़ी गुजर जाती है और उसकी आड़ में वह सब मामला खराब हो जाता है--तब तक वह स्त्री तालाब में उतर कर तैरने लगी। तो उसने कहा, हम बैठे हैं कि कभी तो रेलगाड़ी लेट होगी। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कोई रोज ही टाइम पर तो आनेवाली नहीं है! कभी न कभी तो... । इसलिए गांव का कोई आदमी जाने वाला नहीं है। जो यहां अंदर बैठे हैं, वे दृश्य को पूरा ही देख कर जाएंगे।
तुम हंस सकते हो, लेकिन तुमने भी वही मूढ़ता बहुत बार की है। किताब पढ़ते वक्त, उपन्यास पढ़ते वक्त भी तुम ऐसे रसलीन हो गए हो कि कहानी को सच मान लिया है। और जब तुम सच मान लेते हो, तो बात सच हो जाती है। भूतप्रेत की कोई कहानी पढ़ी रात में, अंधेरे में, एकांत में, फिर घबड़ाहट लगने लगती है। फिर अपना ही लंगोट टंगा है, वह दिखता है कि कोई आदमी हाथ फैलाए खड़ा है। एक चूहा गुजर जाता है और छाती धक्... !
माया का अर्थ होता है--कल्पना को सच मान लेने की वृत्ति। और मनुष्य में बड़ी गहनता में है कल्पना को सच मान लेने की वृत्ति। और अगर तुम कल्पना को सच मान लो, तो सच तुम्हारे लिए तो हो गई। उस झूठे सच के पीछे तुम अपना जीवन गंवा दोगे। और जो आदमी कल्पना को सच मानने में पड़ जाता है, वह सच को जानने से वंचित रह जाता है, क्योंकि ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं। जो आदमी कल्पना को सच मान लेता है, वह सच को कैसे देख पाएगा? उसकी आंखों में कल्पना का जाल होता है। कल्पना के जाल को हटाना इसीलिए आवश्यक समझा जाता है, ताकि जो है, हम उसे जान सकें। जो है, उसे जानने में मुत्ति

है। जो है, उसे जानने में आनंद है। जो है, उसे जानने में कमाई है, संपदा है।
जो नहीं है उसके पीछे दौड़ने में मृग-मरीचिका है।
रामराय, महा कठिन यहु माया।
जिन मोहि सकल जग खाया।।
जिसको भी मोह लेती है, उसको खा जाती है। और सारे जग को मोहा है।
यहु माया ब्रह्मा सा मोह्या, संकर सा अटकाया।
हिंदुओं की कथाएं अदभुत हैं, महत्त्वपूर्ण हैं। कहते हैं, ब्रह्मा ने संसार बनाया, फिर अपने बनाए संसार पर ही मोहित हो गए। स्त्री बनाई और इतना मोहित हो गए कि उस स्त्री का पीछा करने लगे। बड़ी अनैतिक बात हो गई; क्योंकि बनाने वाले का तो अर्थ होता है, वह पिता था। पिता बेटी पर मोहित हो गया! मगर हिंदुओं की कहानियों में सचाई है। सचाई यही है। इसकी फिकर नहीं
की है हिंदुओं ने कि किसी की नैतिक मान्यता को धक्का लगेगा या किसी की नैतिक मान्यता को बड़ी पीड़ा हो जाएगी। सचाई यही है कि ब्रह्मा भी... खुद ही बनाया था जाल को और उसमें मोहित हो गया।
एक पश्चिम का बहुत बड़ा चित्रकार नग्न स्त्री का चित्र बना रहा था। अब नग्न स्त्री का चित्र बनाओ तो एक कठिनाई होती है। उसका एक शिष्य देख रहा था यह सब। उसे यह कठिनाई ख्याल में आ रही थी। उसने पूछा अपने गुरु को कि आप यह चित्र बनाते हैं नग्न स्त्री का, समझेंगे कैसे कि कब पूरा हो गया? कपड़े पहने हों तो समझो कि कपड़े पहना दिए, पूरा हो गया; गहने सब लटका दिए, पूरा हो गया--मगर अब यह नंगी स्त्री है, इसको समझेंगे कैसे कि चित्र पूरा हो गया? कब समझेंगे पूरा हो गया? उसने कहा, उसकी एक तरकीब है। जब मुझे ऐसा मन होने लगता है कि च्यूंटी ले लूं, तब समझता हूं कि पूरा हो गया।
अपना ही बनाया चित्र, कैनवास पर कुछ है नहीं, लेकिन गुरु कह रहा है कि
जब मुझे ऐसा मन होने लगता है कि च्यूंटी ले लूं, तब मैं समझता हूं कि बस अब काफी है, चित्र पूरा हो गया। जब मैं खुद भी धोखा खाने लगता हूँ, तब चित्र पूरा हो गया।
ब्रह्मा का अपने ही द्वारा निर्मित स्त्री पर मोहित हो जाना, चित्र
के पूरे होने की कहानी है। ब्रह्मा ने तो स्वयं बनाया था, उसे तो याद रहनी चाहिए थी! वह भी भूल गया। अगर तुम ठीक से समझो तो तुम भी ब्रह्मा हो और तुम जो बना रहे हो अपनी दुनिया आसपास, वह भी तुम्हारी बनाई हुई है और तुम भी भूल गए हो। यह उस कहानी का रा.ज है।
तुम कहते होः मैं स्त्री पर मोहित हो गया हूं, इस स्त्री पर, क्योंकि
यह सुंदर है।
तुम गलत कहते हो। तुम मोहित हो गए हो, इसलिए वह सुंदर मालूम होती है। क्योंकि वह और किसी को सुंदर नहीं मालूम हो रही, वह तुम्हीं को सुंदर मालूम हो रही है। अगर सुंदर होती तो सभी उस पर मोहित हो जाते।
और तुमने कभी देखा है या नहीं, अक्सर लोग हंसते हैं तुम पर कि अरे, तुम
इस स्त्री के पीछे क्यों पड़े हो? या इस पुरुष के पीछे यह स्त्री क्यों पड़ी है? इस पुरुष में इसे क्या दिखाई पड़ता है? तुम भी हंसे हो बहुत बार कि यह आदमी पागल है। मगर उस पागल से पूछो। वह कहता है--ऐसा अनूठा सौंदर्य कहीं है ही नहीं। और उससे पूछो कि तुम इसके मोह में क्यों पड़े हो, तो वह तर्क देता है--क्योंकि यह सुंदर है। बात बिल्कुल उलटी है। मोह में पड़ गया है, इसलिए "सुंदर" का जन्म हुआ है। मोह का परिणाम है सौंदर्य, मोह का कारण नहीं है। मोह की उत्पत्ति है सौंदर्य। तुम जिस चीज के मोह में पड़ जाते हो, वही सुंदर मालूम होने लगती है। इसलिए तो अपनी मां किसी को भी असुंदर नहीं मालूम होती। कैसे मालूम होगी? पहले दिन से ही मोह शुरू हो गया। जिसको तुम अपना मान लेते हो वह असुंदर नहीं मालूम होता। किस मां को अपना बेटा असुंदर मालूम होता है! और तुमने देखा नहीं, हर माँ अपने बेटे की ऐसी तारीफ करती है, जैसे ऐसा बेटा दुनिया में कभी हुआ ही नहीं। लोग ऊब जाते हैं माताओं से, उनकी बेटों की बकवास सुन-सुन कर। कोई सुनना नहीं चाहता। लेकिन हर मां अपने बेटे की इस तरह तारीफ करती है... । मेरे पास भी आ जाती हैं माताएं अपने बेटों को लेकर। ये सब मेधावी पुत्र कहां खो जाते हैं, पता नहीं चलता! मगर हर मां यही सोचती है कि यह मेधावी बेटा, यह कुछ खास बेटा पैदा हुआ है! यह

तुम्हारा मोह है। तुम्हारे मोह के कारण यह खास दिखाई पड़ रहा है। खास के कारण मोह नहीं है।
तुम जिस चीज के प्रति लगाव बना लोगे... लगावों की भी फैशन बदलती है। जैसे पुराने जमाने में गुलाब के फूल की फैशन थी। अब गुलाब के फूल की फैशन नहीं है, कैक्टस फैशन में है। तो घर में अगर तुम गुलाब का पौधा लगाओ तो लोग समझते हैं कि अरे, पुराण-पंथी, दकियानूसी; कहां गुलाब लगाये बैठे हो! कुछ होश है? बीसवीं सदी में रह रहे हो? कैक्टस लगाओ।
कैक्टस पहले भी लोग लगाते थे, खेत इत्यादि पर बागुड़ लगाने के लिए कि कोई जंगली जानवर न घुस जाए। घर में कौन लाता था कैक्टस को! और किसने कब देखा था कि कैक्टस में सौंदर्य है! मगर अब है। अब कैक्टस को लोग लगाते हैं और बड़े प्रेम से, बड़े भाव-विभोर होकर देखते हैं। एक-एक कांटे में अपूर्व सौंदर्य का अनुभव करते हैं। कैक्टस पर कविताएं लिखी जाती हैं। कैक्टस के चित्र बनाए जाते हैं। कैक्टस शब्द सुनते ही अनेक लोगों के हृदय में मिश्री घुलने लगती है। गुलाब, लगता है कोई पुराण-पंथी, कोई रूढ़िवादी आ गया। गुलाब, कहां की बात कर रहे हो? किस जमाने से आ रहे हो? बाबा आदम के जमाने के कोई सज्जन आ गए! अभी इनको पता ही नहीं है कि गुलाब का जमाना जा चुका, लद चुका। अब कैक्टस का जमाना है। यह गुलाब पूंजीवाद का प्रतीक है। कैक्टस--सर्वहारा, गरीब, मजदूर का प्रतीक है। यह गुलाब--मुफ्तखोरों का, शोषकों का! कैक्टस--शोषितों का! तब सारी कहानी बदल जाती है।
फैशनें बदलती हैं। जो कपड़े पिछले वर्ष फैशन में थे, अब फैशन के बाहर हैं। जो अभी कपड़े फैशन में हैं, अगले वर्ष फैशन के बाहर हो जाएँगे।
एक चित्रकार पत्नी की तलाश में था। एक दलाल से मिला। दलाल ने कहा कि ठीक तुम्हारे योग्य एक स्त्री मैंने चुन कर रखी है। मैं राह ही देखता था कि तुम कभी कहो। तुम्हारे लिए ही सुरक्षित है। और तो कोई उसके सौंदर्य को समझ भी नहीं सकता।
चित्रकार बड़ा प्रसन्न हुआ। दलाल ले गया दिखाने। देखा लड़की को तो चित्रकार ने अपना सिर पीट लिया। एक आंख नीचे की तरफ जा रही है, दूसरी आंख ऊपर की तरफ जा रही है। एक कान बड़ा, एक कान बिल्कुल छोटा। नाक ऐसी बेहूदी कि उसने कभी देखी नहीं। उसने सोचा भी नहीं था कल्पना में भी कि ऐसी नाक भी हो सकती है, कि आदमी को देख कर एकदम घबड़ाहट पैदा हो। उसने दलाल को पास ले जाकर उसके कान में कहा कि तू पागल है या होश में है? इस स्त्री से मेरा विवाह करवाना चाहता है! उसने कहा, भई, मैं तो समझा कि तुम चित्रकार हो। पिकासो की पेंटिंग देखी! यह पिकासो की पेंटिंग का जीता-जागता अवतार है। आधुनिक चित्रकला!
फैशन बदलते हैं। समय बदलता है। लोग नई-नई चीजों में रस लेने लगते हैं।
रस लेने लगते हैं तो चीजें सुंदर मालूम होने लगती हैं। तुम अपने आस-पास एक जगत का निर्माण करते हो--ब्रह्मा ने ही किया था, ऐसा मत सोचना--तुम भी ब्रह्मा हो, और तुम भी अपने आसपास एक माया का, मोह का, सौंदर्य का, लगाव का, आसत्ति का, एक जगत निर्मित करते हो। तुम उसी जगत में रहते हो। इसीलिए तो दो व्यत्ति जब आसपास आते हैं तो टकराहट होती है, क्योंकि दो अलग जगत एक-दूसरे से टकराहट लेने लगते हैं। दो व्यत्तियों में तालमेल नहीं होता। तुम्हारी पसंद अलग, तुम्हारी पत्नी की पसंद अलग, तुम्हारे बेटे की पसंद अलग। पसंद निजी होती है, काल्पनिक होती है।
माया का अर्थ है, तुम निर्मित कर लेते हो एक कल्पना का जाल और फिर तुम
उस कल्पना के जाल में ग्रसित हो जाते हो।
जिन मोहि सकल जग खाया।।
यहु माया ब्रह्मा सा मोह्या, संकर सा अटकाया।
महाबली सिध, साधक मारे, छिन में मान गिराया।।
यह माया शट दरसन खाए, बातनि जगु बौराया।
और यह कल्पना का जाल इतना महत्त्वपूर्ण हो गया है कि लोग शास्त्र रचते हैं, लेकिन सब कल्पना का जाल। "षट दरसन खाए!" दर्शनशास्त्र निर्मित हो जाते हैं कल्पना के जाल पर। लोग परमात्मा की प्रतिमा बना लेते हैं कल्पना के जाल पर। लोग स्वर्ग-नरक के नक्शे बनाते हैं कल्पना के जाल पर।

लोग बड़े सिद्धांतों में पड़ जाते हैं कि हमारा यह सिद्धांत, तुम्हारा वह सिद्धांत! मैं हिंदू, तुम मुसलमान।
क्या है तुम्हारा हिंदू होना? क्या है तुम्हारा मुसलमान होना? सब तुम्हारे कल्पना के सिद्धांत हैं। सुनो रज्जब की बात--यह माया शट दरसन खाए... यह माया बड़े-बड़े दार्शनिकों को खा गई, छहों दर्शन खा गई... बातनि जगु बौराया। और इस माया के कारण बात ही बात में सारे लोग पागल हुए जा रहे हैं। बेबात की बात। शब्दों में ही माया छुपी है। इसलिए जब तक कोई शून्य होने की कला नहीं सीखता, तब तक माया के बाहर नहीं जा पाता। जब तक कोई इतना शांत होना नहीं जान लेता, जहां सारे शब्द और विचार समाप्त हो जाएँ, जब तक ध्यान का दीया नहीं जलता, तब तक कोई माया के बाहर नहीं जाता है।
छलबल सहित चतुरजन चकरित।
और तुम्हारे तथाकथित चतुरजन, जिनको तुम कहते हो बड़े बुद्धिमान, वे भी इसके चकमे में हैं। कुछ फर्क नहीं पड़ता। बुद्धू हों कि बुद्धिमान, कोई भेद नहीं पड़ता। छलबल सहित चतुरजन चकरित। जिनसे हम आशा करते हैं ये धोखा न खाएंगे, वे भी धोखा खा जाते हैं। क्योंकि धोखा खाने का सूत्र भीतर छिपा है। धोखा खाने का सूत्र है--तुम्हारे मन की सपने देखने की क्षमता। जब तक तुम्हारा मन सपने पैदा करेगा, तब तक तुम धोखा खाते ही रहोगे। जिस दिन तुम्हारा मन सपने पैदा नहीं करता, निर्विचार, शून्य में रम जाता है, उस दिन तुम धोखे के बाहर होते हो।

छलबल सहित चतुरजन चकरित, तिनका कछु न बसाया।।
बड़े से बड़े बुद्धिमानों का कोई बस नहीं चलता, क्योंकि बुद्धिमानी का यहां कोई संबंध नहीं है।
मारे बहुत नाम सूं न्यारे, जिन यासूं मन लाया।
जिसने भी माया की तरफ मुख किया और जिसने भी परमात्मा की तरफ पीठ की, वे
सब मारे गए। उन्हें मृत्यु के सिवाय और कुछ भी न मिला। जीवन के नाम पर उन्होंने केवल मृत्यु ही इकट्ठी की। बार-बार मरे, जिए कभी नहीं। जन्मे और मरे, जिए कभी नहीं।
मारे बहुत नाम सूं न्यारे, जिन यासूं मन लाया।
जो परमात्मा से विमुख हैं, जो उसके नाम से अभी तक नहीं भरे हैं, जो सतनाम से नहीं प्रज्वलित हुए हैं, जिनके भीतर हरिनाम नहीं गूंजा... और हरिनाम के गूंजने का मतलब समझ लेना। उसका मतलब यह नहीं होता कि बैठे हैं और हरी राम, हरी राम, हरी राम कर रहे हैं; कि राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहे हैं; उसका मतलब होता है: जहां सब शब्द शांत हो गए और जगत की वास्तविक ध्वनि-तरंग ओंकार पैदा हुआ।
तुम्हारे द्वारा दोहराया गया ओंकार असली ओंकार नहीं है। जब तुम्हारा
मन बिल्कुल ही शून्य होता है, तब उस शून्य में एक ध्वनि सुनी जाती है--वही ध्वनि ओंकार है। तुम दोहराने वाले नहीं होते हो, तुम सुनने वाले होते हो। तुम उसे पैदा नहीं करते, वह ध्वनि व्याप्त है। यह जगत उसी ध्वनि से निर्मित है। वह नाद इस जगत के प्राणों में छिपा है।
मारे बहुत नाम सूं न्यारे। तो जो भी उस परमात्मा के नाम से विमुख हैं,
वे सिर्फ मारे जाते हैं, जीते नहीं।
तुम जरा अपनी जिंदगी पर सोच-विचार करो, थोड़ा विश्लेषण करो। तुम जी रहे
हो या सिर्फ मर रहे हो? तुम जिसको जन्म-दिन कहते हो, वह जन्म-दिन है या मौत और करीब आ गई है, एक साल और करीब आ गई है? जीने के नाम पर तुम्हें मिला क्या है? जीवन का जरा सा भी स्वाद नहीं मिला। जीवन का ही स्वाद मिल जाए तो अमृत मिल गया। जीवन के स्वाद का नाम ही तो परमात्मा है।
मारे बहुत नाम सूं न्यारे, जिन यासूं मन लाया।
रज्जब मुत्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया।।
लेकिन जिन्होंने राम को गह लिया, जिन्होंने भी माया से अपनी आंख हटा
ली और राम पर आंख जमा ली, केवल वे ही... रज्जब मुत्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया। जिन्होंने राम का हाथ पकड़ा, राम ने उन्हें छुड़ा लिया। राम ही छुड़ाता है। मुत्ति प्रसाद है। तुम्हारे प्रयास से नहीं होती, उसके प्रसाद

से होती है, उसकी अनुकंपा से होती है। वह रहीम है, वह रहमान है। उसकी अनुकंपा से होती है। लेकिन उसकी अनुकंपा किनको मिलती है? ऐसा मत सोचना कि उसकी अनुकंपा में भेद है। भेद होगा तो अनुकंपा न रही। उसकी अनुकंपा सभी पर बरसती है। लेकिन जो उसकी तरफ पीठ किए हैं, वे वंचित रह जाते हैं। अपने कारण वंचित रह जाते हैं। ऐसा ही समझो कि वर्षा हो रही है और तुमने अपना घड़ा उलट रखा हुआ है; वर्षा होती रहेगी और घड़ा उलटा रहेगा और नहीं भरेगा। घड़े को सीधा करो। राम की तरफ उन्मुख होओ।
वही घटना रज्जब में घटी। जब दादू ने रज्जब की आंखों में देखा। जाते थे
एक तरफ को, क्रांति हो गई, मुड़ गए। उतर पड़े घोड़े से। घोड़े से क्या उतरे, संसार से उतर गए।
घोड़ा संसार का प्रतीक है। इसलिए विवाह में उसका उपयोग किया जाता है।
वह जो घोड़े पर चढ़ा देते हैं आदमी को, चढ़ा दिया संसार पर। वह जो मोरमुकुट बांध देते हैं, बना दिया एक दिन के लिए राजा। सब झूठा है। कहते हैंः दूल्हा राजा! कुछ राज्य इत्यादि नहीं है। बिना राज्य के राजा हो। मगर एक दिन के लिए रौनक आ गई। चले बराती! वे सब तुम्हें यह भ्रम दे रहे हैं कि तुम कुछ विशिष्ट हो, घोड़े पर तुम बैठे हो, बाकी सब पैदल चल रहे हैं। छुरी इत्यादि लटका दी, हालाँकि उससे सब्जी भी नहीं कट सकती। वह किसी काम की नहीं है छुरी। मगर प्रतीक! प्रतीक कि तुम राजा बना दिए। वेश इत्यादि पहना दिया है। बैंड-बाजे बज रहे हैं। तुम्हें एक भ्रांति दी जा रही है कि तुम राजा हो-- अश्व पर सवार!
वह जो उतर पड़ा रज्जब और एक क्षण में घोड़े से नीचे हो गया, वह संसार से नीचे उतर पड़ा। उसने प्रतीक तोड़ दिए। उसी क्षण उसने मौर उतारकर फेंक दिया। उसे बात दिखाई पड़ गई कि यहां की बादशाहत झूठी बादशाहत है, कि यह मौर इत्यादि सब बकवास है। वह असली बादशाहत की खोज में झुक गया गुरु के चरणों में। सोचते हो बारातियों पर क्या गुजरी होगी!
तिलमिलाती हैं किस कदर मौजें
डूबने वाले जब उभरते हैं
क्या गुजरी होगी बारातियों पर? बड़े दुखी, बड़े क्रोधित, बड़े नाराज घर
गए होंगे। पीड़ित-परेशान घर गए होंगे। रात सो न सके होंगे। क्योंकि इस जवान लड़के ने उन सबको बुरी झेंप से भर दिया होगा। इसकी हिम्मत ने उनके सामने उनकी नामर्दगी जाहिर कर दी होगी। इसके साहस ने उन्हें बता दिया होगा कि तुम नपुंसक हो, तुम अभी भी झूठे घोड़ों पर बैठे हो। तुमने अभी भी झूठे मौर बांध रखे हैं। अभी भी तुम समझ रहे हो कि तुम राजा हो। और न कोई राज्य है। यह है माया: कोई राज्य नहीं है, और राजा!
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक--जो राज्य खोजते हैं ताकि राजा हो जाएँ। ये ही संसारी लोग हैं। और दूसरे वे हैं जो राजा को खोज लेते हैं--राम राजा! और उसके साथ राज्य तो अपने आप मिल जाता है; उसको खोजना नहीं पड़ता। राजा तुम्हारे भीतर छिपा है। सारा राज्य उसका है। मगर तुम उससे विमुख हो।
बस इतनी ही क्रांति चाहिए। यही संन्यास का अर्थ है। इतनी ही क्रांति--जो आंखें बाहर खोज रही हैं, वे भीतर खोजने लगें।
रज्जब मुत्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया।।
संतो, आवै जाय सु माया।
जो आती है और चली जाती है, वह माया। प्यारी परिभाषा! छोटी, संक्षिप्त, सारगर्भित। जो आए और जाए--वह माया। आयाराम, गयाराम--माया। जो न आती है और न जाती है, जो है, जो सदा है, वह माया नहीं। वही सत्य है।
सत्य का अर्थ हैः शाश्वत। माया का अर्थ हैः क्षणभंगुर। सागर में लहरें उठती हैं, मिटती हैं; बनती हैं, गिरती हैं, आती हैं, जाती हैं--सागर सदा है। अगर शांति चाहिए, उसे पकड़ो जो सदा है। उसे गहो, जो शाश्वत है।
क्षणभंगुर को पकड़ोगे, अशांत होओगे। क्योंकि तुम पकड़ भी न पाओगे और वह गया।
संतो, आवै जाय सु माया।
आदि न अंत मरै नहिं जीवै, सो किनहूं नहिं जाया।।
यह माया सिर्फ झूठा सपना है। न तो इसका कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।
न इसका कोई जन्म है, न इसका कोई जीवन है। यह केवल कल्पना-जाल है। तुम्हारा

सपना कहां से पैदा होता है रात? फिर सुबह कहां विलीन हो जाता है? न पैदा
होता है, न विलीन होता है। ख्याल मात्र है। उसका अस्तित्व ही नहीं है।
आदि न अंत मरै नहिं जीवै, सो किनहूं नहिं जाया।।
लोक असंखि भये जा माहिं, सो क्यूं गरभ समाया।
बाजीगर की बाजी ऊपर, यहु सब जगत भुलाया।।
यह माया ऐसी है, जैसे जादूगर का जादू। नहीं हैं, और चीजें दिखाई पड़ने
लगती हैं। एक भ्रांति खड़ी हो जाती है।
बाजीगर की बाजी ऊपर, यहु सब जगत भुलाया।।
सुन्न सरूप अकलि अविनासी, पंचतत्त नहिं काया।
ये जो पांच तत्त्वों से मिल कर तुम्हारी देह बनी है, यह तुम नहीं हो। "सुन्न सरूप अकलि अविनासी।" तुम तो वह पूर्ण हो, जो अविनाशी है, शाश्वत है, सनातन है, सदा है। उसका स्वरूप क्या है? शून्य स्वरूप है उसका। सुन्न सरूप!
तुम्हारे भीतर दो अवस्थाएं हैं। एक तो मन की तरंगित अवस्था। वही माया है। फिर एक मन की अतरंगित अवस्था, शून्य स्वरूप, वही राम है। जब मन बिल्कुल निस्पंद रहित हो जाता है, जब मन सारे स्पंदन से मुत्त हो जाता है, जब मन में कोई विचार नहीं उठते, जब मन सिर्फ एक रित्त मंदिर रह जाता है--न कोई आता है न जाता है--वही है राम का स्वरूप। वही है आनंद। वही है मोक्ष। उसे पाकर ही तुम्हें सच्चा साम्राज्य मिलता है। फिर तुमने कुछ कमाया, तुम संपत्तिशाली हुए। जब तक वह न पा लो, तब तक समझना कि जो तुम कमा रहे हो, वह विपत्ति है, संपत्ति नहीं।
सुन्न सरूप अकलि अविनासी, पंचतत्त नहिं काया।
त्यूं औतार अपार असति ये, देखत दृष्टि बिलाया।।
और अगर तुम गौर से देखोगे अपने भीतर विचारों के जाल को, तो ये तुम्हारे देखते ही विलीन हो जाएंगे। यह कुंजी की बात है। यह ध्यान की कुंजी है। निरीक्षण-मात्र काफी है। झूठ को मारने के लिए तलवारें नहीं उठानी पड़तीं। और झूठ को मारने के लिए आग नहीं लगानी पड़ती। झूठ को मारने के लिए बस एक काम काफी है: साक्षी हो जाओ, जागकर देख लो।
इसका थोड़ा प्रयोग करना शुरू करो। क्रोध पकड़े तुम्हें, शांत बैठ कर क्रोध को देखना शुरू करो। लड़ो मत, झगड़ो मत, निंदा मत करो, न क्रोध का पक्ष करो, न विरोध करो, सिर्फ देखो क्रोध क्या है! एक बार भर-आंख देखो क्रोध क्या है, और तुम चकित हो जाओगे--तुम्हारे देखते ही देखते क्रोध का धुआँ विलीन होने लगा। तुम्हारे देखते ही देखते तुम पाओगे, क्रोध गया। और क्रोध की जगह एक अपूर्व शांति छूट गई है। पीछे एक अपूर्व आनंद का भाव छूट गया। जैसे तूफान के बाद शांति आ जाती है--ऐसे ही।
जब कामवासना पकड़े तो लड़ो मत, दबाओ मत, जबरदस्ती ब्रह्मचर्य मत थोपो।
जब कामवासना पकड़े, आंख बंद करके देखोः क्या है कामवासना? उठने दो, विचार ही है, इतना घबड़ाना क्या! इतना परेशान क्या होना! कामवासना उठे तो जल्दी से माला लेकर राम-राम, राम-राम मत जपने लगना कि किसी तरह भुलाओ। तुम्हारे भुलाने से कुछ नहीं भूलने वाला है। तुम इधर राम-राम जपते रहोगे, कामवासना उधर भीतर अपना जाल फैलाती रहेगी। और ऊपर-ऊपर राम-राम रहेगा, भीतर तुम जानते हो क्या चल रहा है! किसको धोखा दोगे? शायद दूसरे धोखे में भी आ जाएं तुम्हारा राम-राम सुन कर, लेकिन तुम तो जानते ही हो कि राम-राम तुम क्यों दोहरा रहे हो! यह तुम्हारा राम-राम दोहराना वैसा ही है जैसे सर्दी के दिनों में लोग नदी में स्नान करने जाते हैं न! पानी ठंडा होता है। एकदम उतरते हैं पानी में तो जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगते हैं--हरे राम, हरे राम, हरे राम करने लगते हैं।
मैं जब छोटा था तो अपने गांव की नदी पर जाकर देखता, मैं सोचता बड़ी हैरानी की बात है, यह आदमी अभी तक हरे राम नहीं कर रहा था, एकदम पानी में उतरा, हरे राम-हरे राम करने लगा! फिर पानी के बाहर आकर फिर ठीक है, फिर भूलभाल गया। मेरे सामने ही एक सज्जन रहते थे, उनको मैंने कभी हरे राम करते नहीं देखा, लेकिन ठंडे पानी में वे जरूर करते थे। मैंने उनसे पूछा कि इसका

राज क्या है? उन्होंने कहाः राज क्या, ठंड लगती है। भुलाने के लिए। मन लग गया हरे राम, हरे राम में, उसी बीच डुबकी मार ली। इतनी देर मन को उलझा लिया। तुम राम-राम जपोगे और कामवासना से कितनी देर बचोगे? तुम राम-राम जपोगे, क्रोध से कितनी देर बचोगे? कैसे बचोगे? यह कोई बचना है? किसको धोखा दे रहे हो?
नहीं सूत्र कुछ और है। विज्ञान कुछ और है। देखो! जाग कर देखो! पूरी तरह सावधान हो जाओ। सजग हो जाओ। सावचेत हो जाओ।
त्यूं औतार अपार असति ये... ये इतनी असत्य घटनाएं हैं जो तुम्हारे भीतर घट रही हैं कि सिर्फ देखने से ही समाप्त हो जाती हैं... देखत दृष्टि बिलाया। बस तुम देख भर लो भर-आंख, कि विलीन हो जाती हैं। और तब जो शेष रह जाता है, वही प्रभु है।
ज्यूं मुख एक देखि दुइ दर्पन, गहला तेता गाया।
देखते हैं न कि दर्पण के सामने खड़े हो जाते हो, तो तुम्हारा तो मुख एक है, लेकिन दर्पण में एक और दिखाई पड़ने लगा। दर्पण में जो दिखाई पड़ रहा है, वह सच नहीं है। वह है ही नहीं, वह सिर्फ दिखाई पड़ रहा है, उसकी भ्रांति में मत पड़ जाना, उसको सच मत मान लेना।
मैंने सुना है, एक राजमहल में दर्पण ही दर्पण लगे थे। सारा महल दर्पणों से बना था। एक कुत्ता रात भूल से भीतर रह गया। वह सुबह मरा हुआ पाया गया और सारे दर्पणों पर उसके खून के दाग थे। हुआ क्या? रात अकेला उस महल में, उसने जब चारों तरफ देखा, हर दर्पण में उसे कुत्ते दिखाई पड़े। कुत्ते ही कुत्ते! घबड़ा गया होगा। इतने कुत्तों के बीच कोई घिर जाए... अकेला कुत्ता, उसकी जान कितनी, औकात कितनी! इतने कुत्ते चारों तरफ और सब खूंखार! भौंका होगा, तो सारे कुत्ते भौंके होंगे। झपटा होगा तो सारे कुत्ते झपटे होंगे। टकरा गया होगा दर्पण से, तो दूसरा कुत्ता भी टकरा गया होगा। दर्पण भी टूटे पड़े थे। दर्पण के काँच छिदे थे और कुत्ता मरा हुआ पड़ा था।
आदमी की अवस्था करीब-करीब ऐसी है। मन तुम्हारा सिर्फ दर्पण है। मन से जूझो मत। मन से लड़ो मत। मन में जो उठता है उसको सच भी मत मानो। छाया-मात्र है। काम उठे, क्रोध उठे, लोभ उठे--छाया-मात्र है। सिर्फ भर-आंख देख लो, गौर से देख लो--उतने में ही विलीन हो जाएगा।
ज्यूं मुख एक देखि दुइ दर्पन, गहला तेता गाया।
बावले मत हो जाओ। पागल मत हो जाओ। दर्पण में भी कोई छिपा है, ऐसा सच मत मान लो। छोटे बच्चे अक्सर मान लेते हैं। बहुत छोटे से बच्चे के सामने दर्पण रख कर देखा? वह पहले थोड़ा डरता है, फिर थोड़ा गौर से देखता है कि मामला क्या है। फिर थोड़ा उत्सुक हो जाता है, फिर थोड़ा पास आता है। फिर टटोल कर देखता है। कुछ समझ में नहीं आता तो दर्पण के पीछे जाकर देखता है कि शायद कोई पीछे तो नहीं छिपा है।
संसार में अज्ञानी आदमी की अवस्था उसी छोटे बच्चे जैसी अवस्था है। वहां कोई भी नहीं है। राम के अतिरित्त यहां कोई भी नहीं है। अगर राम के अतिरित्त तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़ रहा है तो समझ लेना कि किसी दर्पण में पड़े प्रतिबिंब को तुमने सत्य समझ लिया है। वृक्षों में भी वही है। पहाड़ों- पर्वतों में भी वही है। मुझ में भी वही, तुम में भी वही। सब में वही है। एक का ही विस्तार है। लेकिन अनेक दिखाई पड़ रहा है। राजमहल में चले गए हो, जहां बहुत दर्पण लगे हैं।
ज्यूं मुख एक देखि दुइ दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी विधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।।
बड़ा प्यरा वचन है! कहते हैं, रज्जब को ऐसी विधि दे दी गुरु ने, रज्जब को ऐसा सूत्र हाथ लगा दिया... जन रज्जब ऐसी विधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया। तो अब रज्जब वही देखता है, जैसा है, जो है। अब जरा भी अन्यथा नहीं देखता। अब अपनी कल्पना को बीच में मिलाता नहीं। अब अपनी कल्पना से मिश्रण नहीं होने देता। अब अपने सपनों को सत्य के साथ जुड़ने नहीं देता... ज्यूं था त्यूं ठहराया। सपनों के हटते ही जो है, बस वही रह गया। उसका ही नाम परमात्मा है।

परमात्मा कोई व्यत्ति नहीं है आकाश में किसी सिंहासन पर बैठा हुआ। इस भ्रांति में मत पड़ना कि किसी दिन मिल जाएगा तुम्हें परमात्मा धनुषबाण लिए हुए, कि मुरली बजाता हुआ, कि मोरमुकुट बांधे; इस भ्रांति में मत पड़ना, वे सब तुम्हारी कल्पनाएं हैं। वह सब तुम्हारी माया का जाल है। परमात्मा तो उस अवस्था का नाम है, जिसको रज्जब कह रहे हैंः ज्यूं था त्यूं ठहराया। अब कुछ भी विकृति नहीं होती है। अब कोई सपना बीच में नहीं आता। अब चीजें वैसी ही दिखाई पड़ती हैं, जैसी हैं। अब किसी तरह की विकृति नहीं है, किसी तरह का आरोपण नहीं है, किसी तरह का प्रक्षेपण नहीं है। जो है, जैसा है, वैसा ही दिखाई पड़ रहा है। यह अवस्था ही परमात्म-अवस्था है।
रज्जब के साथ यह जो यात्रा चलेगी, इसमें अगर तुम यही एक सूत्र समझ लोगे, तो भर पाया; तो खाली हाथ न जाओगे; तो कुछ अमूल्य संपदा साथ ले जाओगे-- संपदा लुटेगी। घड़ों को उलटे रखे मत बैठे रहना। संपदा बरसेगी। घड़ों को सीधे कर लेना। घड़े को सीधा करने का नाम ही शिष्य-भाव है।
शिष्य-भाव का अर्थ होता है: तैयार हूं, लेने को तैयार हूं! आतुर हूं! स्वागत है। हृदय मेरा खुला है। तर्क नहीं, विवाद नहीं; स्वीकार है।
ऐसी स्वीकृति की दशा में जो वर्षा होगी, तुम्हें भर देगी।
और ये वचन साधारण वचन नहीं हैं। ये वचन एक ऐसे व्यत्ति के वचन हैं जिसने जाना; एक ऐसे व्यत्ति के वचन हैं जो उस अपूर्व क्रांति से गुजरा। ये एक सिद्धपुरुष के वचन हैं। जन रज्जब ऐसी विधि जानें, ज्यूं था त्यूं ठहराया।
जिस दिन से रज्जब गुरु के चरणों में बैठे, उस दिन से ही नशे में मस्त
हो गए। एक क्षण में घट गई थी बात। मगर घड़ा पूरा भर गया। दादू दयाल ने कहा है कि रज्जब जैसे पीने वाले मुश्किल से मिलते हैं। एक ही घूंट में पी गया, पूरा भर गया।
और क्या चाहिए अब ऐ दिले-मजरूह! तुझे
देखना जज्बे-मोहब्बत का असर आज की रात
नूर ही नूर है जिस सिम्त उठाऊं आंखें
हुस्न ही हुस्न है, ताहद्दे-नजर आज की रात
अल्लाह-अल्लाह वह पेशानिए-सीमीं का जमाल
रह गयीं जमके सितारों की नजर आज की रात
नग्मा-ओ-मैका यह तूफाने-तरब क्या कहिए!
घर मेरा बन गया खैयाम का घर आज की रात।
उस रात हो गई वर्षा मदिरा की। दादू की आंखों ने क्या देखा रज्जब की आंखों में, जैसे सुराही उंड़ेल दी! गुरु तो सदा ही तत्पर है उंड़ेलने को, पीने वाले नहीं मिलते। तुम पीना, ताकि कह सको--
नग्मा-ओ-मैका यह तूफाने-तरब क्या कहिए!
घर मेरा बन गया खैयाम का घर आज की रात
यह हो सकता है। सब तुम पर निर्भर है। स्वर्ग भी, नरक भी--तुम्हारी सृष्टि है। तुम मालिक हो। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। दुख में हो, तो तुम कारण हो। समझो, जागो। कोई रोकेगा नहीं। व्यर्थ की बातों में मत पड़े रहना। यह मत सोचना कि कैसे आज जाग जाऊं, जन्मों-जन्मों के कर्मों का जाल पहले काटना पड़ेगा। तुमने परमात्मा को कोई दुकानदार समझा है, कि बैठा है, खाते- बही लिए, हिसाब-किताब करेगा रत्ती-रत्ती, दाने-दाने का, कि कहां गई यह कौड़ी, कि चुकाओ! परमात्मा दाता है। औघड़दानी! तुम्हारे किए इत्यादि का कोई हिसाब नहीं है। कौन तुमसे पूछ रहा है? तुम्हारे अपराध भी तो छोटे-छोटे हैं। उसकी करुणा के सामने उनका क्या मुकाबला? उसकी करुणा बाढ़ की तरह आती है, सब बहा ले जाती है--तुम्हारा सब कूड़ा-करकट।
ऐसा ही समझो कि तुम जन्मों-जन्मों से एक अंधेरे घर में रहे हो और आज अगर दीया जले, तो क्या तुम सोचते हो अंधेरा कहेगा कि मैं हजारों-हजारों साल से यहां हूं, ऐसे एक ही बार में दीया जलाने से हट न जाऊंगा। हटते-हटते हटूंगा। जाते-जाते जाऊंगा। और जन्मों-जन्मों से हं, जन्मों-जन्मों तक जब तुम दीया जलाओगे तब जाऊंगा।

नहीं, बस दीये की एक किरण काफी है। एक छोटा सा दिया काफी है करोड़ों- करोड़ों वर्षों का अंधेरा मिट जाता है। ऐसा ही अंधेरा रज्जब का मिटा। ऐसा अंधेरा तुम्हारा मिट सकता है।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
दूसरा प्रवचन

संसार है परमात्मा में सुषुप्ति

पहला प्रश्नः संसार और परमात्मा में इतना विरोध क्यों लगता है?

क्योंकि परमात्मा का तुम्हें कुछ पता नहीं। परमात्मा के संबंध में सिर्फ सुना है। और जिनसे सुना है, उन्हें भी पता नहीं। परमात्मा और संसार में विरोध हो कैसे सकता है? विरोध हो तो संसार एक क्षण जी कैसे सकता है? बिना परमात्मा के सहारे श्वास चलेगी? बिना परमात्मा के सहारे वृक्ष बढ़ेंगे? बिना परमात्मा के सहारे सूरज में रोशनी होगी? चांद-तारों में चमक होगी? बिना परमात्मा के सहारे गति कहां से आएगी? ऊर्जा कहां से आएगी? जीवन कहां से स्पंदित होगा? परमात्मा और संसार में विरोध! इससे ज्यादा मूढ़ता की और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन पुरोहित ने तुमसे यही कहा है, पंडित ने तुम्हें यही समझाया है, तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हारे मन में यही बात डाल रहे हैं कि परमात्मा और संसार में विरोध है। और सदियों का शिक्षण, तुम्हारे भीतर गहरे संस्कार पड़ गए हैं।
धर्म के नाम पर जो बड़ी से बड़ी भ्रांतियां चलती रही हैं, उनमें सबसे बड़ी भ्रांति यही है कि परमात्मा और संसार में विरोध है। क्यों इस भ्रांति को पैदा किया गया? इसके पीछे राज होगा; गहरा राज होना ही चाहिए। राज यह है कि अगर परमात्मा और संसार में विरोध नहीं तो फिर पंडित और पुरोहित की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। विरोध है तो आवश्यकता है। विरोध है तो पंडित तुम्हें समझाएगा कि संसार से कैसे मुत्त होओ और परमात्मा को कैसे पाओ। लेकिन अगर संसार और परमात्मा एक ही सूत्र में बंधे हैं, विरोध ही नहीं है, तो फिर तुम्हारे महात्मा की जरूरत क्या? बीमार ही नहीं हो तो वैद्य की जरूरत क्या? अगर परमात्मा में जी ही रहे हो, तो परमात्मा को कैसे पाएं, इसका विधि-विधान रचने की जरूरत क्या? इसलिए जरूरी था कि तथाकथित धार्मिक व्यवसाय परमात्मा और संसार में विरोध का लंबा विवाद खड़ा करे, तुम्हें समझाए कि तुम संसारी हो और तुम्हें होना है परमात्मामय। और तुम जैसे हो, गलत हो, और तुम्हें होना है ठीक। ठीक होने की विधि हमारे पास।
इससे कुछ ऐसा नहीं हुआ कि सारे लोग गैर-संसारी हो गए हैं--गैर-संसारी होना मुश्किल है। क्योंकि गैर-संसारी होने का मतलब है, परमात्मा की ऊर्जा से अपने को विरोध में खड़ा कर लेना। पर इतना जरूर हो गया है कि कुछ पागलों ने चेष्टा की है और विकृत हुए हैं, विक्षिप्त हुए हैं। इतना जरूर हुआ है कि जिन्होंने चेष्टा नहीं की, उनके मन भी विषात्त हो गए हैं। तुम संसार में हो, मगर प्रफुल्लता से नहीं हो। दुकान पर बैठे हो, मगर उदास हो, क्योंकि बैठना तो मंदिर में है। काम तो कर रहे हो, लेकिन काम में रस नहीं आता--यह तो संसार है, इसकी तो निंदा है तुम्हारे भीतर। पालन-पोषण बच्चों का करना है इसलिए काम भी कर लेते हो; पति भूखा आता होगा तो पत्नी घर भोजन भी बना लेती है, लेकिन सब उदास-उदास चल रहा है। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने तुम्हारे जीवन का सारा आनंद छीन लिया। तुम्हारे जीवन को एक बड़ी रित्तता से भर दिया। परमात्मा तो मिला नहीं--साफ है कि परमात्मा नहीं मिला--हाँ, संसार से जो कुछ रस की उपलब्धि हो सकती थी, वह जरूर विकृत हो गई।
जो जानते हैं, उनका जानना कुछ और है। वे संसार के विरोध में नहीं हैं-- कैसे हो सकते हैं संसार के विरोध में? वे परमात्मा के पक्ष में हैं। अब जरा थोड़ा समझ कर चलना, एक-एक बात को गौर से सुन लेना, नहीं तो गलत समझोगे। वे परमात्मा के पक्ष में हैं, संसार के विरोध में नहीं। और तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे संत-साधु संसार के विरोध में हैं, परमात्मा के पक्ष में नहीं। जो परमात्मा के पक्ष में हैं, वे तुम्हें संसार से नहीं तोड़ना चाहते, सिर्फ परमात्मा से जोड़ना चाहते हैं। और जिस दिन तुम जुड़ोगे उस दिन तुम पाओगे कि संसार में भी थे तुम उसी से जुड़े हुए--सोए-सोए जुड़े थे, अब जाग कर जुड़े, बस इतना ही फर्क है। सोए-सोए परमात्मा में जी रहे थे, अब जाग कर जीने लगे, बस इतना ही फर्क है। विरोध कुछ भी नहीं है। जैसे इस बगीचे

में कोई सोया हो गहरी नींद, कोयल आए और गीत गाए, पक्षियों का कलरव हो, सूरज निकले, हवाएं वृक्षों में नाचती हुई गुजरें, मगर कोई गहरी नींद में सोया है, हवाएं उसे भी छुएंगी और पक्षियों के गीत उसके कान पर भी गूंज करेंगे, सूरज की किरणें उसके चेहरे पर खेलेंगी, पर उसे कुछ पता नहीं।
फिर कोई आए और उसे झकझोर कर जगा दे। आंख खुले सूरज की महिमा प्रकट हो, पास से गुजरती हवा का गीत सुनाई पड़े, अचानक कोयल की आवाज आए, फूलों की सुगंध आए, क्या तुम सोचते हो कुछ नया हो गया? सब था, सब वैसा का वैसा है, सिर्फ यह आदमी नया हो गया और कुछ नया नहीं हुआ है। वही बगीचा, वही सूरज, वही फूल, वही पक्षी, सब वही है, सिर्फ इस आदमी में थोड़ा फर्क पड़ा है, यह सोया था, यह जाग गया।
संसार का अर्थ हैः तुम सोए हो परमात्मा में। परमात्मा का अर्थ हैः तुम जाग गए संसार में। बस इतना ही फर्क है, विरोध जरा भी नहीं है।
वह जो दादू दयाल ने घोड़े पर चढ़े रज्जब को उतार लिया, वह विरोध के कारण नहीं, सिर्फ जगाया। वह जो आवाज दी कि "रज्जब तैं गज्जब किया", सिर्फ एक आवाज दी कि यह क्या कर रहा है, जाग, सुबह हो गई, यह बेला जागने की है। तू सोने जा रहा है? तू और सोने जा रहा है? फिर से सोने जा रहा है? अभी ऊबा नहीं सोने से? कितना तो सो चुका है! परमात्मा को सोए-सोए खूब देखा--सोए-सोए कैसे देख पाओगे! --अब आंख खोल, अब जाग कर देख। बंद आंख, खुली आंख, बस इतना सा फर्क है। बंद आंख संसार, खुली आंख परमात्मा। है तो एक ही। और जैसा है वैसा ही है। उसमें कभी कोई अंतर नहीं पड़ा है। तुम्हारे भटकने से, तुम्हारे आंख बंद कर लेने से, तुम्हारे सो जाने से दुनिया नहीं बदलती। तुमने आज शराब पी ली, तुम सोचते हो दुनिया बदल गई? तुम आज शराब पीकर रास्ते पर डगमगा कर चलने लगे, तुम्हें लगने लगा कि तूफान आ रहा है, कि अंधड़ उठे हैं, कि भूकंप मालूम होता है, मकान हिल रहे हैं; न तो मकान हिल रहे हैं, न कोई अंधड़ है, न कोई तूफान है, सिर्फ तुम नशे में हो, तुम्हारे पैर डगमगा रहे हैं। नशा उतर जाएगा, तुम पाओगे न कोई भूकंप था, न कोई मकान गिर रहे थे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात अपने घर लौट रहा है--खूब पी गया है। चाभी ताले में डालने की कोशिश करता है, लेकिन ताले के छेद में नहीं जाती, हाथ कंप-कंप जाता है, इधर-उधर चली जाती है। राह पर खड़ा पुलिसवाला यह सब देख रहा है, दया आई--अक्सर ही नसरुद्दीन की सहायता को उसे आना पड़ता है--आकर उसने कहा कि मुल्ला, तुम नाहक मेहनत कर रहे हो, लाओ चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं। मुल्ला ने कहा--चाभी तो मैं ही रखूंगा और मैं ही खोल लूंगा, तुम जरा इतना करो कि मकान को जरा सम्हाल कर पकड़ो कि हिले न।
मकान नहीं हिल रहा है! मकान कहां से हिलेगा? तुम हिल रहे हो। तुम्हारी चेतना कंप रही है। तुम्हारा मन विचारों और तरंगों से भरा है, तुम नींद में पड़े हो। नींद के कारण तुम्हारे जीवन में सुवास नहीं है। नींद के कारण तुम्हारे जीवन में आनंद नहीं है। आनंद जागरण का लक्षण है। आनंद जागरण की छाया है। सोया हुआ आदमी सदा ही विषाद में होता है। नींद प्रफुल्लित हो ही नहीं सकती। बेहोशी है, कैसे प्रफुल्लता होगी? तो तुम बैचेन हो, परेशान हो, फिर तुम पूछते हो किसी से जाकर कि मेरी बैचेनी कैसे मिटे, मेरी परेशानी कैसे मिटे; वह कहता है--तुम सांसारिक हो, आध्यात्मिक बनो; छोड़ो संसार-- पत्नी छोड़ो, बच्चे छोड़ो, घर-द्वार छोड़ो, काम-धाम छोड़ो--भागो पहाड़ की तरफ, परमात्मा वहां है। परमात्मा यहां नहीं? परमात्मा सब जगह है। सिर्फ आंख खोलो--तो यहां है। और आंख बंद रखो, तो हिमालय पर भी नहीं पाओगे उसे। और आंख बंद रखो, स्वर्ग में भी पहुंच जाओगे तो नहीं पाओगे उसे। आंख खुली रखो, तो नरक कहां है? जहां होओगे, वहीं पाओगे उसे।
चिन्मय ने पूछा है यह प्रश्न। "संसार और परमात्मा में इतना विरोध क्यों लगता है?"
तुम्हें परमात्मा का कुछ पता नहीं। नहीं तो संसार परमात्मा की अभिव्यत्ति है, उसका नृत्य है, उसका गीत, उसकी बांसुरी। ये सब रंग उसके हैं। ये सब ढंग उसके हैं। इस संसार के इंद्रधनुष में उसी चितेरे के हस्ताक्षर हैं। ये सुंदर चेहरे, ये सुंदर फूल, ये सुंदर लोग, ये सुंदर रातें, ये सुंदर दिन, ये सब उसी की खबर लाते हैं। लेकिन सदियों-सदियों तक

तुम्हें समझाया गया है कि संसार और परमात्मा में विरोध है; तुम्हें संसार का विरोध करना सिखाया गया है और कहा गया है कि तब तुम परमात्मा को पाओगे; मैं तुमसे कहता हूं--संसार का विरोध किया, परमात्मा को तो कभी पाओगे ही नहीं, संसार को भी गंवा बैठोगे। दुविधा में दोई गए, माया मिली न राम। तुम धोबी के गधे हो जाओगे--न घर के न घाट के। तुम्हारे तथाकथित साधु- संन्यासियों को मैं इससे ज्यादा नहीं मानता, धोबी के गधे, न घर के न घाट के। बात तुम्हें दुख देगी, तुम्हें पीड़ा होगी क्योंकि तुम्हारी एक सोचने की आदत बन गई है, एक संस्कार बन गया है।
तुम्हें परमात्मा का कोई भी पता नहीं है, तुम परमात्मा की बात ही मत उठाओ, तुम तो अभी इतनी ही बात करो कि मेरी जिंदगी नींद से भरी है, मैं कैसे जागूं? छोड़ो परमात्मा! यह सैद्धांतिक चर्चा में मत उलझो। तुम इतना ही पूछो कि कैसे मैं जग जाऊं, कैसे यह सपने के बाहर आ जाऊं? नींद के बाहर आते ही तुम पाओगे, सदा से परमात्मा में थे। और होने का कोई उपाय ही नहीं है। जब गलत थे तब भी उसी में थे। जब पाप में थे तब भी उसी में थे। पापी भी उसमें है, पुण्यात्मा भी उसमें है--उसके बाहर कोई जगह नहीं है, उससे बाहर जाओगे कहां? कैसे जाओगे, कहाँ जाओगे? उसका ही सारा विस्तार है। बुरा भी करोगे तो उसी में करोगे, भला भी करोगे तो उसी में करोगे। राम भी उसमें है, रावण भी। उसी के मंच पर सारा नाटक है। और राम में वह उतना ही है, जितना रावण में। राम को पता है, रावण को पता नहीं है। भेद इतना है। बस इतना सा भेद--राम को बोध है कि कौन भीतर, रावण को बोध नहीं कौन भीतर! इतने-से भेद के अतिरित्त संसारी में और साधु में कोई भेद नहीं है। पाप-पुण्य का भेद नहीं है, होश और बेहोशी का भेद है। लेकिन आदतें पड़ जाती हैं। फिर उन्हीं के ढर्रे में हम सोचे चले जाते हैं। हिम्मत करो, आदतों को छोड़ो। बासी, उधार आदतों से सोचने का कोई क्रम आगे नहीं जाएगा।
मैंने सुना है, मां अपने दोनों बच्चों को एक-एक लड्डू देकर रसोई-घर में चली गई। थोड़ी देर बाद छोटे बच्चे के रोने की आवाज आई। तो मां ने बड़े बच्चे से पूछाः बड़े, छोटा क्यों रो रहा है? मैं अपना लड्डू खा रहा हूं, मां, इसलिए छोटा रो रहा है। माँ ने कहा यह तो बड़ी हैरानी की बात है, मैंने छोटे को भी लड्डू दिया था। बड़े ने कहाः मुझे मालूम है, जब मैं छोटे का लड्डू खा रहा था तब भी वह रो रहा था। माँ, उसकी तो रोने की आदत ही पड़ गई है!
एक देखने की, सोचने की प्रक्रिया की जड़ आदत हो जाती है। तुमने सुना है बार-बार परमात्मा और संसार में विरोध है। संसार को छोड़ो अगर परमात्मा को पाना है। इसे इतनी बार सुना है कि यह झूठ बार-बार दोहरा कर तुम्हें सच-जैसा मालूम होने लगा है। बड़े से बड़े झूठ सच हो जाते हैं--बस दोहराते रहो। फिकर ही मत करो लोगों की, दोहराए चले जाओ। इतनी बार सुनते हैं लोग तो धीरे-धीरे उन्हें शक होने लगता है कि जब इतनी बार बात कोई कही जा रही है तो जरूर सच होगी। इसी पर तो सारा विज्ञापन का शास्त्र जीता है--दोहराए चले जाओ, फिकर ही मत करो, इसकी फिकर ही मत करो कि लोग अखबार में पढ़ते हैं कि नहीं पढ़ते; न भी पढ़ते हों, पन्ना पलटते वत्त जरा नजर तो पड़ ही जाती है--लक्स टॉयलट साबुन--रास्ते से गुजरते वत्त भी बोर्ड तो दिख ही जाता है; कोई जानकर, वहां बैठ कर और नमस्कार करके थोड़े ही बोर्ड को पढ़ता है, मगर--लक्स टॉयलट साबुन। फिल्म देखते वत्त--लक्स टॉयलट साबुन। रेडियो सुनते वत्त--लक्स टॉयलट साबुन। जहां देखो वहां--लक्स टॉयलट साबुन। इतनी बार दोहराया जाता है कि तुम्हें याद ही नहीं रहता कि इसका संस्कार भीतर बैठता जा रहा है। फिर एक दिन तुम बाजार गए साबुन खरीदने, दुकानदार पूछता है--कौन सा साबुन? तुम कहते हो--लक्स टॉयलट साबुन। और तुम सोचते हो तुम सोच कर कह रहे हो; तुम सोचते हो तुमने बड़ी शोध की है कि कौन सा साबुन श्रेष्ठ साबुन है; तुम सोचते हो कि तुमने बड़ा हिसाब-किताब लगाया है। तुमने कुछ नहीं लगाया है। तुम्हें कुछ पता नहीं है। यह बात तुम्हारे भीतर डाल दी गई है। यह तुम्हारे अंतरंग में जाकर बैठ गई है। पुनरुत्ति ही एकमात्र उपाय है बिठा देने का। इसलिए विज्ञापन सब तरफ से पुनरुत्त होना चाहिए, दोहराना चाहिए। जहाँ जाओ वहीं, चाहो चाहे न चाहो, विज्ञापन दिखाई पड़ना चाहिए।

सदियों से तुमसे कहा गया है कि परमात्मा और संसार में विरोध है। बस पकड़कर बैठ गए हो। यह हो कैसे सकता है? यह तो ऐसा ही हुआ जैसे केंद्र और परिधि में विरोध हो। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे आत्मा और देह में विरोध हो। तो चलेगा क्यों यह नाता? यह आत्मा और देह का संग-साथ एक क्षण भी टिकेगा कैसे, अगर विरोध हो; टूट ही जाएगा--आत्मा अपने मार्ग पर चली जाएगी, शरीर अपने मार्ग पर चला जाएगा। कौन इन्हें जोड़ रखेगा? परमात्मा कभी का उड़ गया होता संसार से, वृक्ष सूख गए होते, फूल कुम्हला गए होते, पक्षियों के कंठ बंद हो गए होते, नदियां बहना बंद हो गई होतीं। नहीं, अभी ऐसा हुआ नहीं। महात्मा होंगे संसार के विरोध में, परमात्मा संसार के विरोध में नहीं है। नहीं तो संसार चले क्यों? कौन चलाए?
और ख्याल रखना, मैं संसार के विरोध में नहीं हूं। मैं परमात्मा के पक्ष में जरूर हूं। क्या भेद है दोनों बातों में? भेद बड़ा है। भेद इतना बड़ा है जैसे जमीन और आसमान का फासला। मैं परमात्मा के पक्ष में हूं, संसार परमात्मा का छोटा सा अंश है। और जब तुम परमात्मा को जान लोगे तो तुम संसार में भी उसे जान लोगे। फिर ऐसा थोड़े ही होगा कि तुम्हें अपने बेटे में परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा, सिर्फ इसी वजह से कि तुम्हारा बेटा है। स्वामी राम अमरीका से लौटे तो उनके प्रमुख शिष्य सरदार पूर्णसिंह ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं उनके साथ वर्ष भर तक रहा। वे अपूर्व व्यत्ति थे। लेकिन एक दिन मुझे बड़ी अड़चन हो गई इनकी पत्नी दूर पंजाब से उनसे मिलने आई अपने बच्चों को लेकर। पत्नी को छोड़ कर चले गए थे, पत्नी मुसीबत में रही थी, आटा पीस-पीस कर काम चला रही थी, बच्चों का पेट भर रही थी; पति ख्यातिनाम होकर, दूर देश में बड़ी प्रसिद्धि लेकर लौटे हैं, वह दर्शन करने आई। पति-भाव से नहीं कि वे पति हैं; लेकिन दर्शन करना था, बच्चों को भी दर्शन करा देना था। और जब वह आई झोपड़े के पास और राम ने आते देखा, तो पूर्णसिंह को कहाः द्वार बंद कर दो, मैं अपनी पत्नी से नहीं मिलना चाहता। सरदार पूर्णसिंह ने लिखा है कि मुझे बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि उन्होंने द्वार बंद करने को कभी नहीं कहा था। और भी स्त्रियां मिलने आई थीं, और भी पुरुष मिलने आए थे, कभी किसी को मिलने के लिए मनाही नहीं की थी; अपनी ही पत्नी को मिलने के लिए मनाही क्यों की? तो उन्होंने कहाः दरवाजा तो मैं बंद कर देता हूं, लेकिन यह प्रश्न आपने मेरे मन में उठा दिया। आपको सब में परमात्मा दिखाई पड़ता है, सिर्फ अपनी पत्नी में छोड़ कर? आप ही तो मुझसे कहते रहे हैं, सभी में परमात्मा है। तो सिर्फ इसी वजह से कि यह स्त्री आपकी पत्नी है, इसमें परमात्मा नहीं है? इसके लिए द्वार बंद करवा रहे हैं? यह भेद-भाव कैसा? राम प्रतिभाशाली व्यत्ति थे, क्षण भर में उनको बात दिखाई पड़ गई, उनकी आंख से आंसू बहने लगे, उन्होंने कहा, मुझे क्षमा करो। द्वार खोलो। मेरे भीतर डर होगा। भेद कैसे हो सकता है? परमात्मा सब में है। तो इतनी-ही-सी बात से क्या फर्क पड़ेगा कि वह मेरी पत्नी थी कभी? भय मेरे भीतर है। मैं डरा होऊंगा। शायद वह तो किसी और आसत्ति के कारण से न भी आई हो, लेकिन मेरे भीतर ही कहीं कोई भय छिपा होगा। दरवाजा खोलो। तुमने मुझे ठीक चौंकाया। तुमने ठीक समय पर मुझे चेताया। अन्यथा यह भूल मुझसे हो जाती। इतनी भी भूल काफी है परमात्मा से दूर रहने के लिए।
जिस दिन परमात्मा का अनुभव होगा, उस दिन तुम सोचते हो तुम्हारे बेटे में परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा? तब बेटे में भी वही है, पत्नी में भी वही है। पति में भी वही है। तब दुकान पर बैठोगे तो वहां दुकानदार होकर बैठे हो जरूर, ग्राहक में भी वही दिखाई पड़ेगा। उसका ही काम कर रहे हो। फर्क इतना ही पड़ता है--अभी तुम सोचते हो अपना काम कर रहे हो, तब तुम जानोगे उसका काम कर रहे हैं; जो उसकी मर्जी! अब उसका इरादा दुकानदार ही बनाने का है, तो दुकानदार बनेंगे। अगर उसका इरादा कुछ और है तो कुछ और हो जाएँगे। उसके इरादे के अतिरित्त हमारा अपना कोई इरादा नहीं। उसकी मर्जी हमारी मर्जी है। ऐसे समर्पण का नाम धर्म है।
इसलिए मैं तुमसे संसार से भागने को नहीं कहता। मैं, तुम परमात्मा में जागो, इसके लिए जरूर कहता हूं। और जागते ही तुम पाओगे--सारा संसार उसी से भरा है। उसी से आप्लावित है।

दूसरा प्रश्नः आपकी बातों का अयास करना कठिन है। बताएं कि ध्यान में किस का स्मरण करना चाहिए?

पहली तो बात, मेरा जोर अयास पर नहीं है। मेरा जोर समझ पर है, अयास पर नहीं। मेरी बातों को समझो। अयास की जल्दी मत करो। लेकिन वह ग्रंथि भी हमारे भीतर गहरी पड़ी है। समझने की हमें फिकर नहीं है, अयास करना है। तुम यह बात ही भूल गए हो कि समझ पर्याप्त है। मैं तुमसे कहता हूं--यह रहा दरवाजा, इससे निकल जाओ; दाएं तरफ मत जाना, वहां दीवाल है, जाओगे तो टकराओगे। तुम कहते हो--ठीक, अब अयास कैसे करें? मैं तुमसे कहता हूं--अगर बात समझ गए कि बायीं तरफ दरवाजा है, तो अब अयास क्या करना है? निकल जाओ। लेकिन तुम कहते हो--आपकी बात तो सुन ली, लेकिन बड़ी कठिन है, अयास तो करना ही पड़ेगा।
अयास किस बात का करना है? इस बात का अयास कि दीवाल से नहीं निकलेंगे? दीवाल के सामने खड़े होकर कसम खाओगे कि अब कभी तुझसे न निकलेंगे? दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं कि चाहे लाख चित्त में विचार उठें, भावनाएं उठें, आकर्षण उठें, मगर कभी अब तुझसे न निकलूंगा? दरवाजे के सामने कसम खाओगे कि व्रत लेता हूं कि अब सदा तुझसे ही निकलूंगा? बात समझ में आ गई तो अयास अपने आप हो जाता है। अयास नासमझ करते हैं। समझदार तो सिर्फ देखते हैं चीजों को। समझदार समझते हैं, नासमझ अयास करते हैं। अयास का मतलब ही यह होता है कि तुम समझे नहीं। समझ गए तो पूछना ही मत कि अयास कैसे करें।
जिसको समझ में आ गया कि सिगरेट पीना जहर है, वह यह नहीं पूछेगा कि अब मैं इसको छोडूं कैसे? अगर हाथ में आधी जली सिगरेट थी, वहीं से गिर जाएगी। बस समझ में आ जाना चाहिए कि सिगरेट पीना जहर है। हां, यह समझ में न आए, सुन तो लो, समझ में न आए, तो सिगरेट हाथ से नहीं गिरती और नये सवाल उठते हैं कि ठीक कहते हैं आप, कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे, आप कहते हैं तो मेरे हित में ही कहते होंगे, अब अयास कैसे करूं? अब सिगरेट को छाडूं कैसे?
.जरा सोचना, यह मूढ़ता का लक्षण है, जो आदमी कहता है मैं सिगरेट को छोडूं कैसे? यह आदमी मूढ़ भी है और बेईमान भी। मूढ़ इसलिए कि इसको एक सीधी सी बात दिखाई नहीं पड़ रही है और बेईमान इसलिए कि यह भी नहीं देखना चाहता कि मुझे दिखाई नहीं पड़ रही है। बेईमान इसलिए कि यह दिखाना यह चाहता है कि समझ में तो मुझे आ गया--मैं कोई नासमझ थोड़े ही हूं--समझ में तो मुझे बात आ गई कि यह काम ठीक नहीं है, अब अयास... । अयास का मतलब है, कल छोडूंगा; पहले दंड-बैठक लगाऊंगा, सिर के बल खड़ा होऊँगा, माला फेरूंगा, मंदिर जाऊंगा, भजन-कीर्तन करूंगा--कल छोडूंगा। और कल कभी आता नहीं। कल कभी आया है, कि आएगा? कल भी यह आदमी यही कहेगा कि अभी क्या करूं, अयास कर रहा हूं। यह जिंदगी भर अयास करेगा। यह दोहरी मूढ़ता हो गई। सिगरेट ही पीता रहता तो कम-से-कम उतना ही समय जाया हो रहा था। अब अयास भी हो रहा है सिगरेट छोड़ने का। यह दोहरा समय व्यय हो रहा है। पहले ही ठीक थी बात। उतना ही काफी था।
तुम देखते हो, तुम्हें पता है, तुम्हें अपनी जिंदगी से पता है, तुम्हें अपने पास-पड़ोसियों की जिंदगी से पता है, लोगों की जिंदगी हो गई वे सिगरेट ही छोड़ने में लगे हैं! जैसे जिंदगी में एक ही काम था करने योग्य-- सिगरेट छोड़ना। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो तीस साल से सिगरेट छोड़ने में लगे हैं। मैं उनसे कहता हूं कि भले आदमी, अब छोड़ ही दो, कम से कम छोड़ना ही छोड़ दो। सिगरेट तो नहीं छूटती, तीस साल खराब हो गए, अब कम से कम छोड़ना ही छोड़ दो, कम से कम शांति से पिओ, उतनी भी शांति तो रहेगी। कम से कम पीने में थोड़ा ध्यान तो रहेगा; मस्ती से पीओ, कुछ बड़ा, बड़ा भारी पाप भी नहीं कर रहे हो, धुआं ही बाहर-भीतर ले जा रहे हो, कोई ऐसा बड़ा पाप नहीं कर रहे हो--दो-चार साल कम भी जिए तो हर्जा क्या है! वैसे ही दुनिया में बहुत भीड़ है। तुम जरा जल्दी स्थान खाली कर दोगे। इतने परेशान न होओ।
और तीस साल हो गए और तुमसे सिगरेट नहीं छूटी! और अगर पचास साल की कोशिश
के बाद सिगरेट छोड़ कर मरेगा और परमात्मा तुमसे पूछेगा कि क्या करके आए हो, तो किस मुंह से कहोगे कि सिगरेट छोड़ कर आए हैं! शर्म आएगी, सिर झुक जाएगा कि पचास साल में सिगरेट छोड़ी। पहले तो पकड़ी, यही मूढ़ता थी; नंबर एक की गलती तो

वही हो गई। पकड़ने को और भी चीजें थीं दुनिया में; सिगरेट पकड़ी! फिर छोड़ने में पचास साल लगा दिए! और तुम सोचते हो छोड़ कर कोई बड़ा गुण हो जाएगा। अक्सर लोग सोचते हैं--चरित्रवान अगर कौन; अगर सिगरेट नहीं पीता, पान नहीं खाता, तंबाकू नहीं खाता--यह चरित्रवान है! ये कोई गुणवत्ताएं हैं? तब तो तुम यह भी कहने लगोगे कल कि मैं पत्थर नहीं खाता, मिट्टी नहीं खाता, ये भी गुण हो जाएंगे।
ख्याल रखना, व्यर्थ की बातों में न तो पकड़ने में कुछ सार है, न छोड़ने में कुछ सार है। लेकिन व्यर्थ की बात को देख लो, तो सार है। पहचान लो, तो सार है। पहचानने में ही बात समाप्त हो जाती है। मैं तुम्हें जो दे रहा हूं सूत्र, वह ऐसा नहीं है कि तुम अयास करो उसका।
कलकत्ता में मैं एक घर में मेहमान था। एक बहुत अदभुत और इस देश के धनपतियों में अपने किस्म के अद्वितीय आदमी थे--सोहनलाल कोठारी। उनका मुझसे बहुत लगाव था। रात मेरे पास बैठे थे, कहने लगे कि अब आपसे तो क्या छिपाना--सत्तर साल तो उनकी उम्र हो गई थी--कहने लगे, मैंने जीवन में चार बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। चार बार? मेरे साथ एक सज्जन और बैठे थे, धार्मिक किस्म के हैं, वे तो बड़े प्रभावित हो गए, उन्होंने तो उनकी तरफ ऐसे देखा जैसे कोई महात्मा की तरफ देखे। मैंने उनको कहाः तुम ज्यादा प्रभावित मत होओ, चार बार लेने का मतलब समझते हो? चार बार लेने का मतलब ही क्या होता है, कि पहली बार लिया, काम नहीं आया; दुबारा लिया, काम नहीं आया; तिबारा लिया, काम नहीं आया; और मैंने कहा, पहले यह तो पूछो कि चौथी बार काम आया या फिर पाँचवीं बार थक गए और फिर व्रत लेना बंद कर दिया?
सोहनलाल ईमानदार आदमी थे। उन्होंने कहाः आप ठीक कहते हैं--उनकी आंख
से आंसू आ गए--कि पांचवीं बार मैंने व्रत नहीं लिया। इसलिए नहीं कि व्रत पूरा हो गया, इसलिए कि पूरा होता ही नहीं था और बार-बार विषाद होता था। व्रत लेकर तोड़ता था तो पश्चात्ताप होता था। अपराध का भाव पकड़ता था। तो मैंने सोचा इस व्रत से लाभ क्या? इससे कोई जीवन में सुगंध तो आती नहीं-- पूरा होता ही नहीं तो सुगंध कहां से आए--और हर बार टूटता है और आत्मनिंदा और आत्मग्लानि पैदा होती है, और दुर्गंध पैदा होती है। अपने प्रति बड़ी निंदा का भाव पैदा होता है, अपनी ही आंखों में गिरता जाता हूं। जब पहली दफा व्रत लिया था तो अपनी आंखों में अपनी थोड़ी इज्जत थी, चार बार के बाद अपनी आंखों में अपनी ही इज्जत खो गई। पाया तो कुछ नहीं, गंवाया बहुत है।
मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी कुछ भूल नहीं। यही हो रहा है, सदियों से यही हो रहा है। ब्रह्मचर्य कोई व्रत नहीं है, अयास नहीं है कि ले ली कसम। कसमों से कहीं जिंदगियां बदली हैं! जिंदगियां समझदारियों से बदलती हैं, कसमों से नहीं बदलतीं। और कसमें लेनेवाले समझदार लोग नहीं होते। कसम लेने का मतलब ही होता है, नासमझ। समझदार आदमी को बात दिखाई पड़ जाती है, कसम क्यों आदमी लेगा?
कसम का आधार क्या है? कसम का आधार यह है कि अभी मुझे लग रहा है कि आप जो कहते हैं, ठीक है अभी अगर कसम ले लूँ तो कसम में बंध जाऊंगा, तो एक मर्यादा रहेगी। अगर थोड़ी देर कसम लेने से चूक गया, तो कहीं समझ फिर खिसक न जाए। इसीलिए लोग साधु-संतों के समागम में, मंदिर-मस्जिदों में, धर्म की प्रभावना में आकर कसम ले लेते हैं। वाह-वाह हो जाती है, लोग तालियां बजा देते हैं। उनकी तालियां, उनकी वाह-वाह, अहंकार को आता मजा, महात्मा का आशीर्वाद, ले ली कसम, उस वत्त उन्हें याद नहीं अपनी, अपने अचेतन की, अपने मन की वृत्तियों की, अपने अतीत की, कुछ भी याद नहीं। यह क्षण का प्रभाव है; घर पहुंचते-पहुंचते अड़चनें शुरू हो जाएंगी। घर पहुंचते-पहुंचते पछताने लगेंगे कि यह मैंने क्या कर लिया? लेकिन अब किससे कहो? अब कहना ठीक भी नहीं है। अब चुपचाप साधो। अब किसी तरह अपने को बाँधो। और जितना तुम बांधोगे, उतना ही तुम पाओगे कि वेग प्रबल होता चला जाता है।
जीवन को बदलने के ये रास्ते नहीं हैं। समझो! ब्रह्मचर्य की तो बात ही
मत उठाना, कामवासना को समझो। काम-वासना की समझ पूरी आ जाए तो एक दिन तुम अचानक पाते हो कि कामवासना की जो तुम पर पकड़ थी, वह खो गई, तुम अब उसकी मुट्ठी में नहीं हो। ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लेना पड़ता, कामवासना एक दिन

तुम्हारे जीवन से सरक जाती है, हट जाती है। हटाना पड़े, तो खतरा है, लौट कर आएगी। क्योंकि जिसको तुमने हटाया है, वह तुमसे बदला लेगी। अपने आप हट जाती है। बोध का जीवन चाहिए। अपनी कामवासना को समझो। इतनी घबड़ाहट भी क्या है, इतनी जल्दी भी क्या है? अपनी काम वासना को ध्यानपूर्वक, विचारपूर्वक, मनोयोगपूर्वक भोगो। महात्माओं को बीच में मत आने दो। अपने अनुभव से ही सीखो। इस दुनिया में कोई किसी दूसरे के अनुभव से न कभी सीखा है, न सीख सकता है। वहीं तुम्हारी भूल हो रही है। तुम दूसरों के अनुभव को अपना अनुभव बनाना चाहते हो। इतनी सस्ती होती दुनिया, तो एक महावीर के मुत्त होते ही सारी दुनिया मुत्त हो गई होती। और एक बुद्ध के मुत्त होते ही सारी दुनिया मुत्त हो गई होती। और एक रज्जब घोड़े से उतर गया था, सब घोड़े से उतर गए होते। रज्जब घोड़े से उतर गया, यह कोई अयास नहीं था।
ख्याल करना, यह एक क्षण में घटी थी घटना। रज्जब ने यह नहीं कहा कि ठीक कहते हैं महाराज, हे दादू दयाल, आप ठीक ही कहते हैं, अब मैं अयास करूंगा। एक दिन जरूर सत्संग में हाजिर होऊंगा। आपने ठीक कहा, विचारूंगा, अयासूंगा, आऊंगा। और बैंडवालों से कहते कि चलो आगे बढ़ो! घोड़े की लगाम और जोर से पकड़ लेते। और अगर जबरदस्ती कोई घोड़े से उतर जाए तो खतरा यह नहीं कि घोड़े से उतर जाए, खतरा यह है कि घोड़े को सिर पर ले ले। घोड़े से उतरने में उतना उपद्रव नहीं है, घोड़े को ऊपर ले लेने में भारी उपद्रव है। वही हो जाता है। विपरीत का अयास शुरू हो जाता है। कामवासना तुम्हें पकड़ती है जोर से, तुम ब्रह्मचर्य का अयास करने लगते हो।
कामवासना पकड़ती है तो कामवासना को समझो! परमात्मा की देन है, जरूर कुछ रा.ज होगा। जरूर वहां कुछ रहस्य का खजाना छिपा है। मैं तुमसे कहता हूं-- तुम्हारी कामवासना में ही तुम्हारे ब्रह्मचर्य का खजाना छिपा है। अगर तुम कामवासना में गहरे उतर जाओ, तो तुम इसी में छिपे हुए ब्रह्मचर्य की सुगंध पाओगे। और तब वह व्रत नहीं होगा, अयास नहीं होगा, सहजयोग होगा। अनुभव से आएगा। चुपचाप आ जाएगा। शोरगुल भी न होगा। किसी को कानोंकान पता भी नहीं चलेगा। तुम भी चौंकोगे कि इतने जोर से जिस वासना ने पकड़ा था, वह ऐसे चली गई जैसे कभी उसने पकड़ा ही न था।
तुम्हें पता है, एक दिन तुम छोटे बच्चे थे और काम-वासना की कोई पकड़ नहीं थी। तुम्हें वे दिन भूल गए। चौदह साल की उम्र में कामवासना का प्रवाह, प्रबल वेग तुम पर आया था। लेकिन उसके पहले भी दिन थे, तब तुम बिना कामवासना के भी जिए हो। फिर वैसे दिन आ सकते हैं। लेकिन जबरदस्ती नहीं आएंगे वे दिन; थोप-थोप कर लाओगे तो नहीं आएंगे वे दिन। जो परमात्मा देता है, उसे जीओ; उसे भोगो; उसमें उतरो; ध्यानपूर्वक, धन्यवादपूर्वक, कृतज्ञता से, और तुम चकित हो जाओगे--तुम्हें जो भी जीवन में मिला है, उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो व्यर्थ हो। अगर आज व्यर्थ है, तो तुम उसी में छिपे हुए कल सार्थक को पाओगे।
ऐसा ही समझो कि किसी आदमी ने अपने घर के बाहर गोबर का ढेर लगा रखा है। बड़ी बदबू फैल रही है। यही गोबर बगीचे में छितरा दो, खाद बन जाए, फूलों में सुगंध हो जाए। यही दुर्गंध कमल में खिलेगी, गुलाब में खिलेगी, चंपा-चमेली- जूही में खिलेगी। यही दुर्गंध अनंत-अनंत सुगंधों का रूप ले लेगी। मैं इसी रूपांतरण का पक्षपाती हूं।
तुम पूछते होः "आपकी बातों का अयास करना कठिन है।"
कठिन क्या, असंभव ही है। क्योंकि अयास पर मेरा जोर ही नहीं है। तुम मेरी बातों का अयास करना ही मत। तुम तो मेरी बातों को समझ लो। मगर तुम्हारी तकलीफ भी समझता हूं, तुम समझने में उत्सुक नहीं हो। जब मैं समझा रहा हूं तब भी तुम भीतर गणित बिठा रहे हो कि इसका अयास कैसे करें? जब मैं तुम्हें समझा रहा हूं तब भी तुम समझने में पूरे डूब नहीं रहे हो। तब तुम मेरे साथ लीन नहीं हो रहे हो। तब तुम भीतर अपना हिसाब बिठा रहे हो कि ठीक है, यह बात जंचती है, इसको ऐसा करके दिखा देंगे। तुम अपने हिसाब के कारण मुझसे चूके जा रहे हो।
यहां लोग आ जाते हैं, जो जल्दी से अपनी नोटबुक निकालकर उसमें नोट करने लगते हैं। तुम पागल हो! नोट करने से क्या होगा? मैं जो कह रहा हूं, उसे

समझो! लेकिन वे सोचते हैं किताब में नोट कर लिया, फुरसत से घर में समझेंगे। मेरे साथ न समझ पाए, फुरसत से तुम घर में समझोगे? मेरे साथ एकरस होकर डूबो। अयास इत्यादि की बकवास छोड़ो। मैं तुम्हें अयासी नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें सहजयोग देना चाहता हूं। मैं तुम्हें रोशनी देना चाहता हूं समझ की, प्रज्ञा की। मैं तुम्हें दीया देना चाहता हूं ध्यान का। तुम पूछते हो नक्शा। तुम कहते हो, हमें ठीक-ठीक बता दो, स्टेशन जाना है, बाएं घूमें, दाएं घूमें, फिर चौरस्ता पड़ेगा, कि इमली का झाड़ आएगा, कि पीपल का झाड़ आएगा, आप हमें नक्शा दे दो। आप हमें ठीक-ठीक दिशा दे दो, फिर हम अयास करते हुए निकल जाएंगे। मैं तुमसे कहता हूं--मैं तुम्हें दीया दूँगा और तुम्हें आंखें दूँगा, ताकि तुम खुद ही राह के किनारे लगे पत्थरों पर लगे निशानों को पढ़ लेना, तीरों को देख लेना; विस्तार की बातें तुम्हें क्यों दूँ?
एक अंधा आदमी कहता है कि मुझे समझा दें शास्त्र में क्या लिखा है। कितने शास्त्र उसे समझाऊँगा? मैं उससे कहता हूं--तेरी आंख का इलाज ही किए देते हैं। फिर तू ही शास्त्र पढ़ लेना। फिर सारा जीवन का शास्त्र तुझे उपलब्ध हो जाएगा।
एक बूढ़ा आदमी था। सत्तर साल का हुआ, उसकी दोनों आंखें चली गईं। होशियार था, अनुभवी था, चतुर था। वैद्यों ने कहा कि चिकित्सा हो सकती है, आंख का ऑपरेशन करवाना होगा। उसने कहाः क्या सार! फिर मेरे घर कमी क्या है? आठ मेरे लड़के, उनकी सोलह आंखे; आठ उनकी बहुएं हैं, उनकी सोलह आंखें--बत्तीस आंखें--दो मेरी पत्नी की आंखें--चौंतीस आंखें; चौंतीस आंखें मेरे पास उपलब्ध हैं, दो मेरी आंखें रहीं कि न रहीं, क्या फर्क पड़ता है? काम चला लूंगा। लेकिन संयोग की बात, कुछ ही दिन बाद उसके महल में आग लग गई। वे चौंतीस आंखें एकदम बाहर हो गईं। उन चौंतीस आंखों को याद भी न आई। आई याद, बाहर जाकर आई। सब भागे! जब जीवन पर संकट हो, तो अपना प्राण कोई पहले बचाना चाहता है। याद ही नहीं आता है। कोई सोच-विचार कर थोड़े ही भागता है। घर में लपटें उठीं, लोग भागे। जो जहाँ से निकल सका, द्वार-दरवाजे-खिड़की से, छलांग लगा कर बाहर हो गया। बाहर जब सब पहुंच गए, सुरक्षित, श्वास ली सुरक्षा की, तब सबको याद आया कि यह क्या हुआ? बूढ़े पिता को हम भीतर ही छोड़ आए। और अब तो भीतर जाना भी कठिन है, लपटें बढ़ गई हैं। अंधा बाप द्वार-द्वार दरवाजे- दरवाजे से टटोल कर निकलने की कोशिश करने लगा और जगह-जगह जलने लगा। उस जलते बाप की दशा का तुम्हें अनुभव है? सोचो थोड़ा, ध्यान करना उस पर।
उस क्षण उसे याद आया कि समय पर अपनी ही आंख काम आती है। मगर अब बहुत देर हो चुकी थी। जब जरूरत न हो तो दूसरों की आंखें भी काम आ सकती हैं। लेकिन जब असली जरूरत हो, तो अपनी ही आंख काम आती है।
मैं तुम्हें तुम्हारी आंख कैसे खुल जाए, बस इसकी प्रक्रिया देना चाहता हूं। अयास इत्यादि से मुझे कोई रस नहीं है। तुम अपने पर थोपो मत। अयास का अर्थ होता है--थोपना, जबरदस्ती ठोकना-पीटना, अपने को किसी तरह ढालना। ऐसा ढाला हुआ चरित्र मेरी दृष्टि में दुष्चरित्रता है। एक सहज आविर्भूत चरित्र होता है। सादगी से जो उठता है, वही साधु है। आरोपित अयास से जो आता है, वह साधु इत्यादि नहीं है। ऊपर-ऊपर साधु है, भीतर असाधु बैठा है; जो कभी भी प्रकट हो जाएगा। लेकिन तुम्हें यही बताया गया है कि अयास करो। हर काम अयास से करना सिखाया गया है।
नहीं, जीवन के परम सत्य अयास से नहीं मिलते। परमात्मा मौजूद है, अयास
की जरूरत नहीं है, सिर्फ समझ लेना चाहिए। अब तुम कहोगे--समझ! समझ से क्या अर्थ है? समझ से केवल इतना अर्थ है कि तुम अपने पिटे-पिटाए विचारों से मन को खाली कर लो। उनसे तुम्हें कुछ लाभ तो नहीं हुआ है, मगर तुम उनको ढोए चले जा रहे हो। उन्हीं की वजह से समझ तुम्हारी दब गई है। अन्यथा हर आदमी बुद्धत्व की क्षमता लेकर पैदा होता है। हर आदमी कोहिनूर हीरा है। लेकिन कूड़ा-करकट में दब गया है। और मजा ऐसा है कि कूड़ा-करकट को तुम समझते हो बड़ा मूल्यवान है। तुम उसे छाती से लगा कर बैठे हो। हीरा गंवा रहे हो, कचरे को छाती से लगा कर बैठे हो। कचरे को छोड़ो।
तुमने जो विचार सुन रखे, हैं, शास्त्रों से पढ़ लिए हैं, पंडित-पुरोहितों से तोतों की तरह कंठस्थ कर लिए हैं, उन सबके कारण तुम्हारा अपना

हीरा नहीं जगमगा पा रहा है। तुमने यह भी सुन रखा है कि अयास करना होगा। नहीं, अयास का कोई प्रश्न नहीं है। घर से कचरा फेंकने का कोई अयास करना होता है! कचरा कचरा दिखाई पड़ा कि तुमने फेंका। फिर तुम जाकर गांव में कोई डुंडी थोड़े ही पीटते हो कि आज मैंने कचरे का त्याग कर दिया, कि देखो, मुझ जैसा महातपस्वी कोई भी नहीं है, कि देखो कितना बड़ा ढेर लगा आया हूं घर के बाहर। तुम्हारे अयासी धन छोड़ देते हैं, मकान छोड़ देते हैं, तो फिर घोषणा करते फिरते हैं कि उन्होंने इतना त्याग कर दिया है।
जो कहता है मैंने त्याग कर दिया है, वह यही कह रहा है कि अभी त्याग की घड़ी नहीं आई थी, अभी कचरा कचरा दिखाई नहीं पड़ा था; अभी कचरे में भ्रांति थी धन की, संपदा की। मैं तुमसे सिर्फ समझने को कहता हूं। सुनो, गुनो; शांत होकर अपने भीतर जो-जो व्यर्थ है, जो कुछ काम में नहीं आया है--अगर काम में ही आ गया तो फिर तो मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं--जो काम में नहीं आया है--तभी तो तुम यहाँ आए हो--अब उसे छोड़ो। लेकिन तुम उसे लेकर यहाँ आ जाते हो। तुम उसके पर्दे की आड़ से मुझे सुनते हो, इसलिए चूक जाते हो; फिर अयास का सवाल उठता है।

कोई हिंदू बना बैठा है, कोई मुसलमान बना बैठा है, कोई जैन बना बैठा है,
वह मुझे सुन रहा है वहां, लेकिन बीच में हिंदू धर्म खड़ा है। बीच में न मालूम कितने महात्मा खड़े हैं; ऋषि-मुनि खड़े हैं, कतार लगी है। एक ऋषि मेरी बात लेता है, वह दूसरे ऋषि को देता है, उसमें कुछ गड़बड़ हो जाती है, वह तीसरे ऋषि को देता है, और गड़बड़ हो गई, तुम तक पहुंचते-पहुंचते बात बिल्कुल विकृत हो जाती है। तुम सीधा सुनो। यह बीच से ऋषि-मुनियों को नमस्कार करो। इनको कहो कि यह कोई बस नहीं है, यहाँ किसलिए "क्यू" लगाये खड़े हो? अपने-अपने घर जाओ। मुझे अकेला छोड़ो। मुझे सीधा-सीधा आमना-सामना कर लेने दो। तुम्हारी बातें सुन चुका बहुत, होना होता हो गया होता। फिर ये ऋषि-मुनि कोई जिंदा भी नहीं हैं। ये सब मुर्दा हैं। ये कभी जिंदा रहे होंगे। और हो सकता है तुम इनको भी सुनने गए हो और इनको भी चूक गए हो, क्योंकि तब दूसरे मुर्दा ऋषि- मुनि तुम्हारे और इनके बीच में खड़े रहे होंगे। ऐसा अद्भभुत खेल है। तुमने बुद्ध को भी सुना है, तुमने महावीर को भी सुना है, लेकिन महावीर
को जब सुन रहे थे तब पतंजलि महाराज बीच में खड़े थे अब तुम मुझे सुन रहे हो अब महावीर बीच में खड़े हैं। कल तुम किसी और को सुनोगे भविष्य में, तब मैं तुम्हारे बीच में खड़ा हो जाऊंगा। लेकिन तुम सीधा-सीधा कब सुनोगे? तुम रोशनी सीधी कब देखोगे? इन आंखों को हटाओ, उधार आंखों को हटाओ। खाली होकर, शांत होकर सुनो। सुनने में से ही तुम्हें सूत्र मिल जाएगा, अयास नहीं करना होगा। मैं तुम्हें तत्क्षण क्रांति देने का आश्वासन दे रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम यहीं से बदल कर जा सकते हो--आज ही, कल तक टालने की जरूरत नहीं--लेकिन तुम कहते हो, आज कैसे? कुछ अयास बताओ आप, तो कुछ अयास करेंगे साल-छह महीने, दो-चार साल, फिर धीरे-धीरे बदलेंगे। तुम बदलना नहीं चाहते। तुम बेईमान हो। तुम बदलना नहीं चाहते, बदलने का थोथा ढोंग रचना चाहते हो। इसलिए तुम पूछते हो--कल। तुम पूछते हो--परसों।
जैन-शास्त्रों में एक कथा है। एक युवक महावीर को सुनकर लौटा। वह अपने स्नानगृह में बैठा है, उसकी पत्नी उबटन लगा कर उसको नहला रही है--पुरानी कहानी है, अब तो काई पत्नी किसी पति को नहलाती नहीं। पति नहा भी रहे हों तो दरवाजा खटखटाती रहती हैं कि निकलो, कब तक बाथरूम में घुसे रहोगे? और भी काम हैं दुनिया में कि बस नहा रहे हो! वे दिन पुराने थे। उबटन लगा रही थी। शरीर को साफ करके नहला रही थी। दोनों की बात होने लगी। पत्नी ने कहा कि महावीर को सुनकर लौटे हो, मेरे भाई भी सुनने जाते हैं; मेरे भाई तो इतने प्रभावित हुए हैं कि वे कहते हैं कि दो-चार साल में संन्यस्त हो जाऊँगा। उसका पति हंसने लगा। उसने कहाः संन्यास और दो-चार साल में! कल का भरोसा नहीं है, क्षण का भरोसा नहीं है! पत्नी ने कहा कि मुझे मालूम है, वे अभी घर में ही रह कर अयास कर रहे हैं। जब अयास पूरा हो जाएगा तो सब छोड़ देंगे। पर भाई ने कहा--मौत पहले आ सकती है, सब अयास पड़ा रह जाएगा। और अयास क्या करना है! अगर बात दिखाई पड़ गई है कि घर में आग लगी है, तो तुम अयास करते हो निकलने

का! तुम कहते हो, निकलेंगे अयास करके? तुम तत्क्षण निकल जाते हो। पति की ऐसी बात--और पत्नियां अक्सर अपने भाई और अपने परिवार और अपने मां और बाप के पक्ष में होती हैं--उसने कहा, तुमने समझा क्या है मेरे भाई को? तुम भी सुनने जाते हो, क्या तुम समझते हो कि इसी क्षण तुम संन्यास ले सकते हो? वह युवक उठ कर खड़ा हो गया। वह दरवाजा खोल कर बाहर निकलने लगा--नग्न था, स्नान कर रहा था--पत्नी ने कहा कहाँ जा रहे हो? उसने कहा--बात खतम हो गई; कोई अयास थोड़े ही करूंगा, बात खत्म हो गई, नमस्कार! पत्नी चिल्लाने लगी कि यह तो मजाक थी, यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा--संन्यास कोई मजाक नहीं; संन्यस्त हो ही गया।
सारा गांव इकट्ठा हो गया यह देखने, इस तरह का संन्यास किसी ने देखा नहीं था। लोग अयास करते हैं, लोग धीरे-धीरे एक-एक कदम चढ़ते हैं--पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी... और जैनों में तो, दिगंबर जैनों में पांच सीढ़ियां होती हैं; दिगंबर होने तक तो पाँचवीं सीढ़ी पूरी जिंदगी लग जाती है। मरते-मरते तक आदमी जाकर नग्न संन्यासी हो पाता है। यह जवान आदमी, अभी कुछ वर्ष पहले इसका विवाह हुआ था! पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए इसको नग्न दरवाजे पर खड़ा देख कर कि तुम्हें क्या हो गया? उसने कहा--कुछ नहीं हो गया, मुझे बात दिखाई पड़ गई; मैं महावीर का अनुगृहीत हूं, उससे भी ज्यादा अनुगृहित अपनी पत्नी का हूं, उसने चोट ठीक मार दी। आज ही सुनकर लौटा था, मन में बात गूँज रही थी और उसने चोट मार दी। उसने कहा कि क्या तुम अभी छोड़ सकते हो? बस बात दिखाई पड़ गई, छोड़ने योग्य जो है या तो अभी छोड़ा जाता है, या कभी नहीं छोड़ा जाता।
इस स्थिति को मैं कहता हूं समझ। फिर कोई पीछे लौटकर देखता है?
तुम पूछते होः "आपकी बातों का अयास करना कठिन है।"
अयास हो ही नहीं सकता। असंभव ही है। पूछने वाले मित्र का नाम बताता है
कि अड़चन कहां से आती होगी, नाम है--चंद्रशेखर शास्त्री। शास्त्र से अड़चन आती होगी। शास्त्र की जानकारी अड़चन डालती होगी। अब यह देखते हैं, यह जो युवक स्नानगृह से निकल कर संन्यस्त हो गया, यह कोई शास्त्री तो नहीं था इतना पक्का है। यह कोई शास्त्रीय ढंग है संन्यास का? इससे ज्यादा अशास्त्रीय ढंग और क्या होगा? मगर इसको ही मैं सहज संन्यास कहता हूं। एक झलक और बात बदल गई। एक हवा का झोंका और धूल उड़ गई।
अयास तो करना ही मत मेरी बातों का, नहीं तो तुम पगला जाओगे। ये बातें अयास की नहीं हैं।
पूछा है--"फिर बताएँ कि ध्यान में किसका स्मरण करना चाहिए"? फिर आया शास्त्र। किसका स्मरण? ध्यान का अर्थ ही होता है कि चित्त शून्य हो जाए। किसका स्मरण तो मतलब हुआ कि फिर भरा रहेगा, फिर कुछ न कुछ भरा रहेगा। किसी के मन में फिल्मी गीत भरा है--"लारे लप्पा"--... और कोई बैठे हरिभजन कर रहे हैं; "लारे लप्पा" से कुछ भिन्न नहीं है। सब शब्द एक जैसे हैं। कोई अंतर नहीं। तुम जब बैठे-बैठे दोहरा रहे हो--राम-राम, राम-राम, राम-राम, तुम क्या कर रहे हो? तुम इतना ही कह रहे हो कि तुम खाली नहीं बैठ सकते। तुम इतना ही कह रहे हो कि चित्त को तुम थोड़ी देर के लिए भी विराम नहीं दे सकते, विश्राम नहीं दे सकते। या तो पैसे की सोचोगे, या बाजार की सोचोगे। अगर बाजार और पैसे की नहीं सोचना, तो कुछ और सोचोगे--मगर सोचना जारी रखोगे।
ध्यान का अर्थ है, सोचना न चले; सोचना छूट जाए। ध्यान में किसी का स्मरण नहीं करना होता। स्मरण की वजह से ही तो ध्यान रुका है, अवरुद्ध है। ध्यान तुम्हारा स्वभाव है, किसी का स्मरण नहीं है। सब स्मरण चला जाए कुछ भी स्मरण न रहे, तुम कोरे रह जाओ, जैसे कोरा दर्पण, जिसमें कोई प्रतिबिंब न बनता हो--न बाजार का, न मंदिर का; न संसार का, न मोक्ष का; न याद आती हो धन की, न याद आती हो धर्म की; कोई याद ही न आती हो, कोरा दर्पण रह गया हो, कोई प्रतिबिंब न बनता हो, तरंग न उठती हो, निस्तरंग दशा का नाम ध्यान है।
अब तुम मुझसे पूछते होः "किसका स्मरण करें?"
मैं तुम्हारा कोई दुश्मन हूं कि तुम्हारा ध्यान खराब करवाऊं? अगर मैं कहूं कि यह स्मरण करो, तो मैं तुम्हारे ध्यान को नष्ट करने का कारण बना। मगर मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं, तुम्हारी तकलीफ यह है कि आदत तुम्हारी ऐसी विकृत हो गई है कि एक क्षण को तुम खाली नहीं हो सकते, तो तुम कहते हो कि

चलो संसार का स्मरण नहीं करेंगे, आप हमें कोई मंत्र ही बता दें--नमोकार मंत्र ही बता दें, कि कोई और मंत्र बता दें... मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं--आलंबन कुछ तो दे दें। कोई सहारा तो चाहिए। मैं कह रहा हूं--सब सहारे छोड़ दो, क्योंकि सब सहारे विजातीय हैं, बेसहारा हो जाओ, उसी बेसहारा अवस्था में तुम्हारे भीतर जो सोया पड़ा है वह जागेगा। जब तक सहारे रहेंगे, वह नहीं जागेगा। मैं कहता हूं--तुम सब बैसाखियां छोड़ दो; तुम कहते हो--यह बैसाखी हम छोड़ देंगे, मगर आप कोई दूसरी तो दो। लकड़ी की नहीं होगी बैसाखी, चलो सोने की दे दो; मगर बैसाखी तो चाहिए ही! क्या फर्क पड़ेगा, लकड़ी की है कि प्लास्टिक की है कि सोने की है कि लोहे की है, बैसाखी बैसाखी है। बैसाखी की वजह से तुम निर्भर रहोगे, गुलाम रहोगे, परतंत्र रहोगे।
बैठ कर तुम राम-राम जपते रहो, कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। मैं तुमसे कहा रहा हूं--अजपा। जपो ही मत, तभी असली जप शुरू होता है। यह बात तुम्हें विरोधाभासी लगेगी, मगर मेरी भी मजबूरी है, यह बात ही ऐसी है, मैं भी क्या करूं? अजपा ही असली जप है। और जब सब नाम खो जाते हैं, तो असली नाम का स्मरण शुरू होता है। और जहां न हरिनाम है और न राम का नाम है, वही हरिभजन है; जहां बिल्कुल चित्त निर्विकार है, उस चित्त-दशा का नाम ध्यान है। ध्यान स्वभाव है।

तीसरा प्रश्न: आपने कल कहा कि प्रेम को तोड़ना मत, क्योंकि प्रेम ही प्रवेश-द्वार है परमात्मा का। मेरा प्रेम सपनों-भरा है, इस बोध से प्रेम टूटने लगता है। क्या करूं कि प्रेम रहे लेकिन सपना टूट जाए?

मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, तुम उस प्रेम की बात नहीं समझ रहे हो। मैं कुछ कह रहा हूं, तुम कुछ समझ रहे हो। तुम्हारा तो प्रेम सपना ही है। तो जैसे ही तुम याद करोगे कि यह सपना है, तुम्हारा प्रेम टूट जाएगा। जो प्रेम याद करने से कि यह सपना है, टूट जाए, जान लेना वह प्रेम झूठा है, अभी असली प्रेम जन्मा नहीं। जो प्रेम यह सपना है ऐसा जानने पर भी न टूटे, सपना टूट जाए और प्रेम बहता रहे, तो जानना कि असली प्रेम का आविर्भाव हुआ है। यही कसौटी है।
जिस बात को सोचने से कि यह सपना है, समाप्त हो जाती हो, जाहिर है कि वह सपना ही थी। तुमने कभी रात प्रयोग करके देखा सपने में--करके देखो, न देखा हो तो; कीमती होगा, गहरे अनुभव में ले जाएगा। रोज रात सोते समय एक बात याद करके सोओ कि आज जब मुझे सपना दिखाई पड़ेगा, तो मुझे एक बात एकदम से याद आ जाएगी कि यह सपना है। ऐसा एक ही रात में नहीं हो जाएगा। लेकिन तीन महीने और छह महीने के बीच, अगर तुम रोज नियम से यह स्मरण करके सोते रहे तो यह घटना घटेगी। और घटेगी तो तुम्हें बड़ा अदभुत अनुभव दे जाएगी। रोज सोते वत्त--और जब मैं कहता हूं सोते वत्त, तो मेरा मतलब यह नहीं कि आधा घंटे पहले, घंटे भर पहले--जब ठीक तुम जागने से नींद में जा रहे हो, जब जागना समाप्त हो रहा है और नींद उतर रही है, जब पहले-पहले नींद के हलके झोंके आने लगें, थोड़े से जागे भी हो और थोड़े से सो भी गए--तंद्रा की दशा है--एकदम सो भी नहीं गए हो, रास्ते पर चलती हुई कारों की आवाज सुनाई पड़ रही है; एकदम सो भी नहीं गए हो, बच्चा रो रहा है, उसकी आवाज दूर से आती हुई मालूम पड़ रही है; लेकिन एकदम जागे भी नहीं हो; मध्य में हो, जागने से सोने की तरफ जा रहे हो, जल्दी ही सब खो जाएगा, अंधकार उतर रहा है, जल्दी ही अंधकार घेर लेगा, यह घड़ी है याद करने की; इस घड़ी में याद करते सोओ कि आज रात जब मुझे सपना आए, तो याद भी आए एकदम से प्रगाढ़ता से कि यह सपना है। तीन और छः महीने के बीच किसी दिन यह याद आएगी। निश्चित आएगी। मन के नियम के अनुसार आनी ही चाहिए। और जिस दिन यह याद सपने में आएगी कि यह सपना है, तुम चकित हो जाओगे, उसी समय, ठीक उसी क्षण सपना टूट जाएगा। उसी क्षण नींद खुल जाएगी। एक क्षण भी नहीं खोएगा।
लेकिन ये वृक्ष हरे, इनके पास तुम बैठ कर सोचते रहो, तीन महीने से छह महीने तक कि यह सपना है; तीन साल से लेकर छह साल तक, या तीन जन्मों से लेकर छह जन्मों तक कि यह सपना है, तो भी वृक्ष विदा नहीं हो जाएगा। तुम्हारे सपना कहने से वृक्ष विदा नहीं हो जाएगा। वृक्ष रहेगा। तुम कितना ही कहो

सपना है, लाख समझाओ कि सपना है, सपना मान कर अगर वृक्ष में से निकलने की कोशिश करोगे--तो सिर टूटेगा। यथार्थ यथार्थ है, तुम्हारे सोचने से बदलता नहीं। हां, लेकिन सपना सपना है, तुम्हारे सोचने से बदल जाता है।
तुमने पूछा हैः "आप कहते हैं प्रेम को तोड़ना मत, क्योंकि प्रेम ही प्रवेश-द्वार है परमात्मा का।"
निश्चित कहता हूं प्रेम को तोड़ना मत, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं प्रेम को सपनों से जोड़ना। सपनों से तो तोड़ना ही, प्रेम को मत तोड़ना, प्रेम के ही दुश्मन मत हो जाना, प्रेम को ही नष्ट करने मत लग जाना। ऐसा तुम्हारे साधु-संन्यासी करते रहे हैं। प्रेम को ही नष्ट कर देते हैं--घबड़ाहट में--क्योंकि उन्हें एक डर पैदा हो गया कि प्रेम जब भी होता है, सपनों में ले जाता है। प्रेम है, तो डर है। जरा सा प्रेम लग जाए और उपद्रव शुरू हो जाता है। छोटा सा प्रेम, छोटा सा लगाव, पूरा संसार उसके पीछे चला आता है।
मैंने सुना है, एक महात्मा मर रहा था। उसके शिष्य ने उससे पूछा कि गुरुदेव, अब आप जाते हैं, कोई आखिरी संदेश? मरते महात्मा ने आंख खोली और कहा--एक बात ख्याल रखना, कभी बिल्ली मत पालना। और वह मर गया। इसकी व्याख्या भी नहीं कर गया कि मामला क्या है! अब यह किसी शास्त्र में लिखा भी नहीं है कि बिल्ली मत पालना। शिष्य ने बहुत शास्त्र खोजे, कहीं इसका सूत्र ही न मिले। सब तरह की जिज्ञासाएं शास्त्रों में हैं, मगर बिल्ली! और यह सज्जन मर भी गए कहकर, अब किससे पूछें?
लेकिन खोज-बीन करता रहा। किसी और बुजुर्ग महात्मा से पूछा, उसने कहा
कि मुझे पता है; मुझे तेरे गुरु की कहानी मालूम है, तू सुन। और ठीक कहा तेरे गुरु ने कि बिल्ली मत पालना, बिल्ली पाल कर तेरा गुरु बरबाद हुआ। उसने कहा--आप कहिए क्या है सूत्र का राज? उसने कहाः तेरा गुरु संन्यस्त हुआ, जंगल गया, सब छोड़ कर, सिर्फ दो लंगोट अपने साथ ले गया। लेकिन एक झंझट आ गई। लंगोट धोकर डालता, चूहे काट जाते। किसी गांव के आदमी से पूछा कि भई क्या करूं, यह बड़ी मुसीबत है? उसने कहाः एक बिल्ली पाल लो। चूहों को खा जाएगी, मामला साफ हो जाएगा। उसने बिल्ली पाल ली, लेकिन अब बिल्ली पालने पर कोई मामला थोड़े ही समाप्त होता है! --यहां मामले समाप्त ही नहीं होते, शुरू भर करो! अब बिल्ली को दूध चाहिए; नहीं तो बिल्ली जाती है। जब देखो तब अल्टीमेटम देकर खड़ी हो जाए कि चले! दूध चाहिए! सो फिर गांव के लोगों से पूछा, उन्होंने कहाः भई, ऐसा करो कि हम अब तुम्हें कब तक दूध देते रहेंगे, तुम एक गाय ही ले लो। हम गाय दे देते हैं सब गांव के लोग मिलकर, तुम जानो तुम्हारा काम। बिल्ली के पीछे गाय आ गई।
अब गाय आ गई तो और झंझट शुरू हुई। घास-पात चाहिए। गांव के लोगों ने कहा--अब हम कब तक तुम्हें घासपात देते रहेंगे? अब यही थोड़े हम करते रहें! वह जो जमीन तुम्हारे आस-पास पड़ी है, तुम उसमें घासपात उगाने लगो। यह सब काम में हरिभजन का समय ही न रहे--घासपात उगाओ, गाय को चराने ले जाओ, गाय को स्नान करवाओ, दूध लगाओ, बिल्ली को पिलाओ, बिल्ली चूहे खाए, तुम्हारे लँगोट बचें... यह लंगोट के पीछे बड़ा लंबा... ! और बचे क्या आखिर में--लंगोट! उसने गांव के लोगों से कहा--भई, यह तो बहुत मुसीबत हो गई! मैं आया था हरिभजन को, ओटन लगा कपास। हरिभजन कब करूं? उन्होंने कहा--तुम ऐसा करो कि गांव में एक विधवा है, उसको वैसे ही काम नहीं है कोई, दो रोटी वह भी खाती रहेगी, वह सम्हाल लेगी तुम्हारी गाय को भी, तुम्हारी खेतीबाड़ी को भी। घास भी उगा देगी, गेहूं भी निकाल देगी, कुछ शाक-सब्जी भी उगा देगी। बात जंची! और दयापूर्ण मालूम पड़ी।
विधवा आ गई। अब और झंझटें बढ़ीं। भली महिला थी, साधु के कभी पैर भी दबा दे, कभी सिर में दर्द हो सिर भी दबा दे; फिर धीरे-धीरे लगाव बन गया। गांव के लोगों ने कहा कि महात्मा जी, आप विवाह करो; क्योंकि यह बात ठीक नहीं; गांव में चर्चा चलती है! विवाह करवा दिया। बच्चे पैदा हो गए। लंगोटी के पीछे! तुम देख रहे हो, कैसा संसार आता गया?

इसलिए, उस महात्मा ने कहाः तेरे गुरु ने तुझे ठीक ही कहा, उसने सार कह दिया, उसकी जिंदगी इसी में गई; वह तुझसे सार की बात कह गया है कि बस, एक भर ख्याल रखना--बिल्ला भर मत पालना!
लोग डर गए हैं प्रेम से, क्योंकि प्रेम बिल्ली पालना है। प्रेम से भयभीत हो गए हैं। क्योंकि जहां प्रेम आया, आसत्ति आई, मोह आया, फैलाव आया, विस्तार आया, भटकाव हुआ। लोग प्रेम से डर गए! तो लोगों ने कहा--प्रेम के स्रोत को ही नष्ट कर दो। प्रेम पाप है। लेकिन जब तुम प्रेम को पाप समझ लोगे, तो फिर परमात्मा को कैसे पुकारोगे? फिर प्रार्थना कैसे करोगे? प्रेमशून्य हृदय प्रार्थना में कैसे खुलेगा? फिर तुम्हारी प्रार्थना मुर्दा होगी; उसमें जीवन नहीं होगा; उसमें हृदय नहीं धड़केगा। फिर तुम कैसे आकाश की तरफ आंखें उठा कर उसे पुकारोगे? तुम्हारी पुकार में प्राण नहीं होंगे। तुम्हारी पुकार नपुंसक होगी। तुम्हारी पुकार में प्राण तो हो सकते हैं प्रेम के कारण ही।
इसलिए मैं तुमसे यह कहता हूंः प्रेम को मार मत डालना। प्रेम को गलत से
मत जुड़ने देना, और प्रेम को जिंदा रखना। जीवन की साधना ऐसी है जैसे तुमने किसी नट को रस्सी पर चलते देखा हो--न बाएं गिरना, न दाएं गिरना, मध्य में सम्हालना। कला है जीवन, बड़ी कला है, बड़ी से बड़ी कला है। और सब कलाएं तो फीकी हैं।
और इस कला का सारसूत्र क्या है?
मध्य में सम्हालना; न इधर गिरना, न उधर; अगर बाएं ज्यादा झुके तो बाएं गिर जाओगे। अगर दाएं ज्यादा झुके तो दाएं गिर जाओगे। अगर प्रेम को हर किसी चीज से लग जाने दिया, तो उलझ जाओगे हजार तरह के उपद्रव में। और अगर इस डर से कि प्रेम उलझाता है, प्रेम को नष्ट ही कर दिया, काट ही डाला, प्रेम की जड़ें ही उखाड़ दीं हृदय से, तो फिर परमात्मा को कैसे पुकारोगे, फिर तलाश कैसे होगी, फिर भजन कैसे जन्मेगा, फिर प्रीति कैसे उमगेगी? प्रार्थना प्रेम का ही तो अभिनव रूप है।
क्या है प्रार्थना? परमात्मा की तरफ लग गया प्रेम प्रार्थना है।
इसलिए मैं तुमसे यह कठिन बात करने को कह रहा हूं, करीब-करीब असंभव लगती है यह बात, लेकिन हो जाती है। खड्ग की धार पर चलना है, दुर्गम है, लेकिन संभव है। और दुर्गम है, इसलिए चुनौती है। और दुर्गम है और चुनौती है, इसलिए आत्मा का इससे जन्म होता है।
प्रेम को गलत से मत जोड़ो। धन से मत जोड़ो, मकान से मत जोड़ो, दुकान से मत जोड़ो, लेकिन मार मत डालना। प्रेम को मुत्त करो व्यर्थ से और समर्पित करो सार्थक को। प्रेम को खींचो पृथ्वी से और उड़ाओ आकाश की तरफ। प्रेम को समेटो क्षुद्र से और विराट के चरणों में अर्पित करो--बनाओ नैवेद्य। प्रेम ही भटकाता है, प्रेम ही पहुंचाता है। इसलिए, बड़े सजग होकर चलने की बात है। जो प्रेम तुमने अपनी पत्नी को दिया है, पति को दिया है, उस प्रेम को परमात्मा तक पहुंचने दो; उस प्रेम को पत्नी पर ही मत रुक जाने दो; क्योंकि पत्नी के पीछे भी परमात्मा छिपा है; थोड़ा और गहरा जाने दो, पत्नी में परमात्मा को थोड़ा तलाशो। तुमने जो प्रेम अपने बेटे को दिया है, उसको वहीं मत रुक जाने दो। प्रेम अगर रुके न और बहता ही चला जाए, तो जैसे हर नदी सागर पहुंच जाती है, हर प्रेम परमात्मा तक पहुंच जाता है। बस रुके न, अटके न। अटके, तो हाथ में कुछ भी नहीं लगता; नदी सूख जाती है, किसी मरुस्थल में खो जाती है; डबरा बन जाती है--गंदगी--और हाथ कुछ भी नहीं आता। बहती रहे, किसी जगह रुके न, यही भत्ति का मार्ग है।
सपने तो जाएंगे। सपने कितने ही प्यारे हों, सपने हैं। कितना ही बचाओ, बचा न सकोगे।
मैंने सुना है, एक आदमी ने जाकर डाक्टर से कहाः डाक्टर साहब, मुझे बराबर यही सपना दीखता है कि मेरे पास से होकर सुंदर-सुंदर लड़कियां तेजी से भागी जा रही हैं।
इसमें तुम मुझसे क्या चाहते हो, डाक्टर ने कहाः मैं इसमें क्या करूं?
उस आदमी ने कहाः आप कोई ऐसी दवा दीजिए कि या तो उन लड़कियों की रफ्तार कुछ कम हो, या मेरी रफ्तार कुछ बढ़ जाए।

सपनों में भी लोग व्यवस्थाएं जुटा रहे हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन आधी रात बीच नींद में आंख खोल कर अपनी पत्नी से बोला... जरा मेरा चश्मा ला! पत्नी चश्मा उठा कर लाई, उसने कहा--आधी रात चश्मे की क्या जरूरत? मुल्ला ने कहाः एक बड़ा ही प्यारा सपना देख रहा हूं। तू तो जानती है कि मेरी आंखें ठीक से देख नहीं पातीं, सब धुंधला-धुंधला मालूम हो रहा है।
लोग सपनों को भी चश्मे लगा कर देख लेना चाहते हैं। सपने भी धुंधले न हों। सपनों को भी तुमने सच समझ रखा है। जितनी देर सच समझ रखा है, वे सच हैं। तुमने उनमें सच्चाई डाल दी है अपनी मान्यता से। फिर तुम बैठे रहो, प्रतीक्षाएँ करते रहो, सपने चलते रहेंगे, हाथ कुछ भी न आएगा।
आना किसी का आज भी मुमकिन नहीं, मगर
क्यों देर से सिंगार किए जा रही हूं मैं?
लोग करते जाते हैंशृंगार, आता कोई नहीं--कोई कभी नहीं आया--मगरशृंगार
कर रहे हैं, कि आता होगा, कोई आता होगा कोई आता ही होगा। तुम्हारी जिंदगी में कौन कब आया? क्या हुआ तुम्हारी जिंदगी में? खाली की खाली है। मगर प्रतीक्षा है, बैठे हैं, राह देख रहे हैं, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, आशा का दीया जलाए बैठे हैं। आशा का दीया ही संसार है। आशा के दीये को फूँक दो। न कोई कभी आया है, न कोई कभी आएगा। भविष्य की तरफ आंखें मत अटकाए बैठे रहो। उसी के कारण तुम वर्तमान से चूके जा रहे हो। और परमात्मा अभी है, यहां है और तुम्हारी आंखें आगे अटकी हैं।
सपने का अर्थ क्या होता है? जो नहीं है, उसमें; जो हो सकता है, उसमें;
जो कभी हो शायद, उसमें; आशा में; और जो है, जो अभी है, जिसने तुम्हें चारों तरफ से घेरा है, बाहर और भीतर जिसका स्पंदन है, उससे तुम चूके जा रहे हो। सपनों के कारण आदमी सत्य से चूका जा रहा है।

मैं तुमसे कहता हूंः सपनों से तो प्रेम को अलग कर लो, लेकिन प्रेम को नष्ट मत कर डालना। सपनों से प्रेम को अलग करो और प्रेम को परमात्मा के चरणों में चढ़ाओ--फूल बहुत चढ़ा चुके तुम परमात्मा के चरणों में; वे फूल तुम्हारे नहीं हैं। इसलिए तुम्हारी प्रार्थनाएं अधूरी रह गई हैं, पूरी नहीं हुईं। तुम्हारा तो एक ही फूल है, अगर कभी चढ़ाना हो तो वह प्रेम का फूल है।
मनुष्य का फूल क्या है? उसका प्रेम। गुलाब की झाड़ी पर गुलाब खिलता है, मनुष्य की झाड़ी पर कौन खिलता है? प्रेम। लेकिन लोग बड़े बेईमान हैं। वे आदमियों को तो धोखा देते ही हैं, परमात्मा को भी धोखा देते हैं। गुलाब की झाड़ी से फूल तोड़ लेते हैं, परमात्मा के चरणों में चढ़ा देते हैं। अपना कुछ लगता ही नहीं। फूल था झाड़ी का, चरण परमात्मा के, अपना कुछ लेना-देना नहीं। और सोचते हैं कि बहुत कुछ काम कर आए, प्रार्थना कर आए, पूजा कर आए! अपना फूल चढ़ाओ--चैतन्य का, प्रेम का, ध्यान का। अपनी जीवन-ऊर्जा को चढ़ाओ। तुम्हारे भीतर सर्वश्रेष्ठ क्या है, उसे चढ़ाओ। तुम्हारे भीतर सर्वश्रेष्ठ प्रेम है, उसको चढ़ाकर ही तुम पाओगे।

आखिरी प्रश्न: मैं यहीं सात साल से औषधालय में अपनी औषधि खोजती रही, लेकिन वह नहीं मिली। अब मैं थकी-हारी आपके पास आई हूं, कृपया मुझे मेरा मार्ग बताएं। प्रभु, मैं घंटों रोती रहती हूं और पूछती हूं कि मैं कौन हूं? क्यों हूं? सक्रिय-ध्यान में भी वर्षों चीख-चिल्ला कर यह प्रश्न पूछती रही, लेकिन आपने उत्तर नहीं दिया; या हो सकता है कि उत्तर मुझ तक नहीं पहुंचा। मेरी स्थिति कृष्ण की गोपियों जैसी है, जिन्हें कृष्ण को छोड़ कर कहीं भी दिल नहीं लगता था। मेरे लिए तो बस आप ही हैं। मैं क्या करूं?

पूछा है कुंदन ने।
"जन रज्जब ऐसी विधि जानै, ज्यूं था त्यूं ठहराया।"

इस सूत्र को हृदयंगम करो। इसे उतर जाने दो भीतर। और सब अपने से हो जाएगा। खोज में ही भूल है। खोज में ही भ्रांति है। जो परमात्मा को खोजने निकलेगा, उतना ही दूर निकलता जाएगा। क्योंकि परमात्मा दूर नहीं है कि खोजने जाओ, परमात्मा पास है, खोज में तुम दूर निकल जाते हो अगर परमात्मा पास है, तो कहीं जाना नहीं है--जागना है। जाने की भाषा छोड़ो।
कुंदन कह रही हैः "मैं यहां सात साल से औषधालय में अपनी औषधि खोजती रही।"
खोज के कारण ही चूकती रही। खोजोगे, भटकोगे। मगर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि खोज नहीं होनी चाहिए, खोज करनी होती है, मगर खोज से परमात्मा मिलता नहीं। खोज करनी होती है; फिर एक दिन समझ कर खोज छोड़ देनी होती है; तब मिलता है। यह मत समझ लेना कि जिसने खोज नहीं की, उसको मिल ही गया। बहुत हैं जिन्होंने खोज ही नहीं की, उनको नहीं मिला है। जिन्होंने खोज नहीं की, उन्हें तो मिलेगा ही नहीं, क्योंकि उनके भीतर अभीप्सा नहीं जगी है। उनके भीतर प्रेम का आविर्भाव नहीं हुआ है। उनकी आंखों में अभी आंसू भी नहीं आए, अभी पुकार भी नहीं पैदा हुई, अभी लपट नहीं उमगी। और, जो खोजते हैं, वे भी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि वे खोज में ही संलग्न हो जाते हैं। उनकी सारी जीवन-ऊर्जा खोज में ही लग जाती है। खोज का मतलब ही यह होता है कि परमात्मा दूर है, हमने ऐसा मान लिया। खोज का मतलब है, हमने मान लिया कि परमात्मा को खो दिया है। कुंदन! परमात्मा को खोया कब? जैसे मछली ने सागर नहीं खोया है, ऐसे हमने परमात्मा नहीं खोया है। और मछली तो चाहे तो सागर खो भी सकती है, क्योंकि सागर के अतिरित्त और स्थान भी है, हम तो चाहें तो भी सागर को खो नहीं सकते, क्योंकि परमात्मा के अतिरित्त और कोई स्थान नहीं है। हम उसमें ही जन्मते, उसमें ही जीते, उसमें ही समाप्त होते।
अब खोज छोड़ो, खोज काफी हो चुकी। अब घड़ी आ गई खोज छोड़ देने की। अब तो खोज
को भी जाने दो।
"मैं यहीं सात साल से औषधालय में अपनी औषधि खोजती रही।"
तुम रुग्ण कब हो, बीमार कब हो, औषधि की जरूरत क्या है? समस्या ही नहीं
है कोई। इसलिए समाधान भी नहीं मिलेगा। समस्या झूठी है और सब समाधान झूठे हैं। सब प्रश्न बनावटी हैं, सब उत्तर भी।
"अब मैं थकी-हारी आपके पास आई हूं।"
थक कर और हार कर ही कोई आता है। यही खोज का लाभ है। थकाती है, हराती है-- हारे को हरिनाम। जब कोई खोज-खोज कर, खोज-खोज कर थक कर गिर जाता है, उसी क्षण मिलन हो जाता है। जब तक खोज जारी है, तब तक अहंकार जारी है। तब तक यह भाव जारी है कि मैं कुछ कर लूंगा। मेरे किए कुछ हो जाएगा।
खोज से हारने का क्या अर्थ होता है? कि मेरे किए कुछ भी न होगा। मैंने
सब किया, कर लिया जो हो सकता था, सब, फिर भी कुछ नहीं होता। इस आत्यंतिक विषाद की घड़ी में, असहाय कोई गिर पड़ता है, ढेर हो जाता है। उसी घड़ी मिलन हो जाता है। क्योंकि उसी घड़ी तुम मिट गए और परमात्मा ही शेष रह जाता है। जब तक खोज है, तब तक खोजी है। जब खोज बिल्कुल हार गई, आत्यंतिक रूप से हार गई, परिपूर्ण रूप से हार गई, खोजी गिर गया, फिर परमात्मा के सिवाय और कौन है? कुंदन, ठीक हुआ। अब ठीक घड़ी करीब आ गई।
"अब मैं थकी-हारी आपके पास आई हूं। कृपया, मुझे मेरा मार्ग बताएं।"
अब तो मार्ग की कोई जरूरत नहीं है। यही मार्ग है। अब इसी हार में पूरी तरह डूब जाओ। अब खोज की बात को फिर मत उठाना। अब प्रश्न और खोज इत्यादि सब जाने दो। अब डूबो! और इसी डुबकी में उबर जाओगी। धन्यभागी हैं वे जो डूब जाते हैं। क्योंकि डूबने में ही उबरना है। यह मंजिल कुछ ऐसी है कि मझधार में डूबने से मिलती है।
"मैं घंटों रोती रहती हूं और पूछती हूं कि मैं कौन हूं? क्यों हूं?"
इसका कोई उत्तर नहीं मिलेगा। इसका कोई उत्तर नहीं है। और जो भी उत्तर मिलेंगे, सब झूठ होंगे। तब तुम्हें हैरानी होगी। तो फिर यह क्यों कहा है ज्ञानियों ने कि पूछो कि मैं कौन हूं? यह इसीलिए कहा है कि पूछो, पूछो, थको, हारो। यह प्रश्न ऐसा है, इसका कोई उत्तर नहीं है। क्या तुम सोचते हो कोई उत्तर मिलेगा? कि पूछ रहे हो, मैं कौन हूं, उत्तर आएगा कि तुम दुकानदार हो,

कि तुम डॉक्टर हो, कि तुम पुरुष हो, कि तुम स्त्री हो, कि तुम सुंदर हो, कि तुम बुद्धिमान हो, कि कुरूप हो, कि बुद्धू हो। कोई उत्तर आएगा? कोई उत्तर नहीं आएगा। प्रश्न पूछते-पूछते-पूछते-पूछते धीरे-धीरे प्रश्न भी खो जाएगा, एक सन्नाटा रह जाएगा। वही सन्नाटा उत्तर है, वही शून्य उत्तर है। बाकी सब उत्तर बेकार हैं।
मैंने सुना है, रोज एक महाशय पान की दुकान में जाते, दुकानदार का अभिवादन करते, काउंटर पर रखे लाइटरों में से एक से अपनी सिगरेट सुलगाते और फिर अभिवादन करके चले जाते। यह क्रम कई सप्ताह चला, तो दुकानदार अधीर हो उठा। एक दिन जैसे ही उन महाशय जी ने दुकान में प्रवेश किया, तो उसने पूछाः जरा यह तो बताइए कि आप हैं कौन? आप मुझे नहीं जानते? मैं वही तो हूं जो रोज आपके यहाँ आकर सिगरेट सुलगाता हूं।
सब उत्तर ऐसे ही होंगे। किसी का बेटा हूं, किसी का पति हूं, किसी की पत्नी हूं, किसी की मां हूं; किसी धर्म में पैदा हुआ हूं; किसी देश में पैदा हुआ हूं; कोई रंग, कोई रूप। यह सब ऊपर-ऊपर हैं। तुम्हारा न तो कोई नाम है, न तुम्हारा कोई पता है। तुम अनाम हो। परमात्मा भी अनाम है। तुम परमात्मा हो। खोजने वाले में ही जिसकी खोज हो रही है वह छिपा है। तुम बाहर तलाश रहे हो, वह भीतर हंस रहा है। तुम बाहर टटोल रहे हो, वह भीतर बैठा मजा ले रहा है। वह यह देख-देख कर हंस रहा है कि खूब मजा चल रहा है--मैं इधर भीतर बैठा हूं, इधर बाहर खोज चल रही है। परमात्मा तुम पर हंस रहा है। तुम छोड़ो सब खोज। यह प्रश्न भी जाने दो।
"सक्रिय-ध्यान में भी वर्षों चीख-चिल्ला कर यह पूछती रही, लेकिन आपने उत्तर नहीं दिया।"
उत्तर है ही नहीं। जो भी उत्तर दिए जाएंगे, व्यर्थ होंगे।
"या हो सकता है उत्तर मुझ तक नहीं पहुंचा।"
उत्तर है ही नहीं। पहुंच जाता तो गलत उत्तर पहुंचता।
कुंदन ठीक रास्ते पर है। गलत रास्तों पर उत्तर मिल जाते हैं; ठीक रास्तों पर सब प्रश्न खो जाते हैं, उत्तर नहीं मिलते। एक ऐसी अवस्था आ जाती है चेतना की जिसको हम कहें--निष्प्रश्न। वही समाधि है।
"मेरी स्थिति कृष्ण की गोपियों जैसी है, जिन्हें कृष्ण को छोड़ कर कहीं
भी दिल नहीं लगता था। मेरे लिए तो बस आप ही हैं। मैं क्या करमं?"
अब और करने को कोई सवाल भी न रहा। प्रेम का आविर्भाव हो जाए, फिर कुछ
और करने की बात नहीं, फिर सब कृत्य छोटे हैं, फिर कुछ भी करोगे तो प्रेम से ऊपर ले जाने वाला नहीं हो सकता। और सब विधि-विधान उनके लिए हैं जिनके जीवन में प्रेम का अभाव है। वे सब छोटी बातें हैं। कामचलाऊ बातें। योग है, तप है, त्याग है; मगर उनके लिए है जिनके जीवन में प्रेम नहीं है। जिनके जीवन में प्रेम है, उन्हें फिर किसी और चीज की जरूरत नहीं। सब योग फीके, सब विधि- विधान फीके। बस अब इस प्रेम में ही डूब जाओ।
इसी घड़ी की तरफ तुम्हें लाने की कोशिश में लगा हूं। और मुझसे जो प्रेम है, उसे मुझसे ही प्रेम मत बना लेना, अन्यथा अटकाव हो जाएगा। मेरे पार देखो। मुझे ज्यादा से ज्यादा द्वार समझो। द्वार पर कोई अटकता नहीं। द्वार से देखता है दूर आकाश, आकाश में उड़ते हुए पक्षी, दूर चांद-तारे, आकाश में उड़ते हुए शुभ्र बादल। द्वार पर कोई अटकता नहीं। मुझ पर अटकना मत। मैं बस द्वार हूं। नानक ने गुरु को द्वार कहा है; यह ठीक कहा है, और इसलिए नानक ने अपने मंदिरों को गुरुद्वारा कहा है। ठीक कहा है, द्वार ही है मंदिर। मंदिर में परमात्मा नहीं है, सिर्फ द्वार है। परमात्मा तो इस विराट में छाया हुआ है। द्वार पर मत अटक जाना, द्वार के पार देखो, द्वार का अतिक्रमण करो।
ठीक घड़ी आ गई। खोज कर ली बहुत, प्रश्न पूछ लिया बहुत, अब प्रेम में मग्न होकर नाचो, अब गुनगुनाओ, अब गीत गाओ; क्योंकि परमात्मा उपलब्ध ही है। अब परमात्मा को जीओ।
बड़ी हिम्मत चाहिए परमात्मा को जीने के लिए। और उसी हिम्मत के लिए मैं तुम्हें प्रेरणा दे रहा हूं। मेरी सारी प्रेरणा यही है कि तुम इसी क्षण परमात्मा को जीना शुरू करो; तुम यह मत कहो कि हम कल खोजेंगे और परसों जीएंगे। तुम में अगर हिम्मत हो तो तुम इसी क्षण परमात्मा के साथ एक हो।

तुम एक हो ही, सिर्फ हिम्मत की कमी के कारण घोषणा नहीं कर पाते। डर जाते हो, घबड़ा जाते हो। हो जाने दो घोषणा अब!
जो बीते तुम्हारे पास
उन क्षणों की
वह अपूर्व सुवास
अब भी मेरे पास
कैसे कहूं
कि वे क्षण बीत गए
वे क्षण तो
जीत गए
वे क्षण ही बीते हैं
जो तुमसे रीते हैं
तुम्हारे पास बीते क्षण
बीतते नहीं
जीतते हैं
विधि को
विधि के विधान को।
मेरे पास तुम्हें परमात्मा की थोड़ी सन्निधि मिले तो मेरा काम पूरा हुआ। तुम्हें थोड़ी सुवास मिले, एक किरण मेरे द्वार से तुम तक परमात्मा की पहुंच जाए, बस एक किरण तुम्हारे हाथ आ जाए, तो पूरा सूरज तुम्हारे हाथ आ जाएगा। फिर एक किरण के धागे को पकड़ कर आदमी सारे सूरज को पा ले सकता है। पहली किरण ही असली सवाल है।
कुंदन! ठीक घड़ी आ गई। इस अवसर को खो मत जाने देना। अब फिर खोज शुरू मत
कर देना। अब फिर प्रश्न मत पूछने लगना। छोड़ो प्रश्न! छोड़ो खोज! इसी क्षण से परमात्मा को जीना शुरू करो। नाचो, उत्सव मनाओ, परमात्मा उपलब्ध है।
आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
तीसरा प्रवचन

म्हारो मंदिर सूनो राम बिन

संतो, ऐसा यहु आचार।
पाप अनेक करै पूजा में, हिरदै नहीं विचार।।
चींटी दस चौके में मारें, घुण दस हांडी माहीं।
चाकी चूल्है जीव मारै जो, सो समझै कछु नाहीं।।
पाती फूल सदा हीं तोड़ैं, पूजन कूं पाषाण।
छार पतंगा होहिं आरती, हिरदै नहीं बिनाण।।
सगले जनम जीव संहारै, यहु खोटे शटकर्मा।
पाप प्रपंच चढ़ै सिरि ऊपरि, नाम कहावै धर्मा।।
आप दुखी औरां दुखदायक, अंतरि राम न जान्या।
जन रज्जब दुख देहि दुष्टि बिन, बाहरि पाखंड ठान्या।।

म्हारो मंदिर सूनो राम बिन, बिरहिण नींद न आवै रे।
पर-उपगारी नर मिलै, कोई गोविंद आन मिलावै रे।।
चेती बिरहिण चित न भाजै, अविनासी नहिं पावै रे।
यहु बिवोग जागै निसबासर, बिरहा बहुत सतावै रे।।
बिरह बिवोग बिरहिणी बींधी, घर बन कछु न सुहावै रे।
दह दिसि देखि भयो चित चकरित, कौन दसा दरसावै रे।।
ऐसा सोच पड़ा मन माहीं समझि-समझि धूधावै रे।
बिरहबान घटि अंतरि लाग्या, घाइल ज्यूं घूमावै रे।।
बिर-अगिन तन-पिंजर छीनां, पिवकूं कौन सुनावै रे।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन पल-पल बज्र बिहावै रे।।

"म्हारो मंदिर सूनो राम बिन।"
मंदिर राम के बिना सूना रहेगा ही। मंदिर को राम के बिना भरने का कोई उपाय नहीं। सब उपाय हार जाते हैं। धन से भरो, पद से भरो, प्रतिष्ठा से भरो, भरता ही नहीं। मंदिर राम से ही भरेगा। जन्मों-जन्मों की चेष्टाएं सिवाय असफलता के और हाथ में कुछ लाती नहीं। इस जीवन का सारा अनुभव असफलता है। इस जीवन में आशाएं बहुत बनती हैं, सपने बहुत उमगते हैं, फल कभी नहीं लगते, सब निष्फल हैं। रोओ, गाओ, तड़फो, दौड़ो, भागो, आपा-धापी करो, झगड़ो, संघर्ष करो, पहुंचोगे कहीं भी नहीं। राम के बिना पहुंचने को कोई जगह ही नहीं है।
और मजा ऐसा है कि हर आदमी राम को ही खोज रहा है--उसे पता हो, या पता न हो। जब तुम किसी के प्रेम में पड़े हो तो वस्तुतः तुम राम के ही प्रेम में पड़े हो। इसीलिए तो हर प्रेम विषाद में रूपांतरित हो जाता है। क्योंकि राम मिलता नहीं। तुमने जब धन चाहा है तो राम ही चाहा है। फिर धन तो मिल जाता है, राम मिलता नहीं। इसलिए हाथ खाली-के-खाली रह जाते हैं। और धन को पाने में जीवन गया; उसका विषाद, उसकी पीड़ा, उसका तिक्त स्वाद जीभ पर छूट जाता है। तुमने जो भी चाहा है अब तक, तुम्हारी चाह जाने-अनजाने राम की ही चाह है। धन्यभागी हैं वे जिन्हें अपनी चाह की ठीक-ठीक पहचान हो जाती है। क्योंकि उसी ठीक पहचान से ठीक दिशा का जन्म होता है।
मेरे संन्यास की यही परिभाषा है। जिसकी खोज तुम कर रहे हो, उसकी ठीक-ठीक पहचान। अंधेरे में मत टटोलो, साफ-साफ हृदय में यह बात हो जानी चाहिए कि क्या मेरे मन के मंदिर को भरेगा? धन? तो सोचो, कि धन मिल जाएगा, मन भरेगा? जरा कल्पना ही करके देखो, सारी दुनिया का धन मिल गया, मन भरेगा? जो बुद्धिमान हैं, वे कल्पना से ही सीख लेते हैं। जो मूढ़ हैं, वे बार-बार अनुभव से भी नहीं सीखते है। मूढ़ और बुद्धिमान का यही भेद है। बुद्धिमान दूसरों के अनुभव से भी सीख लेता है, मूढ़ अपने अनुभव से भी नहीं सीखता। तुमने कितनी बार कितने द्वारों पर दस्तक दी है, द्वार खुले भी हैं-- ऐसा नहीं कि द्वार नहीं खुले, द्वार खुले भी हैं-- लेकिन घर सदा खाली पाया है।
म्हारो मंदिर सूनो राम बिन।

अब जागो! अब उसके ही द्वार पर दस्तक दो! ये हाथ थक गए दस्तक देते-देते,
ये पैर भी थक गए भटकते-भटकते, यह भटकाव लंबा है, जन्मों-जन्मों का है, --किन-किन चांद-तारों पर भटके हो; किन-किन मार्गों पर खोजा है; किन-किन घाटों का पानी पिआ; प्यास कहां बुझी? प्यास बढ़ती चली गई है। थोड़ा सोच कर देखो। बचपन में आशा तो होती है कि शायद उपलब्धि होगी, जीवन तृप्ति को पाएगा। जवानी में आशा बड़ी प्रगाढ़ हो जाती है, प्रज्वलित हो जाती है। बुढ़ापा आते-आते पता चलना शुरू होता है फिर एक जीवन व्यर्थ हुआ; फिर एक दौड़ व्यर्थ गई; फिर मंजिल न मिली; फिर मार्ग की धूल ही हाथ लगी।
जो बुद्धिमान है, जल्दी देख लेता है। थोड़े ही अनुभव से पहचान लेता है। दस-पांच दरवाजों पर दस्तक देकर देख लेता है। मजा ऐसा है कि दरवाजा न खुले तो दुख, दरवाजा खुले तो दुख।
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ कहता था-- दुनिया में दो ही तरह के दुख हैं। तुम जो चाहो वह न मिले, यह एक तरह का दुख। और तुम जो चाहो वह मिल जाए, यह दूसरी तरह का दुख। न मिले, स्वभावतः दुख। आशा जगती रहती है कि मिल जाता तो सब तरह तृप्ति हो जाती। पर मिल कर तुम सोचते हो तृप्ति होती है? जिनके पास धन है, उनकी आंखों में जरा झांको। जिनके पास पद है, प्रतिष्ठा है, जरा उनके हृदय में टटोलो। पूछो और तुम पाओगे--हारे हुए तो हारे हुए हैं ही, जीते हुए भी हारे हुए हैं। असफल तो असफल हैं ही, सफल भी असफल हैं। और ध्यान रखना, असफल की असफलता में तो थोड़ी आशा भी होती है, सफल की असफलता में आशा भी बुझ जाती है:
जब कभी मुझको तेरा ख्याल आ गया
मेरे चेहरे की सारी थकान धुल गई
मेरे दिल में खुशी के कंवल खिल गए
मेरे एहसास में चांदनी घुल गई

और फिर एक मचलते हुए जोश से
चल पड़ा मैं तेरी जुस्तजू के लिए अपनी वामांदः आंखों की महराब में कितनी गुलरंग शमाए फरोजां किए

जाने कब तक तेरे रंगे-रुखसार को आर्जूओं के खाकों में भरता रहा ले के तखईल के बाजुओं में तुझे गीत गाता रहा, रक्स करता रहा

यूं ही गाते हुए, रक्स करते हुए मैं भटकता रहा कितने सेहराओं में रूह में तो उमंगें महकती रहीं
और कांटे खटकते रहे पांओं में

मुद्दतों तक तुझे ढूंढते-ढूंढते आ ही पहुंचा बिलाखिर मैं तेरे करीं आँख उठाकर जो देखा तेरी शक्ल को
मुझको डसने लगा मेरा ख्वाबे-हसीं

क्या यही वे भयानक खदो-खाल थे
जो मेरे अज्म को गुदगुदाते रहे
जिनकी खातिर मेरे नौजवां वलवले
जिंदगी भर मसाइब उठाते रहे
जब तुम्हें मिलेगा धन, तो तुम सोचोगे--क्या यही थे ठीकरे, जिनके लिए मैंने सब गंवाया, सब दांव पर लगाया। जब तुम पा लोगे अपनी प्रेयसी को और अपने प्रेमी को, तो यह सवाल उठेगा क्या यही वे भयानक खदो-खाल थे? क्या इसी मिट्टी के रूपरंग के लिए मैं दौड़ा था? क्या यही आकृतियां, जीवन भर दांव

इनके लिए ही लगाया था? "क्या यही वे भयानक खदो-खाल थे, जो मेरे अज्म को गुदगुदाते रहे"। जिन्होंने मेरी कल्पना को गुदगुदाया और आशाओं को जगाया और सपने जलाए, क्या यही है वह रूप, यही रंग, यही सौंदर्य? "जिनकी खातिर मेरे नौजवां वलवले, जिंदगी भर मसाइब उठाते रहे।" इन्हीं के लिए मैंने मुसीबतें उठाईं, यात्राएं कीं, कांटों से भरे रास्तों पर चला; इन्हीं के लिए मैंने जीवन को गंवाया!
सफल आदमी को यह सवाल उठना शुरू होता ही है। सफल आदमी से ज्यादा असफल आदमी कोई और नहीं। सिकंदर जितना असफल मरता है, भिखमंगे नहीं मरते। भिखमंगों के तो अभी आशाओं के, सपनों के जाल जीवित होते हैं। धनी आदमी जितना निर्धन हो जाता है, उतने निर्धन नहीं होते। क्योंकि निर्धन को तो अभी आशा होती है कि मिला, मिला। निर्धन का भविष्य होता है। धनी का कोई भविष्य नहीं होता। धनी का सारा भविष्य अंधकार है। जिनके पास पद नहीं हैं, वे तो अभी दौड़ सकते हैं, उमंग से, लेकिन जिनके पास पद है, वे कहां जाएँ? आगे कोई सीढ़ियाँ न रहीं; आगे कोई सोपान न रहे, अब ढलान ही ढलान है, अब कोई चढ़ाव न रहा। और चढ़ाव के शिखर पर बैठकर कुछ हाथ आया नहीं।
इस जिंदगी का एकमात्र स्वाद है-- असफलता। और जो इस असफलता को ठीक से देख लेता है, पहचान लेता है, उसी व्यक्ति के जीवन में धर्म का प्रारंभ होता है। धर्म का प्रारंभ सोच-विचार से नहीं होता। धर्म का प्रारंभ लोभ-मोह-भय से नहीं होता। और अक्सर इसी तरह के लोग तुम्हें धार्मिक दिखाई पड़ते हैं। किसी की मौत करीब आने लगी, वह राम-राम जपने लगता है। यह असली धर्म नहीं है। यह सिर्फ मौत का भय है। यह भगवान का सहारा पकड़ रहा है, मौत से जूझने को। कोई बीमार है, वह मंदिर जाने लगता है। यह तलाश भगवान की नहीं है, स्वास्थ्य की तलाश भले हो। किसी के पास पद नहीं है, वह प्रार्थनाएँ करता है, पूजा करता है, यज्ञ-हवन करता है--पद मिल जाए। किसी के पास बेटा नहीं है, बेटा मिल जाए। यह धर्म नहीं है। धर्म का जन्म ही इस बात से होता है, सच्चे धर्म का जन्म इस बात से होता है कि यह पूरा जीवन एक असफलता है-- निरपवाद असफलता। यहां सफल न कभी कोई हुआ है, न कभी कोई होगा। धार्मिक आदमी परमात्मा से सफलता की प्रार्थना तो कर ही नहीं सकता। क्योंकि धर्म की शुरूआत ही इस बात से होती है कि सफलता होती ही नहीं--न कभी हुई है, न कभी होगी; सफलता एक झूठ है। इस परम विफलता से धर्म का जन्म होता है। और अगर इस परम विफलता से धर्म का जन्म हो, तो रूपांतरण तत्क्षण हो जाता है। एक क्षण में ज्योति भभक उठती है। अगर तुम धर्म के रास्ते पर चल रहे हो और क्रांति नहीं हुई, तो यही समझना कि धर्म से तुम्हारी अभी पहचान ही नहीं हुई। तुम किसी और ही बात को धर्म समझते रहे होगे। झूठे धर्म प्रचलित हैं। झूठे धर्म में बड़ा आकर्षण है, क्योंकि झूठे धर्म सस्ते होते हैं। झूठे धर्म तुमसे कुछ मांगते ही नहीं। झूठे धर्म तुमसे दांव पर लगाने को कुछ कहते ही नहीं। झूठे धर्म तो उन्हें आश्वासन देते हैं कि तुम्हें यह मिलेगा, वह मिलेगा।
कल एक मित्र ने पूछा है; लिखा है कि मैं मुमुक्षु हूं; और यहां संन्यासियों और मुमुक्षुओं में एक भेद देख कर मन में बड़ा अपमान होता है। ऐसा भेद नहीं होना चाहिए।
मुमुक्षु का अर्थ जानते हो? उसका अर्थ होता हैः मोक्ष का आकांक्षी। मोक्ष के आकांक्षी को मान-अपमान का सवाल नहीं उठता। मान-अपमान का जिसे सवाल उठ रहा है, वह अभी संसारी है; अभी मुमुक्षा का उसे कुछ पता नहीं; अभी मुमुक्षा की बूंद भी नहीं उसमें पैदा हुई। और फिर पूछा है कि क्यों भेद है मुमुक्षु, साधारण मुमुक्षु और संन्यासी में? भेद है, इसलिए भेद है। मजबूरी है। तुम पूछते नहीं स्त्री-पुरुष में क्यों भेद है? भेद है, इसलिए भेद है। आदमी-वृक्षों में क्यों भेद है? भेद है इसलिए भेद है। संन्यासी का अर्थ हैः जिसने कुछ दांव पर लगाया। संन्यासी का अर्थ हैः जिसने हिम्मत की है, साहस किया है। साहस जिसने किया है, साहस करने के कारण ही भेद हो गया। तुम हिम्मत भी नहीं करना चाहते, साहस भी नहीं करना चाहते, सम्मानित भी होना चाहते हो। मुमुक्षु तुम नहीं हो अभी। कैसा मान-अपमान? मुमुक्षु का अर्थ ही यह है मैं कि सब दौड़ व्यर्थ है; अब कैसा मान-अपमान?

फिर अगर मान-सम्मान चाहिए तो कहीं और जाओ। फिर किन्हीं झूठे मंदिरों में तलाशो। यहां तो मूल्य उसका है जो जुआरी है, जो दावँ पर लगाने की हिम्मत रखता है; जिसे यह बात दिखाई पड़ गई है कि इस भागदौड़ में कुछ सार नहीं है; जिसे असार असार की भाँति दिखाई पड़ गया है और जो सार की तलाश में चल पड़ा है। अब चाहे जो भी कीमत चुकानी पड़े।
दुनिया में सस्ते धर्म प्रचलित हो जाते हैं, क्योंकि लोग कीमत नहीं चुकाना चाहते। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई, कोई जैन। न तो कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान, न कोई ईसाई, न कोई जैन, सब नाम हैं। जन्म से कुछ संस्कार पड़ गए हैं। किसी घर में तुम पैदा हुए, यह संयोग की बात है। बचपन से कुछ बातें सुनी हैं, यह संयोग की बात है। वे बातें मन को पकड़ गई हैं, ये संयोग की बात है। उन बातों के कारण तुम एक मंदिर में जाते हो, मैं दूसरे मंदिर में जाता हूँ, यह संयोग की बात है। न तुम मंदिर में गए, न मैं मंदिर में गया। मंदिर में तो वह जाता है जिसके सामने यह संसार व्यर्थ हुआ-- संस्कार के कारण नहीं, इस सत्य की प्रतीति के कारण। मंदिर में तो वह जाता है जिसके जीवन में राम की तलाश शुरू हुई।
राम न हिंदू है, न मुसलमान; न गीता में है, न कुरान में, राम तो खोजने वाले हृदय में है, आतुर हृदय में है, अभीप्सा से भरी आत्मा में है। जिसको यह दिखाई पड़ा कि मेरा मंदिर सूना है, राम के बिना सूना है और भरने का कोई और उपाय नहीं; कोई परिपूरक नहीं है, कोई सब्स्टीट्यूट नहीं है जो मैं राम की जगह रख लूं। सब रख कर देख लिया और मंदिर खाली का खाली रहा है; भरता ही नहीं। जिसे ऐसी प्रतीति हुई, उसका विषाद समझो, उसकी पीड़ा समझो, उसके आंसुओं को देखो। उन आंसुओं से, उस पीड़ा से, उस विषाद से वास्तविक धर्म का जन्म होता है। नहीं तो पाखंड पैदा होता है।
पुरोहित का धंधा ही तुम्हें पाखंड देना है। तुम सस्ता धर्म मांगते हो, कोई सस्ता धर्म देने को तैयार हो जाता है।
दुनिया में तीन तरह के बिचौलिए हैं। एक तो पुरोहित बिचौलिया, मिडिलमैन। उसका धंधा इतना ही है कि भक्त और भगवान को दूर रखे, और उसका कोई काम नहीं है। क्योंकि भक्त और भगवान मिल जाएं तो वह बेकाम हो जाता है। फिर उसकी क्या जरूरत? भक्त और भगवान दूर रहें, तो वह मिलाने का काम करता है। वह कहता है--हम मिलवा देंगे; हम पहुंचा देंगे; रास्ता हमें मालूम है, कुंजी मेरे पास है। इतना ही वह नहीं कहता कुंजी मेरे पास है, वह यह भी कहता है कि और दूसरे पुरोहितों के पास जो कुंजियां हैं वे झूठी कुंजियां हैं। कुंजी यही एक असली है। हिंदू की कुंजी भर ठीक है, कि मुसलमान की कुंजी भर ठीक है, कि कुरान से खुलेगा ताला, कि वेद से खुलेगा ताला। दूसरे कोई ताले नहीं खोल सकते। तुम मेरे पीछे रहो, तुम मेरे साथ रहो मैं तुम्हें पहुंचा दूंगा। लेकिन वह पूरी चेष्टा यह करता है कि तुम कहीं पहुँच न जाओ; क्योंकि जिस दिन तुम पहुंच गए उस दिन उसका काम व्यर्थ हुआ। उस दिन उसको तुम कहोगे--नमस्कार! अब तुम्हारी कोई जरूरत न रही।
कुछ धंधे बड़े अजीब हैं। आत्मघाती धंधे हैं। अगर वे सफल हो जाएं तो मर जाते हैं। दुविधापूर्ण धंधे। उन धंधों के भीतर एक तरह का विसंवाद है। जैसे डाक्टर का धंधा है, वह दुविधापूर्ण धंधा है। वह जीता तुम्हारी बीमारी पर है और काम उसका है तुम्हें स्वस्थ रखना। बड़ी झंझट की बात है! उसकी तुम दुविधा समझो! तुम बीमार रहो, यह उसका सौभाग्य है, और तुम स्वस्थ हो जाओ, यह उसका काम है। तो वह तुम्हें थोड़ा-थोड़ा स्वस्थ भी करता है, थोड़ा- थोड़ा बीमार भी करता है। एक हाथ से स्वस्थ करता है, दूसरे हाथ से बीमार करता है। एक बीमारी से छुड़ाता है, लेकिन उसी में दूसरी बीमारी पैदा कर लेता है। तुमने देखा, एक बार तुम डाक्टर के चक्कर में पड़ गए तो फिर छूटना मुश्किल हो जाता है। छूटने का एक ही उपाय है कि दूसरे डाक्टर के चक्कर में पड़ जाओ। मगर वह कोई उपाय न हुआ। एलोपैथी से छूटना हो तो आयुर्वेद के चक्कर में पड़ो, आयुर्वेद से छूटना हो तो होमियोपैथी के चक्कर में पड़ो--मगर कहीं न कहीं पड़ो। धंधा विरोधाभासी है। खतरनाक है यह बात। यह होना नहीं चाहिए। इस पर दुनिया के चिकित्सक विचार करते हैं कि भविष्य में कुछ उपाय करना चाहिए। क्योंकि डाक्टर को अगर बीमार पर ही जिंदा रहना है और बीमार को ठीक

भी करना है, तो तुमने उसे एक दुविधा में डाल दिया। इसलिए तुम देखना, जितना ज्यादा पैसा होगा, मरीज उतने ज्यादा दिन तक बीमार रहता है। गरीब आदमी जल्दी ठीक हो जाते हैं। उनकी फिकर ही कौन करता है! उनसे जल्दी डाक्टर छुटकारा चाहता है कि भई, तुम अलग करो, और लोगों को भी चाहिए जगह! तुम्हीं वेटिंग रूम में बैठे रहते हो तो मेरे असली मरीज कहां जाएं, तुम जल्दी ठीक होओ। गरीब जल्दी ठीक हो जाते हैं; अमीर जल्दी ठीक नहीं होते।
मैंने सुना है, एक बूढ़े डाक्टर का बेटा मेडिकल कॉलेज से वापस लौटा। बाप थका था, बहुत दिन से काम में लगा था, बेटा लौट आया था तो उसने कहा कि दो महीने तू सम्हाल, मैं जरा पहाड़ हो आऊं। बाप पहाड़ चला गया। जब लौट कर आया तो बेटा स्टेशन पर पहुंचा और उसने कहा कि आप खुश होंगे यह जान कर कि जिस महिला को आप चालीस साल में ठीक नहीं कर पाए, उसे मैंने दो महीने में ठीक कर दिया। बाप ने सिर ठोंक लिया। उसने कहाः अरे मूढ़, तुझे मैंने पाला-पोसा कैसे? तुझे मेडिकल कॉलेज में पढ़ाया किसने? उसी महिला ने। वही मेरे बुढ़ापे का सहारा थी। वही तेरे छोटे भाई-बहनों को पढ़ाने का उपाय थी। तूने धंधा ही खराब कर दिया।
पुरोहित का धंधा भी बड़ा खतरनाक धंधा है। उसका मतलब यह है कि वह तुमसे कहे--मैं परमात्मा से मिलाऊँगा, पूजा करो, पाठ करो, यज्ञ-हवन करो; और पूरी चेष्टा करे कि तुम्हारे जीवन में कहीं परमात्मा की झलक न आ जाए। नहीं तो पुजारी व्यर्थ हो गया।
दूसरा बिचौलिया है--दलाल। वह उत्पादक को उपभोक्ता से नहीं मिलने देता। वह दोनों के बीच में खड़ा रहता है।
तीसरा बिचौलिया है--राजनेता। वह एक नागरिक को दूसरे नागरिक से नहीं मिलने देता; वह बीच में खड़ा रहता है। मगर इन सब बिचौलियों में सबसे ज्यादा खतरनाक बिचौलिया पुरोहित है। क्योंकि मनुष्य और परमात्मा के बीच में आड़ बन जाता है। तुम्हें पुरोहितों ने रोका है, तुम्हें पंडितों ने रोका है; तुम अपने पापों के कारण परमात्मा से नहीं रुके हो, यह मैं तुमसे बार-बार कहना चाहता हूं, हजार बार कहना चाहता हूं; तुम्हारे पापों के कारण तुम परमात्मा से नहीं रुके हो क्योंकि वह करुणावान है। तुमने पाप ही क्या किए हैं! छोटे-मोटे पाप! उसकी महाकरुणा की बाढ़ में टिकेंगे? नहीं, तुम पापों के कारण नहीं रुके हो; पाप ही क्या हैं तुम्हारे, जरा हिसाब तो लगाओ। ऐसा क्या पाप कर लिया है! लेकिन पंड़ित पुरोहित तुमसे कहता है--तुम अपने पापों के कारण रुके हो। जब तक पाप न कटेंगे तब तक तुम पहुंच न सकोगे। पाप कटते नहीं। क्योंकि उसने ऐसी चीजों को पाप बता दिया है, जो कि कट ही नहीं सकते। वह कहता है--उपवास करो तो पुण्य, भोजन करो तो पाप। अब बड़ी मुश्किल हो गई, भोजन स्वाभाविक है, उपवास अस्वाभाविक है। एक दिन कर लो, दो दिन कर लो, कितनी देर करोगे? भोजन करना ही पड़ेगा। भोजन किया कि पाप है! उसने स्वभाव को पाप करार दे दिया है। इस लिए तुम पाप से छूट नहीं सकते और वह कहता है--पाप से जब तक छूट नहीं सकते, परमात्मा से मिल नहीं सकते। उसने तुम्हें खूब भरमाया है। असली बात कुछ और है। जब तक तुम पुरोहित से नहीं छूटते, तुम परमात्मा
से नहीं मिल सकते। पाप ने नहीं रोका है, पुरोहित ने रोका है। पाप क्या रोकेगा? सारे दुनिया के ज्ञानियों ने कहा है कि परमात्मा करुणावान है, रहमान है, रहीम है। लेकिन किसी ने भी नहीं कहा है कि परमात्मा इतना शक्तिशाली है कि पुरोहित को तुम्हारे बीच से अलग कर दे। परमात्मा भी नहीं कर सकता पुरोहित को अलग। वहां--उसकी सर्वशक्तिमत्ता काम नहीं आती। पुरोहित डट कर बैठा है। उसने सब तरफ अड्डे बना लिए हैं। वह तुम्हें पहुंचने नहीं देना चाहता।
इसलिए जब भी कोई पहुंचाने वाला पैदा होता है, पुरोहित उसके विपरीत हो जाता है। बुद्ध हों, कि कृष्ण हों, कि क्राइस्ट। पुरोहित बुद्ध के खिलाफ, क्राइस्ट के खिलाफ।
उनकी खिलाफत क्या है?
ये आदमी धंधा खराब करने आ गए। ये मिलाने ही लगे। याद करो उस बेटे को जिसने बाप की सारी की सारी व्यवस्था को जिंदगी भर की खराब कर दिया, चालीस साल के बीमार को दो महीने में ठीक कर दिया। यह बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट

के पीछे जो विरोध है, उसके पीछे क्या कारण है? यही कारण है कि ये पुरोहित का सारा व्यवसाय नष्ट किए देते हैं। ये कहते हैं हम मिलाए ही देते हैं। ये कहते हैं--यह रहा द्वार, मिल जाओ। पुरोहित लंबे रास्ते बनाता है, चक्करदार रास्ते बनाता है, सीढ़ी दर सीढ़ी लंबी यात्रा करवाता है। इतनी लंबी कि तुम जन्मों-जन्मों में पूरी न कर पाओ। ऐसे सिद्धांत निर्मित करता है कि तुम उनके चक्कर में खो जाओ। बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट या दादू या कबीर या रज्जब, ये चक्करदार रास्ते तोड़ते हैं। वे कहते हैं--परमात्मा सामने है, कहां जा रहे हो; आंख खोलो, यहां और अभी, इसी वक्त मिलो। परमात्मा उधार नहीं है, नगद है।
पंडित और पुरोहित उस सुबह की बात करते हैं जो कभी आती नहीं--कम-से-कम उनके द्वारा तो नहीं आती। और जब भी कभी आती है, तो उनके बावजूद आती है। बुद्ध को अगर ज्ञान हुआ, पुरोहितों के कारण नहीं, पुरोहितों से छूटकर ज्ञान हुआ। क्राइस्ट को अगर ज्ञान हुआ, तो यहूदी धर्मगुरुओं के कारण नहीं, उनसे छूट कर हुआ। अगर दादू को ज्ञान हुआ, या कबीर को, तो वह जो परंपरागत रूढ़ि है, उससे मुक्त होकर ज्ञान हुआ।
ज्ञान परंपरामुक्त हो, तभी होता है। नहीं तो बस झूठी सुबह है और झूठी सुबह के वायदे हैं।
यह दाग-दाग उजाला, यह शब गजीरः सहर
वह इंतजार था जिसका, यह वह सहर तो नहीं
यह वह सहर तो नहीं कि जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं न कहीं

फलक के दस्त में तारों की आखिरी मंजिल कहीं तो होगा शबे-सुस्त मौज का साहिल कहीं तो जाके रुकेगा सफीनए-गमे-दिल जवाँ लहू की पुरइस्रार शाहे राहों से

चले जो यार तो दामन ये कितने हाथ पड़े दयारे-हुस्न की बेसब्र ख्वाबगाहों से पुकारती रहीं बांहें, बदन बुलाते रहे बहुत अजीज थी लेकिन रुखे-सहर की लगन

बहुत करीं था हसीनाने-नूर का दामन सुबक-सुबक थी तमन्ना, दबी-दबी थी थकन सुना है हो भी चुका है फिराके-जुल्मतो-नूर सुना है हो भी चुका है विसाले-मंजिलो-गाम

बदल चुका है बहुत अहले-दर्द का दस्तूर निशाते-वस्ल, हलाल-ओ-अजाबे हिज्र हराम जिगर की आग, नजर की उमंग, दिल की जलन
किसी पै चारए-हिजरां का कुछ असर ही नहीं
कहां से आई निगारे-शबा किधर को गई
अभी चरागे-सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं
अभी गरानिए-शबमें कमी नहीं आई
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
चले चलो कि वह मंजिल अभी नहीं आई
बस रोज यही कि चले चलो कि वह मंजिल अभी नहीं आई। जन्मों-जन्मों से ऐसा
चल रहा है। मंजिल के वायदे, और मंजिल कभी आती नहीं। परमात्मा की बातें और मिलन कभी होता नहीं। मोक्ष के संबंध में लफ्फाजियां, मोक्ष कभी उतरता नहीं। आनंद के गीत, लेकिन धुन न तो प्राणों में जगती है और न बांसुरी बजती है। कहीं कुछ होता नहीं।
जिगर की आग न.जर की उमंग, दिल की जलन
किसी पै चारए-हिजरां का कुछ असर ही नहीं

सब वैसा का ही वैसा होता है। वही आग जलती रहती है, वही अंधेरा बना रहता है। वही पीड़ा, वही घाव।
जिगर की आग, नजर की उमंग, दिल की जलन
किसी पै चारए-हिजरां का कुछ असर ही नहीं
कहां से आई निगारे-शबा किधर को गई...
लोग कहते हैं, सुबह भी हो गई, मगर कुछ पता ही नहीं चलता।
कहां से आई निगारे-शबा किधर को गई
अभी चरागे-सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं
अभी गरानिए-शब में कमी नहीं आई...
रात का अंधेरा वैसा का वैसा है।
अभी गरानिए-शब में कमी नहीं आई
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
और न उस प्यारे के दर्शन होते हैं। कितने जन्मों से सुन रहे हो परमात्मा की बात। दर्शन तो हुए नहीं; बात-ही-बात रह गई है। बात में से बात निकलती रही है, हाथ में कोरे शब्द रह गए हैं।
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
आंखें कब होंगी चार? कब उसके हाथ में तुम्हारा हाथ होगा? कब होगा आलिंगन?
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
चले चलो कि वह मंजिल अभी नहीं आई
बस चलते रहो, चलते ही रहो, मंजिल आती मालूम नहीं होती। कहीं कुछ बड़ी बुनियादी भ्रांति है। ऐसा लगता है कि जिसे हम खोजने चले हैं वह मंजिल दूर नहीं है, पास है, इसलिए चलने से नहीं आती--रुकने से आती है। दौड़ने से नहीं आती, ठहरने से आती है। विधि-विधानों से नहीं आती, सब विधि-विधानों से मुक्त हो जाने से आती है। औपचारिक धर्म से नहीं आती, अनौपचारिक प्रेम से आती है। आज के सूत्र उसी तरफ इशारे हैं। समझना--
संतो, ऐसा यहु आचार।
रज्जब कह रहे हैं--संतों को संबोधन कर रहे हैं, ख्याल रखना! वह जिन मित्र ने लिखा है कि मैं मुमुक्षु हूं और यहां भेदभाव किया जा रहा है, बड़ा मुश्किल है, यह रज्जब भी भेदभाव करते हैं! यह संतों को संबोधन कर रहे हैं; असंतों को छोड़ रहे हैं। क्यों? क्योंकि संत ही समझ सकेंगे। जो समझ सकें, उन्हीं को पुकारो; जो समझ सकें, उन्हीं पर बरसो; जो समझ सकें, उन्हीं के द्वार खटखटाओ। जो समझने को राजी हों, उन से ही बात करने का कुछ मजा है। संत का क्या अर्थ होता है? संत का अर्थ होता है, जिसने संसार की तरफ से पीठ करली और परमात्मा की तरफ मुख कर लिया--जो राम के सम्मुख हो गया। सम्मुखता का नाम संतत्व है। तुम राम से विमुख हो, संसार के सम्मुख हो, तुममें और संत में इतना ही फर्क होता है। संत संसार के प्रति पीठ कर लेता है, परमात्मा की तरफ आंखें उठा लेता है। उसे एक बात समझ में आ गई--"म्हारो मंदिर सूनो राम बिन।" अब वह राम की तलाश में लग गया है। अब वह कहता है, राम न मिलें तो अब कुछ और पाना नहीं। जो पाया, सब दांव पर लगा दूंगा। यह जीवन व्यर्थ है। राम के बिना जीना एक क्षण व्यर्थ है। एक श्वास भी अकारण अब न लूंगा। अब राम में होगी श्वास तो ही लेने-योग्य है। अब राम में धड़केगा दिल तो ही धड़कने योग्य है।
संतो, ऐसा यहु आचार।
इसलिए संतों को संबोधन किया है। जिनको रज्जब ने संत कहा, उन्हीं को मैं संन्यासी कहता हूं। भेद है, इसलिए भेद है। "ऐसा यहु आचार"। उनसे कह रहे हैं कि सुनो, जिस आचार की तुम बातें करते रहे हो, सुनते रहे हो, जिस आचार का पालन करते रहे हो, सदियों-सदियों से जिस आचरण के गीत गाये गए हैं, उस आचरण में कुछ भी नहीं है, सब थोथा है, सब धोखा है। तुम जरा देखो, धर्म के नाम पर जो आचरण चलता है, उसका धोखा देखो, उसकी बेईमानी देखो! लेकिन उसकी प्रतिष्ठा है, क्योंकि पुराना है। सदियों के पीछे दूर तक उसका नाम रहा है। करोड़ों बार उसे दोहराया गया है। इसलिए तुम देख भी नहीं पाते उसके झूठ को। अब जो आदमी भूखा बैठा है, तुम सोचते हो वह भोजन की नहीं सोच रहा होगा? तुम

नहीं सोचते कि भोजन की सोच रहा होगा! तो तुम उपवास करके देखो। तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि उपवास में बैठा हुआ आदमी परमात्मा की तो सोचता ही नहीं। उपवास में बैठे आदमी को पहली दफे उपनिषद का यह वचन समझ में आता है--"अन्नम ब्रह्म।"
असल में यह वचन पैदा ही ऐसी घड़ी में हुआ था।
श्वेतकेतु लौटा था गुरु के आश्रम से। ब्रह्म की बातें करता हुआ आया। ब्रह्म-चर्चा करता हुआ आया। उसके बाप उद्दालक ने देखा कि ये बकवासी हो गया। उद्दालक उपलब्ध व्यक्ति रहा होगा। उद्दालक ने कहाः देख, तू बहुत ब्रह्म की बातें कर रहा है, तू एक काम कर, तू कुछ दिन उपवास कर। फिर तुझसे हम बात करेंगे।
दो-तीन दिन उपवास किया। फिर पिता ने उससे पूछा कि अब कुछ ब्रह्म-चर्चा करनी है! अब वह रस नहीं था ब्रह्म-चर्चा में उसका। उसने कहा, मन बड़ा उदास है, और शरीर निढाल-निढाल, कहां की ब्रह्म-चर्चा! भोजन की याद आती है। कुछ देर और, पिता ने कहा, तू और उपवास कर दो-चार दिन। सप्ताह बीतते-बीतते ब्रह्म बिल्कुल विदा हो गया। "भूखे भजन न होहिं गोपाला।" अब कहां गोपाल! तो बाप ने कहाः अब तू बोल, अब तेरे मन में किसका विचार उठता है? ब्रह्म का विचार उठता है? उसने कहाः ब्रह्म इत्यादि का कोई विचार नहीं उठता, बस अन्न ही अन्न का विचार उठता है। तब बाप ने कहा था--"अन्नम ब्रह्म।" अन्न ब्रह्म है।
जो आदमी उपवास कर रहा है, तुम सोचते हो वह परमात्मा की याद कर रहा है। हां, कभी-कभी ऐसा होता है कि परमात्मा की याद करने वाला उपवास में उतर जाता है, वह बड़ी और बात है। उपवास किया नहीं जाता। परमात्मा की याद में कोई ऐसा डूब जाता है कि कभी एक घड़ी आती है कि भोजन की याद ही नहीं आती है। भोजन का समय बीत जाता है। मस्ती! राम के साथ रसमग्न है। राम के साथ कोई नाच रहा है, कि कृष्ण के आसपास कोई नाच रहा है, भूल ही गया है, तुम भी कभी-कभी भूल गए हो अपनी प्रेयसी के पास बैठे कभी-कभी तुम्हें भी भोजन की याद नहीं रही है। अपना मित्र, प्यारा मित्र घर आया है, उस रात तुम्हें देर हो गई है, भोजन की याद ही नहीं आई है। सो गए तब याद आई कि अरे, आज भोजन चूक गया है! यह उपवास है। प्रेम के कारण फलित हुआ; चेष्टा से नहीं। जिस दिन राम के प्रेम में भूल जाता है भोजन, उस दिन उपवास। मगर वह बात और है।
लोग उपवास साधते हैं। लोग सोचते हैं, उपवास साधने से राम की याद आएगी। राम की याद आने से कभी-कभी उपवास होता है, यह सच है, लेकिन उपवास करने से राम की याद नहीं आती, फिर तो भोजन ही भोजन की याद आती है। उससे तो भरे पेट ही आदमी राम की याद आसानी से कर लेता है। लेकिन अगर कोई उपवास कर रहा है, तो तुम समझते हो धार्मिक आचरण हो रहा है। तुम्हें चिंता ही नहीं है इस बात की कि पुनर्विचार करो। कोई आदमी रोज जाकर मंदिर में घंटा बजा आता है, राम-राम कह आता है, तुम मान लेते हो कि धार्मिक है। तुम कभी यह सोचते ही नहीं की राम कि इस तरह बंधी-बंधाई याद सच हो सकती है? याद पर कोई बंधन काम करते हैं? याद का कोई अनुशासन होता है?
कब याद आ जाएगी, कौन कह सकता है! आधी रात आ जाएगी, कि सुबह आएगी, कि भर दोपहरी में आएगी। यह रोज सुबह सात बजे जाकर और मंदिर में घंटा बजा कर और राम-राम की जो याद कर आया है, इसने एक औपचारिकता पूरी की है। ऐसे कहीं प्रेम घटता है! ऐसे कहीं राम-धुन होती है! यह तुम्हारे हाथ में है। यह तो यंत्रवत तुमने व्यवहार कर लिया। हां, रोज-रोज करते रहोगे और अगर एक दिन न करोगे, तो दिन में तुम्हें अड़चन भी मालूम होगी। जैसे सिगरेट पीने वाले को होती है, तलफ लगती है। तलफ का मतलब समझते हो? इतना ही कि एक मूढ़ता जो रोज-रोज करता था, आज नहीं की, तो खाली-खाली लग रहा है। ऐसे ही रोज जो मंदिर जाता है, उसको भी तलफ लगती है। उसकी तलफ में और सिगरेट पीने वाले की तलफ में कोई भी फर्क नहीं है। रत्ती भर फर्क नहीं है। क्योंकि न तो सिगरेट पीने वाले को कुछ मिल रहा है, न उस पूजा करने वाले को कुछ मिल रहा है।
यह बड़े मजे की बात है, आदतों के साथ यह खतरा है कि जब कोई चीज आदत बन जाती है, उससे कुछ मिलता तो नहीं, लेकिन अगर न करो उसे पूरा तो दिल में कुछ खटका सा बना रहता है; कोई चीज खटकती रहती है, कोई चीज कमी रह गई, कुछ करना था

वह नहीं कर पाए। एक आदत यंत्र की तरह पुकार करती है कि आओ और मुझे पूरा करो। तुम रोज किसी आदमी को देख लेते हो मंदिर जाते, तुम सोचते हो, बड़ा धार्मिक है। धर्म ऐसा आसान नहीं है।
रामकृष्ण कभी पूजा करते थे, कभी नहीं करते थे। और कभी दो-दो, चार-चार दिन तक मंदिर का दरवाजा बंद ही रहता। और कभी चौबीस घंटे नाचते रहते। मंदिर के अधिकारियों ने समिति बुलाई। उन्होंने कहा कि यह पुजारी तो ढंग का नहीं है। यह कैसी पूजा? रामकृष्ण को बुलाया, पूछा कि यह कैसी पूजा? रामकृष्ण ने कहा कि जब होती है तब होती है, जब नहीं होती तब नहीं होती। झूठी नहीं करूँगा। जब मेंरा हृदय नहीं पुकार रहा है, तब मैं कैसे पुकारूं? मेरे ओंठ कुछ कहें और मेरा हृदय कुछ कहे, यह मुझसे नहीं होगा। अपनी नौकरी सँभालो! नौकरी भी क्या थी! चौदह रुपये महीने मिलते थे। खैर, उन दिनों चौदह रुपये बहुत थे। ट्रस्टी जरा हैरान हुए, क्योंकि कोई इतनी आसानी से नौकरी नहीं छोड़ देता। लेकिन रामकृष्ण ने कहा कि पूजा जब होगी तब होगी, हां, कभी- कभी जब पूजा होती है तो आधी रात में भी फिर मैं यह थोड़े ही सोचता हूं कि यह कोई वक्त है! आधी रात को धुन बंध जाती है, आधी रात तार जुड़ जाते हैं, तो आधी रात दरवाजा खोल लेता हूँ। अब इससे पास-पड़ोस के लोग भी परेशान थे कि आधी रात पूजा होने लगी! कभी दिन भर पूजा नहीं होती। यह क्या पूजा का ढंग है? असल में पूजा का ढंग होता ही नहीं। जब पूजा ढंग से होती है, तो झूठी होती है। पूजा की तो एक सरलता होती है, एक सहजता होती है। एक हृदय की उमंग है। एक हवा का झोंका है। अज्ञात से आता है, नचा जाता है, तब एक सचाई है। उस सचाई में परमात्मा से मिलन है। लेकिन तुम्हारे सब आचार झूठे हैं, नियोजित हैं, व्यवस्थित हैं। तुमने सब भांति उनका अयास कर लिया है। अयास से बचना। अयास से आदमी झूठा हो जाता है अयास से आदमी पाखंडी हो जाता है। अयास से मत जीना, सहजता से जीना, सरलता से जीना।
संतो, ऐसा यहु आचार।
पाप अनेक करैं पूजा में, हिरदै नहीं बिचार।।
और अदभुत आचार है यह, धर्म के नाम पर चलता है! तुम्हें पता है धर्म के नाम पर क्या-क्या नहीं चला है? ऐसा कोई पाप नहीं है जो धर्म के नाम पर न किया गया हो। इसलिए थोड़ा सोच लेना, धर्म के नाम पर जो तुम कर रहे हो, वह धर्म है या नहीं? ऐसा कोई पाप नहीं जो धर्म के नाम पर न किया गया हो। पशुओं की बलि दी गई है, मनुष्यों की बलि दी गई है--अब भी दी जाती है कभी-कभी। माताओं ने अपने बेटे काट डाले हैं, और इसको धर्म समझा है। धर्म के नाम पर स्त्रियां पतियों के साथ छलांग लगा कर आग में जल गईर्ं। यह भाव से हुआ हो, तो मैं पूरी तरह राजी हूं। अगर कोई पत्नी भाव से, उमंग से, आनंद से, यह जान कर कि पति के बिना कोई अर्थ ही नहीं जीने का, रसविमुग्ध, नाचती हुई, दुलहन की तरह नाचती हुई चिता पर सवार हो गई, यह और बात है! इसको तुम आचरण में मत लेना। लेकिन ऐसा तो कभी-कभी होता है। सौ में निन्यानबे सतियां तो करवाई गईं--हुई नहीं थीं। जबरदस्ती उनको ले जाया गया। पास-पड़ोस ने धक्के दिए... । तुम्हें पता है जब कोई स्त्री सती होती थी तो कितना इंतजाम करना पड़ता था? मशालें लेकर पुरोहित चारों तरफ खड़े हो जाते थे, बड़े जोर से बैंड-बाजे बजाते थे, क्योंकि जिंदा स्त्री कोई जलेगी--जरा हाथ तो आग में डाल कर देखो, तब तुमको पता चल जाएगा। जिंदा कोई अपने हाथ से आग में जाएगा, या फेंका जाएगा, उसकी तकलीफ तुम समझो! और उस पति के लिए जिसके साथ जिंदगी में कुछ मिला भी नहीं! और अब मौत में यह मिल रहा है! उस पति के साथ जिसके साथ जिंदगी एक गुलामी थी और अब मौत में अब यह, यह आखिरी नरक झेलना पड़ रहा है! तो चारों तरफ मशाल लिए खड़े होते, कि स्त्री अगर भागने लगे, तो मशालों से धक्के देकर उसको वापस आग में डाल देते थे। भागेगा ही कोई, .जरा तुम खुद ही सोचो। और इतना घी डालते थे चिता में कि धुआं ही धुआं हो जाता था--नहीं तो लोगों को दिखाई पड़ेगा कि स्त्री भाग रहीं है। वह दिखाई भी नहीं पड़नी चाहिए, और चीख-पुकार करेगी, भयंकर चीख-पुकार करेगी--जीवित स्त्री को आग में डाल रहे हो-- तो बैंड-बाजे बजाते थे, नगाड़े पीटते थे, ताकि उसकी आवाज न सुनाई पड़े। यह जबर्दस्ती सती बनाया जा रहा है! फिर ऐसा आयोजन था कि अगर कोई स्त्री सती न हो, तो उसका भयंकर अपमान होता था। वह प्रतिष्ठा से फिर नहीं जी सकती थी।

फिर उसकी स्थिति वेश्या से गई-बीती थी। फिर उसकी छाया भी पाप की, छाया में भी अपशकुन था। फिर उसका जीना मौत से ज्यादा बदतर कर देते थे। इसलिए मजबूरी में कोई यही चुन लेता था कि मर ही जाना बेहतर है।
यह सब धर्म के नाम पर चलता रहा है!
पशु काटे गए हैं। और कोई पूछे कि पशुओं का क्या कसूर है? अब भी काटे जाते हैं। कलकत्ता के काली के मंदिर में अब भी चलती है बलि।
संतो, ऐसा यहु आचार।
तुम्हारे हवन, तुम्हारे यज्ञ तुम्हारी अमानवीयता की घोषणाएँ हैं। अभी भी यज्ञ होते हैं जिनमें करोड़ों रुपये का घी और अग्नि में फेंका जाता है। गेहूँ और चावल और न मालूम क्या-क्या। और देश भूखा मरता रहे! विश्वशांति के लिए यज्ञ किए जाते हैं। ये यज्ञ होते रहते हैं, विश्व की शांति होती ही नहीं। और कोई यह देखता भी नहीं कि कितने यज्ञ हो चुके, विश्वशांति कुछ हो नहीं रही, अब तो बंद करो! लेकिन आदमी अंधे की तरह चलता है। आदमी अपनी आंख से नहीं चलता। आदमी की तलाश बड़ी मुश्किल है।
यूनान का एक विचारक, एक अपूर्व दार्शनिक डायोजनीज दिन में भी अपने हाथ में लालटेन लिए रहता था--दिन में भी। और जब भी कोई आदमी आता तो वह गौर से उसका चेहरा लालटेन उठा कर देखता। लोग कहते--यह तुम क्या कर रहे हो, उजाला है, अभी तुम क्या देख रहे हो? वह कहता--मैं आदमी की तलाश कर रहा हं। अभी तक मुझे आदमी नहीं मिला। जब वह मर रहा था, तब भी वह लालटेन अपने पास रखे बैठा था। भीड़ इकट्ठी हो गई थी और लोग पूछने लगे कि डायोजनीज अब मरते वक्त तो बता जाओ, जिंदगा भर दिन के उजाले में भी लालटेन लेकर तुम आदमी खोजते रहे, आदमी मिला कि नहीं? उसने कहा--भई, आदमी तो नहीं मिला, मगर यही क्या कम है कि अपनी लालटेन चोरी नहीं गई! अपनी लालटेन अपने पास है। आदमी तो नहीं मिला। अपनी लालटेन बच गई, यही बहुत है। धर्म के नाम पर जब कोई चीज चलती है, तो तुम सोच-विचार खो देते हो। तब तुम बिल्कुल अंधे की तरह, जड़, उसका अनुगमन करते हो।
पाप अनेक करै पूजा में, हिरदै नहीं बिचार।।
चींटी दस चौके में मारें, घुण दस हांडी माहीं।
प्रसाद तैयार हो रहा है परमात्मा को चढ़ाने के लिए, जो लकड़ियां जलाई हैं उनमें गुन लगा है, उनमें कीड़े हैं, वे जल रहे हैं।
चाकी-चूल्हैं जीव मारै जो, सो समझै कछु नाहीं।।
पाती फूल सदा ही तोड़ैं, पूजन कूं पाषाण।
कैसे अदभुत लोग हैं--रज्जब कहते हैं! जिंदा फूल लगा था, गुलाब की झाड़ी
पर आनंदित था, मग्न था; परमात्मा को चढ़ा ही था; उसको तोड़ लिया, चले चढ़ाने! किसी पत्थर पर सिंदूर पोत लिया, उसको कहते हैं--हनुमान जी! चले हनुमान जी पर चढ़ाने! यह फूल चढ़ा ही था परमात्मा को, और बेहतर क्या होगा, हवाओं से खेलता था, सूरज की किरणों में नाचता था, सुगंध को बखेरता था, सुंदर था; इसकी सुवास इसकी प्रार्थना थी। यह गुलाब की झाड़ी ने अपने आनंद का अभिव्यंजन किया था। यह गीत गाया था। तुम इसको तोड़ लिए, और अब चले! आदमी के बनाए हुए भगवान! किसी पत्थर पर सिंदूर पोत लिया--वह सिंदूर भी तुम ख्याल रखना, वह खून का प्रतीक है। कभी आदमी ने खून पोता था। फिर खून पोतना जरा मुश्किल होने लगा; तो उसका परिपूरक खोजा। कभी आदमी ने आदमी के सिर फोड़े थे। फिर वह .जरा मुश्किल होने लगा तो वह नारियल फोड़ते हैं। नारियल प्रतीक है। नारियल लगता भी जरा आदमी जैसा--दाढ़ी, मूंछ, आंखें, खोपड़ी! तुमशायदूल ही गए होओ कि यह तुम आदमी का सिर तोड़ रहे हो। तुम सोचते हो तुम सय हो गए, क्योंकि तुमने परिपूरक खोज लिए? लेकिन वृत्ति तो वही है।
यह आकस्मिक नहीं है कि धार्मिक दिनों में झगड़े हो जाते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि हिंदू-मुसलमान दंगे इस देश में हमेशा धार्मिक दिनों पर होते रहे--या तो मोहर्रम हो कि ईद हो, कि दशहरा हो, कि होली हो। कोई धार्मिक उत्सव चाहिए। धार्मिक उत्सव तुम्हारे भीतर बड़ी अधार्मिक वासनाओं को जन्म देता मालूम होता है। भले आदमी धार्मिक उत्सव में एकदम अमानवीय हो जाते हैं, अमानुषिक हो जाते हैं। कुछ ऐसा लगता है कि धर्म के उत्सव में तुम अपनी सयता खो देते हो, अपने संस्कार खो देते हो, अपनी श्रेष्ठता खो देते

हो; तुम गिर जाते हो अपने अतीत में, तुम अविकसित हो जाते हो, तुम आधुनिक नहीं रह जाते हो। भीड़-भाड़ में तुम अपनी व्यक्तिगत चैतन्य की जो थोड़ी सी क्षमता जन्मी है, उसको भी गंवा देते हो।
पाती फूल सदा ही तोड़ैं, पूजन कूं पाषाण।
मुझे फूलों से लगाव रहा है। जहां भी मैं रहा हूं, मैंने फूल लगा रखे थे। एक गांव में कई वर्षों तक रहा। बड़ी मुश्किल थी वहां। पास ही एक मंदिर था, वह एक झंझट का कारण था कि मंदिर में जिसको भी फूल चढ़ाने हों, वह मेरी बगिया से फूल तोड़ ले जाएँ। और उनको कुछ कहो तो वे अकड़ कर कहें कि यह धार्मिक कार्य के लिए ले जा रहे हैं। तो मुझे वहां एक तख्ती लगानी पड़ी कि अगर अधार्मिक कार्य के लिए तोड़ना हो, तो तोड़ सकते हैं, मगर धार्मिक कार्य के लिए फूल मत तोड़ना। धार्मिक कार्य और फूल का तोड़ने में मेल नहीं बैठता। अधार्मिक ठीक है। अब अधार्मिक कार्य करने जा रहे हो, फूल भी तोड़ लिया तो क्या हर्ज है! मगर धार्मिक कार्य? अकड़ कर लोग कहें कि धार्मिक कार्य के लिए फूल तोड़ रहे हैं, पूजा के लिए फूल तोड़ रहे हैं। जैसे कि पूजा के लिए फूल तोड़ा जाना न्यायसंगत है।
पाती फूल सदा ही तोड़ैं, पूजन कूं पाषाण।
पत्थर को पूजते हो, फूल को तोड़ते हो? फूल, जो जीवंत है, पत्थर, जो मृत है! पर मुर्दे की पूजा चलती है धर्म के नाम पर। और जीवंत का बलिदान होता है। यह अब तक की तुम्हारी धार्मिकता है।
और यह सिर्फ प्रतीक की ही बात नहीं है, हमेशा ऐसा होता है। जीसस को चढ़ा दिया--फूल था जीसस--मोजे.ज पर चढ़ा दिया जीसस को। मोजिज अब फूल नहीं थे, पत्थर हो चुके थे। तीन हजार साल बीत गए थे। अब मोजिज जिंदा नहीं थे।
मुर्दा मोजिज पर जिंदा जीसस को चढ़ा दिया।
पाती फूल सदा ही तोड़ैं, पूजन कूं पाषाण।
बुद्ध को तुमने पत्थर मारे, अपमान किया--वेद के ऋषियों के पक्ष में।
अब तुम बुद्ध की पूजा करते हो। लेकिन अब अगर कोई बुद्ध होगा, तुम उसको भी पत्थर मारोगे। तुम जिंदा के विपरीत हो, तुम मुर्दा के पक्षपाती हो।
स्वभावतः जो मुर्दा के पक्षपाती हैं, अगर वे मुर्दे ही रह जाते हों तो कुछ आश्चर्य नहीं है। इसलिए तुम्हारे जीवन में जीवन की ललक और गरिमा नहीं है।
जीवन की विभूति नहीं है। जीवन का प्रसाद नहीं है।
अपने मंदिरों से उठा लाओ अपने पत्थरों को और फूलों पर चढ़ा दो। छुट्टी करो!
जीवंत को मृत के आगे मत झुकाओ। जीवन का सम्मान करो।
संतो, ऐसा यहु आचार।
छार पतंगा होहि आरती, ...
... तुम आरती जला रहे हो और पतंगे उसमें मर रहे हैं। मगर तुम अपनी आरती उतारे जा रहे हो। तुम्हें फिकर ही नहीं है। तुम्हारे मन में.जरा भी बोध नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो? इस आरती का क्या मूल्य है? पतंगों में जो परमात्मा है, उसमें मूल्य है। यह आरती बुझा दो! यह सब आरतियां बुझा दो! जीवन ही परमात्मा है, तुम जीवन के चरणों में झुको।
छार पतंगा होहिं आरती, हृदय नहीं बिनाण।।
.जरा भी विज्ञान नहीं है, जरा भी विचार नहीं है, .जरा भी होश नहीं है।
सगले जनम जीव संहारै, यहु खोटे शटकर्मा।
और इनको तुम कहते हो, यह हमारे धर्म का क्रियाकांड है--षटकर्म। और सब कुछ, "सगले जनम जीव संहारै... " इस धर्म की प्रक्रिया के नाम पर तुमने कितना जीवन का विनाश किया है? और फिर ऐसा भी है कि कुछ ऐसे भी हैं, जो इस तरह से जीवन का विनाश नहीं करते। वे दूसरी तरह से करते हैं।
इस सदी की बड़ी से बड़ी खोजों में एक खोज है सिग्मंड फ्रॉयड की। उसने अपने जीवन भर की खोज में दो बातें खोजीं मनुष्य के भीतर--एक को वह कहता है, कामवासना, और दूसरे को कहता है, मृत्यु-वासना। कामवासना उसने जीवन के प्राथमिक चरणों में खोजी, और जैसे-जैसे वह बूढ़ा होने लगा, उसे यह भी समझ आना शुरू हुआ कि मनुष्य के भीतर मृत्यु की भी आकांक्षा छिपी पड़ी है। आदमी मरना भी चाहता है। जब उसने पहली दफा यह बात कही कि आदमी में मृत्यु की

वासना है, तो लोगों को समझ में नहीं आई; क्योंकि कौन मरना चाहता है? लेकिन फ्रॉयड की बात धीरे-धीरे गहरी होती गई। और लोग उस पर शोध करते रहे और अब यह बात एक तथ्य की तरह स्वीकार की जाती है कि आदमी जीना भी चाहता है और मरना भी चाहता है। आदमी में दोनों वासनाएं साथ-साथ हैं यही आदमी की दुविधा है। इसके बड़े परिणाम होते हैं।
इसलिए दुनिया में दो तरह के झूठे धर्म हैं। एक धर्म, जो दूसरे को मारता है। वह एक वासना को मानकर चलता है--जीने की वासना। और दूसरा धर्म जो मृत्यु की वासना मान कर चलता है, वह दूसरे को नहीं मारता, वह अपने को मारता है। जैसे हिंदुओं के आचार-विचार पहली वासना से प्रभावित है--बलि दे दो। जैनों का आचार-विचार दूसरी वासना से प्रभावित है। क्या तुम्हें पता है, जैन-धर्म दुनिया में अकेला धर्म है जिसने आत्महत्या की आज्ञा दी है? और आत्महत्या को धार्मिक कृत्य माना है, फ्रॉयड को पता होता अगर इस बात का तो उसने जरूर उल्लेख किया होता। उसे पता नहीं था इस बात का। जैन-धर्म का पता दुनिया को ज्यादा नहीं है।
जैन-मुनि को आज्ञा है कि वह चाहे तो उपवास करके अपने जीवन का अंत कर दे। आत्मघात की सुविधा है। और जैन-मुनि चाहेगा ही अंत में--अगर वह सच्चा जैन-मुनि था तो अंत में चाहेगा ही--क्योंकि जीवन इतना बोझिल हो जाता है कि जीने से मरना ही बेहतर है। जीवन इतना कंटकाकीर्ण हो जाता है और इतना व्यर्थ हो जाता है--न कोई रस ही रह जाता है, न कोई जीवन में आनंद रह जाता है, कौन जीना चाहेगा? अगर जैन-मुनि ठीक से जिआ है तो वह आखिर में आत्मघात से ही मरेगा। मरना ही चाहिए। वही संगत है, तर्कयुक्त है। जैन-मुनि की प्रक्रिया क्या है? वह आत्मघाती है--वह दूसरे को नहीं सताता।
ये बातें जो रज्जब ने कही हैं, ये पहले तरह के धर्म के लिए लागू होती हैं। जैन कोई आरती नहीं उतारता, रात में भोजन भी नहीं करता है, दीया भी नहीं जलाएगा, रात पानी भी नहीं पिएगा, यह बात तो ठीक है, यह पहली तरह का उपद्रव तो बच गया, लेकिन दूसरी तरह का उपद्रव शुरू हुआ। अब रात भर प्यास लगी है, वह अपने को तड़फा रहा है। दुख दोगे ही तुम--या किसी और को या अपने को। दुख देने से बचोगे नहीं तुम। मेरी दृष्टि में धार्मिक आदमी वह है, जो न दूसरे को दुख देता है, न अपने को दुख देता--जिसकी आस्था ही दुख से हट गई, जो दुख देता ही नहीं।
इस देश में देनों तरह की बातों का प्रचार है। दूसरों को दुःख देनेवाले लोग भी हैं, वे भी समझते हैं कि वे धर्म कर रहे हैं। अपने को दुख देने वाले लोग भी हैं, वे भी समझते हैं कि वे धर्म कर रहे हैं। कोई आदमी अपने को दुख दे, बहुत लोग उसके चरणों में सिर झुकाने को तैयार हो जाते हैं। दुख का सम्मान है। कोई आदमी कांटों पर लेटा है, तुम क्यों चले सम्मान करने? कांटों पर लेटा है तो पागल है, विक्षिप्त है, यह कोई लेटने का ढंग है, पुलिस को खबर करो, यह आदमी खतरनाक है। इसको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। नहीं, चले तुम! चले पूजा का थाल लेकर कि कोई महर्षि का आगमन हो गया है। कोई आदमी कांटों पर लेटा हुआ है।
यह आदमी दुखवादी है। यह दूसरे को दुख नहीं दे रहा, खुद ही को दुख दे रहा है, मगर दुख तो दे रहा है। और दुख देना तो एक ही बात है। किसको दिया, बहुत फर्क नहीं पड़ता। पहले आदमी को तुम बुरा कहते हो, दूसरे आदमी को भला कहते हो? अगर कोई किसी दूसरे को भूखा मार रहा है, तो तुम कहोगे--यह पापी है; और कोई अपने को भूखा मार रहा है तो तुम कहते हो--पुण्यात्मा है, उपवास कर रहा है।
यही कारण है कि ये दोनों वृत्तियों के लोग मेरे विपरीत होंगे। क्योंकि मैं दोनों के विपरीत हूं। मैं तुम्हें एक ऐसा धर्म देना चाहता हूं जो न तो दूसरों को दुख देता है, न अपने को दुख देता है। जिसकी आस्था ही दुख में नहीं है। धर्म तो आनंद की आस्था है। और आनंद तभी फलित होगा जब तुम सब तरह के दुख देने बंद करोगे। न तो पर-दुखवादी, न स्व-दुखवादी।
सगले जनम जीव संहारै, यहु खोटे शटकर्मा।
पाप प्रपंच चढ़ै सिरि ऊपर, नाम कहावै धर्मा।।

लोग और हजार तरह के पाप करते हैं धर्म के नाम पर, और मजा लेते हैं; क्योंकि नाम कहावै धर्मा। किसी ने धर्मशाला बनवा दी। कोई पूछता ही नहीं कि धर्मशाला बनाने के लिए उसने क्या-क्या किया! किसी ने मंदिर बनवा दिया। कोई पूछता ही नहीं कि मंदिर को बनाने में क्या-क्या उसे करना पड़ा! नही, धर्म की आड़ में सब छिप जाता है। धर्म का नाम होना चाहिए, फिर तुम्हारे सारे पाप क्षमा हो जाते हैं। उसी क्षमा के लिए लोग करोड़ों रुपये की चोरी करेंगे और लाख रुपये का दान कर देंगे। वह दान थोड़ा उनके अपराध-भाव को कम करवा देता है। उनको भी लगने लगता है कि मैं कोई पापी ही नहीं हूं, पुण्यात्मा भी हूं। फिर लोग भी कहते हैं कि महादानवीर बड़े दाता, बड़े धार्मिक, मंदिर बनवाया, धर्मशाला खुलवा दी। कम से कम प्याऊ बिठला दी--गर्मी के दिन, प्यासे राहगीरों के लिए इंतजाम करवा दिया! मगर यह आदमी दूसरी तरफ क्या कर रहा है, इससे किसी को चिंता नहीं है। इसलिए एक आश्चर्यजनक घटना घटती रहती है--धर्म भी चलता रहता है, धर्म के पीछे सब तरह की हिंसा, सब तरह का पाप भी चलता रहता है। पाप प्रपंच चढ़ै सिरि ऊपरि, नाम कहावै धर्मा।
पाप का क्या अर्थ होता है? पाप का अर्थ होता है, या तो अपने को दुख
देना, या दूसरे को दुख देना। दुख देना पाप है। जहां तक बन सके दुख न देना। तुम पूरे-पूरे सफल हो पाओगे, यह जरूरी नहीं है। क्योंकि दुख लेने वाले लोग
भी हैं। इस दुनिया में। तुम न दो तो भी लेते हैं। लेकिन तुम्हारी तरफ से इतना काफी है कि तुम किसी को दुख देने के लिए उत्सुक नहीं थे, आतुर नहीं थे। दुख लोग भी हैं। दुख लेने वाले इतने कुशल हैं कि तुम्हें पता ही नहीं चलेगा
कि तुमने दुख दिया कब, और ले लेंगे। अगर तुम हंसते हुए रास्ते से गुजर रहे हो, कोई दुखी हो जाएगा। तुम अगर स्वस्थ हो तो कोई दुखी हो जाएगा। तुम अगर आनंदित हो तो लोग दुखी हो जाएंगे। लोग तुम्हें क्षमा न कर पाएंगे।
तुमने एक मजे की बात देखी? जब तुम दुखी होते हो, तुमसे कोई नाराज नहीं
होता। सब तुम्हारे प्रति सहानुभूति दिखलाते हैं। कहते हैं--बेचारा। लेकिन जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम्हारे प्रति कोई सहानुभूति दिखलाता है? कोई सहानुभूति नहीं दिखलाता, सारी दुनिया तुम्हारे विपरीत हो जाती है। ईर्ष्या पैदा होती है। जलन पैदा होती है, आग लगती है। इसलिए तुम किसी भी सुखी आदमी को क्षमा नहीं कर पाते।
तुमने ऐसे ही थोड़े बुद्ध को पत्थर मारे, तुम क्षमा नहीं कर पाए। तुमने महावीर के कानों में ऐसे ही थोड़े सलाखें छेदीं, तुम क्षमा नहीं कर पाए। इस आदमी का आनंद तुम बरदास्त नहीं कर सके। तुमने कहा--फिर हम क्या रहे हैं? यह आदमी इतना आनंद ले रहा है! इसके आनंद ने तुम्हें अपने दुख का बोध करवा दिया। इसके आनंद की लकीर ने तुम्हारे दुख की लकीर साफ करवा दी। इसके आनंद की बिजली क्या कौंधी, तुम्हारे जीवन के सारे काले बादल तुम्हें दिखाई पड़ गए। तुम क्षमा नहीं कर पाए। अभी तक सब ठीक था--न बिजली कौंधी थी, न तुम्हें पता था कि जीवन में इतना अंधकार है। यह बिजली कौंधानेवाला आदमी क्षमा नहीं किया जा सकता। तुम सदा आनंदित लोगों के विपरीत रहे हो।
इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम अगर चेष्टा न करोगे लोगों को दुख देने की तो लोग दुख न लेंगे। वह उनकी मर्जी! वे जो लेना चाहते हैं वे लेंगे। मगर तुम मत देना। तुम्हारे भीतर विधायक रूप से दुख लेने-देने की वृत्ति का विदा हो जाना पुण्य है। तुम्हारे भीतर दुख देने में किसी तरह का रस रहे, तो पाप है।
दुख देने में रस होता है। इसे तुम जांचना तो तुम्हें समझ में आ जाएगा। क्या रस होता है? जब भी तुम किसी को दुख दे पाते हो तो तुम्हें मालूम होता है कि तुम्हारे पास शक्ति है। जब भी तुम किसी को दुखी कर सकते हो, जितने ज्यादा लोगों को दुखी कर सकते हो, उतना शक्ति का अनुभव होता है। और लोग शक्ति के दीवाने हैं। जब तुम किसी को दुःखी नहीं कर पाते, तो तुम्हें लगता है कि अपना कुछ बल ही नहीं। निर्बल मालूम होते हो। इसलिए लोग दुःख देने में रस लेते हैं।
छोटा-सा मौका मिल जाए तो चूकते नहीं। छोटा सा बच्चा अपनी मां से पूछ रहा है कि जरा मैं बाहर चला जाऊं, खेल आऊं, वह कहती है--नहीं! तुम जानते हो यह नहीं क्यों कह रही है? कुछ ऐसा नहीं कि बाहर कोई खतरा है, कि बच्चे के

जीवन को कोई खतरा है, कि धूप में खेलने में कोई बरबादी हो जाने वाली है--और ऐसा भी नहीं कि बच्चा धूप में खेला नहीं है पहले, और ऐसा भी नहीं कि बच्चा आज भी नहीं खेलेगा, खेलेगा; बच्चा भी जानता है कि यह नहीं सब बकवास है-- बच्चा वहां जोर मार कर खड़ा हो जाएगा, पैर पटकने लगेगा, सिर धुनने लगेगा, लेकिन मां एकदम से नहीं क्यों कहती है? माताओं से हां निकलता ही नहीं। बड़ा मुश्किल है, एकदम कंठ अवरुद्ध हो जाता है। "हां" अटक जाता है। "नहीं" एकदम सरलता से आता है। "नहीं" में बल मालूम होता है। "नहीं"ं में बल है।
तुम देखो, स्टेशन पर गए हो, टिकट खरीदने खड़े हो, क्लर्क बैठा है, कुछ नहीं कर रहा है, अपना खाता खोलकर देखने लगता है। कुछ नहीं है उसको, न कुछ काम है, मगर वह अपनी किताब देख रहा है--अब वह तुमसे यह कह रहा है कि खड़े रहो, तुमने समझा क्या है? अपने आपको समझते क्या हो? खड़े रहो! तुम्हारी तरफ देखेगा ही नहीं। वह यह सिद्ध कर रहा है--तुम ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे! चले आए! जब मौज हुई तब चले आए! जैसे तुम्हारे यह बाप का घर है! इधर मालकियत मेरी है! थोड़ा-सा मजा ले रहा है बल का। थोड़ा सा रस ले रहा है।
इसलिए लोग "नहीं" कहने में रस लेते हैं। "हां" कहने में मजबूरी अनुभव करते हैं। छोटा बच्चा भी समझ लेता है कि ऐसे काम नहीं चलेगा, यह दुनिया संघर्ष की है। यहां अगर "हां" कहलवाना है तो इतना उपद्रव खड़ा करना पड़ेगा कि मां को "नहीं" कहने में दुख मालूम होने लगे और "हां" कहने में सुख मालूम हो, तब स्थिति बदलेगी। यह सीधा संतुलन है। यह सीधा समीकरण है। वह शोरगुल मचाएगा, चीजें तोड़ने लगेगा, खिलौने की टांग निकाल कर रख देगा, चढ़ जाएगा घड़ी को बदलने लगेगा, तो मां उससे कहेगी जा, बाहर जा, बाहर खेल। यही वह कह रहा था पहले से कि मैं जरा बाहर चला जाऊं, मैं जरा बाहर खेल आऊं? अब उसने इतना दुख पैदा कर दिया, तब, तब, "हां" निकली।
यहां बड़ी छीनाझपटी चल रही है। यहां सारा बल का प्रदर्शन चल रहा है। हर आदमी कोशिश कर रहा है--कौन बलवान है? और ऐसा मत समझना कि दुश्मन ही ऐसी कोशिश कर रहे हैं, मित्र भी इसी कोशिश में लगे हैं। बाप कोशिश करता है कि कौन बलवान है--बेटा कि मैं? पति कोशिश करता है कौन बलवान है--पत्नी कि मैं? पत्नी भी इसी कोशिश में लगी है, सब इसी कोशिश में लगे हैं कि कौन बलवान है? मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन उसके पीछे भाग रही है, लिए हुए है अपना मूसल। वह एकदम से बिस्तर के नीचे घुस गया। इतने में ही मोहल्ले से कुछ पड़ोसी आ गए। पत्नी ने आकर उससे कहा कि बाहर निकल आओ, पड़ोसी आ गए हैं! उसने कहा कि आने दो; आज यह सिद्ध हो ही जाएगा इस घर में मालिक कौन है? आज मैं निकलनेवाला नहीं--कोई मुझे निकाल सकता नहीं अपना घर है, जहां बैठना है वहां बैठेंगे। बैठा बिस्तर के नीचे है! मगर वह यह कह रहा है--आज पड़ोसियों को पता चल जाना चाहिए कि कौन मालिक है यहां। हर कोशिश आदमी यही कर रहा है कि सिद्ध हो जाए--मैं मालिक हूं।
मेरी दृष्टि में पाप का अर्थ है, मैं बलशाली हूं दूसरे से, इसकी चेष्टा। इस बात की चेष्टा कि दुख देकर मैं अपनी मालकियत की घोषणा करता हूं। इस बात की चेष्टा कि मैं दूसरे की गर्दन दबा दूं और बता दूं कि जानते हो मैं कौन हूं? तुम कुछ भी नहीं, मेरे सामने तुम क्या हो, खेत की मूली हो! पुण्य का क्या अर्थ होता है? पुण्य का अर्थ होता है--यह वृत्ति गई। अब यह चेष्टा करने की कोई जरूरत न रही, क्योंकि सब जगह एक ही छिपा है। वही एक है-- मुझमें भी, दूसरे में भी; बच्चे में भी, मां में भी; शक्तिशाली में, दुर्बल में; सब में एक ही है, यहां दो हैं ही नहीं।
पाप प्रपंच चढ़े सिरि ऊपरि, नाम कहावै धर्मा।।
आप दुखी औरां दुखदायक, अंतरि राम न जान्या।
खुद भी दुखी हो, औरों को भी दुख दे रहे हो। यह होगा भी। जो दुखी है, वह दुख ही दे सकता है। तुम वही तो दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। तुम वह देना भी चाहो जो तुम्हारे पास नहीं, तो कैसे दोगे? तो ध्यान रखना, जब तुम दुख दे रहे हो तो तुम सिर्फ एक बात की घोषणा कर रहे हो कि तुम दुखी हो। सुखी सुख देता है, दुखी दुख देता है।
और एक और मजा है, गणित और भी समझ लेना, जो तुम देते हो, वही बढ़ता है। क्योंकि वही लौटता है। दुख दोगे, दुख लौटेगा। सुख दोगे, सुख लौटेगा। तो जो

दुखी है, दुख देता है, और दुख देने के कारण और दुख लौटता है--और दुखी हो जाता है। और दुखी हो जाता है, और दुख देता है। अब उसने एक दुष्चक्र पैदा कर लिया। इस दुष्चक्र का नाम नरक है। नरक कोई स्थान नहीं है, यह मन की गलत प्रक्रिया का नाम नरक है। अब यह फंस गया जाल में। अब और दुख लौटेगा, यह और नाराज होकर दुख देगा और जितना दुख देगा उतना गुणनफल होता जाएगा और जितना दुख बढ़ता जाएगा, उतना दुख देने लगेगा। अब कैसे बाहर आएगा? इस वर्तुल के बाहर आना मुश्किल हो जाएगा। यही तुम्हारे जन्म-जन्म का फेरा है।
सुख का गणित भी यही है। जो सुखी है, सुख देता है। सुख देता है तो सुख लौटता है। जरा मुस्कुराओ तो दूसरा भी मुस्कुराने लगता है। और जब दूसरा मुस्कुराता है, तुम्हारे भीतर मुस्कुराहट और बढ़ जाती है। यह आसान है, जब चारों तरफ लोग मुस्कुराते हों तो मुस्कुराना आसान है। हंसो, सारी दुनिया तुम्हारे साथ हंसती है। रोओ, और तुम अकेले रोते हो। दो सुख! बांटो सुख! यह पुण्य!
लोग कहते हैं--पुण्यात्मा को सुख मिलता है। इसलिए नहीं कि कोई परमात्मा वहां बैठा है और बांट रहा है कि यह पुण्यात्मा, इसको जरा सुख दो, और यह जरा पापी, इसको जरा दुख दो। कोई बांटने वाले की जरूरत नहीं है। यह सहज प्रक्रिया है। दुख दुख लाता है, सुख सुख लाता है। न कोई बांटता है, न कोई न्यायकर्ता बैठा है, न कोई अदालत है न कोई कयामत का दिन है कि जिस दिन निर्णय होगा और क्रबों से लोग उठाए जाएंगे और पूछा जाएगा--तुमने क्या-क्या पाप किए? और फिर हरेक को पाप के हिसाब से दंड दिए जाएंगे, पुण्य के हिसाब से पुरस्कार दिए जाएंगे।
ये बचकानी बातें हैं। यह कोई तुमने प्राइमरी स्कूल समझा है कि साल के बाद में बस पुरस्कार मिलेंगे। स्वर्ण पदक मिलेंगे, खिलौने बांटे जाएंगे और एक ही दिन में यह सब हो जाएगा, तुम्हें मालूम है! एक ही दिन में!
एक पादरी समझा रहा था चर्च में लोगों को। उसने बड़ा वीभत्स चित्र खींचा कि कैसी-कैसी मुश्किलें होंगी कयामत के दिन--सारे पापों का लेखा- जोखा होगा!
एक आदमी बहुत घबड़ा गया सुनते-सुनते, एकदम उसकी श्वास चढ़ गई। वह खड़ा हो गया, उसने कहाः यह एक ही दिन में सब होगा? सब आदमी वहां होंगे, सब औरतें वहां होंगी, सब पशु-पक्षी, सब वहां होंगे, और एक ही दिन में यह सब होगा? फिर वह बैठ गया, उसने कहाः फिर मुझे कोई फिकर नहीं। तो मेरा नंबर शायद ही आए! इतना उपद्रव मचेगा, कौन मुझे देखेगा! मैं कोई बड़ा पापी भी नहीं हूँ, ऐसे छोटे-मोटे पाप, यही कि किसी के खीसे से दो रुपये निकाल--यह भी कोई पाप है! ऐसे वह भी कोई लेकर आया था दो रुपये! उसने किसी और के खीसे से निकाल लिए थे। कोई कुछ लेकर आया नहीं, इसलिए सब दूसरों के खीसों से ही निकाल रहे हैं--कि किसी को एक चाँटा मार दिया था।
कहते हैं एक दिन अकबर अपने दरबार में खड़ा था, उसने एक चांटा मार दिया बीरबल को--किसी बात पर नाराज हो गया, बीरबल ने कुछ ऐसी बात कह दी कि अखर गई। बीरबल तिलमिला कर रह गया, दिल तो हुआ कि मार दे एक चांटा खींच कर इसको; मगर जरा महंगा सौदा हो जाएगा। समझदार आदमी था। मगर इस वक्त कुछ न करना भी बड़ी बेइज्जती की बात थी। तो उसने पास खड़े एक आदमी को खींच कर चांटा मारा। उस आदमी ने कहाः वाह भई, यह भी खूब हुआ! मैंने तो कुछ किया नहीं। उसने कहाः तुम दूसरे को मारो जी, बातचीत में समय क्यों गंवाना; चलाते जाओ जहां तक चले, आखिरी आदमी जानेगा-समझेगा।
और यहां हम आखिरी कोई भी नहीं हैं, यहां हम सब वर्तुल में खड़े हैं। यहां हर चीज लौट आती है। यहां क्या पाप हैं, क्या भूलें हैं--छोटी-मोटी! वह आदमी ठीक ही कह रहा है--एक दिन में अगर सबका ही निर्णय होना है, तो वहां ऐसी बकवास मचेगी, ऐसा शोरगुल मचेगा, ऐसी चीख-पुकार मचेगी कि कौन किसकी सुनेगा! तो मेरा तो नंबर शायद ही आए! वह बैठ गया, उसने कहाः फिर मुझे कोई फिकर नहीं है। मैं शांति से पीछे ही बैठा रहूंगा, नंबर शायद ही आए।
ये सब बचकानी धारणाएं हैं धर्म की। ऐसा न कोई कयामत का दिन है, न कयामत
की रात है; न कोई निर्णय करनेवाला है, न कोई निर्णय करने की जरूरत है। जीवन नियम से चल रहा है, यहां नियंता नहीं है।

नियम क्या है?
नियम सीधा-साफ है--जो दोगे, वह मिलेगा। जो बोओगे, वह काटोगे। आप दुखी औरां दुखदायक, अंतरि राम न जान्या। और यही उपद्रव में उलझे रहोगे, दुख लेते रहोगे, देते रहोगे, राम को कब जानोगे, सुख कब जानोगे--राम यानी सुख। अंतर राम न जान्या।
जन रज्जब दुख देहि दृष्टि बिन, बाहरि पाखंड ठान्या।।
और जब तक यह दृष्टि तुम्हें न खुल जाए कि राम भीतर है, सुख भीतर है, तब
तक तुम्हारा सारा जीवन, तुम्हारा सब धर्म, कर्म, सब पाखंड है--इससे अतिरिक्त कुछ भी नहीं।
मैंने सुना है--
मैं आदमी नहीं बनना चाहता--सांप ने कहा। मैं भी नहीं--गिलहरी बोली। अगर मैं आदमी बन जाऊं तो मेरे लिए अखरोट कौन जमा करेगा? और आदमी के दांत इतने कमजोर होते हैं कि वह किसी चीज को काट ही नहीं सकता, मुझे भी आदमी बन कर क्या लेना है--चूहे ने फरमाया। और मैं भी आदमी नहीं बनना चाहता--गधे ने मामला समाप्त करते हुए कहा--भला मैं आदमी बन कर क्या पाखंडी बनना चाहता हूँ।
आदमी इस पृथ्वी पर अकेला पाखंडी है। बाकी सब सहज सरल हैं। जैसा है वैसा ही है। ज्यूं का त्यूं ठहराया। सब वैसे ही का वैसा ठहरा है। पीपल पीपल है, नीम नीम है, आम आम है। सब वैसा का वैसा ठहरा है, सिर्फ आदमी डांवाडोल है। आदमी कुछ का कुछ हो जाता है। कुछ भीतर, बाहर कुछ। कुछ कहता, कुछ करता। कुछ हिसाब ही नहीं है। न मालूम कितनी पर्तें दर पर्तें हैं। न मालूम कितना पाखंड है। धीरे-धीरे याद ही नहीं रह जाती कि मैं कौन हूं--इतने नकाब लगा देता है, इतने मुखौटे ओढ़ लेता है, पहचान ही भूल जाती है कि मेरा असली चेहरा क्या है?
और यह होगा ही, जब तक तुम जीवन के इस परम नियम को न समझ लोगे--
आप दुखी औरां दुखदायक अंतर राम न जान्या।
जन रज्जब दुख देहि दृष्टि बिन, बाहरि पाखंड ठान्या।।
और जब तक तुम्हें वह दृष्टि न मिल जाए जो भीतर राम को देख लेती है, सुख
को पा लेती है, सुख के सागर को पा लेती है, तब तक तुम दुख ही देते रहोगे और तुम्हारा जीवन पाखंड ही रहेगा। दुखी आदमी पाखंडी रहेगा। सुखी आदमी ही सरल हो सकता है। क्यों? क्योंकि दुखी आदमी पहले तो अपना दुख छिपाता है। इसलिए पाखंड शुरू हो जाता है। क्या सार है अपना दुख दिखाने से! तुम भी जब घर से निकलते हो तो सज-संवर कर निकलते हो। देखते हो स्त्रियां कितनी देर आईने के सामने गंवाती हैं! कोई ऐसे ही थोड़े, बाहर जा रही हैं! और बाहर तो दिखलाना है कि सारा सौंदर्य उनका, सारी सुगंध उनकी, बाहर तो धोखा खड़ा करना है। घर में देखो उनको, तो भैरवी बनी बैठी रहती हैं कि पति देखे कि डर जाए, कि उसके हाथ-पैर कंपने लगें। बाहर जाएं तो सब व्यवस्थित कर लेती हैं।
तुम भी देखते हो? घर में पति और पत्नी लड़ रहे हैं और कोई दस्तक दे देता है, दोनों एकदम मुस्कुराने लगते हैं--आइए, आइए, बिराजिए! बाहर तो हमें चेहरे बचाए रखने होते हैं न। घर में मेहमान आता है तो लोग पास-पड़ोस से चीजें मांग लाते हैं, उधार सोफे लगा लेते हैं, तस्वीरें टांग देते हैं-- दूसरे को दिखाना है कि हम बड़े मस्त हैं, हम बड़े प्रसन्न हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं, कुछ गड़बड़ नहीं है। ऐसा ही दूसरे भी कर रहे हैं, ख्याल रखना। उनको देख कर तुम धोखे में आ रहे हो, तुम को देख कर वे धोखे में आ रहे हैं। दुनिया में हर आदमी यही सोच रहा है--मुझे छोड़ कर सब बड़े सुखी मालूम होते हैं। कोई यहां सुखी नहीं है। पाखंड शुरू हुआ।
और तुम जब भीतर दुख से भरे हो और ऊपर मुस्कुराहट और भीतर आंसू ही आंसू,
तो तुम्हारे जीवन में दो पर्तें हो गईं, दो खंड हो गए--एक दिखाने का... तुम्हारे खाने के दांत अलग, दिखाने के अलग हो गए। अब तुम झूठ की दुनिया में उतरे। अब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाओगे--समझो किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए, वह स्त्री तुम्हारी मुस्कुराहट देख कर प्रेम में पड़ गई, उसे पता नहीं तुम्हारे आंसुओं का; कितनी देर तक छिपाओगे आंसू? तुम उस स्त्री की छवि देख कर मोह में पड़ गए--छवि जो समुद्रतट पर दिखाई पड़ती है, घरों में नहीं

पाई जाती; छवि जो घंटों आईनों के सामने निर्मित करनी पड़ती है; छवि जो असली नहीं है; छवि जो नियोजित है; तुम उसके मोह में पड़ गए, तुमने कहा--बड़ी सुंदर स्त्री है। और जब दो-चार दिन में पाउडर सरक जाएगा, बालों का असली रंग बाहर आ जाएगा, तब मुश्किल होगी।
एक आदमी ने विवाह किया। वह.जरा परेशान था। हनीमून पर गए थे। पत्नी ने पूछा कि तुम बड़े परेशान हो, इतनी गर्मी तो नहीं और तुम पसीने-पसीने हो। उसने कहाः अब एक बात तुझसे क्या छिपाएं कि मेरे दांत नकली हैं। पत्नी ने कहा कि धन्यवाद तुम्हारा, इसमें कुछ हर्जा नहीं है, क्योंकि तुमने मुझे भी मेरे भार से मुक्त कर दिया, मेरे बाल भी नकली हैं, मेरे दांत भी नकली हैं, मेरी एक आंख भी नकली है, मेरी एक टांग भी नकली है; तुमने मुझे सारे भार से ही मुक्त कर दिया। अब हम निश्चिंत होकर असली हो जाएं। अब अलग करें ये सब चीजें। मगर इन्हीं सब चीजों के अलग होने में सारा प्रेम है। वह प्रेम जो हुआ था, वह एक धोखा था।
और तुम हंसना मत इस बात पर, यही हालत है। तुम एक चेहरा दिखलाते हो, फिर
उस चेहरे के मोह में कोई पड़ जाता है; फिर असली चेहरा जब दिखलाई पड़ता है तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। फिर दुख पैदा होता है। दुखी हम हैं, दुख को छिपाते हैं, मगर कब तक छिपाओगे? जो है, वह छलकेगा।
"जन रज्जब दुख देहि दृष्टि बिन।"
दृष्टि के बिना यह स्थिति बनी ही रहेगी। यह दुख की दशा बनी ही रहेगी। दर्शन चाहिए, दृष्टि चाहिए। दृष्टि, जो तुम्हें यह दिखा दे कि तुम्हारे भीतर तुम्हारे आत्मा में पड़ा हुआ सुख का खजाना है। राम भीतर विराजमान हैं। एक बार उनसे पहचान कर लो। बाहर जिसको खोजते रहे; खोजते रहे और न पाया, वह भीतर बैठा है। एक बार खोज छोड़ो और भीतर झाँको।
म्हारो मंदिर सुनो राम बिन, बिरहणि नींद न आवै रे।
पर-उपगारी नर मिलै, कोई गोविंद आन मिलावै रे।।
जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा जीवन व्यर्थ है, और राम के बिना मंदिर सूना है, उस दिन तुम गुरु की तलाश में निकलोगे। राम का तुम्हें पता नहीं, संसार का पता था, वह व्यर्थ हो गया; जिसका पता था, वह काम न आया, और जो काम में आ सकता है, उसका कुछ पता नहीं। अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी को खोजना पड़ेगा, जिसे उसका पता हो। जो उन ऊंचाइयों पर गया हो। जिसने उन गहराइयों में डुबकियां ली हों।
"पर-उपगारी नर मिलै कोई, गोविंद आन मिलावै रे।"
राम की तलाश में गुरु का पड़ाव आता है। संसार की तलाश तो अकेले भी हो जाए, क्योंकि यहां सारे के सारे संसारी तुम्हारे चारों तरफ हैं। उनको देख-देख कर भी काम चल जाता है असत्त में उनको देख-देख कर ही काम चलता है, और तुम संसार सिखते कैसे? छोटा सा बच्चा आता है, वह संसार कैसे सीखता है! बाप को देखता है, मां को देखता है, पड़ोस के लोगों को देखता है, देखते-देखते संसारी हो जाता है--अनुकरण करने लगता है। लेकिन यहां संसार में तुम इस तरह के लोगों की भीड़ तो है नहीं जिन्होंने राम को पाया हो, जिनके पास बैठ कर तुम अनुकरण कर लो, यहां तो कभी विरला कोई मिलेगा जिसका मंदिर भरा हो, जिसकी ज्योति जली हो, खोजना पड़ेगा। संसार तो बिना खोजे सीख लिया जाता है, क्योंकि संसार में सभी गुरु हैं। संसार के गुरु तो सभी हैं, हर एक से सीख लोगे तुम। मोहल्ले-पड़ोस के लोग सिखा रहे हैं, स्कूल में सिखाया जा रहा है; बाजार में, दुकान में, जहां जाओगे जीवन का अनुभव ही तुम्हें संसार सिखा देगा। लेकिन परमात्मा को कहां सीखोगे? परमात्मा का तो कुछ पता नहीं है। किसी की तलाश करनी होगी।
म्हारो मंदिर सूनो राम बिन, बिरहिरण नींद न आवै रे।
पर-उपगारी नर मिलै कोई, गोविंद आन मिलावै रे।।
चेती बिरहिण चित न भाजै, ...
और एक बार यह चेतना आ गई कि संसार व्यर्थ है, फिर चित्त को कुछ भी नहीं भाता।
चेती बिरहणि चित न भाजै, अविनासी नहिं पावै रे।

जब तक अविनासी न मिले, तब तक फिर चैन नहीं। तब तक फिर एक बेचैनी है, एक विरह है, एक वियोग है।
यहु बिवोग जागै निसबासर, बिरहा बहुत सतावै रे।।
संसार व्यर्थ, सब किया-धरा व्यर्थ, और परमात्मा का हमें कुछ पता नहीं; खड़े हो गए बीच में। हाथ में जो है, राख, और हीरा कहां पड़ा है, हमें कुछ पता नहीं, ऐसी घड़ी में गुरु की तलाश शुरू होती है। और सच तो यह है, अगर ऐसी घड़ी तुम्हारे जीवन में आ जाए तो गुरु अपने-आप तुम्हारी तलाश करता आ जाता है। मिस्र की पुरानी कहावत है--बहुमूल्य कहावतों में से एक--कि जब शिष्य तैयार होता है, गुरु प्रगट हो जाता है। तैयारी यही है, इसी जगह खड़े हो जाओ तुम, संसार व्यर्थ है यह तुम्हारे भीतर गहरी हो जाए बात। फिर तुम अचानक पाओगे कोई हाथ आ गया, जिसने तुम्हें पकड़ लिया। कोई ले चला, कोई किरण तुम्हें ले चली एक नई यात्रा पर, एक नए आयाम में।
चेती बिरहणि चित ना भाजै, अविनासी नहिं पावै रे।
यहु बिवोग जागै निसबासर, ...
और यह परमात्मा का वियोग ऐसा नहीं है कि थोड़ी-बहुत देर, यह निसबासर, दिन-रात, सोते में भी आंसू झलकते रहेंगे; सोते में भी भीतर यह प्यास जगती रहेगी।
बिरह बिवोग बिरहणि बींधी, घर बन कछु न सुहावै रे।
फिर कुछ अच्छा नहीं लगता--न घर, न जंगल; न अपने, न पराए; न सफलता, न विफलता; न यश, न अपयश; फिर कुछ भाता नहीं। "म्हारो मंदिर सूनो राम बिन।" फिर तो बस एक ही बात सताती है कि मेरा मंदिर अभी खाली है, कि मेरा मंदिर अभी भरा नहीं, कि मेहमान अभी आया नहीं, कि जिंदगी ऐसे ही बीती चली जा रही है, कि मेरी प्रतीक्षा अभी अधूरी है, कि मेरे द्वार जिसकी प्रतीक्षा है उसका आगमन अभी नहीं हुआ। बंदनवार सजाए हैं, आरती सजाई हैं, धूप-दीप बाले हैं, अतिथि कब आएगा?
दह दिसि देखि भयो चित चकरित, कौन दया दरसावै रे।
और ऐसी दशा में बड़ी अड़चन होती है, सब दिशाओं में खोजता है आदमी, दसों दिशाओं में खोजता है, और चक्कर बढ़ता जाता है। क्योंकि सद्गुरु तो बहुत मुश्किल है, असदगुरु बहुत आसान है। पुरोहित-पंडित बहुत आसान हैं। वे हर जगह मौजूद हैं। वे बिल्कुल सस्ते हैं। वे तुम्हारा कान फूंकने को तैयार हैं। वे तुम्हें मंत्र देने को तैयार हैं। वे तुमसे कहते हैं कि यह लो, इसी मंत्र को जपते रहो, सब ठीक हो जाएगा। वे तुम्हें सस्ते नुस्खे देने को तैयार हैं। सदगुरु तुम्हें मिटाएगा, तुम्हें भस्मीभूत करेगा; सदगुरु तुम्हें धीरे-धीरे तोड़ेगा। तुम मिटोगे, तो ही तुम्हारा नया जन्म हो सकता है।
"दह दिसि देखि भयो चित चकरित।"
तो साधक और मुश्किल में पड़ जाता है, चारों तरफ खोजता है और चक्कर पैदा
हो जाता है। किसकी माने? किसकी सुने? कौन सही? कौन गलत? कैसे निर्णय होगा? निर्णय इस बात से ही होता है कि अगर तुम्हारी प्यास सच है, तो परमात्मा किसी गुरु के रूप में तुम्हें खोजता हुआ स्वयं आ जाता है। और कोई चीज निर्णायक नहीं है। तुम्हारी प्यास अगर वास्तविक है, प्रामाणिक है, अगर मुमुक्षा सच है, तो यह अस्तित्व सच का साथ देता है।
ऐसा सोच पड़ा मन माहीं समझि समझि धूधावै रे।
धू-धू करके जलता है साधक। जबसे विरह पैदा होता है, संसार व्यर्थ हुआ
और राम की याद आनी शुरू हुई, तब से धू-धू करके जलता है। तुम्हें ऐसे बहुत लोग मिल जाएँगे जो सांत्वना देंगे और पानी छिड़क कर तुम्हारी धू-धू जलती हुई आग को बुझा देंगे। उनसे बचना। क्योंकि सत्य सांत्वना से नहीं मिलता। आग को बुझाना नहीं है, गहन करना है। आग को बुझानेवाले के पास मत जाना, यह आग ऐसी नहीं जो बुझाई जाती है, फायर डिपार्टमेंट को खबर मत कर देना कि आग लग गई, कि आओ और बुझाओ! तुम्हारे पंडित-पुरोहित यही करते हैं। तुम बेचैन होते हो, परेशान होते हो, वे जब तुम्हें सांत्वना देते हैं। वे जब तुम्हें ताबीज दे देते हैं। वे जब कहते हैं--इससे सब ठीक हो जाएगा। यह लो हनुमान

चालीसा, यह बड़ा संकटमोचन है, जब भी तकलीफ हो, इसकी याद कर लेना, यह सब बचाएगा, यह तुम्हारी रक्षा करेगा!
सदगुरु तुम्हारी रक्षा नहीं करता, सद्गुरु तुम्हें बचाता नहीं, सदगुरु तो तुम्हारी मृत्यु है, सदगुरु तो तुम्हें बिल्कुल नष्ट कर देगा, तुम्हें पोंछ देगा, कुछ भी न बचने देगा--जब तुम बिल्कुल न बचोगे, उसी शून्य में परमात्मा का अवतरण होता है; उसी में मंदिर भरता है। "म्हारो मंदिर सूनो राम बिन।"
तुम गए कि राम आया। यह मिलन बड़ा अदभुत है। इसको मिलन कहना भी शायद ठीक नहीं। क्योंकि जब तक तुम हो, तब तक यह मिलन नहीं होगा, और जब तुम चले जाओगे, तभी यह मिलन मिलन होगा। हेरत हेरत हे सखि, रह्या कबीर हेराइ। जब तुम खो जाओगे खोजते-खोजते, तब मिलना होता है।
बिरहबान घटि अंतरि लाग्या, घाइल ज्यूं घूमावै रे।।
और अब तो बाण ऐसा लगता है और गहरा होता जाता है--सदगुरु के पास जाओगे
तो बाण गहरा होगा। सदगुरु मलहम-पट्टी नहीं है। और बाण को चुभाएगा, और गहरा करेगा, और खोदेगा, और तुम्हारे हृदय में गहरा उतारेगा विरह को। बिरहबान घटि अंतरि लाग्या, घाइल ज्यूं घूमावै रे। ऐसा लगने लगेगा बहुत बार कि पीड़ा के कारण मूर्छा आई जा रही है। लेकिन यह मूर्छा नए जागरण का प्रारंभ है। यह मूर्च्छा नहीं है। मूर्छित तो तुम अब तक थे, अब होश आ रहा है।
बिरह- अगिन तन पिंजर छीनां, ...
और यह विरह की अग्नि में तुमने जो अपने को अब तक जाना है, वह सब छिनने लगेगा, क्षीण होने लगेगा।
बिरह अगिन-तन पिंजर छीनां, पिवकूँ कौन सुनावै रे।
और ऐसी घड़ी आएगी तब तुम्हें लगेगा कि मैं तो गया, मैं तो मिटा, और परमात्मा से निवेदन भी न कर पाया, जो कहना था वह भी न कह पाया, यह तो मेरी श्वास आखिरी छूटने लगी... "बिरह-अगिन तन-पिंजर छीनां, पिवकूं कौन सुनावै रे"... मेरी खबर मेरे जाने पर कोई प्यारे को कह देगा? ऐसा भी लगेगा; ऐसी घड़ी भी आ जाती है, ऐसी आत्यंतिक संकट की घड़ी आती है, जब तुम बिल्कुल मिट रहे होते हो, डूब रहे होते हो जैसे पानी में कोई डूब रहा है, और अब बचने का कोई उपाय नहीं दिखता। जब विरह में कोई ऐसे डूब जाता है कि बचने का कोई उपाय नहीं दिखता, उसी क्षण क्रांति घट जाती है, संक्रांति घट जाती है।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन पल पल बज्र बिहावै रे।।
और जब तक जगदीस न मिल जाए, तब तक बज्र की भांति पीड़ा बढ़ती जाती है, गहन होती चली जाती है; घाव बढ़ता जाता है, घाव-ही-घाव रह जाता है। भक्त एक घाव बन जाता है। भक्त की आंखें सिर्फ आंसुओं से भरी हो जाती हैं। संसार व्यर्थ हुआ, अब वहां आशा न रही, और अब जहां आशा लगी है, उसका कुछ पता नहीं, उस अज्ञात का कोई ओर-छोर नहीं, कहां खोजें उसे, किस दिशा में खोजें उसे, कैसे खोजें--न उसका कोई नाम है, न कोई पता है, न कोई ठिकाना--ऐसी घड़ी में गुरु का मिलन अनिवार्य है।
विरह को तुम जगाओ, गुरु तुम्हें खोजता चला आता है। यह अनिवार्य रूप से
घट जाता है। जैसे जब गहन गर्मी होती है तो बादल आ जाते हैं और वर्षा हो जाती है। ठीक ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर विरह गहन हो जाता है, तो गुरु का बादल आएगा, वर्षा हो जाएगी। इस वर्षा में तृप्ति है। इस वर्षा में ही जीवन की नियति की पूर्णता है।
धन्यभागी वे ही हैं, जो इस वर्षा में नहा जाते हैं, जो इस अमृत की धार
से भर जाते हैं।
किसी टूटे हुए मअबद में जैसे रो उठे दीपक
दिले-वीरां में यादों के दीये यूं टिमटिमाते हैं
मेरी टूटी हुई किश्ती बिशाते-जश्ने-तूफां है
तलातुम रक्स करते हैं, किनारे मुस्कुराते हैं
जब कोई ऐसी डुबकी लेता है--
किसी टूटे हुए मअबद में जैसे रो उठे दीपक...
जैसे किसी टूटे-फूटे मंदिर में दीया भभक उठे, रो उठे। दिले-वीरां में यादों के दीये यूं टिमटिमाते हैं

वीरान दिल में। क्योंकि जगत से तो सब वीरान हो गया, अब तो सिर्फ उसकी
एक याद रही--"म्हारो मंदिर सूनो राम बिन"।
दिले-वीरां में यादों के दीये यूं टिमटिमाते हैं
जैसे किसी टूटे हुए मअबद में जैसे रो उठे दीपक
मेरी टूटी हुई किश्ती बिशाते-जश्ने तूफां है...
और मेरी टूटी हुई किश्ती तूफान के उत्सव की बिछावन हो गई है...
मेरी टूटी हुई किश्ती बिशाते-जश्ने तूफां है
तूफान के लिए समर्पित कर दी है किश्ती। तूफान के उत्सव का अंग हो गई है।
मेरी टूटी हुई किश्ती बिशाते-जश्ने-तूफां है
तलातुम रक्स करते हैं, किनारे मुस्कुराते हैं
अब तूफान नाच रहा है और किनारे हंस रहे हैं। मिलन हो गया है। घड़ी आ गई। इसी घड़ी की तलाश जन्मों-जन्मों से थी। इसी सुबह की तलाश है। इसी सूरज की तलाश है।
बहुत देर वैसे ही हो चुकी, अब और देर न करो। उतरो घोड़े से! देखो मेरी आंखों में! उतरो घोड़े से! "रज्जब तैं गज्जब किया।" काफी कर चुके गजब, समय आ गया, जिस घोड़े पर भी सवार हो वहां से उतर आओ--धन का घोड़ा हो, कि पद का घोड़ा हो--जिस घोड़े पर भी सवार हो, उतर आओ। सब घोड़े झूठे हैं। यह घुड़सवारी बहुत हो चुकी, यह अकड़ बहुत हो चुकी, यह अहंकार अब छोड़ो। उतर आओ संसार के घोड़े से। परमात्मा दूर नहीं है। घोड़े से उतरे कि मिलन हो जाता है।
और मैं तैयार हूँ तुम्हें घोड़े से उतारने को। मेरे पास जिज्ञासु की तरह मत आओ। यहां जिज्ञासाएं तृप्त करने के लिए कोई आकांक्षा नहीं है।
यहां दार्शनिक प्रश्न लेकर मत आओ। यहां मुमुक्षा लाओ। यहां अभीप्सा लाओ।
लाओ हृदय, जो तीर खाने को तैयार है। लाओ प्यास, जो कहती है--"म्हारो मंदिर सूनो राम बिन"।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
चौथा प्रवचन

संन्यासः अस्तित्व के साथ प्रेम की एक कला

पहला प्रश्नः आप मंदिर-मस्जिदों के इतने खिलाफ हैं, फिर आप स्वयं ही क्यों यह विशाल मंदिर बना रहे हैं?

मंदिर और यहां! कुछ भूल हो गई होगी तुम्हारी समझ में। यह मंदिर नहीं है। मधुशाला भले हो! शराबबंदी के बावजूद भी मेरा भरोसा शराब में है। और शराब ऐसी कि चढ़े तो उतरे नहीं। और शराब बाहर के अंगूरों से ढाली गई नहीं-- भीतर के अंगूरों से ढाली गई।
यहां कैसा मंदिर, कैसी मस्जिद? यह तो पियक्कड़ों का जमाव है। यहां तो
जो पीने और पिलाने की तैयारी रखते हों, उन्हीं का स्वागत है। यहां हम परमात्मा की पूजा नहीं कर रहे हैं, परमात्मा को पी रहे हैं। हां, मेरे जाने के बाद शायद मंदिर बने। उसकी जिम्मेवारी तुम पर होगी। उसका कसूर तुम्हारा होगा। मेरे रहते तो यह मधुशाला ही रहेगी!
यही तो अड़चन है मंदिर-मस्जिद वालों को, कि यह मंदिर नहीं है, मस्जिद नहीं है। यही तो उनका विरोध है। यही तो उनकी नाराजगी है। और तुम कहते हो, यहां विशाल मंदिर बन रहा है! विशाल मधुशाला बन रही है। और जब भी कोई मंदिर जीवित होता है तो मधुशाला ही होती है। और जब कोई मधुशाला मर जाती है तो मंदिर हो जाता है।
मंदिर मधुशालाओं की लाशें हैं। बुद्ध थे, तो मधुशाला थी। मोहम्मद थे,
तो मधुशाला थी। मुसलमान के पास मस्जिद है। बौद्धों के पास मंदिर है। ये रेखाएं हैं समय की रेत पर छूट गई। शब्द पकड़ लिए गए, उनका रस तिरोहित हो गया है। अब वहां शराब नहीं ढाली जाती, अब वहां केवल शास्त्रों की चर्चा होती है। अब वहां कोई नाचता नहीं, वहां कोई उमंग नहीं हैं, वहां कोई प्रेम की बरखा नहीं होती है। अब तो वहां मरुस्थल हैं--सिद्धांतों के, तर्कों के, विवादों के।
यहां कोई विवाद नहीं है, कोई तर्क नहीं है। कोई सिद्धांत नहीं है--नाच है, गीत है, मस्ती है और तुम कहते हो, यहां मंदिर-मस्जिद बन रहा है! यहां कैसा मंदिर, कैसी मस्जिद? मेरा भरोसा ही पूजा पर नहीं है। मेरा भरोसा मस्ती पर है। हां, मस्ती से पूजन उठे, मस्ती पूजन बन जाए, तो प्यारी है। ध्यान रखना, पूजा से मस्ती कभी नहीं उठी है। और जब भी कभी सच्ची पूजा उठी है तो मस्ती से उठी है।
दुनिया में कुछ चीजें हैं जो तुम संकल्प से न कर सकोगे। और उन्हें ठीक-ठीक समझ लेना, अन्यथा जीवन में भूल होती ही चली जाती है। जैसे, निर-अहंकार-भाव तुम संकल्प से पैदा न कर सकोगे। विनम्रता पैदा कर सकते हो। दोनों एक-से लगते हैं। निर-अहंकार-भाव चेष्टा से, उपाय से, आयोजन से नहीं होता। निर-अहंकार-भाव कोई चरित्र का लक्षण नहीं है--चरित्र से मुत्ति है। क्योंकि सब चरित्र अहंकार के आस-पास होता है-- बुरे आदमी का चरित्र भी और अच्छे आदमी का भी। असाधु भी और साधु भी, दोनों अहंकार पर जीते हैं। संत वह है जो अहंकार के बाहर जीता है। निरहंकार-भाव की कोई साधना नहीं हो सकती।
लेकिन अगर तुम साधना करोगे तो तुम विनम्रता जरूर पैदा कर सकते हो।
विनम्रता संकल्प के भीतर है; और विनम्रता निर-अहंकार जैसी मालूम होती है, यही खतरा है।
दुनिया में असली खतरा उन चीजों से है, जिनसे धोखा पैदा होता है। अहंकार से बड़ा खतरा नहीं है, क्योंकि अहंकार तो साफ है कि अहंकार है। उससे खतरा क्या होगा? जहर की बोतल है, जहर का लेबल भी है। विनम्रता से खतरा है-- बोतल जहर की है, लेबल अमृत का है। और विनम्रता से खतरा है, क्योंकि विनम्रता निरहंकारिता जैसी मालूम होती है। बस मालूम होती है, असली नहीं है। क्योंकि विनम्रता साधी जा सकती है। और निर-अहंकार-भाव उतरता है-- प्रसाद है। जब तुम मिट जाते हो तब आगमन होता है उसका। तुम चेष्टा करते

रहते हो तो जो बना पाते हो चेष्टा से, वह विनम्रता है। विनम्रता अहंकार है--शीर्षासन करता हुआ। निर-अहंकार-भाव अहंकार का विसर्जन है।
जब पूजा आनंद से, मस्ती से पैदा होती है, तो तुम करने वाले नहीं होते-- वहां पुजारी नहीं होता; वहां पुजारी मिट जाता है। जिस पूजा में पुजारी मिट जाए वही पूजा सच्ची है। लेकिन फिर एक और पूजा है--झूठी, चेष्टित, आयोजित-- उस पूजा से पुजारी पैदा होता है। मिटता नहीं, पैदा होता है। कल तक तुम पुजारी नहीं थे, अब तुमने पूजा का अयास करना शुरू किया, अब तुम पुजारी हो गए। अब तुम्हारे भीतर एक अकड़ पैदा हुई कि मैं पुजारी हूं; एक सूक्ष्म अस्मिता जगी कि मैं विशिष्ट हूं, धार्मिक हूं।
मैं यहां पूजा नहीं सिखा रहा हूं--वह पूजा, जिससे पुजारी पैदा होता है। मैं यहां शराब ढाल रहा हूं--वह नशा, जिससे पुजारी मिट जाता है। और जहां पुजारी नहीं है, वहां एक पूजा है। ऐसी पूजा, जो रूपांतरकारी है; ऐसी पूजा, जो आकाश से उतरती है और तुम्हें आह्लाद, आलोक से भर देती है। तुम्हारे हाथों से निर्मित नहीं है--परमात्मा का प्रसाद है।
मंदिर हम बना नहीं रहे हैं। हम तो सिर्फ उन लोगों को जगा रहे हैं जिनकी मौजूदगी में अपने आप... जिनकी मौजूदगी में मंदिर की पावनता होती है। जो जहां बैठ जाते हैं तो तीर्थ बन जाते हैं; जिनके पैर जहां पड़ जाते हैं वहीं स्वर्ग हो जाता है।
हम मंदिर नहीं बना रहे हैं। हम तो उन चेतनाओं को जगा रहे हैं जिनकी मौजूदगी में मंदिर की सुगंध अपने आप होती है। वे जहां होंगे, वहां होगी। बाजार में खड़े होंगे तो वहां मंदिर होगा। यह कुछ और ही बात है। यह बात इतनी भिन्न है, इसीलिए अड़चन है। इसलिए मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के लोग नाराज हैं। उनको तो लग रहा है, मैं उनकी जड़ें काट रहा हूं, उनके मंदिर गिरा रहा हूं।
और तुम पूछते हो कि "आप यहां विशाल मंदिर बना रहे हैं!"
यहां कोई मंदिर नहीं बनाया जा रहा है। यहां मस्त जरूर इकट्ठे हो रहे हैं। यहां मस्ती जरूर बांटी जा रही है। यहां एक दीवानगी उठ रही है, एक पागलपन पैदा हो रहा है--एक पागलपन जो परमात्मा का है।
निकल कर दैरो-काबा से अगर मिलता न मैखाना
तो ठुकराये हुए इंसां खुदा जाने कहां जाते?
चलो अच्छा हुआ काम आगई दीवानगी अपनी
वगरना हम जमाने भर को समझाने कहां जाते?
मंदिर और मस्जिद से पीड़ितों के लिए भी तो कोई जगह चाहिए न। यही है वह जगह।
निकल कर दैरो-काबा से अगर मिलता न मैखाना... । कहीं कोई मधुशाला चाहिए। मंदिर और मस्जिद तो तुम्हें मार रहे हैं। खुद मुर्दा हैं, तो तुम्हें भी मारेंगे। खुद जड़ हैं, तो तुम्हें भी जड़ करेंगे। खुद पत्थर हैं, तुम्हें पथरीला कर देंगे। इसलिए तो हिंदू और मुसलमान पत्थरों जैसे हो जाते हैं, हिंसक हो जाते हैं, कठोर हो जाते हैं। हृदय खो जाता है।
देखते नहीं हिंदू-मुसलमानों के झगड़े? देखते नहीं ईसाइयों और मुसलमानों का जेहाद? देखते नहीं मनुष्य-जाति के इतिहास पर पड़े हुए खून के धब्बे? धार्मिक आदमियों के ऊपर ही उनका जुम्मा है। इस पृथ्वी पर धार्मिक आदमियों ने जितना अधार्मिक व्यवहार किया है, उतना किसी और ने नहीं किया। शैतान को पूजने वालों ने क्या बुराई की है? सारी बुराई का जुम्मा भगवान को पूजने वालों के हाथ में है। तुम.जरा इतिहास के पन्ने तो पलटो! तुम जरा आंख खोल कर तो देखो कि धर्म के नाम पर क्या हुआ है!
निकलकर दैरो-काबा से अगर मिलता न मैखाना
तो ठुकराए हुए इंसां खुदा जाने कहां जाते?
कहीं तो कुछ जगह बचने दो। कहीं तो कोई शरण-स्थल रहने दो। कहीं तो किसी बुद्ध को मधुशाला चलाने दो। कहीं किसी महावीर को घोलने दो उस अमृतरस को। पीने दो पीनेवालों को। हां, जिन्हें पीना नहीं है, जो पीने से डरते हैं, वे, ठीक है, जाएं मंदिर और मस्जिद। उनके लिए भी झूठे स्थान चाहिए, ताकि उन्हें भ्रांति रहे कि वे धार्मिक हैं। बिना धार्मिक हुए जिन्हें धार्मिक होने

की भ्रांति सजानी है, वे जाएं वहां। यहां हम कोई तर्क तो नहीं समझा रहे हैं। यह तो अतर्क्य है।
चलो अच्छा हुआ काम आगई दीवानगी अपनी... । मेरे संन्यासियों से कोई पूछेगा कि उनसे मेरा लगाव क्या, मुझसे उनका लगाव क्या? तो क्या उत्तर है उनके पास? आँख में आँसू हो सकते हैं, ओंठ पर मुस्कुराहट हो सकती है, पैर में नाच की धुन हो सकती है--उत्तर क्या है?
चलो अच्छा हुआ काम आगई दीवानगी अपनी
बगरना हम.जमाने-भर को समझाने कहां जाते?
तुम समझा पाओगे किसी को कि मुझसे तुम्हारा नाता क्या है? तुम जितना समझाओगे उतना ही न समझा पाओगे। लोग तुम्हें पागल समझेंगे।
यहाँ मंदिर नहीं बन रहा है--या, असली मंदिर बन रहा है।
आशा करो उस भविष्य की कि कभी वह दिन होगा कि पृथ्वी पर मंदिर और मस्जिद न होंगे, मधुशालाएं ही होंगी।
जिंदगी की तबील राहों में
मुतलकन पेचो-खम नहीं होंगे
एक ऐसा भी वत्त आएगा
जब यह दैरो-हरम नहीं होंगे
ये मिट रहे हैं मंदिर और मस्जिद। मिट ही जाने चाहिए। ये जमीन पर वैसे
ही जरूरत से ज्यादा रह लिए हैं। ये बोझ हैं। इनके होने की कोई जरूरत नहीं है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां ईश्वर को प्रेम करने वाले लोग होने चाहिए, बस इतना काफी है। यहां प्रार्थना में लोग होने चाहिए, बस इतना काफी है। यहां पूजा से भरे हृदय होने चाहिए, इतना काफी है। वे पूजा कहां करते हैं, कैसे करते हैं--इसका कोई नियंता नहीं होना चाहिए।
पूजा नैसर्गिक है, वैयत्तिक है, निजी है। प्रार्थना परमात्मा और तुम्हारे बीच गुफ्तगू है--उधार नहीं, सिखाई हुई नहीं। और जब तुम सिखाए हुए शब्द दोहराते हो, तभी सब झूठ हो जाता है। अपनी बात कहना। जिस दिन तुम अपनी बात परमात्मा से कह सकोगे, परमात्मा भी तुमसे अपनी बातकह सकेगा। जब तक तुम ग्रामोफोन के रिकार्ड हो तब तक वहां से कोई उत्तर नहीं आएगा। उत्तर नहीं आता है तो तुम सोचते हो परमात्मा नहीं है। उत्तर नहीं आता तो सिर्फ एक ही बात का सबूत है कि तुम्हारी प्रार्थना सीखी हुई, उधार है, झूठी है, कृत्रिम है, औपचारिक है, आयोजित है; हार्दिक नहीं है; तुम्हारे अंतरतम से नहीं उठी है; तुम्हारे प्राणों का साथ नहीं है।
यहां तो अड़चन उन्हीं को हो रही है जो मंदिर-मस्जिदों के आदी हो गए हैं, जिन्होंने कसमें खा ली हैं कि शराब पीएंगे ही नहीं। उनको अड़चन हो रही है। उनको बड़ी मुसीबत हो रही है। उन्हें यहाँ का रंग-ढंग बड़ा कष्ट में डाल जाता है।
हमने कल ही कसम यह खाई थी
अब न सहबा को मुंह लगाएंगे,
काश! पहले से यह खबर होती
आज वे खुद हमें पिलाएंगे
कसमें खाए लोग बैठे हैं कि पीएंगे ही नहीं, मस्त होंगे ही नहीं, आनंदमग्न होंगे ही नहीं। धर्म ने तुम्हें गंभीरता सिखाई, नाच नहीं। और जो धर्म गंभीरता सिखाता है, बचना उससे, सावधान होना उससे! क्योंकि परमात्मा गंभीर नहीं है। परमात्मा उत्सव है। आंखें हों तो देखो--चारों तरफ उसका उत्सव है! कान हों तो सुनो--चारों तरफ उसके गीत है! हृदय हो तो अनुभव करो-- हवा के हर झोंके में उसका नाच है। वृक्ष के हर हरे पत्ते में उसकी हरियाली है। नदी की हर यात्रा में उसकी ही यात्रा है। और सागर की उत्ताल तरंगों में उसका ही नाच है। देखो जरा आंख खोल कर, जरा चारों तरफ देखो, परमात्मा तुम्हें उदास दिखाई पड़ता है? परमात्मा तुम्हें महात्माओं जैसा दिखाई पड़ता है? परमात्मा नाचता हुआ है। उसके हाथ में बांसुरी है। उसने मोरमुकुट बांधा हुआ है।

लेकिन जिन्होंने कसम खा ली है गंभीर होने की, उन्हें बड़ी अड़चन हो जाती है। और गंभीर होने की कसम क्यों खा ली है? हर गंभीरता अहंकार के लिए भोजन बनती है। जितना गंभीर आदमी हो, उतना अहंकारी हो जाता है। जितना अहंकारी हो, उतना उसे गंभीर होना पड़ता है। बच्चे इसीलिए तो निर-अहंकारी होते हैं, क्योंकि गंभीर नहीं होते। अभी अहंकारी होने योग्य गंभीरता उनमें नहीं है। अभी भोलापन है, अभी सरलता है।
जीसस ने कहा हैः तुम मेरे प्रभु के राज्य में तभी प्रवेश कर सकोगे जब छोटे बच्चों की भांति हो जाओ। यही तो सारे जानने वालों का संदेश है।
मैं तो तुमसे कहता हूंः पीओ, पिलाओ! चार दिन की जिंदगी है, उसे नृत्य बनाओ! उसे उत्सव बनाओ! छलको! ऐसे कंजूस होकर, अपने को बांध कर मत बैठे रहो। दावरे-हश्र! देखता क्या है
मैं वही रिंद लाउबाली हूं
इससे पहले कि तू सवाल करे
मैं खुद इक जाम का सवाली हूं
किसी पियक्कड़ ने कहा है... पहुंच गया है स्वर्ग, खड़ा है द्वार पर, प्रलय
का न्यायाधीश सामने बैठा है।
"दावरे-हश्र!"... कहता हैः हे न्यायाधीश! देखता क्या है? ... "मैं वही रिंद लाउबाली हूं!" भूल गया? मुझे तो सारा जग जानता है कि मैं वही पागल पियक्कड़ हूं! "मैं वही रिंद लाउबाली हूं। इससे पहले कि तू सवाल करे, मैं खुद इक जाम का सवाली हूं।" और इसके पहले कि तू कुछ पूछे, कुछ पीना-पिलाना हो जाए।
यह मधुशाला है। यहां और सब जो चल रहा है, वह तुम्हारे भीतर मधु को जन्माने का उपाय है।
तेरी जन्नत में भी अरे वाइज!
पीने वाले जरूर पी लेंगे
हे विरागी! हे महात्मा! तेरे स्वर्ग में भी पीने वाले जरूर पी लेंगे। तेरी जन्नत में भी अरे वाइज!
पीने वाले जरूर पी लेंगे
मैं अगर दस्तयाब हो न सकी
सुर्खिए-चश्मे-हूर पी लेंगे
अगर न मिली शराब, कोई फिकर नहीं; स्वर्ग में रहने वालों की आंखों की लाली तो होगी! उनकी मस्ती तो होगी! उसी को पी लेंगे।
मैं अगर दस्तयाब हो न सकी
सुर्खिए-चश्मे-हूर पी लेंगे
वे जो आँखों के चश्मे होंगे स्वर्ग में रहने वालों के, उनकी आंखों में मस्ती होगी--होनी ही चाहिए, नहीं तो स्वर्ग में और क्या होगा? फिर स्वर्ग और नरक में फर्क क्या होगा?
मैं बहुत सोचता हूं, बहुत विचार करता हूं, कि तुम जब स्वर्ग जाओगे तो तुम्हें एक बड़ा अचंभा होगा--तुम अपने किसी महात्मा को वहां न पाओगे। मैं क्षमायाची हूं, लेकिन सच है तो सच को कहना ही पड़ेगा। तुम्हारे सब महात्मा नरक में ही बस सकते हैं, नरक ही उन्हें रास भी आएगा--वहां बड़ी गंभीरता है। वहां कांटों पर लेटना हो तो यहां से बड़े-बड़े कांटे मिलते हैं। और वहां धूनी लगानी हो, धूनी जलाने की जरूरत ही नहीं पड़ती, धूनी वहां जल ही रही है। लपटें ही लपटें! वहां भूखा मरना हो, उपवास करना हो, तो कोई आयोजन नहीं करना पड़ता। वहां भूख लगती है और भोजन मिलता ही नहीं। वहां प्यासा रहना हो, मजे से रहो। प्यास लगती है, पानी का पता ही नहीं।
ऐसा लगता है कि नरक बिल्कुल तपस्वियों के लिए ही बनाया गया है--विशेष रूप से आयोजित! स्वर्ग में तुम नाचने वालों को पाओगे। पीने वालों को पाओगे।
या तो इसे मधुशाला कहो, या असली मंदिर कहो। दोनों का अर्थ एक ही होता है।

दूसरा प्रश्न: मैं कल संन्यास लिया हूं। रज्जब जी की तरह घोड़े पर मौर पहन कर सवार तो नहीं हूं, हताशा और विषाद से भरा हूं; संसार में पूरा डूब कर कुछ पा सकूंगा, ऐसी मेरी हैसियत भी नहीं है। इस हालत में क्या मेरा संन्यास उचित है? मैं किसी प्रेम और आनंद की घड़ी की प्रतीक्षा में हूं। आशीष दें कि मेरा संन्यस्त होना भगोड़े का परिणाम न बने।

प्रत्येक व्यत्ति घोड़े पर सवार है। घोड़ों का रंग-ढंग अलग-अलग है। किसी का गरीब घोड़ा है--उदास, हताश, हारा हुआ। किसी का अमीर घोड़ा है--उमंग से भरा, शत्तिशाली, लगाम तोड़ कर भागने को उत्सुक, दौड़ के लिए आतुर। घोड़े पर सब सवार हैं। संसार में हो ही नहीं सकता आदमी जो घोड़े पर सवार न हो। चाहे खच्चर ही हो, चाहे गधा ही हो--लेकिन लोग सवार तो हैं ही। संसार का अर्थ ही होता है, सवारी। हताशा का घोड़ा ही सही, निराशा का घोड़ा ही सही।
और जिन्होंने पूछा है, उन मित्र को... उनका नाम हैः उमंग भाई! मैंने भी बदला नहीं उनका नाम। उनकी हालत देख कर मैंने रख दिया: स्वामी उमंग भारती। उमंग नहीं है। मां-बाप ने भी सोच-समझ कर नाम दिया होगा। हताशा है, निराशा है। मगर संसार में हताशा-निराशा ही हाथ लगती है, सभी को। फिर घोड़े अमीरों के हों कि गरीबों के, सभी हताशा में पहुंचते हैं। और आदमी शानदार कीमती घोड़ों पर चले कि सस्ते गधों पर चले, मंजिल एक ही है--मौत। और जब मंजिल एक है, मौत, तो हताशा ही तो परिणाम होने वाला है। अंधेरी रात ही है आगे। आगे कोई उजाला नहीं, आगे कोई सुबह नहीं। सुबह की तो सिर्फ कल्पना है, सपने हैं। सुबह कभी होती नहीं। इस संसार में सुबह होती ही नहीं। इस संसार में अंधेरी रात है। मगर रात इतनी अंधेरी है कि अगर सुबह का भरोसा न करो तो जीओ कैसे? रात इतनी अंधेरी है कि अगर सुबह की आशा न रखो तो रात कटे कैसे?
इसलिए हताश आदमी को नाम देते हैंः उमंग। अंधे आदमी को कहते हैंः नयनसुख। कुरूप स्त्री को कहते हैं: सुंदरबाई। मृत्यु की यात्रा को कहते हैं: महायात्रा! प्यारे नाम चुनते हैं! इनकी आड़ में हम कुछ छिपा रहे हैं। ये प्यारे नाम चुन कर हम धोखा दे रहे हैं, धोखा खा रहे हैं। यहां कुछ भी सुंदर नहीं है। यहाँ सुंदर होता ही नहीं। यहाँ सुंदर हो नहीं सकता। सौंदर्य तो परमात्मा के साथ संबंध हो, तभी पैदा होता है। सौंदर्य तो परमात्मा और तुम्हारे बीच सेतु बन जाए, तो ही उमगता है। सौंदर्य के फूल तो परमात्मा और मनुष्य के बीच ही खिलते हैं, और किसी तरह नहीं खिलते। और कोई उपाय नहीं है।
जीवन का आनंद परमात्मा के साथ होने में है। जीवन की उमंग उसके साथ होने में है। और संसार का अर्थ होता है, हम उसके साथ नहीं हैं। संसार का अर्थ होता है, संक्षिप्त में, कि हम बिना उसके सुखी होने की चेष्टा कर रहे हैं; और कुछ अर्थ नहीं होता। संसार का इतना ही सीधा-सीधा भाष्य है कि हम परमात्मा के बिना सुखी होने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा सफल नहीं हो सकती, क्योंकि परमात्मा के बिना हमारी कोई चेष्टा सफल नहीं हो सकती। उसके साथ ही जीत है। उसके साथ नहीं, तो हार है। और हर आदमी यही कोशिश कर रहा है कि जीत हो जाए और परमात्मा का साथ न लेना पड़े।
साथ लेने में भी अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है। क्योंकि साथ लेने का मतलब होता है, झुकना पड़े। साथ लेने का मतलब होता है, हाथ फैलाना पड़े, भिक्षापात्र उठाना पड़े। नहीं, अहंकार कहता है, घबड़ाओ मत, थोड़ी चेष्टा और, थोड़ा प्रयास और। दो-चार कदम और। सुबह ज्यादा दूर नहीं है। और जब रात बहुत अँधेरी हाती है तो सुबह बहुत करीब होती है, घबड़ाओ मत। और हर अंधेरी बदली में बिजली की रजत-रेखा छिपी है। उदासी है, तो कहीं आशा का दीया भी जलता होगा, घबड़ाओ मत। थोड़ी तलाश और थोड़ी खोज और। थोड़ी खुदाई और। अभी पत्थर हाथ लग रहे हैं, घबड़ाओ मत, जलस्त्रोत भी आता ही होगा।
ऐसा मन कहे ही चला जाता है। अहंकार समझाए ही चला जाता है--आखिरी तक, अंतिम क्षण तक। न तो कभी सुबह होती, न वे रजत-रेखाएं मिलतीं, न जल-स्त्रोत हाथ लगते। आदमी व्यर्थ जीता है और व्यर्थ मर जाता है।
परमात्मा के बिना कोई जीत नहीं है।

तुमने प्रसिद्ध वचन सुना है न: "सत्यमेव जयते।" सत्य जीतता है। परमात्मा जीतता है। झूठ कितने ही भरोसे दिला दे, जीत नहीं सकता। और अहंकार सबसे बड़ा झूठ है। और सब झूठ उसकी संतान हैं; वह महापिता है। जैसे ब्रह्मा ने जगत रचा, ऐसे अहंकार ने सारे झूठों का संसार रचा है। एक झूठ को सम्हालने के लिए हजार झूठों के सहारे लेने पड़ते हैं।
तुमने देखा ही होगा, एक झूठ बोलो और मुश्किल शुरू हुई। फिर दस झूठ बोलने पड़ते हैं उसे बचाने को। फिर उन दस झूठों को बोलने के लिए और हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर झूठ से झूठ--और तुम फंसते जाते हो, उलझते जाते हो। सच बोलो, फिर तुम्हें कुछ भी फिकर नहीं करनी पड़ती। इसलिए झूठ वही आदमी बोल सकता है जिसके पास अच्छी स्मृति हो। नहीं तो झूठ बोलना बड़ा मुश्किल है। स्मृति कमजोर हो तो झूठ मत बोलना क्योंकि बड़ी याददाश्त रखनी पड़ती है-- किससे क्या कहा। सब हिसाब रखना पड़ता है। स्मृति ठीक न हो तो सच ही बोलना; उसमें याद नहीं रखना पड़ता। सच तो याद रखना ही नहीं पड़ता। सच तो सच है-- ज्यूं का त्यूं ठहराया--अब उसमें याद क्या रखना है? अगर सुबह छह बजे सुबह हुई थी और तुमने कहा, सुबह छह बजे सुबह हुई थी, तो याद क्या रखना? लेकिन किसी से कहा, सुबह सात बजे सुबह हुई थी, और किसी से कहा सुबह आठ बजे सुबह हुई थी, और किसी से कहा सुबह नौ बजे सुबह हुई थी--अब मुश्किल में तुम पड़ोगे। अब तुम्हें याद रखना पड़ेगा कि तीनों कहीं आपस में न मिल जाएँ, कहीं एक-दूसरे से बात न कर लें, कहीं इनको पता न चल जाए! और फिर तुम्हें याद रखना पड़ेगा--किससे क्या कहा है?
सत्य सीधा-साफ है। झूठ जटिल है। और सबसे बड़ा झूठ क्या है संसार में? सबसे बड़ा झूठ है कि मैं हूं। क्यों कहता हूं कि सबसे बड़ा झूठ है यह? क्योंकि यह बात है ही नहीं। परमात्मा है, तुम नहीं हो। न मैं हूं, न तुम हो-- परमात्मा है। न वृक्ष हैं, न पहाड़ हैं, न पर्वत हैं--परमात्मा है। न चांद है, न तारे हैं--परमात्मा है। यहां एक का ही आवास है। उस एक की ही हजार-हजार तरंगें हैं, रूप हैं, रंग हैं, ढंग हैं। वही अभिव्यत्त है। ये सब लहरें उसी एक सागर की हैं। मगर हर लहर दावा कर रही है कि मैं हूं, यह भी दावा है कि मुझसे बड़ी कोई लहर नहीं। यह भी दावा है कि मुझसे बड़ी कोई लहर को होने भी न दूँगी। और यह भी दावा है कि टिकूंगी और रहूंगी और सदा के लिए स्थान बना कर रहूंगी। अमर हो जाऊंगी। बस झूठों का जाल शुरू हुआ। हार न होगी तो क्या होगी?
इसलिए कहता हूं तुमसे, उमंग भारती! इस जगत में तो हार ही है, पराजय ही है। लेकिन अब तुम संन्यस्त हुए। संन्यास का अर्थ भी ठीक से ले लो। अगर संसार का अर्थ है, परमात्मा के बिना सफल होने की चेष्टा, तो संन्यास का अर्थ साफ है। संन्यास का अर्थ है, परमात्मा के साथ होकर सफल होने की चेष्टा। फिर चेष्टा करनी ही नहीं पड़ती; उसके साथ होने में ही सफलता है। उसका साथ क्या मिला कि विजय-यात्रा शुरू हो जाती है। परमात्मा जीतता ही है, हार ही नहीं सकता। किससे हारेगा? उसके अतिरित्त कोई है नहीं। कैसे हारेगा? उसका हर कदम विजय का कदम है। और जिसके कदम उसके साथ पड़ने लगें, उसको ही मैं संन्यासी कहता हूं। संन्यासी से मेरा मतलब नहीं है कि संसार छोड़कर भाग गए। संन्यासी से मेरा अर्थ है, संसार की मूल प्रक्रिया को समझ लिया। प्रक्रिया हुई संसार की--परमात्मा से अलग-अलग रहकर जीतने की चेष्टा। बस। इस प्रक्रिया को छोड़ दिया। अब दूसरी प्रक्रिया पकड़ ली-- परमात्मा के साथ होकर जीतने की प्रक्रिया। कहीं जाना नहीं, कहीं भागना नहीं।
तुमने पूछा है कि "मैंने संन्यास तो ले लिया, लेकिन क्या मेरा संन्यास उचित है?"
संन्यास अनुचित हो ही नहीं सकता। और अगर संन्यास अनुचित हो तो उसका
एक ही अर्थ है कि लिया ही न होगा। संन्यास तो उचित ही होगा। संसार सदा अनुचित है, संन्यास सदा उचित है। परमात्मा के साथ होने में अनुचितता कैसे हो सकती है? हां, अगर न होओ साथ, ऊपर-ऊपर से दिखाओ साथ और भीतर-भीतर से अभी पुराना खेल जारी रखो, तो संन्यस्त तुम हुए ही नहीं। तो संन्यासी तो ठीक ही होता है; या, नहीं होता।

कपड़े बदल लेने से ही संन्यास का काम नहीं हो गया। भीतर की प्रक्रिया, भीतर का पूरा यंत्रजाल, जो जन्मों-जन्मों में निर्मित हुआ है, उसे गिराना पड़ेगा। अब से परमात्मा के साथ होने की भाषा में सोचो। अब से कहोः तेरी मर्जी पूरी हो! अब से कहोः मैं नहीं हूं, अब तू जहां ले जाए वहीं जाऊंगा! मझधार में डुबाए तो डूब जाऊंगा, क्योंकि समझूंगा--यही किनारा है। मारे तो मरूंगा, क्योंकि समझूंगा यही शाश्वत जीवन है। तेरे हाथ से तलवार भी अब मेरे सिर पर गिरेगी तो फूल मालूम होगी। अब मेरी तुझसे अतिरित्त कोई आकांक्षा नहीं है, तुझसे भिन्न अब मेरा कोई विचार नहीं है। बस यही संन्यास है। यह संन्यास की आत्मा है।
संन्यस्त हुए हो, शुभ है। यह भाव भी शुभ है। इसलिए मैंने तुम्हारा नाम नहीं बदला, क्योंकि अब आशा है कि उमंग पैदा हो। माता-पिता ने तो दिया होगा किसी और आशा से, कि संसार में तुम जीतोगे; मैंने तुम्हें दिया नाम फिर से वही, इस आशा से कि अब तक तो तुम हार के रास्ते पर चले, अब जीत के मोड़ पर आ गए हो। अगर मुड़ गए तो जीत तुम्हारी है। जीत ही जीत। क्योंकि अब तुम नहीं हो तो हार हो ही नहीं सकती। तुम्हारी जीत का यही अर्थ होता है कि तुम नहीं हो, और जीत ही जीत है।
तुमने पूछा है, आशीष दें कि मेरा संन्यस्त होना भगोड़े का परिणाम न बने।
आशीष देता हूं। वही तो मेरी चेष्टा है। वही तो महत आयोजन चल रहा है यहां। संन्यास भगोड़ों के हाथ में पड़ गया था; उसे उनके हाथ से छीन लेना है। उनके पास परंपरा का बल है। उनके पास हजारों साल का पुराना इतिहास है। अतीत उनके पक्ष में है। भविष्य मेरे पक्ष में है।
मैं तुम्हें जो संन्यास दे रहा हूं, वैसा संन्यास पृथ्वी पर कभी था ही नहीं। क्योंकि संन्यास पृथ्वी पर था जीवन-विरोधी, नकारात्मक, पलायनवादी, भगोड़ेपन का--भाग जाओ! मैं कहता हूं, भागना कहां है? बदल जाओ! भागो मत, जागो! जहां हो वहीं जागो! जैसे हो वैसे ही जाग जाओ! अब सब यहीं रूपांतरित हो जाता है, कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं होती। संन्यास कोई भौगोलिक यात्रा नहीं है--आत्मिक रूपांतरण है। नई दृष्टि का आविर्भाव है। एक नया दर्शन है। एक नया परिप्रेक्ष्य। देखने की एक नई शैली। होने की एक नई व्यवस्था। एक नवोन्मेष। एक क्रांति।
भगोड़ापन संन्यासी को पकड़ा, क्योंकि वह सस्ता संन्यास था। वह समझ में आया लोगों को। लोग संसार से ऊब जाते हैं; पत्नी-बच्चे से ऊब जाते हैं; दुकानदारी से ऊब जाते हैं; एक न एक दिन घबड़ाहट पकड़ लेती है कि यह मैं क्या कर रहा हूं; सब व्यर्थ है, समय जा रहा है; सोचते हैं भाग जाएं, दूर निकल जाएं इस सबसे। मगर जाओगे कहाँ? दूर निकल कर जाओगे कहां संसार अगर बाहर ही होता तो शायद हिमालय की गुफा में दूर निकल जाकर बैठ जाते तो निकल जाते बाहर। लेकिन न निकल पाओगे, क्योंकि संसार तुम्हारे भीतर की वृत्ति में है। परमात्मा से विपरीत खड़े होकर लड़ने का जो आग्रह है, वही संसार है। वह तो तुम्हारे साथ चली जाएगी वृत्ति। तुम वहां बैठ कर हिमालय की गुफा में भी अपना संघर्ष जारी रखोगे। तुम वहां भी योद्धा की तरह परमात्मा से जूझते रहोगे। पहले तुम कहते थे, धन लेकर रहूंगा, अब तुम कहोगे, ध्यान लेकर रहूंगा। फर्क क्या पड़ेगा? पहले तुम कहते थे, दुनिया में जीत दिखा कर रहूंगा, अब तुम कहोगे कि मोक्ष में मकान बना कर रहूंगा! लेकिन बनाना है! मैं हूं बनाने वाला! वही पुराना भाव, वही ढर्रा। यह झूठा संन्यास है। यह संन्यास वास्तविक नहीं है।
मैंने सुना है, एक फिल्म अभिनेत्री बड़ी चतुर थी। उसने अपने गहनों को चोरों से बचाने के लिए एक तरकीब निकाल रखी थी। रात को जब वह सोती तो एक चिट लिखकर अपने गहनों के साथ रख देती, जिस पर लिखा रहता--ये सभी गहने नकली हैं, असली तो बैंक में हैं। एक सुबह उसने देखा कि उसके सभी गहने गायब हैं और उसके स्थान पर एक दूसरी चिट पड़ी है। चिट उसने उठाई और बड़ी उत्सुकता से उसे पढ़ा। उस पर लिखा था--मुझे नकली गहने ही चाहिए, क्योंकि मैं नकली चोर हूं, असली तो जेल में है।

संसार भी तुम्हारा नकली है। उस नकली संसार से तुम्हारा जो संन्यास जन्मता है, वह भी नकली होता है। तुम जिस ढंग से संसारी थे, उसी ढंग से तुम संन्यासी हो जाते हो; कुछ बदलता नहीं। अब यह तुम्हें बड़ी विरोधाभासी बात लगेगी। लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आपके संन्यासी में कुछ बदलता नहीं, क्योंकि वह दुकान करता था तो दुकान ही करता रहता है। और मैं उनसे कहता हूं, पुराने संन्यासी में कुछ नहीं बदलता था; क्योंकि वह जिस तरह परमात्मा से लड़ता था, उसी तरह परमात्मा से फिर भी लड़ता रहता है। मेरे संन्यासी में बदलाहट होती है, मगर वह आंतरिक है। उसे देखने के लिए बड़ी गहरी आंख चाहिए, सूक्ष्म आंख चाहिए। अब भी वह दुकान पर बैठा है, मगर अब लड़ नहीं रहा है। अब यह दुकान परमात्मा की है, वह चला रहा है। अब भी नौकरी करता है, कल भी करता था, अब भी करता है, कुछ भी बदला नहीं--और सब बदल गया है। कल भी पत्नी के पास था, आज भी पत्नी के पास है--और सब बदल गया है। क्योंकि कल पत्नी और उसके बीच एक नाता था, कि पत्नी मेरी है; अब मेरे-तेरे का भाव विलीन हुआ है। पत्नी अपनी जगह है, वह अपनी जगह है। ज्यूं का त्यूं ठहराया। न तो पत्नी मेरी है, न मैं पत्नी का हूं। मिल गए हैं संग-साथ जीवन की राह पर; यात्री हैं, राह में मिल गए हैं, मुलाकात हो गई है, दो घड़ी का साथ हो गया है, फिर बिछुड़न हो जाएगी; कौन किसका है! पत्नी अपनी जगह है, पति अपनी जगह है, बेटा अपनी जगह है, दुकान अपनी जगह है--सब जैसा का तैसा है--लेकिन भीतर एक परिप्रेक्ष्य बदल गया है। अब एक देखने का ढंग बदल गया है। अब सब ठीक है। अब संघर्ष नहीं है। अब परमात्मा के प्रति समर्पण है।
इतना हो जाए तो पिछली सारी असफलताएं भूल जाती हैं, सारे विषाद भूल जाते हैं। हंसी आती है फिर--कैसी छोटी-छोटी बातों पर उलझे थे, कैसे छोटे- छोटे खिलौनों पर उलझे थे! खुद पर हंसी आती है। सारा अतीत बेहूदा मालूम होता है।
दुनिया के मशगलों का लहद में ख्याल क्या
मंजिल पै आके भूल गया रहगुजर को मैं
सब भूल जाता है, सब व्यर्थ हो जाता है। वह सब धूल-धंवास थी, उड़ गई; दर्पण खाली होने लगता है।
पलायन से सावधान! क्योंकि जो भागता है, वह बदलता नहीं। वह भागता इसीलिए है कि बदलने से डरता है। भागकर बचा रहा है अपने को। भीतर सब वही रहेगा, बाहर की स्थिति बदल कर धोखा दे रहा है अपने को कि बदल लिया।
मैं बाहर की स्थिति तुम्हें बदलने ही नहीं देता--तुम बदलना भी चाहते
तो हो। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि अब हमें क्यों आप कहते हैं कि हम घर में रहें? हम तो सब छोड़ने को तैयार हैं।
मैं उनसे कहता हूं, तुम्हारी तैयारी का सवाल नहीं है। तुम्हें घर में रहना ही होगा। नहीं तो तुम बाहर को बदलने में लग जाओगे और भीतर को कौन बदलेगा? तुम्हारी ऊर्जा बाहर उलझी रहेगी, भीतर कौन जाएगा? बाहर को वैसा का वैसा रहने दो, छुओ ही मत, सब व्यवस्थित हो गया है, चलने दो उसको वैसा का ही वैसा, सारी ऊर्जा को भीतर मोड़ लो। सरल होगा।
थोड़ा सोचो। सब व्यवस्थित हो गया है, दुकान ठीक चल रही है, मकान व्यवस्थित है, पत्नी है, बच्चे स्कूल जाने लगे हैं--सब व्यवस्थित हो गया है, अब इसमें कुछ अड़चन नहीं है, अब इसमें कुछ जमाना नहीं है, सब चल रहा है, तुम्हारी मौजूदगी चला रही है चीजों को; दुकान पर बैठ जाते हो, घर आ जाते हो, सब चल रहा है। इसमें अब कोई नई ऊर्जा लगाने की जरूरत नहीं है--अभी मैं तुमसे कह दूं छोड़ दो घर, जाओ बैठ जाओ गुफा में, अब सवाल उठेगा--भोजन कहां से लाएं? कपड़े कहां हैं? अब रात आ गई, मच्छर काट रहे हैं, मच्छरदानी कहां हैं! और मच्छर तुम्हें पता है, ध्यानियों के पुराने विरोधी हैं!
मैं सारनाथ में मेहमान हुआ एक बौद्ध भिक्षु के घर। इतने मच्छर सारनाथ में कि न मैं सो सका रात भर, न वे सो सके रात भर। सो दोनों ने बैठ कर धम्मपद पर चर्चा की। और करते भी क्या? दूसरे दिन मैंने उनसे क्षमा मांगी कि मैं चला। उन्होंने कहा कि यह कोई आप ही तकलीफ में पड़े हैं, ऐसा नहीं है; बुद्ध भगवान भी सिर्फ एक ही बार आए थे सारनाथ-- फिर नहीं आए। कारण मच्छर ही होंगे। क्योंकि और सब जगह तो वे कई बार गए। राजगृह नहीं तो कम से कम तीस

बार गए जिंदगी में। वैशाली न मालूम कितनी बार गए! श्रावस्ती न मालूम कितनी बार--चालीस बार, पचास बार। सिर्फ सारनाथ एक जगह है जहां वे सिर्फ एक ही बार गए। कारण तो कुछ रहा होगा--सारनाथ के बड़े-बड़े मच्छर!

कोई तुम्हें ही मच्छर सताएंगे ऐसा नहीं है, वे बुद्ध को भीसताते थे। जैन-शास्त्रों में जहां ध्यान की चर्चा है, वहां मच्छरों का जरूर उल्लेख किया गया है, कि मच्छर सताएंगे, उस वक्त सावधानी रखना। अब जैन-मुनि की तुम सोच ही सकते हो--नंगा बैठा है, उसको तो सताएँगे ही मच्छर।

अब घर में मच्छरदानी भी थी, सब व्यवस्थित था। अब बैठ गए गुफा में जाकर, अब मच्छर सता रहे हैं। अब कहीं से इंतजाम करो। अब कल भूख लगेगी तो भोजन मांगने जाओ। और जमाना भी बदल गया। अब कोई ऐसे ही दे नहीं देता। जहां जाकर खड़े होओगे, लोग कहेंगे कि भले-चंगे मालूम पड़ते हो, क्या मुफ्तखोरी सीखी है? वे पुराने दिन गए, कि संन्यासी का लोग पैर पड़ कर और भोजन दे देते थे। पच्चीस बातें सुनाएंगे। बामुश्किल मिल जाए तो बहुत। कहेंगे अच्छे मस्त-तड़ंग हो, क्यों यह मुफ्तखोरी सीखी? कुछ कमाओ-धमाओ, कुछ काम करो! क्यों हमारी छाती पर चढ़े हो? क्यों खून पी रहे हो? आसान नहीं होगा रोटी मिल जाना भी।

फिर कल बीमारी भी होती है, और अड़चनें भी आती हैं, बूढ़े होओगे--जवानी, तब यह मुसीबत कि लोग कहते हैं अभी जवान हो; बूढ़े हो जाओगे, तब बुढ़ापे की मुसीबत; अब मांगने जाने में तकलीफ, उठने में तकलीफ। ध्यान कब करोगे? ध्यान कैसे करोगे? और इस सब के उपद्रव के कारण ही लोग सांप्रदायिक हो जाते हैं, क्योंकि उसमें सुविधा है। अब अगर तुम सिर्फ संन्यासी हो जाओ--न हिंदू के, न मुसलमान के, न ईसाई के--बैठ जाओ गुफा में, भूखे मर जाओगे गुफा ही में। तो तुमको फिर चुनाव करना पड़ेगा कि भई, हिंदू के हो जाओ। तो हिंदू तुम्हारी फिकर करेगा। जैन के हो जाओ तो जैन तुम्हारी फिकर करेगा।

अब जब तुम जैन के संन्यासी हो जाओगे, जैन के मुनि हो जाओगे, तो वह हजार नियम लाता है। क्योंकि मुफ्त तो यहां कोई भोजन मिलता नहीं। वह कहता है, इतने बजे उठना, इतने बजे सोना। इस तरह रहना। दतौन मत करना। क्योंकि दतौन अगर की तो शरीर का प्रसाधन हुआ। स्नान मत करना।

तो तुम चकित होओगे जान कर कि जैन साधु-साध्वियों को चोरी से दांत साफ करने पड़ते हैं। हद हो गई, दुनिया में और चोरियां करने जैसी थीं, यह भी कोई चोरी करने जैसी बात थी! चोरी करनी थी तो कुछ ढंग की करते। जैन-साध्वियों को टूथपेस्ट पोटली में छिपाकर रखना पड़ता है। कहीं पता न चल जाए!

एक जैन-साध्वी मुझे मिलने आई। जैन-साधुओं से और साध्वियों से मैं जरा दूर ही रहता हूं। लेकिन यह बिल्कुल मेरे पास आ गई और उसके मुंह से मुझे बास न आई, मैंने कहा कि कुछ गड़बड़ है; तू जरूर दतौन करती होगी। उसने कहाः आपको कैसे पता चला? मैंने कहाः चलने की कोई जरूरत है? जैन-मुनि तो बारह कोस दूर से गंध देता है। इसमें कोई बात करने की बात है? इसमें कुछ पता लगाने की बात है? तेरे मुँह से बास नहीं आ रही है।

पच्चीस नियम तुम पर लगाएँगे। बाथरूम में पेशाब भी नहीं करने देंगे। उनके नियम के खिलाफ है। क्योंकि जैन-शास्त्र जब बने, तब सेप्टिक टैंक नहीं होते थे। तो नियम है नहीं वहां। जैन-शास्त्र में उल्लेख है, जल में पेशाब मत करना। अब सेप्टिक टैंक में जल होता है! अब फंसे मुसीबत में!

एक बार मैं सोहन के घर मेहमान था पूना में। पांच-सात साध्वियां मुझसे मिलने के लिए घर मेहमान हो गईं। सुबह आकर घर के पहरेदार ने कहा कि अजीब स्त्रियाँ हैं ये, ये रात भर न मालूम क्या-क्या करती हैं। थाली में भर-भर कर पेशाब बाहर ले जाकर डालती हैं।

अब उनकी मजबूरी समझो! गोरखधंधे में पड़ना है! कि रात भर सो भी न सको! कि पेशाब थाली में भरो और बाहर डालो।

जिस संप्रदाय में पड़ोगे, उसके नियम हैं। उसके नियम में रत्तीभर भेद हुआ कि भोजन बंद। नियम.जरा भिन्न हुआ कि भ्रष्ट, कि समादर समाप्त। जिंदगी की छोटी-मोटी जरूरतों के लिए गुलाम बनोगे? चले थे मुक्ति की खोज में, हो गए कहीं गुलाम। उससे तो कारागृह में बैठ जाना बेहतर है। कारागृह के नियम इतने सख्त नहीं हैं। कारागृह में नियम हैं, मगर इतनेसख्त नहीं हैं।

क्योंकि आदमियों को ध्यान में रख कर बनाए गए हैं; आदमियत की कमजोरी को ध्यान में रख कर बनाए गए हैं।
ये जो शास्त्र के नियम हैं, ये आदमी को ध्यान में रख कर नहीं बनाए गए हैं, ये आदमी के विपरीत बनाए गए हैं। ये आदमी को जबरदस्ती खींचतान करके श्रेष्ठता के पद पर लाने की आकांक्षा में बनाए गए हैं। ये अमानवीय हैं। तो अगर अकेले रहे तो भूखे मरोगे; ध्यान-व्यान की सुविधा नहीं रह जाएगी; और अगर किसी संप्रदाय के जाल में पड़े तो गुलाम हो जाओगे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, कहीं भागना मत। जहां हो, जैसी जीवन की व्यवस्था जम गई है, उसको जरा भी हिलाना-डुलाना मत। एक आयोजन हो गया है, अब इस आयोजन को व्यर्थ खंडित करके नया आयोजन करने की झंझट क्यों लेनी? इस आयोजन का फायदा उठा लो! मैं तुमसे बुद्धिमान होने को कह रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, थोड़ी समझदारी बरतो! इस आयोजन का फायदा उठा लो। पत्नी भोजन बना देती है--फिर भी कोई भोजन बनाएगा कल, किसी और की पत्नी बनाएगी। अभी बीमार होओगे तो घर में कोई चिंता कर लेता है, कल फिर और कोई चिंता करेगा। यह व्यवस्था जम गई है। इस जमी व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अब तुम चाहो तो सारी ऊर्जा को भीतर की तरफ मोड़ सकते हो। अब बाहर ऊर्जा को नियोजित करने की कोई जरूरत नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं जहाँ हो, जैसे हो, वहीं अंतर्यात्रा पर निकल चलो, वहीं भीतर सरकने लगो। न गुलाम बनोगे किसी के, न किसी पर निर्भर हाओगे, स्वावलंबी रहोगे, अपने मन के मौजी रहोगे; अपने जीवन की व्यवस्था अपने स्वभाव से जमाओगे, किसी और के स्वभाव से जमाने की जरूरत नहीं रहेगी। अब जीवन की सारी व्यवस्थाएँ किसी ने जमाई हैं! जिसने जमाई हैं, उसने अपने हिसाब से जमाई हैं--तुम्हारा तो उसको पता भी नहीं था। अब तुमको पता है कि महावीर स्वामी सोच रहे थे कि उमंग भाई संन्यास लेंगे ढाई हजार साल बाद, तो इनके हिसाब से बनाई जाए व्यवस्था! महावीर ने अपने ढंग से बनाई। ढंग-ढंग के लोग हैं।
मुझे शक है यह कि महावीर को मच्छर नहीं काटते थे। शक का कारण है। ऐसे लोग हैं, जिनको मच्छर नहीं काटते। मैं एक सज्जन के साथ वर्षों रहा, उनको मच्छर काटते ही नहीं। कोई दूसरा बैठे, उसकी जान ले लेते हैं, और उनके पास नहीं फटकते। तो मैंने कहा कि मामला क्या है? मच्छर उनसे दूर-दूर जाते हैं। उनके खून की गंध ऐसी है कि मच्छर को रुचती नहीं। मुझ शक है कि महावीर के खून में गंध ऐसी ही थी, नहीं तो नग्न रहना मुश्किल हो गया होता! जरूर मच्छर नहीं काटते रहे होंगे, मच्छर नहीं परेशान करते रहे होंगे।
तुम जाकर चिकित्सकों से पूछ सकते हो, जो रत्त की परीक्षा करते हैं। मच्छरों को किसी खास रत्त में रस होता है, तो उसकी तरफ एकदम आते हैं। गंध होती है एक खास, जो उनको खींचती है। अभी पश्चिम में मच्छरों को पकड़ने के लिए यंत्र बनाए जा रहे हैं। उन यंत्रों की कुल खूबी यह है कि उनमें एक खास तरह की गंध है, बस। यंत्र के भीतर गंध है, जैसे ही मच्छर उसमें आता है, वह फंस जाता है--फिर बाहर नहीं निकल सकता। बस भीतर जा सकता है, बाहर नहीं निकल सकता। भीतर गया कि मरा।
महावीर ने अपने हिसाब से नियम बनाया होगा। अपने जीवन के ढंग को अपने ढंग से जिआ; अपनी सहजता से जिआ। महावीर सुबह उठ आते थे जल्दी; उनको रास आता होता होगा। वैज्ञानिक कहते हैं, कुछ लोगों को सुबह जल्दी उठना रास आता है। अगर वे पांच बजे न उठें तो उन्हें दिन भर बैचेनी मालूम होती है। और कुछ लोगों को देर से उठना रास आता है। अगर वे पांच बजे उठ आएं तो दिन भर जम्हाई लेते हैं और उदास रहते हैं और बैचेन रहते हैं और दिन भर उनको ऐसा लगता है कुछ कमी है। इसकी वैज्ञानिक परीक्षाएं हुई हैं, तो पाया गया है कि कारण है। हर आदमी का तापमान दो घंटे के लिए रात में नीचे गिर जाता है। दो से लेकर चार डिग्री तक नीचे गिर जाता है। वह जो दो घंटे के लिए तापमान नीचे गिरता है, वही दो घंटे उस आदमी के लिए सबसे गहरी नींद के घंटे हैं। अगर वे दो घंटे सोने में बीत गए तो वह आदमी दिन भर ताजा रहेगा। और अगर उन दो घंटों में उसे जगा दिया तो वह दिन भर बेचैनी अनुभव करेगा।

अब इसका ब्रह्ममुहूर्त से कुछ लेना-देना नहीं है। किसी के वे दो घंटे रात दो बजे से चार बजे के बीच में होते हैं, और किसी के चार से छह के बीच में होते हैं, और किसी के पाँच से सात के बीच में होते हैं। और ऐसे लोग भी हैं जिनके छह और आठ के बीच में होते हैं। अब इसमें उनकी मजबूरी है, उनका कोई हाथ का बस नहीं है। तुम क्या कर सकते हो? कब तुम्हारा तापमान गिर जाता है, वे दो घंटे तो तुम्हें सोना ही चाहिए। अब अगर तुमने किसी दूसरे के शास्त्र से नियम सीखा तो मुश्किल में पड़ोगे; उसने नियम अपने ढंग से बनाया है।
और अक्सर शास्त्र बूढ़ों ने लिखे हैं, यह भी ख्याल रखना। उन जमानों में बूढ़े मुश्किल से लिख पाते थे, जवानों की तो बात ही क्या? जिंदगी भर थोड़ा- बहुत सीख-साख कर बुढ़ापे में लिख पाते थे। सब शास्त्र बूढ़ों ने लिखे हैं। बूढ़ों की नींद कम हो जाती है। जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है, फिर पैदा होने के बाद बाईस घंटे सोता है, फिर बीस, अठारह घंटे। घटते-घटते-घटते आठ घंटे, सात घंटे, छह घंटे, फिर पांच घंटे, चार घंटे, तीन घंटे। बूढ़े तीन घंटे, दो घंटे में नींद को पूरा कर लेते हैं। अब अगर अस्सी साल का आदमी किताब लिखेगा कि लोगों को कितना सोना चाहिए, वह लिखेगा तीन घंटे काफी हैं। अब कोई बीस साल का जवान लड़का इसके चक्कर में पड़ गया, तो गया काम से! मारा गया! बेवत्त मारा गया! इसकी जिंदगी भर खराब हो जाएगी, इसी ब्रह्ममुहूर्त में।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो ब्रह्ममुहूर्त में मारे गए हैं। क्योंकि उनको उठना ही है, किताब में लिखा है कि पांच बजे उठ आना। और उनकी नींद पूरी नहीं होती।
एक युवक मेरे पास आता था। उसके मां-बाप उसे लाए थे कि आप कुछ करिए। वह बिल्कुल पागल हो रहा था। मैंने उनसे कहा कि इसका पूरा इतिहास मुझे कहो कि इसके पागलपन का मामला क्या है? उन्होंने कहा और कुछ मामला नहीं है, हम आपके पास इसीलिए आए हैं कि आप ही एक आदमी हैं जो शायद इसको बुद्धि दे सकें। क्योंकि इसको धार्मिक होने की भ्रांति है। यह तीन-चार साल से स्वामी शिवानंद की किताबों में उलझा हुआ है। किताबों में लिखा है, तीन बजे उठ जाना चाहिए; तो यह तीन बजे उठता है। तीन बजे उठ जाता है तो दिन भर इनको नींद आती है। तो यह गया स्वामी जी से पूछने। स्वामी जी ने कहा कि दिन भर नींद आना तो तामसी लक्षण है। इसका मतलब कि तेरा भोजन तामसी है, तू सिर्फ दुग्धाहार कर। सो इसने और सब भोजन बंद कर दिया, अब यह दुग्धाहार करता है, सिर्फ दूध ही पीता है। तो कमजोर हो गया है, सूख गया है बिल्कुल।
कितना दूध पीओगे? और प्राकृतिक रूप से दूध सिर्फ बच्चों के लिए है। तुमने किसी जानवर को एक उम्र के बाद दूध पीते देखा? सिर्फ आदमी ही यह मूढ़ता करता है। नहीं तो दूध तो सिर्फ बच्चों के लिए है, छोटे बच्चों के लिए है। उनके लिए जरूरत है। जैसे-जैसे तुम्हारी उम्र बड़ी होती है, दूध तुम्हारे लिए उपयोगी नहीं रह जाता। या थोड़ी-बहुत ले लो तो ठीक है। मगर दूध ही दूध पर जीओगे? और शास्त्रों में लिखा हुआ है, और स्वामी शिवानंद के शास्त्र में तो बहुत जोर से लिखा हुआ है कि दूध ही शुद्ध आहार है।
अब यह बिल्कुल भ्रांत और झूठी बात है। दूध तो शुद्ध खून है, शुद्ध आहार कैसे होगा? मां के स्तन में ग्रंथियां होती हैं, जिसमें खून दो हिस्सों में विभाजित हो जाता है। खून में दो तरह के कण होते हैं--सफेद और लाल। सफेद कणों को अलग कर देता है स्तन, वही दूध बनता है--इसलिए दूध पीने से खून बढ़ता है। दूध खून है, शुद्ध खून है। मांसाहार का हिस्सा है। दुनिया में एक ऐसा धर्म भी है--क्वेकर--जो दूध नहीं पीते; क्योंकि वे कहते हैं यह मांसाहार है। वे शुद्ध शाकाहारी हैं। दूध, दही, घी, सभी चीज का वर्जन है। मगर एक-एक धारणा होती है! दूध शुद्ध आहार है; ऋषि-मुनि पीते रहे सदा से!
तो वह युवक दूध ही दूध पीने लगा। दुबला हो गया, कमजोर हो गया। मस्तिष्क उसका थोड़ा डाँवाँडोल होने लगा, क्योंकि मस्तिष्क के लिए एक खास तरह की ऊर्जा चाहिए, अगर न मिले तो मस्तिष्क टूटने लगता है। उसकी विक्षिप्त-जैसी दशा होने लगी। यह सारा-का-सारा हुआ शास्त्र के अनुसार। मैंने उससे कहाः पागल! दिन में नींद आती है, वह कोई तामस का लक्षण नहीं है। वह सिर्फ इस बात का लक्षण है कि रात नींद पूरी नहीं हुई। तू ठीक से सो!

यह ब्रह्ममुहूर्त में उठना तुझे ठीक नहीं पड़ रहा है। और अभी तेरी उम्र इतनी नहीं है कि तू चार-पांच घंटे सोने से गुजार ले। अभी तुझे सात-आठ घंटे, नौ घंटे सोना ही चाहिए।
बहुत समझाया तो उसकी समझ में आया। ठीक से सोना शुरू किया तो दिन की नींद बंद हो गई। तो मैंने कहाः देख, तामसिक बात बदल गई न! अब दिन में नींद नहीं आती है। अब तू यह भोजन बदल, क्योंकि तामस के लिए तूने यह भोजन शुरू किया था, अब साधारण भोजन पर आ।
एक छह महीने में युवक स्वस्थ हो गया। लेकिन जब वह गया शिवानंद के दर्शन को तो उन्होंने कहा, तू भ्रष्ट हो गया।
यहां स्वस्थ होना भ्रष्ट होना है! यहाँ रुग्ण और बीमार तरह के लोग और विक्षिप्त तरह के लोग स्वीकार किए जाते हैं।
सदा ख्याल रखना, नियम किसी दूसरे के बनाए तुम्हारे काम के लिए नहीं हैं। तुम अपने जीवन को अपने ढंग में ढालो। बस इतना ही स्मरण रखो, गुरु के द्वारा सूक्ष्म निर्देश मिलते हैं, स्थूल आदेश नहीं। सदगुरु के द्वारा दिशा मिलती है, एक-एक कदम का विस्तार नहीं। इतना ही ख्याल रखो कि परमात्मा के साथ होना है और भीतर जाना है। फिर बाकी विस्तार की बातें खुद तय करो। कब उठना है, कब सोना है, क्या खाना है, क्या पीना है, कैसे जीना है, वह तुम अपने अनुकूल खोजो। इसलिए मेरे संन्यासी को मैं कोई अनुशासन नहीं देता। सब अनुशासन, बाहर से दिए गए, गुलामी के जन्मदाता हैं। और संन्यासी तो स्वतंत्रता की खोज में चला है।

तीसरा प्रश्न: जीवन में इतना दुख क्यों है?

दुख चुनौती है; विकास का अवसर है। दुख अनिवार्य है। दुख के बिना तुम जागोगे नहीं। कौन जगाएगा तुम्हें? हालत तो यह है कि दुःख भी नहीं जगा पा रहा है। तुम दुख से भी अपने को धीरे-धीरे राजी कर लिए हो।
तुम्हारी हालत वैसी ही है जैसे कोई रेलवे स्टेशन पर रहता है, तो टेनें निकलती रहती हैं, आती-जाती रहती हैं, शंटिंग होता रहता है गाड़ियों का और शोरगुल मचता रहता है, मगर उसकी नींद नहीं टूटती। तुम इतने सो गए हो कि अब तुम्हें दुख भी नहीं जगाता मालूम पड़ता। लेकिन दुख का इस अस्तित्व में उपयोग एक ही है कि दुख मांजता है, जगाता है। दुख बुरा नहीं है। दुख न हो तो तुम सब गोबर के ढेर हो जाओगे। दुख तुम्हें आत्मा देता है। दुख चुनौती है। इसलिए दुख को तुम कैसा लेते हो, इस पर सब निर्भर है। दुख को चुनौती की तरह लो।
लेकिन तुम्हें कुछ और ही सिखाया गया है। तुम्हें सिखाया गया है कि दुख तुम्हारे पापकर्मों का फल है। सब बकवास! दुख चुनौती है, एक अवसर है। तुम दुख को देखो और जागो। दुख के तीर को चुभने दो भीतर, उसीसे तुम्हें परमात्मा की याद आनी शुरू होगी।
एक सूफी फकीर था, शेख फरीद। उसकी प्रार्थना में एक बात हमेशा होती थी-- उसके शिष्य उससे पूछने लगे कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती, हम भी प्रार्थना करते हैं, औरों को भी हमने प्रार्थना करते देखा है, लेकिन यह बात हमें कभी समझ में नहीं आती--तुम रोज-रोज यह क्या कहते हो कि हे प्रभु, थोड़ा दुख मुझे तू रोज देते रहना! यह भी कोई प्रार्थना है? लोग प्रार्थना करते हैं, सुख दो; और तुम प्रार्थना करते हो, हे प्रभु, थोड़ा दुख रोज देते रहना!
फरीद ने कहा कि सुख में तो मैं सो जाता हूं और दुःख मुझे जगाता है। सुख में तो मैं अक्सर परमात्मा को भूल जाता हूं और दुख में मुझे उसकी याद आती है। दुख मुझे उसके करीब लाता है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं, हे प्रभु, इतना कृपालु मत हो जाना कि सुख ही सुख दे दे। क्योंकि मुझे अभी अपने पर भरोसा नहीं है। तू सुख ही सुख दे दे तो मैं सो ही जाऊं! जगाने को ही कोई बात नहीं रह जाए। अलार्म ही बंद हो गया। तू अलार्म बजाता रहना, थोड़ा-थोड़ा दुख देते रहना, ताकि याद उठती रहे, मैं तुझे भूल न पाऊं, तेरा विस्मरण न हो जाए। देखते हो, देखने के ढंग पर सब निर्भर करता है!

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, यह तुम्हारे पाप इत्यादि का फल नहीं है
जो तुम भोग रहे हो। यह जीवन की सहज व्यवस्था का अंग है।
जहनो-दिल में अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है
जीस्त की राह में हर-इक ठोकर
जिंदगी का शऊर देती है
"जहनो-दिल में अगर बसीरत हो".अगर देखने की शत्ति हो, क्षमता हो, आंख हो...
जहनो-दिल में अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है
तो अंधेरे को ही प्रकाश में बदल लेने की कला आजाती है। "जीस्त की राह में हर-इक ठोकर"... और जिंदगी की राह में हर-इक ठोकर... "जिंदगी का शऊर देती है"... जिंदगी का राज खोलती है, जिंदगी का रहस्य खोलती है; जिंदगी के द्वार खुलते हैं, जिंदगी की महिमा प्रकट होती है, जीवन का प्रसाद मिलता है। सब तुम पर निर्भर है।
जहनो-दिल में अगर बसीरत हो
तीरगी कैफे-नूर देती है
जीस्त की राह में हर-इक ठोकर
जिंदगी का शऊर देती है

हादसाते-हयात की आंधी
हस्बे-तौफीक रास आती है
तेज करती है सोजा-अहले-कमाल नाकिसों के दिये बुझाती है

इंतकामे-गमो-अलम लेंगे
जिंदगी को बदल के दम लेंगे मर गए तो कजाए-गेती के
जर्रे-जर्रे में हम जनम लेंगे

जिंदगी में न कोई गम हो अगर
जिंदगी का मजा नहीं मिलता
राह आसान हो तो रहरौ को
गुमरही का मजा नहीं मिलता
जिंदगी में भटकने का भी एक मजा है, क्योंकि भटक कर पाने का एक मजा है। जिसने खोया नहीं, उसे पाने का मजा नहीं मिलता। इस जिंदगी के विरोधाभास को जो समझ लेगा, उसने जीवन का सारा रा समझ लिया।
लोग पूछते हैं, हम परमात्मा से दूर क्यों हो गए? इसीलिए कि हम पास हो सकें। दूर न होओगे तो पास होने का मजा नहीं है।
मछली को निकाल लो सागर से, छोड़ दो घाट पर, तड़फती है। पहली दफा पता चलता
है कि सागर में होने का मजा क्या था। सागर में थी एक क्षण पहले तक, तब तक सागर का कोई पता नहीं था। अब अगर यह सागर में वापस गिरेगी तो अहोभाव होगा; अब यह जानेगी कि सागर का कितना-कितना उपकार है मेरे ऊपर।
दूर हुए बिना पास होने का मजा नहीं होता। विरह की अग्नि के बिना मिलन
के फूल नहीं खिलते। विरह की लपटों में ही मिलन के फूल खिलते हैं। "हादसाते- हयात की आंधी... जीवन की दुर्घटनाएं और दुर्घटनाओं की आंधी... "हस्बे-तौफीक रास आती है"... पात्रता के अनुसार रास आती है।
तुमने देखा? तूफान आता है, छोटे-मोटे दीयों को बुझा देता है; और घर में
आग लगी हो, या जंगल में आग लगी हो, तो और लपटों को बढ़ा देता है। यह बड़े मजे की बात है, छोटा दीया बुझ जाता है और लपटें जंगल की और बढ़ जाती हैं। तूफान वही था। सब पात्रता के अनुसार है।

तुम.जरा जागो! तुम जरा जंगल की आग बनो! और तुम पाओगे कि जिंदगी की हर आंधी तुम्हारी लपटों को बढ़ाती है; तुम्हें बुझा नहीं पाती। जिंदगी का हर दुख तुम्हें परमात्मा के सुख के करीब लाता है।
तेज करती है सोजे-अहले-कमाल
नाकिसों के दिये बुझाती है
जिंदगी में न कोई गम हो अगर...
और अगर दुख न हो जीवन में, जिंदगी का मजा नहीं मिलता। तो सुख का अनुभव
ही नहीं हो सकेगा। कांटों के बिना गुलाब के फूल में कोई रस नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। अंधेरी रातों के बिना सुबह की ताजगी नहीं है। और मौत के अंधेरे के बिना जीवन का प्रकाश कहाँ?
जिंदगी में न कोई गम हो अगर
जिंदगी का मजा नहीं मिलता
राह आसान हो तो रहरौ को
गुमरही का मजा नहीं मिलता
देखो इस तरह से; तब संसार भी परमात्मा के मार्ग पर एक पड़ाव है। फिर संसार परमात्मा का विपरीत नहीं है, विरोध नहीं है, वरन परमात्मा को पाने की ही चेष्टा का एक अनिवार्य अंग है। यह दूरी पास आने की पुकार है। यह दुख जागने की सूचना है।

चौथा प्रश्नः भगवान! हमारे आदरणीय गुरुभाई स्वामी ओमप्रकाश सरस्वती
भी स्वामी ब्रह्म वेदांत की भांति भ्रांत दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। वे कहते हैं कि मुझे ध्यान वैसे करने की कोई आवश्यकता नहीं है जैसा कि भगवान ने नियत किया है।

पूछा है विजय भारती ने।
विजय भारती! तुम जब भी प्रश्न पूछते हो, गलत प्रश्न पूछते हो। तुममें गलत प्रश्न ही लगते हैं। पहली तो प्रश्न की तुम्हारी गलती सदा यह होती है कि तुम दूसरों के संबंध में प्रश्न पूछते हो; जैसे कि तुम्हारी अब अपनी कोई समस्या नहीं रही! कभी ले आते हो कि विजयानंद ने ऐसा कहा। कभी ले आते हो कि अर्हंत ने ऐसा कहा। कभी ले आते हो कि... अब यह स्वामी ओमप्रकाश सरस्वती ने ऐसा कर दिया। तुम्हारी जिंदगी की समस्याएं सब समाप्त हो गईं? अब तुम्हें दुनिया के और सारे लोगों की समस्याएं हल करने में ही एकमात्र काम शेष रह गया है?
तुम्हें प्रयोजन क्या है? और तुम कौन हो निर्णायक, कि स्वामी ओम प्रकाश सरस्वती भी ब्रह्म वेदांत की भांति भ्रांत दिशा में अग्रसर हो रहे हैं? तुम, मालूम होता है, उनसे भी आगे पहुंच गए हो। नहीं तो तुम्हें कैसे पता चले कि भ्रांत दिशा में अग्रसर हो रहे हैं? तुम्हें निर्णय लेने को किसने कहा? तुम कैसे निर्णायक बन जाते हो?
यह सब तुम्हारा अहंकार है। मुझे पता है कौन किस दिशा में जा रहा है।
वह मेरी जिम्मेवारी है। तुम कोई ओमप्रकाश के गुरु नहीं हो। तुम चिंता न लो। यह चिंता मेरी है। मैंने ही उन्हें कहा है कि अब ध्यान मत करो। वे भ्रांत दिशा में नहीं जा रहे हैं। ध्यान का काम पूरा हो गया है।
कोई सदा ध्यान ही थोड़े करते रहना है। ध्यान तो औषधि है। जब बीमारी चली
गई तो औषधि बंद कर देनी होती है। नहीं तो फिर औषधि को पीते रहोगे तो औषधि ही बीमारी हो जाएगी।
ओम प्रकाश के ध्यान का काम पूरा हो गया है। अब वे उस मस्ती में हैं, जिस मस्ती को ध्यान से पैदा नहीं करना होता--अब मस्ती की धार बह रही है। अब उठते-बैठते ध्यान लगा हुआ है। वे भ्रांत दिशा में नहीं हैं--भ्रांत दिशा में तुम हो। वे तो ठीक चल रहे हैं; मुझसे पूछ कर चल रहे हैं। सच तो यह है, जब मैंने उनसे कहा, अब ध्यान इत्यादि छोड़ दो तो उनकी आंख में आंसू आ गए थे। छोड़ना नहीं चाहते थे।
लगाव बन जाते हैं। जिस ध्यान से इतना मिला हो, उसको छोड़ दो? जिस औषधि
से ऐसा स्वास्थ्य जन्मा हो, उसे छोड़ दो? लेकिन मुझे तुमसे औषधियां भी

छुड़ानी होंगी। कांटा लग जाता है पैर में, दूसरे कांटे से उसे निकाल लेते हैं; फिर दोनों को फेंक देते हैं न! यह थोड़े ही है कि दूसरे कांटे को, जिससे कांटा निकाला, सम्हाल कर घाव में रख लेते हैं कि यह बड़ा प्यारा कांटा है। ध्यान कोई चरम बात थोड़े ही है। ध्यान तो एक उपाय है, विधि है। कोई विधि चरम नहीं होती। जब ध्यान की चोट लग गई और भीतर जागने का झरना बहने लगा, तो बस अब ध्यान को छोड़ देना है। अब सहज ध्यान रहने लगेगा।
ओम प्रकाश ठीक मार्ग पर हैं।
लेकिन कुछ लोगों को यही लगा रहता है, वे दूसरों की चिंता में पड़े हुए हैं! विजय भारती को सदा इसी तरह के प्रश्न उठते हैं। अब दुबारा इस तरह के प्रश्न मत पूछना। और यह मैं विजय भारती को नहीं कह रहा हूं, औरों को भी कह रहा हूं। ऐसे और लोग भी हैं, जो इसी तरह के प्रश्न पूछते हैं। अगर मैं जवाब नहीं देता तो नाराजगी के पत्र लिखते हैं कि हमारे प्रश्नों का जवाब क्यों नहीं?
तुमने पूछ लिया, इतना ही काफी नहीं है कि तुम्हें जवाब मिलना ही चाहिए। क्योंकि मैं यह भी तो देखूंगा कि तुमने जो पूछा है, वह कूड़ा-करकट तो नहीं है? फिर इतने लोग यहां बैठे हैं, तुम कूड़ा-करकट कुछ भी पूछ लो, इन सब का समय भी खराब करना, मेरा भी समय खराब करना।
ओम प्रकाश को पूछना होगा, मुझसे पूछेंगे। ध्यान करना कि नहीं करना, यह मेरे और उनके बीच की बात है। यह किसी और संन्यासी को इसमें किसी तरह का संबंध लेने की जरूरत नहीं है।
इसका मतलब सिर्फ इतना होता है, तुमको बड़ी अड़चन हो रही होगी कि यह ओम प्रकाश हमसे आगे कैसे निकल गए। कि अभी हमें तो ध्यान की जरूरत है और इन्हें ध्यान की जरूरत न रही!
यह सदा हुआ है। यह इतना ज्यादा हुआ है कि मैंने तय कर लिया है कि किन-किन लोगों की समाधि की अवस्था पक गई है, उनका मैं नाम भी नहीं ले रहा हूं। कौन-कौन व्यत्ति संबोधि के करीब पहुंच रहे हैं, उनका मैं तुम्हें कोई पता भी नहीं दे रहा हूं। क्योंकि तुम्हारी भीड़ ज्यादा है। कोई एकाध व्यत्ति का अगर मैं नाम ले दूँ कि यह व्यत्ति अब ध्यान की आखिरी अवस्था में आ गया, तुम सब उसके दुश्मन हो जाओगे। क्योंकि तुम सब यह सिद्ध करने की चेष्टा करोगे कि नहीं, यह कैसे हो सकता है? हमारे रहते कोई दूसरा कैसे समाधि को उपलब्ध हो सकता है? अभी हम नहीं उपलब्ध हुए, आप कैसे हो सकते हैं? तुम जाकर भूल-चूक निकालने लगोगे। तुम उनके आचरण में कुछ चूकें खोजने लगोगे। नहीं तो तुम गढ़ लोगे, कल्पना कर लोगे। लेकिन तुम स्वीकार न कर सकोगे।
ऐसा अतीत में भी हुआ है।
चीन में प्रसिद्ध झेन फकीर हुआ, लिंची। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया
तो उसके गुरु ने रात में, आधी रात में उसे बुलाया और कहा कि तू उपलब्ध हो गया। और तो मेरे पास भेंट देने को कुछ भी नहीं है, यह मेरा पुराना लबादा है, अब इसकी मुझे जरूरत भी नहीं है, क्योंकि मैं जल्दी ही शरीर छोड़ दूंगा, मैं इसी प्रतीक्षा में था कि कोई एकाध उपलब्ध हो जाए तो मेरे दीये को जलाए रखे, अब तू उपलब्ध हो गया, यह तू लबादा ले ले और यहाँ से भाग जा, और जितनी दूर निकल सके निकल जा। उसने कहा, लेकिन भागने की क्या जरूरत है? लिंची के गुरु ने कहा, तुझे पता नहीं है, यहां जो मेरे पांच सौ और भिक्षु हैं वे मिल कर तुझे मार डालेंगे। वे बरदाश्त न कर सकेंगे।
और बरदाश्त न करने के कई कारण भी थे। पहला तो कारण यह था कि यह सबसे ज्यादा अज्ञात-नाम शिष्य था। इसको कोई जानता ही नहीं था। एक ऐसे काम में लगा था कि इसको कोई कभी जानता ही नहीं, इसका नाम भी लोगों को पता नहीं था। उन पांच सौ भिक्षुओं में बड़े प्रसिद्ध लोग थे--देश भर में जिनका नाम था, ख्याति थी; पंडित थे, शास्त्रकार थे, विवादी थे, वत्ता थे, किताबें लिखी थीं, यश था, मान्यता थी, प्रतिष्ठा थी, ऐसे लोग थे।
गुरु ने पंद्रह दिन पहले घोषणा की थी कि मेरा अंतिम समय करीब आ गया और इसके पहले कि मैं जाऊँ, मैं जानना चाहता हूं कि कौन है जिसको दीया उपलब्ध हो गया है। जो सोचता हो कि उसे उपलब्ध हो गया है वह आकर मेरे दरवाजे पर चार

पंत्तियों में अपने जीवन का सार अनुभव लिख जाए। उन्हीं पंत्तियों से सिद्ध हो जाएगा कि वह उपलब्ध हो गया है या नहीं।
जो सबसे महापंडित था, लोकख्याति को उपलब्ध, उसने ही हिम्मत की--बाकी
ने तो हिम्मत भी नहीं की, क्योंकि वे जानते थे गुरु को धोखा देना आसान नहीं है। अभी हुआ नहीं था अनुभव, तो कैसे लिख दें? लिखेंगे तो उधार होगा। शास्त्र उनने भी पढ़े थे, शास्त्रों में अनुभव के शब्द भी पढ़े थे, चाहते तो वे भी चार पंत्तियां लिख सकते थे। लेकिन उन्होंने कहा कि यह तो झंझट खड़ी हो जाएगी। गुरु कोई साधारण गुरु नहीं था। अगर गलती हो तो मार-पीट भी करता था, सिर तोड़ देता था। इस महापंडित ने भी रात जाकर अंधेरे में उसके दरवाजे पर चार पंत्तियां लिख दीं। पंत्तियां बड़ी प्यारी और प्रसिद्ध पंत्तियां हैं। पंत्तियां थीं कि "मन एक दर्पण की भाँति है। इस पर कर्म की, विचार की धूल जम जाती है। उस धूल को झाड़ दें, दर्पण निर्मल हो जाए--बस यही उपलब्धि है, यही समाधि है।"
अब और क्या कहने को रहा? कह दी बात! हो गई बात! लेकिन इसने भी रात को अंधेरे में लिखी और दस्तखत नहीं किए। क्योंकि इसे यह पता था कि यह मैं कह तो रहा हूं, मगर यह अनुभव मेरा नहीं है; यह दर्पण मेरा साफ नहीं हुआ है अभी। असल में यह दर्पण पर जमी धूल ही बोल रही है, यह दर्पण नहीं बोल रहा है। पता तो उसे था। अपने को कैसे धोखा दोगे? तो उसने दस्तखत नहीं किए थे, कि अगर गुरु कह देगा कि हां ठीक है, तो सुबह जाकर घोषणा कर दूंगा कि मैंने लिखा; और गुरु अगर कह देगा कि ठीक नहीं, तो चुपचाप रहूंगा, बात ही नहीं उठेगी, पता नहीं किसने लिखा। बेईमानी यहां भी कर गया वह!
सुबह गुरु उठा और उसने कहाः पकड़ो इस आदमी को! किसने यह मेरी दीवाल खराब की? इसकी पिटाई करनी होगी।
मगर पकड़ो कैसे? किसी का नाम तो था ही नहीं। बात आई और गई हो गई। सारे आश्रम में एक ही चर्चा थी कि पंत्तियां हैं तो बड़ी सुंदर! मगर पंत्तियों के सौंदर्य का थोड़े ही सवाल है। पंत्तियों का सत्य क्या है? उसने बड़ी कविता में बांध कर लिखा था, बड़े प्यारे ढंग से लिखा था, कैलिग्राफी सुंदर थी, पंत्तियां सुंदर थीं, शब्द ठीक बिठाए थे--और सार की बात कह दी थी, शास्त्रों का सारा सार आ गया था--यही चर्चा का विषय था। बड़ी सरगर्मी थी। सभी बात कर रहे थे कि और इसमें क्या सुधार हो सकता है? इस बूढ़े को कुछ पसंद ही नहीं आता! नाराज हो रहे थे कि जिसने भी लिखी हों, पंत्तियां तो सुंदर हैं।
ऐसे ही बात करते हुए चार भिक्षु भोजनालय से बाहर निकल रहे थे कि ये लिंची चावल कूट रहा था--इसका काम ही चावल कूटना था। यह जब आया था बारह साल पहले और इसने गुरु से कहा था कि मुझे अंगीकार कर लो, तो गुरु ने इसकी तरफ देखा था और कहा था कि तू सच में बदलना चाहता है? धार्मिक होना चाहता है या केवल धर्म की बातें जानना चाहता है? उसने कहा था, जब आप जैसा सदगुरु मिले तो धर्म की बातें जान कर क्या करूंगा? धर्म की बात तो कहीं भी सस्ते पंडित-पुरोहितों से जान लेता, वे तो गांव-गांव उपलब्ध थे। धर्म की बातें नहीं जानना है, धर्म जानना है।
तो गुरु ने कहा था, फिर सुन! फिर तू चला जा आश्रम के चौके में और चावल कूट! और अब दुबारा मेरे पास मत आना। बस चावल कूट, और कुछ मत करना। यही तेरा ध्यान, यही तेरी विधि, यही तेरी साधना; जब जरूरत होगी, मैं आ जाऊंगा।
बारह साल बीत गए थे, न तो गुरु आया, न लिंची दुबारा गुरु के पास गया। न
तो शास्त्र पढ़े इन बारह सालों में--फुरसत ही न थी--न बातचीत की लोगों से। और वहां बड़े-बड़े पंडित थे, ज्ञानी-ध्यानी थे, कौन इस लिंची से बात करे! यह तो सबसे निम्नतम था--शूद्र समझो। चावल कूटता, सुबह से उठ कर सांझ तक चावल कूटता रहता--पांच सौ भिक्षुओं के लिए चावल कूटना, बड़ा काम था! मगर चावल कूटते-कूटते-कूटते--कुछ सोच-विचार को तो था भी नहीं, गुरु ने कहा था, और कुछ करना भी मत, तो उसने कुछ और किया भी नहीं, सोचा भी नहीं--बस चावल कूटना और चावल कूटना! और चावल कूटना! बारह साल बीतते-बीतते तो विचार समाप्त हो गए। दर्पण खाली हो गया! धूल-वूल जमने की जरूरत ही न रही। धूल तो रोज जमानी पड़ती

है तो जमती है। बारह साल कुछ सोचा ही नहीं! सोचने को कुछ था भी नहीं। चावल ही कूटना था, इसमें सोचने जैसी बात भी क्या थी?
ये चार भिक्षु बात करते निकल रहे थे कि लिंची ने सुना, वे पंत्तियां दोहरा रहे थे कि अदभुत पंत्तियां हैं कि "मन एक दर्पण है; दर्पण पर विचार की, कर्म की धूल जम जाती है; धूल को झाड़ दो, दर्पण शुद्ध हुआ--यही समाधि है।" प्यारे वचन हैं! मगर उस बूढ़े को कुछ रास नहीं आता। अब इसके ऊपर और कौन सुधार कर सकेगा?
यह लिंची चावल कूट रहा था, हँसने लगा। इसकी हँसी सुनकर वे चारों चौंके। इसे कभी किसी ने हँसते भी नहीं देखा था। उन्होंने पूछा, तुम हँसे क्यों? इसने कहा कि गुरु ठीक कहते हैं। सब बकवास है।
उन्होंने कहा, यह तुम बोल रहे हो, जो बारह साल से सिर्फ चावल कूटते हो?
... अब जैसे मैं अगर किसी दिन कह दूं कि "दीक्षा" को समाधि उपलब्ध हो गई, तुम मानोगे कि "दीक्षा... ?" चौका चलाती है, उसको कैसे समाधि उपलब्ध हो गई? कौन मानेगा यह? ... तो उन्होंने मजाक में कहा, तो फिर तुम लिख दो चल कर। उसने कहा, बड़ी मुश्किल है, क्योंकि बारह साल में मैं लिखना भी भूल गया। तुम लिख दो तो मैं बोल देता हूं।
वह गया, उसने चार पंत्तियां बोल दीं, किसीने लिख दीं दीवाल पर। चार पंत्तियां थीं--"मन का कोई दर्पण नहीं, धूल जमेगी कहाँ? जिसने यह जाना, उसने जाना।"
रात आधी, गुरु ने उसे बुलाया और कहा कि तूने पा लिया, मगर अब तू भाग जा। तुझे बरदाश्त नहीं किया जा सकेगा। लोग मार डालेंगे।
लबादा दे दिया और लिंची को भगा दिया आश्रम से। और निश्चित चेष्टाएं
की गईं। लोगों ने उसका पीछा किया। उसको मारने की चेष्टाएं की गईं। क्योंकि बड़े-बड़े पंडित थे। और तुम जानते हो पंडितों का अहंकार! उनको यह चोट भारी हो गई कि एक चावल कूटनेवाला और ज्ञान को उपलब्ध हो जाए और हम बैठे शास्त्र पढ़ते रहें; और हम पूजा किए, पाठ किए, मंत्र-तंत्र किए और यह आदमी कुछ भी नहीं किया, चावल कूटता रहा, यह उपलब्ध हो जाए? यह बरदाश्त के बाहर है!
यहां बहुत लोग करीब आ रहे हैं। बहुत लोग करीब आएंगे। बहुत लोग उपलब्ध होंगे। यहां बहुतों की अंधेरी रात में दीया भभक कर जलने वाला है! बहुत से लोग देहली पर आकर खड़े हुए जा रहे हैं। मगर मैं चुप रहूंगा। उनके नाम तुमसे कहूंगा नहीं। तुम उनको बरदाश्त न कर सकोगे। तुम उनसे बदला लेने लगोगे। तुम उनको सताने लगोगे। उन सीधे-साधे लोगों को तुम अड़चन में डालने लगोगे। विजय भारती! इस तरह के प्रश्न पूछना बंद करो। तुम्हारा प्रयोजन तुम्हारी अपनी साधना से होना चाहिए, इससे ज्यादा नहीं। दूसरे में क्या हो रहा है, यह मेरे और उसके बीच की बात है।

आखिरी प्रश्न: भगवान, आत्मा-परमात्मा, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म, मंत्र-तंत्र, चमत्कार, भाग्यादि में मेरा कतई विश्वास नहीं है। मैं निपट नास्तिक हूं। ध्यान भी करता हूं, पर मन का कोई सहयोग नहीं रहता। आपके प्रवचनों में अनोखा आकर्षण है तथा मन को आनंद से अभिभूत प्रेरणाएं मिलती हैं। मन की गहरी गुत्थियां खुल जाती हैं। आपके प्रति मन अगाध श्रद्धा से भर जाता है। क्या मैं आपके संन्यास के योग्य हूं?

पूछा है मोतीलाल शाह ने।
मैं नास्तिकों की ही तलाश में हूं, वे ही असली पात्र हैं। आस्तिक तो बड़े पाखंडी हो गए हैं। आस्तिक तो बड़े झूठे हो गए हैं। अब आस्तिक में और सच्चा आदमी कहाँ मिलता है? अब वे दिन गए, जब आस्तिक सच्चे हुआ करते थे। अब तो अगर सच्चा आदमी खोजना हो तो नास्तिक में खोजना पड़ता है।
आस्तिक के आस्तिक होने में ही झूठ है। उसे पता तो है नहीं ईश्वर का कुछ, और मान बैठा है। न आत्मा का कुछ पता है, और विश्वास कर लिया है। यह तो झूठ की यात्रा शुरू हो गई। और बड़े झूठ! एक आदमी छोटे-मोटे झूठ बोलता है, उसको तुम क्षमा कर देते हो। क्षमा करना चाहिए। लेकिन ये बड़े-बड़े झूठ

क्षम्य भी नहीं हैं। ईश्वर का पता है? अनुभव हुआ है? दीदार हुआ है? दर्शन हुआ है? साक्षात्कार हुआ है? कुछ नहीं हुआ। मां-बाप से सुना है। पंडित-पुरोहित से सुना है। आसपास की हवा में गूंज है कि ईश्वर है, मान लिया है। भय के कारण, लोभ के कारण, संस्कार के कारण। यह मान्यता दो कौड़ी की है। यह असली आस्तिकता थोड़े ही है। यह नकली आस्तिकता है। असली आस्तिकता असली नास्तिकता से शुरू होती है।
नास्तिक कौन है? नास्तिक वह है जो कहता है, मुझे अभी पता नहीं, तो कैसे मानूं? जब तक पता नहीं, तब तक कैसे मानूं? जानूंगा तो मानूंगा। और जब तक नहीं जानूंगा, नहीं मानूंगा।
मैं ऐसे ही नास्तिकों की तलाश में हूं। जो कहता है जब तक नहीं जानूंगा
तब तक नहीं मानूंगा, मैं उसी के लिए हूं। क्योंकि मैं जनाने को तैयार हूं। आओ, मैं तुम्हें ले चलूं उस तरफ! मैंने देखा है, तुम्हें दिखा दूं!
आस्तिक को तो फिकर ही नहीं है देखने की। वह तो कहता है, हम तो मानते ही हैं, झंझट में क्या पड़ना! हम तो पहले ही से मानते हैं। यह उसकी तरकीब है परमात्मा से बचने की। उसकी परमात्मा में उत्सुकता नहीं है। इतनी भी उत्सुकता नहीं है कि इनकार करे। वह परमात्मा को दो कौड़ी की बात मानता है, वह कहता है, क्या जरूरत है फिकर करने की? असल में परमात्मा की झंझट में वह पड़ना नहीं चाहता, इसलिए कहता है कि होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए; जब सब लोग कहते हैं तो जरूर ही होगा। इसको बातचीत के योग्य भी नहीं मानता है। इस पर समय नहीं गंवाना चाहता है। वह कहता है, यह एक औपचारिक बात है, कभी हो आए चर्च, कभी हो आए मंदिर, कभी रामलीला देख ली--सब ठीक है। अच्छा है, सामाजिक व्यवहार है। सबके साथ रहना है तो सबके जैसा होकर रहने में सुविधा है। सब मानते हैं, हम भी मानते हैं। अब भीड़ के साथ झंझट कौन करे? और झंझट करने योग्य यह बात भी कहां है? इसमें इतना बल ही कहां है कि इसमें हम समय खराब करें?
तुम देखते हो, लोग राजनीति का ज्यादा विवाद करते हैं, बजाय धर्म के। बड़ा विवाद करते हैं कि कौन सी पार्टी ठीक! बड़ा विवाद करते हैं कि कौन सा सिद्धांत ठीक! धर्म का तो विवाद ही खो गया है! धर्म का विवाद ही कौन करता है? अगर तुम एकदम बैठे हो कहीं होटल में, क्लबघर में और एकदम उठा दो कि ईश्वर है या नहीं; सब कहेंगे कि भई होगा, बैठो, शांत रहो, जरूर होगा, मगर यहां झंझट तो खड़ी न करो। कौन इस बकवास में पड़ना चाहता है?
नास्तिक अभी भी उत्सुक है। नास्तिक का मतलब यह है--वह यह कहता है कि परमात्मा अभी भी विचारणीय प्रश्न है; खोजने-योग्य है; जिज्ञासा-योग्य है; अभियान-योग्य है। जाऊंगा, खोजूंगा। नास्तिक यह कह रहा है कि मैं दांव पर लगाने को तैयार हूं। समय, तो समय लगाऊंगा।
मेरे अपने देखे जगत में जो परम आस्तिक हुए हैं, उनकी यात्रा परम नास्तिकता से ही होती है, क्योंकि सचाई से ही सचाई की खोज शुरू होती है। कम से कम इतनी सचाई तो बरतो कि जो नहीं जानते हो उसको कहो मत कि मानता हूं। नास्तिक की भूल कहां होती है? नास्तिक की भूल इस बात में नहीं है कि वह ईश्वर को नहीं मानता, नास्तिक की भूल इस बात में है कि ईश्वर के न होने को मानने लगता है। तब भूल हो जाती है।
फर्क समझ लेना।
अगर आस्तिक ईमानदार है तो वह इतना ही कहेगा कि मुझे पता नहीं, मैं कैसे कहूं कि है, मैं कैसे कहूं कि नहीं है? अपना अज्ञान घोषणा करेगा; लेकिन ईश्वर के संबंध में हां या नहीं का कोई निर्णीत जवाब नहीं देगा। यह असली नास्तिक है। जो नास्तिक कहता है कि मुझे पता है कि ईश्वर नहीं है, यह झूठा नास्तिक है। यह आस्तिक जैसा हि झूठा है। आस्तिक ने एक तरह की झूठ पकड़ी है--बिना पता हुए कहता है कि ईश्वर है, इसने दूसरी तरह की झूठ पकड़ी है--बिना पता हुए कहता है कि ईश्वर नहीं है। दोनों झूठ हैं।
असली नास्तिक कहता है, मुझे पता नहीं, मैं अज्ञानी हूं, मैंने अभी नहीं जाना है, इसलिए मैं कोई भी निर्णय नहीं दे सकता, मैं कोई निष्कर्ष घोषित नहीं कर सकता।

मगर यही तो खोजी की अवस्था है। यही तो जिज्ञासा का आविर्भाव है। यहीं
से तो जीवन की यात्रा शुरू होती है।
तुम कहते होः "आत्मा-परमात्मा, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म, मंत्र-तंत्र, चमत्कार-भाग्यादि में मेरा कतई विश्वास नहीं है। मैं निपट नास्तिक हूं।" तो तुम ठीक आदमी के पास आ गए। अब तुम्हें कहीं जाने की कोई जरूरत न रही। यहाँ रहा तुम्हारा सद्गुरु। मैं भी महा नास्तिक हूं। दोस्ती बन सकती है। मैं तुम्हारी "नहीं" को "हां" में बदल दूंगा।
मगर यह बदलाहट किसी विश्वास के आरोपण से नहीं--यह बदलाहट किसी अनुभव से। और वह अनुभव शुरू हो गया है। किरण उतरने लगी है।
तुम कहते होः "आपके प्रवचनों में अनोखा आकर्षण है तथा मन को आनंद से अभिभूत प्रेरणाएं मिलती हैं।"
शुरू हो गई बात, क्योंकि परमात्मा आनंद का ही दूसरा नाम है। परमात्मा कुछ और नहीं है, आनंद की परम दशा है, आनंद की चरम दशा है। परमात्मा सिर्फ एक नाम है आनंद के चरम उत्कर्ष का। शुरू हो गई बात। तुम मुझे सुनने लगे, डोलने लगे मेरे साथ; तुम मुझे सुनने लगे, मस्त होने लगे; तुम मेरी सुराही से पीने लगे; शुरू हो गई बात। तुम रंगने लगे मेरे रंग में। अब देर की कोई जरूरत नहीं है। तुम संन्यासी बनो। बनना ही होगा! अब बचने का कोई उपाय भी नहीं है। अब भागने की कोई सुविधा भी नहीं है।
मेरे संन्यास में आस्तिक स्वीकार है, नास्तिक स्वीकार है। आस्तिक को असली आस्तिक बनाते हैं, क्योंकि आस्तिक झूठे हैं। नास्तिक को परम नास्तिकता में ले चलते हैं, क्योंकि परम आस्तिक और परम नास्तिक एक ही हो जाते हैं। कहने-भर का भेद है। आखिरी अवस्था में "हाँ" और "न" में कोई भेद नहीं रह जाता; वे एक ही बात को कहने के दो ढंग हो जाते हैं।
इसलिए तो बुद्ध जैसे व्यत्ति ने यह नहीं कहा अंत में कि ईश्वर है। महावीर ने नहीं कहा कि ईश्वर है। ये अदभुत आस्तिक हैं! इनकी आस्तिकता ईश्वर की घोषणा पर निर्भर नहीं है। मगर दोनों ने यह कहा कि आनंद है। ईश्वर गौण है बात, असली बात आनंद है। सच्चिदानंद! वह आखिरी बात है। सत से ऊपर चित्, चित से ऊपर आनंद। उसके ऊपर फिर कुछ भी नहीं है।
अगर तुम्हें मेरी बात से पुलक उठने लगी है, अगर तरंग उठने लगी है, अगर मेरा गीत तुम्हें सुनाई पड़ने लगा, और तुम्हारे पैरों में थिरकन आने लगी, तो समय आ गया। सिर्फ इस कारण मत रुकना कि तुम नास्तिक हो। यह कोई कमजोर धर्म नहीं है, जो मैं यहां दे रहा हूं। यह किसी को इनकार नहीं करता है। वे कमजोर धर्म हैं, जो कहते हैं नास्तिक की हमारे पास कोई जगह नहीं है। वे नपुंसक धर्म हैं, जो कहते हैं पहले विश्वास करो, फिर भीतर आओ। मैं कहता हूं, सारे विश्वास छोड़ो, शांत हो जाओ, फिर आस्था का जन्म होगा।
आस्था विश्वास से पैदा नहीं होती है। विश्वास आस्था की झूठी प्रतिलिपि है। झूठी! धोखा है।
तुम विश्वासी नहीं हो, यह अच्छा ही है--मेरा काम तुमने काफीबचाया। आस्तिक आता है तो पहले मुझे उसकी आस्तिकता तोड़नी पड़ती है। तुमने आधा काम खुद ही कर लिया है। तुम बिना किसी विश्वास के हो। यह शुभ घड़ी है। तुम्हारी किताब कोरी है। कुछ साफ नहीं करना है। इस कोरी किताब में शीघ्र ही परमात्मा का पदार्पण हो सकता है।
धर्म आस्तिकता से बंधा हुआ नहीं है, और न धर्म नास्तिकता से भयभीत है।
जो धर्म नास्तिकता से भयभीत है वह धर्म नहीं है। जो आस्तिकता से बंधा है, वह धर्म नहीं है। धर्म बड़ी अदभुत बात है! वहां आस्तिक-नास्तिक दोनों को बदल लेने की कीमिया है। धर्म विज्ञान है।
तुम किसी गणितज्ञ के पास जाओ और कहो कि मेरी गणित में आस्था नहीं है, क्या मैं विद्यार्थी हो सकता हूं? वह कहेगा, विद्यार्थी होओ, आस्था तो पीछे आएगी। तुम किसी संगीतज्ञ के पास जाओ और कहो, मेरी संगीत में कोई आस्था नहीं है। वह कहेगा, हो भी कैसे सकती है; संगीत में उतरो, अनुभव से आस्था आएगी। वही मैं तुमसे कहता हूं।
तुम्हारा भय मैं समझता हूं। तुम कहते हो, क्या मैं आपके संन्यास के योग्य हूं? क्योंकि तुम्हारे तथाकथित किसी मंदिर और मस्जिद में तुम्हारे

लिए प्रवेश नहीं होगा। तुम्हारे तथाकथित शंकराचार्य, पोप और मौलवी, कोई तुम्हें अंगीकार नहीं कर सकेंगे। उनकी छाती बड़ी छोटी है।
मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं। तुम धन्यभागी हो! यहीं से शुरू करेंगे यात्रा। नास्तिकता से ठीक-ठीक कदम उठ सकते हैं।
जो जहाँ है, वहीं से तो परमात्मा की तरफ चलना होगा! और परमात्मा शब्द में तुम्हें रस न हो तो उस शब्द को छोड़ ही दो। उससे कुछ लेना-देना नहीं है।
शब्दों में कुछ रखा नहीं है। आनंद कहो, निर्वाण कहो, सत्य कहो, मोक्ष कहो-- जो कहना हो कहो। और चुप रहना हो, कुछ न कहना हो उसके संबंध में, तो चुप रहो। मगर अनुभव कर लो उसका--जिसके सब नाम हैं और जिसका कोई नाम नहीं।
तुम कहते होः "अनोखा आकर्षण और मन को आनंद से अभिभूत करने वाली प्रेरणाएं उत्पन्न हो रही हैं। मन की गहरी गुत्थियां खुल जाती हैं।" उन्हीं गुत्थियों के खुलने में तो परमात्मा प्रकट हो जाएगा। मन की गांठें खुल गईं सब, कि फिर कुछ और बचता नहीं। मन की गुत्थियों में ही तो खो गया है परमात्मा।
"आपके प्रति मन में अगाध श्रद्धा भर जाती है।"
देखते हो, आस्तिकता शुरू हो गई! श्रद्धा आस्तिकता का जन्म है। किसके प्रति श्रद्धा भरती है, इससे थोड़े ही सवाल है। श्रद्धा उठ आए, बस, शुरू हो गई। आनंद को कैसे झुठलाओगे? अगर मेरी बात में इतना आनंद है, तो मेरी बात का जो अनुभव है, उसमें कितना आनंद न होगा--इस बात को कैसे झुठलाओगे?
श्रद्धा तो उमगेगी। और यह श्रद्धा आरोपित नहीं है। यह तुम्हारे भीतर अपने आप आ रही है। यह प्रसादरूप है। इसका अवतरण हो रहा है।
सच्ची अनुभूतियां सदा ही उतरती हैं--लाई नहीं जातीं। अब तुमसे पुराने गुरु कहते हैं कि श्रद्धा करो! और मैं कहता हूं, श्रद्धा मत करना। श्रद्धा आती है--की नहीं जाती।
मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था बहुत दिन तक। विश्वविद्यालयों में
एक ही अड़चन हो गई है कि कोई विद्यार्थी गुरुओं को आदर नहीं देता। तो कुछ विश्वविद्यालयों ने मिल कर एक समिति बिठाई थी इस पर विचार करने को, कि विद्यार्थियों के मन में गुरुओं के प्रति श्रद्धा क्यों कम हो गई है? और श्रद्धा को कैसे जगाया जाए? न मालूम किस भूल-चूक के क्षण में उन्होंने मेरा नाम उसमें रख लिया! फिर वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि मैंने उनसे जो कहा, वह तो वे सुनने को आए नहीं थे--सोच कर भी नहीं आए थे कि यह कोई कहेगा! वहां तो सब अपना रोना रो रहे थे। मैंने उनसे कहा, बकवास बंद करो यह। तुम श्रद्धा योग्य हो ही नहीं।
उनके चेहरे देखने-जैसे थे। उनको शक होने लगा कि मैं शिक्षक हूं या विद्यार्थियों की तरफ से आ गया हूं--मामला क्या है? मैंने कहा, तुम श्रद्धा-योग्य होते तो श्रद्धा पैदा होती ही। नहीं हो रही है तो तुम श्रद्धा योग्य नहीं हो, और क्या चाहिए! बात जाहिर है और यह क्या बकवास लगा रखी है कि श्रद्धा कैसे पैदा की जाए? कौन कब श्रद्धा पैदा कर पाया है? प्रेम पैदा कर सकते हो? होता है तो होता है। श्रद्धा पैदा कर सकते हो? होती है तो होती है। लेकिन एक बात है कि अगर कहीं कुछ श्रद्धा योग्य हो, तो जरूर हो जाती है। और कहीं अगर कुछ प्रेम-योग्य हो तो जरूर प्रेम हो जाता है। बचा नहीं जा सकता।
तो मैंने कहा, इससे सिर्फ इतना ही सबूत हो रहा है कि जिनको तुम गुरु कहते हो, अब वे गुरु नहीं हैं। और यह केवल संकेत है हवाओं का। विद्यार्थी सिर्फ यह कह रहे हैं कि अब हमारे भीतर तुम्हारे प्रति श्रद्धा पैदा नहीं होती। अब तुम कुछ करो! तुम सोच रहे हो कि विद्यार्थियों के साथ हम क्या करें? नहीं, अपने साथ कुछ करो। तुम बदलो! तुम श्रद्धा याग्य नहीं रहे हो। शास्त्रों में कहा हैः गुरु के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। मैं तुमसे कहता हूंः जिसके प्रति श्रद्धा हो, वह गुरु। गुरु के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए, यह कोई चाहने की बात है? यह कोई चाहत से हो सकती है? जिसके प्रति श्रद्धा पैदा हो जाए, वह गुरु। जिसके प्रति तुम चाह कर भी श्रद्धा को न बचा पाओ, वह गुरु। जिसके प्रति तुम्हारे बावजूद श्रद्धा हो जाए, वह गुरु।

अब तुम नास्तिक हो और संन्यास का भाव उठ रहा है, जरा सोचो! ऐसा कभी सुना? आंखों देखा, कानों सुना? नास्तिक को संन्यास का भाव उठ रहा है! यही श्रद्धा है। श्रद्धा असंभव को संभव बनाती है।
मेरा संन्यास अस्तित्व के प्रति प्रेम की एक कला है।
अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें
दिल के वीराने को मामूरे-मसर्रत कर लें
गर्दिशे-चर्ख को फिर खूगरे-बहजत कर लें
उम्रे-नाशाद को सरमायए-इशरत कर लें
वत्त बाकी है अभी आओ कि उल्फत कर लें
अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें
आओ देखो कि सरापा गमे-पिन्हां हूं मैं
शमअ की तरह से इक शोलए-सोजां हूं मैं
दिल शिकिस्ता हूं, सितमकश हूं, परेशां हूं मैं दर्द शाहिद है कि मिन्नत-कशे-दरमां हूं मैं तुम जो आ जाओ तो सब दूर शिकायत कर लें
अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें

मुझसे गर तुमको गिला है तो सुनाओ मुझको
गर खता मुझसे हुई हो तो बताओ मुझको
हो खफा मुझसे तो पास आके जताओ मुझको
गमे-दूरी से मगर अब न जलाओ मुझको
नालए-दर्द को आहंगे-मसर्रत कर लें
अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें
परमात्मा के साथ संबंध जोड़ना मोहब्बत को एक नया ढंग, एक नई शैली देनी है। वही मोहब्बत है यह, जो तुमने पत्नी से की थी, जो तुमने अपनी मां से की थी, जो तुमने अपनी बहन से की थी, जो तुमने अपने दोस्त से की थी। वही मोहब्बत है यह। मगर एक नया सिलसिला है। उसी मोहब्बत का एक नया आयाम है।
संन्यास का अर्थ हैः मेरे प्रेम में गिर जाना। और मैं एक द्वार हूं, इससे ज्यादा नहीं। मुझमें गिरे कि मुझसे पार गए। द्वार तो सिर्फ द्वार है, उससे पार चले जाना है। मैंने एक झरोखा खोला है तुम्हारे लिए और तुम्हें पुकार रहा हूं कि आओ, इस झरोखे से जरा देख लो। बड़ी सुंदर है दुनिया इस झरोखे के पार! खुला आकाश है और शुभ्र बादल हैं और चांद-तारे हैं! मुझ पर अटक नहीं जाना है--मुझसे पार हो जाना है।
तुम्हारे जीवन में आनंद की थोड़ी सी पुलक उठी है, संन्यास इस पुलक को
एक प्रगाढ़ बाढ़ बना जाएगा। अभी सुन रहे हो, दूर-दूर हो, फिर पास आ जाओगे। फिर मेरे शब्द ही नहीं सुनोगे, मेरे हृदय की धड़कन भी सुनने लगोगे। फिर मैं जो कहता हूं, वह तो सुनोगे ही, और जो मैं नहीं कहता हूं, वह भी सुनने लगोगे। आओ, अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें
दिल के वीराने को मामूरे-मसर्रत कर लें
गर्दिशे-चर्ख को फिर खूगरे-बहजत कर लें
उम्र-नाशाद को सरमायए-इशरत कर लें
वत्त बाकी है अभी आओ कि उल्फत कर लें
अभी आओ कि नये सिर से मोहब्बत कर लें
संन्यास प्रेम की एक नई यात्रा है। उतर आओ घोड़े से! इस बारात के साथ बहुत चल लिए। इस भीड़-भाड़ के साथ बहुत चल लिए। अब किसी एक के, ऐसे के भी साथ चल लो, जो अकेला है। और उसी के साथ चलने में तुम्हें पहली दफा अपने अकेलेपन का आनंद अनुभव होगा, अपने एकांत का अनुभव होगा। वही एकांत का अनुभव एक दिन परमात्मा का अनुभव बन जाता है।
परमात्मा कोई विश्वास नहीं है--अनुभव है। परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है--श्रद्धा है। और श्रद्धा की शुरुआत हो गई है। चमत्कार तो हो गया है। नास्तिक संन्यासी होना चाहता है!

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
पांचवां प्रवचन

रस की प्यास आस नहिं औरां

संतोए मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
कुल मरजाद मैंड सब लागोए बैठा भाठी नेरा।
जात.पांत कछु समझौ नाहींए किसकूं करै परेरा।।
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव ऐही लय लागीए पीवै फूल घनेरा।।
सो रस मांग्या मिलै न काहूए सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तनमन दे लीयाए होइ धनी का चेरा।।

प्राणपति न आए होए बिरहिण अति बेहाल।
बिन देखे अब जीव जातु है विलम न कीजै लाल।।
बिरहिण ब्याकुल केसवाए निसदिन दुखी बिहाइ।
जैसे चंद कुमोदिनीए बिन देखे कुमिलाइ।।
खिन खिन दुखिया दगाधियेए विरह.विथा तन पीर।
घरी पलक में बिनसिये ज्यूं मछरी बिन नीर।।
पीव पीव टेरत दिन भईए स्वातिसुरूपी आव।
सागर सलिता सब भरेए परि चातिग कै नहिं चाव।।
दीन दुखी दीदार बिनए रज्जब धन बेहाल।
दरस दया करि दीजियेए तौ निकसै सब साल।।

ष्संतोए मगन भया मन मेरा!ष्
प्रेम का मार्ग मस्ती का मार्ग है। होश का नहींए बेहोशी का। खुदी का नहींए बेखुदी का। ध्यान का नहींए लवलीनता का। जागरूकता का नहींए तन्मयता का। यद्यपि प्रेम की जो बेहोशी है उसके अंतर्गृह में होश का दीया जलता है। लेकिन उस होश के दीए के लिए कोई आयोजन नहीं करना होता। वह तो प्रेम का सहज प्रकाश हैए आयोजना नहीं।
यद्यपि प्रेम के मार्ग पर जो बेखुदी हैए उसमें खुदी तो नहीं होतीए पर खुदा जरूर होता है। छोटा मैं तो मर जाता हैए विराट मैं पैदा होता है। और जिसके जीवन में विराट मैं पैदा हो जाएए वह छोटे को पकड़े क्योंघ् वह छुद्र का सहारा क्यों लेघ् जो परमात्मा में डूबने का मजा ले लेए वह अहंकार के तिनकों को पकड़े क्योंए बचने की चेष्टा क्यों करेघ् अहंकार बचने की चेष्टा का नाम है। निर.अहंकार अपने को खो देने की कला है।
भक्ति विसर्जन हैए खोने की कला है। और खूब मस्ती आती है भक्ति से। जितना मिटता है भक्तए उतनी ही प्याली भरती है। जितना भक्त खाली होता हैए उतना ही भगवान से आपूर होने लगता है। भक्त खोकर कुछ खोता नहींए भक्त खोकर पाता है। अभागे तो वे हैं जिन्हें भक्ति का स्वाद न लगाए क्योंकि वे कमा.कमा कर केवल खोते हैंए पाते कुछ भी नहीं। भक्त अपने को गंवा कर अपने को पा लेता है। और हम अपने को बचाते.बचाते ही एक दिन मौत के मुंह में समा जाते हैं। हमारी उपलब्धि क्या हैघ् हमारे हाथ खाली हैं। हमारे प्राण खाली हैं। और विरोधाभास ऐसा है कि भरने में ही हम लगे रहे जन्मों.जन्मों तक। भक्त ने यह देख लिया कि भरने से नहीं भरता है। तब उसके हाथ में दूसरा सूत्र आ जाता है कि खाली करने से भरता है।
संतोए मगन भया मन मेरा!
फिर भक्ति का मार्ग कोई रूखा.सूखाए रसविहीन मार्ग नहीं है। उदासी का
और हताशा का और पराजय का और दुखवाद का मार्ग नहीं है। भक्ति का मार्ग आनंद.उत्सव है। भक्ति का मार्ग बसंत का मार्ग है..अनंत.अनंत फूलों काए अनंत.अनंत गीतों का। भक्ति का मार्ग अपनी आत्यंतिक अवस्था में महोत्सव के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भक्ति अर्थात यह महोत्सव कि हम हैं और परमात्मा हैए और क्या चाहिए! हमारा होना परमात्मा में हैए इससे बड़ा और

क्या धन्यभाग होगा! तो भक्त खूब छकता हैए भक्त खूब रस में डुबकियाँ लेता है। भक्ति का स्वाद आनंद का स्वाद है।
तो कोई अगर भक्ति की बात करता हो और निरानंद होए तो समझना कि बात ही बात है। कोई अगर भगवान की बात करता हो और उदास होए तो समझना कि सब बकवास है। कोई अगर मोक्ष की बात करता हो और उसके जीवन में तुम्हें मुक्ति का रस बहता न मिलेए तो समझना कि शास्त्र तो उसने जानेए अभी सत्य से बहुत दूर है..अभी जीने की कला उसे नहीं आई।
अक्सर औकात यह महसूस किया है मैंने
उम्र भर जी के भी जीना नहीं आया मुझको
मुश्किल से आता है जीना। जीवन तो सबको मिल जाता हैए जीना बहुत कम को आता है। जिनको जीना आ गयाए उनको परमात्मा आ गया। जीवन को ही जीना मत समझ लेना। जीवन तो केवल जीने के लिए एक अवसर है। चाहोगे तो जी सकोगेए चाहोगे तो ऐसे ही गंवा भी दोगे। अधिक तो गंवाते हैंए बहुत थोड़े से लोग जीते हैं। अधिक तो जन्मते हैं और मरते हैंए थोड़े से लोग जीते हैं। जन्म और मृत्यु के बीच जीवन कभी.कभी घटता है। जब घटता हैए तब उसकी अपार महिमा है। जब घटता हैए तब भगवत्ता उतरती हैए तब भगवान पृथ्वी पर चलता है। भक्त की रसधार में ही भगवान के चरण फिर पृथ्वी पर पड़ते हैं। भक्त की मस्ती में ही फिर भगवान का गीत उतरता है। भक्त के मिट जाने मेंए भक्त की बेखुदी में भक्त बांसुरी बन जाता हैए फिर उसके स्वर प्रवाहित होने लगते हैं।
तुम अपने से भरे होए इसलिए प्रभु तुम्हें बांसुरी बनाना भी चाहे तो कैसे बनाएघ् तुम बांस की पोंगरी बनो..खाली और रिक्त और शून्य..ताकि उसके स्वर तुमसे बह सकें। बजाने की उसकी बड़ी आतुरता हैए मगर तुम अपने से भरे हो। तुम जरा खाली हो जाओ और फिर देखो! फिर इसी जीवन को देखो और तुम दूसरा ही जीवन पाओगे। यह जीवन जो तुमने अब तक दुख जैसा जाना हैए तुम चकित होकर देखोगे कि यहां कैसा दुखए यह आनंद का महासागर है। और यह जीवन जहां तुमने कांटे ही कांटे पाए थेए अचानक तुम पाओगे फूलों भरा है। यहां हजार.हजार कमल खिल रहे हैं। तुम्हारी दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली।
लेकिन तुम दृष्टि को तो नहीं बदलतेए दृष्टि का धोखा पैदा कर लेते हो..दर्शनशास्त्रों को पकड़ लेते हो। दृष्टि तो तुम्हारी होती हैए दर्शनशास्त्र उधार होते हैं। किसी ने जैन.दर्शन पकड़ा हैए किसी ने इस्लाम.दर्शन पकड़ा हैए किसी ने हिंदू.दर्शन पकड़ा है..दृष्टि खोजोए दर्शन पकड़ने से क्या होगाघ् आंख चाहिएए देखने वाली आंख। दर्शन तो और अंधा कर देता है। शब्द ही शब्दों की पर्तें जम जाती हैं आंखों पर। दर्पण में फिर कुछ और दिखाई नहीं पड़ता।
ऐ दिल! तेरा मुकाम था दैरो.हरम से दूर
क्यों अपने आपको यहीं बहला के रह गया
लेकिन लोग मंदिरों.मस्जिदों में उलझ गए हैं। अदभुत अंधापन है। इस पृथ्वी पर लाखों चर्च हैं और हर चर्च में कम के कम एक चीज तो रखी ही है..बाइबिल। और जरा बाइबिल को पलटना और बाइबिल में जगह.जगह इस बात की उदघोषणा की गई है कि मुझे तुम आदमियों के बनाए हुए मंदिरों में मत खोजना। यह दुनिया बड़ी अदभुत है। यहां मंदिरों में किताबें रखी हैं जिसमें लिखा है कि तुम मुझे आदमी के बनाए हुए मंदिरों में मत खोजनाए मैं वहां नहीं हूंए तुम मुझे मेरी कृति में खोजनाए मेरी सृष्टि में खोजनाए तुम मुझे आदमी की बनाई हुई मूर्तियों में मत खोजनाए और आदमी के बनाए हुए सिद्धांतों में मत खोजना। लेकिन बाइबिल को पढ़ता कौन हैघ् पूजा की चीज है। ऐसा ही समझो कि तुम देख नहीं पाते। किसी ने तुम्हें चश्मा दिया कि तुम ठीक से देख सको और तुमने चश्मे को सजा कर रख लिया..एक छोटी सी वेदी बना लीए चश्मे को सजा कर रख लियाए सोने का 179ोम चढ़वा दिया हैए कांच की जगह बहुमूल्य हीरे.जवाहरात जड़ दिए हैंए रोज फूल चढ़ा देते होए रोज सिर झुका लेते हो। चश्मे की पूजा से क्या होगाघ् यही हो रहा है। मैं तुम्हें एक खिड़की दिखाऊं और कहूं झांको आकाश को और तुम खिड़की में ही उलझ जाओ। तुम कहो..अहाहा! कैसी प्यारी नक्काशी है! और तुम कहो..कैसी बहुमूल्य खिड़की है! कैसे रंगीन कांच! और फिर तुम इस खिड़की को ही एक वेदी बना लोए यहां रोज फूल

चढ़ाओए खिड़की को चंदन.मंदन से मढ़ दोए खिड़की को हीरे.जवाहरात जड़ दो और यह भूल ही जाओ कि खिड़की कोई पूजा का विषय नहीं थीए सिर्फ माध्यम थीए उसके पार देखना था। खिड़की देखने के लिए एक आंख थीए एक दृष्टि थी। उसके पार जाना था। वहां दूर खिड़की के पार आकाश में चाँद ऊगा हैए पूर्णिमा की रात है और तुम खिड़की की पूजा कर रहे हो! यही हो रहा है। बाइबिल की पूजा चल रही है चर्च में और बाइबिल कहती है कि मुझे आदमियों के बनाए हुए मंदिरों में मत खोजना और आदमी के द्वारा गढ़ी हुई मूर्तियों में मैं नहीं हूं। तुम मुझे मेरी कृति में खोजो! और यह सारा जगत उसकी कृति है। और तुम भी उसकी कृति हो।
तो पहलेए इसके पहले कि बाहर खोजने जाओए कम के कम भीतर तो खोजो। वह तो तुम्हारे निकटतम वहां हैए तुम्हारे भीतर। वहां करीब से करीब है परमात्मा। क्योंकि बाहर किसी वृक्ष के पास जाओगे तो कुछ कदम चलने पड़ेंगे। और हिमालय को दर्शन करने जाओगे तो हजारों मील जाना पड़ेगा। और चांद पर जाओगे तो और हजारों.लाखों मील। लेकिन अपने भीतर जाओ तो इंच भर की भी दूरी नहीं है। वहां परमात्मा तुम्हारे निकटतम है। पहले वहां तो खोज लो।
वहां की खोज क्यों नहीं हो पातीघ्
हम सिद्धांतों और शास्त्रों में उलझे हैंए भीतर जाए कौनघ् हमें मंत्रों नेए यंत्रों नेए तंत्रों ने अटका लिया हैए भीतर जाए कौनघ् भीतर जाने की सुध खो गई है। भक्ति उस अंतरतम में उतरना है। और उस अंतर्तम में नृत्य के साथ उतरना है। ध्यानी भी उतरता हैए लेकिन ध्यानी नृत्यशून्य उतरता है। भक्त नृत्यपूर्ण उतरता है। हो सको तो भक्त होना। न हो सको भक्तए तो ध्यानी होनाए वह नंबर दो की बात है। दोयम।
ऐ दिल! तेरा मुकाम था दैरो.हरम से दूर
क्यों अपने आपको यहीं बहला के रह गया
जरा उठो मंदिरों.मस्जिदों सेए शब्दों.सिद्धांतों से और परमात्मा तुम्हें बड़ी दूर की यात्रा पर ले जाने को आतुर है। परमात्मा तुम्हें वहां ले जाना चाहता है जहां तुमने कभी जाने की कल्पना भी नहीं की।
तेरी निगाह वहां ले जाती है आज मुझे
मेरी निगाह भी मुझको जहां न पहचाने
तुम्हें परमात्मा नित्य.नूतन जीवन देने को आतुर है। उसकी सुराही सदा
ही तुम्हारी प्याली को भरने को उत्सुक है। पर प्याली खाली तो करो! प्याली को साफ.सुथरा तो करो! मांजो तो! बस भक्ति इतनी ही है और कुछ नहीं।
आज का सूत्र तो रज्जब का बहुत अदभुत है। कल ही तो मैं तुमसे कह रहा था
कि यह कोई मंदिर नहींए मधुशाला है। आज के सूत्र में वह बात आ गई। रज्जब कहते हैं..
संतोए मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
कुल मरजाद मैंड सब त्यागीए बैठा भाठी नेरा।
जात.पांत कछु समझौ नाहींए किसकूं करै परेरा।।
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव ऐही लय लागीए पीवै फूल घनेरा।।
सो रस मांग्या मिले न काहूए सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दे लीयाए होइ धनी का चेरा।।
बड़े अदभुत वचन हैं। लिख लेना पत्थर की लकीर से हृदय पर। बुद्धि के समझने के नहीं हैंए हृदय में उतारने के हैं। बुद्धि से ही समझे तो चूके।
यहां होश काम न आएगा। यहां बेहोशी काम आएगी। एक.एक शब्द को हृदय में गहरा उतरने दो।
संतोए मगन भया मन मेरा।
मगन का अर्थ होता है..ऐसा मस्त हुआए ऐसा दीवाना हुआ कि सारी जो कल तक
की व्यवस्था थी जीवन कीए अस्त.व्यस्त हो गई। मान थाए मर्यादा थीए कुल थाए मरजादा थीए परिवार थाए समाज थाए औपचारिकताएं थींए शिष्टाचार थेए सब टूट गए। जैसे शराब पीकर कोई मस्त हो जाता हैए फिर भूल ही जाता हैए फिर हिसाब.किताब नहीं रह जाताए फिर एक क्षण पहले तक जो सारी व्यवस्था चेतन चित्त की थी वह एकदम अस्तव्यस्त हो जाती हैए चेतन एकदम खंडित हो जाता है

और गहरे से कुछ उठता है और शराबी को आप्लावित कर लेता है। वैसे ही भक्त को भी भीतर की शराब डुबा लेती है। भक्त शराबी है।
संतोए मगन भया मन मेरा।
कैसे मगन हुआ हैघ् क्या प्रक्रिया हैघ् कैसे यह मस्ती जन्मीघ् कहां
से यह आई हैघ्
अहनिस सदा एकरस लाग्याण्ण्ण्
बस उस एक परमात्मा की याद से यह घटना घटी। यह शराब उस एक परमात्मा की सतत याददाश्त से निर्मित हुई है। उस एक परमात्मा की याद ही अंगूर हैए जहां से रस निचुड़ता है। तुम भी याद करते होए लेकिन बहुत चीजों की याद करते हो। तुम्हारी याददाश्त की बड़ी फेहरिश्त है। ण्ण्ण् कभी बैठ कर लिखना कि तुम कितनी चीजों की याद करते होए तब तुम्हें लगेगा कि तुम हजारों.हजारों चीजों की याद करते हो। और इसीलिए तुम्हारी कोई भी याद मस्ती नहीं ला पाती। तुम बंट जाते हो अपनी याद में। तुम खंड.खंड हो जाते हो। धन की भी याद हैए पद की भी याद हैए प्रेम की भी याद हैए प्रतिष्ठा की भी याद है और न मालूम कितनी यादें हैं। तुम यादों ही यादों से भरे हो। तुम्हारी याद में एकाग्रता नहीं है। तुम्हारी याद अग्नि पैदा नहीं कर पाती है..आग्नेय नहीं हो पाती।
ऐसा ही समझो कि सूरज की किरणें बरस रही हैंए और फिर तुम एक खुर्दबीन
ले आओए और सूरज की किरणों को खुर्दबीन से इकट्ठा कर लो..किरणें तो बरस ही रही थींए नीचे सूखे पत्ते पड़े थेय जल नहीं रहे थे। लेकिन खुर्दबीन से किरणें इकट्ठी हो जाएंए एकजुट हो जाएं और एक बिंदु पर जाकर सूखे पत्ते पर पड़ जाएंए आग भभक उठती है। वे ही किरणें बिखरी.बिखरी पड़ती थीं तो आग नहीं थीय वे ही किरणें इकट्ठी होकर पड़ गयीं तो आग पैदा हो गई।
यही सूत्र है।
जिस दिन तुम्हारी याददाश्त एक के प्रति हो जाएगीए तुम्हारी सारी जीवनऊर्जा इकट्ठी हो उठेगी। उसी जीवनऊर्जा के इकट्ठे होने से मादकता पैदा होती हैए मस्ती पैदा होती हैए शराब निर्मित होती हैए भीतर की मधुशाला के द्वार खुलते हैं। और ऐसा नहीं है कि तुम्हें इसका कभी.कभी अनुभव नहीं हुआ है..छोटे.छोटे अनुभव तुम्हें हुए हैंए क्षणभंगुर अनुभव तुम्हें हुए हैं। तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए थे और तब एक मस्ती की हल्की झलक आई थी। क्या हुआ था तबघ् इतना ही हुआ था..तुम समझो या न समझो..हुआ यही था कि थोड़ी देर कोए कुछ दिनों को सही..वे दिन ज्यादा देर न टिकेए वह समय ज्यादा देर न रह सकाए क्योंकि तुम्हारा जो विषय था प्रेम का वही क्षणभंगुर था..लेकिन बात तो यही घटी थीए विज्ञान तो यही था। उन थोड़े दिनों में तुमने सिवाय उस स्त्री के और कुछ भी याद नहीं किया था। रात सोते थे तो उसकी याद थीए सुबह उठते थे उसकी याद थीए रात सोते.सोते आखिरी उसकी याद होती थीए सुबह आंख खुलते ही पहली उसकी याद होती थीए हजार काम में लगा रहता था मन लेकिन भीतर उसकी रसधार बहती रहती थीए उसका चेहरा घूमता रहता थाए कोई और स्त्री रास्ते से गुजरती थी और तुम्हें उसकी याद आ जाती थीए कहीं कोई गीत गाता था और तुम्हें उसकी याद आ जाती थी..तुम जैसे याद करने को तत्पर ही थेए कोई भी बहाना काफी था..यह कोयल बोल रही है और तुम्हें उसकी याद आ जातीए और पपीहा बोलता और तुम्हें उसकी याद आ जाती..ऐसा मत सोचना कि कोयल और पपीहे से कुछ लेना.देना थाए तुम तो याद से भरे ही थेए कोई भी बहाना काफी थाए कोई भी बहाना पर्याप्त हो जाता थाय तुम्हारी याद तो भीतर चल ही रही थीए जरा सी चोट और याद उमग आती थी। तब तुमने मस्ती का एक अनुभव जाना था। थोड़े दिन को तुम मस्त हुए थे। तुम्हारी चाल में एक नाच उतर आया था। तुम्हारी वाणी में एक माधुर्य आ गया था। तुम्हारी आंखों में एक चमक थी। तुम्हारे व्यक्तित्व में एक आभा आ गई थी..टिकने वाली आभा नहीं थीए आई और गई..लेकिन सूत्र तो यही था।
प्रेम में भक्ति का ही छोटा सा अनुभव होता है। जो समझ लेते हैंए वे फिर इस भक्ति के अनुभव की यात्रा पर प्रेम के अनुभव से लाभ उठा लेते हैं। प्रेम में जो क्षण भर को होता हैए भक्ति में वही शाश्वत रूप से हो जाता है।
भेद प्रेम और भक्ति का इतना ही है कि प्रेम का विषय क्षणभंगुर है..कोई

स्त्रीए कोई पुरुषए कोई वस्तु..भक्ति का विषय शाश्वत हैए सनातन है..परमात्मा हैए स्वयं अस्तित्व है।
अहनिस सदा एकरस लाग्याण्ण्ण्
रात हो कि दिनए अहर्निशए बस मन एक ही रस में लग गया हैए एक ही धुन चढ़ गई हैए एक ही कड़ी गुनगुनाता हैय रह.रहकरए रिस.रिसकर बस उसी.उसी की याद आ जाती हैय उठता है तो उसकी यादए बैठता है तो उसकी यादए चलता है तो उसकी यादय दुनिया के सब काम भी होते हैं..करने ही होते हैं..वे सब काम चलते रहते हैंय मगर भीतर अंतर्धारा बहती रहती है।
अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
हालांकि रहना तो बाजार में ही है..दरीबै यानी बाजार..डेरा तो बाजार में हैण्ण्ण् कहीं भी भाग जाओए यह सब बाजार ही हैए यह सारा संसार बाजार है..बाजार का मतलब हैए जहां चीजें बिक रही हैंए ली.दी जा रही हैंय भीड़.भाड़ए शोरगुलए लेन.देनए छीना.झपटीए स्पर्धा.प्रतिस्पर्धाए प्रतियोगिताए संघर्षए हिंसाए राजनीतिय बाजार का अर्थ है यह सब तो हो रहा है..लेकिन इस बाजार के बीच में भी बैठ कर भक्त को एक ही रस लगा रहता हैए उसके भीतर एक ही धुन बजती रहती है।
तुमने भक्तों के हाथ में एकतारा देखा है न! कभी सोचा वीणा को छोड़ कर एकतारा क्यों चुना होगाघ् वह प्रतीक है एकरस का। एक ही तार है उसमें..वीणा में तो और तार होते हैंए सारंगी में और तार होते हैंए बहुत तार होते हैंए वे उस भक्ति के एकरस के प्रतीक नहीं हो सकते। एकताराए एक ही तार हैए बस एक ही धुन बजाता हैए कुछ नई धुन उस पर निकाली नहीं जा सकतीए बस एक की ही याद चल रही है..भक्त के हाथ में ही एकतारा नहीं होताए भक्त का हृदय भी एकतारा हो गया होता है। अहर्निशए अच्छा हो कि बुराए जीत हो कि हारए दिन हो कि रातए याद बहती रहती हैए सतत्। और ध्यान रखनाए एक.एक बूँद भी अगर सतत पड़ती रहे तो चट्टानें टूट जाती हैं। रसरी आवत जात हैए सिल पर परत निसान। तो अगर एक की याद चलती रहेए चलती रहेए चलती रहेए तुम्हें बदल जाएगीए तुम्हें मस्त कर जाएगी। तुम्हारे हाथ में मस्त होने की पूरी की पूरी क्षमता हैए लेकिन तुमने अपनी मस्ती को खंडों में तोड़ दिया हैय विशृंखल हो तुमए तुम्हारे भीतर कोईशृंखला नहीं हैए तुम टुकड़े.टुकड़े हो गए होए जैसे कोई दर्पण को जमीन पर पटक दे और हजार टुकड़े हो जाएंए ऐसे तुम हो गए हो।
तुम्हें जोड़ा जाना जरूरी है।
कौन तुम्हें जोड़ेगाघ् कैसे तुम जुड़ोगेघ् कोई एक ऐसी चीज चाहिए जो तुम्हारे सारे टुकड़ों के भीतर अनुस्यूत हो जाए। तुम्हारा तन भी उसे पुकारेए तुम्हारा मन भी उसे पुकारेए तुम्हारे प्राण भी उसे पुकारेंए तुम्हारा सब उसे पुकारे। कोई एक चाहिए जो तुम्हारे सब फूलों के भीतर धागे की तरह अनुस्यूत हो जाएए ताकि तुम माला बन जाओ। फिर खूब मस्ती होगी! मस्ती ही मस्ती होगी! इतनी कि तुम बांटोगे तो बांट न पाओगे!
जब भी फुरकत की रात आई है
मौत बनकर हयात आई है
आए हैं जब भी लब वो जुंबिश में
रक्स में कायनात आई है
जिस पै दिन का गुमान होता था
एक ऐसी भी रात आई है
दुखते.रिज को सम्हाल पीरे.मुगां
मैकशों की बरात आई है
दिल में भी जो कभी न आई थी
आज लब पै वह बात आई है
ष्दुखते.रिज को सम्हाल पीरे मुगां।ष् ऐ मदिरालय के स्वामी! अपनी मदिरा की सुराहियों को सम्हाल। ष्दुखते.रिज को सम्हाल पीरे.मुगांए मैकशों की बरात आई है।ष् पियक्कड़ों का पूरा समूह आया है। आज मधुशाला लुटेगी। आज खरीद.फरोख्त नहीं होन वाली हैए आज मधु तौल.तौलकर नहीं पिआ जाएगा..कबीर ने कहा हैए ष्बिन तौलेष्ण्ण्ण् तौलना.वौलना आज नहीं चलेगाण्ण्ण् ष्पी गई मधवा बिन तौलेष्। ष्मैकशों की बरात आई हैष्।

इन्हीं मैकशों की बरात मैं पैदा कर रहा हूं। ये जो गैरिक वस्त्र में रंगे हुए मैकश हैंए इनको ले चल रहे हैं उस तरफ जहां एक दिन ये कह सकें..दुखते.रिज को सम्हाल पीरे.मुगांए मैकशों की बरात आई हैय कि अब हम आ गए लूटने तेरी मधुशाला!
और तुम यह मत सोचना कि मधुशाला का मालिक दुखी होगा। मधुशाला का मालिक बैठा कबसे प्रतीक्षा कर रहा है कि तुम आओ और लूट लो। उसका मजा मधुशाला के लुट जाने में है। उसका मजा बांटने में है। मगर तुम ऊर्जा नहीं इकट्ठी कर पातेए तुम्हारी ऊर्जा हजार दिशाओं में बह रही है। तुम एक ऐसे आदमी होए जिसका एक हिस्सा पश्चिम जा रहा हैए एक पूरब जा रहा हैए एक दक्षिण जा रहा हैए एक उत्तर जा रहा है। तुम कहां पहुंच पाओगेघ् तुम्हारा हाथ कहीं जा रहा हैए तुम्हारे पैर कहीं जा रहे हैंए तुम्हारा मस्तिष्क कहीं जा रहा हैए तुम्हारा हृदय कहीं जा रहा है..तुम पहुंच कहां पाओगेघ् तुम मधुशाला तक नहीं पहुंच पाओगे। इस जीवन का गुह्यतम आनंद तुमसे अपरिचित ही रह जाएगा।

संतोए मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
फिकर भी नहीं है फिर इससे कि बाजार में बैठे हैं। जिसका मन उसमें लगा हैए उसके लिए कहां बाजारघ् और तुम बैठ जाओ जाकर हिमालय की किसी गुफा में और मन तुम्हारा बजार में लगा होए उसके लिए कहां परमात्माघ् तुम हिमालय की गुफा में बैठ कर भी तो जोड़.तोड़ कर सकते हो बाजार का हीए सोच.विचार बजार का ही। फिकर तो तुम्हें वहां भी लगी रहेगी कि क्या हो रहा है दुनिया में। और तुम बजार में रह कर भी ऐसे हो सकते हो कि जरा भी फिकर न हो कि क्या हो रहा है दुनिया में। फिकर हो यही कि क्या हो रहा है मधुशाला में। क्या हो रहा है उस अंतर्गृह में। क्या हो रहा है वहां जहां से सारा जीवन आया है और जहां सारा जीवन लौट जाएगा। क्या हो रहा है उस मूल.स्रोत पर और अंतिम गंतव्य पर। कहां से उठते हैं कमल और सूरज और चाँद और तारे और मनुष्य और चेतनाएं और फिर कहां खो जाते हैंघ् उस गहनतम गहराई में क्या हो रहा हैए उसमें एकरस मन लग जाए। अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
कुल मरजाद मैंड सब त्यागीण्ण्ण्
त्यागनी ही पड़ती हैं। ये छोटे.छोटे हिसाब.किताब वहां नहीं चलते कि मैं हिंदूए कि मैं मुसलमानए कि मैं ब्राह्मणए कि मैं शूद्रए ये मूढ़ताएं वहां नहीं चलतीं। ष्कुल मरजाद मैंड सब त्यागीएष् यह भी नहीं चलता कि मैं बड़ा कुलीन हूंए कि मैं बड़े घर से आता हूंए कि बड़ी ऊंची परंपरा से आता हूँए कि मेरे पुरखे बड़े नाम कमा गए हैंए कि मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं हूंए असाधारण हूं। ष्कुल मरजाद मैंड सब त्यागीएष् मैंड बनाते हैं न खेत के आसपास कि यह मेरा खेतए वह तेरा खेतय मेरे.तेरे का जिससे फासला होता हैए उसका नाम..मैंड। सब सीमाएं जो छोड़ देता हैए वही इस मस्ती को उपलब्ध होता है। मगर तुम सीमाएं पकड़े हो। और तुम सीमाओं को जोर से पकड़े हो। और तुम सीमाओं को ऐसे पकड़े हो जैसे यह संपदा हैए छूटती ही नहीं।
कुछ ही दिन पहले एक महिला पश्चिम से आई। यहां छह महीने से आकर है। मेरे पास आने से डरती रही। फिर हिम्मत जुटा कर आई भी तो कहा कि मैं आपके संग.साथ हो नहीं सकतीए क्योंकि मैं कैथोलिक ईसाई हूं। मैं कैसे आपके संग.साथ हो सकती हूंघ् मैं क्राइस्ट को नहीं छोड़ सकती। मैंने उससे कहाः पागलए तुझसे कहा किसने है कि क्राइस्ट को छोड़! मुझे छोड़ने में ही क्राइस्ट को छोड़ देगीए मुझे पकड़ने में क्राइस्ट को पा लेगी। नहींए लेकिन वह सुनने को भी राजी नहीं थी। उसने सुना भी नहीं कि मैं क्या कह रहा हूं। वह अपनी ही कहे गई कि यह कभी नहीं हो सकता। मैं अपने धर्म को नहीं छोड़ सकती। ईसाइयत तो श्रेष्ठतम धर्म है।
अब यह महिला मधुशाला के द्वार से ही लौट जाएगी। यह कहती है..मैं भीतर नहीं आ सकतीए क्योंकि मैं ईसाई हूं। जो ईसाई हैए वह परमात्मा में नहीं आ सकता। और जो हिंदू हैए वह भी नहीं आ सकता। और जो जैन हैए वह भी नहीं आ सकता। जो सीमाओं को पकड़े हुए हैए वह परमात्मा में नहीं जा सकता। परमात्मा न हिंदू हैए न मुसलमानए न ईसाई। परमात्मा असीम है।

और मजा ऐसा है कि हिंदुओं के शास्त्र कहते..परमात्मा असीम हैए और मुसलमानों के शास्त्र कहते..परमात्मा असीम हैए मगर हमने सीमाएं बना ली हैं। हम हर चीज से सीमा बना लेते हैं। हम हर चीज से सीमित हो जाते हैं। हमें कारागृहों से कुछ ऐसा मोह हैए हमें जंजीरों से कुछ ऐसा लगाव हैए हम जंजीरों को आभूषण समझते हैं और हम उनको खूब सजा लेते हैं। सोने की बना ली हैं जंजीरें और उन पर बहुमूल्य हीरे जड़ लिए हैंए अब उनको छोड़ें भी तो कैसे छोड़ेंए जीवन भर तो उन पर बरबाद कर दिया है। हम कहते हैं कि नहीं.नहींए ये जंजीरें नहीं हैंए ये मेरी सीमा नहीं हैंए यह मेरा सत्व है। ब्राह्मण मेरा सत्व हैए शूद्र मेरा सत्व हैए यह मेरी सीमा नहीं है। फिर सीमा और क्या होतीघ्
आदमी पर सीमाएं क्या हैंघ् यही क्षुद्र बातें। इन सारी क्षुद्रताओं
को जो गिरा देता हैए उसने सीमाएं गिरा दीं। और जिसने सीमाएं गिरा दींए उसने घोषणा की कि परमात्मा असीम है। शास्त्र में लिखने से कुछ भी न होगाए तुम्हारे अस्तित्व से घोषणा होनी चाहिए।
ष्कुल मरजाद मैंड सब त्यागी।ष्
रज्जब तो मुसलमान थे। और दादू के चक्कर में आ गए! दादू तो हिंदू थे। एक क्षण को भी न सोचा कि मैं मुसलमान हूं और दादू हिंदू। दादू ने आकर बीच में घोड़ा पकड़ लियाए बरात जा रही है रज्जब की और कहा..रज्जब तैं गज्जब किया सिर से बांधा मौरए आए थे हरिभजन को चले नरक की ठौर। वे जलती दो आंखेंए वह सन्नाटा..बैंडबाजे रुक गए होंगेए बरात ठहर गई होगीए सहम गई होगी कि अब क्या होता है..और रज्जब कूद पड़ा घोड़े सेए चरणों में गिर पड़ा। फिर उसने यह न कहा कि तुम हिंदूए मैं मुसलमान। निश्चित ही मुसलमान नाराज हुए होंगे। और कोई ऐसा.वैसा मुसलमान नहीं थाए शुद्ध पठान था।
कुल मरजाद मैंड सब त्यागीए बैठा भाठी नेरा।
भाठी यानी जहां शराब ढाली जाती है..भट्ठी। सदगुरु के पास होना भाठी के पास बैठना है। कुल मरजाद मैंड सब त्यागीए बैठा भाठी नेरा। दुनिया हंसी होगी कि हुआ पागलए वह दादू तो पागल था हीए यह रज्जब भी पागल हुआ। मुसलमान निश्चित नाराज हुए होंगेण्ण्ण् तुम पूछ सकते हो कृष्ण मोहम्मद सेए तुम पूछ सकते हो राधा मोहम्मद सेए मुसलमान नाराज हैं। मेरे पास ईसाई आकर डूब जाते हैं रंग मेंए ईसाई नाराज हैं।
कल एक युवती ने मुझसे कहा कि आपको पता हैए एक ईसाई मिशनरी ने नेपाल में मुझसे कहा..और सब जगह जाना अगर हिंदुस्तान जा रही होए पूना मत जाना। क्योंकि यह व्यक्ति जो पूना में बैठा हैए शैतान का अवतार है। पूना ही आने को उत्सुक थी युवतीए वह भी घबड़ा गई..बचपन के संस्कारए और उस पादरी ने बाइबिल भी खोल कर उसको दिखाई कि देख बाइबिल में क्या लिखा हैघ् और बाइबिल के पन्ने को जो उसने दिखायाए उस पर लिखा है जीसस का वचन कि एक ऐसा व्यक्ति आएगा जो बहुत बुद्धिमान होगा और लोगों को भटकाएगा। उसने कहा कि यही व्यक्ति है पूना में।
स्वाभाविक।
ईसाई नाराज होंगेए यहूदी नाराज होंगेए जैन नाराज होंगेए बौद्ध नाराज होंगे। और मजा यह कि मैं जो कह रहा हूंए बुद्ध की बातय जो कह रहा हूंए वह महावीर की बातय जो कह रहा हूंए वह कृष्ण की बातए मोहम्मद की बातय और सब उनके मानने वाले नाराज होंगे। उनकी नाराजगी क्या हैघ् उनकी नाराजगी यही है कि मैं सीमाएं तोड़ रहा हूं। सब अस्त.व्यस्त किए दे रहा हूंए अराजकता ला रहा हूं।
ष्कुल मरजाद मैंड सब त्यागीए बैठा भाठी नेरा।ष्
और निश्चित ही लोग तुमसे कहेंगे कि तुम अब पागल हो गएए अब तुम होश में नहीं होए यह किस मस्ती में चल रहे होघ् कोई शराब पी ली है क्याघ् शराब ही है! और मस्ती पैदा होगी ही! और मस्ती का सारा.का.सारा स्त्रोत तुम्हारे भीतर है। बाहर तो केवल उपकरण मात्र हैंए जिनसे भीतर सोई हुई मस्ती जाग जाती है। सूरज जब सुबह निकलता है तो कोई फूलों को गंध थोड़े ही देता हैए गंध तो फूलों में ही पड़ी हैए लेकिन सूरज का इशारा पाकर कलियां खिल जाती हैंए गंध मुक्त हो जाती हैं। गंध तो कलियों में ही दबी थीए सूरज का इशारा पाकर

कलियां खुल जाती हैंए सूरज का सहारा पाकर कलियां खुल जाती हैंए सूरज का आश्वासन पाकर कलियां खुल जाती हैंए हिम्मत पाकर कलियां खुल जाती हैंए अंधेरे में डरती थींए खुलना कि नहीं खुलनाए सूरज की रोशनी में निर्भय हो जाती हैंए खुल जाती हैंए खुलते ही गंध.मुक्त हो जाती हैं। शायद कलियां भी सोचती होंगी..सूरज ने गंध दे दी। स्वाभाविक तर्क है। सूरज ने कुछ भी नहीं दिया। सूरज की मौजूदगी काफी थी।
सदगुरु की मौजूदगी ही पर्याप्त है। उसकी भट्ठी के पास बैठते ही तुम्हारे भीतर की शराब निचुड़ने लगती है। सद्गुरु सिर्फ भट्ठी है..बैठा भाठी नेरा। और इस भांति बैठा रज्जबए बहुत कम लोग बैठते हैं..सच्चा पठान था। पठान था सो ही इस तरह बैठा। फिर दादू का साथ न छोड़ा। फिर जब तक दादू जिंदा रहेए बैठा ही रहा उनके पास। और जब दादू मर गएए तो उसने आंख बंद कर लींए उसने कहा कि अब आंख नहीं खोलूंगाए क्योंकि देखने योग्य जो था उसे देख लिया जिसके दर्शन करने योग्य थेए हो गए दर्शनए अब इस संसार में कुछ भी नहीं है। फिर वर्षों जिंदा रहाए आंखें थीं लेकिन अंधे की तरह जिंदा रहा। इन आंखों से अब और क्या देखना जिन आंखों से दादू जैसा आदमी देख लिया हो। अब यह दगाबाजी होगीए अब यह गद्दारी होगी। अब इन आंखों से और क्या देखना! परम शिखर देख लियाए अब छोटी.मोटी पहाड़ियां क्या देखना! सौंदर्य का आत्यंतिक आविर्भाव देख लियाए अब छोटे.मोटे सौंदर्य की क्या तलाश करनी! फिर दादू के मर जाने के बाद रज्जब ने आंखें नहीं खोलीं..सच्चा पठान था। इसीलिए तोड़ सका मर्यादा..कुल मरजाद मैंड सब त्यागी बैठा भाठी नेरा।
जात.पांत कछु समझौ नाहींए ण्ण्ण्
शराब की मस्ती में कहां जात.पांत! जात.पांत मंदिरों में होती हैए मधुशाला में नहीं होती। इसलिए मंदिर.मस्जिद तो लड़वा देते हैंए ष्एक कराती मधुशाला।ष् ख्याल रखनाए इसलिए मैंने कहा..यह कोई मंदिर नहीं हैए यह मधुशाला है। जिनको भाठी के निकट बैठने की हिम्मत होए वे ही यहां निमंत्रित हैं।
जात.पांत कछु समझौ नाहींए किसकूं करै परेरा।
किसको कहूं परायाघ् सब अपने हैं। क्योंकि जिसने भीतर उसको जानाए उसे बाहर भी वही दिखाई पड़ता हैए उसके अतिरिक्त फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
परमात्मा जो दिखाई पड़ाए तो सभी परमात्मामय हो जाता है।
रस की प्यास आस नहीं औरांण्ण्ण्
यह सूत्र खूब समझने जैसा है..
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
और खूब समझ लिया है जीवन जन्मों.जन्मों के अनुभव से कि जब तक दूसरों
से आनंद की आशा रखीए तब तक दुख पाया।
रस की प्यास आस नहिं औरांए ण्ण्ण्
औरों के आसरे पूरी नहीं हुई। पत्नी से मांगाए पति से मांगाए बेटे से मांगाए भाई से मांगाए मित्र से मांगाए धन सेए पद सेए प्रतिष्ठा सेए मांगते ही रहे..जब तक तुम्हारे जीवन में संन्यास का कमल नहीं खिलता तब तक तुम भिखारी ही रहे हो..फिर चाहे गरीब भिखारी होओए चाहे अमीर भिखारीए इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता..तब तक तुम मांगते ही रहे होय तब तक मांगने में ही तुम्हारा भरोसा रहा है। औरों की आस। कोई दे देगा। किसी से मिल जाएगा। थोड़ा और बड़ा मकान बन जाए तो सब ठीक हो जाएगा। थोड़ी और बड़ी कार आ जाए तो सब ठीक हो जाएगा। बैंक में थोड़ा पैसा और जमा हो जाए तो फिर क्या अड़चन हैघ् सब ठीक ही हुआ हैए बस अब हुआ ही जाता है..यह स्त्री मिल जाएए यह पुरुष मिल जाएए एक बेटा पैदा हो जाएए सब ठीक हुआ जाता है। कब ठीक हुआ हैघ् यहां कुछ भी ठीक नहीं होता। यहां ठीक होने का उपाय ही नहीं। संसार आश्वासन देता हैए पूरे नहीं करता। परमात्मा कोई आश्वासन नहीं देता और पूरा करता है।
रस की प्यास आस नहिं औरांए ण्ण्ण्
रस की प्यास तो भीतर हैण्ण्ण् अब यह रस की प्यास दो दिशाएं ले सकती है..या तो औरों की आस करोए जो कि संसार हैय औरों की आस यानी संसार। मांगो! मांगने से कहीं आनंद मिलेगाघ् और जो मांगने से मिलता हैए वह आनंद होगाघ् ष्बिन मांगे मोती मिलैए मांगे मिलै न चून।ष् मांगने से साम्राज्य मिलते

हैंघ् भीख मिल जाएए भोजन मिल जाएए वस्त्र मिल जाएए साम्राज्य नहीं मिलते मांगने से। नहीं तो भिखमंगे सम्राट हो जाएं। उलटी है स्थिति। देने से भले मिल जाए साम्राज्यए मांगने से नहीं मिलता। इसीलिए तो हमने महावीर को तब स्वीकारा जब भिखारी हो गए। बुद्ध ने जब साम्राज्य छोड़ दिया और भिक्षापात्र हाथ में ले लियाए तब हम उनके चरणों में झुक गएए बड़ी हैरानी की बात है। पहले झुकना थाए जब बड़ा साम्राज्य था।
हमारी पहचान कुछ और हमारा तराजू कुछ और कहता है। हमारा तराजू यह कहता है..जब सब थाए साम्राज्य थाए तब यह आदमी भिखारी था। अब जब कुछ नहीं रहाए तब यह आदमी सम्राट हो गया। जन्मों.जन्मों की निरंतर खोज के बाद हमने यह तराजू खोजाए यह मापदंड निर्मित किया।
रस की प्यास आस नहिं औरांए ण्ण्ण्
रस की प्यास भीतर हैए यह सच्चाई हैए यह मनुष्य का यथार्थ है। अब इसके
दो उपाय हो सकते हैं। इस रस की प्यास को मानकर औरों के सामने भिक्षापात्र लेकर घूमते रहेंए तो संसार। और दूसरा उपाय यह है..जहां से यह रस की प्यास उठ रही हैए उस प्यास में ही उतरेंए और गहरा उतरेंए खोज करें कहां से यह प्यास आती हैए इस प्यास का मूल उदगम मेरे भीतर कहां हैघ् और तुम चकित हो जाओगेए जो इस प्यास के भीतर उतरता हैए वह प्राप्ति को उपलब्ध हो जाता है। इसी प्यास में परमात्मा छिपा है। इस प्यास की मान कर औरों की आस में नहीं निकल जाना हैए यह प्यास तुम्हें भीतर बुला रही है। तुम गलत समझते हो। यह प्यास कह रही है..भीतर आओए यहां सरावेर है। यह प्यास तो सिर्फ तुम्हें उकसावा है सरोवर की तरफ आने का। यह परमात्मा का हाथ है जो तुम्हें भीतर खींचना चाहता है। तुम सोचते हो कोई तुम्हें बाहर खींच रहा हैए तुम चले तलाश में! यह परमात्मा की पुकार है। परमात्मा कह रहा है..कहां खो गए होघ् कहां छिप गए होघ् मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में रत हूंए मैं तुम्हें पुकारता हूं।
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
बस इसी मत में बसेरा क्या कर लियाए सब पा लिया। यही बात गुरु ने समझा दी। एक बात समझ दी कि जिसे तुम खोजने चले होए वह भीतर है। और तुम बाहर खोज रहे होए इसलिए खोज पूरी नहीं होतीए कभी नहीं होती।
राबिया अपने घर के बाहर झोपड़े के सामने सांझ को कुछ खोजती है..एक सूफी फकीर औरत। पास.पड़ोस के दो.चार लोग निकल कर आए बूढ़ी की सहायता करनेए पूछाः क्या खो गयाघ् उसने कहाः मेरी सुई गिर गई है। कपड़े सीकर अपना काम चलाती है। बूढ़ी हो गई है। वे भी सुई खोजने लगे। उनमें से एक ने कहा कि सांझ हो रही हैए सूरज ढला जा रहा हैए तेरी सुई गिरी कहांए ठीक.ठीक जगह बताए रास्ता बड़ा हैए ऐसे खोजते कहां मिलेगीघ् उसने कहाः यह तो पूछो ही मत कि कहां गिरीए क्योंकि गिरी तो घर के भीतर है। वे खड़े हो गएए उन्होंने कहाः तू पागल है और तेरे साथ हमें भी पागल बना रही है। अगर घर के भीतर गिरीए तो बाहर क्यों खोजती हैघ् उसने कहाः घर में चूंकि अंधेरा हैय सांझ हो गईए घर में रोशनी नहीं हैए मैं बूढ़ी हूंए वैसे ही मुझे मुश्किल से दिखाई पड़ता हैए बाहर थोड़ी रोशनी हैए इसलिए बाहर खोज रही हूं। भीतर तो अँधेरा है। गरीब हूंए दिया जलाने का उपाय भी नहीं है। भीतर कैसे खोजूंघ् और..फिर यही तो संसार की रीति भी है..खोए भीतरए खोजो बाहर।
राबिया मजाक उड़ा रही थी उन पड़ोसियों का। या मजाक से उनको कुछ इशारा दे रही थीए कि यही तो संसार की रीति भी है..खोए भीतरए खोजो बाहरय सो मैंने सोचा इसी तर्क का अनुसरण करना चाहिए। तुम अगर मुझे पागल कहते होए तो सोचो तुम क्या कर रहे होघ् प्यास है भीतरए प्रश्न है भीतरए सदियों.सदियों का सार.निचोड़ यह है संतों का कि उत्तर की तलाश मत करोए जहां से प्रश्न उतर रहा है उसी प्रश्न की गहराई में उतर जाओए प्रश्न को कुअं समझ लोए उसकी गहराई में उतरोए और खोदोए और खोदोए और खोदोए और तुम चकित हो जाओगे..प्रश्न के केंद्र पर पहुंचते ही उत्तर है। और प्यास के केंद्र पर पहुंचते ही परमात्मा है।
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
बस इस मत में क्या ठहरे कि सब ठहर गया। ज्यूं का त्यूं ठहराया।

ल्याव ल्याव ऐही लय लागी। और अब जब से भीतर का रहस्य पता चल गया हैए तो
अब किसीसे मांगने का सवाल ही नहीं हैए अब तो भीतर ही बुला लेते हैंए अब तो भीतर ही कह रहे हैं..ल्याव ल्याव ऐही लय लागीए पीवै फूल घनेरा। फूल राजस्थान में देशी शराब का नाम है। ठर्रा। घर में ढाली शराब। कड़ी देशी शराब। जरा सी पी लो कि डूब जाओ। प्यारा नाम दिया..फूल। भीतर भी ऐसी शराब ढाली जाती है..देशी..अपने ही भीतर ढाली जाती हैए स्वदेश मेंए इसलिए देशी। बाहर नहीं ढाली जातीए किन्हीं यंत्रों की सहायता नहीं लेनी पड़तीए खुद का अस्तित्व काफी हैय मगर बड़ी कड़ी शराब हैए एक बार चढ़ गई तो फिर उतरती नहींए इसलिए ठर्रा! बड़ी कड़ी शराब हैए एक दफे चढ़ गई तो फिर उतरती नहीं। उतर जाए जो शराबए वह भी कोई शराब है! शराब का बहाना होगी। जानने वाले उसको पीते हैं जो उतरती ही नहीं।
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जो लोग साधारण शराब को पीते हैंए
वे भी बेचारे उसी शराब की आशा में पी रहे हैंय आशा उसी की हैए बाहर खोज रहे हैं। रस की प्यास आस नहिं औरां। अभी उनकी औरों की आस नहीं मिटी। खोज तो हम परमात्मा की ही शराब रहे हैं। खोज तो हम मस्ती रहे हैं। मगर मिलती नहींए पता नहीं कहां हैए तो बाहर तलाशते हैं! उसी तलाश में हम बाहर की मधुशालाओं में पहुंच जाते हैं। वहां थोड़ी देर को मिलती हैए घड़ी दो घड़ी को आदमी मस्त हो जाता हैए नाच लेता हैए गा लेता हैए सारी चिंताओं से निर्भार हो जाता हैए कोई फिकर.फांटा नहीं रह जाताए कोई भीड़.भाड़ नहीं रह जातीए सब भूल जाता है। मगर उतर जाएगा यह नशा। यह रासायनिक नशा हैए आध्यात्मिक नहीं।
फूल नाम प्यारा है। तुम्हारे भीतर एक ऐसा फूल खिलता हैए जो कभी कुम्हलाता नहीं..तुम्हारी चेतना का फूल। तुम्हारी चेतना की आत्यंतिक सुगंध। फिर जो मस्ती छाती हैए वह शाश्वत हैए सनातन हैए समयातीत है!
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव ऐही लय लागीए पीवै फूल घनेरा।।
सो रस मांग्या मिलै न काहूण्ण्ण्
यह रस किसीको मांगने से कभी नहीं मिला है।
ण्ण्ण् सिर साटे बहुतेरा।
जिन्हें चाहिए होए उन्हें अपना सिर कटवाना पड़ता हैय उन्हें अपने सिर
से कीमत चुकानी पड़ती है।
सिर दो बातों का प्रतीक है। एक तो अहंकार का। इसलिए हम कहते हैं..उसने उसका सिर झुका दिया। इसलिए जब हम किसी को सम्मान करते हैं तो उसके सामने सिर झुकाते हैं। एक तो सिर प्रतीक है अहंकार काए अस्मिता काए मैं.भाव का। इसको गंवाना पड़ेगा। नहीं तो तुम मस्त न हो सकोगे। ष्मैंष् तुम्हें मस्त न होने देगा। ष्मैंष् विघ्न खड़े करता रहेगाए ष्मैंष् चिंताएं बनाता रहेगा। ष्मैंष् चिंताओं का मूल.स्रोत है। ष्मैंष् ही विक्षिप्तता हैए तनाव हैए विषाद हैए संताप है। ष्मैंष् नरक है। तो एक तो यह ष्मैंष् जाना चाहिए।
और फिर सिर विचार का भी प्रतीक है। सोच.विचार काए बुद्धिमानी का। यह बुद्धिमानी भी काम न आएगी..बुद्धिमान मस्त नहीं हो पाते। मस्त होने के लिए थोड़ा बालक जैसा भोलापन चाहिए। बुद्धिमान तो चालाक हो जाते हैं। गणित में निष्णात हो जाते हैंए चतुर हो जाते हैंए चालबाज हो जाते हैंए बेईमान हो जाते हैंए उनका भोलापन खो जाता हैए वे परमात्मा के साथ भी चालबाजी करने लगते हैंए वे परमात्मा को भी धोखा देने के आयोजन बिठाने लगते हैंए वे संसार के नियम को ही नहीं तोड़ते अपनी चालबाजियों सेए वे सोचते हैं कि परमात्मा के नियम को भी तोड़ लेंगेए कोई उपाय खोज लेंगे। इन्हीं चालबाजों ने दुनिया के सारे तरह के धर्म निर्मित किए हैं। पाप करते होए चालबाज कहता है..घबड़ाओ मतए गंगास्नान कर आओ। यह चालबाजी है। यह चतुर आदमी का उपाय है। वह कहता है..क्या घबड़ा रहे होए गंगा.स्नान कर आओए सब ठीक हो जाएगा।
किसको धोखा दे रहे होघ् परमात्मा को भी धोखा देने चले हो! पाप तुम करोए गंगा धोए। गंगा के कौन धोएगाघ् गंगा मुफ्त में मारी जाएगी! और अगर इतना सस्ता है मामला कि पाप गंगा में नहाने से धुल जाते हैंए तो पाप का कोई मूल्य ही नहीं रहा फिर गंगा ही क्या जानाए फिर पूना की नदी में भी धुल जाएंगे..सब नदियां उसकी हैं। फिर जो और होशियार हैंए वे कहते हैं..ष्मन

चंगाए तो कठौती में गंगा।ष् कहां जा रहे होघ् यहीं नहा.धो लिएए पूजा.पाठ कर लिएए घंटी इत्यादि बजा दी।
तुमने भगवान को समझा क्या है! बैठे घंटी बजा रहे हो! दो फूल चढ़ा दिए! थोड़ा चंदन.मंदन लगा दिया! तुम्हारी स्तुति एक तरह की खुशामद है। तुमने आदमियों की खुशामदें की हैंए तुम सोचते हो इसी भांति परमात्मा की खुशामद भी कर लेंगे। आदमियों को राजी कर लिया है..दिल्ली चले जाते होए राजनेताओं की खुशामद कर लेते होए लाइसेंस मिल जाता हैए सोचते हो परमात्मा की भी खुशामद करेंगेए तो लाइसेंस मिल जाएंगेए तो स्वर्ग मेंए तो मोक्ष में प्रवेश हो जाएगा। तुम रोज सुबह बैठ कर जब पूजा करते हो तो क्या करते होघ् खुशामद ही तो करते हो न! संस्कृत शब्द ठीक है उसके लिए..स्तुति।
स्तुति का मतलब खुशामद होता है। प्रशंसा कर रहे हैंए झूठी। कह रहे हैं कुछए मानते कुछ और हैं। जब तुम कहते हो कि मैं तो दीन.हीन हूंए तू पतित.पावन हैए सच में तुम ऐसा मानते होघ् कोई अगर अखबार में छाप दे कि यह सज्जन दीन.हीन हैंए तो तुम अदालत में मुकदमा चलाओगे।
ऐसा हुआ। टालस्टाय सुबह.सुबह चर्च गयाए अंधेरा था अभी और गांव का सबसे बड़ा धनी आदमी प्रार्थना कर रहा था। उसने अंधेरे में देखा नहीं कि टालस्टाय भी खड़ा हुआ है। वह प्रार्थना कर रहा था..हे प्रभोए मैं महापापी हूंए देख मैंने कैसे.कैसे पाप किए और बढ़ा.चढ़ा कर पाप गिना रहा था। क्योंकि ईसाइयत में बढ़ा.चढ़ा कर पाप गिनाने को बड़ा पुण्य समझा जाता है..उसका नामः कनफेसन। और जब कनफेसन ही कर रहे हो तो छोटे.मोटे का क्या करनाए आदमी तो आदमी ही है न! हर चीज को बड़ा कर लेता है। तभी तो अहंकार का मजा है! अब तुम गए और बोले कि बड़ा पाप कियाए एक चींटी मार डाली। तो परमात्मा भी कहेगा..क्या सुबह.सुबह मुझको जगाया! अरेए कुछ बड़ा करतेए जब कुछ किया ही था! तो मारी हो चींटी तो भी हाथी बताते हो।
तो बढ़ा.चढ़ा कर कह रहा था कि ऐसे पाप किएए वैसे पाप किए। टाल्सटाय ने सब सुन लियाए फिर सुबह होने लगीए उस आदमी ने जब प्रार्थना पूरी की और लौट कर देखा तो वह बड़ा दिक्कत में पड़ गया कि टाल्सटाय खड़ा है। वह टालस्टाय के पास आया और उसने कहा कि क्षमा करनाए मैंने जो प्रार्थना की है यह मान कर की है कि यहां कोई मौजूद नहीं था। अगर तुमने सुन ली होए तो अनसुनी कर दो। अगर मैंने कहीं यह बात सुनी गांव में किसी के मुंहए तो मैं मानहानि का मुकदमा चलाऊंगा। यह आदमी तत्क्षण बदल गया। यह परमात्मा को धोखा दे रहा था। यह चालबाजी कर रहा था।
सो रस माँग्या मिलै न काहूए सिर साटे बहुतेरा।
चालबाजी खो दोगे तो बहुत मिलेगा। बहुतेरा! ऐसा बरसेगा कि पी न सकोगे।
भर लोगे तो ऊपर से बहेगा। तुम्हारे सब पात्र छोटे पड़ जाएंगे। अनंत बरसेगा। लेकिन यह चालबाजी हो तो नहीं बरसेगा।
हर कली मस्ते.ख्वाब हो जाती
पत्ती.पत्ती गुलाब हो जाती
तूने डाली न मै.फशां नजरें
वर्ना शबनम शराब हो जाती
उसकी आंख तुम पर पड़ेए तो शबनम शराब हो जाए।
हर कली मस्ते.ख्वाब हो जाती
पत्ती.पत्ती गुलाब हो जाती
तूने डाली न मै.फशां नजरेंण्ण्ण्
तेरी आंखए जिसके पड़ जाने से ही शराब पैदा हो जाती हैए मस्ती आ जाती हैए तूने वह आंख ही हम पर न डालीण्ण्ण्
वर्ना शबनम शराब हो जाती
मगर आंख तो वह सदा डाल रहा है। तुम उसकी आंख से एक क्षण को भी दूर नहीं हो। परमात्मा तुम्हारा प्रतिक्षण साक्षी है। सारे संसार के शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा प्रतिक्षण साक्षी हैए तुम्हें देख रहा हैए उसकी आंख तुम पर पड़ ही रही हैए मगर तुमने आंख बंद कर रखी हैए तुम उसकी आंख नहीं देख रहेय तुम्हारी चालबाजीए तुम्हारी होशियारीए तुम्हारी आंख पर पर्दा हो गई है। मैं तुमसे कहता हूं दोहरा कर..परमात्मा पर कोई पर्दा नहीं हैए पर्दा

तुम्हारी आंख पर है। हटाओ यह पर्दा। परमात्मा पर कोई पर्दा नहीं हैए पर्दा तुम्हारी बुद्धिमानी में है। सरल बनोए सहज बनोए भोले.भालेए छोटे बच्चे की भांति और तत्क्षण तुम पाओगे..वह सदा से उपलब्ध थाए तुम्हीं अपने हाथ से अनुपलब्ध हो गए थे। तुमने ही उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया थाय उसका हाथ तो बढ़ा ही रहा थाए प्रतीक्षा ही करता रहा थाए लेकिन तुम्हीं हाथ छुड़ा भागे थे।
कौन सुलगते आंसू रोकेए आग के टुकड़े कौन चबाए
ओ हमको समझाने वाले! कोई तुझे क्यों कर समझाएघ्
जीवन के अंधियारे पथ परए जिसने तेरा साथ दिया था
देख कहीं वह कोमल आशाए आंसू बन कर टूट न जाए
इस दुनिया के रहने वालेए अपना.अपना गम खाते हैं
कौन पराया रोग खरीदेघ् कौन पराया दुख अपनाएघ्
हाय मेरी मायूस उमीदें! हाय मेरे नाकाम इरादे
मरने की तदबीर न सूझी जीने के अंदाज न आए
प्रेम की अंधियारी राहों मेंए अक्ल का दीपक जल न सकेगा
ऐ फरजानो! ऐ फरजानो! होश से कह दो होश में आए
ऐ समझदारो! ऐ फरजानो! ऐ बुद्धिमानो!
ऐ फरजानो! ऐ फरजानो! होश से कह दो होश में आए
प्रेम की अंधियारी राहों मेंए अक्ल का दीपक जल न सकेगा
वहां तो प्रेम का दीया ही जलेगा। और प्रेम तो हृदय की बात हैए मस्तिष्क की नहीं। उतरो सिर से हृदय की तरफय यही अर्थ है सिर को गंवाने का। यही अर्थ है सिर कटाने का।
सो रस मांग्या मिलै न काहूए सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दे लीयाण्ण्ण्
सब दे दियाए तब मिला। रज्जब को मिलाए लेकिन सब देकर मिला। कुछ बचाया नहींए कुछ होशियारी न की।
ण्ण्ण् होइ धनी का चेरा।।
कैसे खोया यह सबघ् कहां खोया यह सबघ् क्योंकि यह खोने पर परमात्मा मिलेगाए तो तुम यह परमात्मा के सामने तो खो ही नहीं सकते क्योंकि परमात्मा तो खोने पर मिलेगा।
इस बात को ठीक से समझ लेना।
परमात्मा खोने पर मिलेगाए तो तुम यह परमात्मा के सामने तो खो ही नहीं सकतेए यह तो पक्का हो गया..क्योंकि वह तो मिलेगा ही तबए जब तुम खो दोगे। तो कहीं खोजना पड़ेगा कोई धनीए दादू दयाल मिल गएए धनी थे..ठीक शब्द प्रयोग किया है धनी काए ऐसे ही लोगों के पास धन हैय जिनके पास आत्मा हैए उनके पास धन है। संतों की भाषा में धन का अर्थ होता है..आत्मा। निर्धन का अर्थ होता है..आत्महीन। धन का अर्थ होता है..परमात्मा जिसको मिल गया। वही तो धन है। उसको जिसने नहीं पाया वह निर्धन है।
जन रज्जब तनमन दे लीयाए होइ धनी का चेरा।।
दादू दयाल के चरणों में सब रख दिया। रखा था दादू दयाल के चरणों मेंए पहुंच गया परमात्मा के चरणों में। सब उसी के चरणों में पहुंच जाता हैए छोड़ो भर। लेकिन एकदम से उसके चरणों में न छोड़ सकोगे क्योंकि उसके चरणों का अभी कुछ पता नहीं है। तुम्हें कहीं कोई ऐसे चरण मिल जाएं जो इतना भरोसा तुममें जगा दें कि वहां तुम अपना सिर झुका सकोए तो बस हो गई बातए धनी के चेरे हुएए यात्रा शुरू हुई..गुरु से शुरू होती हैए परमात्मा पर पूर्ण होती है। गुरु परमात्मा का पहला अनुभव हैए परमात्मा गुरु का अंतिम अनुभव है। प्राणपति न आए होए बिरहिण अति बेहाल।
और जब तक इस धन की वर्षा न होए तब तक तो बड़ी बेचैनी हैए बड़ी बेहाली है। प्राणपति न आए होए बिरहिण अति बेहाल। अभी रज्जब ने पा लेने के बाद की बात कहीए अब तुमसे कहते हैं तुम्हारी दशा पा लेने के पहले की। अभी.अभी अपनी बात कहीए अब तुम्हारी बात कहते हैं..
प्राणपति न आए होए बिरहिण अति बेहाल।
बिन देखे अब जीव जातु हैए विलंब न कीजै लाल।।

और परमात्मा को बिना देखे मर गए तो बिना जिए मर गए। और क्या भरोसाघ् अभी जाएए कभी चला जाएए क्षण भर का भी कोई भरोसा नहीं है। यह आखिरी क्षण होए कौन जाने! यह श्वास जो बाहर गईए भीतर न आए। बिन देखे अब जीव जातु हैए विलंब न कीजै लाल।
जिसको आण्जाद होके मौत आई
उन असीरों की याद आएगी
बंदी तो वे ही सौभाग्यशाली हैंए जो मरने के पहले मुक्त हो गए। ष्जिसको आजाद होके मौत आईएष् मरने के पहले जो आजाद होकर मराए मरने के पहले जिसने स्वतंत्रता को जान लिया धनी हो गया..आत्मा को पहचान लिया।
जिसको आजाद होके मौत आई
उन असीरों की याद आएगी
उन बंदियों की याद आएगी। वे ही कुछ लेकर मरे। ऐसे ही बंदियों की तो हम याद करते हैं जो मुक्त होकर मरेय फिर उनको बुद्ध कहोए कृष्ण कहोए राम कहोए रहीम कहोए कुछ भी नाम दो। ये भी हम जैसे बंदी थेए थोड़ा सा फर्क पड़ाए मरने के पहले एक बात उन्होंने साध लीए मरने के पहले जंजीरें तोड़ दीं।
बिन देखे अब जीव जातु है विलग न कीजै लाल।।
और भक्त बड़ी भाव.दशाओं से गुजरता हैए रोता हैए तड़फता है। मस्ती आती हैए लेकिन मस्ती के पहले बहुत आंसू रास्ते साफ करने आते हैं। आंसुओं के बिना मस्ती का रास्ता साफ नहीं होता। आंसू तुम्हारी प्याली को साफ करते हैंए आंसू तुम्हारी हृदय की प्याली को तत्पर करते हैंए फिर शराब ढल सकती है।
आपके चाहनेवालों में यह अदना खादिम
आपकी शान के शायां ना सहीए है तो सही
भक्त कहता रहता है भगवान से कि मैं आपके योग्य कहांघ् ष्आपके चाहने वालों में यह अदना खादिमएष् एक छोटा सा सेवकए मेरी क्या औकातए मेरी क्या बिसातघ् ष्आपके चाहने वालों में यह अदना खादिमए आपकी शान के शायां ना सही हैए है तो सही।ष् यह मैं नहीं कहता कि आपकी शान के काबिल हूंए कि आपके योग्य हूंए यह मैं नहीं कहताए बस इतनी ही याद दिलाता हूं कि हूं तो सही। सबसे पीछे सहीए सबसे छोटा सहीए सब से पापी सहीए सब से बुरा सहीए इतनी ही याद दिलाना चाहता हूँ कि हूँ तो सहीए और मैं भी आतुर हूँ। आपकी आकांक्षाए आपको पाने की अभीप्सा मेरे भीतर भी है..और यह बीज तुमने ही दिया हैए और यह प्यास तुमने ही जगाई हैए पूरा करो इसे रू
प्राणपति न आए होए बिरहिण अति बेहाल।
भक्त के विरह के दिन बड़ी पीड़ा के दिन हैंः
इश्क दरपर्दा फूंकता है आग
यह जलाना नजर नहीं आता
कोई इसे देख भी नहीं पाताः
इश्क दरपर्दा फूंकता है आग
यह जलाना नजर नहीं आता
यह तो भक्त ही जानता है उसके भीतर जो आग सुलगती हैए जो धुआं सुलगता है। यह तो उसके भीतर जलती हुई अग्नि हैए इसे कोई दूसरा नहीं देख सकता। भक्त हों दूसरे तो पहचान ले सकते हैं। इसलिए इन सारे वचनों का संबोधन रज्जब ने संतों को कहा है..संतोए मगन भया मन मेरा। जो जानते हैंए जो भक्ति में रोए हैंए और जो मस्ती में हंसे हैंए और जो भक्ति में बिलखे हैंए और जो मस्ती में नाचे हैं और जिन्होंने भक्ति की अंधेरी रात देखी हैए और जिन्होंने मस्ती की सुबह भीए सुबह प्रभात भी देखीए जिन्होंने भक्ति के विरह के दिन काटे और जिन्होंने मस्ती का मिलन भी देखा हैए उन संतों को ही ये संबोधन किए हैं।
मुझसे लोग पूछते हैंए रोज.रोज पत्र लिखते हैं कि यहां सभी को आने क्यों नहीं दिया जाताघ् रुकावट क्यों हैघ् यहां उन्हीं के लिए बुलावा है जो समझेंगेए जिनकी आंखें आंसुओं से भरी हैं और जिनके प्राण प्यास से भरे हैं और जो मस्त होने की तैयारी रखते हैं। यहां भीड़भाड़ की जरूरत नहीं है। यहां हर किसी को आ जाने का कोई कारण नहीं है। यह कोई मनोरंजन नहीं हो रहा

हैए यहां मनोभंजन हो रहा है। यहां मन तोड़े जा रहे हैंए मन मिटाए जा रहे हैंए यहां सिर काटे जा रहे हैंः
बिजलियों की हंसी उड़ाने को
खुद जलाता हूं आशियाने को
रो रहा है अगर्चे दिल फिर भी
मुस्कराते हैं मुस्कराने को
छीन ली उसने ताकते.परवाज
आग लग जाए आशियाने को
भक्त कहता है..जब उड़ने की सुविधा ही नहीं हैए जब स्वतंत्रता का उपाय
ही नहीं हैए तो इस आशियाने का क्या करेंघ्
बिजलियों की हंसी उड़ाने को
खुद जलाता हूं आशियाने को
छीन ली उसने ताकते.परवाज
आग लग जाए आशियाने को
इस जिंदगी का करना क्या हैघ् यहां न उड़ना हो सकता हैए न कोई आकाश हैए न कोई पंख हैय न कोई अनुभव है सौंदर्य काए न कोई साक्षात्कार है सत्य काए न कोई प्रतीति है अमृत कीए क्या करें इस जिंदगी कोघ् जो अपने घर को अपने हाथ से आग लगाने को तत्पर हैए उसके लिए ही ये वचन समझ में आ सकते हैं। ये वचन कोई साधारण कविताएं नहीं हैंए ये जलते हुए अंगारे हैं। इनको लेने कीए झेलने की क्षमता होनी चाहिएः
बिरहिण ब्याकुल केसवाए निसदिन दुखी बिहाइ।
जैसे चंद कुमोदिनीए बिन देखे कुमिलाइ।।
रोता है भक्त। और उस रोने में भक्त की अवस्था हमेशा स्त्रैण हो जाती हैए ख्याल रखनाः
बिरहिण ब्याकुल केसवाए निसदिन दुखी बिहाइ।
जैसे चंद कुमोदिनीए बिन देखे कुमिलाइ।।
रात को खिलने वाली कुमुदिनी चांद उगे तो ही खिलेए चांद न उगे तो कुम्हला जाए। ऐसे भक्त भगवान के इशारों पर जीने लगता है। हो जाती है झलक किसी दिन उपलब्ध तो नाच लेता हैए नहीं होती झलक उपलब्ध तो सिवाय रोने के और कुछ भी नहीं। कभी चमक जाती है उसकी कौंध तो रस.सागर लहरा जाता हैए और कभी अंधेरी रात आ जाती है तो सब मरुस्थल हो जाता है। बड़ी हवाएं बदलती हैंए मौसम बदलते हैं। भक्त के आसपास हर क्षण उसके अंतर.आकाश में कभी सूरज निकलता हैए कभी बदलियां घिर जाती हैंए कभी वर्षा हो जाती है। इसलिए भक्ति के ये वचन विरह की अवस्था में बहुत दशाओं की सूचना करते हैंः
मेरे चमन के नसीबों में गर बहार नहीं
तो उसको हद्भदए.बर्को.शरार कर दे
भक्त कहता है..अगर इस जिंदगी में फूल नहीं खिलने हैंए तो गिरा दे बिजली! यह जिंदगी किस काम कीघ् तेरे बिना कोई रस नहीं। ष्जैसे चंद कुमोदिनीए बिन देखे कुमिलाइ।ष् कभी भक्त रोता हैए कभी हंसता हैए कभी गुमसुम हो जाता है रू
आंखें भी खुश्क और लबों पर भी खामुशीण्ण्ण्
आंखें भी खुश्क और लबों पर भी खामुशी
यूं भी किसी की याद में रोता रहा हूं मैं
कभी नहीं भी बोलताए बिन बोले रोता हैय कभी बोलता हैए बोल कर रोता है। शब्द भीए निःशब्द भीए मगर विरह की बात जारी रहती है।
खिन खिन दुखिया दगाधियेए विरह.विथा तन पीर।
क्षण.क्षण बस एक ही दग्ध आग जलाए जाती है रू
खिन खिन दुखिया दगाधिएए विरह.विथा तन पीर।
घपी पलक में बिनसिएए ज्यूं मछरी बिन नीर।।
जैसे पानी से कोई मछली को निकाल ले और मछली तड़फे। ष्घरी पलक में बिनसिएष्ण्ण्ण् मर ही जाएगी घड़ी भर मेंए पल भर भी न सह पाएगी ऐसी भक्ति की दशा हो जाती हैण्ण्ण् ष्ज्यूं मछरी बिन नीरष्ः
हुए असीरए जला आशियांए गिरी बिजली

फिर उसके बाद गुलिस्तां का हाल क्या मालूम

बड़े दिनों से बहारों की आर्जू थी मगर लुटेंगे फस्लें.बहारां में यह न था मालूम

हवाए तुंद हैए तूफां हैंए दूर साहिल है
मेरे सफीने का अंजाम नाखुदा मालूम

न दिल दही न तशफ्फी न इल्तफात ऐ दोस्त!
यह इब्तदा है आलम तो इन्तहा न मालूम

कसक जो दर्द की पूछो तो वह है ला.महदूद
जो दिल की चोट को पूछो तो वह है न मालूम
ष्कसक जो दर्द की पूछो तो वह है ला.महदूदष्। उसकी कोई सीमा नहींए असीम
है रू
कसम जो दर्द की पूछो तो वह है ला.महदूद
जो दिल की चोट को पूछो तो वह है न मालूम
शब्द उसे कह नहीं पातेः
हुए असीरए जला आशियांए गिरी बिजली
फिर उसके बाद गुलिस्तां का हाल क्या मालूम
जिसको तुमने बगीचा समझा हैए वह तो भक्त का जल जाता है। जिसको तुमने नीड़ समझा हैए वह तो भक्त का उजड़ जाता है। तुम्हारा जो रस हैए वहां तो भक्त को विरस हो जाता है। तुम जिन चीजों के पीछे दौड़ रहे होए वह दौड़ तो बंद हो गई।
हुए असीरए जला आशियांए गिरी बिजली
फिर उसके बाद गुलिस्तां का हाल क्या मालूम
बड़े दिनों से बहारों की आर्जू थी मगर
लुटेंगे फस्ले.बहाराँ में यह न था मालूम
बीच बसंत में सब लुट जाता हैः
हवाए तुंद हैए तूफां हैंए दूर साहिल है
मेरे सफीने का अंजाम नाखुदा मालूम
इस नाव का क्या होगाए मुझे तो पता नहीं। शायद माझी को पता होए कौन जाने। अभी तो माझी का भी कोई पता नहीं। अभी तो कोई माझी है भीए यह भी संदिग्ध है। अभी तो कोई किनारा है भी आगे यह भी संदिग्ध है। अभी तो तूफान ही तूफान है। विरह की अवस्था तूफान की अवस्था है। जैसे हर तूफान के बाद गहन शांति उतरती हैए ऐसे हर विरह की अग्नि के बाद अमृत की रसधारा बहती है। घरी पलक में बिनसियेए ज्यूं मछरी बिन नीर।
रात ही रात मालूम होती है विरह में। सुबह होगीए भरोसा नहीं आता। सुबह होती भी हैए इस पर भी आशंका होती है रू
कौन सा होगा सबेराघ्
खुल गई हैं खिड़कियांए पर..
रोशनी आती नहीं है

इस सवेरे के लिए उस चांदनी का मोह छोड़ाए
और परिवर्तन के लिए इस जिंदगी ने पंथ मोड़ाए
यह सवेरा प्रश्न बन धुंधला गया उनके लिएए पर.. जिन बसेरों में किरण की..
रेख तक आती नहीं है
रोशनी आती नहीं है
लग रहा बदली नहीं आराधनाए वरदान बदलाए
यदि नहीं था लक्ष्य शर काए व्यर्थ यह संधान बदलाए है बदल सारी गई सरगम पुराने गीत कीए पर..
अनमनी सी हो रही वह जिंदगी..

गाती नहीं है
रोशनी आती नहीं है

कौन सा होगा सवेरा जो अंधेरा छीन लेगाए
स्वप्न वाली आंख के इन आंसुओं को बीन लेगाए
कौन बतलाए मुझे इस जिंदगी को नाम क्या दूंघ्
जी नहीं पाती यहां जो..
और मर पाती नहीं है
रोशनी आती नहीं है
ऐसा अंधेरे में लटका हुआ भक्त होता है। ज्यूं मछली बिन नीर। रात ही रातए सुबह का कोई भरोसा नहीं मालूम होता। यह विरह.परीक्षा है। सुबह का कोई अनुभव न होते हुए भीए सुबह हो सकती है। इस बात की आस्था का नाम श्रद्धा है। प्यास है तो जल भी होगाए इस बात की आस्था का नाम श्रद्धा है। खोज है तो खोज पूरी भी होगीए बीज है तो फूल भी बनेगाए अभीप्सा है तो कहीं न कहीं आलोक भी होगाए जिस धनी के पास इस बात का भरोसा आने लगेए वहां झुक जानाए वहां सिर चढ़ा देना। कबीर ने कहा है..ष्जो घर बारै आपनाए चलै हमारे संग।ष् वह सिर के ही उतारने की बात है। वही तुम्हारा घर हैए वहीं तुम रह रहे होए वहीं तुमने बसेरा कर लिया है। हृदय से तो तुमने न मालूम कब का अपना तंबू उखाड़ लिया हैए वहां तो तुम जाते ही नहीं।
धीरे.धीरे आंसू बहेंए तो तुम हृदय तक पहुंचने लगो। धीरे.धीरे विचार
से तुम्हारा रूपांतरण भाव की तरफ होए तो भक्ति उमगे।
पीव पीव टेरत दिग भईए स्वातिसुरूपी आव।
पुकारते.पुकारते बेहाल हो गई हूंए बीमार हो गई हूं..पीव पीव टेरत दिग भईए स्वातिसुरूपी आव। अब तो आओ! हे स्वाति के जलए अब तो बरसो!
सागर सलिता सब भरेए परि चातिग कै नहिं चाव।।
सागर भरा हैए सरिताएं भरी हैंए सरोवर भरे हैंए लेकिन चातक की आंख तो आकाश में लगी है। उसे तो अब एक अपूर्व आकांक्षा ने जकड़ लिया हैए एक अनंत की अभीप्सा पैदा हो गई हैए वह तो स्वाति का जल पिएगा। भक्त भी ऐसा हैए चातक जैसा। इस संसार में कोई सौंदर्य की कमी हैघ् मगर उसे तो परमात्मा का सौंदर्य चाहिए। इस संसार में कोई धन की कमी हैघ् लेकिन उसे तो परमात्मा का धन चाहिए। इस संसार में सब तो हैए लेकिन बहुत अनुभव के बाद भक्त ने देख लिया कि इस संसार में सब दिखाई पड़ता हैए है कुछ भी नहींए सब धोखा है। अब उसे और धोखा नहीं खाना है। प्यासा मर जाएगाए मगर अब इस कीचड़ से भरे जल को नहीं पीना है। अब तो मानसरोवर का जल ही पिएगा। अब घास खाकर नहीं जीना हैए अब तो परमात्मा का ही स्वाद लेगा तो ही जीवन का कोई अर्थ है। ऐसी उत्कट आकांक्षा का जन्म जब हो जाता है तो व्यक्ति धार्मिक बनता है। मंदिर.मस्जिदों में जाने से नहीं। पूजा.पाठ कर लेने से नहीं। सत्यनारायण की कथा करवा लेने से नहीं। कभी साल.छह महीने में यज्ञ.हवन कर लेने से नहीं।
जीवन यज्ञ बनना चाहिए। ऐसे बनता है जीवन यज्ञ..
सागर सरिता सब भरेए परि चातिग कै नहिं चाव।।
पीव पीव टेरत दिग भईए स्वातिसुरूपी आव।
दीन.दुखी दीदार बिनए रज्जब धन बेहाल।
रज्जब कहते हैं कि धन के बिना बेहाल हूंए आत्मा के बिना बेहाल हूंए तुम्हारे बिना बेहाल हूं..दीन.दुखी दीदार बिन..तुम्हारा दर्शन हो जाएए दरस.परस हो जाए तो धनी हो जाऊंए नहीं तो निर्धन हूं। और सब करके देख लियाए और सब पाकर देख लियाए यह भिक्षा का पात्र भरता ही नहीं। अब तुम इसे भरो। दीन.दुखी दीदार बिनए रज्जब धन बेहाल।
लबो.रुखसार को तरसती है
जिस्म के प्यार को तरसती है
आप दिल के करीब हैं लेकिन
आंख दीदार को तरसती है
और परमात्मा कुछ दूर नहीं हैए यहां दिल के करीब हैए लेकिन दीदार को तरसती है आंखए देखना चाहती है। पास से भी पास है परमात्माए पर हमारे पास

पास को देखने की आंख नहीं। दूर को तो हम कुशलता से देख लेते हैंए पास से चूक जाते हैं। कठिन को तो हम सुलझा लेते हैंए सरल से वंचित रह जाते हैं। झूठ के साथ तो हम बड़े निष्णात हैंए सत्य के साथ हम हार जाते हैं। लबो.रुखसार को तरसती है
जिस्म के प्यार को तरसती है
आप दिल के करीब हैं लेकिन
आंख दीदार को तरसती है
दीन दुखी दीदार बिनए रज्जब धन बेहाल।
दरस दया करि दीजियेए तौ निकसै सब साल।।
मेरे सारे कष्ट समाप्त हो जाएंए मेरे सारे कांटे निकल जाएंए मेरी पीड़ा का अंत आ जाए..दरस दया करि दीजिए।
ख्याल करनाए मूल्यवान शब्द है..दया। रज्जब कह रहे हैं कि मेरी कोई पात्रता नहीं हैए यह कोई मैं दावा नहीं कर रहा हूं कि मैं पात्र हूंए आओए आना पड़ेगा। ख्याल करनाए त्यागी तपस्वी पात्रता का दावा करता है। वह कहता हैए इतने मैंने उपवास किएए इतने व्रत किएए इतने नियम साधेए आओए आना पड़ेगा। भक्त कहता है कि मेरे किए क्या होगाए मेरा सब किया दो कौड़ी का हैए तुम्हारी दया हो तो आना हो। मैं रो सकता हूंए मैं पुकार सकता हूंए मैं तड़फ सकता हूंए मैं चातक की भाँति तुम पर नजर लगाए रख सकता हूं और मैं पपीहे की भांति प्राण छोड़ सकता हूं पुकार.पुकार पिव.पिव.पिवए मेरी और कोई पात्रता नहीं हैए तुम्हारी दया का ही प्रवाह मेरी तरफ हो जाए तो ही तुम मुझे मिल सकते हो।
भक्ति और योग का यह बुनियादी भेद है। योग की आस्था प्रयास पर है..चेष्टाए साधना। भक्ति की आस्था प्रसाद पर है..उसकी अनुकंपा। दरस दया करि दीजिएए तो निकसै सब साल।
एक गिरया है मुस्कराना भी
मुस्कराकर भी हमने देखा है
हम तही दामनी पै नाजां हैं
तेरी चश्मे.करमने देखा है
और जब भक्त को परमात्मा की कृपा मिलती हैए तब भक्त कहता है..हम अब खुश हैं अपने उस दुख पर..
एक गिरया है मुस्कराना भी
मुस्कराकर भी हमने देखा है
हम तही दामनी पै नाजां हैंण्ण्ण्
लेकिन अब तो हम अपने रिक्त हाथों परए अपने खाली दामन पर नाज से भरे हैं रू
हम तही दामनी पै नाजां हैं
तेरी चश्मे.करमने देखा है
क्योंकि जितना हम रोएए उतनी ही तेरी नजर हम पर पड़ी। जितना हमने पुकाराए उतनी तेरी नजर हम पर पड़ी। जितने हम अपात्र थेए उतनी तेरी दया हमें मिली।
हम तही दामनी पै नाजाँ हैं
तेरी चश्मे.करमने देखा है
तुझे हमने पाया रोकरए पुकारकर। जब भक्त को भगवान मिल जाता है तब तो भक्त कहता है..आ हा ह! धन्य थे वे दिन जब मैं रोया! धन्य थीं वे रातें जब विरह में तड़फा..ज्यों मछली बिन नीर। लौट कर पीछे की यात्रा बड़ी मधुमय हो जाती है। सब आंसू फूल हो जाते हैं। सब रुदन गीत हो जाता है। सब पीड़ाएं अपूर्व संपदाएं मालूम होने लगती हैं। मगर जब पीड़ा से गुजरते हैंए तब बड़ी अड़चन होती है।
और ख्याल रखनाए इस दुनिया में बहुत लोग हैं जो तुम्हारी पीड़ा को सांत्वना देने का उपाय करेंगे। उनसे सावधान रहना। क्योंकि पीड़ा की गहनता से परमात्मा मिलता है। अगर किसी ने सांत्वना दे दीए दुख.दर्दी मिल गए तुम्हें और सहानुभूति दिखानेवाले मिल गए और उन्होंने तुम्हें समझा.बुझा कर ठीक कर दियाए उन्होंने तुम्हें परमात्मा से वंचित कर दिया। यह पीड़ा

ऐसी नहीं है कि इसका इलाज करवा लेना। यह दर्द ऐसा नहीं है कि जिसकी दवा खोजो। यह दर्द ऐसा हैए जो बढ़ जाए तो स्वयं ही दवा हो जाता है।
तुम्हारी जफाओं का तो जिक्र क्या है
तुम्हारी वफाओं ने भी कहर ढाए
मेरे हाल पर रश्क आया जहां को
मेरे हाल पर जब भी तुम मुस्कुराए
तेरे लम्स का फैज हासिल हो जिसको
वह जर्रा भी तारों से आंखें लड़ाए
यह ण्गम तो बड़ी दिलनशीं आफियत है
खुदा ण्गम.गुसारों से मुझको बचाए
उनसे बचाए परमात्मा मुझे जो सांत्वना देने में बड़े कुशल हो गए हैंः
यह गम तो बड़ी दिलनशीं आफियत है
खुदा गम.गुसारों से मुझको बचाए
हमें जब भी धोखा दिया दोस्तों ने
हमें अपने दुश्मन बहुत याद आए
इस जगत में जहां.जहां से तुम्हें पीड़ा मिली है और जहां.जहां कांटे मिले हैंए लौट कर तुम पाओगे..वे सब उपयोगी थे। वे सब दुख न होते यदि तो तुम परमात्मा तक कभी आते नहीं। वे कांटे अगर न पड़तेए तो ये फूल कभी न खिलते। इसे ध्यान में रखना। विरह की गहरी रात्रि में इस बात को ध्यान में रखनाए सांत्वना मत खोजना। संताप को गहरा होने दो। ऐसा गहरा कि तुम टूट ही जाओ उसमेंए कि तुम बिखर ही जाओ उसमेंए कि तुम समाप्त ही हो जाओ उसमेंए कि तुम बचो ही न। यह आग विरह की तुम्हें जला देए तो तुम्हारी राख पर ही नये जीवन का प्रादुर्भाव है। तुम्हारी राख पर ही परमात्मा का मंदिर उठता है। तुम्हारी राख ही उसकी नींव बनती है। और फिर बड़ी मस्ती है! और फिर बड़ा रस है!
संतोए मगन भया मन मेरा।
अहनिस सदा एकरस लाग्याए दिया दरीबै डेरा।।
कुल मरजाद मैंड सब त्यागीए बैठा भाठी नेरा।
जात.पांत कछु समझौ नाहींए किसकूं करै परेरा।।
रस की प्यास आस नहिं औरांए इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव ऐही लय लागीए पीवै फूल घनेरा।।
सो रस मांग्या मिलै न काहूए सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तनमन दे लीया होइ धनी का चेरा।।
हो जाओ किसी धनी के चेरे। पा लो तुम भी। रास्ता सुगम नहींए दुर्गम है।
आंसुओं से पाटना पड़ेगा रास्ते को। यह रास्ता पैरों से तय नहीं होताए आंसुओं से तय होता है। यह रास्ता सिद्धांतों सेए शास्त्रों से तय नहीं होताए सरल पुकार से तय होता है। और सबकी क्षमता है सरल पुकार। और सबकी क्षमता है वह आत्यंतिक प्यास। तुम्हारे भीतर वह जीवन.यज्ञ जलने को तैयार हैए ण्जरा उकसाहट चाहिए। जरा उकसाना हैए लपटें तुम्हें पकड़ लेंगी। उन्हीं लपटों में मंदिर का निर्माण है। और उन्हीं लपटों के पार उस अमृत का अनुभव है..उस फूल का अनुभवए उस शराब का अनुभवए जिसका नशा एक बार चढ़ता है तो फिर उतरता नहीं।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
छठवां प्रवचन

प्रेम परमात्मा है

पहला प्रश्न: जब भी मैं आपसे कोई प्रश्न पूछती हूं, तो मुझे लगता है मेरी गर्दन आपकी तलवार के नीचे आ गई। इस प्रश्न के प्रसंग में भी मेरा वही भाव है। ऐसा क्यों है?

शीला! भय तो बिल्कुल स्वाभाविक है। हर प्रश्न एक उत्तर की तलाश है। उत्तर तुम्हारे अहंकार को भरेगा, या तोड़ेगा, कुछ निश्चित नहीं है। मेरा उत्तर तो निश्चित ही तुम्हारे अहंकार को भरेगा नहीं, तोड़ेगा ही। तुम्हारे प्रश्न से ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि तुम्हारे प्रश्न के बहाने तुम्हारे अहंकार को तोड़ा जाए। प्रश्न तो केवल एक परिस्थिति है। उत्तर बाहर से मिलने वाले नहीं हैं। अहंकार खंडित हो जाए तो उत्तर तुम्हारे भीतर है। प्रश्न में ही छिपा है। तो भय स्वाभाविक है।
जहां भय न लगे और प्रश्न पूछने में मजा आए, वहां समझना कि जीवन का रूपांतरण नहीं होगा। ऐसा ही होता है, पंडित-पुरोहित के पास तुम्हारा प्रश्न पूछना तुम्हारे अहंकार को भरता है। तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे ज्ञान को बताता है। तुम्हारा प्रश्न तुम्हारी जिज्ञासा, तुम्हारी खोज, तुम्हारे अध्यात्म की तलाश की खबर लाता है। रस आता है पूछने में। और हर उत्तर जो पंडित-पुरोहित से तुम्हें मिलता है, तुम्हें तोड़ने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि पंडित-पुरोहित तुम्हें तोड़ने का साहस नहीं कर सकता। तुम पर जीता है। तुम्हारा गुलाम है। तुम उसके मालिक हो। उसे तुम्हारे अहंकार को सजाना होगा। उसे सांत्वना देनी ही होगी। वह मलहम-पट्टी करेगा। वह तुम्हारे घावों को फूलों में छिपाएगा। उसके हाथ में तलवार नहीं हो सकती। उसके द्वार पर तुम्हारा स्वागत है। और जो पूछता है, उसका स्वागत उससे ज्यादा है जो नहीं पूछता है। क्योंकि जो पूछता है वह उसे मौका देता है उसके ज्ञान के प्रदर्शन का। पारस्परिक अहंकार की परिपूर्ति होती है। पूछने वाले को मजा आता है कि लोग जानें कि मैं जानने वाला हूं--लोग जानना दिखाने के लिए पूछते हैं। ऊंचे-ऊंचे प्रश्न पूछते हैं, जिनका उनके जीवन से कोई संबंध नहीं है। परमात्मा है या नहीं? स्वर्ग है या नहीं? कितने नरक हैं? कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत और बड़ी गंभीर और गहरी बातें पूछते हैं, जिनसे उनके जीवन का कुछ लेना-देना नहीं है। जिनका कोई उपयोग भी नहीं है। लफ्फाजी है। लेकिन तात्त्विक उड़ान! अध्यात्म, परमार्थ, इनकी बातें पूछने से औरों को, सुनने वालों को लगता है कि हां, कोई पहुंचा हुआ आदमी है, ज्ञानी है। देखो, इसकी जिज्ञासा! देखो, इसकी उड़ान! देखो, इसके पंख कितनी ऊंचाइयां छू रहे हैं! और पंडित-पुरोहित को सुविधा मिल जाती है कि तुम्हारे प्रश्न के बहाने उसने जो इकट्ठा किया है शास्त्रों से, उसका प्रदर्शन कर ले।
यहां हालत बिल्कुल उलटी है। तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे अज्ञान की घोषणा करता है, ज्ञान की नहीं। क्योंकि जो ज्ञान से पूछता है वह तो पूछता ही नहीं, उसके प्रश्नों के तो मैं उत्तर ही नहीं देता। क्या तुम सोचते हो सारे प्रश्नों के मैं उत्तर देता हूं? ज्ञान से पूछे गए प्रश्नों को तो तत्क्षण कचरे की टोकरी में डाल देता हूं उनको तो दुबारा देखता भी नहीं। क्योंकि अगर तुम्हें पता ही है, तो फिर मेरे उत्तर की कोई जरूरत नहीं है। जो उस जगह से पूछता है जहां घोषणा कर रहा है कि मुझे मालूम है, जो शास्त्र का उल्लेख देकर पूछता है, जो उद्धरण देता है, और जो कहता है मुझे मालूम है, आपकी राय भी जाननी है। यहां कोई रायें नहीं दी जा रही हैं; यहां कोई मंतव्य नहीं दिए जा रहे हैं, न कोई प्रमाणपत्र दिए जा रहे हैं। उसका प्रश्न तो मैं फेंक ही देता हूं। उसका तो कोई दो कौड़ी का मूल्य नहीं है। उसके ही प्रश्न का उत्तर दूसरी जगह मिलता, पंडितों-पुरोहितों के पास उसके ही प्रश्न का उत्तर मिलता। मैं तो केवल उन प्रश्नों के उत्तर देता हूं जो अज्ञान की घड़ी में पूछे गए हैं।

तो पहले तो अज्ञान की घड़ी में पूछने से घबड़ाहट होती है कि यह मेरा अज्ञान प्रकट हुआ, कि मुझे इतना भी मालूम नहीं है; दीनता प्रकट होती है। और फिर तुम्हारी दीनता पर मेरा जो उत्तर आएगा, वह निश्चित ही तलवार की तरह आने वाला है। क्योंकि अगर मैं तुम्हारी गर्दन न काटूँ, तो तुम्हारे किसी काम का नहीं हूं। तुम्हारा सिर तुम्हारे धड़ से अलग न हो जाए तो तुम परमात्मा का दर्शन कर न पाओगे। सिर गिरे तो परमात्मा का दर्शन हो। यह सिर की अकड़ में ही तो परमात्मा खो गया है।
तो घबड़ाहट, शीला, स्वाभाविक है। कोई भी प्रश्न पूछो, डर तो लगेगा कि अब पता नहीं मैं क्या कहूंगा? फिर मेरा उत्तर कोई सुनिश्चित उत्तर होता तो भी आश्वासन तुम खोज सकते थे कि कल भी मैंने ऐसा कहा था, परसों भी मैंने ऐसा कहा था, आज भी ऐसा ही कहूंगा। मेरे उत्तर के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती।
कल ही तुमने देखा है, समाधि ने पूछा था ब्रह्म वेदांत के संबंध में कुछ महीनों पहले; मैंने एक उत्तर दिया था। विजय भारती ने भी कल वैसा ही प्रश्न पूछा, इसी आशा में पूछा होगा कि जैसे मैंने समाधि के प्रश्न के उत्तर में कहा था कि ब्रह्म वेदांत भ्रांति में पड़ गए हैं, लौट आना चाहिए भ्रांति से उन्हें, और लोगों को न भरमाएं, अभी वह घड़ी नहीं आई है, अभी सिद्धि की घड़ी नहीं आई है। सोचा होगा विजय भारती ने कि यह अच्छा मौका है, ऐसा ही प्रश्न मैं भी पूछ लूं। पूछा ओम प्रकाश के संबंध में, मुश्किल में पड़ गया! उसकी गर्दन पर तलवार गिरी! अगर थोड़ी भी समझ होगी, तो अब दुबारा ऐसा प्रश्न नहीं पूछेगा। लेकिन पूछा इसी आशा में था कि जैसा मैंने उत्तर पहले दिया है, वैसा ही उत्तर दूँगा। मेरे उत्तर बँधे हुए नहीं हैं। मेरे पास कोई तैयार उत्तर नहीं हैं। तुम्हारा प्रश्न ही मेरे भीतर उत्तर को जन्माता है। और तुम्हारे प्रश्न से ज्यादा तुम्हारी मनोदशा मेरे उत्तर को निर्माण करती है। कल जो कहा था, आज न कहूंगा; आज जो कह रहा हूं, कल का कुछ भरोसा नहीं है। इसलिए भय और भी लगता है।
अगर यह भी साफ हो कि यही मेरा उत्तर होगा, तो भी तुम निश्चित हो जाओ। मैं तुम्हें निश्चिंत छोड़ नहीं सकता। तुम्हारी निश्चिंतता तो तभी आएगी जब तुम्हारे भीतर से अस्मिता का सारा भाव चला जाएगा--फिर कोई भय न लगेगा मेरी तलवार से। क्योंकि मेरी तलवार तुम्हारी आत्मा को नहीं काट सकती। नाहं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः--याद करो कृष्ण का वचन--उस आत्मा को न तो शस्त्र छेद सकते हैं और न ही आग जला सकती है। मेरी तलवार तुम्हारी आत्मा को नहीं काट सकती। मेरी तलवार केवल तुम्हारे अहंकार को काट सकती है। क्योंकि अहंकार झूठ है, क्योंकि अहंकार निर्जीव है, कट सकता है, गिर सकता है, जल सकता है; गिरना ही चाहिए, कटना ही चाहिए, जलना ही चाहिए। जितनी जल्दी जल जाए उतना अच्छा है।
तो भय स्वाभाविक है। पर इस स्वाभाविक भय के ऊपर चलो अब। सच तो यह है, जिस दिन से शीला तूने संन्यास लिया उसी दिन से तलवार तेरे गर्दन पर लटकी है, पूछ कि न पूछ! अब पूछने में क्या भय? तलवार तो लटकी ही है। जो नहीं भी पूछते हैं, उनकी गर्दन पर भी गिरेगी। वह इस निश्चिंतता में नहीं रह सकते कि न कुछ पूछा है, न कोई खतरा है। संन्यास का अर्थ ही होता है कि तुमने गर्दन मेरे सामने रख दी--तुमने प्रार्थना की मुझसे कि अब उठाओ तलवार और मेरी गर्दन काटो। संन्यास का और अर्थ क्या होता है? संन्यास का इतना ही अर्थ है कि मैं झुकता हूं, कि मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे अहंकार को जला दो, कि मेरे किए यह अहंकार न छूटेगा, मेरे किए तो और बढ़ता है, मैं जो भी करता हूं उससे बढ़ता है; प्रार्थना करता हूं तो प्रार्थना सजावट हो जाती है अहंकार की, पूजा करता हूं तो अहंकार को और पर लग जाते हैं, शास्त्र पढ़ता हूं तो अहंकार ज्ञानी हो जाता है, व्रत-नियम साधता हूं तो अहंकार तपस्वी हो जाता है, पुण्य करता हूं तो पुण्यात्मा होकर बैठ जाता है, जो भी करता हूं उससे बढ़ता है, सघन होता है, मजबूत होता है। मेरे किए इससे छुटकारा नहीं होगा।
नहीं हो सकता तुम्हारे किए। तुम अपने अहंकार को न काट पाओगे। तुम्हारे और तुम्हारे अहंकार के बीच फासला इतना कम है कि तलवार उठा न

सकोगे और खतरा यही है कि तुम सोचोगे कि तुम अहंकार काट रहे हो, लेकिन तलवार अहंकार के हाथ में ही होगी। वह कुछ और काटेगा। और आखिर में तुम पाओगे कि वह खुद तो बच गया है, कुछ और कूड़ा-करकट काट दिया है। इसलिए तो तथाकथित महात्मा, साधु-संत, साधारण आदमी से भी ज्यादा अहंकारग्रस्त हो जाते हैं। उनका अहंकार और सघन हो जाता है। देखो, साधुओं के चेहरों पर जैसी अहंकार की प्रतिमा दिखाई पड़ेगी, वैसी साधारण जनों के चेहरे पर नहीं दिखाई पड़ती! साधारण-जन को तो लगता है--मैं पापी, क्या है मेरे पास अहंकार करने को! महात्मा को लगता है--मैं पुण्यात्मा, मेरे पास कुछ है; मैंने कुछ कमाया, मेरे पास कमाई है।
तुमने संन्यास लिया, उसी दिन तुमने गर्दन मेरे सामने रख दी। अब मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं ठीक उसी क्षण की। पूछो, न पूछो, ठीक क्षण आने पर तलवार तुम्हारे गर्दन पर गिरेगी। वही तुम्हारे सौभाग्य का क्षण भी होगा। उसी मिटने में तो पाना है। उसी न हो जाने में तो हो जाना है। संन्यासी होने के बाद ज्यादा देर बच नहीं सकते।
अपना दामन सम्हाल कर रखिए
जिंदगी रक्स है शरारों का
यहां तो अंगारे नाच रहे हैं। सम्हाल कर भी रखोगे दामन तो कब तक दामन सम्हाल कर रखोगे--अंगारे दामन में गिरने ही वाले हैं। चल ही पड़े हैं। और तुम संन्यासी हुए तो तुमने खुद अंगारों के लिए दामन फैलाया है। इस गर्दन को गिर ही जाने दो।
दरिया में तलातुम बरपा है किश्ती का फसाना क्या मानी?
गरदाब से जब लड़ना है तुम्हें तिनके का सहारा क्या मानी?
यह नौहए किश्ती बंद करो खुद मौजे तूफां बन जाओ
पैरों के तले साहिल होगा साहिल की तमन्ना क्या मानी?
किनारों की आकांक्षा ही मत करो। यहां तो तुम्हें जो मैं कला दे रहा हूं, वह तूफान को ही किनारा बना लेने की कला है। "दरिया में तलातुम बरपा है"--और तूफान बड़ा है, जिंदगी तूफान है--"दरिया में तलातुम बरपा है किश्ती का फसाना क्या मानी," ये छोटी-मोटी किश्तियां लेकर तुम चलोगे, ये बचेंगी थोड़े ही; ये डूब ही जाएंगी। तुम्हारे मंत्र की किश्तियां, तुम्हारे यंत्र की किश्तियाँ, तुम्हारे योग-विधि-विधानों की किश्तियाँ, ये छोटी-छोटी किश्तियां काम न आएंगी, दरिया तूफान में है, यह भयंकर अंधड़ में है। ये तुम्हारी सब नावें कागज की नावें हैं; खिलौने हैं, नावें नहीं हैं, ये तो डूबेंगी। और जितना तुम बचाने की कोशिश करोगे, उतनी ही कठिनाई में पड़ोगे। दरिया में तलातुम बरपा है किश्ती का फसाना क्या मानी?
गरदाब से जब लड़ना है तुम्हें तिनके का सहारा क्या मानी?
और जब इस भयंकर तूफान से लड़ना है, तब छोटे-छोटे तिनको का सहारा लेने से क्या होगा? और तुम्हारा अहंकार तो तिनके से भी ज्यादा झूठा है। तिनका भी नहीं है, सिर्फ ख्याल है। सिर्फ एक विचार है, एक सपना है जो तुमने नींद में देखा है।
यह नौहए-किश्ती बंद करो खुद मौजे तूफां बन जाओ
अब छोड़ो यह फिकर किश्तियों की, अब तो तूफान के साथ एक हो जाओ, मौजे तूफां बन जाओ। अब तो तूफान के साथ तारतम्य जोड़ लो। यही संन्यास है। अब बचने की चेष्टा ही छोड़ो। अब तुम मिटने के साथ ही दोस्ती कर लो। अब तो जीवन का आग्रह छोड़ो, अब तो मौत का आलिंगन कर लोः
यह नौहए-किश्ती बंद करो खुद मौजे तूफां बन जाओ
पैरों के तले साहिल होगा साहिल की तमन्ना क्या मानी?
तूफान को ही साहिल बना लेंगे। तूफान की ही नाव बना लेंगे। मौत को ही अमृत का द्वार बना लेंगे। यह गर्दन गिरेगी, इसी में तुम्हारा उठना है।
तो घबड़ाहट स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक घबड़ाहट के पार चलना है। स्वाभाविक होने से ही कोई बात सच नहीं हो जाती। स्वभाव के पार और भी स्वभाव है। यह बिल्कुल ही नीचे तल का स्वभाव है, जहां हमें भय पकड़े रहता है--मिट जाने का भय। मिटना तो है ही। ऐसे मिटे कि वैसे मिटे। बचना तो होना नहीं है। बचा तो यहां कोई भी नहीं है। यहां सिकंदर भी मिट जाते हैं, दीन-

97

दरिद्र भी मिटते हैं, सम्राट भी। मिटना तो यहां है ही। गर्दन तो गिरेगी ही। तलवार गिरे या न गिरे तो भी गर्दन गिरेगी। तो फिर मिटने का भी उपयोग कर लेना चाहिए।
मरते सभी हैं, जो मरने का उपयोग कर लेता है वही अमृत को उपलब्ध हो जाता है। क्या है मरने का उपयोग? जो स्वेच्छा से मर जाता है। संन्यास स्वेच्छा से मृत्यु का वरण है। यह तैयारी है कि जब मौत आनी ही है, आती ही है, तो मैं स्वयं झुक जाता; मौत को इतना कष्ट भी न दूंगा, मैं खुद मरने को राजी हूं। इसी मरने के राजीपन में तुम्हारे भीतर क्रांति घट जाती है, तुम मृत्यु के पार हो जाते हो। फिर कौन मरनेवाला बचा--जो मरने को ही राजी हो गए तो मरेगा कौन अब? जिसने मृत्यु को भी स्वीकार कर लिया, वह इसी स्वीकार में अमृत हो गया। अमृत तो था ही, इस स्वीकार में उसे अमृत का बोध हो गया।
दमाग सोख्ता सा, दिल पै गर्द सी क्या है?
यह जिंदगी का तमस्खर है, जिंदगी क्या है?
यह तो जिंदगी का सिर्फ उपहास है जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं यह तो जिंदगी का सिर्फ ढोंग है जिसे हम जिंदगी कहते हैं। यह तो जिंदगी का सिर्फ एक सपना है।
दमाग सोख्ता सा दिल पै गर्द सी क्या है?
यह जिंदगी का तमस्खर है, जिंदगी क्या है?
कदम बढ़ा कि नई मंजिलें बुलाती हैं
यह बेहिसी, यह थकन, यह शिकस्तगी क्या है?
न देख चश्मे-हिकारत से खुश्क कांटों को
गुलों से पूछ मआले शगुफ्तगी क्या है
कांटों को देख कर मत रुक जाना; पूछना हो जिंदगी का राज, फूलों से पूछना। मरने वालों से मत पूछना, पूछना हो रा.ज तो उनसे पूछना जिन्हें अमृत का कुछ अनुभव हुआ है। जिंदगी का राज पूछना हो तो हंसते हुए फूल से पूछना। उसे पता है मौत के बीच हंसने की कला। चारों तरफ मौत घिरी है और फूल है मुस्कुराए चला जाता है। चारों तरफ मौत धिरी है और दिया है कि जला चले जा रहा है। चारों तरफ मौत तो सबके घिरी है--तुम्हारे, मेरे, बुद्ध के, कृष्ण के, क्राइस्ट के; लेकिन तुम मौत से घबड़ा रहे हो और बुद्ध मौत से नहीं घबड़ा रहे हैं, इतना ही फर्क है। तुम्हारी घबड़ाहट में तुम मौत से दबे जा रहे हो। बुद्ध निर्भय होकर मृत्यु को देख रहे हैं--जो होना है होना है, जैसा होना है वैसा होना है, जैसा हो वैसा हो, ज्यों का त्यों ठहराया। बस इसी क्षण तुम्हारे भीतर एक स्वर पैदा होता है जो शाश्वत का है, एक किरण उतरती है जो परमात्मा की है।
कदम बढ़ा कि नई मंजिलें बुलाती हैं
यह बेहिसी, यह थकन, यह शिकस्तगी क्या है?
यह अकर्मण्यता, यह थकान, यह पराजय क्या है
न देख चश्मे-हिकारत से खुश्क कांटों को
... कांटों को मत गिनती करो, मौत का हिसाब मत लगाओ...
गुलों से पूछ मआले शगुफ्तगी क्या है
हंसने का रा.ज क्या है? हंसने का एक ही राज है--मौत का स्वीकार। संन्यासी ही हंस सकता है। तुम्हें पता है क्यों इस देश ने संन्यास के लिए गैरिक वस्त्र चुने? वह अग्नि का रंग है, लपटों का रंग है। प्राचीन समय में जब किसी को संन्यास देते थे, तो उसे चिता बना कर उस पर लिटाते थे। फिर चिता में आग लगाते थे और घोषणा करते थे कि तू अब तक जो था, समाप्त हो गया। तेरी तरह तू मर गया। अब उठ और एक नये जीवन में उठ! जलती चिता से संन्यासी उठता था, फिर उसे नया नाम देते थे, और गैरिक वस्त्र देते थे ताकि याद रखना अग्नि को, लपटों को, मृत्यु को; स्मरण रखना कि जो भी मरणधर्मा है वह तू नहीं है; स्मरण रखना कि जो भी मरेगा, वह तू नहीं है।
तो शीला, घबड़ा मत! रख गर्दन सामने। गिरने दे तलवार। जो कटेगा, वह तू नहीं है।
सिकंदर जब भारत से वापस लौटता था तो उसे याद आई--जब यात्रा पर आया था भारत की तरफ तो उसके गुरु अफलातून ने उससे कहा था, जब भारत से लौटो, और बहुत

सी चीजें तुम लूट कर लाओगे, बन सके तो एक संन्यासी भी ले आना। संन्यास भारत की गरिमा है। वह भारत का गौरव है। वह भारत की देन है दुनिया को। तो अफलातून ने ठीक ही कहा था कि तू सब कुछ तो लाएगा लूट कर--धन-दौलत, हीरे-जवाहरात-- मेरे लिए इतना ख्याल रखना, एक संन्यासी ले आना। क्योंकि मैं जानना चाहता हूं, संन्यास क्या है? सब लूट-पाट कर जब सिकंदर जा रहा था और पंजाब की आखिरी बस्तियां छोड़ रहा था, तब उसे याद आया कि वह भूल ही गया संन्यासी को ले जाना। तो उसने खबर की गांव में कोई संन्यासी है? लोगों ने कहाः हां, एक संन्यासी है। वह नदी के किनारे नग्न वर्षों से जीता है। सिकंदर ने अपने दो आदमी भेजे और कहाः संन्यासी को कहो कि घोड़े पर सवार होकर हमारे साथ हो जाए। और कह देना, अगर आज्ञा न मानी तो यह नंगी तलवार है, गर्दन इसी वक्त काट कर गिरा दी जाएगी।
वे नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक गए। जो संन्यासी वहां खड़ा था--नग्न, मस्त, सुबह की रोशनी में... सूरज से बातें करता होगा, आकाश में उड़ता होगा, अनंत से जुड़ा था, मस्त था, मौज में था, रक्स में था, नाच में था--थोड़ी देर तक तो वे दोनों सैनिक तलवारें नंगी हाथ में लिए चुपचाप खड़े रहे; ऐसा दृश्य उन्होंने देखा नहीं था! ऐसी मस्ती उन्होंने देखी नहीं थी! मतवाले देखे थे, मगर ऐसा मतवाला नहीं देखा था! और संन्यासी को जैसे पता ही नहीं चला कि वे दो नंगी तलवारें लिए आदमी खड़े हैं किसलिए? आखिर में उन्होंने ही कहा कि भई, देखते नहीं, हम बड़ी देर से देख रहे हैं, सिकंदर की आज्ञा है, महान सिकंदर की आज्ञा है कि घोड़े पर सवार हो जाओ और हमारे साथ यूनान चलो। सब तरह की सुविधा रहेगी, सब तरह का इंतजाम रहेगा, तुम शाही मेहमान रहोगे। और यह भी खबर है साथ में कि अगर जाने से इनकार किया, तो ये नंगी तलवारें तुम्हारी गर्दन अभी गिरा देंगी।
वह संन्यासी ऐसा खिलखिला कर हंसा कि नंगी तलवारें लिए सैनिकों के दिल धड़क कर रह गए होंगे। उस संन्यासी ने कहा--सिकंदर को कहो कि फिर उसे संन्यासियों से बात करने की तमीज नहीं है। उसे संन्यासियों के साथ चर्चा करने का कुछ पता नहीं है। उस नासमझ को ही ले आओ ताकि वह भी देख ले--जब एक संन्यासी की गर्दन काटी जाती है तो क्या होता है? रही आने-जाने की बात, वर्षों हो गए तब से मैंने आना-जाना छोड़ दिया। ठहर गया हूं। वह ऊंची बातें कह रहा था जिसकी सिपाहियों को तो कुछ समझ में ही नहीं आया होगा क्या कह रहा है। आना-जाना छोड़ चुका हूं, उसने कहा, ठहर गया हूं। वह तो संन्यासी की परिभाषा कर रहा था, जो कृष्ण ने की है--स्थितप्रज्ञ, जिसकी प्रज्ञा ठहर गई है, जो न अब आता न जाता... रज्जब ने कहा न--जो आए जाए सो माया... जो न आता, न जाता, जो सदा ठहरा है, सदा स्थिर है, उस थिरता का नाम ही संन्यास है। तो उसने कहाः मैं तो अब कहां आता-जाता, वर्षों हो गए ठहर गया, अब कैसा आना, कैसा जाना! कैसा भारत, कैसा यूनान! व्यर्थ की बातें यहां न करो। रही गर्दन काटने की बात, तुम्हें काटना हो तुम काट लो, सिकंदर को काटना हो सिकंदर काट ले, जहां तक मेरा संबंध है, मैं तो यह गर्दन बहुत पहले काट ही चुका। इस गर्दन का मुझसे कुछ लेना-देना नहीं।
सिपाहियों की हिम्मत न पड़ी काटने की। यह आदमी कुछ अनूठा था। उन्होंने बहुत आदमी देखे थे, या तो आदमी होता है तलवार उसके सामने करो तो वह अपनी तलवार निकाल लेता है, लड़ने-जूझने को तैयार हो जाता है; या एक आदमी होता है कि तलवार दिखाओ तो वह भाग खड़ा होता है, पीठ दिखा देता है। न इसने पीठ दिखाई, न इसने तलवार निकाली, यह तीसरे ही तरह का आदमी था, जो खिलखिला कर हँसा! इन सैनिकों ने बहुत युद्ध देखे थे, बहुत लोग मारे थे, मारे गए थे, खुद मौत का सामना किया था, मृत्यु के अनुभव से निरंतर गुजरे थे, मगर ऐसा आदमी न देखा था। उन्होंने सोचा, बेहतर है हम सिकंदर को पहले खबर कर दें।
एक तो वहीं रुका रहा कि संन्यासी पर नजर रखे, दूसरा भागा सिकंदर को गया, उसने कहा कि आदमी देखने जैसा है! अफलातून ने, तुम्हारे गुरु ने जो कहा संन्यासी ले आना, ठीक ही कहा। हमने बहुत आदमी देखे, मगर यह आदमी कुछ और तरह का आदमी है। यह आदमियों जैसा आदमी नहीं है। यह मौत की बात सुन कर हँसा--ऐसा हँसा कि भरोसा न आए! या तो यह पागल है, या यह किसी ऐसी अवस्था में है ऊँचाई

की जहां हमारी कोई पहुँच नहीं है। आप खुद ही चलो। काटना हो आप खुद ही काट लो। और वह कहता है--गर्दन तो मैं पहले ही कटा चुका।
सिकंदर खुद गया। सिकंदर ने लिखा है कि जिंदगी में मैं दो बार अपने को छोटा अनुभव किया हूं। एक बार डायोजनीज से मिला था, तब--वह भी एक नंगा फकीर था यूनान का--और एक बार दंडामि, इस हिंदू संन्यासी से मिला, तब; दो बार मुझे लगा कि मैं ना-कुछ हूं। बाकि बड़े सम्राट देखे, दुनिया के बड़े ख्यातिनाम लोग देखे, उनके सामने मैं सदा बड़ा था। मेरे मुकाबले वे कुछ भी न थे। मगर इन दो फकीरों ने--दोनों नंगे फकीर थे मुझे एकदम झेंप से भर दिया।
दंडामि के सामने खड़े होकर सिकंदर ने कहा कि चलना होगा, अन्यथा यह तलवार है और मैं कठोर आदमी हूं, जैसा कहता हूं, वैसा करता हूं, यह गर्दन अभी कट जाएगी, यह सिर अभी गिर जाएगा। पता है दंडामि ने क्या कहा? दंडामि ने कहाः गिराओ, गिराओ, सिर को गिरा दो; मैं भी उसे गिरते देखूंगा, तुम भी उसे गिरते देखोगे। और अब तुम करोगे क्या, जो काम मेरा गुरु पहले ही कर चुका है! अब तो यह सिर ऐसा ही अटका है, जुड़ा नहीं है। यह तो कटा हुआ सिर है, कटे हुए को क्या काटते हो, मगर काटो! तुम भी देखोगे गिरते, मैं भी देखूंगा गिरते। सिकंदर की तलवार कहते हैं म्यान में वापिस चली गई। इस आदमी की रौनक, इस आदमी की आभा देख कर हतप्रभ होकर वापस लौट गया। जाते वक्त उस संन्यासी ने कहाः और ध्यान रखना, जो संन्यासी तुम्हारे साथ जाने को राजी हो जाए, वह ले जाने-योग्य नहीं है। वह संन्यासी नहीं है। जो संन्यासी है, उसका अब कैसा आना, कैसे जाना! ज्यूं का त्यूं ठहराया।
तो शीला! कट ही जाने दो गर्दन। गर्दन कट जाए तो झंझट मिटे। फिर भय भी मिट जाएगा। जब कट ही गई, तो कटने को कुछ और बचा नहीं। जब तक है, तब तक भय है। भय के ऊपर उठो।

दूसरा प्रश्नः आप आंख खोलने के लिए कहते हैं, मगर आंखें खोलने में इतना भय क्यों लगता है?

वेदांत! भय तो लगेगा ही। आंखें बंद हैं तो प्यारे सपने चल रहे हैं। आंखें खुलेंगी तो सपने उजड़ जाएंगे, टूट जाएंगे। आंखें बंद हैं, तो आशा का दीया जल रहा है। आंखें खुलेंगी तो दीया बुझ जाएगा।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा कि कोई देवदूत प्रकट हुआ है--फरिश्ता--और कह रहा है: ले ले, यह निन्यानबे रुपये हैं ले ले! मुल्ला ने कहाः निन्यानबे! जैसा कि आदमी का मन होता है; कोई भी, तुम भी होते तो तुम कहते यह भी खूब रही, निन्यानबे क्या, जब देते हो तो कम से कम सौ दो। कुछ अड़चन मालूम होती है निन्यानबे के साथ। "निन्यानबे का चक्कर," कहानी तुमने सुनी है न। कुछ अड़चन होती है। निन्याबे! तो मन सोचता है कि एक और हो। पूरा तो हो जाए! अधुरे में कुछ अड़चन होती है। तो, सपने में भी गणित नहीं टूटता आदमी का। मुल्ला ने कहाः जब देते ही हो, भाई, तो कम से कम सौ दो! बंधा नोट दो! यह क्या निन्यानबे! इस पर जिद्द होने लगी, फरिश्ता कहने लगा--लेना हो निन्यानबे ले लो; और मुल्ला कहने लगा कि लेंगे तो सौ लेंगे, अब एक के लिए यह क्या बात कर रहे हो! जब इतने दिलदार हो, जब इतने दूर से आए, तो एक रुपट्टी के लिए क्या कंजूसी दिखा रहे हो! इसी झगड़े में नींद खुल गई। आँख खुली तो न फरिश्ता था, न निन्यानबे रुपये थे। मुल्ला बहुत घबड़ाया। जल्दी से आँख बंद करके बोलाः भाई, चलो निन्यानबे ही दे दो! मगर वहां अब कोई भी न था। चलो अठ्ठानवे दे दो जितने देना हो दे दो कुछ तो दे दो मगर वहां अब कोई भी न था। इसलिए आँख खोलने में डर लगता है। कहीं सपना टूट न जाए। तुम निन्न्यानबे को सौ करने में लगे हो। सपने का यही अर्थ होता है-- निन्न्यानबे को सौ करने में जो लगा है वह सपने में है। और निन्यानबे सौ नहीं होते। निन्यानबे कभी सौ नहीं होते। निन्यानबे निन्यानबे ही रहते हैं। तुम्हें मैं कहानी कह दूँ, तो ख्याल में आ जाए--
एक सम्राट की मालिश करने वाला नाई रोज-रोज आता है, सुबह घंटे, दो घंटे सम्राट की मालिश करता है; पुरानी कहानी है, उसे एक रुपया रोज मालिश का मिलता। उन दिनों एक रुपया बहुत था। खुद खाता है, पड़ोस के लोगों को खिलाता

है, मस्त है! सम्राट भी उसकी मस्ती से ईर्ष्या करता है। और कोई काम नहीं, दो घंटे मालिश कर लिए, फिर दिन भर मुक्त है, फिर बांसुरी बजाता है। वहीं सम्राट के सामने रहता है, उसकी बांसुरी की आवाज सम्राट को भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाती। उसके घर से हमेशा हंसी के फव्वारे छूटते रहते--मित्र इकट्ठे होते हैं, भाँग छनती है, गीत उठते हैं, ढोलक पर ताल पड़ती है, बांसुरी बजती है। फिर दूसरे दिन सुबह आकर दो घंटे मेहनत कर जाता है और फिर निश्चिंत हो जाता है। सम्राट ने अपने वजीर से कहा कि मेरे पास सब है, मगर मैं इतना निश्चिंत नहीं। न मैं बाँसुरी बजा सकता हूं--फुरसत कहां--न मैं हंस सकता हूं इस जैसा। इसके पास कुछ भी नहीं है। वजीर ने कहाः यही तो झंझट है, इसके पास कुछ भी नहीं है! यह अभी चक्कर में नहीं पड़ा। आप घबड़ाएं न, आपकी ईर्ष्या मैं मिटा दूँगा, मैं इसको कल चक्कर में डाले देता हूं।
रात में वह गया और निन्यानबे रुपये एक थैली में रख कर उस गरीब के घर में फेंक आया। सुबह उसने आँख खोली, निन्यानबे रुपये, गिनती किए--एकदम निन्यानबे! बस सौ का चक्कर शुरू हुआ। उसने कहाः आज जो रुपया मिले, आज रबड़ी नहीं खरीदनी, आज भांग नहीं छनेगी, एक ही दिन की तो बात है, एक रुपया बच जाएगा, सौ हो जाएंगे सौ पूरे हो जाएंगे। यह आदमी का मन कुछ अजीब पागल है, निन्यानबे से पता नहीं क्यों राजी नहीं होता! सौ पूरे हो जाएं! उस दिन न तो बांसुरी बजी, न मृदंग पर ताल पड़ी, न मित्र आए, न हँसी के फव्वारे छूटे--भूखा प्यासा आदमी क्या हंसी का फव्वारा छूटे! वह कल की राह देख रहा है यह एक रुपया यह तो मिला है तो सौ कर लिए।
सम्राट ने वजीर से कहाः क्या किया भाई, हद्द कर दी! आज कहां गया नाई, क्या हो गया उसको? वजीर ने कहाः अब कभी हंसी न उठेगी और अब कभी बांसुरी न बजेगी, आप फिकर न करें। आप जल्दी ही देखेंगे इसकी हालत खस्ता होती जाएगी। और उसकी हालत खस्ता होती चली गई। क्योंकि जब सौ हो गए, तो फिकर उसको लगी कि ऐसे अगर बढ़ते चले जाएं तो दो सौ हो सकते हैं। सौ तो हो ही गए, आधे तो हो ही गए, अब दो सौ में देर कितनी है! तो रोज अगर बचाऊं! तो रूखी-सूखी खाने लगा, दोस्तियां छोड़ दीं--इसीलिए तो धनपति दोस्ती नहीं करते। गरीब की दुनिया में दोस्ती होती है, गरीब की दुनिया में, अमीर की दुनिया में कहां दोस्ती! अमीर की दुनिया में, सिर्फ व्यवसायिक नाते-रिश्ते होते हैं, व्यावसायिक संबंध होते हैं, दोस्ती नहीं होती, मित्रता नहीं होती, क्योंकि कौन खर्चा ले, कौन झंझट ले! अमीर देने में डरता है, है उसके पास मगर देने में डरता है। गरीब के पास कुछ नहीं है, इसलिए देने में डरता ही नहीं--वैसे ही कुछ नहीं है, अब और क्या ले जाओगे! इतना है, यह भी ले लो तो कुछ हर्जा नहीं--क्या खोता है!
मगर अब इसके पास सौ रुपये थे और मुसीबत हो गई! और दिन में दो-चार बार जाकर टटोल कर अपने रुपये देख लेता था और डर भी पैदा होने लगा कि कोई चोर को पता चल जाए, घर में इतने आदमियों का आना-जाना ठीक नहीं है। आना-जाना लोगों का बंद करवा दिया। खुद भी यहां-वहां जाना बंद कर दिया, क्योंकि घर से बाहर जाए--अकेला ही आदमी था--कोई चोर घुस जाए, कुछ हो जाए, कोई ले जाए! रात भी सोता था तो वह निश्चिंतता न रही। चिंताएं आएं। रात में एकाध-दो दफे उठ कर जाकर देख ले कि सब ठीक-ठाक है? सूखने लगा। पंद्रह दिन में ही उसकी हालत खराब थी। सम्राट ने पूछा कि भाई, तुझे हुआ क्या है? कहां गई तेरी रौनक? कहां गया तेरा रस, तेरी मस्ती? यह वजीर ने क्या किया तेरे साथ? उस आदमी ने कहाः वजीर ने! वह आदमी खिलखिला कर हंसने लगा, उसने कहा अब मैं समझा। तो यह वजीर की शरारत है! वह मुझे मार ही डालता, अच्छा बता दिया आपने! मुझे निन्यानबे के चक्कर में डाल दिया।
निन्यानबे का चक्कर है एक। वही सपना है।
तुम पूछते होः "आप आंख खोलने के लिए कहते हैं, मगर आंख खोलने में इतना
भय क्यों लगता है?"
इसीलिए कि आंख बंद है तो तुम्हारा सपना सच मालूम होता है। तुम आंख खोल
कर देखोगे तो जिसके प्रेम में मरे जा रहे थे, पाओगे वहां कुछ भी नहीं-- हड्डी-मांस-मज्जा है। आंख खोल कर देखोगे तो जिस पद के लिए दिवाने हुए थे, वहां कुछ भी नहीं है। ऊंची कुर्सियों पर बैठ जाने का रस छोटे-छोटे बच्चों

जैसा है, जो कूड़े-कचरे के ढेर पर चढ़ जाते हैं और चिल्ला कर कहते हैं कि मैं सबसे ऊंचा हूं। दिल्लियों में वही कूड़े-कचरे के ढेरों पर चढ़े हुए लोग चिल्लाते रहते हैं कि मैं सबसे ऊंचा हूं। तुमने देखा न, छोटा बच्चा कभी तुम्हारे पास ही आकर कुर्सी के हत्थे पर चढ़ कर खड़ा हो जाता है और कहता है-- पिता जी, मैं आपसे बड़ा हूं। तुम हंस कर रह जाते हो, तुम जानते हो बचकाना है। अभी बच्चा है, इसे कुछ पता नहीं। ये कोई बड़े होने के ढंग नहीं हैं। लेकिन कोई राष्ट्रपति हो गया, कोई प्रधानमंत्री हो गया, तुम सोचते हो कुछ भेद हो गया? कुर्सी पर चढ़ गया। अब वह कह रहा है--मैं बड़ा हूं। और उसे पक्का भरोसा आने लगता है कि मैं बड़ा हूं, क्योंकि कुर्सी को लोग नमस्कार करते हैं। वह सोचता है नमस्कार मुझे हो रही है।
एक रथ के सामने एक गधा चल रहा था। रथ में बैठे सम्राट को लोग झुक-झुककर नमस्कार कर रहे थे, गधा बहुत अकड़ गया। गधा जोर-जोर से रेंकने लगा। सम्राट ने कहाः इस गधे को क्या हुआ? सम्राट के वजीर ने कहाः यह लोगों की नमस्कार इसके दिमाग को खराब किए दे रही है। यह आगे-आगे चल रहा है, इसको आपका कुछ पता नहीं है, इसके पीछे रथ आ रहा है इसका पता नहीं है, और पता भी हो तो शायद यही सोच रहा हो कि मेरे पीछे रथ चलते हैं, और मेरे आगे लोग नमस्कार करते हैं सम्राट मेंरे पीछे चलते हैं और लोग झुक-झुक कर मुझे नमस्कार करते हैं--इस गधे का दिमाग फिरा जा रहा है। एक तो गधा और फिर दिमाग फिरा, इसकी हालत खराब हुई जा रहीं है, यह पगला जाएगा।
राजधानियों में तुम इसी तरह के लोग पाओगे। कुर्सी को लोग नमस्कार कर रहे हैं। कुर्सी से हटते ही कोई नमस्कार करने नहीं आता। तुमने देखा न कुर्सी पर आदमी बैठता हैं, लोग कहते हैं--जिंदाबाद। कुर्सी से उतरा कि मुर्दाबाद। असली बात--कुर्सी जिंदाबाद। तो जो कुर्सी पर है--वह भी जिंदाबाद हो जाता है। कुर्सी पर बैठे आदमी की लोग झुक-झुक कर स्तुतियां करते हैं। खुशामद करते हैं। उसके अहंकार को फुलाते हैं। कुर्सी से उतरा नहीं आदमी कि फिर कोई पूछता नहीं। इसीलिए तो जो कुर्सी पर एक बार चढ़ जाता है, वह उतरता नहीं। लाख उपाय करता है चढ़ा ही रहे। क्योंकि उसे भी शक तो होता ही है कि कहीं उतर गया कुर्सी से, पता नहीं फिर क्या मेरी हालत हो! लोग चाहते हैं कि कुर्सी पर ही रहते-रहते मर जाएं।
सपना तुम पद का देख रहो हो, आंख खोलोगे तो वहां कुछ भी न पाओगे। सपना तुम धन का देख रहो हो, आंख खोलोगे हाथ में राख पाओगे। इसलिए डर तो स्वाभाविक है। आंख खोलने से सपने टूट जाएंगे, एक बात। और फिर सच दिखाई पड़ेगा, वह और भी खतरनाक है--कि पता नहीं कैसा हो सच! अनुकूल पड़े न पड़े! और सच ने कोई कसम थोड़े ही खाई है कि तुमसे अनुकूल पड़ना पड़ेगा। सच तुम्हारे अनुकूल पड़ता ही नहीं। तुम्हीं को सच के अनुकूल पड़ना पड़ता है। और यही अड़चन है। झूठ की एक खूबी है कि वह तुम्हारे अनुकूल होता है।
इसको सूत्र की तरह समझो, इसे खूब गहरा पकड़ लो। झूठ की यह खूबी है-- इसीलिए तो झूठ इतना सफल है दुनिया में--वह हमेशा तुम्हारे अनुकूल होता है। वह कहता है--तुम जैसे, वैसा मैं। मैं सदा तुम्हारे साथ हूं। तुम लाल तो मैं लाल, तुम पीले तो मैं पीला; तुम दिन को रात कहो तो मैं दिन को रात कहता; तुम रात को दिन कहो तो मैं रात को दिन कहता। मैं तो तुम्हारा अनुगामी हूं, मैं तो तुम्हारा दास। झूठ के साथ एक सुविधा है कि वह सदा तुम्हारे अनुकूल होता है। सत्य के साथ असुविधा है--तुम्हें सत्य के अनुकूल होना पड़ता है। अगर रात है तो रात है, तुम लाख चिल्लाओ कि दिन है, सत्य नहीं कहेगा कि यह दिन है।
सत्य के अनुकूल तुम्हें होना पड़ेगा, तो तुम्हें अपने बहुत से अंग काटने होंगे। तुमने झूठ की दुनिया में रह-रह कर जो अंग अपने बना लिए हैं, एक अपनी तस्वीर बनाई है। एक अपनी प्रतिमा निर्मित की है, वह सारी प्रतिमा खंडित होगी, फिर नये सिरे से शुरू करना पड़ेगा, फिर बारहखड़ी, फिर अ ब स से शुरू करना पड़ेगा। पुराना कुछ काम नहीं आएगा। अब तक जो सोचा था अपना परिचय है, वह काम नहीं अएगा। अब अपना नया परिचय खोजना होगा।
और सत्य के अनुकूल होने में अड़चनें आएंगी। अड़चनें इसलिए आएंगी कि बाकी सारे लोग झूठ के अनुकूल हैं तुम एकदम अजनबी हो जाओगे। तुम भरी दुनिया

में अकेले हो जाओगे। मित्र किनारा काटने लगेंगे--क्योंकि कौन झंझट लेना चाहता है--अपने पराए हो जाएंगे, सब तरफ तुम अड़चन पाओगे, सब तरफ तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे बीच और लोगों के बीच फासला बढ़ता जा रहा है। तुम जितने सत्य के करीब आओगे, उतने लोगों से दूर होते जाओगे। तुमने सुना है कि संन्यासी समाज को छोड़ कर भाग जाते थे, मैं कहता हूं भागना मत समाज को छोड़ कर, लेकिन एक बात तो होने वाली है, समाज में रहोगे तो भी तुम समाज के न रह जाओगे। समाज और तुम्हारे बीच एक अंतराल हो जाएगा, एक खाई पड़ जाएगी। तुम सत्य के अनुकूल होने की चेष्टा में लगोगे और समाज अभी झूठ में जी रहा है-- समाज का अभी निन्यानबे का फेर जारी है--कैसे मेल बैठे? कैसे तालमेल हो? विसंगति हो जाएगी। और जीना तो इन्हीं लोगों के साथ है।
तो बड़ी कला सीखनी पड़ेगी कि जब तुम्हारे भीतर सब बदल गया हो, तब उनके साथ कैसे जीना जिनके भीतर कुछ भी नहीं बदला है। ऐसा ही समझो कि पागलखाने में एक आदमी जिए जो पागल नहीं है। उसकी अड़चन समझो। उसे बड़ी व्यवस्था रखनी पड़ेगी। उसे कम से कम इतना दिखावा जारी रखना पड़ेगा कि मैं भी भाई पागल हूं, तुम्हारे जैसा ही हूं। भीतर एक हो जाएगा और बाहर एक अभिनय करना होगा। ठीक संन्यासी सम्यकरूपेण अभिनय की कला में कुशल हो जाते हैं। अभिनय का मतलब, नाहक दूसरों को क्यों दुख देना? जो सोए हैं और जो अभी सोए रहने का निर्णय किए हैं, उनकी नींद अकारण नहीं तोड़ देनी है। किसी को यह हक नहीं है। उन्हें सोने दो। जब उनका समय पकेगा तब वे जागेंगे। उनके झूठों को भी नाहक उनकी मर्जी के विपरीत उन्हें दिखलाओ मत, अन्यथा वे नाराज हो जाएंगे, अन्यथा वे तुमसे बदला लेंगे, प्रतिशोध लेंगे।
ये बड़ी कठिनाइयाँ हैं। पहले तो अपने सपने गए, जो-जो सुंदर था वह गया,
और फिर आया सत्य, और सत्य के साथ फिर अपने को बदलना पड़ेगा।
एक खुद्दार आदमी का जमीर
वक्त से कब शिकस्त खाता है
यह दिया हादसों की आंधी में
और शिद्भदत से जगमगाता है
बड़ी हिम्मत चाहिए। बड़ी स्वतंत्रता चाहिए। बड़ा साहस चाहिए। "एक खुद्भदार आदमी का जमीर"--बड़ा मजबूत अंतःकरण चाहिए। एक केंद्रित चेतना चाहिए। एक श्रद्धा चाहिए स्वयं के अस्तित्व पर।
एक खुद्दार आदमी का जमीर
वक्त से कब शिकस्त खाता है
तभी तुम जीत सकोगे, नहीं तो समय तुम्हें हरा देगा। "यह दिया हादसों की आंधी में", अगर भीतर श्रद्धा का बल हो, आत्मबल हो, तो फिर यह दिया आंधियों से बुझता नहीं; यह दिया हादसों की आंधी में--आपदाओं की आंधी में--और शिद्दत से जगमगाता है--और तेजी से जगमगाता है। तुम डरते हो कि पता नहीं यह दिया बुझ न जाए। नहीं, हिम्मत जुड़ाओ; जागो, खोलो आंख, जाने दो सपनों को--सपने हों तो भी किसी काम के नहीं; जितनी देर सपनों में रहे, उतना समय व्यर्थ गया, झूठी कल्पनाजाल से कुछ हित होने का नहीं है--जागो! और सत्य के साथ अड़चनें आएंगी, कठिनाइयां आएंगी, चुनौतियां आएंगी। मगर घबड़ाओ मत--
यह दिया हादसों की आंधी में
और शिद्दत से जगमगाता है
और नई रौनक आएगी। धार आएगी तुम्हारे दीये पर। सब आँधियाँ उपद्रव की तुम्हें और निखारेंगी, तुम और जगमगाओगे।
शमा की लौ में उभर आई हैं जुल्मत की रगें
बदले लेने पै हैं आमादा पतंगों की कतार
कितने अल्हड़ यह सिपाही हैं, कि डरते ही नहीं
मरते जाते हैं मगर हैं, कि चले आते हैं
जम के मैदां से कदम उनके उखड़ते ही नहीं
जिंदगी के नये अंदाज बता जाते हैं
आग को आग समझते नहीं, हटते ही नहीं
अपनी लाशों से बना देते हैं, शोले का मजार ताकि वो नस्लें जो कल आएंगी महफूज रहें

पतंगों से सीखो। सत्य का खोजी पतंगा है। रोशनी की तलाश में चला है। मौत घटेगी रोशनी के मार्ग पर।
शमा की लौ में उभर आई हैं जुल्मत की रगें
बदले लेने पै हैं आमादा पतंगों की कतार
देखा है पतंगों को मरते शमा पर? दीये के पास ऐसा कुछ नहीं हो जाता कि
एक पतंगा मर गया, तो दूसरा पतंगा रुक जाए। कतार चली आती है।
बदले लेने पै हैं आमादा पतंगों की कतार
कितने अल्हड़ यह सिपाही हैं, कि डरते ही नहीं
मरते जाते हैं मगर हैं, कि चले आते हैं
जम के मैदां से कदम उनके उखड़ते ही नहीं
आग को आग समझते नहीं, हटते ही नहीं
ऐसी ही साहस की क्षमता चाहिए, ऐसे ही जमना पड़ेगा, ऐसे ही लड़ना पड़ेगा। संन्यास का अर्थ हैः रोशनी की तलाश में पतंगे की तरह अपने को गंवाने की हिम्मत। यह सौदा महंगा सौदा है। यह जुआरियों का सौदा है। तुम आंख खोलने से डरते हो? सभी डरते हैं। इससे आत्मनिंदा मत लेना। लेकिन डरके रुकने की जरूरत नहीं है। चुनौती बनाओ इसे। आंख खोलो। जैसा है उसे वैसा ही देखो, तो ही तुम्हारे जीवन में आनंद की वर्षा हो सकती है। सत्य के अतिरिक्त न कभी आनंद फला है, न फल सकता है।

तीसरा प्रश्नः इस सृष्टि में अनेक प्राणी प्रकृति के अनुसार सहज जीवन बिता रहे हैं लेकिन मानव-जाति निकृष्ट जीवन बीता रही है। मनुष्य जीवन सहज जीवन की ओर मुड़ेगा या नहीं? हमारा कर्तव्य क्या है?

मनुष्य का दुर्भाग्य भी यही है और सौभाग्य भी यही कि वह सहज नहीं है। दुर्भाग्य इसलिए कि पौधों को, पक्षियों को जो शांति और शकून उपलब्ध है, वह आदमी को उपलब्ध नहीं। सौभाग्य इसलिए कि आदमी चाहे तो बुद्ध बने, कृष्ण बने, क्राइस्ट बने। पौधे और पशु-पक्षी कृष्ण, बुद्ध और क्राइस्ट नहीं बन सकते।
मनुष्य का महत्त्वपूर्ण लक्षण उसकी स्वतंत्रता है। मनुष्य हकदार है चुनने का अपनी जीवन-व्यवस्था को। एक कुत्ता कुत्ते की तरह पैदा होता है और कुत्ते की तरह ही मरता है। एक गुलाब का पौधा गुलाब की तरह पैदा होता है और गुलाब की तरह ही मरता है। कोई क्रांति नहीं घटती जीवन में। जीवन वैसे का ही वैसा, ढांचे में बंधा होता है। एक परतंत्रता है। शांति तो जरूर है, लेकिन गुलामी की शांति है। स्वाभाविकता भी जरूर है; कपट नहीं, पाखंड नहीं, गुलाब बस गुलाब है, चंपा होने का कभी धोखा नहीं देता और न कमल होने का आयोजन करता ह, जो है, जैसा है, राजी है। पर यह स्वतंत्रता नहीं है। गुलाब गुलाब होने को बँधा है।
आदमी की खूबी क्या है? आदमी का लक्षण क्या है? इस सारी प्रकृति में आदमी अकेला ही है जिसके यह क्षमता के भीतर है कि जो चाहे हो जाए। चाहे तो गुलाब जैसा सुंदर, और चाहे तो बबूल का झाड़ हो जाए। चाहे तो कांटे ही कांटे उगा ले और चाहे तो फूल ही फूल हो जाए। चाहे तो घास ही रह जाए और चाहे तो कमल हो जाए। यह आदमी की खूबी है। आदमी स्वतंत्र है, तरल है, मुक्त है। आदमी के पास आत्मा है, आदमी चुनाव कर सकता है। अधिक लोग गलत चुनाव करते हैं, इससे चुनावे करने की क्षमता की निंदा नहीं होती। कुछ थोड़े से लोग ही ठीक को चुनते हैं। क्योंकि ठीक को चुनना कुछ कठिन मालूम होता है।
नीचे उतरना सदा आसान है। जैसे पहाड़ से कोई उतरता हो। इसलिए आदमी नीचे
की तरफ उतरने में आसानी पाता है। वृत्तियां नीचे की तरफ उतरना है, विवेक ऊपर की तरफ चढ़ना है। बेहोशी नीचे की तरफ उतरना है, होश ऊपर की तरफ चढ़ना है। पहाड़ पर चढ़ने में अड़चन तो होती है, पसीना तो आता है, हाथ-पैर थक जाते हैं, शरीर टूटता है, मगर जो शिखर पर पहुंचते हैं वे ही शिखर पर होने का आनंद जानते हैं। नीचे उतरना सुगम है, लेकिन पहुंचोगे आंधियों की घाटी में। ऊपर चढ़ना कठिन है, लेकिन सूरज से मुलाकात होगी, बादलों से आलिंगन होगा, मुक्त और निर्मल आकाश उपलब्ध होगा। महंगा तो है, लेकिन परिणाम अदभुत है।

आदमी जैसा होना चाहिए वैसा पैदा नहीं हुआ है। आदमी को स्वतंत्रता है वैसा होने की। या चाहे, न होना हो तो न होने की। इसलिए एक क्षण में भी कभी- कभी क्रांति हो जाती है। नीचे जाता हुआ आदमी कभी एक क्षण में पुकार सुन लेता है ऊपर जाते किसी आदमी की, या पहाड़ की चोटी से, शिखर से आते हुए किसी बुद्ध-पुरुष की वाणी उसके कान में पड़ जाती है, एक क्षण में क्रांति हो जाती है। क्योंकि मामला इतना ही है। कुछ ऐसा नहीं है कि नीचे जाने के लिए हम बँधे हैं, हमने चुना है इसलिए नीचे जा रहे हैं। जिस क्षण तय कर लेंगे कि अब नीचे नहीं जाना है, कोई दुनिया की ताकत हमें नीचे नहीं ले जा सकती।
तुमने पूछा कि इस सृष्टि में अनेक प्राणी हैं जो प्रकृति के अनुसार सहज जीवन बिता रहे हैं, लेकिन मानव-जाति निकृष्ट जीवन बिता रही है। क्योंकि मनुष्य-जाति स्वतंत्र है। और वे प्राणी स्वतंत्र नहीं हैं। सुकरात का प्रसिद्ध वचन है कि मैं संतुष्ट सुअर होने के बजाय असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करूंगा। ठीक है, संतुष्ट सुअर आखिर सुअर है। असंतुष्ट सुकरात आखिर सुकरात है। सिर्फ संतोष में ही तो सब कुछ नहीं है। संतोष सचेत होना चाहिए, तब कुछ है।
शांति अनिवार्य हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। जब शांति अनिवार्य नहीं है, स्वेच्छा से है, चुनी हुई है, तब उसका मूल्य है। तुम्हें गीत मजबूरी में गाना पड़े--कोयल ऐसे ही तो गाती है, मजबूरी में; इसलिए कोयल कभी बैजू बावरा हो पाएगी, यह मत सोचना। कभी नहीं हो पाएगी। मजबूरी है, यंत्रवत है, गाना ही पड़ता है। फिर कोयल वही गीत गाती रही है, करोड़ों-करोड़ों वर्षों से, कहीं कोई विकास नहीं होता, आदमी अकेला विकासमान है। देखते हो, करोड़ वर्ष पहले भी कोयल यही गीत गाती थी, यही धुन, यही सुर, यही रंग, यही राग अब भी वही गाती है, आगे भी वही गाएगी, यह पुनरुक्ति है। आदमी अपने गीत को बदलता है, अपने तरन्नुम को बदलता है। आदमी ऊंचाइयों की तलाश करता है। हालांकि यह सच भी है कि ऊंचाइयों की तलाश की स्वतंत्रता के कारण आदमियों को नीचे गिर जाने की भी सुविधा है। तो कोई आदमी बुद्ध हो जाता है, कोई आदमी एडोल्फ हिटलर हो जाता है। मगर मैं तुमसे कहूंगा, एडोल्फ हिटलर जिस क्षण चाहे उस क्षण बुद्ध हो सकता है। कोई रुकावट नहीं है। अपना ही निर्णय है। निजी निर्णय है। इस निजी निर्णय को जगाओ।
सहज तो होना है, लेकिन सहज होना है सचेत होकर, अनिवार्यरूपेण नहीं। स्वतंत्रता का फल होना चाहिए सहजता। बुद्ध भी सहज हैं लेकिन यह सहजता और है। यह सहजता वही नहीं जो गुलाब के फूल की है। यह मजबूरी नहीं है, यह बंधन नहीं है। गुलाब का फूल तो बँधा है, जंजीरों में बंधा है। जरा गौर से देखना, कितना ही सुंदर हो लेकिन हाथ पर जंजीरें हैं। कुछ और नहीं हो सकता। सब तरफ से सीमित है। बुद्ध अपने निर्णय से खिले हैं। जो भी फूल पैदा हुआ है बुद्ध में, वह खुद का ही निर्णय, खुद का ही श्रम, खुद की ही साधना का परिणाम है। अपूर्व आनंद है वहां!
पूछा तुमने, मनुष्य सहज जीवन की ओर मुड़ेगा या नहीं? तुम मनुष्य की फिकर छोड़ो। तुम अपनी फिकर लो। मनुष्य का तो कौन निर्णय करे? स्वतंत्रता तो अनिर्णीत ही रहेगी, निर्णय नहीं हो सकता। हां, तुम चाहो तो अपने लिए निर्णय ले सकते हो। मैं अपने लिए निर्णय लिया हूं, तुम अपने लिए निर्णय ले सकते हो। प्रत्येक व्यक्ति को निजी निर्णय करना है और निज घोषणा करनी है। तुम मनुष्य की फिकर छोड़ो; मनुष्य यानी कौन? तुम्हें मनुष्य कहीं मिलेगा? मनुष्य कहीं नहीं मिलेगा। कहीं अ मिलेगा, कहीं ब मिलेगा, कहीं स मिलेगा, मनुष्य कहीं नहीं मिलेगा। कहीं राम मिलेंगे, कहीं रहीम मिलेंगे, मनुष्य कहीं नहीं मिलेगा। मनुष्य होते ही नहीं। मनुष्य तो केवल एक शब्दिक सिद्धांत है। तो तुम जब पूछते हो कभी मनुष्य स्वतंत्र होगा कि नहीं, तो तुम गलत बात पूछते हो। तुम तो इस तरह की बात पूछ रहे हो कि कभी ऐसी मजबूरी आ जाएगी मनुष्य पर कि वह असहज न हो सके। वह तो मनुष्य की हत्या होगी। वह तो मनुष्य की सारी गरिमा खो जाएगी। नहीं, मनुष्य को हक सदा रहेगा कि वह चाहे तो तैमूरलंग हो, चाहे तो दादू हो जाए, चाहे तो प्रेम के आकाश में उठे और चाहे तो घृणा के पाताल में खो जाए।

मनुष्य एक सीढ़ी है। और सीढ़ी हमेशा दो दिशाओं में होती है--नीचे की तरफ
भी होती है, ऊपर की तरफ भी होती है। वही सीढ़ी जिससे तुम नीचे जाते हो, उसी से तुम ऊपर जाते हो। अब तुम अगर यह कहो कि क्या कभी ऐसी भी सीढ़ी होगी जो सिर्फ ऊपर ही जाए, तो तुम गलत बात पूछ रहे हो। जो सीढ़ी सिर्फ ऊपर ही जाती है, वही सीढ़ी नहीं है! सीढ़ी को दोनों तरफ जाना होता है--ऊपर भी, नीचे भी। हां तुम्हारी मर्जी है, तुम चाहो ऊपर चढ़ो, तुम चाहो नीचे जाओ। इसलिए धर्म व्यक्ति का मूल्य मानता है, समाज का कोई मूल्य नहीं मानता। धर्म वैयक्तिक है, सामाजिक नहीं।
और यह आकस्मिक नहीं है कि जो लोग समाज का बहुत मूल्य मानते हैं, वे सभी धर्म के विपरीत हैं। कम्युनिस्ट, फासिस्ट, सोशलिस्ट और उस तरह के मार्के के सारे लोग धर्म के विपरीत हैं। होंगे ही, क्योंकि बुनियादी भेद है। वे मनुष्य को समाज की तरह स्वीकार करते हैं, वे व्यक्ति की कोई गरिमा नहीं मानते। और इसलिए वे सभी स्वतंत्रता के विपरीत हैं, विरोधी हैं। अगर रूस में स्वतंत्रता मर गई है और चीन में मर गई है, तो यह कोई दुर्घटना नहीं है, यह साम्यवाद का सहज परिणाम है। साम्यवाद व्यक्ति को मानता ही नहीं। साम्यवाद कहता है--समाज की नियति होती है, व्यक्ति की कोई नियति नहीं होती। व्यक्ति होता ही नहीं। व्यक्ति तो केवल समाज का एक अंग है। अंग मात्र।
धर्म की देशना और है। धर्म का मानना है--व्यक्ति आधार है। समाज तो व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। समाज के पास कोई आत्मा नहीं है। समाज तो निर्जीव शब्द है, कोरा शब्द है। ऐसा ही जैसे जब तुम कहते हो--जंगल। जंगल कहीं देखा? जाओ, खोजो, जंगल कभी नहीं मिलेगा, मिलेंगे वृक्ष। वृक्ष होते हैं, जंगल नहीं होता, बहुत वृक्ष साथ होते हैं तो उसका नाम--जंगल। यहां तुम बैठे हो इतने लोग--पांच सौ मित्र यहां बैठे हैं--एक समूह यहां बैठा है। तुम सोचते हो सच में कोई समूह यहां बैठा है? यहां पांच सौ व्यक्ति बैठे हैं, समूह इत्यादि का कोई अर्थ नहीं होता। तुम तुम हो, तुम्हारा पड़ोसी, पड़ोसी है। यहां पांच सौ जीवंत चेतनाएं बैठी हैं, यहां पांच सौ दीये जल रहे हैं-- अलग-अलग, अपनी-अपनी रोशनी से, अपने-अपने ढंग से। और मनुष्य का यह अनिवार्य लक्षण है कि वह जो चाहे हो सकता है--निम्न से निम्नतम और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम।
यह बात सच है कि मनुष्य अगर गिरे तो पशुओं से बहुत नीचे गिर जाता है और मनुष्य अगर उठे तो देवताओं से बहुत ऊपर उठ जाता है। देवता भी बँधे हैं, जैसे पशु बँधे हैं। इसलिए भारत के मनीषियों ने एक अपूर्व बात कही है कि अगर देवताओं को भी मोक्ष चाहिए हो तो पहले मनुष्य होना पड़ेगा। मनुष्य दोराहा है। पशुओं को मुक्त होना हो तो मनुष्य होना पड़ेगा और देवताओं को मुक्त होना हो तो मनुष्य होना पड़ेगा। क्यों? क्योंकि देवता तो बड़े ऊपर गए हुए हैं? ऊपर तो गए हुए हैं, लेकिन देवता शुभ करने को मजबूर हैं। वहां स्वतंत्रता नहीं है। वहां सुख अनिवार्य है। वहां रोशनी जबर्दस्ती है, उनका चुनाव नहीं है। उन्हें चौराहे पर लौटना पड़ेगा, जहां से सब रास्ते खुलते हैं।
आदमी चौराहा है, जहां से सब रास्ते खुलते हैं। इसलिए आदमी अगर नीचे गिरे तो कोई पशु उसका मुकाबला नहीं कर सकता। जंगली से जंगली जानवर भी आदमी का मुकाबला नहीं कर सकते। कोई जंगली जानवर जब भर-पेट हो तो किसी को मारता नहीं। भूखा हो तो मारता है! आदमी बड़ा अजीब है। जब भरे-पेट होता है तब शिकार को निकलता है। कोई पशु अपनी ही जाति के प्राणियों को नहीं मारता--कोई सिंह सिंह को नहीं मारता, कोई कुत्ता किसी कुत्ते को नहीं मारता है--अकेला आदमी है जो आदमी को मारता है। और खूब मारता है। और बड़े आयोजन से मारता है। और बड़े झंडे इत्यादि उठा कर और बड़े दर्शनशास्त्र खड़े करके मारता है। और इस ढंग से मारता है कि लगे कि कोई बड़ा काम कर रहा है। हो रहा है कुल मारा जाना, लेकिन ऊंचे-ऊंचे नाम--कभी धर्म की आड़, कभी राजनीति की आड़, कभी देश की आड़, कभी स्वतंत्रता की आड़; कभी लोकतंत्र, कभी समाजवाद, न मालूम कैसे-कैसे शब्द, ऊंचे-ऊंचे शब्द, और आकर पीछे गौर से अगर देखो तो आदमी आदमी को मारने में

लगा हुआ है। शांति की बातें करता है, युद्ध की तैयारी करता है। कहता है-- शांति होगी कैसे अगर युद्ध के अस्त्र-शस्त्र पास में नहीं होंगे।
आदमी का पूरा इतिहास युद्धों का इतिहास है। पशु-पक्षी तो कभी मार लेते हैं जब उन्हें भूख लगी होती है। आदमी का मारना जघन्य है, अपराधपूर्ण है, पाप है। आदमी पशुओं से नीचे गिरता है, लेकिन देवताओं से ऊपर भी उठ जाता है। ये कथाएं व्यर्थ ही नहीं हैं कि जब बुद्ध को ज्ञान उत्पन्न हुआ तो देवता स्वर्ग से उतरे और उन्होंने फूल बरसाए। ऐसा वस्तुतः हुआ कि नहीं, यह सवाल नहीं है, ये कोई ऐतिहासिक घटनाएं नहीं है, ये तो प्रतीक कथाएं हैं। ये यह कह रही हैं कि जब कोई आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो देवता छोटे पड़ जाते हैं। बस उनका काम फूल बरसाने का रह जाता है। बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए तो देवता उनके चरणों में आकर झुके। उनके चरणों की धूल सिर पर चढ़ाई। बुद्धत्व देवत्व से ऊपर है। आदमी की सहजता जबरदस्ती आने वाली बात नहीं है। आदमी सदा मुक्त रहेगा। इसलिए यह तो मत पूछो कि मनुष्य कभी सहज जीवन की ओर मुड़ेगा कि नहीं? एक-एक व्यक्ति अपना-अपना निर्णय ले सकता है। और फिर तुमने पूछा है--हमारा कर्तव्य क्या है? कर्तव्य ही तो असहज कर देता है। कर्तव्य का मतलब ही यह होता है... कोई पशु ने कभी पूछा है हमारा कर्तव्य क्या है? पशुओं को जो होता है हो रहा है, का कोई सवाल नहीं।ं आदमी पूछता है हमारा कर्तव्य क्या है? उसी कर्तव्य में स्वतंत्रता छिपी है। हम क्या करें? क्योंकि आदमी दोनों काम कर सकता है--बुरा भी और अच्छा भी। मेरा जोर इस पर नहीं है कि तुम अच्छा काम करो, क्योंकि यह होता है, अक्सर हुआ है कि अच्छा काम करने में भी तुम मूर्छित रहे आते हो। तो तुम्हारा अच्छा काम भी यंत्रवत हो जाता है। मेरा जोर कर्तव्य पर नहीं है, मेरा जोर बोध पर है। तुम जो भी करो, बोधपूर्वक करो। वही एकमात्र कर्तव्य है। बुरा भी करो तो बोधपूर्वक करो। और तुम चकित हो जाओगे कि बुरा हो ही नहीं सकेगा। चोरी करने जाओ, बोधपूर्वक जाओ; ऐसे जाओ जैसे विपस्सना ध्यान कर रहे हो; और तुम चोरी नहीं कर पाओगे। तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि चोरी मत करो--क्योंकि एक तरफ से चोरी रोको, आदमी दूसरी तरफ से करता है। इधर से रोको, उधर से करता है; आदमी नई तरकीबें निकाल लेता है। आदमी तरकीबें निकालने में कुशल है, कोई न कोई रास्ता निकाल लेता है, कि चोरी हो सकती हो और चोरी पकड़ी न जाए और चोरी चोरी न मालूम पड़े।
एक तरफ से चोरी रोको, दूसरी तरफ से शुरू हो जाती है। आदमी को कहो यह काम बुरा है, तो वह वह काम बंद कर देता है, मगर उसके भीतर की चेतना तो नहीं बदली, वही का वही आदमी है, कहीं और करेगा। देखा तुमने, महावीर ने कहा कि खेती-बाड़ी में हिंसा है। तो जैनियों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी। लेकिन इससे क्या तुम सोचते हो जैन हिंसक नहीं रहे? खेती-बाड़ी की हिंसा नहीं रही, मगर उनकी हिंसा दुकान पर शुरू हो गई। बाजार में बैठ गए, वही हिंसा और शायद ज्यादा बढ़ गई। क्योंकि अब एक उनको आड़ भी मिल गई धर्म की।
तुम्हें पता है कि जैन-धर्म के मानने वाले सभी व्यवसाई क्यों हैं? वह इसीलिए कि कृषि का तो उपाय नहीं रहा। अगर तुम खेत बनाओगे, पौधे काटोगे, तो हिंसा होगी। मगर काटने की वृत्ति तो थी, तो दुकान पर बैठ कर आदमियों को काटने लगे। बचाव इतना आसान नहीं है। इधर से रोको, उधर शुरू हो जाता है। एक तरफ से बीमारी को रोको, दूसरी तरफ से प्रकट हो जाती है। दबाने से काम नहीं चलेगा। तुम मुझसे कर्तव्य मत पूछो। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम ऐसा करो, वैसा करो, क्योंकि मजबूरी हो जाएगी, जबरदस्ती थोप लोगे। मैं तुमसे कहता हूंः जो भी करो होशपूर्वक करो।
ऐसा हुआ किएक बौद्ध भिक्षु रास्ते से गुजरता था और एक वेश्या ने उसके जाकर चरणों में सिर रख दिया और कहाः मेरा निवेदन है कि इस वर्ष चातुर्मास, वर्षाकाल मेंरे घर में बिताएं। और भी भिक्षु साथ थे। यह भिक्षु अति सुंदर था, वेश्या मोहित हो गई थी। उसने सम्राट देखे थे, मगर ऐसा प्यारा भिक्षु नहीं देखा था। ऐसा आदमी ही नहीं देखा था। यह शान ही कुछ और थी! अक्सर ऐसा हो जाता है। संन्यास एक तरह की गरिमा देता है, एक तरह का सौंदर्य देता है, एक तरह की दीप्ति जो साधारणतः नहीं पाई जाती, एक प्रसाद। वेश्या पहचान गई सौंदर्य को--सौंदर्य की उसकी परख थी। सौंदर्य ही उसका व्यवसाय था। इस

सुंदरतम आदमी को देखकर वह नहीं रोक सकी अपने को। उसने चरणों में सिर रख दिया और उसने कहा कि मैं हटूंगी नहीं। मुझे आश्वासन दो इस वर्ष चार माह वर्षा के तुम मेरे यहां बिताओगे। वर्षा सर पर थी, आसाढ़ के पहले बादल घिरने शुरू हो गए थे--और भिक्षुओं का नियम है कि वे चार महीने वर्षा के कहीं एक जगह रुक जाएं। उसने कहा--मैं कल भगवान को पूछकर उत्तर दे दूंगा।
दूसरे भिक्षु जो खड़े देख रहे थे, ईर्ष्या से जल गए। वेश्या अपूर्व सुंदरी थी। दूर-दूर तक ख्यातिलब्ध थी। बड़े सम्राट उसके द्वार पर खड़े रहते थे। ईर्ष्या जग गई। वासना भी जगी, ईर्ष्या भी जगी, और उनके पैर नहीं छुए, और उनको निमंत्रण नहीं दिया, इस आदमी के प्रति जलन भी उठी--यह सब इकट्ठा हो गया और साथ में धर्म की आड़ भी मिली। वह सामने जाकर बुद्ध को कहा कि वेश्या ने निवेदन किया और इस भिक्षु ने इंकार नहीं किया। यह कर्तव्य से च्युत हो गया। इसे साफ कहना चाहिए था कि मैं वेश्या के घर में नहीं ठहर सकता। क्योंकि आपने तो स्त्री तक को छूने को मना किया है और इसने वेश्या को भी पैर छूने दिए। इसे निष्कासित किया जाए। इसे संघ से बाहर किया जाए।
बुद्ध हंसे, और बुद्ध ने कहाः इसने कहा क्या? तो उन्होंने कहा इसने इतना ही कहा कि मैं भगवान से पूछ कर कल उत्तर दूंगा। बुद्ध ने उस भिक्षु को खड़ा किया, उस भिक्षु को देखा एक क्षण और कहा कि तुझे आज्ञा है तू चार महीने वेश्या के घर रुक सकता है। उस भिक्षु ने सिर झुकाया और कहाः मेरे लिए कोई कर्तव्य निर्देश? बुद्ध ने कहाः बस होश रखना।
और चार महीने अपूर्व होश के थे!
चार महीने बाद जब भिक्षु वापस लौटा तो उसके साथ वेश्या भी वापिस आई। भिक्षु तो अदभुत रूप से रूपांतरित हो गया था, क्योंकि उसे बहुत होश रखना पड़ा, चौबीस घंटे होश रखना पड़ा, इससे ज्यादा और होश की कोई जगह ही नहीं हो सकती थी। प्रतिपल उत्तेजना थी, प्रतिपल आकर्षण था। चार महीने उसे जाग कर ही रहना पड़ा था। जरा झपकी खाता, जरा सपने में पड़ जाता तो सदा के लिए चूक जाता। उसका बढ़ता हुआ होश, उसकी बढ़ती हुई दीप्ति, उस वेश्या को भी रूपांतरित कर गई। उस वेश्या ने बुद्ध के चरणों में अपना सारा धन रख दिया और कहा कि मुझे दीक्षा दें। मैं तो सोचती थी कि आपके भिक्षु को बदल लूंगी, लेकिन आपके भिक्षु ने मुझे बदल लिया। मैं तो सोचती थी कि आपका भिक्षु आज नहीं कल गिरेगा मेरे चरणों में, लेकिन मुझे उसके चरणों में गिर जाना पड़ा। इतना होश से भरा हुआ आदमी मैंने नहीं देखा है। जो श्वास भी लेता था तो होश से ले रहा था। जिसकी हर क्रिया होशपूर्ण थी।
मैं भी तुमसे यही कहता हूं--अगर तुम्हें सहज जीवन की ओर जाना है, होश
से जिओ। और अगर तुम चाहते हो और लोग भी सहज जीवन की तरफ जाएं, तो तुम होश से जिओ, ताकि तुम्हारे होश की गंध उनको भी लगे, तुम्हारे होश की झलक उन पर भी पड़े। जागरूक होकर जिओ। कर्तव्य को विस्तार में मत पूछो, मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि पानी छान कर पीओ--क्योंकि पानी छान कर पीने वाले लोग खून बिना छाने पी गए हैं--मैं तुमसे नहीं कहूंगा छोटी-छोटी बातें कि इनका तुम विस्तार सम्हालो, क्योंकि वे छोटी-छोटी बातें तो बहुत हैं, उनका कितना विस्तार सँभालोगे, और हर विस्तार में कुछ बातें छूट जाएंगी। शास्त्रों में सब कर्तव्य गिनाए गए हैं, लेकिन कितने गिनाओगे, ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि शास्त्र में कोई कर्तव्य नहीं गिनाया हुआ है।
जीसस ने अपने एक शिष्य से कहा कि अगर कोई तुझे मारे तो उसे क्षमा कर देना। उसने पूछाः कितनी बार? अब क्या उत्तर दोगे? एक बार मारे... शिष्य भी ठीक पूछ रहा है कि कोई सीमा होगी, हर चीज की हद्द होती है... एक बार मारे, कर देंगे क्षमा; कितनी बार मारे तब तक क्षमा करनी है? जीसस ने कहाः सात बार। उसने कहाः ठीक! लेकिन उसने जिस ढंग से ठीक कहा उसका मतलब था कि आठवीं बार देख लेंगे! उसके ठीक कहने में ऐसा ढंग था, कि ठीक है तो फिर देख लेंगे आठवीं बार! और सौ सुनार की एक लोहार की, एक बार में ही ऐसा मजा चखा देंगे कि छठी का दूध याद आ जाए; कि सात बार में जो किया वह एक ही बार में निबटा दूँगा! उसकी आँख में ढंग यह था। जीसस ने कहाः नहीं भाई, सतहत्तर बार। मगर तुम कितना करोगे, अठहत्तर बार! आदमी को अगर विस्तार में बताने चलो तो अड़चन है।

मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर को एक आदमी ने चांटा मारा। नास्तिक था चांटा मारने वाला, और साथ में बाइबिल लेकर आया था, और किताब खोल कर बताई कि देखो लिखा है इसमें कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। उस फकीर ने कहाः मुझे पता है, किताब लाने की कोई जरूरत नहीं थी, यह रहा मेरा दूसरा गाल! उस आदमी ने उस दूसरे गाल पर और करारा चांटा मारा। बस फकीर फिर उस पर टूट पड़ा, उसकी ऐसी मरम्मत की, वह बहुत चिल्लाया-- भई, यह क्या कर रहे हो, जीसस की तो याद करो! उन्होंने कहाः इसके आगे जीसस ने कुछ भी नहीं कहा है। एक गाल पर चांटा मारो, दूसरा कर देना; अब तीसरा तो कोई गाल है नहीं, इसके आगे हम स्वतंत्र हैं।
विस्तार की बातें काम नहीं आतीं। क्योंकि एक सीमा आ जाती है विस्तार की, उसके आगे तुम स्वतंत्र होते हो। यही तुम देखते न रोज, सरकार कितने कानून बनाती है! जितने कानून बनाती है, उतनी ही बेईमानी बढ़ती है। क्योंकि कानून का मतलब होता है, विस्तार में तुम्हें रोकती है कि यह भी मत करना, यह भी मत करना, वह भी मत करना--मगर कितना करोगे? सब बताने के बाद कुछ तो बाकी रह जाता है, जिंदगी बहुत बड़ी है! आदमी वह करके दिखा देता है कि लो, यह हम करके दिखाए देते हैं! जब वह आदमी करके दिखा देता है, तब सरकार को फिर कानून बनाना पड़ता है कि यह मत करना। तुमने देखा, सरकारी ढंग की दस्तावेज इस तरह की होती है, पढ़ने में ही नहीं आती! उसमें इतनी तरकीबें होती हैं, सब तरह की तरकीबें, रोकने के लिए तरकीबें होती हैं--ऐसा मत करना, वैसा मत करना, उसमें कई नियम, उप-नियम, धाराएं, उप-धाराएं, मगर फिर भी जो आदमी को करना है वह कर लेता है। दुनिया में कोई पाप रुका नहीं है; कानून बढ़ते गए हैं, अपराध बढ़ते गए हैं। कानून के बढ़ने से सिर्फ वकील को लाभ होता है, अपराध नहीं रुकते हैं। कानून जब ज्यादा हो जाता है, तो अपराधी को भी अपने विशेषज्ञ रखने पड़ते हैं जो खोज-बीन करते रहें--वे ही वकील हैं। जो खोजबीन करते हैं अपराधी की तरफ से कि तू इस तरह से कर ले, कि यह रही तरकीब, अभी इस पर नियम नहीं बना है, इसके पहले निबटा ले। नियम बढ़ते जाते हैं, बेईमानी बढ़ती चली जाती है। विस्तार में मुझसे मत पूछो कि हम क्या करें? कर्तव्य की पूछो ही मत? मेरा सूत्र सीधा-साफ है एक--होश से जीओ। उस होश से जीने में सब आ जाएगा। अगर जीसस ने कहा होता--जब तुम्हें कोई चांटा मारे तब होश से जीना, तो इस फकीर को उपाय नहीं था बचने का। अगर जीसस ने कहा होता कि कोई तुम्हारा अपमान करे तो होशपूर्वक क्षमा कर देना--सात और सतहत्तर बार का सवाल नहीं है, आदमी बहुत जटिल और बहुत चालाक है, सिर्फ इतना ही कि होशपूर्वक क्षमा कर देना।
होश से जीओ, एक दिया जला कर जीओ। ये विस्तार की बातों के कारण ही धर्म विकृत हुए हैं। इतने विकृत हो गए हैं, नियम ही नियम रह गए हैं। अगर उनको पालते रहो, तो तुम्हारी बुद्धिमत्ता के विकसित होने का समय ही नहीं आएगा। अगर नियमों को ही पालते रहो तो तुम करीब-करीब एक कारागृह के कैदी हो जाते हो। तुम देखो तुम्हारे साधुओं को, कारागृह के कैदी हो जाते हैं! चले हैं स्वतंत्रता को लेने, चले हैं मोक्ष की खोज में, हो गए हैं कारागृह के कैदी। एक-एक छोटी बात का हिसाब चल रहा है, चौबीस घंटे उसी में लग जाते हैं।
एक जैन-मुनि ने मुझसे कहा कि आप कहते हैं ध्यान करो; फुरसत कहां है? नियम-व्यवस्था से, मर्यादा से चलने में फुरसत कहां है? यही दुकानदार कहता है कि फुरसत कहां? यही मुनि कहता है कि फुरसत कहां? तो बड़े मजे की बात हो गई।
दुकानदार तो क्षमा किया जा सकता है कि कहता है--भई, फुरसत कहां है, कब ध्यान करें? लेकिन मुनि भी कह रहा है कि फुरसत कहां। इतने नियम! इतना विस्तार है नियमों का! धर्म को नियम से मुक्त करने की जरूरत है। बस एक ही सीधा सूत्र होना चाहिए।
ऐ "शाद"! रहबरों के रवैय्ये को देख कर
आना पड़ा है राहजनों की पनाह में
ये जो मार्गदर्शक हैं, ये नियम देनेवाले लोग हैं, इनसे लोग इतने पीड़ित
हो गए हैं कि अब तो लुटेरों की शरण में जाना भी ठीक मालूम पड़ता है।
क्या कहूं दिल पै क्या गुजरती है
तेरे कूचे से जब गुजरता हूं

रहजनों का तो कोई खौफ नहीं
रहबरों से मगर मैं डरता हूं
"शाद" अपने लहू की सुर्खी से
आर्जूओं में रंग भरता हूं
"रहजनों का तो कोई खौफ नहीं", लुटेरों का तो कुछ खौफ नहीं है। तुमको लुटेरों ने नहीं लूटा है, "रहबरों से मगर मैं डरता हूं" मगर वह जो मार्गदर्शक हैं, नेता हैं, जो तैयार बैठे हैं तुम्हें नियम देने को--ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा न करना, वैसा न करना--उनसे सावधान रहना! उन्होंने ही तुम्हारे कारागृह निर्मित किए हैं। मैं तुम्हें चरित्र नहीं देता, मैं तुम्हें केवल बोध देता हूं। मैं तुम्हें आचरण नहीं देता, मैं केवल अंतःकरण की जागृति देता हूं। जो भी करो, वेश्या के घर भी ठहरना पड़े तो घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है, ठहर जाना, होश कायम रखना। यह श्रेष्ठतम धर्म है।
बुद्ध का एक भिक्षु यात्रा पर जा रहा था। उसने पूछाः मेरे लिए कोई आदेश? बहुत निम्न वृत्ति का भिक्षु रहा होगा, क्योंकि बुद्ध ने जो आदेश दिया वह बुद्ध-जैसा नहीं है। अभी तुमने कहानी सुनी न, वेश्या के घर जाते भिक्षु को कहा--होश रखना। यह बुद्ध-जैसा आदेश है। इस युवक ने पूछा कि मैं यात्रा पर जा रहा हूं, मेरे लिए कोई निर्देश? मार्ग के लिए कोई सूचनाएं-- क्या करूं, क्या न करूं। बुद्ध ने कहाः स्त्रियों को छूना मत। देखना मत। राह पर स्त्री दिखाई पड़ जाए, आंख नीची कर लेना। उस भिक्षु ने पूछाः लेकिन कभी ऐसा भी हो सकता है कि स्त्री को देखना ही पड़ जाए; मजबूरी हो; तो उस हालत में क्या करना? तो बुद्ध ने कहाः छूना मत। उस भिक्षु ने पूछा और यह भी हो सकता है कि किसी मजबूरी में छूना पड़ जाए। समझ लो कि एक स्त्री गिर पड़ी--पैर फिसल गया--और मैं पीछे हूं, क्या उसको हाथ का सहारा न दूं? तो बुद्ध ने कहाः अगर छूना ही पड़े तो छू लेना, मगर होश रखना। देखना मत, पहले कहा। फिर अगर मजबूरी आ जाए तो कहा कि ठीक है, देख लेना। फिर कहाः छूना मत। मजबूरी आ जाए तो कहा छू लेना। फिर आखिरी सूत्र दिया कि होश रखना। उस आदमी ने कहा कि और अगर ऐसी मजबूरी आ जाए कि होश न रख सकूं, तो बुद्ध ने कहा फिर जाने की जरूरत ही नहीं। ऐसी मजबूरी आनी ही नहीं चाहिए। फिर तो तू सिर्फ रास्ते खोज रहा है। फिर मजबूरियों के बहाने खोज रहा है। निम्नवृत्ति का आदमी रहा होगा। अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हारे धर्म के नियम निम्न से निम्न वृत्ति को ध्यान में रखकर बनाने पड़ते हैं। इसी कारण बड़े छोटे होते हैं, ओछे होते हैं, संकीर्ण होते हैं। और इसी कारण श्रेष्ठ व्यक्तियों को कोई भी धर्म अपने भीतर नहीं समा पाते। बुद्ध पैदा हुए, हिंदू उन्हें अपने भीतर न समा पाए। क्योंकि वे जीएंगे ऊपर से और धर्म के नियम बने हैं आखिरी आदमी के लिए, निम्नतम के लिए--इसमें बड़ा फासला हो गया। यहूदी जीसस को न समा पाए। मुसलमान मंसूर को न समा पाए। धर्म की तथाकथित व्यवस्था अंतिम आदमी को देख कर बनी है, निकृष्टतम आदमी को देखकर बनी है। और धर्म का अनुभव श्रेष्ठतम के लिए है। तो जब भी श्रेष्ठतम आदमी पैदा होगा, तब परंपरागत धर्म उसके विपरीत हो जाएगा।
मैं तुम्हें कोई कर्तव्य नहीं देता। इतना ही कहता हूंः जागो, जाग कर जीओ। जागरण न छूटे, होश न खोए। हाथ में होश का धागा बना रहे। फिर सब सध जाएगा। इस एक के साधने से सब सध जाता है। इस एक के खो जाने से सब खो जाता है।

आखिरी प्रश्न: मैं आदमी को प्रेम करता हूं। लेकिन परमात्मा से मेरा कोई लगाव है, इसका मुझे पता नहीं। क्या मैं पाप के रास्ते पर हूं?

नहीं, तुम ही पुण्य के रास्ते पर हो। परमात्मा का पता नहीं, प्रेम करोगे भी कैसे? आदमी से प्रेम करो। उस प्रेम की गहराई में उतरो। उसी गहराई में परमात्मा की झलकें मिलनी शुरू होंगी। और कहां खोजोगे? मंदिरों में थोड़े ही छिपा है। मनुष्यों में छिपा है, चेतनाओं में छिपा है। पत्थरों में थोड़े ही खोदकर उसे पाओगे? आदमी के हृदय में।

बता दो आबिदाने-बे-अमल को
खुदा उकता चुका है बंदगी से
खुदा से क्या मुहब्बत कर सकेगा
जिसे नफरत है उसके आदमी से
और तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें अब तक आदमी से नफरत सिखाई है। इसी के कारण पृथ्वी पर धर्म की बातें बहुत होती हैं, बहुत धर्म भी हैं और धर्म बिल्कुल नहीं है। यह बंदगी हो चुकी व्यर्थ। यह बंदगी काम नहीं आई। और परमात्मा भी इस बंदगी से बहुत थक चुका है। तुम आदमी को ही प्रेम करो। मैं तुमसे कहता हूंः तुम ठीक रास्ते पर हो। हालांकि तुम्हारे धर्मगुरु कहेंगे--तुम गलत रास्ते पर हो। आदमी को प्रेम? परमात्मा को प्रेम करो। और परमात्मा का तुम्हें पता नहीं, कैसे प्रेम करोगे? लेकिन अगर परमात्मा के बनाए हुए से तुम्हारा प्रेम हो जाए, तो कितनी देर परमात्मा से दूर रहोगे? अगर तुम्हारे प्राणों में संगीत से प्रेम हो जाए, तो उसी संगीत के रास्ते पर खोजते-खोजते तुम संगीत के स्रोत तक पहुंच जाओगे, संगीत को जन्म देने वाले के पास पहुंच जाओगे। अगर फूल से प्रेम हो, तो कितनी देर तुम रुके रहोगे, कभी न कभी वे अंगुलियां तुम्हें कहीं न कहीं मिल जाएंगी जिन्होंने फूलों में रंग भरा है। सूरज से प्रेम हो तो इन्हीं किरणों में तुम कभी और छिपी हुई किरणों को भी खोज लोगे।
आदमी इस जगत में सर्वश्रेष्ठ फूल है। क्योंकि स्वतंत्रता का फूल है। खूब करो आदमी को प्रेम। और परमात्मा की बात ही मत उठाओ। एक दिन तुम अचानक पाओगे कि आदमी प्रेम में ही परमात्मा खो गया। आदमी खो गया और मिल भी गया। यह खोना और मिलना एकसाथ घट जाता है। यह विरोधाभास एक साथ घटता है।
हमको मारा तेरी इनायत ने
सबको तेरे अताब ने मारा
डर रहा था गुनाह से लेकिन
आदमी को सबाब ने मारा
आदमी को तथाकथित पुण्यों ने मारा है, पाप ने नहीं। तुम पाप-पुण्य की पुरानी परिभाषा पर मत अटके रहो। मैं तुम्हें नई परिभाषा देता हूं, नई दृष्टि देता हूं। प्रेम पुण्य है। अ-प्रेम पाप है। तुम प्रेम करो। जिससे कर सको उससे करो। इतना ही ख्याल रखो कि प्रेम कहीं रुके न, अटके न, धारा बहती रहे; गंगा कहीं ठहरे न, तो सागर तक पहुंच जाएगी। बस प्रेम का बांध मत बनाना कहीं। पत्नी से प्रेम करो, खूब करो, पति से, बच्चों से, मां से, पिता से, मित्रों से, मगर यह मत सोचना कि बस प्रेम यहीं समाप्त हो गया। बांध मत बनाना। पत्नी से प्रेम करो, पति से प्रेम करो, बेटे से प्रेम करो, मां से प्रेम करो, मित्र से प्रेम करो और प्रेम को बहने दो, हर प्रेम-पात्र के भीतर से और आगे जाने दो, और तुम पाओगे सभी प्रेमपात्रों में वही एक प्रेमपात्र छिपा है। सभी आंखों में उसकी चमक है। सभी चेहरों पर उसी का रंग है। सभी सौंदर्य में वही प्रकट हो रहा है, उसी की अभिव्यक्ति है।
फूल-सा रंगो-बू नहीं लेकिन
फूल-से बढ़ के नर्म तीनत है
इसको नफरत से पायमाल न कर
घास भी गुलिसितां की जीनत है
फूल ही नहीं हैं परमात्मा के, घास भी उसकी है।
"फूल-सा रंगो-बू नहीं लेकिन," माना कि घास में फूल जैसा रंग नहीं, सुगंध नहीं; "फूल से बढ़ के नर्म तीनत है," लेकिन इसका स्वभाव फूल से भी ज्यादा कोमल है। परमात्मा घास में कोमलता की तरह प्रकट हुआ है, बस आंख चाहिए। "इसको नफरत से पायमाल न कर", इसे नष्ट मत कर देना यह समझ कर कि यह घास है, इसमें क्या होगा; "घास भी गुलसितां की जीनत है," वह भी बगिया की शोभा है, रौनक है। यहां क्षुद्र से क्षुद्र में विराट छिपा है। यहां क्षुद्र है ही नहीं। क्षुद्र हमारी नासमझी के कारण है। जैसे-जैसे समझ गहरी होगी, वैसे-वैसे विराट प्रकट होगा।
छलक रही है मएनाब तिश्नगी के लिए
सँवर रही है तेरी बज्म बरहमी के लिए

नहीं-नहीं हमें अब तेरी जुस्तजू भी नहीं तुझे भी भूल गए हम तेरी खुशी के लिए

जहाने-नौ का तसव्वुर हयाते-नौ का ख़याल
बड़े फरेब किए तुमने बंदगी के लिए

कहां के इश्को-मोहब्बत, किधर के हिज्रो विसाल अभी तो लोग तरसते हैं जिंदगी के लिए

जो जुल्मतों में हवीदा हो कल्बे-इंसां से
जियानवाज वह शोला है तीरगी के लिए

न मंजिलों की तमन्ना, न रहगुजर की तलाश
न जाने किस पै भरोसा है, रहबरी के लिए

तेरे जहान की हर दिलकशी सलामत है
मेरी निगाह भटकती है आदमी के लिए
आदमी को खोजो और प्रेम करो। आदमी की खोज में ही तुम धीरे-धीरे उसकी झलकें पाने लगोगे। दुनिया अधार्मिक हो गई, क्योंकि हमें सिखाया गया-- दुनिया को प्रेम मत करना, आदमी को प्रेम मत करना। प्रेम का द्वार बंद हो गया। परमात्मा तक पहुंचने का सेतु टूट गया। मैं तुमसे कहता हूं--खूब करो प्रेम। बस प्रेम का बांध न आए। प्रेम बहता जाए। हर पात्र से ऊपर निकल जाए, आगे निकल जाए; हर पात्र से छलक जाए। यही प्रार्थना है, प्रेम का सदा बहते रहना प्रार्थना है। और बहता प्रेम परमात्मा को निश्चिंत पा लेता है। इसलिए घबड़ाओ मत और यह मत सोचो कि तुमने कोई पाप किया है। यह मत सोचो कि तुमसे कुछ भूल हो रही है, कि तुम धार्मिक नहीं हो। अक्सर ऐसा हो जाता है कि तथाकथित धार्मिक धार्मिक नहीं होते, सिर्फ दिखाई पड़ते हैं। और इससे उल्टी बात भी सच है। जो लोग अधार्मिक मालुम होते हैं, अक्सर अधार्मिक नहीं होते। मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। योरोप का एक बहुत बड़ा ईसाई पुरोहित प्रवचन देने चर्च में गया था। वह बोला तो उसने कहा कि जो लोग पुण्य करते हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश पाएंगे, और जो पाप करते हैं, वे नरक में। और फिर उसने यह भी कहाः जो परमात्मा को याद करते हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश पाएंगे, जो परमात्मा को भूल जाते हैं, वे नरक में। एक आदमी उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहाः आपने मुझे मुश्किल में डाल दिया। मेरे लिए एक सवाल उठ गया। पुरोहित ने सोचा भी नहीं था यह सवाल। जब उठा तब उसे समझ में आया। सवाल जरूर जटिल है।
उस आदमी ने पूछा कि मैं यह पूछना चाहता हूं, आपने कहा जो पुण्य करते हैं वे स्वर्ग में जाएंगे, और जो प्रभु को स्मरण करते हैं वे स्वर्ग में जाएंगे। और जो पाप करते हैं और जो प्रभु को स्मरण नहीं करते, वे नरक जाएंगे। मेरा सवाल यह है कि जो पुण्य करते हैं और प्रभु को स्मरण नहीं करते हैं, वे कहां जाएंगे? और जो प्रभु का स्मरण करते हैं और पाप करते हैं, वे कहां जाएंगे? वह पादरी भी भौंचक्का रह गया। उसे कुछ सूझा नहीं। एकदम सिर घूम गया। क्योंकि अड़चन खड़ी हो गई। अगर वह यह कहे कि जो लोग पुण्य करते हैं और प्रभु को स्मरण नहीं करते, वे भी स्वर्ग जाएंगे, तो सीधा सवाल है-- फिर प्रभु को स्मरण करने की जरूरत क्या है? और जो लोग प्रभु का स्मरण करते हैं और पाप करते हैं और उन्हें नरक जाना पड़ता है, तो फिर सवाल यह है कि प्रभु के स्मरण से फायदा क्या हुआ? नरक तो गए ही! तो पाप और पुण्य काफी हैं! फिर प्रभु को बीच में लेने की जरूरत क्या है? यही तो कारण था कि जैन और बौद्ध, दो धर्मों ने प्रभु को बीच में नहीं लिया, परमात्मा को बीच में नहीं लिया, उन्होंने पाप और पुण्य के सिद्धांत से काम चला लिया। जो बुरा करता है, वह दुख पाएगा; जो भला करता है, वह सुख पाएगा; बात खतम हो गई; बीच में

परमात्मा को लेने की जरूरत नहीं मानी? क्योंकि परमात्मा को लेने से जटिलता बढ़ेगी। यही सवाल उठेगा।
उस पुरोहित ने कहाः मुझे क्षमा करें, मैंने इस तरह कभी सोचा नहीं। मुझे सात दिन का मौका दें, अगले रविवार मैं इसका उत्तर दूँगा। सात दिन वह सो भी नहीं सका, बहुत सिर मारा--आदमी भी ईमानदार रहा होगा, नहीं तो पुरोहित चालबाज होते हैं, कुछ भी उत्तर निकाल लाता; ईमानदार था, उसको यह प्रश्न तीर की तरह चुभने लगा। और यह प्रश्न था महत्वपूर्ण। सातवें दिन वह सुबह जल्दी ही भोर में चर्च पहुंच गया, अभी तक उत्तर नहीं आया है, सोचा कि जाकर चर्च में ही बैठ जाऊं, प्रभु से परमात्मा से प्रार्थना करूं कि तुम्हीं बताओ, अब मैं क्या उत्तर दूं? वह आदमी आता होगा और सारे गाँव में खबर फैल गई है, सारा गांव आ रहा है। मैं जो भी उत्तर सोचता हूं, गलत मालूम होता है। इन दोनों के बीच कैसे तालमेल बिठाऊं? हाथ जोड़ कर प्रभु की प्रार्थना में झुका। जल्दी उठ आया था, रात सोया भी नहीं था, वहां सिर झुकाए हुए वेदी के सामने उसे झपकी आ गई। उसने एक सपना देखा। सपने में उसने वही देखा जो सात दिन से उसके प्राणों को मथ रहा था।
उसने देखा कि वह एक ट्रेन में सवार है। उसने पूछाः भई यह टेन कहां जा रही है? लोगों ने कहाः स्वर्ग जा रही है। उसने कहाः यह अच्छा ही हुआ, वहीं चल कर देख लूं कि हालत क्या है? वह स्वर्ग पहुंचा, उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने किताबों में जो वर्णन देखे थे स्वर्ग के, बड़े रंगीन थे, बड़े सुवासपूर्ण थे, और स्वर्ग बिल्कुल उजड़ा सा मालूम पड़ रहा था। वीरान सा मालूम पड़ता था। खंडहर मालूम पड़ता था। धूल-धवांस जमी थी। उसने पूछाः यह मामला क्या है? ऐसी शकल तो नरक की होनी चाहिए। कहीं कुछ भूल-चूक तो नहीं। उतरा, लेकिन स्वर्ग ही था, भूल-चूक नहीं थी। उसने पूछा कि मैं यह जानना चाहता हूं--यहां कुछ लोग हैं? जैसे बुद्ध। क्योंकि बुद्ध ने पुण्य किया, प्रभु को स्मरण नहीं किया। सुकरात। पुण्य तो किया, लेकिन प्रभु को स्मरण नहीं किया। यहां बुद्ध और सुकरात जैसे लोग हैं? उन्होंने कहाः भई, नाम नहीं सुना कभी। बुद्ध और सुकरात का हमें कुछ पता नहीं है।
भाग-दौड़ कर उसने पता लगाया कि नरक भी कोई ट्रेन जाती है कि नहीं? एक टेन नरक जा रही थी, तैयार ही खड़ी थी, वह सवार हो गया।
नरक पहुंचा। बड़ा हैरान हुआ। वहां बड़ी ताजगी थी, बड़ी रौनक थी, बड़ा रंग था, बड़ी सुंगध थी; उसे तो भरोसा ही नहीं आया कि यह हो क्या रहा है, सब उलटा हुआ जा रहा है; यह नरक है? उतर कर उसने पूछा कि यहां सुकरात और बुद्ध जैसे लोग हैं? उन्होंने कहा है, उनके ही आने के कारण तो नरक की यह रंगत आई है। यह जो सुगंध देख रहे हो, यह जो सुवास देख रहे हो, यहां जो चारों तरफ महोत्सव देख रहे हो, इसी तरह के लोगों के आने की वजह से तो यह रंगत आई है!
तभी उसकी नींद खुल गई। लोग आने शुरू हो गए थे। उसने खड़े होकर मंच पर कहा कि मैं तो उत्तर नहीं जानता, लेकिन यह सपना कहे देता हूं। इस सपने से इतना सार मैंने निकाला कि जहां भले लोग हैं वहां स्वर्ग है और जहां भले लोग नहीं हैं वहां नरक है। यह बात गलत है कि पुण्य करने वाले लोग स्वर्ग जाते हैं, पुण्य करने वाले लोग जहां जाते हैं वहां स्वर्ग बन जाता है। यह बात गलत है कि पाप करने वाले लोग नरक जाते हैं। पाप करनेवाले लोग स्वर्ग भी चले जाएं तो भी जहां जाते हैं वहां नरक बन जाता है।
तुम औपचारिक धर्म में मत उलझ जाना--मंदिर हो आए, मस्जिद हो आए, प्रार्थना कर ली, पाठ कर लिया। नहीं, धर्म तो एक ही है--वह प्रेम है। और धर्म के इस अनुभव को, प्रेम को जगाने का उपाय एक ही है--वह होश है।
इन दो शब्दों में, इन दो कदमों में धर्म की पूरी यात्रा हो जाती है। इतना ही फासला है संसार में और मोक्ष में। बस दो कदम का फासला है। एक कदम का नाम प्रेम, एक कदम का नाम ध्यान। ये दो कदम तुम उठा लो। बस ये दो कदम उठ जाएं--भीतर ध्यान हो, बाहर की तरफ बहता हुआ प्रेम हो; भीतर गहरा होता हुआ ध्यान हो, बाहर बंटता हुआ प्रेम हो; ध्यान बन जाए तुम्हारी जड़ और प्रेम बन जाए तुम्हारे फूल--खिल जाएं।
आदमी को प्रेम करो, प्रकृति को प्रेम करो, चांद-तारों को प्रेम करो-- प्रेम करो! और सब प्रेम उसी परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाता है।

कहीं भी प्रेम की अंजलि चढ़ाओ, कहीं भी प्रेम के फूल चढ़ाओ, वे उसी के चरणों में पहुंच जाते हैं। प्रेम से गाए गए गीत ही केवल प्रार्थनाएं हैं और ऐसी प्रार्थनाएं ही केवल सुनी जाती हैं।
तुम भूलो परमात्मा को--परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है, शब्दों के जाल में मत पड़ो। प्रेम परमात्मा है। और ध्यान आंख है, जो उस परमात्मा को देख सकती हैं। तो दो बातें तुम्हें कहता हूं--प्रेम करो, ध्यान करो। प्रेम होने दो, ध्यान होने दो। और अंततः एक ऐसी घड़ी आती है जब ध्यान और प्रेम में कोई अंतर नहीं रह जाता। ध्यान प्रेमपूर्ण हो जाता है, प्रेम ध्यानपूर्ण हो जाता है। पहुँच गए तुम मंजिल पर। आ गया असली घर, जिसकी तलाश थी।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
सातवां प्रवचन

मन रे, करु संतोष सनेही

मन रे, करु संतोष सनेही।
तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग की, दुख पावै नहिं देही।।
मिल्या सुत्याग माहिंजे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
तामें फेर सार कछू नाहीं राम रच्या सोइ पावै।।
बाछै सरग सरग नहिं पहुंचै, और पताल न जाई।
ऐसे जानि मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई।।
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि विस्वासा।
जन रज्जब यूं जानि भजन करु, गोबिंद है घर वासा।।

हरिनाम मैं नहिं लीनां।
पांच सखी पांचू दिसि खेलै, मन मायारस भीनां।।
कौन कुमति लागी मन मेरे, प्रेम अकारज कीनां।
देख्या उरझि सुरझि नहिं जान्यूँ, विषम विषयरस पीनां।।
कहिए कथा कौन विधी अपनी, बहु बैरनि मन खीनां।
आतमराम सनेही अपने, सो सुपिनै नहिं चीनां।।
आन अनेक आनि उर अंतरि, पग पग भया अधीनां।
जन रज्जब क्यूं मिलै सतगुरु, जगत माहिं जी दीनां।।

नुकरई झांझनों झन-झनन-झनन दूध से पांवों को गुदगुदाती है गुनगुनाती रहें कांच की चूड़ियां, हर कलाई नये गीत गाती रहे हर जवानी सदा मुस्कराती रहे
गांव से दूर खेतों के उस पार वह साफ शफ्फाक चश्मा उबलता रहे शोख पनिहारियों का हसीं जमघटा गागरें लेके राहों पै चलता रहे हुस्न मंजर के सांचे में ढलता रहे
गर्मियों की कड़कती हुई धूप में, झूम कर पेड़ साए लुटाते रहें ठंडी-ठंडी हवाओं के पाले हुए, मस्त झोंके शराबें पिलाते रहें नींद बनकर नजर में समाते रहे
चौदवीं रात के चांद की चांदनी खेतों पर हमेशा बिखरती रहे ऊंघते रहगुजारों में फैले हुए हर उजाले की रंगत निखरती रहे नर्म ख्वाबों की गंगा उभरती रहे
ईद का दिन यूं ही रोज आता रहे, ढोलकों पर यूं ही थाप पड़ती रहे मनचली लड़कियों में हंसी-खेल पर नित-नये ढब से बनती-बिगड़ती रहे कोई माने तो कोई अकड़ती रहे
शहर से लौट कर आने वाले जवां, गांव में जौक-दर-जौक आते रहें
अपनी-अपनी दुल्हन के लिए नित नई सोने-चांदी की सौगात लाते रहें
जिंदगी के महल जगमगाते रहें
नुकरई झांझनों झन-झनन-झनन दूध से पांवों को गुदगुदाती है
गुनगुनाती रहें कांच की चूड़ियां, हर कलाई नये गीत गाती रहे
हर जवानी सदा मुस्कराती रहे
ऐसा मनुष्य चाहता है, पर होता नहीं। ऐसा मनुष्य चाहता है, पर हो नहीं सकता। जिंदगी मौत के बीच है। जिंदगी का छोटा सा दीया तूफानों के बीच टिमटिमा रहा है। यहां न तो थिरता हो सकती है, न आनंद हो सकता है; यह असंभव है। मन आकांक्षा करता है, मन बड़े सपने संजोता है, लेकिन सब सपने टूट जाते हैं। सपने टूटने को ही बनते हैं। प्यारे सपनों के गीत गाते रहो, गीतों से मन को उलझाते रहो, गीतों से मन को समझाते रहो, सांत्वना के खूब-खूब जाल रच लो, मगर मौत आती है और सब तोड़ जाती है।
दो ही तरह के लोग हैं पृथ्वी पर। एक, जो मौत को झुठलाते रहते हैं और सपनों में अपने को उलझाते रहते हैं। दूसरे, जो मौत को देख लेते भर-आंख कि आती है, आती ही होगी, आ ही गई है, और मौत की उस चोट में ही सपनों से जाग जाते

हैं। सपनों से जो जाग जाए, वही सत्य को अनुभव कर पाता है। सपनों में जो सोया रहे, वह अंधे की भांति जीता है।
नाच रहे हैं अंधे इंसां
पैरों में जंजीरें डाले
जंजीरें टूटतीं नहीं तुम्हारे नाच से। जंजीरें टूटती हैं आंख से। और जंजीरें टूट जाएं तो फिर एक और ही तरह का नाच है। जंजीरें टूट जाएं तो फिर तुम्हारे भीतर परमात्मा नाचता है, तुम नहीं। और जंजीर एक ही है--तुम्हारी आंख का बंद होना जंजीर है। आंख खोलो।
आज के सूत्र आंख खोलने की दिशा में बड़े मूल्य के उपाय बन सकते हैं। एक-
एक शब्द को हृदय में लेना।
मन रे, करु संतोष सनेही। सीधे-सादे शब्द हैं। सीधे-सादे आदमी रज्जब के हैं। किसी पंडित के नहीं, किसी शब्दों के धनी के नहीं, आत्मा के धनी के हैं। और ख्याल रखना, आत्मा के धनी सीधे-साफ शब्दों में बोलते हैं। शब्दों में रस नहीं है उन्हें; जो कहना है, उसके लिए शब्दों का केवल उपयोग कर लेते हैं। रज्जब कोई कवि नहीं है, यद्यपि कविता की है और प्यारी की है। लेकिन गौण है वह बात। कवि तो केवल शब्दों को जमाता है। कवि के पास देने को शायद ही कुछ है। लेकिन शब्दों का एक तिलिस्म खड़ा करता है। शब्दों का मालिक है। शब्दों का कुशल कलाकार है। शब्दों में खूब रंग भरता है, शब्द मनमोहक हो जाते हैं। लेकिन कवि की जिंदगी तो सूनी की सूनी होती है। कवि की जिंदगी में तो कहीं फूल नहीं खिलते। उसके फूल सिर्फ कविताओं में खिलते हैं। रज्जब कवि नहीं हैं। रज्जब तो आंख वाले आदमी हैं। कविता तो गौण है, मस्ती से निकल आई है, सहज निकल आई है। उसे बनाया भी नहीं है। इसलिए शब्द तो सीधे-सादे होंगे। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि सीधे-सादे शब्दों के कारण ही हम चूक जाते हैं। लगता है यह तो हम समझ ही गए; अब इसमें क्या बात समझाने की! मन रे, करु संतोष सनेही! यह तो हम दोहराते हैं खुद ही--संतोषी सदा सुखी। यह तो हम सब जानते ही हैं। मगर जानते कहां हैं? सुना है, पकड़ भी लिया है, तोतों की तरह दोहरा भी लेते हैं, मगर जानते कहां हैं? यह हमारे अनुभव की संपदा नहीं है, यह हमारा धन नहीं है--यही हमारा धन होता तो हमारे जीवन की रौनक और होती, गरिमा और होती। जंजीरें न होतीं, नृत्य होता। आंखों में अंधेरा न होता, रोशनी नाचती। यह सारा आकाश तुम्हारा आंगन होता। यह सारा अस्तित्व अपने रहस्यों को तुम पर लुटाता। लेकिन वह तो नहीं हो रहा है। टटोल रहे हैं, अंधेरे की तरह, अंधी गुफाओं में। जिनको हम जीवन कह रहे हैं, अंधे संबंधों में--जिनको हम प्रेम कहते हैं--टटोल रहे हैं, तलाश चल रही है; हाथ कभी कुछ लगता नहीं, फिर भी टटोल जारी रहती है। हाथ कभी कुछ लगेगा भी नहीं। लेकिन हाथ न भी लगे तो भी क्या करें, टटोलना तो जारी रखना ही पड़ेगा, एक मजबूरी है। टटोलने में कम से कम एक आशा बनी रहती है कि आज नहीं तो कल मिलेगा, कल नहीं तो परसों मिलेगा--उलझे तो रहते हैं कम से कम, व्यस्तता तो बनी रहती है।
तुम्हारा सारा जीवन का उपक्रम तुम्हारी तथाकथित व्यस्तता का ही एक आयोजन है। आदमी व्यस्त रहता है तो भूला रहता है आदमी खाली होता है तो याद आने लगती है कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं यहां क्यों हूं? किसलिए हूं? मेरा गंतव्य क्या है? मुझे कहां होना था? मैं किस कीचड़ में पड़ गया? कमल बनने आया था और कीचड़ में ही दबा रह गया हूं। झकझोरने वाले प्रश्न उठने लगते हैं। उनसे बचने का एक ही उपाय है--उलझा लो अपने को, कहीं भी काम में लगा दो अपने को। काम से एक झूठी प्रतीति बनी रहती है--कुछ हो रहा है। कुछ नहीं हो रहा है। कुछ न कभी हुआ है यहां, न कुछ कभी यहां होगा। मगर होने की भ्राँति बनी रहती है। कर तो रहे हैं, दौड़ तो रहे हैं, भाग तो रहे हैं, लड़ तो रहे हैं और क्या करें? सब तो दावँ पर लगा रहे हैं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों होगा। देर है, अंधेर तो नहीं है। ऐसे अपने को समझाते हैं। और सब प्यारे शब्द हमें याद हो गए हैं। उन प्यारे शब्दों को हमने याद करके ही मार डाला है, उनकी हत्या कर दी है।
समझो--मन रे, करु संतोष सनेही। रज्जब कहते हैं--दोस्त तो दुनिया में एक है, प्रेमी तो दुनिया में एक है, अगर प्रेम ही करना हो तो उसीसे कर लेना,

उसका नाम संतोष है। संतोष से प्रेम कर लेंगे तो क्या होगा? हमने तो नाते असंतोष से जोड़े हैं। हमने तो विवाह असंतोष से रचाया है। हमने तो हाथ में हाथ डाल दिए हैं असंतोष के। फिर तड़फ रहे हैं, फिर रो रहे हैं, फिर गिड़गिड़ा रहे हैं। मगर दोस्ती नहीं छोड़ते। जितना गिड़गिड़ाते हैं, उतनी ही दोस्ती मजबूत करते चले जाते हैं। इस सीधे से सत्य को देखो--असंतोष से दोस्ती जो बनाएगा, वह कैसे सुखी हो सकता है? इतना सीधा-सा गणित भी दिखाई नहीं पड़ता! असंतोष की कला क्या है? जो है, असंतोष कहता है, उसमें क्या रखा है! असंतोष कहता है--जो तुम्हारे पास नहीं है, उसमें सार है। जो तुम्हारे पास है, निस्सार है। इसलिए जो नहीं है उसे पाने में लगो, तो मजा पाओगे, तो आनंद पाओगे।
लेकिन, यह सूत्र तो ऐसा हुआ--आत्मघाती सूत्र है यह--जैसे ही तुम उसे पा लोगे वह व्यर्थ हो जाएगा।
संतोष का तर्क समझो। असंतोष की व्यवस्था समझो। असंतोष की व्यवस्था यह
है कि जो मिल गया, वही व्यर्थ हो जाता है। सार्थकता तभी तक मालूम होती है जब तक मिले नहीं। जिस स्त्री को तुम चाहते थे, जब तक मिले न तब तक बड़ी सुंदर। मिल जाए, सब सौंदर्य तिरोहित। जिस मकान को तुम चाहते थे--कितनी रात सोए नहीं थे! कैसे-कैसे सपने सजाए थे! --फिर मिल गया और बात व्यर्थ हो गई। जो भी हाथ में आ जाता है, हाथ में आते ही से व्यर्थ हो जाता है। इस असंतोष को तुम दोस्त कहोगे? यही तो तुम्हारा दुश्मन है। यह तुम्हें दौड़ाता है-- सिर्फ दौड़ाता है--और जब भी कुछ मिल जाता है, मिलते ही उसे व्यर्थ कर देता है। फिर दौड़ाने लगता है। यह दौड़ाता रहा है जन्मों-जन्मों से तुम्हें। वह जो चौरासी कोटियों में तुम दौड़े हो, असंतोष की दोस्ती के कारण दौड़े हो। दस हजार रुपए पास में हैं--क्या है मेरे पास, कुछ भी तो नहीं! लाख हो जाएं तो कुछ होगा! लाख होते ही तुम्हारा असंतोष--तुम्हारा मित्र, तुम्हारा साझीदार--कहेगा, लाख में क्या होता है? .जरा चारों तरफ देखो, लोगों ने दस-दस लाख बना लिए हैं। अरे मूढ़, तू लाख में ही बैठा है! अब लाख की कीमत ही क्या रही? अब गए दिन लाखों के, अब दिन करोड़ों के हैं। करोड़ बना! तो कुछ होगा। तुम सोचते हो करोड़ हो जाएगा तुम्हारे पास तो कुछ होगा? कुछ भी नहीं होगा। यही असंतोष तुम्हारा साथी वहां भी मौजूद रहेगा। करोड़ होते-होते- होते-होते काफी समय बीतेगा, दौड़ होगी, जीवन गंवाया जाएगा, और जब पहुंच जाओगे, तो यही असंतोष कहेगा कि करोड़ भी कोई बात है! अरबपति हैं दुनिया में! आगे देख! ठहरना नहीं, अरबपति होना है! और ऐसे ही दौड़ाता रहेगा। जो नहीं है, उसमें रस पैदा करवाता रहेगा। और जो है, उसमें विरस पैदा करवा देगा। जो है, वह होने के कारण ही अर्थहीन है। और जो नहीं है, वह न होने के कारण ही सार्थक है। तभी तो दौड़ जारी रहती है। नहीं तो दौड़ ही मर जाए।
संतोष से जिसने दोस्ती बांधी, उसकी दौड़ ही गई। उसकी आपा-धापी समाप्त
हो जाती है। संतोष का सूत्र उलटा है। संतोष कहता है--जो है, वही सार्थक है। जो नहीं है, उसमें क्या रखा है! जो अपने पास है, वही धन्यभाग है। और जो अपने पास नहीं है, उसमें कुछ भी नहीं है। संतोष से जिसने दोस्ती बांध ली, वह अगर सुखी न होगा तो क्या होगा? और असंतोष से जिसने दोस्ती बाँधी, अगर वह दुखी न होगा तो क्या होगा? असंतोष की सहज निष्पत्ति दुख है। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो तो असंतोष में जीने वाला मन ही नरक में जीता है। संतोष में जीनेवाला मन स्वर्ग में जीता है। जिसने संतोष बना लिया, स्वर्ग बना लिया। स्वर्ग और नरक भौगोलिक अवस्थाएं नहीं हैं; कहीं भूगोल में नहीं हैं, किसी नक्शे में नहीं मिलेंगे, मनोदशाएं हैं। मनोवैज्ञानिक हैं। संतोषी आदमी में तुम स्वर्ग पाओगे। उसके पास तुम्हें स्वर्ग के फूल खिलते मिलेंगे। उसके पास तुम्हें स्वर्ग की आभा मिलेगी। धूल में भी बैठा होगा तो तुम उसे महल में पाओगे। क्योंकि धूल को भी महल बना लेने की कला उसके पास है, कीमिया उसके पास है। संतोषी आदमी के हाथ में जादू है। रूखी रोटी खाएगा तो ऐसे कि सम्राट भी ईर्ष्यालु हो जाएं। नंगा भी चलेगा रास्ते पर तो ऐसे कि सम्राटों की बड़ी-बड़ी शोभायात्राएं फीकी पड़ जाएं। देखा नहीं है महावीर को नग्न चलते हुए रास्तों पर? देखा नहीं है महावीर के चरणों में सम्राटों को झुकते हुए? क्या था इस आदमी के पास? लंगोटी भी न थी। मगर एक मस्ती थी। यह

मस्ती कहां से आई थी? इस मस्ती का खजाना कहां मिला था? संतोष से दोस्ती बांध ली थी। और यह सम्राटों को क्यों झुकना पड़ रहा था महावीर के सामने, जिनके पास सब था? असंतोष से दोस्ती थी। सोचते थे कि शायद सम्राट होकर तो मिला नहीं, अब फकीर होकर मिल जाए। चलो फकीर के चरणों में बैठें। यह भी असंतोष की ही दौड़ है। संसार में नहीं मिला, तो चलो अब हिमालय पर चले जाएं। यह भी असंतोष का नया कदम है: ध्यान रखना, संन्यास अगर असंतोष से ही उठता हो, तो गलत होगा। अगर संतोष से उठता होगा तो सम्यक होगा। और दोनों में जमीन-आसमान का फर्क होगा।
भगोड़ा संन्यासी असंतोष से ही संन्यासी है। असंतोष से कोई संन्यासी है, मतलब अभी भी संसारी है। बाजार में रह कर देख लिया, नहीं पाया। असंतोष ने कहा--बाजार में क्या रखा है, पागल! असंतोष को समझ लेना। असंतोष सब तरह की भाषाएं जानता है। आध्यात्मिक भाषा भी जानता है। असंतोष बड़ा कुशल है। उसने देखा तुम्हें कि अब तुम बाजार से ऊबे जा रहे हो, वह कहता है कि बिल्कुल ठीक ही है, बाजार में रखा क्या है? और मजा यह है कि यही असंतोष जिंदगी-भर तुमसे कहता रहा कि बाजार में सब रखा है। तुम्हारा अंधापन अदभुत है। पहले भी इसकी माने चले गए, अब भी इसकी मान लेते हो। यही कहता था बाजार में सब रखा है, धन में सब रखा है, पद-प्रतिष्ठा में। इसके पहले कि यह देखता है कि हवा बदलने लगी, अब तुम चौंकने लगे, अब तुम जागने लगे थोड़े, यह कहता है--यहां क्या रखा है? पागल, मैं तो पहले ही से कहता था! यहीं होता तो त्यागी-तपस्वी जंगल जाते! असली चीज जंगल में है। जंगल में मंगल है। चल जंगल। छोड़। छोड़ पत्नी, छोड़ घर-द्वार। और तुम सोचते हो--बड़े संन्यास की आकांक्षा उठ रही है! तुम्हें असंतोष ने फिर धोखा दिया। अब यह तुम्हें जंगल में बिठा देगा। और वहां भी थोड़े दिन बैठकर तुम पाओगे, कुछ नहीं मिल रहा है। और यही असंतोष तुमसे कहेगा--पहले ही कहा था कि जंगल में मंगल, यह सब फिजूल की बकवास है! अपने घर लौट चलो। जो है वहीं है, संसार में है। थोड़ी और चेष्टा करते तो मिल जाता। दो-चार कदम चलने की बात थी, मंजिल के करीब आ-आ कर आ गए? मूढ़ हो, नासमझ हो। जो पीछे रह गए हैं, देखो मजा कर रहे हैं। और तुम यहां बैठे गुफा में क्या कर रहे हो?
मगर तुम्हारा अंधापन ऐसा है कि तुम असंतोष से कभी पूछते ही नहीं कि तू पहले यह कहता था, अब तू यह कहता है, तू बदलता जाता है? नहीं, दोस्ती गहरी है, दोस्त पर भरोसा होता है। भरोसे का नाम ही तो दोस्ती है।
रज्जब कहते हैं--यह दोस्ती छोड़ो। इसने तुम्हें जन्मों-जन्मों भटकाया है, नरकों की यात्रा करवाई है, दुःख से और महादुःख में ले गया है, यह दोस्ती छोड़ो। अब एक नई दोस्ती बनाओ, संतोष से दोस्ती बनाओ।
मन रे, करु संतोष सनेही।
प्यारे, संतोष को पकड़ो। संतोष से प्रेम लगाओ। संतोष से भांवर पाड़ो। असंतोष के साथ रह कर बहुत देख लिया, कुछ भी न पाया, अब तो चेतो! संतोष का मतलब होता है--जो है, धन्य मेरा भाग! असंतेष कहता है--इतना ही! और होना चाहिए, मैं अभागा हूं! संतोष कहता है--जो है, धन्य मेरा भाग! इससे भी कम हो सकता था। जो है, इतना भी क्या कम है! इतना भी होना ही चाहिए, इसकी कोई अनिवार्यता थोड़े ही है! यह भी परमात्मा की देन है। मैं अनुगृहीत हूं।
बस इस अनुग्रह की भाषा में जीवन का रूपांतरण हो जाता है। तब तुम जहां
हो, अचानक पाते हो वहीं स्वर्ग की धुन बजने लगी। बज ही रही थी, सिर्फ तुम्हारे असंतोष के कारण सुनाई नहीं पड़ती थी। तुम्हारे आसपास देवदूत निरंतर मौजूद थे, मगर असंतोष से भरी आंखें देख नहीं पाती थीं। तुम सदा से ही इसके हकदार और मालिक थे, मगर असंतोष की दोस्ती तुम्हें बहुत दूर ले गई-- अपने से दूर ले गई।
संतोष तुम्हें अपने पास ले आता है। क्यों? क्योंकि असंतोष की प्रक्रिया में दूर जाना जरूरी है। असंतोष तुम्हारी आंखों को दूर और दूर रखता है। वह कहता है--वहां चलो, चांद पर चलो; भविष्य में, आगे, और आगे; आज थोड़े ही मिलने वाला है सुख, कल मिलेगा सुख। असंतोष कहता है--कल ज्यादा दूर थोड़े ही है! थोड़ा ही, चार कदम की यात्रा और है। और कल कभी आता नहीं। और कल भी असंतोष यही कहेगा कि थोड़ा और, थोड़ा और--चले चलो, चले चलो! असंतोष धीरज बंधा

जाता है और अतृप्ति को जगाए जाता है। चलाए रखता है, चलाए रखता है, चलाए रखता है, दौड़ाता है। और जिस दिन तुम गिरते हो तो कब्र में ही पहुँचते हो। और कहीं नहीं पहुंचते।
संतोष कहता है--वहां नहीं, यहां। कल नहीं, अभी। इस क्षण सब है। संतोष
से दोस्ती बांधते ही इस क्षण के अतिरिक्त समय का और कोई अर्थ नहीं रह जाता है। यही क्षण सारा अस्तित्व हो जाता है। हो जाने दो इसी क्षण को सारा अस्तित्व! चलो थोड़ी ही देर को सही, मेरे साथ! इस क्षण संतोष से दोस्ती बांध लो! ये हवाओं में लहराते हुए वृक्ष, यह सन्नाटा, यह मेरा होना, तुम्हारा होना, यह आमना-सामना, यह इस क्षण में जो घट रहा है इसके पार मत देखो, बस इसी में आंखें गड़ाओ, और तुम अचानक पाओगे--तुम किसी सुख के स्रोत के करीब आने लगे। अचानक भीतर से एक शांति उमगेगी और तुम्हें घेर लेगी। चूक जाओगे तुम इससे फिर, क्योंकि असंतोष इतनी जल्दी दोस्ती नहीं छोड़ देगा। दोस्ती बनानी आसान है, छोड़नी बहुत मुश्किल होती है। विवाह करने बहुत आसान, तलाक में अदालतें बड़ी झंझटें देती हैं। फिर पकड़ लेगा। फिर असंतुष्ट। फिर दुखी। फिर चिंतित। फिर आतुर भविष्य के लिए। लेकिन जब भी तुम अवसर दोगे संतोष को, क्षण भर को ही सही संतोष से नाता बाँधोगे, उसी क्षण तुम पाओगे वर्षा हो जाती है अनंत की। ये ही क्षण ध्यान के क्षण हैं। और इन्हीं क्षणों के रा.ज को जिसने समझ लिया, वह समाधि को उपलब्ध हो जाएगा।
समाधि का क्या अर्थ है? संतोष से दोस्ती थिर हो गई। अडिग हो गई। असंतोष के हमले बंद हो गए। समाधि शब्द को देखते हो? उसी धातु से बना है जिससे समाधान। समाधान का अर्थ होता है--अब कोई असमाधान नहीं है चित्त में। ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए, ऐसी कोई चिंता नहीं है चित्त में, अब कोई समस्या नहीं है चित्त में। अब तो जैसा है वैसा है--"ज्यूं का त्यूं ठहराया।"
मन रे, करु संतोष सनेही। नहीं तो घूमोगे भिखारी बने-बने। बन जाओ सम्राट! जब्त भी कब तक हो सकता है? सब्र की भी इक हद होती है।
पल भर चैन न पाने वाला, कब तक अपना रोग छिपाए?
"शाद" वही आवारा शायर, जिसने तुझको प्यार किया था
नगर-नगर में धूम रहा है, अरमानों की लाश उठाए।
सब घूम रहे हैं अरमानों की लाश उठाए। तुमने कहानी सुनी है न--
पार्वती की मृत्यु हो गई। और शिव पार्वती की लाश को लेकर देश भर में घूमने लगे। इस आशा में कि कभी फिर जग जाएगी। इस आशा में कि किसी पुण्य-तीर्थ में कोई चमत्कार हो जाएगा। इस आशा में कि मैं मृत्यु से हारूंगा नहीं, जीवन पर भरोसा रखूंगा। पार्वती की लाश को लिए शिव घूमते हैं सारे देश में। कथा प्यारी है! कथा सांकेतिक है। अंग-अंग पार्वती के सड़ते जाते हैं और गिरते जाते हैं। मगर शिव की आशा नहीं गिरती।
तुम सब भी लाशें लिए घूम रहे हो। तुम्हारे अरमानों की लाशें, तुम्हारे सपनों की लाशें, तुम्हारी आकांक्षाओं की लाशें--कितनी लाशें लिए तुम घूम रहे हो! और लाशें सड़ती हैं, दुर्गंध भी दे रही हैं, उनके अंग-अंग भी गिरते जाते हैं, मगर तुम हो कि जागते नहीं। तुम पुरानी लाशें तो ढो ही रहे हो, तुम फिर नई लाशों के आयोजन कर रहे हो। नये अरमान, नये वासनाओं के जाल निर्मित कर रहे हो। मरने के पहले तुम अपने को कितनी लाशों से नहीं घेर लोगे!
संतोष से दोस्ती करो। उस दोस्ती से होते ही सारी लाशों से छुटकारा हो जाता है। संतोष से दोस्ती होते ही अतीत से छुटकारा हो जाता है, भविष्य से छुटकारा हो जाता है, वर्तमान ही सब कुछ हो जाता है।
ख्याल करो, अतीत की इतनी याद क्यों आती है? इसीलिए कि भविष्य से अभी लगाव है। तुम थोड़ा चौंकोगे, अतीत भविष्य का ऐसा क्या लेना-देना! गहरा लेना- देना है। अतीत से लगाव है, क्योंकि अतीत मिला कुछ नहीं उसमें, सिर्फ घाव ही घाव हैं, और उन्हीं घावों के लिए तुम भविष्य में मलहम खोज रहे हो। दोनों जुड़े हैं। घावों को उकसाना पड़ेगा, तो ही तो मलहम की तलाश जारी रहेगी। तुम्हारा भविष्य क्या है? तुम्हारे अतीत की आकांक्षाओं का ही प्रक्षेपण है। और इन दोनों के बीच में तुम चूके जा रहे हो। इन दोनों के बीच में है

क्षण वर्तमान का। वही वास्तविक क्षण है। वही असली है। अतीत स्मृति है, भविष्य कल्पना है, वर्तमान सत्य है। लेकिन स्मृति और कल्पना के बीच में सत्य को झुठलाया जा रहा है। छोड़ो अतीत से नाता, छोड़ो भविष्य से नाता, हो रहो इसी क्षण के! एकरस हो जाओ इस क्षण से, तन्मय हो जाओ इसी क्षण में! यही तो ध्यान की परिभाषा है। यही प्रेम की परिभाषा है। जब अतीत और भविष्य मिट जाता है, तो तुम जिस घड़ी में होते हो--अगर अकेले हो तो ध्यान है, अगर उस घड़ी में किसी का संग-साथ है तो प्रेम है। मगर दोनों का स्वाद एक है। वर्तमान है दोनों का स्वाद।
मन रे, करु संतोष सनेही।
तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग की, दुख पावै नहिं देही।।
संतोष से दोस्ती हो जाए तो तृष्णा तृप्त हो जाए। प्यास बुझ जाए। भूख
भर जाए। "तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग की।" और यह तृष्णा कोई नई नहीं है, जुग-जुग की है--अनंतकालीन है। मगर एक क्षण में मिट जाती है संतोष से दोस्ती छुई कि मिट गई। संतोष से दोस्ती साधुता का आधार है, संन्यास का आधार है।
"दुख पावै नहिं देही।" और खूब तुमने दुख दे लिए हैं अपनी आत्मा को। और व्यर्थ दिए हैं दुख। हकदार तो सुखों के थे, मालकियत तो थी तुम्हारी फूलों के लिए, लेकिन कांटे चुनते रहे हो। और अब भी नहीं मानते; अब भी नहीं जागते। एक असंतोष मिट नहीं पाता कि तुम दस नये निर्मित कर लेते हो। फिर चले दौड़े! भागना ही तुम्हारे जीवन का एकमात्र ढंग हो गया है? तुम रुकना ही भूल गए हो? रुको! ठहरो! परमात्मा यहीं है। अभी है। इसी क्षण है। न दूर आकाश में है, न कहीं बैकुंठ में है, न किसी मोक्ष में है, संतोष में है।
मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
ध्यान दो इस सूत्र पर विरोधाभासी सूत्र है। लेकिन सत्य अक्सर विरोधाभासी होता है। जीसस का प्रसिद्ध वचन है--जो बचाएंगे, गंवा देंगे; जो गंवाने को राजी हैं, उनका बच जाएगा। उलटा गणित मालूम होता है। उलटा इसीलिए मालूम होता है कि हम जिस तरह की जिंदगी जिए हैं अब तक, वही उल्टी रही है। अब उसको सीधा करना उल्टा मालूम होता है।
"मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या"। रज्जब कहते हैं--परमात्मा ने जो दिया है, उसको वे ही भोग सके हैं जिन्होंने उस पर पकड़ नहीं रखी; जिन्होंने उस पर मुट्ठी नहीं बांधी। याद करो उपनिषद का वचनः "तेन त्यक्तेन भुजीथाः।" उन्होंने ही भोगा, जिन्होंने त्यागा। अनूठा वचन है। इस एक वचन में सारे शास्त्रों का सार आ गया है। वे ही भोगना जानते हैं जो पकड़ने से मुक्त हैं। पकड़ने वाला भोग ही नहीं पाता। तुम देखते हो न कृपण को, कंजूस को, वह गरीब से भी ज्यादा गरीब होता है। और ऐसा नहीं कि उसके पास है नहीं, मगर वह पकड़ कर बैठा है। तुमने कहानियां सुनीं न कि कृपण मर जाते हैं तो अपने गड़े धन पर सांप होकर बैठ जाते हैं। जिंदगी में भी वे यही किए थे--सांप होकर बैठे थे, पहरा ही देते रहे थे। मर कर भी यही करेंगे। कहानियों में सार है। क्योंकि जिंदगी भर जो किया है, उसका अयास ऐसा हो जाता है कि मरकर कुछ अन्यथा करोगे कैसे? एक विशेषज्ञ मरा। विशेषज्ञ था कुशलता का, इफीसिएंसी एक्स्पर्ट था। काम ही उसका यही था कि दफ्तर में जहां चार आदमी हैं वहां एक से काम चलवा देना। जो काम दो घंटे में होता है, वह पंद्रह मिनट में करवा देना। उसकी बड़ी ख्याति थी। वह मरा। कहते हैं जब उसकी अर्थी उठाई गई, तो उसने ढक्कन खोला और बोला कि यह क्या हो रहा है? चार आदमियों की क्या जरूरत है? दो चाक लगा दो, एक ही आदमी से मरघट पहुँचना हो जाएगा।
बात ठीक मालूम पड़ती है। जिंदगी भर यही काम किया था--कम आदमियों से कैसे ज्यादा काम लेना? मरते वक्त भी कैसे भूल जाएगा? मरकर भी कैसे भूल जाएगा? उसके प्राण छटपटा गए होंगे जब देखा होगा कि चार आदमी अरथी उठा रहे हैं! यह तो एक से हो सकता है, सिर्फ दो चक्के लगाने की जरूरत है। इसलिए चार आदमियों का श्रम व्यर्थ करना!
कहानियां ठीक ही कहती हैं कि कृपण मरता है तो सांप होकर बैठ जाता है। जिंदगी भर यही तो अयास किया था उसने। भोगा कब? धन था तो भी भोगा कहां? रक्षा करता रहा। धनी इस दुनिया में बहुत कम हैं, रखवाले हैं। कोई दूसरे के

धन की रखवाली करते हैं, कुछ अपने धन की रखवाली करते हैं; मगर रखवाली तो रखवाली है, फर्क क्या पड़ता है!
"मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या।" परमात्मा ने जो रचा है, वह उन्हीं को मिला है जिन्होंने त्याग की कला जानी। त्याग की कला क्या है? संतोष से दोस्ती त्याग की कला है। ऐसी परिभाषा किसी और ने नहीं की साफ-साफ। रज्जब ने बिल्कुल गणित का सूत्र दे दिया। त्याग की परिभाषा संतोष। तुम थोड़े चौंकोगे। क्योंकि तुमने तो त्याग भी किया है तो असंतोष के कारण किया है। कोई आदमी सब छोड़ कर चला जाता है, वह कहता है--छोड़ेंगे नहीं तो स्वर्ग कैसे मिलेगा? स्वर्ग पाने की आशा में संसार छोड़ रहा है। यह त्याग नहीं है। यह भोग की प्रबल वासना है। इस पत्नी को छोड़ रहा है कि स्वर्ग में हूरें मिलेंगी, सुंदर अप्सराएं मिलेंगी। सपने देख रहा है। यहां शराब नहीं पीता, स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं। वहां दिल खोल कर पीएगा। यहां- यहां जो-जो भोग छुड़वाने को धर्मशास्त्र कहते हैं--उन्हीं-उन्हीं भोगों की व्यवस्था उन्होंने स्वर्ग में की है। ये धर्मशास्त्र भी अदभुत हैं! जब यहीं छुड़वाना है, तो फिर वहां इंतजाम क्या करवाना? और अगर वहां इंतजाम ही होना है, तो उमर खय्याम ठीक कहता है कि फिर अयास यहां करने दो। नहीं तो अयास ही नहीं होगा। तुम कहते हो--स्वर्ग में चश्मे बहते हैं शराब के; और यहां शराब का अयास न किया तो पीएगा कौन? तुम कहते हो--वहां सुंदर-सुंदर स्त्रियां हैं; और यहां स्त्रियों से बचने का उपदेश दिया जा रहा है। तो फिर उनको भोगेगा कौन? उमर खैय्याम की बात में तर्क मालूम पड़ता है। मजाक वह ठीक कर रहा है। वह तुम्हारे त्यागियों की मजाक कर रहा है, वह कह रहा है--ये त्यागी इत्यादि नहीं हैं, ये सब झूठी बकवास है। त्याग के नाम पर भी भोग की आकांक्षा है। और कुछ ज्यादा पाने की इच्छा है। यह सौदा है। व्यवसाय है, त्याग नहीं है।
शास्त्र कहते हैं--गंगा के किनारे अगर एक रुपया दान दो तो स्वर्ग में
एक करोड़ गुना मिलता है। मगर यह कौन सा त्याग हुआ? और एक रुपये में एक करोड़ गुना! तो लॉटरी सरकारें ही नहीं खिला रही हैं, भगवान भी खिला रहा है। लॉटरी हो गई। एक रुपया आदमी छोड़ देता है गंगा के किनारे इस आशा में कि स्वर्ग में करोड़ गुना मिलेगा। मगर यह आशा असंतोष है। यह वासना असंतोष है। यह त्याग नहीं है। यह छोटा त्याग है बड़े भोग के लिए।
रज्जब कहते हैंः "मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या।" लेकिन भोगा उन लोगों ने है जो त्याग की असली कला जानते हैं। त्याग की असली कला क्या है? आज सब कुछ है। जो है, उसमें परम आनंद। कल है ही नहीं। कल के लिए बचाना क्या है जब कल है ही नहीं? कल के लिए इकट्ठा क्या करना है जब कल है ही नहीं? कल के लिए पकड़ना क्या है जब कल है ही नहीं?
मोहम्मद रोज रात सोने के पहले पत्नी को कहते थे--जो भी दिन में इकट्ठा
हो गया हो, बांट दे। कल का क्या भरोसा है? हम हों न हों। और फिर जिसने आज दिया है, अगर कल होगा तो वह कल भी देगा। यही संतोष है। जिंदगी भर तो पत्नी मानती रही। फिर स्त्री आखिर स्त्री! मोहम्मद बीमार हुए। आखिरी घड़ियाँ करीब आ गईर्ं। उस रात पत्नी ने उनकी बात नहीं सुनी। उसे डर लगा। रात, आधी रात दवा की जरूरत पड़ जाए, वैद्य की जरूरत पड़ जाए तो फीस कहां से चुकाऊंगी? तो कुछ बचा लेना जरूर--ज्यादा नहीं बचाया, पांच रुपये, पांच दीनार छिपा कर रख दिए।
मोहम्मद आधी रात करवट बदलने लगे। पत्नी ने कहाः कुछ बेचैनी है? कोई तकलीफ है? दवा का इंतजाम करें? वैद्य को बुलाएं? उन्होंने कहाः न दवा की जरूरत है, न वैद्य की, मुझे ऐसा लगता है कि तूने घर में कुछ बचा रखा है। उससे मेरे प्राण अटके हैं। मैं क्या जवाब दूँगा परमात्मा को कि आखिरी दिन भरोसा नहीं किया। पत्नी तो बहुत घबड़ाई। जल्दी से उसने पांच दीनार लाकर कहा कि मैंने जरूर बचा लिए, मुझे क्षमा करें, इसी ख्याल से कि कब जरूरत पड़ जाए वत्त बेवत्त, बिमारी-बूड़ापा मोहम्मद ने कहा जल्दी बांट दे! उसने कहाः में बांटूं भी तो किसको? आधी रात कौन होगा? मोहम्मद ने कहाः जिसने मुझे याद दिलाई है कि पांच रुपये घर में अटके हैं उसने किसी को जरूर भेजा होगा, तू दरवाजा तो खोल। और दरवाजा खोला तो देखा एक भिखारी खड़ा है--आधी रात! और

उसने कहा कि मैं बड़ी मुसीबत में हूं, पांच रुपये की जरूरत है। वे पांच रुपये उस भिखारी को दे दिए गए; मुहम्मद ने चादर ओढ़ ली और कहते हैं चादर ओढ़ते ही उनके प्राण छूट गए।
संतोष के बड़े आयाम हैं। समय की दृष्टि से वर्तमान में जीना संतोष है। पकड़ की दृष्टि से जो मिल जाए उसे बिना पकड़े भोग लेना संतोष है। बिना पकड़े, बिना दावेदार हुए, बिना मालकियत जताए। परिग्रह की दृष्टि से अपरिग्रह संतोष है। श्रद्धा की दृष्टि से, यह भरोसा, कि जिसने आज दिया है कल भी देगा संतोष है। संतोष के गुण बहुत हैं। एक संतोष तुम्हारे जीवन को न मालूम कितनी दिशाओं से रूपांतरित कर देगा। इसलिए रज्जब कहते हैं--दोस्ती कर लो, संतोष से दोस्ती कर लो।
मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
कहते हैं--तुम कितना ही पकड़ने की कोशिश करो, अधिक नहीं हो पाएगा। "गह्या अधिक नहिं आवै।" तुम कितना ही गहो, अधिक नहीं हो पाएगा। क्योंकि असंतोष से अगर दोस्ती रही, तो असंतोष इतना कुशल है कि हर चीज को कम बताने की उसकी आदत है। लाख होंगे तो वह कहेगा--लाख में क्या होता है, दस लाख चाहिए। दस लाख होंगे तो वह कहेगा दस लाख में क्या होता है--करोड़ चाहिए। असंतोष की सारी प्रक्रिया यह है कि जो है, उससे बड़े की कल्पना देता है। और बड़े की कल्पना में जो है वह छोटा हो जाता है। छोटा हो जाता है, पीड़ा शुरू हो जाती है। अतृप्ति हो जाती है। काँटा चुभने लगता है। दौड़ शुरू हो जाती है। और यह दौड़ कभी अंत नहीं हो सकती जब तक असंतोष से दोस्ती ही न छूट जाए। असंतोष से दोस्ती छूटते ही जो भी है, वह जरूरत से ज्यादा है।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास छोटा सा झोपड़ा था। बस पति और पत्नी दोनों सो लेते, इतनी उसमें जगह थी। एक रात जोर से वर्षा होती थी, अमावस की रात और एक आदमी ने दरवाजे पर दस्तक दी। पति ने कहा--द्वार खोल दे। पत्नी ने कहा कि ठीक नहीं द्वार खोलना, वर्षा जोर की है, कोई शरण चाहता होगा, जगह कहां है? पति ने कहाः कोई फिकर नहीं, दो के सोने योग्य जगह है, तीन के बैठने योग्य होगी; दरवाजा खोल। दरवाजा खोला। एक मेहमान भीतर आया, उसने कहाः क्या मैं रात भर विश्राम कर सकता हूं? पति ने कहा मजे से। तीनों बैठ गए, गणशप शुरू होने लगी। फिर किसी ने थोड़ी देर बाद दस्तक दी। पति ने पत्नी से कहाः खोल। उसने कहाः अब बहुत मुश्किल हो जाएगी। जगह कहां है? पति ने कहा कि तीन जरा दूर-दूर बैठे हैं, चार.जरा पास-पास बैठेंगे। जगह की क्या कमी है, हृदय चाहिए; दरवाजा खोल। वह आदमी भी भीतर ले लिया। फिर थोड़ी देर में एक आदमी आ गया और उसने दस्तक दी। रात है और रास्ता अंधेरा भरा है और लोग भटक गए हैं रास्ते पर और मार्ग नहीं खोज पा रहे हैं। पति ने कहाः दरवाजा खोल। पत्नी ने कहाः बहुत हुआ जा रहा है। पति ने कहाः अभी जरा सुविधा से बैठे हैं, फिर थोड़ी असुविधा होगी, जगह की कहां कमी है? और प्रेम हो, तो असुविधा क्या है? दरवाजा खोल।
अब तक तो बात ठीक थी, थोड़ी देर बाद एक गधे ने आकर दरवाजे पर जोर से सिर मारा। पति ने कहाः दरवाजा खोल। पत्नी ने कहाः अब सीमा के बाहर बात हुई जा रही है। अब यहां जगह कहां है? और यह गधा है बाहर! इस गधे को भी भीतर ले आएं? पति ने कहाः अभी हम बैठे हैं, इसके लिए काफी जगह है, अब हम खड़े हो जाएंगे। मगर जगह काफी है, अभी जगह कम नहीं है। तू गधे को भीतर ले आ। अब तो वे जो लोग तीन पहले भीतर आ चुके थे, उन्होंने भी विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। पति ने कहाः तुम अपनी सोचो! तुम्हें पता है, यह पत्नी पहले ही से विरोध कर रही थी! अब तुम भी विरोध कर रहे हो। यह कोई अमीर का महल नहीं है जिसमें जगह की कमी हो, यह गरीब का झोंपड़ा है। यह वचन बड़ा अदभुत है--यह कोई अमीर का महल नहीं है--उस फकीर ने कहाः जिसमें जगह की कमी हो, यह गरीब का झोंपड़ा है, इसमें जगह की क्या कमी है? आने दो। गधा भी भीतर आ गया, वे सब खड़े हो गए। अब खड़े होकर गपशप चलने लगी। और उस फकीर ने कहाः देखते हो, जगह बन जाती है, हृदय चाहिए।
संतोष विराट है। असंतोष बड़ा क्षुद्र है। असंतुष्ट आदमी के पास महल भी
हो तो छोटा है, और संतुष्ट आदमी के पास झोंपड़ा भी हो तो बड़ा है। संतुष्ट आदमी जीवन की कला जानता है।

मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
तामें फेर सार कछू नाहीं राम रच्या सोइ पावै।।
और ख्याल रखो--यह संतोष की नई-नई भाव-भंगिमाएं समझा रहे हैं--वे कहते हैं, "तामें फेर सार कछु नाहीं," जो तुम्हें मिला है, उसमें फेर-फार करने की बहुत चेष्टा मत करो; क्योंकि उसमें कभी कोई फेर-फार होता नहीं। धोखे होते हैं फेर-फार के, लेकिन फेर-फार नहीं होता। गरीब अमीर हो सकता है, लेकिन गरीबी नहीं मिटती। फेर-फार ऊपरी होते हैं। तुम बीमार आदमी को सुंदर वस्त्र पहना दो और मुकुट पहना दो और राज-सिंहासन पर बिठा दो, क्या फर्क पड़ता है? उसकी बीमारी उसे भीतर खाए जा रही है। फटे-पुराने कपड़ों में बीमार था, अब सुंदर लबादों में बीमार है, मगर फर्क क्या है? तुम असंतुष्ट आदमी को धन दे दो, वह गरीब था, अब भी गरीब है, कुछ भेद नहीं पड़ता। अज्ञानी के हाथ में शास्त्र दे दो, वह कंठस्थ कर लेगा शास्त्र, अज्ञानी था, अज्ञानी ही रहेगा। शास्त्र के कंठस्थ करने से कुछ भी नहीं होता। हां, और वहम पैदा हो जाएगा कि मैं ज्ञानी हूं।
"तामें फेर सार कछू नाहीं"। संतोष को जिसने जाना है, वह कहता है, कि इस जिंदगी में फर्क होते ही नहीं। तुम लाख दौड़धूप करो, जिंदगी वैसी-की-वैसी बनी रहती है। यहां-वहां थोड़े रंग इत्यादि बदल लो, मगर तुम वैसे के वैसे बने रहते हो। कुछ भेद नहीं आता। तो फिर दौड़धूप का सार क्या है? फिर इतनी आपाधापी क्यों है?
"राम रच्या सोइ पावै।" और जो परमात्मा देता है वही मिलता है, तुम्हारे पाने से नहीं मिलता। "राम रच्या सोइ पावै।" संतोष का अर्थ हैः उसे देना होगा तो देगा, उसे नहीं देना होगा तो नहीं देगा। देगा तो धन्यवाद, नहीं देगा तो धन्यवाद। क्योंकि वह जानता है हमारी जरूरत क्या है। कभी हमारी जरूरत होती है कि हमें मिले और कभी हमारी जरूरत होती है कि हमें नहीं मिले। कभी हमारा विकास न मिलने से होता है, और कभी हमारा विकास मिलने से होता है। और वह जानता है, यह श्रद्धा संतोष है।
यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूं
तूने जीवन-जोत जगाई
मैंने पग-पग ठोकर खाई
जिस रास्ते पर डाले तू मैं उस रास्ते पर हो लूं
यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूं

तूने तो मोती बरसाए
मैंने काले कंकर पाए
मैं झोली में कंकर लेकर मोती जानके रो लूँ
यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूँ

तूने फूल सुहाने बांटे
मेरे भाग में आए कांटे
मैं झोली में कांटे लेकर फूल समझके तोलूं!
यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूं

तूने भेजे अमरित प्याले
पड़ गए मुझको जान के लाले
मैं विस को भी अमृत जानूं तेरा भेद न खोलूं
यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूं
भक्त कहता है, संतोषी कहता है तूने तो सदा ही ठीक किया है, मेरे असंतोष
के कारण ही मैं चूकता रहा हूं। तूने फूल भेजे, मैंने कांटे चुन लिए। तूने अमृत का प्याला भेजा, मैंने उसे विष में बदल लिया। तूने सारे जगत को अपूर्व रूप से सुंदर बनाया है, मैंने इसे कुरूप कर डाला। यह सब तेरी देन है दाता मैं इसमें क्या बोलूं। अब भूल समझ आने लगी है कि अगर दुख पाए तो हमने अपने कारण पाए। लोग कहते हैं--परमात्मा ने इतना दुख क्यों बनाया है? तुम्हें न परमात्मा का पता है, न तुम्हें दुख के रसायन का पता है कि कैसे

दुख निर्मित होता है। परमात्मा ने दुख बनाए नहीं, सिर्फ तुम्हें स्वतंत्रता दी है। और स्वतंत्रता से बड़ा सुख नहीं है जगत में। मगर तुम उस स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे हो। तुम फूलों को कांटे बना लेते हो, अमृत को विष बना लेते हो, मोतियों को कंकड़ बना लेते हो, और फिर दोष देते हो परमात्मा पर।
जिस रस्ते पर डाले तू मैं उस रस्ते पर हो लूं
यही संतोष है। अपनी तरफ से मैं अब कुछ भी न करूंगा। तुझसे भिन्न कुछ
भी न करूंगा। अगर तेरी मर्जी मुझे गरीब रखने की है, तो गरीब रहूंगा। और तेरी मर्जी अगर मुझे अमीर रखने की है, तो अमीर रहूंगा। ख्याल रखना, पहली मर्जी तो तुमने बहुत बार सुनी है साधुओं-संन्यासियों से, दूसरी मर्जी तुमने नहीं सुनी क्योंकि तुम्हारा साधु-संन्यासी भी असली संतोषी नहीं है। एक है, जो कहता है जब तक धनी न होऊँगा तब तक रुकूँगा नहीं। दूसरा कहता है--धन? कभी नहीं। मैं तो निर्धन होकर रहूंगा! एक धन का गौरव गाता है, दूसरा दरिद्रता का गौरव गाता है।

इस देश में तो दरिद्रता का गौरव बहुत गाया गया है। उसी गौरव के कारण तुम दरिद्र हो गए हो। अभी भी तुम्हारे महात्मा दरिद्रता को दरिद्रनारायण का नाम दिए जाते हैं। ठीक है, फिर तुमने दरिद्र होने का तय ही कर लिया है। उसकी तरफ से तो मोती बरसते हैं मगर तुम कांटे बना लेते हो। यहां कोई भी दरिद्र होने को पैदा नहीं हुआ है। परमात्मा से आए हैं सब, कैसे दरिद्र हो सकते हैं! हमने इस देश में परमात्मा को जो नाम दिया है उस पर कभी ख्याल किया? ईश्वर कहां है उसे। ईश्वर का अर्थ होता है--ऐश्वर्य। जिसका सारा ऐश्वर्य है, जिसकी सारी महिमा है, जिसका सारा धन है। हम उससे आए, उसकी किरणें, उसकी संतति, हम कैसे दरिद्र हो सकते हैं! लेकिन कुछ लोगों ने जिद्द कर रखी है कि अमीर होकर रहेंगे। जो आदमी कहता है मैं अमीर होकर रहूंगा, वह भी चूक रहा है। क्योंकि अमीर हम हैं, होने की जरूरत नहीं है।
एक भूल कि मैं अमीर होकर रहूंगा। अमीर थे ही, होने की क्या जरूरत थी? भूल में पड़ गए। फिर अमीर होने की चेष्टा में बहुत दुख पाए। तो जिद्द दूसरी पैदा हुई एक दिन कि मैं अब गरीब होकर रहूंगा। यह अक्सर हो जाता है। आदमी विपरीत पर चला जाता है। अमीरी में बहुत दुख पाए, एक दिन आदमी कहता है कि बहुत हो गया, अमीरी में दुख मिल रहे हैं। अमीरी में दुख नहीं मिल रहे हैं मैं तुमसे कहता हूं, असंतोष में दूख मिल रहे हैं। अमीरी क्या दुख देगी! जब गरीबी तक दुःख नहीं दे सकती तो अमीरी कैसे दुख देगी? असंतोष में दुख मिल रहा है।
मगर असली चीजें हम देखते ही नहीं। हम कहते हैं--अमीरी में दुख मिल रहा है। अमीरी छोड़ कर रहूंगा। मैं गरीब होकर रहूंगा। अब गरीब होने चले! मगर यात्रा जारी है। पहले गरीब से अमीर होने का असंतोष था, अब अमीर से गरीब होने का असंतोष है, लेकिन असंतोष से तुम्हारा नाता नहीं टूटता।
मैं तुमसे जो कह रहा हूं, उसकी क्रांति समझो। मैं तुमसे यह कह रहा हूं--जो हो, जहां हो, जैसे हो, उससे अन्यथा होने की बात ही छोड़ दो। अगर उसके इरादे गरीब होने के हैं, तो गरीब; उसका इरादा अमीर रखने का है, तो अमीर। और तुम तब चकित हो जाओगे। जो तुम हो, जहां हो, जैसे हो, वैसे ही राजी हो जाओ। उस राजीपन में ही असली धन पैदा होता है। राजीपन धन है। उस संतोष में धन है। फिर गरीब भी अमीर हो जाता है। अमीर की तो बात ही क्या करनी, गरीब भी अमीर हो जाता है। अमीरी एक ही बात का नाम है--संतोष का।
लेकिन तुमने दोनों तरह के लोग देखे हैं और तुम समझते हो कि दोनों बड़े विपरीत हैं।.जरा भी विपरीत नहीं हैं। उनका तर्क एक, उनकी तर्कसारणी एक, उनके सोचने की प्रक्रिया एक। असंतोष दोनों का स्वर है।
तामें फेर सार कछू नाहीं राम रच्या सोई पावै।।
बाछै सरग सरग नहिं पहुंचै, और पताल न जाई।
वासना से न कोई स्वर्ग पहुंचता है, और न कोई नरक पहुंच सकता है। "बाछै सरग सरग नहिं पहुंचै।" तुम्हारी चाह से ही तुम स्वर्ग नहीं जा सकते। चाह से तो तुम कहीं भी नहीं जा सकते। चाह का मतलब है--तुम परमात्मा से लड़ रहे

हो। चाह का मतलब है--तुम्हारी निजी आकांक्षा है कुछ। तुम इस विराट की आकांक्षा के साथ एकरस नहीं हो। तुम कहते हो--मैं अपनी खिचड़ी अलग पकाऊंगा। यह जो खिचड़ी पक रही है विराट की, तुम इसमें भागीदार नहीं होना चाहते, तुम कहते हो--मैं अपनी हांडी अलग चढ़ाऊंगा। ढाई चावल की खिचड़ी तुम अलग पकाना चाहते हो। बस वहीं तुम्हारी पीड़ा है, वहीं तुम्हारी चूक है।
"बाछै सरग सरग नहिं पहुंचै।" तुम्हारी चाहना से थोड़े ही तुम स्वर्ग पहुँचोगे। चाह को छोड़ो और तुम पाओगे--तुम स्वर्ग में ही हो; तुम स्वर्ग में ही थे।
ऐसे जानि मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई।।
"ऐसे जानि मनोरथ मेटहु।" इतनी बात जान लो कि तुम्हारे करने से कुछ होगा नहीं, तुम्हारे चाहने से कुछ होगा नहीं, तुम्हारे दौड़ने से कुछ होगा नहीं। तुम ही झूठ हो, इसलिए तुमसे जितनी चीजें पैदा होती हैं सब झूठ होंगी। राम सच है। तुम राम के साथ एकलीन हो जाओ, वही संतोष है। संतोष का मतलबः तेरी मर्जी सो मेरी मर्जी। मेरी अब कोई अलग मर्जी नहीं। और जिस दिन तेरी मर्जी सो मेरी मर्जी, उस दिन तुम कहां बचोगे? तुम तो बचते ही हो मेरी मर्जी की आड़ में। तुम कहते हो कि मैं तो ऐसा चाहता।
यहां रोज होता है। संन्यासी आकर मुझसे कहते हैं--हम सब आपके ऊपर समर्पण करते हैं। आप जो कहेंगे, वही हम करेंगे। जो मैं कहता हूं, करते नहीं! यहां तक हो जाता है कि मैं उनसे वही कह रहा हूं कि यह करो, और वे कहते हैं कि नहीं, हम तो वही करेंगे जो आप कहते हैं।
एक युवती ने संन्यास लिया; कहा कि मैं तो वही करूंगी जो आप कहेंगे। मैंने कहाः ठीक; अब यह पहला काम है कि तू वापिस घर जा। मैं कहीं जा ही नहीं सकती, उसने कहा। मैं तो वही करूंगी जो आप कहेंगे। मैंने कहाः तू सुन रही है? तेरे मां-बाप दुखी होंगे, अभी तेरी उम्र भी ज्यादा नहीं, वे परेशान होंगे, अभी तू जा। धीरे-धीरे जब वे राजी हो जाएंगे, तू आ जाना। उसने कहा कि आप मुझे हटा नहीं सकते यहां से! मैंने तो सब समर्पण ही कर दिया! और मैं नहीं हटा पाया उसे, दो साल हो गए, तीन साल हो गए, वह नहीं हटती। वह कहती है-- समर्पण ही कर दिया! और आप जो कहेंगे वही करने वाली हूं, मैं तो कुछ अब बची ही नहीं। देखते हैं तरकीब आदमी कैसी खेल लेता है?
एक युवक संन्यासी ने पत्र लिखा मुझे कि मेरा मन कुछ दिनों से कुछ समय
के लिए वापिस घर जाने का है, अमरीका जाने का है। मगर जो आप कहेंगे, वही मैं करूँगा। मैंने उससे कहाः कोई जाने की अभी जरूरत नहीं है। दूसरे दिन उसका पत्र आया कि आपका उत्तर सुनकर चित्त बहुत उदास हो गया है; चित्त में जाने- ही-जाने की धुन लगी है; हालांकि जो कुछ आप कहेंगे वही मैं करूंगा। तो मैंने उसे खबर भेजी कि ठीक है, तू चला जा। तब उसका पत्र आया कि मैं अति आनंदित हूं। इस बात से मेरे हृदय को बड़ी शांति मिल रही है कि जो आप कह रहे हैं, वही मैं करने जा रहा हूं। देखते हैं मजाक! लोग प्रतीक्षा करते हैं उस समय तक जब तक तुम्हारी मर्जी की बात न कही जाए। तब तक वे कहते रहते हैं कि आप जो कहेंगे वही करेंगे--करते नहीं। जब वही बात कह दो जो वे करना ही चाहते थे पहले से, तब वे कहते हैं--देखो समर्पण! मैं तो सब समर्पित ही कर दिया हूं! आप तो नरक जाने को कहें तो वहां चला जाऊंगा, अमरीका का तो क्या है! जाऊँगा, जब आप कहते हैं तो जरूर जाऊंगा!
आदमी का मन बड़ा बेईमान है।
मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद जाता है। मस्जिद के मौलवी को उसने कहा कि सुबह आने की बड़ी मुश्किल होती है, तय ही नहीं कर पाता, तय ही करने में समय निकल जाता है, कि जाऊं कि न जाऊं, जाऊं कि न जाऊं; मन में बड़ी दुविधा रहती है, अब आप तो जानते ही हैं। मन दुविधाग्रस्त है मेरा। मौलवी ने कहाः तू एक काम कर, परमात्मा पर छोड़ दे। उसने कहा--यह कैसे तय होगा और पक्का कैसे पता चलेगा कि परमात्मा की मर्जी क्या है? मुल्ला थोड़ा डरा भी, क्योंकि परमात्मा की मर्जी तो निश्चित ही यह होगी कि मस्जिद जाओ। मगर उसने कहा कि पक्का कैसे चलेगा कि परमात्मा की मर्जी क्या है? तो मौलवी ने कहाः तू ऐसा काम कर, एक रुपया रख ले और कहा कि अगर चित गिरे तो परमात्मा चाहता है मस्जिद जाओ, और अगर पुत गिरे तो परमात्मा चाहता है कि मस्जिद मत जाओ।

दूसरे दिन मुल्ला नहीं आया। रास्ते में बाजार में मौलवी को मिला, मौलवी ने पूछाः आए नहीं, भाई? उसने कहा कि आपने कहा था, वही किया। मौलवी ने कहा तो क्या हुआ? पुत गिरा रुपया? उसने कहा कि पहली बार में तो नहीं गिरा। सत्रह बार फेंकना पड़ा, तब पुत गिरा। मगर गिरा। जब पुत गिरा तब फिर मैं निश्चिंत सो गया; मैंने कहा कि अब जब परमात्मा की ही मर्जी है!
आदमी बहुत बेईमान है। अपनी मर्जी को परमात्मा पर भी थोपने की चेष्टा करता है। वहीं से उसके सारे कष्टों का जन्मस्रोत है।
"ऐसे जानि मनोरथ मेटहु"। इस दुखों के जाल को देख कर अब अपने मनोरथ मिटा दो। यह जो मन के रथों में बैठ कर तुम यात्राएं कर रहे हो--ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए; ऐसा बन जाए, वैसा बन जाए; ये जो मन के रथ हैं, इनको अब मिटा दो। अब मन के रथ से उतर आओ।
ऐसे जानि मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई।।
और फिर? फिर सुख ही सुख है। फिर दुख तो जाना ही नहीं गया है कभी। जिसने
भी परमात्मा के चरणों में समर्पण किया, उसने दुःख नहीं जाना। उस समर्पण में ही सारे दुःख मिट जाते हैं। उस समझ में ही सुख का सागर उमड़ आता है। परमात्मा से हमारी दूरी ही इतनी है--मेरी मर्जी। बस उतनी दूरी है।
फिर कहां आर्जू का लुत्फ रहा?
आर्जू हो गई अगर पूरी
और जन्नत है क्या, जहन्नुम क्या
तेरी कुर्बत है इक तेरी दूरी
बस एक ही सारा उपद्रव है--"तेरी कुर्बत है इक तेरी दूरी।" तुझसे फासला
बस जीवन का सारा कष्टों का सार है। तेरी समीपता जीवन के सुखों का सार है। स्वर्ग है तेरी कुर्बत, तेरे पास होना। और नरक है तुझसे दूर होना। दूरी और पास होने के बीच में दीवाल क्या है? मेरी मर्जी या तेरी मर्जी। जिस दिन तुम पूरे हृदय से कह सकोगे--तेरी मर्जी पूरी हो, उस दिन के बाद फिर दुख नहीं है।
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि विस्वासा
जन रज्जब यूं जानि भजन करु, गोविंद है घर वासा।।
"रे मन, मानि सीख सतगुरु की।" इतनी ही तो सीख है सतगुरुओं की, इतनी छोटी सी ही तो बात है--कुंजियां तो छोटी ही होती हैं; महल कितने ही बड़े हों जिनके द्वार खुल जाते हैं, कुंजियां तो छोटी ही होती हैं--इतनी ही सीख है सतगुरुओं की। क्या है? संतोष से दोस्ती बना लो। "हिरदै धरि विस्वासा"। कौन कर सकेगा संतोष से दोस्ती? जिसे जीवन में श्रद्धा है।
समझना इसे।
तुम मां के पेट में थे नौ महीने तक, कोई दुकान तो चलाते नहीं थे, फिर भी जिए। हाथ-पैर भी न थे कि भोजन कर लो, फिर भी जीए। श्वास लेने का भी उपाय न था, फिर भी जिए। नौ महीने मां के पेट में तुम थे, कैसे जिए? तुम्हारी मर्जी क्या थी? किसकी मर्जी से जिए? फिर मां के गर्भ से जन्म हुआ, जन्मते ही, जन्म के पहले ही मां के स्तनों में दूध भर आया, किसकी मर्जी से? अभी दूध को पीने वाला आने ही वाला है कि दूध तैयार है, किसकी मर्जी से? गर्भ से बाहर होते ही तुमने कभी इसके पहले श्वास नहीं ली थी मां के पेट में तो मां की श्वास स से ही काम चलता था--लेकिन जैसे ही तुम्हें मां से बाहर होने का अवसर आया, तत्क्षण तुमने श्वास ली, किसने सिखाया? पहले कभी श्वास ली नहीं थी, किसी पाठशाला में गए नहीं थे, किसने सिखाया कैसे श्वास लो? किसकी मर्जी से? फिर कौन पचाता है तुम्हारे दूध को जो तुम पीते हो, और तुम्हारे भोजन को? कौन उसे हड्डी-मांस-मज्जा में बदलता है? किसने तुम्हें जीवन की सारी प्रक्रियाएं दी हैं? कौन जब तुम थक जाते हो तुम्हें सुला देता है? और कौन जब तुम्हारी नींद पूरी हो जाती है तुम्हें उठा देता है? कौन चलाता है इन चांद-सूर्यों को? कौन इन वृक्षों को हरा रखता है? कौन खिलाता है फूल अनंत-अनंत रंगों के और गंधों के?
इतने विराट का आयोजन जिस स्रोत से चल रहा है, एक तुम्हारी छोटी सी जिंदगी उसके सहारे न चल सकेगी? थोड़ा सोचो, थोड़ा ध्यान करो। अगर इस विराट के आयोजन को तुम चलते हुए देख रहे हो, कहीं तो कोई व्यवधान नहीं है, सब

सुंदर चल रहा है, सुंदरतम चल रहा है; सब बेझिझक चल रहा है। तुम छोटे से अंश हो इस जगत के, तुम्हें यह भ्रांति कब से आ गई कि मुझे स्वयं को अलग से चलाना पड़ेगा? मुझे अपना जिम्मा अपने ऊपर लेना पड़ेगा? इसी भ्रांति में तुमने अपने जीवन के सारे कष्ट, असफलताएं और विषाद पैदा कर लिए हैं।
"हिरदै धरि विस्वासा।" ख्याल रखना, रज्जब या मैं तुमसे किसी सिद्धांत में विश्वास करने को नहीं कहते हैं। यह नहीं कहते--गीता में विश्वास करो। उससे तुम धार्मिक नहीं बनोगे, हिंदू बन जाओगे। हिंदू का धार्मिक होने से क्या लेना-देना! यह नहीं कहता--कुरान में विश्वास करो। उससे तुम मुसलमान बन जाओगे। और पृथ्वी पर मुसलमान के कारण काफी उपद्रव हो चुके हैं। मैं तुमसे कहता हूं--जीवन में भरोसा करो, किताबों में नहीं। मंदिर-मस्जिदों में नहीं, इस विराट अस्तित्व में भरोसा करो। और इसी भरोसे में संतोष का जन्म हो जाएगा। यह भरोसा और यह संतोष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम्हारा असंतोष इतना ही तो कह रहा है न कि मुझे अपना इंतजाम खुद करना है। अगर मैं न करूंगा तो कौन करेगा?
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि विस्वासा।
जन रज्जब यूं जानि भजन करु गोविंद है घर वासा।।
घर के भीतर गोविंद बसा है, तू किस फिकर में पड़ा है? कर भजन, नाच, आनंदमग्न हो--संतो, मगन भया मन मेरा--नाचो, गाओ, गुनगुनाओ, गोविंद ने तुम्हारे भीतर वास किया है। गोविंद तुम्हारे भीतर बैठा है।
हुआ करें तेरे कान आशनाए शोरे-जर्स
सफर का दिल में इरादा नहीं तो कुछ भी नहीं
हमारे बुतकदए-दिल में ढूंढ तो जाहिद!
यहीं कहीं तेरा काबा नहीं तो कुछ भी नहीं
"हुआ करें तेरे कान आशनाए शोरे-जर्स"। ऐ पुजारी, मंदिर की घंटियों की आवाज सुन-सुन कर तेरे कान फूट भी जाएं तो कुछ न होगा।
हुआ करें तेरे कान आशनाए शोरे-जर्स
सफर का दिल में इरादा नहीं तो कुछ भी नहीं
सुनता रह मंदिर की घंटियों को, करता रह पूजा और पाठ, लेकिन अगर परमात्मा में डूबने की आकांक्षा नहीं; अगर असंतोष छोड़ने की, संतोष जगाने की कोई आकांक्षा नहीं--सफर का दिल में इरादा नहीं तो कुछ भी नहीं।
यह सब मंदिर-मस्जिद तेरी बनावटें हैं, तेरे झूठ, आदमी की ईजादें।
हमारे बुतकदए-दिल में ढूंढ तो जाहिद! और तू चला है बड़ा विराग साधने, बड़ा वैराग्य साधने, बड़ी तपश्चर्या करने; ऐ जाहिद, हमारे बुतकदए-दिल में, हमारे हृदय के मंदिर में भी तो जरा झांक! "यहीं कहीं तेरा काबा नहीं तो कुछ भी नहीं"। अगर यहीं तेरा काबा न मिल जाए, तो कहीं भी नहीं मिलेगा।
"हिरदै धरि विस्वासा"; "गोविंद है घर वासा।" भीतर गोविंद का वास है। रचाओ रास! कहां के असंतोष में पड़ गए हो? किसे पाने चले हो? मालिकों का मालिक भीतर है! सम्राटों का सम्राट भीतर है!
हरिनाम मैं नहिं लीनां। मगर कहां फुरसत गोविंद को भीतर खोजने की?
हरिनाम मैं नहिं लीनां।
पांच सखी पांचू दिसि खेलैं, मन मायारस भीनां।।
आदमी तो इन पांच इंद्रियों के जाल में पड़ा है। सोचता भोजन की, वह जीभ
का रस। सोचता संगीत की, वह कान का रस। सोचता स्पर्श की, वह देह का रस। फुरसत कहां है भीतर झांके, अंतर के काबा को खोजे? फुरसत कहां है कि गोविंद की तलाश करे? बाहर ही बाहर सब उलझा रह जाता है; सारा जीवन उसी में बीत जाता है। भोजन की तलाश करो, भोग की तलाश करो, सौंदर्य की तलाश करो, संगीत की तलाश करो, सुगंध की तलाश करो--इंद्रियां ही भरमाए रखती हैं। इंद्रियों के चक्कर में आदमी बाहर ही बाहर चलता रहता है, भीतर जाने का अवकाश नहीं मिलता, और हम चूक जाते हैं उससे जो हमारा है; और हम भटकते रहते हैं भिखारियों की तरह। हरिनाम मैं नहिं लीनां
पांच सखी पांचू दिसि खेलैं...
और ये जो पांच इंद्रियां हैं, अलग-अलग पांच दिशाओं में इनकी यात्रा है। इसलिए तुम भी टूट गए खंड-खंड में--एक हिस्सा इधर जा रहा है, एक हिस्सा

उधर जा रहा है। एक हिस्से को दूसरे की फिकर नहीं है। जीभ के स्वाद में इतना खो जाते हो कि शरीर को कष्ट हो रहा है, इसकी फिकर नहीं है। शरीर के विश्राम में इतने सो जाते हो कि चित्त मलिन हो जाता है, उदास हो जाता है, इसकी फिकर नहीं है। एक-एक इंद्रिय अपनी-अपनी तरफ खींच रही है। तुम पांच इंद्रियों के जाल में हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक घर में चोरी करने गया। चोरी तो नहीं कर पाया, क्योंकि घर के लोग जागे थे। उस घर के मालिक की दो पत्नियाँ थीं। एक ऊपर रहती, एक नीचे। और दोनों उसको खींच रही थीं। ऊपरवाली पत्नी ऊपर की तरफ खींच रही थी, नीचे रहने वाली पत्नी नीचे की तरफ खींच रही थी! सो तुम समझ सकते हो जो उसकी फ.जीहत हो रही थी। घर में ऐसा उपद्रव मचा था कि मुल्ला छिपा हुआ एक कोने में, गबराया हुआ कि कब यह लोग शांत हो जाएं तो मैं भागुं। मगर भाग न पाया। वह आशांति रात भर चली। यह अशांतिया कोई ऐसी ही थोड़ी है कि खतम हो जाए आसानी से। वह उपद्रव रात भर चला--सुबह मुल्ला घर में ही पकड़ा गया--निकलने का मौका न मिला।
अदालत में मुकदमा चला। मजिस्टेट ने पूछा कि तुम भाग क्यों नहीं सके? उसने कहाः भागने का उपाय नहीं था। घर में ऐसा उपद्रव मचा था--एक तो मैं उत्सुक भी हो गया उपद्रव देखने में, और दूसरा उपद्रव ऐसा था और इन दोनों स्त्रियों ने ऐसी मरम्मत की अपने पति की कि मैं डरा भी कि अगर मैं पकड़ा गया तो मेरी क्या गति होगी! जब पति की यह गति हो रही है! तो मजिस्टेट ने पूछाः अब तुम्हें क्या कहना है? उसने कहाः हुजूर, मुझे सिर्फ एक ही बात कहनी है कि और सब दंड देना मगर दो स्त्रियों से विवाह करने का दंड मत देना। सब तरह की सजा भोगने को तैयार हूं, मगर जो देखा है उस रात, बस दो स्त्रियों से मेरी शादी मत करवा देना! इतना भर मुझे कहना है। और मुझे कुछ कहना नहीं है। लेकिन दो स्त्रियों का क्या सवाल है, यहां पांच स्त्रियाँ हैं एक-एक
के पीछे। पांचों इंद्रियाँ खींच रही हैं। तुम्हारी फ.जीहत हुई जा रही है। तुम टूट गए हो खंड-खंड में।
पांच सखी पांचू दिसि खेलैं, मन मायारस भीनां।।
और मन है कि सपनों में डूबा हुआ है। इसलिए जो भीतर मौजूद है, उसका पता नहीं चलता। गोविंद है घर बासा, मगर पता कैसे चले? और प्रतिपल पुकार रहा है गोविंद भीतर से, मगर पता कैसे चले?
नसीमे-सहर ने मुझे गुदगुदाया
हँसाया, हँसा कर यह मुझको बताया
--कि वे आ गए हैं

चहकते हुए पंछियों ने जगाया
जगाया, जगाकर यह मुझको बताया
--कि वे आ गए हैं

महकने लगा फिर गुलाबी सवेरा
मिला मुझसे बिछड़ा हुआ प्यार मेरा मुहब्बत भरा गीत भँवरों ने गाया लुभाया, लुभाकर यह मुझको बताया --कि वे आ गए हैं

दुल्हन मेरे ख्वाबों की सजने लगी है फजाओं में पायल-सी बजने लगी है तराना कोई बादलों ने सुनाया सुनाया, सुनाकर यह मुझको बताया --कि वे आ गए हैं

मचलने लगीं मेरे दिल की उमंगें जवां हो गईर्ं फिर पुरानी तरंगें! किसी ने मेरे दिल को झूला झुलाया

झुलाया, झुला कर यह मुझको बताया --कि वे आ गए हैं
हवा मुस्कराई, फजा गुनगुनाई
किसी के लिए सेज मैंने बिछाई
बहारों ने फिर मेरा घूंघट उठाया
उठाया, उठा कर यह मुझको बताया
--कि वे आ गए हैं
परमात्मा प्रतिक्षण आ रहा है। हवाएं भी उसकी खबर लाती हैं, बादलों की गड़गड़ाहट भी उसकी खबर लाती है; चांद भी उसकी खबर लाता है, सूरज भी उसकी खबर लाता है; फूल खिलते हैं और उसकी खबर लाते हैं, हर घड़ी उसकी खबर आ रही है--कि वे आ गए हैं--लेकिन तुम्हें फुरसत कहां? तुम उलझे हो अपनी इंद्रियों के चक्कर में। तुम खींचे जा रहे हो। तुम बड़ी झंझट में पड़े हो। तुम्हारा जीवन एक उपद्रव है।
"मन मायारस भीनां।" मायारस का अर्थ होता हैः सपनों का रस। नहीं है, उसमें उलझे हो। और जो नहीं है, उसमें उलझे होने के कारण उससे वंचित हो, जो है।
कौन कुमति लागी मन मेरे, प्रेम अकारज कीनां।
किस कुबुद्धि में पड़ गए हो, किस बेहोशी में जी रहे हो, कैसी नींद है यह
कि व्यर्थ से प्रेम कर लिया है। "प्रेम अकारज कीनां।" जिससे कुछ हल नहीं होगा, उससे प्रेम कर लिया है। और जिससे सब हल हल हो जाए, उससे प्रेम नहीं किया--असंतोष से प्रेम कर लिया है और संतोष से प्रेम नहीं किया। मन रे, करु संतोष सनेही।
देख्या उरझि सुरझि नहिं जान्यूं, विषय विषयरस पीनां।।
उलझना तो तुमने खूब कर दिया है, अब समझ में नहीं आ रहा है कि सुलझें कैसे! सूत्र दे रहे हैं रज्जब। उलझने का सूत्र है-- असंतोष। बहुत समस्याएं नहीं हैं तुम्हारे जीवन में। बहुत लक्षण हैं, समस्या तो एक ही है--असंतोष। "देख्या उरझि सुरझि नहिं जान्यूं", उलझना तो तुमने जान लिया, खूब उलझ
गए हो और अब कहते हो--सुलझूं कैसे? लेकिन अगर तुम ठीक से समझो अपनी उलझन को तो तुम पाओगे--सबके पीछे असंतोष है। और सूत्र मिल जाए असंतोष का तो सुलझने का सूत्र भी हाथ में आ गया। बस असंतोष से "अ" को अलग कर देना है। "अ" यानी अभाव। असंतोष अभाव में, लगाव में लगाए रखता है, "अ" के अलग होते ही भाव हो जाता है। जो है, उसका अनुभव शुरू हो जाता है।
... विषम विषयरस पीनां।।
कहिए कथा कौन विध अपनी, बहु बैरनि मन खीनां।
और तुम्हारी कथा ही क्या है? इतनी ही कथा है कि कितनी चोटें खाईं, कितने घाव खाए, कितनी पीड़ाएं झेलीं, इतनी ही कथा है कि कितनी-कितनी काँटे की झाड़ियों में उलझे। तुम्हारी कथा क्या है, व्यथा ही तुम्हारी कथा है।
कहिए कथा कौन विध अपनी, बहु बैरनि मन खीनां।
बहुत शत्रुओं के जाल में पड़ गए।
आतमराम सनेही अपने, ...
और गोबिंद भीतर बैठा है; असली प्यारा, असली मित्र भीतर बैठा है।
आतमराम सनेही अपने, सो सुपिनै नहिं चीनां।।
जागने की तो बात और सपने में भी ख्याल नहीं आता परमात्मा का। सपने तक में उसकी झलक नहीं पड़ती। और मौजूद है परमात्मा हर घड़ी। जागे हो तब भी मौजूद है, सोए हो तब भी मौजूद है, सपने में भी मौजूद है।
मैत्रेय जी ने एक प्रश्न पूछा है कि आप कहते हैं सपना झूठा है। सपना
अगर झूठा है तो फिर सच क्या है? सपने को देखने वाला सच है। आंख खुला सपना भी झूठा है, आंख बंद किया सपना भी झूठा है, मगर दोनों के बीच एक सूत्र है जो जोड़ रहा है--देखने वाला, द्रष्टा। द्रष्टा सच है।
दृष्टि बदलो, दृश्य से द्रष्टा पर लौट आओ। बाहर न जाओ, भीतर आ जाओ। "हिरदै धरि बिस्वासा", "गोविंद है घर वासा।" जब तुम गहरे से गहरे सपने में भी खोए हो, तब भी तुम्हारे भीतर जो देख रहा है सपने को, वह स्वयं गोविंद है,

वह स्वयं परमात्मा है। द्रष्टा परमात्मा का स्वभाव है। दृश्य में उलझ जाना हमारी उलझन है। हमारी ईजाद। द्रष्टा पर जाग जाना उलझन का अंत।
आतमराम सनेही अपने, सो सुपिनै नहिं चीनां।।
आन अनेक आनि उर अंतरि, पग पग भया अधीनां।
कितनी वासनाओं में उलझ गए! अनेक विषयों को मन में स्थान दे दिया है।
"आन अनेक आनि उर अंतरि"--कितने लोग बसा लिए भीतर; कितनी वासनाएं, कितनी आकांक्षाएं! इसी भीड़ में भीतर का गोविंद खो गया है। उसकी आवाज बड़ी धीमी है, और तुम्हारी वासनाओं का शोरगुल बहुत बड़ा है।
पग-पग भया अधिना--और इन्हीं के कारण तुम पग-पग भिखमंगे हो। जब तक वासना है, तब तक भिखमंगापन है। जब तक असंतोष है, तब तक भिखमंगापन है। फरीद अकबर के पास गया था, क्योंकि फरीद के गांव के लोगों ने कहाः अकबर से कहो, एक स्कूल बनवा दे। और तुम्हें तो इतना मानता है तो जरूर तुम्हारी बात मान लेगा। फरीद गया। कभी राजमहल गया नहीं था। जब कभी आना था तो अकबर खुद आता था उससे मिलने। गया। पता चला अकबर अभी प्रार्थना करता है मस्जिद में, तो वह मस्जिद में जाकर खड़ा हो गया देखने कि क्या प्रार्थना करता है अकबर? प्रार्थना सुनी तो चकित हुआ। प्रार्थना कर रहा था अकबर हाथ उठा कर कि हे मालिक, या मालिक, मुझे और धन दे, और दौलत दे, मेरे साम्राज्य को बड़ा कर! फरीद तो लौट पड़ा।
अकबर ने प्रार्थना पूरी की, आंख खोल कर देखा, फरीद को लौटते सीढ़ियां उतरते देखा तो दौड़ा, कहा--कैसे आए और कैसे चले? फरीद ने कहा--आए थे सम्राट के पास, भिखारी को देख कर चले। नहीं-नहीं, अब तुमसे कुछ भी न कहूंगा! तुम्हारे पास वैसे ही कम है, मदरसा तुम मेरे गांव में बनवाओगे और कमी हो जाएगी। नहीं-नहीं, बात ही खत्म हो गई। अकबर ने कहाः कौन सी पहेली बूझ रहे हैं, मेरी कुछ समझ में नहीं आता, कौन सा मदरसा, कौन सा सम्राट, कौन सा भिखारी, क्या कह रहे हैं आप? फरीद ने कहाः आया था गांव के लोगों की बात मान कर कि एक स्कूल खुलवा दें। मगर यहां मैंने देखा कि तुम अभी भी मांग रहे हो-- हे परमात्मा, हे मालिक, और धन दे, और दौलत दे, मेरे राज्य को बड़ा कर। तो फिर तुमसे क्या मांगना? फिर मैंने सोचा कि जिससे तुम मांग रहे हो, उसी से हम भी मांग लेंगे। अगर मांगना ही होगा, तो फिर बीच में और एक दलाल क्यों लेना! और तुम तो वैसे ही दरिद्र हो, मेरे पास कुछ होता तो तुम्हें देकर जाता। मगर मैं गरीब आदमी, मेरे पास कुछ है नहीं। तुम्हारी प्रार्थना सुन कर मुझे ऐसी दया आने लगी है कि कुछ होता तो सब दे देता--यह बेचारा मांग रहा है!
तुम ख्याल रखना, तुम्हारे सम्राट भी भिखमंगे हैं। जब तक वासना है तब
तक कोई सम्राट हो ही नहीं सकता। "पग पग भया अधीनां।"
जन रज्जब क्यूं मिलै जगतगुरु, जगत माहिं जी दीनां।।
दो चीजें हैं--जगत, जो तुम्हारे बाहर फैला है, और जगतगुरु, जो तुम्हारे भीतर बैठा है। जगत में ही उलझे रहे तो जगतगुरु से चूक जाओगे। और असंतोष जगत में उलझाए रखता है। संतोष जगत से सुलझा देता है। और जैसे ही चित्त सुलझता है जगत से, जाओगे कहां फिर? जब जाने की अब कोई इच्छा न रही, वासना न रही, कोई असंतोष न रहा, कोई अतृप्ति न रही, तो कहां जाओगे फिर? होओगे तो कहीं? तब तुम अपने भीतर होओगे। तभी तुम गोबिंद के रस में डूब जाओगे। जगतगुरु भीतर बैठा है। जगत को बनाने वाला भीतर बैठा है। बस इतना ही करना है, एक छोटा सा सूत्र--असंतोष को संतोष में बदल देना है।
मन रे, करु संतोष सनेही।
तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग की, दुख पावै नहिं देही।।
मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
तामें फेर सार कछू नाहीं राम रच्या सोइ पावै।।
बाछै सरग सरग नहिं पहुंचै, और पताल न जाई।
ऐसे जानि मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई।।
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि बिस्वासा।
जन रज्जब यूं जानि भजन करु, गोबिंद हैं घर वासा।।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
आठवां प्रवचन

अहेतुक प्रेम भक्ति है

पहला प्रश्न:
दर्शन दो भगवान
मेरी अंखियां प्यासी रे
तीन-चार दिन से जबसे आपसे आंख मिली है, तबसे अविरत गुंजन हो गई थी। कल संध्या आपके चरणों में गिरते ही धुन विदा हो गई, शब्द निःशब्द हो गए। यह कैसी पुकार!

चितरंजन! शब्द की पुकार गहरी पुकार नहीं। निःशब्द की पुकार ही गहरी पुकार है। प्रार्थना जब तक शब्दमय होती है, तब तक छिछली होती है, उथली होती है। प्रार्थना जब निःशब्द हो जाती है, तभी गहराई लेती है। बोली जा सके जो प्रार्थना, वह मस्तिष्क की ही तरंग है। बोली न जा सके जो प्रार्थना, वही हृदय का आविर्भाव है। गूंज से शुरू होती है बात, शून्य पर पूरी होनी चाहिए।
"दर्शन दो भगवान
मेरी अंखियां प्यासी रे"
ठीक है, यहीं से शुरू होगी बात। इसी अभीप्सा से। लेकिन अगर ये शब्द बहुत ज्यादा पकड़ मारकर बैठ जाएं, तो इन्हीं शब्दों के कारण दर्शन असंभव हो जाएगा। यही शब्द गूंजते रहेंगे। इनकी गूंज के कारण ही उसकी गूंज सुना न पड़ सकेगी। वह बोल रहा है। लेकिन उसका बोलना निःशब्द है, मौन है। उसे समझना हो तो भी निःशब्द और मौन में ही समझना होगा। उससे पहचान बनानी हो तो उसकी ही भाषा सीखनी पड़ेगी। उसकी भाषा संस्कृत नहीं है; न अरबी है, न हिंदी है, उसकी कोई भाषा नहीं है। सन्नाटा उसकी भाषा है। शून्य उसकी भाषा है। मौन उसकी भाषा है। जैसे-जैसे प्रार्थना गहरी होने लगेगी वैसे-वैसे मौन होने लगेगी। फिर एक भाव ही रह जाएगा। भाव जो रोएं-रोएं में समाया होगा। भाव जो धड़कन-धड़कन में धड़केगा। भाव जिसे तुम पकड़ भी न पाओगे, मगर होगा। उसी भाव की पहुँच हो सकती है। उसी भाव के पास पंख होते हैं परमात्मा तक पहुंचने के।
तो ठीक हुआ अनुभव। शब्द छोड़ना है, शब्द से मुत्त होना है, निःशब्द से जुड़ना है। मेरे पास आए हो इसीलिए बोलता हूं इसीलिए कि तुम्हें किसी तरह अबोल की तरफ ले चलूं। समझता हूं इसीलिए कि किसी तरह समझाने के पार ले चलूं। शब्दों का उपयोग शब्दों की हत्या के लिए ही किया जा रहा है। जैसे एक कांटे से दूसरा कांटा निकाल लेते हैं, ऐसे तुमसे बोल रहा हूं। ताकि मेरा कांटा ई तुम्हारे कांटे को निकाल ले। फिर दोनों फेंक देने हैं। फिर उस खालीपन में ही उसका आविर्भाव होता है। जब कोई शब्द की तरंग नहीं होती तब कुछ सुनाई पड़ता है। और जो सुनाई पड़ता है, वह तुम्हारा नहीं है फिर, वह किसी का नहीं है फिर, फिर वह समस्त का है। फिर वह पूरे अस्तित्व के प्राणों से उठा है। वही अनुभव रूपांतरित करता है।
तुम ठीक प्रतीति से गुजरे। मेरे पास आओगे तो पहले तो शब्द ही गूंजेंगे। पर धीरे-धीरे शब्द छूटते चले जाएंगे। फिर मैं यहां बोलता भी रहूंगा, वहां तुम सुनते भी रहोगे, और न तो मैं यहां बोल रहा हूं और न तुम वहां सुन रहे हो। तब घटना घटेगी। मेरे बोलने में शून्य है, देर-अबेर तुम्हारे सुनने में भी शून्य हो जाएगा। तब इन दो शून्यों का मिलन होगा।

दूसरा प्रश्न: मुझे यहां आने का कोई कारण भी नजर नहीं आता। मगर न जाने आपकी कशिश मुझे यहां क्यों खींच लाती है। किसीके पूछने पर भी उत्तर देने में असमर्थ होती हूं। मगर अब जिंदगी में जीने का मजा आने लगा है। क्यों? साथ ही मैं बिल्कुल पत्थर हो गई हूं। रोना तो जैसे सूख ही गया है।

मुद्रा! यहां आने का कोई कारण हो भी नहीं सकता। और जो कारण से आते हैं,
वे आते जरूर हैं मगर पहुंच नहीं पाते। जो कारण से आते हैं उनका कारण ही मेरे उनके बीच दीवाल बन जाता है। जो अकारण आते हैं, वही आते हैं।
अकारण आने का अर्थ हैः प्रेम से आना। प्रेम इस जगत में एकमात्र अकारण वस्तु है। उसके लिए कोई कारण नहीं बताया जा सकता। और सब चीजों के लिए कारण बताए जा सकते हैं। इसलिए और सब चीजें व्यवसाय का हिस्सा हैं, प्रेम व्यवसाय के बाहर है। और सब चीजें बुद्धि के ही खेल हैं, प्रेम बुद्धि के अतीत है। उसे कशिश कहो, आकर्षण कहो, प्रेम कहो, भत्ति कहो, भाव कहो, लेकिन एक बात सुनिश्चित है नाम कुछ भी दो, कारण उसमें नहीं है। एक खिंचाव है, एक अनजाना खिंचाव है। तुम्हारे बावजूद तुम्हें आजाना पड़ता है। दूसरों को ही नहीं समझा पाती हो, ऐसा नहीं है, खुद को भी कहां समझा पाती हो; खुद भी तो मन कहता है--क्या जरूरत है जाने की? कितने बार तो हो आए! अब बार-बार जाने से क्या सार है? लेकिन तुम्हारे बावजूद भी कोई प्रबल आकर्षण तुम्हें यहां ले आता है। यही आने का ठीक ढंग है। फिर मेरे और तुम्हारे बीच कोई बाधा नहीं होगी, क्योंकि कोई हेतु नहीं होगा। फिर संबंध अहेतुक होगा। अहेतुक प्रेम का नाम ही भत्ति है।
जब तक प्रेम में हेतु होता है, तब तक प्रेम वासना। जिस दिन प्रेम में हेतु गिर गया, उस दिन प्रेम भत्ति। ये प्रेम के ही दो रूप हैं। प्रेम जब तक हेतु से जुड़ा है, तब तक काम, और प्रैम जिस दिन हेतु से मुत्त हो गया, उस दिन राम। ये प्रेम की ही दो यात्राएं हैं। हेतु से जुड़ा तो प्रेम जमीन में गिर जाता है, हेतु से मुत्त हुआ तो आकाश में उड़ने लगता है।
तुमने पूछाः "मुझे यहां आने का कोई कारण भी नजर नहीं आता।"
ठीक ही बात नजर आ रही है। यहां आने का कोई कारण है भी नहीं। यहां आना वैसे ही अकारण है जैसे जीवन अकारण है। यहां आना वैसे ही अकारण है जैसे फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं, सूरज निकलता है, आकाश में रात तारे भर जाते हैं। यहां आना ऐसे ही हो, ऐसे ही सहज, ऐसे ही बिना किसी लाभ-हानि के विचार के, बिना कुछ पाने की दृष्टि के--आध्यात्मिक पाने की दृष्टि भी नहीं। क्योंकि जहां पाने की दृष्टि है वहां लोभ है, जहां लोभ है वहां अध्यात्म कहां? जहां लोभ है वहां संसार है। अगर कोई मंदिर गया और कुछ पाने गया, तो मंदिर नहीं गया। अगर कोई परमात्मा के चरणों में झुका और अर्चना और पूजा और प्रार्थना के पीछे कोई हेतु रहा कि हे प्रभो, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए, यह मिल जाए, वह मिल जाए, तो झुका ही नहीं। झूठ हो गई प्रार्थना, झूठ हो गई अर्चना। वे शब्द जो तुम्हारे ओंठों पर आए, गंदे हो गए। उठने चाहिए शब्द बिना किसी कारण के; तो प्रार्थना तत्क्षण पहुंच जाती है।
मुद्रा! यही है ढंग आने का। मैंने तुम्हें नाम दिया है--प्रेम-मुद्रा। प्रेम की भाव-दशा। यही है प्रेम की भाव-दशा। तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है, कारण बता पाओगे? क्यों हो गया प्रेम? खोजबीन करोगे तो शायद कुछ कारण बता पाओ, लेकिन वे सब कारण नाममात्र के होंगे; उनके कारण प्रेम नहीं हुआ है। बात उलटी ही है। प्रेम हो जाने के कारण उन बातों का मूल्य मालूम पड़ रहा है। तुम किसी व्यत्ति के प्रेम में पड़ गए, फिर कहते हो--देखो उसका शील, देखो उसका प्रसाद, देखो उसका सौंदर्य, इसीलिए तो मेरा प्रेम हो गया। इसी प्रसाद, इसी शील, इसी सौंदर्य के कारण। यह बात सच नहीं है। तुमने गणित को उलटा कर लिया। तुमने गणित को शीर्षासन करवा दिया। तुम्हारा प्रेम हो गया है, इसलिए शील दिखाई पड़ता है, सौंदर्य दिखाई पड़ता है, प्रसाद दिखाई पड़ता है। जब तक प्रेम नहीं हुआ था, इसी आदमी में न तो शील था, न सौंदर्य था, न प्रसाद था, कुछ भी नहीं था। यह ऐसा ही एक आदमी था जैसे और आदमी हैं, ऐसी ही एक स्त्री थी जैसी और स्त्रियाँ हैं। एक आंकड़ा था, आदमी नहीं था। नंबर था। राह पर कई बार गुजरना, साथ मिलना हो गया था, मगर कभी यह ललक पैदा न हुई थी। कभी इसके सौंदर्य से अभिभूत न हुए थे।
फिर एक दिन घटना घटी। अब तुम कहते हो--सौंदर्य के कारण प्रेम हो गया! मैं कहता हूं--प्रेम के कारण सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि प्रेम तो अकारण होता है। कभी-कभी उस व्यत्ति से भी हो जाता है, जिसको कोई सुंदर नहीं मानता। फिर भी जिसका हो जाता है, उसे सौंदर्य दिखाई पड़ता है। उसकी आंख ही

बदल जाती है। उसके सोचने का ढंग ही बदल जाता है। उसके मापदंड बदल जाते हैं। प्रेम क्या आता है एक झंझा आया, एक तूफान आया। सब रूपांतरित कर जाता है। यहां आना प्रेम से है।
मगर न जाने आपकी कशिश मुझे यहां क्यों खींच लाती है। जान नहीं पाओगी। जान लो, समझ लो, पकड़ में आ जाए बुद्धि के, तो फिर बहुत गहरी न रही। तुम्हारे भीतर ऐसा भी कुछ है जो तुम्हारे जानने से ज्यादा गहरा है। जानना ऊपर-ऊपर है। जानना सतह पर है। जानना परिधि है। तुम्हारा केंद्र तुम्हारे जानने के बाहर है। यह आना अगर जानने से होगा तो तुम्हें पता रहेगा किसलिए जा रहे हैं। ध्यान करने जा रहे हैं। शांति की तलाश में जा रहे हैं। ईश्वर की खोज में जा रहे हैं। शायद कोई विधि मिल जाए, कोई मार्ग मिल जाए और जगह भी गए हैं, यहां भी जा रहे हैं; और दरवाजे खटखटाए, इस दरवाजे पर भी खटखटा लो; कौन जाने, शायद वह भाग्य की घड़ी आ गई हो और अब जीवन का सुख बरस उठे। अगर ऐसे सोच-विचार से आओ, तो समझ के भीतर होगी बात। लेकिन मेरा संबंध ही उनसे बनता है जिनके आने का कारण समझ के बिल्कुल बाहर है। जो समझा न सकेंगे। जो लाख सिर पटकें, समझा न सकेंगे। जितनी समझाने की कोशिश करेंगे, उतने उलझ जाएंगे। इसलिए जिनका मुझसे प्रेम है, समाज उन्हें पागल ही कहेगा। क्योंकि तुम समझा न सकोगे। समाज कहता है--समझाओ, क्यों जाते हो? क्या कारण है? और तुम्हारे पास कोई कारण नहीं सूझता। और तुम अवाक खड़े रह जाते हो। तुम कोई तर्क नहीं बना पाते। तुम कहते हो, बस एक आकर्षण है। इन बातों को समझदार लोग थोड़े ही मान लेंगे। कहेंगे सम्मोहित हो गए हो। कि विक्षिप्त हो गए हो। कि तुम अपने होश में नहीं हो। ऐसे वे ठीक ही कह रहे हैं। ये बातें होश की हैं भी नहीं। ये बातें बेहोशी की हैं। ऐसे वे ठीक ही कह रहे हैं। चाहे उनके कहने का कारण गलत हो, चाहे वे शब्द गलत उपयोग कर रहे हों, लेकिन ठीक ही कह रहे हैं। तुम मेरे प्रेम में पड़ गए तो यही तो सम्मोहन है। सम्मोहन का अर्थ हैः एक जादू का संबंध निर्मित हो गया। एक ऐसा संबंध जो नहीं होना चाहिए था, नियम के अनुकूल नहीं है प्रकृति की व्यवस्था में नहीं है, बाजार और व्यवसाय की भाषा में नहीं है; एक ऐसा संबंध निर्मित हो गया जो बिल्कुल अव्यावहारिक है, खतरनाक भी सिद्ध हो सकता है, महंगा भी पड़ सकता है; जो संबंध सौदे का नहीं है, जिसमें शुद्ध जुआ है, जोखिम ही जोखिम है, मगर हो गया है। और ऐसी गहराई से हुआ है कि तुम्हारी बुद्धि भी उस गहराई को माप नहीं पाती। तुम्हारी बुद्धि भी उस गहराई में उतर नहीं पाती। बुद्धि डुबकी मारना नहीं जानती, बुद्धि तैरना जानती है। नदी की सतह पर तैरती है। ये बातें डुबकी की हैं।
तो ठीक ही है मुद्रा, कि मगर न जाने आपकी कशिश मुझे यहां क्यों खींच लाती है? खींचती रहेगी। यह कशिश बढ़ती रहेगी। यह घटनेवाली कशिश नहीं है। जितना आओगी उतनी बढ़ती रहेगी।
कुछ कशिशें होती हैं, कुछ आकर्षण होते हैं, जल्दी ही चुक जाते हैं। सामान्य नियम यही है। अर्थशास्त्री से पूछो, उसने उसके लिए एक कानून ही बना रखा है, एक नियम ही बना रखा है--लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न। आज एक भोजन किया, खूब स्वादिष्ट था। कल भी वही भोजन करोगे, उतना स्वादिष्ट नहीं मालूम पड़ेगा। कैसे पड़ेगा? परसों भी वही भोजन करोगे, सारा स्वाद खो जाएगा। नरसों भी वही भोजन करोगे, ऊब पैदा होगी। और अगर वही भोजन रोज-रोज दिया जाए, कितने दिन कर पाओगे? एक सप्ताह पूरा न होगा कि थाली फेंक दोगे। और यही भोजन बड़ा स्वादिष्ट लगा था! लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न्स। यह नियम है, रोज-रोज जिसका हम अनुभव करते, रोज-रोज जिसका हम स्वाद लेते, उसका रस कम होता चला जाता है। बाजार में सभी चीजों का रस इसी तरह कम हो जाता है। इसीलिए तो दुकानदारों को, व्यवसायियों को रोज-रोज नई-नई चीजें ईजाद करनी पड़ती हैं। नई न भी हों, तो कम से कम नये पैकेट में हों। नये नाम में हों, नये रंग में हों। हर साल कारों के नये मॉडल निकालने पड़ते हैं। थोड़ा-बहुत फर्क होता है, कुछ खास फर्क नहीं होता--और अक्सर तो ऐसा होता है पुरानी कार शायद ज्यादा मजबूत हो, नई कार और भी गई-बीती हो--मगर नई है! तो लोग खरीदते हैं। साल-छह महीने में रस चुक जाता है, ऊब जाते हैं, फिर कुछ नया चाहिए।

सांसारिक सारे संबंध ऐसे ही हैं। सिर्फ प्रेम एक ऐसा अलौकिक आयाम है, जहां लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न्स लागू नहीं होता। जहां जितना भोगो, उतना रस बढ़ता है। प्रेम अर्थशास्त्र के बाहर है। प्रेम गणित के चौखटे के बाहर है।
अब लोग तुम्हें पागल ही तो कहेंगे न! कोई व्यत्ति मुझे पांच साल से निरंतर सुन रहा है। एकाध दिन सुन लिया, ठीक है; दो दिन सुन लिया ठीक है; पांच साल! अब अगर "अजित सरस्वती" को लोग पागल कहें, तो ठीक ही कहते हैं। पांच साल से निरंतर सुन रहे हो! एक सुबह नहीं गई जब न सुना हो। और रस बढ़ता गया है। और रस नई तरंगें लेता गया है। और रस नई गहराइयों में उतरता गया है। और रस ने नए-नए, नए-नए, फूल खिलाए हैं; रोएं-रोएं में प्रवेश कर गया है, रग-रग में चला गया है। यह अर्थशास्त्र के बाहर की बात है।
तुम्हारे मन में भी कभी ख्याल उठता होगा कि मैं रोज क्यों बोलता हूं? मैं छांट रहा हूं उन लोगों को जो मुझे रोज सुन सकते हैं। इसके पीछे प्रक्रिया है। कोई रोज नहीं बोलता। और अगर रोज लोग बोलते भी हैं तो कम से कम एक ही समूह के सामने नहीं बोलते। आज बंबई बोलेंगे, कल कलकत्ता बोलेंगे, परसों कानपुर बोलेंगे, चलेगा। क्योंकि समूह बदल जाता है। मैं एक ही जगह बैठ कर, एक ही समूह के सामने बोले चला जा रहा हूं! तुमने शायद सोचा हो या न सोचा हो, आज बात आ गई तो तुमसे कहे देता हूं, मैं जांच रहा हूं उन लोगों को जिनका रस जितना सुनते हैं उतना बढ़ता जा रहा है। वे ही मेरे हैं, मैं उनका हूं। जो ऊब जाएंगे, उनसे मेरा नाता कोई प्रेम का नहीं था, वह अर्थशास्त्रीय नाता था। वह समाप्त हो गया। वह समाप्त हो ही जाना चाहिए था। उसका कोई मूल्य नहीं है। यह छांटने की एक प्रक्रिया है। इस भांति वे ही बचे रहेंगे जो सच में ही दीवाने हैं। जिन्हें इस बात से कुछ मतलब ही नहीं कि मैं क्या बोल रहा हूं। वही बात शायद हजार बार तुमसे कही होगी; लेकिन जो मेरे प्रेम में है, उसे वही बात हर बार नए रंग की मालूम पड़ती है, नए ढंग की मालूम पड़ती है। फिर उसे चौंक कर सुनता है। फिर उससे कुछ होता हुआ मालूम होता है।
चिंता में मत पड़ो। यह कशिश बढ़ने वाली कशिश है। यह बढ़ती जाए, इसी में सौभाग्य भी है। क्योंकि ऐसे बढ़ते-बढ़ते, बढ़ते-बढ़ते, सुनते-सुनते-सुनते एक दिन शब्द तिरोहित हो जाएगा: मैं यहां बोलता रहूंगा, तुम वहां सुनते रहोगे, न मैं यहां बोलूंगा, न तुम वहां सुनोगे। उस दिन नाता पहली दफा बना। उस दिन सेतु जुड़ा। उस दिन दो शून्यों का मिलना हुआ। गुरु तो शून्य है; शिष्य को भी शून्य होना पड़ता है; तभी मिलन है। समान से ही समान का मिलन हो सकता है। मुझे यहां आने का कोई कारण नजर नहीं आता, मगर न जाने आपकी कशिश मुझे यहां क्यों खींच लाती है? किसी के पूछने पर भी उत्तर देने में असमर्थ होती हूं। यह शुभ लक्षण है। उत्तर दे सको, तो सब गुड़-गोबर हुआ। उत्तर दे सको तो बात दो कौड़ी की हो गई। निरुत्तर रह जाओ, कहना चाहो और कहने को कुछ न पाओ, भाव तो उठे लेकिन शब्द न बनें, पता तो चले भीतर कि ऐसा कुछ होगा लेकिन कोई शब्द उसे प्रकट करने में समर्थ न हों। क्योंकि सब शब्द संकीर्ण हैं, विराट को नहीं समा पाते। बाजार में उनका उपयोग ठीक है, रोज के लोक-व्यवहार में ठीक है, लेकिन जब भी तुम किन्हीं गहराइयों में सरकोगे, तभी पाओगे सभी शब्द नपुंसक हो गए, कुछ भी नहीं कहते। कहोगे, तो लगेगा कुछ कहना चाहा, कुछ कह दिया। कहोगे तो शामदा होओगे। क्योंकि ऐसा लगेगा कि यह तो कुछ गद्दारी हो गई। जो भीतर था, वह तो आया नहीं, कुछ का कुछ हो गया है। लड़खड़ा जाओगे। जैसे छोटे बच्चे तुतलाते हैं; क्योंकि भाषा नई होती है; इतनी नई होती है कि उनको तुतलाना पड़ता है। फिर से तुम तुतलाओगे जब प्रेम की भाषा सीखोगे, क्योंकि यह और भी नई भाषा है। फिर से तुम तुतलाओगे जब शून्य की भाषा तुम्हारे भीतर उतरनी शुरू होगी।
नहीं, उत्तर नहीं बनेगा। हंस देना। रो देना। नाच लेना। कोई पूछे कि किसलिए जाते हो, नाच लेना। एक खंजरी पास रख लेना, ठोक कर और नाच देना। मगर उत्तर शब्दों से नहीं दिया जा सकता।
"उत्तर देने में असमर्थ होती हूं, मगर अब जिंदगी में जीने का मजा आने लगा है।"

वही असली उत्तर है। उसी मजे को प्रगट होने दो। उस आनंद को, उस आनंद की गंध को फैलने दो। उस आनंद का प्रकाश विस्तीर्ण होने दो। लोग खुद ही खुद समझेंगे। समझने वाले समझेंगे। नासमझ कभी नहीं समझते--समझाने की कोई जरूरत भी नहीं है। समझनेवाले समझ लेंगे कि कुछ हुआ है। कुछ ऐसा हुआ है जो कहा नहीं जा सकता। तुम्हारा व्यत्तित्व कहेगा। तुम्हारी शांति कहेगी। तुम्हारा आनंद कहेगा। तुम्हारे भीतर से बहती हुई नई अनुभूति की धार कहेगी। उनका हाथ पकड़ लेना, उन्हें गले लगा लेना जो पूछें कि क्यों जाते हो? अपनी ऊर्जा से कहना, अपने प्रवाह से कह देना, अपनी तरंग को उनमें डाल देना, अपने नृत्य को उनमें उतर जाने दना; उनकी आंख में झांकना, उंड़ेल देना अपने को उनमें, मगर शब्द से मत कहना। शब्द से नहीं कहा जा सकता। शब्द से कहोगे, बेईमानी हो जाएगी।
"मगर अब जिंदगी में जीने का मजा आने लगा है। क्यो?" यह क्यों बिल्कुल छोड़ दो। जब दुख हो, पूछ सकते हो--क्यों? लेकिन जब आनंद हो, भूल कर मत पूछना क्यों? क्योंकि आनंद स्वभाव है। दुख विभाव है। एक आदमी बीमार होता है तो जाकर डाक्टर से पूछता है कि मुझे कौन सी बीमारी हो गई? क्यों हो गई? निदान करो। कारण खोजो, उपचार करो। लेकिन जब कोई स्वस्थ होता है तो डाक्टर के पास जाकर नहीं पूछता कि मुझे कौन सा स्वास्थ्य हो गया है? निदान करो, कारण बताओ, क्यों हुआ? उपचार करो। नहीं, स्वास्थ्य तो स्वाभाविक है। क्यों का कोई सवाल ही नहीं है। स्वास्थ्य तो होना ही चाहिए। स्वास्थ्य तो प्रकृति का नियम है। जब तुम स्वस्थ होते हो तुम यह नहीं पूछते--मैं क्यों स्वस्थ हूं? या कि पूछते हो? लेकिन जब बीमार होते हो तो जरूर पूछते हो कि मैं क्यों बीमार हूं? "क्यों" पूछना पड़ता है तब जब हमें किसी चीज से मुत्त होना हो। इसलिए आनंद जब जगे तो "क्यों" तो पूछना ही मत। आनंद से मुत्त थोड़ा होना है। उसके विश्लेषण में जाने से क्या रखा है? आनंद आए तो आनंदित होना। रत्ती-भर समय मत गंवाना, क्षण भर भी विश्लेषण में अपना खोना मत, "क्यों" इत्यादि को भूल ही जाना, आनंद आए तो आनंद में मग्न होना, डूब जाना मस्ती में, पी लेना आनंद के फूल को, आनंद की शराब को और नाचना और प्रकट होने देना गीत जो अपने आप बहे, जो सहज-स्फूर्त हो, मगर क्यों मत पूछना। क्यों का उत्तर है भी नहीं। आनंद इस जगत का स्वभाव है--सच्चिदानंद।
तुम पूछते नहीं कि वृक्ष हरे क्यों हैं। या कि पूछते हो? तुम पूछते नहीं गुलाब लाल क्यों हैं। या कि पूछते हो? तुम पूछते नहीं कि दीये से रोशनी क्यों निकल रही है। या कि पूछते हो! ऐसा ही आनंद है। आनंद तुम्हारा स्वभाव है--तुम्हारी रोशनी, तुम्हारी सुगंध, तुम्हारा रंग, तुम्हारा ढंग। आनंद चूक रहा हो तो जरूर पूछना कि क्या कारण है, मेरा स्वभाव अवरुद्ध क्यों है? किन पत्थरों ने मेरे झरने को रोका? कौन-सी बाधा आ गई? कौन अवरोध कर रहा है? मैं बह क्यों नहीं पा रहा हूं? मेरे भीतर नृत्य क्यों नहीं घट रहा है? जरूर पूछना। दुख हो तो पूछना--क्यों?
लेकिन हमारी आदतें दुख की हैं। हम जन्मों-जन्मों से दुखी रहे हैं। दुख की आदत ने हमें एक और आदत सिखा दी है--"क्यों" की। सदा पूछते रहे हैं-- क्यों, क्यों? ऐसा ही समझो कि एक आदमी जन्मों-जन्मों से बीमार है और पूछता रहा--क्यों, क्यों, क्यों? फिर एक दिन स्वस्थ हो गया, पुरानी आदत के कारण पूछेगा--क्यों? सिर्फ तुम्हारी पुरानी आदत है, मुद्रा! अब पूछती हो, "मगर जिंदगी में जीने का मजा आने लगा है; क्यों?" मुझको पता नहीं। किसी को पता नहीं है। जिंदगी आनंद है! जैसे वृक्ष हरे हैं, ऐसे जिंदगी आनंद है। यह परमात्मा का स्वभाव है आनंद। कोई उत्तर नहीं है।
हां, दुख हो तो जरूर कोई उत्तर होगा। अगर दुख हो तो उसका मतलब है, तुमने कुछ स्वभाव के विपरीत किया है। तुम स्वभाव के अनुकूल नहीं हो। तुम स्वभाव के प्रतिकूल चले गए हो। तुमने रास्ता छोड़ दिया है। तुम कांटे- कंकड़ों में पड़ गए हो। तुमसे कुछ भूल हो रही है। जब कोई भूल नहीं होती तो आनंद। जब भूल होती है तो दुख। जब दुख हो, तो समझ लेना कि कुछ भूल हो रही है। और जब सुख हो तो समझ लेना भूल नहीं हो रही है। बस इतना ही काफी है।
"साथ ही मैं बिल्कुल पत्थर हो गई हूं। रोना तो जैसे सूख ही गया है।"

वह पुराना रोना कुछ खास मतलब का था भी नहीं। पुराना गया है, नया आएगा।
एक तो रोना है जो दुख को रोना है। स्वभावतः दुनिया में लोगों ने यही समझा है कि सब रोना दुख का रोना होता है। क्योंकि उन्होंने दुख के ही आंसू बहाए हैं। कोई मरा तो रोए। कोई पीड़ा हुई तो रोए। किसी ने अपमान किया तो रोए। कुछ विषाद हुआ तो रोए। हारे तो रोए। लोगों का अनुभव यह है कि रोना दुख का पर्यायवाची है। इसलिए जब दुख जाने लगेगा तो रोना भी चला जाएगा। आंसू एकदम बंद हो जाएंगे। सूख जाएंगे। घबड़ाना मत। तुम पत्थर नहीं हो गई हो, सिर्फ आंसुओं का एक पुराना रिवाज, एक पुराना ढंग और ढर्रा टूट गया। जरा रुको, जल्दी ही तुम पाओगी नये आंसू आने शुरू होंगे। वे नए आंसू आनंद के आंसू होंगे। वे रोने से नहीं निकलेंगे, वे दुख से नहीं निकलेंगे, वे तुम्हारे भीतर के अहोभाव से निकलेंगे। वे तुम्हारे आनंद की एक गहन अभिव्यत्ति होंगे। तब उन आंसुओं का रंग ही और होता है। मोती फीके हैं उन आंसुओं के सामने। और मोतियों में कोई मूल्य नहीं है उन आंसुओं के सामने। और फूल शरमा जाएंगे उन आंसुओं के सामने। उन आंसुओं की गंध और है। वह गंध पारलौकिक है। आनंद के आंसू आएं, इसके पहले एक घड़ी तो जरूर आएगी जब सब आंसू बंद हो जाएंगे। दुख का सिलसिला टूटेगा तो दुख के आंसू बंद हो गए। अब सुख का सिलसिला शुरू होगा। धीरे-धीरे इस नई जीवन-व्यवस्था का अनुभव तुम्हें नई-नई दिशाओं में ले जाएगा। उनमें एक दिशा आनंद के आंसुओं की दिशा भी है। मुद्रा! फिर तुम रोओगी। मगर उस रोने में पुराने रोने का कोई अनुभव नहीं होगा। पुराने रोने की कोई छाया नहीं होगी। ये आंसू मुस्कराहट से भरे हुए होंगे। और इन आंसुओं में एक ज्योति होगी। जब आदमी दुख में रोता है तो आंसुओं में अंधेरा होता है, दुर्गंध होती है; वे आंसू मवाद की तरह होते हैं। और जब आदमी आनंद से रोता है तो वे आंसू गीत होते हैं, उनमें एक सुगंध होती है।
अश्क जो दे न उठे लौ सरे-मिजगां आकर
सिर्फ एक कतरए-शबनम है, शरारा तो नहीं
जो आंसू पलकों पर आकर लपट न बन जाए, लौ न बन जाए, ज्योति न बन जाए--
अश्क जो दे न उठे लौ सरे-मिजगां आकर
सिर्फ इक कतरए-शबनम है, शरारा तो नहीं
--फिर एक ओस की बूंद है ऐसा आंसू, जो आकर आंखों को ज्योति न दे जाए। असली आंसू तो वही है जो आंख को ज्योति दे, लपट दे; जो आंख को नया जीवन दे; जिसके माध्यम से भीतर छिपी आत्मा आंख से झांक उठे।
आएंगे, वे आंसू भी आएंगे। प्रतीक्षा करो। और यह मत सोचना कि पत्थर हो
गई हूं। ऐसा लगेगा, क्योंकि पुरानी तरह का रोना-धोना बंद हो गया, तो लगेगा कि कहीं मैं पत्थर तो नहीं हो गई। नये के आगमन और पुराने के जाने के बीच में एक अंतराल होता है। उस अंतराल में ऐसी प्रतीति होती है। मगर भय का कोई कारण नहीं है।

तीसरा प्रश्न: मनुष्य क्यों व्यर्थ की बातों में उलझा रहता है?

डर के कारण। भय के करण। भय किस बात का? एक ही भय है जो लोगों को छाया की तरह पीछा कर रहा है, चौबीस घंटे, जागते-सोते और वह भय यह है कि अगर मैं व्यस्त न रहूं, उलझा न रहूं, तो कहीं मुझे मेरे भीतर का शून्य न दिखाई पड़ जाए, कहीं वह अतल खाई न दिखाई पड़ जाए। और वह अतल खाई है। तो भय एकदम झूठ भी नहीं, निराधार भी नहीं। अगर तुम बिल्कुल अव्यस्त हो, कोई काम नहीं है तो तुम अचानक अपने भीतर के शून्य का अनुभव करने लगोगे--रित्तता अनुभव होगी, खाली लगोगे। तुम जल्दी से किसी काम में व्यस्त हो जाओगे। क्योंकि खाली में अहंकार मरता है, गलता है। अहंकारी को तो व्यस्त रहना ही पड़ेगा। व्यस्त रहकर ही अहंकारी अपने को मान सकता है कि मैं कुछ हूं।
इसलिए लोग बड़े काम करना चाहते हैं--छोटे ही नहीं, बड़े काम करना चाहते हैं। ऐसे काम करना चाहते हैं कि दुनिया भर को पता चल जाए कि मैंने यह किया, कि मैंने वह किया। छोटे-मोटे काम में रस नहीं आता। क्यों? क्योंकि छोटे- मोटे काम छोटा-मोटा अहंकार ही पैदा कर सकते हैं। अब बुहारी लगाओ, कि खाना

बनाओ, कितना बड़ा अहंकार इसमें से पैदा करोगे। लेकिन प्रधानमंत्री हो जाओ, राष्टपति हो जाओ, तो भारी अहंकार पैदा कर सकते हो, कि मैं कुछ विशिष्ट हूं, साठ करोड़ लोगों में मैं कुछ विशिष्ट हूं। तो लोग दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं, ऐसी जगह पहुँच जाना चाहते हैं जहां कुछ विशिष्ट काम में उलझ जाएं--अपने को भर लेना चाहते हैं।
मनस्विद कहते हैं कि जो आदमी जितना ही अपने भीतर की शून्यता से घबड़ाया होता है उतना ही पदलोलुप हो जाता है। भीतर जो लोग हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, वे लोग पदलोलुप हो जाते हैं। पद की दौड़ हीनता का प्रक्षेपण है। जो व्यत्ति सचमुच ही भीतर हीनता से पीड़ित नहीं होता, वह पद की दौड़ में नहीं होता। उसे करना क्या है? वह जैसा है वैसा परम आनंदित है। उसका आनंद प्रधानमंत्री होने में नहीं है, न बहुत धन इकट्ठा कर लेने में है, न बहुत यशस्वी हो जाने में है, उसका आनंद तो वह जैसा है वैसे में ही है। इसी को तो कल रज्जब ने कहा--संतोष से दोस्ती करो। संतोष से दोस्ती कौन करेगा? वही कर सकता है जो अपने भीतर के शून्य के साथ राजी होने का साहस रखता हो। और यह बड़े से बड़ा साहस है। दुस्साहस है। इस जगत में और कोई साहस इतना बड़ा नहीं है कि तुम खाली बैठ जाओ। ध्यान में बैठने से बड़ा कोई साहस नहीं है।
तुम थोड़ा सुनोगे तो तुम चौंकोगे। तुम कहोगे--इसमें क्या बड़ा साहस है?
एक आदमी पालथी मार कर आंख बंद किए बैठ गया है घड़ी भर, इसमें साहस क्या है? साहस तलवार उठाने में है। नहीं, तलवार उठाने में कुछ साहस नहीं है। यह जो घड़ी भर आदमी शांत होकर बैठ गया है ना-कुछ करने, में शून्य होकर, इसमें साहस है। क्यों? क्योंकि यहां जैसे-जैसे भीतर उतरेगा, जैसे-जैसे कृत्य का जगत छूटेगा, विचार का जगत छूटेगा--क्योंकि विचार भी सूक्ष्म कृत्य है, वह मन का कृत्य है। कभी तुम शरीर का काम करते हो, शरीर के काम से छूटो तो तत्क्षण मन का काम शुरू कर देते हो, मगर काम जारी रहता है। जब दोनों काम छूट जाते हैं, फिर क्या बचता है? तुम ही नहीं बचते। इसलिए मैं कहता हूं, यह साहस है। ध्यान में उतर कर पता चलता है कि मैं कभी था ही नहीं। मेरा होना भ्रांति थी। मेरा होना एक सरासर झूठ था। मैं हूं ही नहीं। हिम्मत है इस बात को अनुभव करने की कि मैं हूं ही नहीं? और जो ऐसा जानता है कि मैं हूं ही नहीं, वही जान सकता है कि परमात्मा है।
तुम दोनों साथ-साथ न हो सकोगे। "प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय।" या तो तुम, या परमात्मा। तुम मिटोगे तो परमात्मा हो सकेगा। तो वह जो शून्य तुम्हारे भीतर है, परमात्मा की ही आभा है। उसका ही चेहरा है। उसके ही रूप-रंग का अंग है। उसी निराकार का एक भाव है।

तुमने पूछा हैः "मनुष्य क्यों व्यर्थ की बातों में उलझा रहता है?"
अब सार्थक बातें रोज-रोज खोजो भी कहां से? सार्थक बात ही क्या है? सभी बातें व्यर्थ की हैं। सुबह से उठे, अखबार पढ़ लिया, तुम सोचते हो, कुछ सार्थक काम कर रहे हो? दिल्ली में किस पागल को जुकाम हो गया और किसको क्या हो गया, तुम सोचते हो कोई तुम सार्थक बातें पढ़ रहे हो? तुम कोई बड़े काम की बातें पड़ रहे हो? फिर बैठ कर पत्नी से कुछ बात कर ली, मोहल्ले की गपशप, फिर चले दफ्तर, तुम सोचते हो वहां कुछ सार्थक काम कर रहे हो? सार्थक क्या है! इस सारे उपद्रव की सार्थकता इतनी ही है कि दो रोटी मिल जाती है। अब यह बड़े मजे की बात है, आदमी से पूछो कि रोटी किसलिए कमाते हो; वह कहते हैं--जीने के लिए। और उससे पूछो जीते किसलिए हो, वह कहता है--रोटी कमाने के लिए। यह कौन सी सार्थकता हुई? जीते इसलिए हैं कि रोटी कमाएं, रोटी किसलिए कमाते हैं कि जीना है। यह तो बड़ा वर्तुल हुआ, विसियस-सर्किल हुआ, दुष्चक्र हुआ। इसमें सार कहां है? इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, उनको यह बात दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है कि यह तो सब असार है! उठे रोज सुबह, चले वही रोटी कमाने, सांझ फिर आकर सो गए, सुबह फिर उठे, फिर चले रोटी कमाने, ऐसे ही आते-जाते एक दिन समाप्त हो गए। पाया क्या? उपलब्धि क्या थी? हाथ क्या लगा? मृत्यु में जो बच सके वही सार्थक है। यह मेरी सार्थक की परिभाषा है। जिसको तुम मृत्यु में भी अपने साथ ले जा सको, वही सार्थक है। और जो मृत्यु में तुम्हारे साथ

न जाए, इसी तरफ पड़ा रह जाए, वह सार्थक नहीं। तुम्हारा पद पड़ा रह जाएगा, धन पड़ा रह जाएगा, नाम पड़ा रह जाएगा, मित्र-प्रियजन सब पड़े रह जाएंगे। तुम जब जाने लगोगे अकेले, उस वत्त क्या तुम ले जा सकोगे? तुम्हारा बैंक-बैंलेस? क्या ले जा सकोगे? उस वत्त ध्यान ही ले जा सकोगे बस और कुछ न ले जा सकोगे। तो ध्यान का अनुभव एकमात्र सार्थक अनुभव है।

यह तो बड़ी उपद्रव की बात है, उल्टी बात है, तुम जो भी करते हो सब व्यर्थ है। वे जो कुछ घड़ियां न करने की बीतती हैं, वही सार्थक हैं। क्योंकि वही तुम बचाकर ले जा सकोगे। मगर उन थोड़ी सी घड़ियों में जो तुम शांत हो जाते हो, कुछ भी नहीं करते, मौत का साक्षात्कार करना होता है। मौत और ध्यान बड़े एक जैसे हैं। ध्यान करने वाला रोज मौत में उतरता है, रोज मरता है, क्योंकि रोज मिट जाता है। भीतर सन्नाटा हो जाता है। खोजने से भी नहीं पाता अपना आपा कि मैं कहां हूं। कोई आत्मा नहीं मिलती, कोई भीतर नहीं मिलता, सिर्फ सन्नाटा मिलता है। सन्नाटा रोज गहन होता जाता है, खाई रोज गहरी होती चली जाती है। गिरता चला जाता है। और कहीं जगह नहीं मिलती जहां पैर टेक कर खड़ा हो जाऊं। यही तो मृत्यु का अनुभव है। इसलिए जिसने ध्यान में बार-बार मर कर देख लिया, जब मृत्यु आती है तो वह घबड़ाता नहीं। क्योंकि यह मृत्यु तो वह रोज ही देखता रहा है। इसलिए ध्यानी मृत्यु के क्षण में निश्चिंत भाव से जाता है। यह तो परिचित बात है! यह तो रोज का मामला है! इतना ही नहीं कि परिचित है, इतना ही नहीं कि रोज की जानी हुई बात है, यह भी उसका अनुभव है कि जितना गहरा इस शून्य में उतरो, उतने ही आनंद का आविर्भाव है। इसलिए वह मृत्यु का स्वागत करता है, अंगीकार करता है, आलिंगन करता है--अतिथि की तरह, मेहमान की तरह, द्वार खोलता है कि आओ, बहुत प्रतीक्षा की है तुम्हारी। और जो व्यत्ति मृत्यु को स्वागत से अंगीकार कर लेता है, वह मरेगा कैसे? वह मर कैसे सकता है?
अब मैं तुमसे एक विरोधाभास कहना चाहता हूं--जो मरने को तैयार है, जो ध्यान में मरने को तैयार है, उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। वह अमृत का धनी हो जाता है।
लेकिन आदमी व्यर्थ की बातों में उलझा है। न हों बाहर तो खुद ईजाद कर लेता है, खड़ी कर लेता है, झगड़े-झांसे कर लेता है, उलझा लेता है अपने को। तुम जरा ख्याल करो, तुम्हारे जितने झगड़े-झांसे हैं, अगर सब हल हो जाएं, तुम्हारे व्यवसाय में जितनी चिंताएं हैं, अगर सब हल हो जाएं, अगर मैं एक जादू का डंडा उठाऊं और तुम्हारे सिर के पास फिराऊं और कहूं--तुम्हारी सारी चिंताएं समाप्त; तुम मुझे माफ करोगे? तुम मुझे कभी माफ नहीं करोगे। तुम एकदम आंख खोल कर कहोगे--अब मैं करूं क्या? सब झगड़े-झांसे समाप्त, अब मैं करूं क्या? अब करने को कुछ भी नहीं बचा। तुम मांगोगे, हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाओगे कि मेरी चिंताएं मुझे वापिस दो, मेरी समस्याएं मुझे वापिस दो; उलझा तो रहता था, लगा तो रहता था।
याद की राहगुजर, जिसपै इसी सूरत से
मुद्दतें बीत गई हैं तुम्हें चलते-चलते
खत्म हो जाए जो दो-चार कदम और चलो
मोड़ पड़ता है जहां दस्ते-फरामोशी का
जिससे आगे न कोई मैं हूं न कोई तुम हो
सांस थामे हैं निगाहें कि न जाने किस दम तुम पलट आओ, गुजर जाओ, या मुड़ कर देखो गर्चे वाकिफ हैं निगाहें कि यह सब धोका है गर कहीं तुमसे हम-आगोश हुई फिर से नजर फूट निकलेगी वहां और कोई राहगुजर
फिर इसी तरह जहां होगा मुकामिल पैहम सायए-जुल्फ का और जुम्बिशे-बाजू का सफर

दूसरी बात भी झूठी है कि दिल जानता है यां कोई मोड़, कोई दश्त, कोई घात नहीं

जिसके पर्दे में मेरा माहे-रवां डूब सके
तुमसे चलती रहे यह राह, यूं ही अच्छा है
तुमने मुड़ कर भी न देखा तो कोई बात नहीं
आदमी कल्पनाएं करता रहता है। कोई मेरे प्रेम में पड़ जाएगा, मैं किसी
के प्रेम में पड़ जाऊंगा; आज धन नहीं है, कल धन मिल जाएगा; आज पद नहीं है, कल पद मिल जाएगा; और फिर सोचता है--न भी मिला तो कोई बात नहीं, मगर उलझा तो रहूंगा, चलता तो रहूंगा, लगा तो रहूंगा, व्यस्त तो रहूंगा। व्यस्तता ऐसे ही है जैसे सागर में डूबते हुए आदमी को तिनके का सहारा। पकड़े रहता है। तुम उससे लाख कहो यह तिनका है, यह तुम्हें बचाएगा नहीं, वह कहेगा--चुप रहो, बकवास बंद करो। बचाएगा या नहीं बचाएगा, यह सवाल नहीं है; कम से कम यह भ्रांति तो मन को देता है कि बच रहा हूं।
कागज की नावों में लोग चल रहे हैं! उनसे भूल कर मत कहना कि यह कागज की नाव है, अन्यथा वे नाराज हो जाते हैं। उन्होंने सुकरात को जहर पिलाया-- इसीलिए पिलाया कि वह लोगों को जा-जा कर उनको पकड़-पकड़ कर कहने लगा कि तुम जिस नाव में बैठे हो, यह कागज की नाव है। यह डूबेगी। तुमने जो महल बनाया है, यह रेत पर बना है, यह गिरेगा। कौन सुनना चाहता है यह बात? कोई आदमी मजे से अपने महल में रह रहा था--रेत ही सही, गिरेगा तब गिरेगा, अभी तो नहीं गिरा है--अपनी नाव में मस्त सो रहा था, चादर तान ली थी, बांसुरी बजा रहा था और तुम उससे कहते हो--यह कागज की नाव है! यह अब डूबी तब डूबी! वह कहेगा--जब डूबेगी तब डूबेगी, अभी तो मेरा चैन खराब मत करो, अभी तो मेरी बांसुरी बजने दो। इसलिए इस दुनिया में ठीक सदगुरु जब भी पैदा हुए, आदमी उन्हें माफ नहीं
कर पाया। तुमने जीसस को सूली दी, मंसूर की गर्दन काटी; तुमने महावीर के कानों में कीलें ठोंके, तुमने बुद्ध पर पत्थर फेंके। तुम्हारी भी मजबूरी मैं समझता हूं। मैं नाराज नहीं हूं। और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अन्यथा कर सकते थे। तुम्हारी मजबूरी मैं समझता हूं। तुम्हारी मजबूरी यह है कि इन लोगों ने तुम्हारे सपने तोड़े। ये जुर्मी थे तुम्हारी आंखों में, ये अपराधी थे। तुमने अपराधियों को माफ कर दिया है, लेकिन ज्ञानियों को तुम माफ नहीं कर सके।
तुम्हें पता है? जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन दो चोरों को भी उनके साथ ही सूली हुई थी, तीन आदमियों को इकट्ठी सूली दी गई थी। इजरायल का नियम था, कि प्रतिवर्ष पवित्र दिन के उत्सव में एक व्यत्ति को सूली से माफ किया जा सकता था। तो पॉयलट ने जो गवर्नर था, उसने यहूदियों को बुला कर पूछा कि ये तीन आदमियों की सूली लगनी है, इनमें से एक को नियम के अनुसार माफ किया जा सकता है... पॉयलट की मर्जी थी कि जीसस माफ हो जाए। इस आदमी का कोई कसूर नहीं था। पॉयलट को लगता था कि मैं किसी तरह इनको समझा लूं, ये राजी हो जाएं। फिर उसे यह भी भरोसा था कि स्वभावतः दो आदमियों में, चोर हैं दो, हत्यारे हैं वे, उन्होंने सब तरह के जुर्म किए, सब तरह के अपराध किए हैं; और जीसस के नाम पर न तो कोई खून है, न कोई अपराध है, ज्यादा से ज्यादा इसका कसूर इतना ही है कि इसने घोषणा कर दी है कि मैं ईश्वर का बेटा हूं--यह भी कोई बड़ी बात है! समझ लो कि पागल है। किसी का कुछ बिगाड़ तो दिया नहीं, किसी से कुछ छीन नहीं लिया, इतना ही कहा है कि मैं ईश्वर का बेटा हूं, इतनी सी बात के लिए इतनी नाराजगी! पॉयलट सोचता था कि यहूदी पुरोहित राजी हो जाएंगे, जीसस को बचाया जा सकेगा। लेकिन नहीं, यहूदी पुरोहितों ने क्या कहा तुम्हें पता है? उन्होंने कहाः दोनों चोरों में से किसी को भी माफ कर दो जिसको करना हो, मगर जीसस को माफ नहीं किया जा सकता। इसका अपराध बड़ा है। क्या अपराध है जीसस का? यही अपराध है कि तुम मस्त सो रहे थे, और यह वह आदमी तुम्हें जगाता है। यही अपराध है कि तुम अपने सपने बसा रहे थे और यह आदमी तुम्हारी नींद तोड़ देता है और तुम्हारे सारे सपने बिखेर देता है। आदमी व्यस्त रहना चाहता है। झूठ तो झूठ, सच तो सच, मगर व्यस्त रहना चाहता है। खाली नहीं बैठना चाहता। लोग खाली भी बैठते हैं तो उसमें भी कुछ व्यस्तता का रास्ता खोज लेते हैं। पूछते हैं कि क्या जाप करें? खाली नहीं बैठ सकते। कहते हैं--राम-राम ही जपेंगे, मगर कोई मंत्र दे दो।

मेरे सामने रोज ही यह प्रश्न खड़ा होता है। मैं लोगों को कहता हूं--चुप बैठो, कुछ मंत्र की जरूरत नहीं है। वे कहते हैं--लेकिन आलंबन तो चाहिए ही, चुप कैसे बैठेंगे, आप इतना ही कह दो कि कोई भी मंत्र दे दो। राम कहो, गायत्री मंत्र हो, नमोंकार मंत्र हो, कुछ भी सही, आप ही कोई खोज दो; कोई भी नाम दे दो हम वही दोहराएंगे लेकिन चुप कैसे बैठें? कुछ व्यस्तता रहेगी। चलो माला दे दो, माला फेरेंगे। तुम सोचते हो कारण, ये माला फेरनेवाले क्या कर रहे हैं? ये व्यस्तता से मुत्त नहीं होना चाहते। अगर बाजार की बातें न सोचेंगे तो माला फेरेंगे। मगर कुछ फेरने को रहे। फेरने को रहे तो मन फेरे खाता रहता है और जीता है। राम-राम करते रहेंगे, मंत्र दोहराते रहेंगे; मंत्र दोहरता रहे तो मन जीवित रहता है।
तुम्हें पता है--मंत्र और मन एक ही धातु से पैदा होते हैं। एक ही शब्द
के दो रूप हैं मंत्र और मन। मतलब यह है कि मंत्र के बिना मन जीवित नहीं रह सकता। उसे कोई न कोई मंत्र चाहिए ही। मंत्र उसका पोषण है, भोजन है। और ध्यान का अर्थ ही होता है--ऐसी दशा जहां मन न रह जाए। अव्यस्तता सीखो। खाली बैठना सीखो। मंत्रों से मुत्त हो जाओ। अजपा सीखो। शब्दों को छोड़ो। सार्थक भी छोड़ो, व्यर्थ भी छोड़ो, सब छोड़ दो। चौबीस घंटे में कम से कम एक घंटा ऐसा निकाल लो जब कोई कृत्य तुम्हारे भीतर न हो। जब तुम बिल्कुल शून्य मात्र हो जाओ। न कोई पूजा, न कोई प्रार्थना, न कोई अर्चना। और उसी शून्य में तुम पाओगे--सबसे बड़ी कठिनाइयां आएंगी और सबसे बड़े आनंद भी। सबसे बड़ी चुनौतियां और सबसे बड़ा जागरण भी। चुनौती कि मरना सीखना होगा। और उसी मृत्यु में आनंद का आविर्भाव है। तुम इधर मरे नहीं, कि उधर परमात्मा जगा नहीं। तुम्हारी मृत्यु उसका जन्म है।

चौथा प्रश्नः भगवान, मेरी जिंदगी के "जिग्सा प.जल" का जो एक टुकड़ा मुझे अब तक नहीं मिल रहा था, वह कल सुबह अचानक संतोष पर हुए आपके प्रवचन में मेरे हाथ आगया। भगवान, आशिष दें कि फिर न खो जाए।

कृष्ण मोहम्मद! जो चीज हाथ आ जाती है, खोती ही नहीं। हाथ आ जाए, यही बात है। खो जाए तो समझना कि हाथ आई ही नहीं थी। सत्य खोते नहीं। एक दफा दिखाई पड़ जाएं, फिर तुम लाख खोने की भी कोशिश करो तो खो न सकोगे। तुम चाहो भी कि इस सत्य से छुटकारा हो जाए तो छुटकारा न हो सकेगा। सत्य से छूटने का उपाय ही नहीं है। बस, तभी तक तुम उससे वंचित रह सकते हो, जब तक उसकी याद नहीं आई। एक बार याद आ गई, एक बार बात समझ में आ गई कि बस हो गया।
संतोष का सत्य बड़ा सत्य है। उस एक सत्य की कुंजी से जीवन के सारे द्वार खुल सकते हैं। और वहीं बहुत कुछ अटका है। तो यह बात तुम्हारी ठीक है कि तुम्हारी जीवन की पहेली में कोई एक चीज चूक रही थी, वह हाथ लग गई। अक्सर यही है। अधिक लोगों की जिंदगी में एक ही चीज चूक रही है, वह संतोष है। वे खोज रहे हैं और हजार चीजें, खोजना चाहिए संतोष। खोजते हैं परमात्मा को, खोजना चाहिए संतोष। संतोष मिल जाए तो परमात्मा तुम्हें खोजता आ जाए। और तुम खोजते फिरते हो परमात्मा को, बिना संतोष के। परमात्मा तुमसे बचता रहेगा। कौन असंतुष्ट आदमियों से मिलना चाहता है! परमात्मा भागा-भागा है। तुमसे डरा है। तुम उसकी खोपड़ी खा जाओगे।
एक आदमी मरा। एक दुर्घटना में मरा, कार में दुर्घटना हुई। उसका साझीदार भी उसके साथ था कार में, दोनों ही मर गए। दोनों एक-साथ परमात्मा के सामने मौजूद हुए। और परमात्मा ने आज्ञा दी पहले को कि इसे नरक ले जाया जाए और दूसरे को कि इसे स्वर्ग पहुंचाया जाए। उस पहले ने कहाः ठहरिए, कुछ भूल-चूक हो रही है। मैं जिंदगी भर आपकी प्रार्थना करता रहा और इस दुष्ट ने कभी आपका नाम भी नहीं लिया--यही हमारे बीच सदा विवाद का कारण था, यह नास्तिक है, महानास्तिक, मैं आस्तिक हूं। सुबह-सांझ-दोपहर पूजा करता था। भूल गए? हाथ में सदा झोली रखता था और माला फेरता था अंदर झोली में। दुकान पर भी लगा रहता था तो भी माला फेरता था। ऐसा कोई दिन नहीं गया जब तुम्हारी याद न की हो। महीने दो महीने में सत्यनारायण की कथा भी करवाता था। यज्ञ-हवन में भी दान देता था। मंदिर-मस्जिद भी बनवाए। सब तरह का दान-पुण्य किया था। भूल

गए? कुछ चूक हो रही है। मालूम होता है मुझे भेजना चाहते हो स्वर्ग और इसे नरक लेकिन कुछ चूक हो रही है।
ईश्वर ने कहाः नहीं, चूक नहीं हो रही है। तुम्हें नरक जाना होगा, इसे स्वर्ग जाना होगा। कारण, उस आदमी ने पूछा बड़े गुस्से से कि इसका कारण? परमात्मा ने कहा--कारण यही कि तुम मेरा सिर खा गए। न सुबह तुमने मुझे सोने दिया, न रात तुमने मुझे सोने दिया, बस पुकारे जा रहे हो, पुकारे जा रहे हो, आखिर जिंदगी में एक आदमी की धीरज की भी एक सीमा होती है। और तुम लाउडस्पीकर भी लगवा लेते थे कभी-कभी! तुम मोहल्ले भर को ही परेशान नहीं करते थे, मुझे भी परेशान करते थे। मैं, अगर तुम्हें स्वर्ग में रहना है, तो मुझे कहीं और रहना होगा। हम दोनों साथ नहीं रह सकते।
लोग और सब खोज रहे हैं। कुछ पाएंगे नहीं वे। पा लेने की बात सीधी और साफ है--संतोष। संतोष का अर्थ हैः जो है, पर्याप्त है; जितना है, पर्याप्त है। पर्याप्त से ज्यादा है। जो है, उसके लिए अनुगृहीत हूं। और जो नहीं है, उसकी कोई शिकायत नहीं है।
बस, इसी भाव-दशा में जो लीन हो जाता है, उसने ही परमात्मा को धन्यवाद दिया। शिकायत करने वाले लोग धन्यवाद कैसे देंगे? मांग करने वाले लोग धन्यवाद कैसे देंगे? परमात्मा ने तुम्हारे बिना मांगे बहुत दिया है। तुम्हारी योग्यता से बहुत दिया है। तुम्हारे पात्र में समा सके इससे बहुत दिया है।
संतोष समझ में आ गया कृष्ण मोहम्मद, तो सब समझ में आ गया। चुकेगा नहीं, हाथ से जाएगा भी नहीं। मैं तुम्हारी बात समझता हूं, तुम कहते हो--आशीष दें। डर लगता है; क्योंकि सत्य जब हाथ में आता है तो घबड़ाहट लगती है कि इतने- इतने समय तक हाथ में नहीं था, आज हाथ लगा है कहीं चूक न जाए। लेकिन मैं तुम्हें याद दिला दूँ, जो भी चीज हाथ लग जाती है, लग ही गई, फिर छूटती नहीं। सत्य का यही गुणधर्म है। एक बार तुम्हारे हृदय में सत्य की भनक पड़ जाए, तुम दूसरे ही आदमी हो गए। उसी क्षण से सत्य तुम्हें बदलना शुरू कर देगा।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः सत्य मुत्तिदायी है। ट्रूथ लिबरेट्स। और संतोष का सत्य तो महा मुत्तिदाई है। संतोषी को मानने की जरूरत ही नहीं कि परमात्मा है या नहीं, चिंता ही करने की जरूरत नहीं। संतोषी को स्वर्ग और नरक का विचार उठाने की आवश्यकता ही नहीं। जन्म-पुनर्जन्म, कर्म इत्यादि की बकवास में पड़ने की जरूरत नहीं। संतोषी तो इसी क्षण उतर गया आनंद में। और उसी आनंद में उतरना परमात्मा के मंदिर की सीढ़ियां तय करना है।
जो है, बहुत है। जितना दिया है, खूब दिया है। हम उस दिए हुए को भोग ही कहां पाते हैं! हम जीते ही कहां! मनस्विद कहते हैं कि हम दो प्रतिशत जीते हैं, अट्ठानबे प्रतिशत तो हम जीते ही नहीं। हम जीने से डरे हुए हैं। हम न्यूनतम जीते हैं। जितना कम से कम जीना पड़े उतना जीते हैं। और जीवन के असली आनंद अधिकतम जीने से उपलब्ध होते हैं। जो मिला है, उसे पूरी तरह जीओ। यह सुबह, इसे पूरी तरह जिओ। ये फूल, इन्हें पूरी तरह जीओ। ये लोग, इन्हें पूरी तरह जीओ। और अगर तुम सौ प्रतिशत जिओ तो तुम पाओगे इतनी अहर्निश वर्षा हो रही है उसके वरदानों की और क्या माँगना है? स्वर्ग और कहां होगा? स्वर्ग यहां है, अभी है, यहीं है।

पांचवां प्रश्न: संन्यासी होने के पश्चात हमने जो पाया है, वह सभी को प्राप्त हो यह प्रश्न बार-बार हृदय में उठता है। क्या यह संभव है?

सत्य वेदांत! संभव है और संभव न भी हो तो संभव बनाना। जो मिला है, उसे बांटो। क्योंकि बांटोगे तो बढ़ेगा। दया से मत बांटना, क्योंकि दया से बांटा तो अहंकार फलता है। और अहंकार फल गया तो जो हाथ में है तुम्हारे वह भी खो सकता है। जो तुम्हें मिला है, वह भी तुम भूल जा सकते हो। अहंकार बड़ा खतरनाक जहर है।
दया से मत देना किसी को, करुणा से मत देना किसी को; ऐसा मत देना कि मेरे पास है, तुम्हारे पास नहीं है; मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी; देखो, मैं संन्यासी, तुम संसारी; इस बेचारे को बचाओ, डूब रहा है संसार में, इस भाव से

मत देना किसी को। क्योंकि इस भाव में तो भूल हो गई, अधर्म हो गया। आनंद से देना, करुणा से नहीं। मस्ती से देना। इसलिए देना कि मेरे पास इतना है कि अब मैं करूं क्या? अब फूल खिल गया तो गंध तो लुटेगी न! अब बादल भर गए जल से तो जल बरसेगा न! अब दीया जग गया तो रोशनी फैलेगी न! यह कोई करुणा का थोड़े ही सवाल है।
तुम क्या सोचते हो, बादल सोच-सोच कर बरसता है कि यह इस गरीब किसान का खेत, इस पर थोड़ा बरसूं; या यह अमीर का खेत है, जाने भी दो; चलेगा, यह तो इंतजाम कर लेगा, नहर से ले लेगा, कुआं खुदवा लेगा। फूल क्या सोच-सोच कर गंध को बिखेरता है कि यह बेचारा गरीब जा रहा है, इसको गंध मिलती भी नहीं, एकदम से झपट इसकी नाक में प्रवेश कर जाऊं। नहीं, फूल बंटता है। कोई गुजरे कि कोई न गुजरे। एकांत में खिला हुआ फूल भी अपनी सुगंध को बिखेरता रहता है। कोई जाने कि कोई न जाने। सच तो यह है कि यह कहना कि सुगंध को बिखेरता है, ठीक नहीं है, सुगंध बिखरती है।
जैनों ने ठीक अपने शास्त्रों में शब्द का उपयोग किया है। उन्होंने यह नहीं कहा कि महावीर बोले, उन्होंने कहा--वाणी बिखरी। यह बिल्कुल ठीक शब्द का उपयोग किया है। खूब सोच कर उपयोग किया है। महावीर बोले नहीं, वाणी बिखरी। जैसे फूल से गंध बिखरती है। जैसे सूरज से किरणें बिखरती हैं। जैसे बादल से जल बिखरता है। ऐसे वाणी बिखरी। झरी। बोलने वाला तो अब वहां कोई है भी नहीं। कुछ पक गया है, वह झर रहा है। जिसकी हो मौज, ले जाए। जिसको लेना हो, उसका है।
बांटना है, आनंद से, मस्ती से, सहजता से। और ध्यान रखना, जो ले जाए उसका धन्यवाद करना। ऐसा मत सोचना कि वह तुम्हारा धन्यवाद करे। कि देखो मैंने तुम्हें ज्ञान दिया, दयान दिया कि अब करो नमस्कार मुझे, कि दो धन्यवाद मुझे, कि देखो मैं तुम्हारा त्राता, तारनहार; कि मैंने तुम्हें बचाया, डूबे जाते थे संसार के दल-दरिद्र में, डूब रहे थे मरुस्थल में, मैंने तुम्हें उबारा। ऐसा भाव मत ले आना। नहीं तो सब मिट्टी हो गया। सोना मिट्टी हो जाता है ऐसे भाव में।
जो तुमसे कुछ ले ले, झुक कर उसे नमस्कार करना कि तुम्हारा धन्यवाद, कि मैं तो बांट ही रहा था, तुम्हारी बड़ी कृपा हुई कि तुमने ले लिया; न लेते तो भी बांटता, निर्जन में बांटता, जंगलों में बांटता, पहाड़ों में फेंकता, तुम्हारी कृपा कि तुमने इतना मूल्य दिया, इतना सम्मान दिया, स्वागत से ले लिया, तुम्हारा धन्यवाद। देना और धन्यवाद करना। धन्यवाद की अपेक्षा मत करना। और तब तुम पाओगे खूब बढ़ेगा। जितना बांटोगे उससे हजार गुना बढ़ेगा। जीवन के परम सत्य बांटने से बढ़ते हैं, रोकने से घटते हैं। रोकने से सड़ जाते हैं, उनसे दुर्गंध उठने लगती है। बांटने से बढ़ते हैं, फैलते हैं, उनकी सुगंध बढ़ती चली जाती है।
तुम पूछते होः "संन्यासी होने के पश्चात हमने जो पाया है, वह सभी को प्राप्त हो।"
शुभ है यह आकांक्षा। होनी ही चाहिए।
"यह प्रश्न बार-बार हृदय में उठता है।"
अब कुछ करो, प्रश्न को उठने ही मत दो। अब इस प्रश्न के लिए कुछ करो। बांटना शुरू करो। जिस विधि बन सके। अलग-अलग लोगों से अलग-अलग विधि से बनेगा। कोई सुंदर गीत रच सकता है तो गीत रचे। कौन जाने उस गीत को गुनगुनाते किसको होश आ जाए। उस गीत की कौन सी कड़ी किसके हृदय में टंकार कर दे। जो मूर्ति बना सकता है, मूर्ति बनाए। कौन जाने मूर्ति को देखते-देखते कौन ठहर जाए? किसका हृदय रुक जाए?
कभी गौर से बुद्ध की मूर्ति देखी कि महावीर की मूर्ति देखी? जिसने भी गौर से देखी, वह अगर क्षण भर को ध्यानस्थ न हो जाए तो उसे मूर्ति देखना ही नहीं आता। उसके पास आंख नहीं वह अंधा है, बुद्ध या महावीर की प्रतिमा को देखते ही तुम्हारे भीतर कुछ ठहर जाता है। उस प्रतिमा में वह कला है। हजारों-हजारों सालों में जाननेवाले कलाकारों ने उस प्रतिमा की रग-रग में ध्यान की अनुभूति को समोया है, ध्यान को आकृति दी है, ध्यान को रूप दिया है, ध्यान को साकार किया है। वे बुद्ध और महावीर की प्रतिमाएं थोड़े ही हैं।

इसलिए कई दफे तुम्हें चिंता भी पड़ती होगी, कभी जैन मंदिर में जाना जहां चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं रखी हों, वे सब एक जैसी लगती हैं। कहीं चौबीस आदमी एक जैसे होते हैं? दो आदमी भी एक जैसे नहीं होते, चौबीस कहां से होंगे? और चौबीस फिर हजारों साल का फासला है उनमें। ये चौबीस ही एक जैसे लगते हैं! जो उनकी पूजा भी करते हैं रोज, उनको भी पक्का पता नहीं होता कौन पार्श्वनाथ हैं, कौन नेमिनाथ। पक्का पता करने के लिए उन्होंने नीचे चिह्न बना रखे हैं। हर मूर्ति पर चिह्न हैं कि यह महावीर का चिह्न है, यह पार्श्वनाथ का चिह्न, ये नेमिनाथ का चिह्न। चिह्न के हिसाब से चलना पड़ता है। अगर चेहरा ही देखो तो वह सब चेहरे ही एक जैसे हैं। उनमें कुछ भेद नहीं है।
क्या कारण होगा?
ये असल में महावीर, पार्श्व या नेमि की प्रतिमाएं ही नहीं हैं। ये प्रतिमाएं तो ध्यान की प्रतिमाएं हैं। यह तो उनके भीतर जो घटा था, उसको रूप दिया है। ये फोटोग्राफ नहीं हैं, ये कैमरे से उतारी गई तस्वीरें नहीं हैं, ये तो ध्यानी मूर्तिकारों ने भीतर जो अनुभव होता है थिरता का, उस थिरता के अनुभव को संगमरमर में ढाला है। अगर तुम गौर से देखोगे इन प्रतिमाओं को, तुम अचानक पाओगे क्षण भर को तुम्हारे भीतर भी सब ठहर गया। सब शांत हो गया।
अगर मूर्ति बना सकते हो, तो ध्यान की प्रतिमा बनाओ; अगर गीत गा सकते हो
तो ध्यान का गीत गाओ, अगर बांसुरी बजा सकते हो तो ध्यान को बांसुरी पर बजने दो। जो भी कर सकते हो... कबीर कपड़ा ही बुन सकते थे तो कपड़े ही ऐसे बुनते थे कि उनका ध्यान कपड़े के तागे-तागे में समा जाए। इधर राम का गीत चलता, उधर कपड़ा बुना जाता। रामधुन से बुना जाता। भजन समा जाता।
तुम क्या करते हो, यह सवाल नहीं। तुमसे जैसे बने सके; बोल सकते हो, बोलो, चुप रह सकते हो, तो चुप हो जाओ; लेकिन तुम्हारी चुप्पी को बोलने दो। चुप्पी भी बोलती है। कई बार तो ऐसा होता है, चुप्पी इतना बोलती है जितना बोलना भी नहीं बोल पाता। तुम अनुभव भी करते हो इसका। कभी पत्नी से झगड़ा हो गया, तुम चुप बैठ गए; वह बोले जा रही है, तुम बोल ही नहीं रहे; क्या तुम समझते हो तुम बोल नहीं रहे हो, तुम बोल रहे हो, क्रोध बोल रहा है। अबोल। अगर क्रोध बोल सकता है, चुप रहकर, प्रेम भी बोल सकता है चुप रह कर। आनंद भी बोल सकता है, ध्यान भी बोल सकता है। तुम्हारे उठने-बैठने में, तुम्हारे मिलने-जुलने में फैलने दो जो तुम्हारे भीतर घना हो रहा है। इसे बिखरने दो। इसे बांटो--और कंजूसी मत करना। क्योंकि यह ऐसी संपदा है कि रोकने से मर जाती है, बांटने से जीवित रहती है। ये ऐसी जलधारा है जो बहती रहे तो ताजा रहती है, रुकी, अवरुद्ध हुई कि गंदी हुई।
"संन्यासी होने के पश्चात हमने भी पाया, वह सभी को प्राप्त हो, यह प्रश्न बार-बार हृदय में उठता है। क्या यह संभव है?"
संभव है। नहीं तो मैं तुम्हें कैसे दे पाऊं? नहीं तो बुद्ध ने कैसे दिया? नहीं तो कृष्ण ने कैसे दिया? संभव है। कठिन तो है देना लेकिन असंभव नहीं है। कठिनाइयां तो बहुत हैं। पहली तो कठिनाई यह कि जो तुम्हारे भीतर फलता है, उसे कैसे शब्दों में लाओ? शब्द साथ नहीं देते। कठिनाई यह भी है कि तुम कहते कुछ, सुनने वाला कुछ और समझता। संवाद कठिन है। छोटी-छोटी बातों में झगड़े हो जाते हैं। तुम कुछ कहते, पत्नी कुछ समझती है; पत्नी कुछ कहती, तुम कुछ समझते; तुम दोनों इसी पर लड़ने लगते कि मैंने कुछ कहा, तुमने कुछ समझा। जिंदगी भर लोग लड़ते रहते हैं कि हमें कोई समझता ही नहीं। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि हमें कोई समझता ही नहीं। भूलचूक ही करते जा रहे हैं लोग।
कठिनाइयां तो हैं। तुम कहोगे कुछ, लोग समझेंगे कुछ। तुम देने जाओगे, लोग समझेंगे लेने आए हैं। तुम बांटना चाहोगे, लोग बचेंगे, लोग डरेंगे, लोग समझेंगे कि तुम उनको फांसने आए हो। तुम चाहोगे हृदय उंड़ेल दें, वे कहेंगे कि भई, हमें चाहिए ही नहीं। हमारा संसार अभी बहुत पड़ा है, अभी ये संन्यास की बात हमसे छेड़ो मत। अभी इसका समय नहीं आया। अभी तो हम जवान हैं, अभी-अभी तो मेरी शादी हुई है, अभी तो नया बच्चा घर में आ रहा है, तुम्हें ध्यान की

पड़ी है! बाबा घर में आ रहा है, तुम्हें ध्यान की पड़ी है! अभी यह बात मत छेड़ो। अभी यह बात करनी ही नहीं। जब समय आएगा मैं खुद ही आकर आपसे पूछ लूंगा।
और लोग परेशान भी हो गए हैं, मिशनरी हैं और आर्यसमाजी हैं, और न मालूम तरह-तरह के बकवासी हैं, वे लोगों को समझा रहे हैं, पिला रहे हैं कि यह मानो, ऐसा मानो, यही ठीक है, बाकी सब गलत है। लोग घबड़ा गए हैं। लोग कहते हैं-- बख्शो हमें! आप होंगे ठीक, मगर हमें बख्शो! हमें अभी दूसरे काम करने हैं। जिंदगी में और भी काम हैं। अब हम इसी बकवास में नहीं पड़े रह सकते कि वेद का क्या अर्थ है? जो भी होगा ठीक ही होगा, आप कहते हैं तो ऐसा ही होगा। कौन सुनने को तैयार है?
कठिनाइयां होंगी। पहले तो तुम कह न पाओगे। फिर लोग समझने को तैयार नहीं। और अगर कोई समझने को तैयार हो जाए तो विवाद करेगा, संदेह उठाएगा और तुम उत्तर न दे पाओगे। क्योंकि कुछ ऐसे संदेह हैं जो केवल अनुभव से ही हल होते हैं। और कोई उपाय नहीं है। जिसने कभी प्रेम नहीं किया, वह प्रेम के संबंध में हजार संदेह उठाएगा, और तुम लाख कोशिश करो, समझा न पाओगे। एक ही चीज समझा सकती है कि वह प्रेम करे। लेकिन अगर उसने यह कसम खा ली है कि जब तक मैं पक्का समझ न लूं कि प्रेम होता है, तब तक करूंगा नहीं। और उसकी बात में भी जान तो मालूम होती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखना चाहता था। तो गांव के
एक उस्ताद को पकड़ लिया जो तैरना सिखाते थे बच्चों को। उनके साथ गया नदी पर। घाट से उतर ही रहा था कि काई जमी थी नीचे फर्श पर, और फिसल गया, गिर पड़ा। गिरा तो भागा अपने कपड़े लेकर एकदम घर की तरफ। उस्ताद ने कहाः कहां जाते हो, नसरुद्दीन? उसने कहाः जब तैरना सीख लूंगा तभी आऊंगा। ऐसे अगर कहीं पानी में गिर जाऊं बिना तैरना जाने हुए, तो मुफ्त मारे गए। अब तो तैरना सीख लूं उस्ताद, तभी नदी आऊंगा। मगर तबसे नदी नहीं गया, तैरना कहां सिखोगे? बिस्तर पर लेट कर हाथ-पैर मारोगे? सुविधापूर्ण, अपने कमरे में चारों तरफ दरवाजे बंद कर लिए, लेट गए बिस्तर पर और पटक रहे हैं हाथ--तैरना नहीं आएगा! ऐसे तैरना नहीं आता।
अगर किसी ने यह तय कर लिया कि तैरना आ जाए तभी पानी में उतरूंगा, तो तैरना आएगा ही नहीं। और उसकी बात में बल तो है कि बिना तैरना सीखे पानी में कैसे उतरूं? यह तर्क एकदम व्यर्थ नहीं है, हंसो मत, उस पर, यही हमारी जिंदगी का तर्क है। हम कहते हैं--पहले ईश्वर को सिद्ध तो करो, फिर हम खोजने निकलें। ध्यान किसी को हुआ है कभी, यह सिद्ध करो, तो हम भी ध्यान करें। मगर कैसे सिद्ध करोगे? ध्यान अंतर्दशा है। ऐसे बाहर रखी नहीं जा सकती निकालकर बाजार में कि सब लोग देख लें। कोई उपाय नहीं है। मुझे क्या हुआ है, वह मैं जानता हूं। तुम्हें जो होगा, तब तुम जानोगे।
तो अड़चनें तो हैं, समझाने की कठिनाइयां हैं, संवाद बहुत मुश्किल है, मगर इन सारी अड़चनों को स्वीकार करके भी बांटना तो होगा। और फिर लोग ऐसे हैं भी जिनको प्यास है, जो प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कहीं से कोई स्वर मिले, आवाज मिले, पुकार मिले। और यह दुनिया बदलनी है। यह दुनिया गैर-ध्यान के बहुत जी ली और बहुत कष्ट पा ली।
हमारे मैकदे का अब निजाम बदलेगा
हम अपना साकी बदलेंगे, जाम बदलेगा
अभी तो चंद ही मैकश हैं बाकी सब तिश्ना
वह वत्त आगया जब तिश्नाकाम बदलेगा
यह अर्शो-फर्श की तफरीक कुछ नहीं "वामिक"
बुलंदो-पश्त का मेयारे-खाम बदलेगा
समय आया है, अब छोटी-मोटी मधुशालाओं से काम न चलेगा, इस पूरी पृथ्वी को मधुशाला बनाना है। अब कुछ ही पियक्कड़ हों और बाकी प्यासे ही रहें, ऐसे काम न चलेगा। "हमारे मैकदे का अब निजाम बदलेगा।" अब हमें अपने मदिरालय का प्रबंध और व्यवस्था बदलनी होगी। वही मैं कर रहा हूं चेष्टा। इसलिए यहां हिंदू की बात नहीं हो रही; मुसलमान की बात नहीं हो रही, ईसाई की बात नहीं हो रही--और सबकी बात भी हो रही है। वही कोशिश कर रहा हूं कि अब यह निजाम बदले।

मंदिर में हिंदू जाता है, मुसलमान मस्जिद जाता है, अब यह निजाम बदले। अब इतनी संकीर्णता न रहे। अब सब मंदिर-मस्जिद उसके हों। जो करीब पड़ जाए, वहीं चले गए। मस्जिद करीब हो तो वहीं प्रार्थना कर ली, इसकी फिकर न की कि तुम मुसलमान हो या नहीं? मंदिर करीब हुआ तो वहीं चले गए, इसकी फिकर न की कि तुम हिंदू हो या मुसलमान। महावीर की मूर्ति मिल जाए तो वहीं बैठ गए, वहीं पी लिया, महावीर की सुराही से पी लिया। और बुद्ध की प्रतिमा मिल गई तो वहां पी लिया। और कोई न मिला, तो वृक्ष भी उसी के हैं और आकाश भी उसी का है।
हमारे मैकदे का अब निजाम बदलेगा
हम अपना साकी बदलेंगे, जाम बदलेगा
अभी तो चंद ही मैकश...
अभी तो थोड़े से पियक्कड़ हैं दुनिया में। और जिन्होंने पीआ है वही जानते हैं।
... बाकी सब तिश्ना
बाकी लोग तो सिर्फ प्यासे हैं। तलाश रहे हैं, मगर हाथ कुछ लगता नहीं। खाली के खाली रह जाते हैं। खाली आते हैं, खाली जाते हैं।
अभी तो चंद ही मैकश हैं बाकी सब तिश्ना
वह वत्त आ गया जब तिश्नाकाम बदलेगा
अब हमें बदलना है। ये मधु घट-घट में ढालना है। यह शराब एक-एक हृदय में उतारनी है। इस दुनिया को ध्यान के बिना रहते बहुत समय हो गया, सिर्फ युद्ध होते हैं, हिंसा होती है; लोग क्रोधित होते हैं, विक्षिप्त होते हैं; इस सारे क्रोध, विक्षिप्तता, युद्धों और हिंसा की ऊर्जा को प्रेम की ऊर्जा में बदलना है।
यह अर्शो-फर्श की तफरीक कुछ नहीं "वामिक"
आकाश और पृथ्वी का भेद कुछ भी नहीं है। जरा पीने की कला आ जाए कि पृथ्वी आकाश हो जाती है।
यह अर्शो-फर्श की तफरीक कुछ नहीं "वामिक"
बुलंदो-पश्त का मेयारे-खाम बदलेगा
और न कोई नीचा है और न कोई ऊंचा है। ये सब भेदभाव झूठे हैं। न कोई हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न बौद्ध, न जैन, ये सब भेदभाव बचकाने हैं। ये सब दीवालें तोड़ देनी हैं।
बांटो, तुम्हें जो मिला है उसे बांटो। होशियारी इतनी ही रखना कि किसी
को जबरदस्ती पकड़ कर मत पिला देना। क्योंकि जबरदस्ती जो पिलाया जाता है, वह जहर हो जाता है। जो स्वेच्छा से पीया जाता है, वही अमृत है। इसलिए बड़ी परोक्ष प्रक्रिया है लोगों तक अपनी आनंद की अनुभूति पहुंचाने की। किसी की गर्दन सीधी पकड़ कर जोर-जबरदस्ती से बदलने की कोशिश मत करना--वही तो चलता रहा है, दुनिया से वही तो बदलना है। घर में बच्चा पैदा हुआ और मां-बाप ने पकड़ा उसको, इसको जल्दी से जैन बना लो--क्योंकि वे जैन हैं। उनको डर है कि अगर यह जवान हो गया, फिर पता नहीं बना पाएं, न बना पाएं फिर मजबूत हो जाएगा; फिर इसकी गर्दन पकड़नी इतनी आसान नहीं रहेगी। फिर इसमें बुद्धि जग जाएगी। इसलिए सारी दुनिया के धर्मगुरु इस कोशिश में रहते हैं कि सात साल के पहले ही बच्चे का बपतिस्मा हो जाए, जनेऊ डाल दिया जाए, सिर घुटा कर चुटैया रख दी जाए, कुछ न कुछ कर दिया जाए ताकि मामला खत्म हो जाए। यह तय कर दिया उसकी बुद्धि के जागने के पहले कि वह कौन है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई? उसको कुछ गीता रटा दो, कुछ कुरान की आयतें रटा दो, उसे एक-दूसरे से दुश्मनी सिखा दो, उसे आदमी-आदमी के बीच दीवाल खड़ी करना सिखा दो, उसे ब्राह्मण बना दो, शूद्र बना दो, कुछ न कुछ बना दो।
बस एक बार यह विकृति छा गई उसमें, फिर बहुत मुश्किल हो जाता है निकालना, क्योंकि जहर गहरे उतर जाता है। बचपन में जो जहर उतरता है, वह बहुत गहरे उतर जाता है। उससे बुनियाद बन जाती है। फिर सारा भवन उसी पर खड़ा होता है। फिर जिंदगी भर वह उसी तरह सोचता है। और सोचता है कि मैं सोच रहा हूं। वह नहीं सोच रहा है, यह जो उसके भीतर कूड़ा-कचरा डाल दिया गया है वही घूम रहा है। वही हवा में उठता-बैठता रहता है। वह कुछ सोचता नहीं।

यह जबरदस्ती काफी चल चुकी, इसका परिणाम क्या है? हिंदू भी नहीं है, मुसलमान भी नहीं है, ईसाई भी नहीं है, कोई भी तो नहीं है यहां पृथ्वी पर। बस नाममात्र को हैं। जबरदस्ती कोई धार्मिक हो सकता है? धर्म निजी खोज है, निजता है।
तो तुम्हें मैं याद दिला दूं, भूल कर भी किसी पर जबरदस्ती मत थोप देना। प्रेम से, जो तुम्हें मिला है, उसको बांटना। सहज भाव से निवेदन कर देना। और दूसरे को मौका देना कि सोचे। और किसी भय या लोभ को खड़ा मत करना। यह मत कहना कि अगर नहीं हमारी बात मानी तो नरक में पड़ोगे। यह कहते रहे हैं लोग इस जमीन पर कि हमारी बात नहीं मानी तो नरक में पड़ोगे। नरक का ऐसा वीभत्स चित्र खींचते हैं कि जिसमें थोड़ी भी बुद्धि हो वह यही सोचेगा कि मान ही लेने में सार है। नरक में कौन पड़ना चाहता है! और हो न हो कहीं नरक हो ही न! तो मान ही लो।
फिर स्वर्ग का प्रलोभन दिया है कि जो मानते हैं, उनको इस-इस तरह की उपलब्धियां होंगी। ऐसे सुंदर सोने के महल, और कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठो, बात उठे नहीं कि पूरी हो जाए, वासना उठे नहीं कि तत्क्षण पूरी हो जाए; और सुंदर अप्सराएं जो कभी बूढ़ी नहीं होतीं। तुमने बूढ़ी अप्सरा का नाम सुना? कोई अप्सरा बूढ़ी होती नहीं। उर्वशी अभी भी उतनी ही जवान है जैसी तब थी। सोलह साल पर रुक जाती हैं अप्सराएं। उसके आगे नहीं जातीं। स्त्रियां यहां भी कोशिश करती हैं रुकने की, मगर कब तक? कोशिश तो करती हैं, यहां भी स्त्रियां रुकने की कि रुकी रहें सोलह साल पर, मगर दो-चार-आठ साल में फिर उम्र बदलनी ही पड़ती है क्योंकि फिर वह दिखाई ही पड़ने लगती हैं, उसको कहां तक रोकोगे? मगर स्वर्ग में उम्र नहीं बदलती। वहां जवान ही जवान। न कोई बच्चा है, न कोई बूढ़ा। वहां सिर्फ जवानी है। ये मनुष्य की कामना के प्रतीक हैं। और वहां राग-रंग ही चलता है और कोई काम नहीं।
तुमने देखा स्वर्ग में कोई देवदूत दुकान कर रहे हैं, खेती-बाड़ी कर रहे हैं--यह कोई कहानी ही नहीं आती! बस, जमी है महफिल, शराब छलक रही है, नाच हो रहा है--इंद्र का दरबार भरा है, अप्सराएं नाच रही हैं, मस्ती चल रही है। कोई और काम है? इसका पता ही नहीं चलता कि शराब कौन ढालता है? शराब बनाता कौन है? यह शराब की भट्ठी कौन चलाता है? नहीं, इसीलिए तो कल्पवृक्ष ईजाद किए, वहां तो जो कल्पना करो, तत्क्षण हो जाता है।
मैंने सुना है, एक आदमी भूल से कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। भटक रहा था, पहुंच गया। थका-मांदा था। इतना थका था कि उसने सोचा कि इस वत्त अगर एक बिस्तर मिल जाता, तो गहरी नींद सो लेता। इतना थका था, इतना कि टूटा जा रहा था। उसको हैरानी भी न हुई क्योंकि उसने देखा तत्क्षण एक बिस्तर लग गया। मगर वह इतना थका-मांदा था कि चौंका भी नहीं, जल्दी से सो गया।
थोड़ी देर बाद उसकी नींद खुली तो उसने सोचा कि बड़ा मजा है, यह बिस्तर भी मिल गया! अब चाय इत्यादि भी मिलेगी कि नहीं? तत्क्षण चाय की टे आकाश से उतर आई। तब थोड़ा उसे भय भी लगा। मगर उसने कहा--चाय तो पी ही लो! उसने चाय तो पी ली, फिर उसने सोचा कि यह मामला क्या है? क्या भोजन वगैरह भी मिलेगा? भोजन भी आ गया। भोजन भी कर लिया। जब भोजन कर लिया और सब तरह से निश्चिंत हो गया, अब उसे जरा ज्यादा घबड़ाहट पकड़ी कि यह मामला क्या है; ये थालियां, ये बिस्तर, ये उतर कहां से रहे हैं? कोई भूत-प्रेत तो नहीं हैं? भूत-प्रेत खड़े हो गए। देख कर उनको उसने कहा कि मारे गए, कि मारा गया।
कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे जो चाहोगे वैसा ही हो जाएगा। तत्क्षण। चाह में और पूर्ति में समय का अंतराल नहीं होगा। खूब प्रलोभन दिए हैं, खूब भय दिए हैं, और इन्हीं के आधार पर आदमियों को फांसा गया है। तुम न तो किसी को भय देना, न प्रलोभन देना, सिर्फ जो तुम्हें हुआ है उसका निवेदन कर देना। कोई स्वेच्छा से उमंग से भर जाए, तो ठीक। कोई स्वेच्छा से उमंग से न भरे तो उसके पीछे मत पड़ जाना--हाथ धोकर किसी के पीछे मत पड़ जाना।

आखिरी प्रश्नः संसार में ही परमात्मा छिपा है, या कि संसार ही परमात्मा है?

जब तक जाना नहीं, तब तक तो संसार ही है, परमात्मा कहां? तब तक तो परमात्मा की सिर्फ बातचीत ही बातचीत है। संसार ही सत्य है अभी तो। अज्ञान की अवस्था में परमात्मा है ही नहीं, संसार ही है। ज्ञान की अवस्था में परमात्मा ही है, संसार नहीं है और चूँकि ज्ञानियों को अज्ञानियों से बात करनी पड़ती है, इसलिए वे कहते हैं--संसार में परमात्मा छिपा है।
इस बात को समझ लेना। अज्ञानी के लिए संसार ही है, परमात्मा है नहीं। ज्ञानी के लिए सिर्फ परमात्मा ही है, संसार नहीं है। और अज्ञानी ज्ञानी के बीच बात होती है। अब यह बात कैसे चले? दोनों के आधार अलग हैं। अज्ञानी कहता है--कहां का परमात्मा? संसार है। और ज्ञानी भी अगर ऐसे ही जिद्दी हो तो वह कहेगा--कहां का संसार, सिर्फ परमात्मा है। फिर तो बात न हो सकेगी। तो समझौता करना पड़ता है। वह समझौते के कारण ये सत्य इस तरह कहे जाते हैं, कि संसार में छिपा है परमात्मा। इससे अज्ञानी भी एकदम नाराज नहीं होता। वह कहता है--चलो, संसार तो है; अब रही छिपे की बात, खोजेंगे।
थोड़ा अज्ञानी खोजने में लगता है, तो फिर ज्ञानी दूसरी घोषणा करता है,
वह कहता है--छिपा है, ऐसा नहीं, संसार ही परमात्मा है। जो पहली बात मानने को राजी हो गया और खोज पर चला, वह दूसरी बात भी मानने को राजी हो जाता है। क्योंकि संसार में छिपा है, इसका तो मतलब हुआ दो हैं। संसार और उसमें छिपा हुआ परमात्मा। जैसे लोटे में जल भरा है। ऐसे परमात्मा संसार में भरा है। तो यह लोटा अलग, जल अलग। मगर यह घोषणा पहली है करनी ही पड़ती है। दूसरी घोषणा ज्ञानी करता है जब थोड़ा अज्ञानी सरकने लगा ध्यान में, प्रार्थना में, पूजा में, तो उससे कहता है कि अलग-अलग नहीं हैं, एक ही है, संसार ही परमात्मा है। मगर अभी भी दो शब्दों का प्रयोग कर रहा है। संसार शब्द को एकदम नहीं छोड़ दिया है। अज्ञानी को देख कर चलना पड़ता है ज्ञानी को। अज्ञानी की भाषा बोलनी पड़ती है।
फिर अज्ञानी और ध्यान में उतरा और ज्ञान में उतरा, तो एक दिन वह घोषणा करेगा--कोई संसार नहीं है, बस परमात्मा ही है, वही एक है। न तो कुछ छिपा है, न किसी में छिपा है--परमात्मा छिपा थोड़े ही है। परमात्मा से ज्यादा प्रकट क्या है? वही तो प्रकट है, छिपेगा किसमें? उसके अतिरित्त कुछ और है नहीं जिसमें छिप जाए। लेकिन ये घोषणाएं करनी पड़ती हैं अलग-अलग पात्रता के कारण। भिन्न-भिन्न पात्रता के लोग हैं। तुम देखते नहीं जीवन में इतना परिवर्तन दिखाई पड़ता है लेकिन फिर भी परिवर्तन के पीछे शाश्वत की झलक नहीं मिलती? फूल खिले, फिर झर गए, कल फिर फूल खिले; बसंत आया, गया, पतझड़ हो गई। फिर बसंत आ गया। बदलाहट होती रहती है, लेकिन किसी गहरे तल पर कुछ भी नहीं बदलता, फूल आते ही रहते हैं। मौत जीत कहां पाती है? जीवन होता ही रहता है। जीवन मौत के बावजूद भी चलता ही रहता है। इस शाश्वत चलने वाले जीवन का नाम ही परमात्मा है।
खिजां ने खाक उड़ाई हजार गुलशन में
चमन में फूल मगर मुस्कराए जाते हैं
कितनी ही मौत आए, कितने ही पतझड़ आएं, लेकिन जिंदगी मुस्कराए चली जाती है। फर्क ही नहीं पड़ता!
खिजां ने खाक उड़ाई हजार गुलशन में
चमन में फूल मगर मुस्कराए जाते हैं
जरा गौर से देखो! तो पहले तुम्हें ऐसे ही लगेगा कि संसार में परमात्मा छिपा है, फिर ऐसा लगेगा--संसार ही परमात्मा है। फिर ऐसा लगेगा--परमात्मा ही है, संसार कहां? ये तीन सीढ़ियां हैं।
फूलों की तरफ उनकी कतारों की तरफ देख
महके हुए सरशार नजारों की तरफ देख

है कश-म-कश इश्क की हर गाम पै दावत
बहकी हुई बदमस्त बहारों की तरफ देख

कुंदन की तरह निखरी हुई चांदनी रातें

बिखरे हुए मदहोश सितारों की तरफ देख

यह सहने-चमन कर-मके-शहताब की परवाज उड़ते हुए बेचैन शरारों की तरफ देख

बसती है यहां एक ख्यालात की दुनिया चश्मों के लहकते हुए धारों की तरफ देख

कहता था "हया" सुब्ह का टूटा हुआ तारा
"कुछ तू भी मशैयत के इशारों की तरफ देख"

.जरा संसार से आते इशारे तो देखो!

कहता था "हया" सुबह का टूटा हुआ तारा
"कुछ तू भी मशैयत के इशारों की तरफ देख"
सब तरफ से इशारा हो रहा है, मगर तुम आंख बंद किए खड़े हो। सब तरफ से परमात्मा न मालूम कितने-कितने रूपों में खबरें भेज रहा है। यह आया हवा का झोंका--यह उसी का झोंका। यह आई फूलों की गंध, यह उसी की गंध। यह उठा इंद्रधनुष आकाश में, यह उसी का इंद्रधनुष, यह उसी का रंग। ये लोग जो तुम्हारे पास बैठे हैं, यह तुम जो अपने भीतर बैठे हो, ये सब उसी के बैठकखाने हैं। घर-घर में वही बसा है। मगर यह पहली घोषणा कि घर-घर में वही बसा है। फिर दूसरी घोषणा कि वह और घर दो नहीं हैं, एक ही हैं। फिर तीसरी घोषणा--वही है, घर कहां?
यह पात्रता के अनुसार है। इनमें कोई भेद नहीं है। पहली कक्षा का पाठ, दूसरी कक्षा का पाठ, तीसरी कक्षा का पाठ। और इस तरह के प्रश्नों को दार्शनिक ढंग से सुलझाने मत जाना। नहीं तो सुलझा तो नहीं पाओगे, और उलझ जाओगे--वैसे ही काफी उलझे हो। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं--बजाय शास्त्रों में जाने के, सृष्टि में चलो। सब शास्त्र आदमी के रचे हुए हैं, सृष्टि उसकी रची हुई है।
फूलों की तरफ उनकी कतारों की तरफ देख
महके हुए सरशार नजारों की तरफ देख

है कश-म-कश इश्क की हर गाम पै दावत
बहकी हुई बदमस्त बहारों की तरफ देख

कुंदन की तरह निखरी हुई चांदनी रातें बिखरे हुए मदहोश सितारों की तरफ देख

यह सहने-चमन कर-मके-शहताब की परवाज उड़ते हुए बेचैन शरारों की तरफ देख

बसती है यहां एक ख्यालात की दुनिया चश्मों के लहकते हुए धारों की तरफ देख

कहता था "हया" सुब्ह का टूटा हुए तारा "कुछ तू भी मशैयत के इशारों की तरफ देख"

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
नौवां प्रवचन

राम रंगीले के रंग राती

गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
तत छन परसन होत हीं भजन भाव भरिया।।
श्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।
दूजा दिल आवै नहिं, जब धारी धुर की।।
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
सांचा सगा जे राम का, ल्यौ तासूं जोड़ी।।
भौजल माहीं काढ़िकै, जिन जीव जिलाया।
सहज सजीवन कर लिया सांचे संगि लाया।।
जनम सफल तब का भया, चरपौ चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया।।

राम रंगीले के रंग राती।
परम पुरुष संगि प्राण हमारों, मगन गलित मद-माती।।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूं, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं अडिग होई बैठी, सिर धरि करवत काती।।
सब विधि सुख राम ज्यूं राखै, यहु रसरीति सुहाती।
जन रज्जब धन ध्यान तिहारो, बेरबेर बलि जाती।।

जवानी, हुस्न, गमजे, अहद, पैमां कहकहे, नग्मे रसीले ओंठ, शर्मीली निगाहें, मरमरी बाहें
यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
भरे बाजू, गठीले जिस्म, चौड़े आहनी सीने बिलकते पेट, रोती गैरतें, सहमी हुई आहें यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
जबानें, दिल, इरादे, फैसले, जांबाजियां, नारे यह आए दिन के हंगामे, यह रंगारंग तकरीरें यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
सदाकत, शायरी, तन्कीद, इल्पो-फन कुतुबखाने कलम के, मोंजिजे, फिक्रो-नजर की शोख तस्वीरें यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
अजानें, शंख, हजरे, पाठशाले, डाढ़ियां, कश्के, यह लंबी-लंबी तस्वीहें, यह मोटी-मोटी मालाएँ यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
अलल-एलान होते हैं, यहां सौदे जमीरों के
यह वह बाजार है जिसमें फरिश्ते आके बिक जाएं यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?

संसार एक बाजार है। यहां हर चीज बिकती है; खरीदारो! बताओ क्या खरीदोगे? --सिवाय परमात्मा के। परमात्मा भर बाजार में नहीं है। उसका भर सौदा नहीं हो सकता। उसे भर खरीदने का कोई उपाय नहीं है। और सब कुछ मिल जाएगा। लेकिन और जो भी मिलेगा, जैसा मिला वैसा ही खो भी जाएगा। पानी पर खींची लकीरें हैं। रेत के बनाए महल हैं। बन भी न पाएंगे और मिट जाएंगे। और जो भी पा लोगे, मौत छीन ही लेगी।
जिसे मौत छीन ले, समझ लेना वह संसार था। जो मौत में भी बच कर तुम्हारे साथ चला जाए, जो चिता की लपटों में भी तुम्हारा साथ न छोड़े, समझना वही परमात्मा है। मृत्यु जिसे पोंछ देती है, वह परमात्मा नहीं है।
परमात्मा का अर्थ हैः शाश्वत जीवन; अनंत जीवन; न जिसका कोई ओर, न कोई छोर, न कोई आदि, न कोई अंत। वैसे जीवन को न पाया तो कुछ भी न पाया। वैसे जीवन को न पाया तो सिर्फ गंवाया कौरे गंवाया। वैसे जीवन की आकांक्षा कहां जगे, कैसे जगे? कौन उठाए उस लपट को तुम्हारे भीतर? कौन तुम्हें याद दिलाए? जिसने पाया हो, वही याद दिला सकेगा। जिसने चखा हो, वही तुम्हारे प्राणों में भी चाह उठा सकेगा। जो जागा हो, वही सोए को जगा सकेगा। उस जागे का नाम गुरु। गुरु का कोई और अर्थ नहीं होता। जो तुम्हें परमात्मा को छोड़ कर कुछ और सिखाए, वह शिक्षक, गुरु नहीं। जो तुम्हें परमात्मा सिखाए, वह गुरु।
आज के सूत्र बड़े प्यारे हैं।
"गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।"
रज्जब कहते हैंः सागर-जैसे चौड़े दिलवाला गुरु मिल गया। गुरु होगा ही सागर के दिल जैसा विस्तीर्ण। परमात्मा को जानते ही हृदय विस्तीर्ण हो जाता है। परमात्मा को जानते ही जानने वाला परमात्मामय हो जाता है। जो उसे जानता है, उसके जैसा हो जाता है। इसे याद रखना। तुम जो जानते हो उसके जैसे ही हो जाते हो। तुम जो पाते हो उसके जैसे ही हो जाते हो। जो धन ही इकट्ठा करता है और ठीकरों में ही जीता है, वह ठीकरा होकर ही मरता है। आदमी के चेहरे पर उसकी सारी जिंदगी की कथा लिखी होती है। उसकी आंखों में जरा झांको और तुम उसके जीवन की गहराई को पकड़ लोगे। उसकी आंखों में तुम्हें तैरते हुए नोट-नोट दिखाई पड़ेंगे, कि सोने-चांदी के ढेर दिखाई पड़ेंगे, कि पद-प्रतिष्ठा का अंबार दिखाई पड़ेगा। बस यह आदमी वही हो गया।
जो चाहते हो, सोच कर चाहना। क्योंकि चाहना तुम्हारी आत्मा बन जाती है। तुम जो चाहते हो, उसका रंग तुम पर चढ़ जाता है। जो भी तुम मांगते हो, वही तुम धीरे-धीरे हो जाते हो। क्षुद्र को मत मांगना, अन्यथा क्षुद्र हो जाओगे। मांगना ही हो तो विराट को मांगना, ताकि विराट हो सको। चाहना हो तो परमात्मा को चाहना। उसका रंग लगे तो जीवन में गंध आए। उसका रंग लगे तो जीवन में रोशनी उतरे।
लोग अगर कीड़े-मकोड़ों की तरह सरक रहे हैं तो उसका कारण है, उनकी चाह जमीन की है। आकाश की तरफ आंखें उठाओ!
परमात्मा की प्रार्थना में हम आकाश की तरफ आंखें क्यों उठाते हैं? परमात्मा की प्रार्थना में क्यों हम अपने बाजू आकाश की तरफ फैलाते हैं? किसलिए? कोई परमात्मा आकाश में बैठा है, ऐसा थोड़े ही है। लेकिन एक इशारा है कि परमात्मा आकाश जैसा विराट है। और जो इस आकाश जैसे विराट को जान लेगा, स्वभावतः उसी जानने में वह आकाश जैसा विराट हो जाएगा। हम जो जानते हैं, वही हो जाते हैं। उपनिषद कहते हैंः जिन्होंने उसे जाना, वह वही हो गए। "गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।"
सागर जैसा जिसका दिल था, ऐसा गुरु मिला। ऐसा भारी गुरु मिला! "गरवा!" भारी का क्या अर्थ? "गुरु" शब्द का अर्थ भी "भारी" होता है। गुरु शब्द भी उसी मूल से बना है जिससे गरवा। गुरु का अर्थ है, ऐसा भारी, कि बैठ जाए गहराइयों से गहराइयों में, जो अंतिम गहराई में पहुँच जाए। हलके होओगे तो गहराई न जान सकोगे। गहरे होने के लिए तो वजन चाहिए। तो सागर की अतल गहराइयों में उतर पाओगे।
किस बात से वजन आता है जीवन में? एक ही बात से वजन आता है जीवन मेंः परमात्मा से जुड़ जाओ तो वजन आता है। नहीं तो लोग सतह पर ही जीते हैं, सतह पर ही मर जाते हैं। परमात्मा सतह पर नहीं है। या तो ऊंचाइयों की ऊंचाई है

परमात्मा, या गहराइयों की गहराई है परमात्मा। सतह तो दोनों के मध्य में है--न ऊंचाई है वहां, न गहराई है वहां।
और यह भी ख्याल रखना कि जीवन के गणित में ऊंचाई और गहराई का एक ही अर्थ होता है। वह एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं। जो गहरा होता है, वही ऊंचा हो जाता है। जो ऊंचा होता है, वही गहरा हो जाता है। ऐसा ही समझो जैसे वृक्ष। जो वृक्ष जितना ऊंचा उठता है आकाश में, उसकी जड़ें उतनी ही गहरी चली जाती हैं पाताल में। अनुपात बराबर होता है। तुम ऐसा नहीं कर सकते कि छोटी-छोटी जड़ों वाले वृक्ष को आकाश को छूने की कला सिखा दो। और तुम यह भी नहीं कर सकते कि पाताल तक जड़ें पहुंचाने वाले वृक्ष को तुम आकाश तक पहुंचने से रोक लो। यह अनुपात बराबर होता है--जितनी ऊंचाई उतनी गहराई।
फ्रेड्रिक नीत्शे का अदभुत वचन हैः जिन्हें आकाश छूना हो, उन्हें पाताल छूना ही होगा।... तो एक तरफ तो गुरु आकाश जैसा होता है विराट! उसकी उंचाई और दूसरी तरफ गुरु गहरा होता है--सागरों जैसा! अनंत उसकी गहराई है। मगर ये एक ही घटना के दो हिस्से हैं। इसमें गुरु का कुछ भी नहीं है। परमात्मा के साथ जो भी जुड़ता है, वही ऐसा हो जाता है। यह जादू तो परमात्मा के साथ जुड़ने का है; उसकी समीपता का जादू है।
तुम अपनी जिंदगी को देखो तो कुछ समझ में आए। तुम्हारी जिंदगी में कभी कोई विराटता का क्षण आता है--जब सब द्वार खुल जाते हों, सब दीवालें गिर जाती हों, जब तुम्हारा छोटा सा चित्त का आंगन छोटा न रह जाता हो, आकाश जैसा विराट होता हो।
स्वामी राम कहते थे कि मैंने अपने चित्त के आकाश में चांद-तारों को चलते देखा है, सूरज को उगते देखा है। लोग समझते हैं कि पागलपन की बातें हैं; या जो इतने कठोर न होते, वे कहते कविताएं हैं। लेकिन राम जो कह रहे थे, न तो पागलपन था और न काव्य था--जीवन का सीधा सत्य था। अहंकार की सीमा टूट जाए तो तुम अपने भीतर चांद-तारों को चलते देखोगे ही, वे तुम्हारे भीतर चल ही रहे हैं। तुम अपने भीतर ही वसंतों को आते देखोगे। अपने भीतर ही तुम विराट का सारा विस्तार देखोगे। तुम अपने भीतर सब पा लोगे। मगर अहंकार बड़ा संकीर्ण है और तुम्हें खुलने नहीं देता।
अपनी जिंदगी को परखो। तुम्हारी जिंदगी में न कोई ऊंचाई का अनुभव है, न कोई गहराई का अनुभव है, न कोई विशालता का अनुभव है। तुम्हारी जिंदगी का अनुभव सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। सिवाय पीड़ा के तुम्हारा कोई स्वाद नहीं है। तुम्हारी आंखें अँधेरे से भरी हैं और तुम्हारी आंखें धुएँ से तिलमिला रही हैं। और यह धुआं तुम्हारे ही भीतर तुम्हारे अहंकार से उठ रहा है। और यह अंधेरा भी तुम्हारे भीतर ही जन्म ले रहा है।
मेरे ख्वाबों के शबिस्तां में उजाला न करो
कि बहुत दूर सवेरा नजर आता है मुझे
छुप गए हैं मेरी नजरों से खदो-खाले-हयात
हर तरफ अब्र घनेरा नजर आता है मुझे
चांद-तारे तो कहां अब कोई जुगनू भी नहीं
कितना शफ्फाक अंधेरा नजर आता है मुझे कोई ताबिंदा किरन यूं मेरे दिल पर लपकी जैसे सोए हुए मजलूम पै तलवार उठे
किसी नग्मे की सदा गूंज के यूं थर्रायी जैसे टूटी हुई पाजेब से झंकार उठे
मैंने पलकों को उठाया भी तो आंसू पाए मुझसे अब खाक जवानी का कोई बार उठे तुमने रातों में सितारे तो टटोले होंगे मैंने रातों में अंधेरे ही अंधेरे देखे तुमने ख्वाबों के परिस्तां तो सजाए होंगे मैंने माहौल के शबरंग फरेरे देखे
तुमने इकतार की झंकार तो सुनी ही होगी
मैंने गीतों में उदासी के बसेरे देखे
मेरे गमख्वार! मेरे दोस्त! तुम्हें क्या मालूम

जिंदगी मौत की मानिंद गुजारी मैंने
इक बिगड़ी हुई सूरत के सिवा कुछ भी न था
जब भी हालात की तस्वीर उतारी मैंने
किसी अफलाक-नशीं ने मुझे धत्कार दिया
जब भी रोकी है मुकद्दर की सवारी मैंने
मेरे गमख्वार! मेरे दोस्त! तुम्हें क्या मालूम?
थोड़ा सोचो अपनी जिंदगी को। ऐसा ही तुम पाओगे।
चांद-तारे तो कहां अब कोई जुगनू भी नहीं
कितना शफ्फाक अंधेरा नजर आता है मुझे
तुम्हारे चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा है। चांद-तारे तो दूर, जुगनू भी तुम्हारे चित्त के आकाश में तैरते हुए दिखाई नहीं पड़ते।
मैंने पलकों को उठाया भी तो आंसू पाए
मुझसे अब खाक जवानी का कोई बार उठे
तुमने रातों में सितारे तो टटोले होंगे
मैंने रातों में अंधेरे ही अंधेरे देखे
तुमने ख्वाबों के परिस्तां तो सजाए होंगे
मैंने माहौल के शबरंग फरेरे देखे
--और मेरी जिंदगी में तो सिवाय काले झंडों के और मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा।
मैंने माहौल के शबरंग फरेरे देखे
तुमने इकतार की झंकार तो सुनी ही होगी
मैंने गीतों में उदासी के बसेरे देखे
मेरे गमख्वार! मेरे दोस्त! तुम्हें क्या मालूम
जिंदगी मौत की मानिंद गुजारी है मैंने
लोग ऐसे ही गुजार रहे हैं--मौत की मानिंद। मरे-मरे जी रहे हैं। जीने का सिर्फ नाम है, जीना कहां! क्योंकि जीवन तो केवल वे ही जानते हैं जिन्होंने महाजीवन के साथ हाथ जोड़ लिए हैं। जो परमात्मा के साथ एक धारा में बंध जाते हैं, वे ही जीवन को जानते हैं; बाकी तो हम मृत्यु ही जानते हैं। मरण ही मरण है। रोज हम मरते हैं--और थोड़ा ज्यादा मर जाते हैं; और थोड़ी मौत करीब सरक आती है; और थोड़ी कब्र करीब आ जाती है। हमारी जिंदगी का और अनुभव क्या है?
इक बिगड़ी हुई सूरत के सिवा कुछ भी न था
जब भी हालात की तस्वीर उतारी मैंने
कभी अपने हालात की तस्वीर उतारकर देखो। कभी अपने रंग-ढंग पर गौर करो।
सब फीका है! सब बासा है! न कहीं कोई गंध, न कहीं कोई रंग, न कोई नृत्य, न कोई मदहोशी, न कोई मस्ती। किसलिए जीते हो? किसलिए जिए जाते हो? किस आशा में चले जाते हो?
किसी अफलाक-नशीं ने मुझे धत्कार दिया
जब भी रोकी है मुकद्दर की सवारी मैंने
मेरे गमख्वार! मेरे दोस्त! तुम्हें क्या मालूम?
आदमी की जिंदगी, जिंदगी नाममात्र को है। आदमी जब तक परमात्मा से जुड़े नहीं तब तक जीवन के कोई स्वर उसमें उठते नहीं। उसके साथ जुड़ते ही पाजेब बजती है। उसके साथ जुड़ते ही झनकार उठती है, इकतारा बजता है।
ये आज के सूत्र उसके साथ जुड़ने के सूत्र हैं। लेकिन इसके पहले कि कोई परमात्मा से जुड़े, किसी परमात्मा के प्यारे से जुड़ना होता है।
गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
तत छन परसन होत हीं भजन भाव भरिया।।
यह प्यारा वचन है। "तत छन!" एक क्षण में, नजर से नजर मिली और सब हो गया! "तत छन परसन होत हीं,"... दरस-परस होते ही, देखा गुरु को कि बात हो गई।
साहसी व्यक्ति रहा होगा रज्जब। लोग तो वर्षों सोचते हैं। विचार में
ही गंवा देते हैं। बुद्ध मिल जाएं, कि कृष्ण मिल जाएं तो भी विचार में गंवा देते हैं। सोचते ही रहते हैं। संदेहों का अंत ही नहीं आता, प्रश्नों की समाप्ति नहीं होती। शायद सोचना एक बहाना होगा। शायद सोचना टालने की एक विधि होगी। शायद सोचने के नाम से स्थगन करते होंगे--कल, परसों, अभी नहीं।

साहसी का अर्थ हैः जो जानता है, या तो अभी या कभी नहीं।
तत छन परसन होत हीं, ...
और जैसे ही दरस हुआ, परस हुआ, जैसे ही स्पर्श हुआ गुरु की तरंग का, जैसे
ही गुरु का राग सुनाई पड़ा, जैसे ही उन आंखों ने रज्जब की आंखों में झांकाः ... भजन भाव भरिया।
उठ आई कोई चीज जो सोई पड़ी थी जन्मों-जन्मों से। फूटी कोई कली! खिला कोई फूल! जो सितार कभी नहीं छुई गई थी, बज उठी। "भजन भाव भरिया!" गुरु के पास बैठ कर अगर भजन भाव न भरे, तो तुम पास बैठे ही नहीं। अगर गुरु के पास बैठ कर डोले नहीं, तो तुम पास बैठे ही नहीं।
गुरु के पास बैठे हो, इसका लक्षण क्या है? कसौटी क्या है? एक ही कसौटी हैः "भजन भाव भरिया।" तुम्हारे भाव में भजन उतर आए। तुम्हारे भीतर नाद जगे। तुम जीवन के उल्लास से भर जाओ। यह जो जीवन चारों तरफ न मालूम कितने- कितने तरह की मधु ढाल रहा है, तुम इसे पी उठो! तुम नाच उठो!
तत छन परसन होत हीं, ...
यह "परसन" शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं--या तो परस, स्पर्श, या प्रसन्न। "तत छन परसन होत हीं"... दोनों अर्थ सार्थक हैं। गुरु प्रसन्न क्या हुआ, "भजन भाव भरिया"। शिष्य की तरफ से एक अर्थ कि परस हुआ। सौभाग्यशाली है शिष्य कि गुरु से आंख मिली, कि गुरु के हाथ में हाथ पड़ा, कि गुरु के वातावरण में बैठने का सुअवसर आया, कि थोड़ी देर को गुरु की तरंग में डोला। यह बजी बीन गुरु की और शिष्य नाचा एक नाग की भांति! यह परस शिष्य की तरफ से है। लेकिन जब भी कोई गुरु किसी शिष्य को नाग की भाँति फन उठाकर नाचते मस्त होते देखता है, स्वभावतः प्रसन्न होता है--एक फूल और खिला! एक मंदिर और बना! एक काबा और खोजा गया! एक तीर्थ और उठा! परमात्मा एक हृदय में और उतरा! तत छन परसन होत हीं, ...
तो गुरु प्रसन्न न हो जाए तो क्या हो? आह्लाद से भर जाता है, शिष्य को पाकर गुरु उतने ही आह्लाद से भर जाता है, जितना शिष्य गुरु को पाकर आह्लाद से भर जाता है। यह लपट दोनों तरफ साथ-साथ जगती है। यह धुन एकसाथ उठती है।

तत छन परसन होत हीं, भजन भव भरिया।।
और गुरु प्रसन्न हो जाए और उसकी मुस्कुराहट तुम पर बरस उठे और उसका आनंद तुम पर ढल जाए, तो क्या होगा? --"भजन भाव भरिया!" तुम्हारे भीतर भाव तो पड़ा ही था जन्मों-जन्मों से, कोई ठीक-ठीक वसंत का अवसर न मिला था; बीज तो पड़ा था, भूमि न मिली थी; आज भूमि मिल गई। आज वसंत आ गया। ऋतु आ गई। टूटेगा बीज, पौधा उठेगा। हरे पत्ते निकलेंगे। सुर्ख फूल खिलेंगे।
भजन भाव भरिया!
श्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।
और सब तो सुना था, और सब जो गुना था, पढ़ा था, व्यर्थ हो गया--जब संगति सतगुरु की जानी। उसी संगति में सुनी सच्ची श्रवण-कथा। साथ होने में सुनी।
संगति में सुनी।
शास्त्र तो बहुत हैं, लेकिन जब तक शास्ता को न खोज लोगे, तब तक कोई शास्त्र जीवित नहीं होता। बुद्ध के वचन संगृहीत हैं, धम्मपद पढ़ो; कृष्ण के वचन संगृहीत हैं, भगवद्गीता पढ़ो, लेकिन कुछ कमी है। कुछ खोई-खोई बात है। क्या बात की कमी है? क्योंकि जो कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, वही गीता में लिखा है, वैसा का वैसा लिखा है। क्या कमी है? कहने वाला नहीं है। शब्द हैं, शब्दों का मालिक नहीं है। शब्दों के पीछे धड़कता हुआ हृदय नहीं है। शब्दों के पीछे खड़ा हुआ शून्य नहीं है। तो जो अर्जुन को अनुभव हुआ होगा, वह गीता पढ़ कर तुम्हें नहीं हो सकता। मेरे पास बैठ कर तुम्हें जो अनुभव हो रहा है, वह कल आने वाले दिनों में इन्हीं शब्दों को पढ़ने वाले लोगों को नहीं होगा। संगति खो जाएगी। कुछ मूलस्वर कम रहेगा। कुछ बात खाली-खाली हो जाएगी। उतना ही फर्क समझो जैसा जिंदा आदमी में और उसकी तस्वीर में जैसे जिंदा आदमी में और उसकी बनाई हुई संगमरमर की प्रतिमा में। प्रतिमा बिल्कुल वैसी ही तो लगती है, फिर भी प्राण नहीं हैं। बोलेगी नहीं, चलेगी नहीं, उठेगी नहीं।

जब शास्त्र चलता है, बोलता है, उठता है, हँसता है, गाता है, नाचता है, तभी पकड़ लेना। जब शास्त्र का जन्म हो रहा हो, तब पकड़ लेना। गुरु का यही अर्थ हैः जहां शास्त्र का जन्म हो रहा है, जहां अभी सब ताजा है। फिर बासे फूलों को, सुखाए गए फूलों को लोग सदियों-सदियों तक सम्हाल कर रखते हैं, मगर उनसे फिर गंध नहीं उठती।
श्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।
वह जो साथ बैठना हो जाता है गुरु के, गुरु बोले कि न बोले, यह बोले, वह बोले, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता--उसके साथ बैठने में ही... श्रवण कथा सांची सुणी... सच्ची कथा!
ये शब्द समझने जैसे हैं। सुनना मात्र श्रवण नहीं है। सुनते तो सभी हैं, श्रवण बहुत कम लोग करते हैं।
सुनने और श्रवण में क्या भेद है?
सुनना तो कान से हो जाता है। जिसके कान ठीक हैं, वही सुन लेता है। श्रवण--जो कान के पीछे अपनी आत्मा को भी उंड़ेल देता है; जो प्रेम से सुनता है भाव से सुनता है, आह्लाद से सुनता है; जिसके कान के पीछे उसका हृदय जुड़ा होता है। कोई विवाद से भी सुन सकता है। भीतर हजार तर्क चल रहे हैं। यहां कभी-कभी यहां भी लोग आ जाते हैं। एक भी आदमी आ जाता है तो यहां का स्वर भंग होता है। आकर मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं, तभी मेरे ख्याल में आ जाते हैं कि कुछ ये दो-चार लोग आ गए हैं। वे हाथ जोड़ कर नमस्कार भी नहीं कर सकते। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ, वे हाथ जोड़कर नमस्कार भी नहीं कर सकते। वे सुनेंगे कैसे? नमस्कार तक का उत्तर देने की उनमें सामर्थ्य नहीं है, सुनेंगे कैसे? आ गए हैं... देखने-परखने आ गए होंगेः क्या यहां हो रहा है? कुछ सुनिश्चित धारणाएं लेकर आ गए होंगे, कि जो यहां हो रहा है गलत हो रहा है, धर्म के विपरीत हो रहा है। तो मैं नमस्कार भी उन्हें करूं तो वे मुझे हाथ जोड़ कर कैसे नमस्कार करें--ऐसे अधार्मिक आदमी को कोई नमस्कार करता है! सुनेंगे तो वे भी, लेकिन श्रवण न हो सकेगा। और वे इस भ्रांति में होंगे कि सुनकर आ गए। श्रवण तो उन्हीं का हो सकेगा, जिनके कान सिर्फ कान नहीं, बल्कि उनका हृदय भी हैं; जो सहानुभूति से सुनेंगे; जिनके भीतर विवाद नहीं है, संवाद है; जो मेरे साथ जुड़ कर सुनते हैं। इधर मैं, उधर वे, ऐसे दो नहीं रह जाते, एक सेतु बन जाता है। एक अज्ञात ऊर्जा जोड़ देती है।
मैं देख पाता हूं किन-किन से मेरी ऊर्जा जुड़ी है। मेरे लिए दृश्य है!
और तुम भी जानते हो जब तुम्हारी जुड़ जाती है और जब नहीं जुड़ती। वे घड़ियां तुम्हें भी मालूम हैं। जब जुड़ जाती है कोई बात, तो मैं क्या कह रहा हूं, यह सवाल नहीं होता; फिर जो भी मैं कहता हूं उसी से अमृत का अनुभव होता है। जब नहीं जुड़ पाती किसी दिन, तो तुम पाते हो कुछ चूका-चूका है। इधर मैं बोल रहा हूं उधर तुम सुन रहे हो, मगर बीच में कोई जोड़ नहीं है। मैं दूर से चिल्ला रहा हूं, तुम बहुत दूर से सुन रहे हो, आवाज सुनाई भी पड़ती है, पर अर्थ पकड़ में नहीं आते जब जुड़ जाती है तरंग, जब तुम मेरे साथ श्वास लेते हो, और मेरे हृदय के साथ तुम्हारा हृदय धड़कता है, जब मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं होता, जब तुम एकात्म होकर सुनते हो, तो श्रवण पैदा होता है।
"श्रवण कथा सांची सुणी।" और "कथा"! शब्द तो बनता है "कथ्य" से, जो कहा जाता है। लेकिन शब्द पर ही मत अटक जाना। कथा का मौलिक अर्थ होता है जो नहीं कहा जा सकता, फिर भी कहने की कोशिश की जाती है। जो कहा जा सकता है, वह तो साधारण कथा है। जो कथ्य में समा जाता है, वह तो साधारण कथा है। जो कथ्य में नहीं समाता, फिर भी कहना तो पड़ता है। कहना पड़ेगा ही; क्योंकि बहुत हैं जिनके काम आ जाएगा। शब्द में नहीं आता है, फिर भी समाने की चेष्टा करते हैं। उसका नाम कथा है। शब्दातीत को शब्द में लाने का उपाय कथा ही है। इसलिए कथा में इतिहास नहीं होता। राम की कथा में कोई इतिहास नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है कि जो राम की कथा में कहा गया है, वैसा ही वैसा हुआ है। वैसी भ्रांति में मत पड़ना। नहीं तो वाल्मीकि की कथा एक बात कहती है, तुलसी की कथा दूसरी बात कहती है। और भी बहुत लोगों ने रामायणें लिखी हैं, सबकी कथाएं अलग बात कहती हैं। ऐतिहासिक नहीं है बात। इतिहास से ज्यादा आध्यात्मिक है। इतिहास तो बहाना है। राम और सीता और रावण तो बहाने हैं।

उनके पीछे बहानों के पीछे कुछ छिपाया गया है। जो श्रवण करेंगे, उन्हें बहानों के पीछे छिपे हुए खजाने मिल जाएंगे। जो केवल सुनेंगे, उनके हाथ में केवल कथा लगेगी; जो कही गई है, वही बात लगेगी; जो अनकही कहे के साथ जोड़ दी गई है, वे उससे वंचित रह जाएंगे। वह सूक्ष्म है। वही अर्थ है। श्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।
पश्चिम से नये विचार आए हैं, नई शोध की पद्धतियां आई हैं, नई इतिहास की खोजों की विधियां आई हैं। उन सबने हमें बड़ी मुश्किल में डाल दिया है क्योंकि हमारी सारी कथाएं ऐतिहासिक नहीं हैं। और जब पश्चिम की कसौटी पर कसी जाती हैं, तो गैर-ऐतिहासिक सिद्ध होती हैं। फिर हमारे यहां भी ऐसे मूढ़ हैं जो उनको ऐतिहासिक सिद्ध करने की कोशिश में लग जाते हैं। और तब एक व्यर्थ का विवाद शुरू होता है; जिसमें हम हारेंगे।
यह बात समझ लेनी चाहिए कि पूरब ने जो कथाएं रची हैं, वे इतिहास की घटनाएं नहीं हैं; वे अंतरतम की घटनाएं हैं। राम तुम्हारे भीतर की किसी चीज के प्रतीक हैं और रावण भी तुम्हारे भीतर की किसी चीज के प्रतीक हैं और सीता भी तुम्हारे भीतर है और राम के हाथ से रावण के हाथ में पड़ गई है। उसे वापस घर लौटाना है। तुम्हारे भीतर के राम को तुम्हारे भीतर की सीता की तलाश में निकलना है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारी सीता है; बाजार में खो गई है। रावण की लंका सोने की थी--कहीं सोने में खो गई है; कहीं धन-दौलत में बिक गई है।
जवानी, हुस्न, गमजे, अहद, पैमां, कहकहे, नग्मे
रसीले ओंठ, शरमीली निगाहें, मरमरी बाहें
यहां हर चीज बिकती है,
खरीदारो!
बताओ क्या खरीदोगे?
भरे बाजू, गठीले जिस्म, चौड़े आहनी सीने
बिलकते पेट, रोती गैरतें, सहमी हुई आहें
खरीदारो!
यहां हर चीज बिकती है,
बताओ क्या खरीदोगे?
तुमने अपनी आत्मा बेच दी है और कुछ व्यर्थ की चीजें खरीद लाए हो। तुमने अपनी आत्मा दांव पर लगा दी है, और कुछ व्यर्थ की चीजें खरीद लाए हो। तुम्हें अपनी सीता को छुड़ाना होगा। ऐसे बाहर रावण के पुतले जलाने से कुछ भी न होगा; यह पागलपन बंद करो। भीतर जलाना होगा। यह बाहर की विजय-यात्रा, यह दशहरे का पर्व... बहुत मना चुके। इससे कुछ नहीं होता। यह विजय-यात्रा भीतर घटनी चाहिए। यह दशहरा भीतर आना चाहिए। यह विजयदशमी भीतर होनी चाहिए। भीतर का ख्याल ही नहीं है। कथा को बाहरी कर दिया है। ऐसे कथा से, कथा के मौलिक अर्थ से बच गए हो।

"स्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।"
गुरु के साथ बैठ-बैठ कर, पर्त-पर्त गहरे उतर कर, आहिस्ता-आहिस्ता, कदम-कदम अंतरतम में चलकर जाना।
दूजा दिल आवै नहिं, जब धारी धुर की।।
और जबसे यह पहचान हो गई है, जबसे यह असली कथा सुन ली है, जबसे यह सच अनुभव आने लगा है, जब से ये सांचे बोल हृदय में उतर गए हैं. . . दूजा दिल आवै नहिं... अब परमात्मा के सिवाय दिल में कोई आता नहीं!
"दूजा दिल आवै नहिं"। यही पहचान है। जब तक परमात्मा के सिवाय दूसरे की याद आती है, तब तक समझना अभी संसार जारी है।
दूजा दिल आवै नहिं, जब धारी धुर की।।
अब तो जो मेरे से भी परे है, उसको ही पाने की एकमात्र आकांक्षा बची है। परात्पर! "जब धारी धुर की।" जो न शब्दों में है, न सीमाओं में है, जिसे प्रकट करने को ब्रह्म शब्द भी छोटा पड़ जाता है, उस परात्पर ब्रह्म को, उस शब्दातीत ईश्वर को, उस भावातीत को पाने चल पड़े हैं। अब तो उस एक की ही धुन

लग गई है। अब तो वह एक ही पुकार रहा है, एक ही खींच रहा है। एक गहरी कशिश! भक्त चल पड़ा--बंधा हुआ!
दूजा दिल आवै नहिं, जब धारी धुर की।।
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
गुरु का काम क्या है? भरमजाल भव काटिया। यह जो संसार का व्यर्थ का उपद्रव है, जिसको तुमने सार्थक मान लिया है, गुरु का इतना ही तो अर्थ है कि वह तुम्हें जगा दे और दिखा देः क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक है? बस, इससे ज्यादा गुरु कुछ कर भी नहीं सकता; इतना ही दिखा दे कि यह रहा हीरा, वह रहा पत्थर, अब तुम्हें जो चुनना हो चुन लो। जान कर कभी कोई पत्थर को चुनता है? पत्थर को चुनते हो इसी आशा में कि शायद हीरा है। गुरु यह नहीं कहता कि पत्थर मत चुनो। गुरु यह भी नहीं कहता कि हीरा चुनो। गुरु तो इतना ही कहता हैः यह रहा हीरा, यह रहा पत्थर, यह रही कसौटी--कस लो और जांच लो; फिर जो मर्जी करो।
महावीर ने कहा हैः मैं उपदेश देता हूं, आदेश नहीं। ठीक कहा, प्यारी बात कही। यही सभी सदगुरुओं का आधार है। उपदेश। आदेश नहीं। जहां आदेश हो, समझना गुरु नहीं है वहां। जो तुम से कहे, ऐसा करना ही पड़ेगा, ऐसा ही करो, इससे अन्यथा किया तो पापी हो--वहां गुरु नहीं है। वहां तो कोई नई राजनीति का जाल है। वहां नेता होगा, गुरु नहीं है। वहां तो कोई नई तानाशाही तुम्हारे ऊपर निर्मित हो रही है, तुम्हें गुलाम बनाने की कोई नई व्यवस्था की जा रही है, कोई नई जंजीरें ढाली जा रही हैं, नये कारागृह खड़े किए जा रहे हैं। सावधान रहना।
सदगुरु केवल उपदेश देता है। इतना ही बता देता है कि यह पत्थर है, यह सोना है। फिर तुम्हारी जो मर्जी। आदेश नहीं देता। आदेश की जरूरत नहीं है। आदेश की जरूरत तो उनको पड़ती है, जो समर्थ नहीं हैं तुम्हें दिखलाने में कि क्या पत्थर है और क्या हीरा है। वे ही तुम्हें अनुशासन देते हैं। वे कहते हैंः सुबह पांच बजे उठना, राम-भजन करना, ऐसा करना, वैसा करना, यह खाना, वह पीना, यह मत खाना, वह मत पीना, हजार नियम तुम्हें देते हैं, हजार मर्यादाएं तुम्हें देते हैं। उसका कारण? एक बात की कमी है उनके पास--तुम्हारी आंख खोल नहीं पाते; तुम्हें दिखा नहीं पाते कि यह रहा हीरा, यह रही मिट्टी। जिस दिन तुम्हें दिख जाएगा कि हीरा क्या है, मिट्टी क्या है, उस दिन क्या तुम मिट्टी चुनोगे? कौन ऐसा पागल होगा?
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
इतना ही काम है सदगुरु का कि तुम्हारे भ्रम के जो-जो जाल हैं, उनको तोड़ दे; तुम्हारे चित्त की शंकाओं का निरसन कर दे।
एक पतंगा
तन्हा-तन्हा
शाम ढले इस फिकर में था
यह तन्हाई कैसे कटेगी?

रात हुई
और शमा जली
मगसूम पतंगा झूम उठा
हंसते-हंसते रात कटेगी
सुबह हुई
और सबने देखा
राख पतंगे की उड़-उड़ कर
शमा को हरसू ढूंढ रही थी
यही तुम्हारी जिंदगी है! जल्दी ही राख का ढेर रह जाएगा। जरा याद करो! जरा पहचानो! जल्दी ही अपनी चिता पर जलोगे। जल्दी ही राख पड़ी रह जाएगी। और राख उड़-उड़कर खोजेगी उस जीवन को, जिसको गंवा आए। राख उड़-उड़ कर खोजेगी उन सपनों को, जिनके आधार पर सब खोया, सब व्यर्थ किया।
एक पतंगा
तन्हा-तन्हा

शाम ढले इस फिकर में था
यह तन्हाई कैसे कटेगी?
रात हुई
और शमा जली
मगसूम पतंगा झूम उठा
हंसते-हंसते रात कटेगी
तुम भी सब यही सोच रहे होः हंसते-हंसते रात कटेगी! और रात के पार सुबह नहीं है मौत है। और शमा के साथ तुम्हारी जिंदगी नहीं है, तुम्हारी चिता है।
सुबह हुई
और सबने देखा
राख पतंगे की उड़-उड़ कर
शमा को हरसू ढूंढ रही थी
ऐसी ही राखें उड़ रही हैं, शमा को ढूंढ रही हैं। रास्ते पर उड़ती धूल के बवंडर को देखा है? खड़े हो जाना, जरा ध्यान करना। यह जो धूल का आज बवंडर है, कभी तुम्हारी जैसी देह रही होगी। पैर के नीचे पड़ी धूल को देखा है? यह तुम्हारे पैर के नीच है आज, कल किसी सिर में रही होगी। कल कोई देह रही होगी। तुम भी ऐसे ही कल धूल में पड़े रह जाओगे। इसके पहले कि सब धूल हो जाए, इसके पहले कि धूल धूल में गिरे, कुछ खोज लो। कुछ ऐसा खोज लो, जो मिटता नहीं। कुछ ऐसी तलाश कर लो।
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
अभी तो जिस ढंग से हम जी रहे हैं, वह एक व्यर्थता की पुनरुक्ति मात्र है। वही-वही बार-बार करते हैं, अनंत बार करते हैं, फिर भी जागते नहीं। आदमी अनुभव से सीखता मालूम ही नहीं होता।
सब काट दो
बिस्मिल पौधों को
बेआब सिसकते मत छोड़ो
सब नोच लो
बेकल फूलों को
शाखों पै बिलखते मत छोड़ो यह फस्ल उम्मीदों की हमदम! इस बार भी गारत जाएगी
सब महनत सुबहो-शामो की
अबके भी अकारत जाएगी
खेती के कोनों खदरों में फिर अपने लहू की खाद भरो
फिर मिट्टी सींचो अश्कों से
फिर अगली ऋतु की फिकर करो
जब फिर इक बार उजड़ना है
इक फस्ल पकी तो भर पाया
तब तक तो यही कुछ करना है
बस यही करते रहो। हर बार फसल काटो और हर बार उजड़ो।

यह फस्ल उम्मीदों की हमदम!
इस बार भी गारत जाएगी
यह जिंदगी तुम्हें पहली बार नहीं मिली, बहुत बार मिली है। यह फसल तुम बहुत बार उगा चुके हो। यह काम कुछ नया नहीं है, तुम बड़े पुराने हो, तुम बड़े कारीगर हो अपने को गँवाने में। तुम बड़े कुशल हो अपने को बरबाद करने में। यह फस्ल उम्मीदों की हमदम!
इस बार भी गारत जाएगी
सब महनत सुबहो-शामो की
अबके भी अकारत जाएगी

यह अकारत ही जाने वाली है, क्योंकि यह दिशा ही भ्रांत है। तुम रेत से तेल निचोड़ने की चेष्टा कर रहे हो, हारोगे नहीं तो और क्या होगा?
खेती के कोनों खदरों में
फिर अपने लहू की खाद भरो
फिर मिट्टी सींचो अश्कों से
फिर अगली ऋतु की फिकर करो
जब फिर इक बार उजड़ना है
इक फस्ल पकी तो भर पाया
जब तक तो यही कुछ करना है
मगर बस फिर उजड़ोगे, फिर आशाएं, फिर उजड़ोगे, फिर आशाएं। जागो अब! अब कुछ ऐसी फसल काटें जो भर जाए जीवन को। अब कुछ ऐसा धन तलाशें, जो निर्धनता को सच में ही मिटा दें; छुपाए न, मात्र छुपाए न, मिटा दे--सदा के लिए मिटा दे! भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
सांचा सगा जे राम का ल्यौं तासूं जोड़ी।।
गुरु मिला--दरिया दिल! सांचा सगा जे राम का... । उसने दो काम किए। पहले
तो उसने अपने से संबंध जोड़ा--"सांचा सगा जे राम का।" क्योंकि गुरु से जब तक संबंध न जुड़ जाए, तब तक परमात्मा से संबंध जुड़ना करीब-करीब असंभव है। "सांचा सगा जे राम का।" पहले राम से दोस्ती हो, इसके पहले राम के सगों से तो दोस्ती हो जाए; उसके मित्रों से तो पहचान हो जाए! उसके मित्र यहां घूमते हैं। उसके मित्र तुम्हारे आसपास हैं। तुम जिस दिन चाहोगे, उनके हाथ में तुम्हारा हाथ हो जाएगा। उनके हाथ में हाथ पड़ते ही पहला कदम उठ गया।
सांचा सगा जे राम का, ल्यौं तासूं जोड़ी।।
पहले उससे अपनी प्रीति को जोड़ लो। अपने लगाव को उससे लगा लो, जो राम का सगा है, साँचा है; जिसमें राम की तुम्हें थोड़ी-सी झलक मिल जाए; जिसके पास तुम्हें राम की थोड़ी सी सुगंध मिल जाए।
भौजल माहिं काढ़िकै जिन जीव जिलाया।
गुरु के साथ जुड़ते ही जीवन में एक क्रांति आती है। कल तक जो जीवन था, मृत्यु हो जाता है। और कल तक जिसका हमें सपने में भी सवाल नहीं उठा था, उस नए जीवन का प्रादुर्भाव होता है।
"भौजल माहिं काढ़िकै जिन जीव जिलाया।"
वह जो चक्कर था संसार का, वह जो भंवर थी संसार की--यह कमा लूं, वह कमा लूं; यह बना लूं, वह बना लूं--जगाया गुरु ने कि सब व्यर्थ है! सार वहां हाथ नहीं लगेगा। उस दिशा में जाओ मत! उस दिशा में कुछ कभी किसी ने पाया नहीं। निरपवाद रूप से जो उस दिशा में गया है, भटका है, भूला है, मरा है। मैं भी गया हूं, गुरु कहता है, मैं भी दौड़ा हूं उन्हीं रास्तों पर, जिन पर तुम दौड़ रहे हो, मैं भी ऐसे ही थका हूं, ऐसे ही गिरा हूं जैसे तुम दौड़ रहे हो, गिर रहे हो, थक रहे हो। अब मैंने एक और दिशा खोज ली है, जहां विश्राम है, जहां विराम है, जहां राम है। और ध्यान रखना, जहां राम है, वहीं विराम है, वहीं विश्राम है। राम के अतिरिक्त कहां विराम? दौड़-धूप जारी रहेगी, आपाधापी जारी रहेगी। भौजल माहिं काढ़िकै जिन जीव जिलाया।
सहज सजीवन कर लिया सांचे संगि लाया।।
गुरु खींच लेता है इस भ्रमजाल से। उसके लगाव में खिंचे तुम बाहर आ जाते हो--अपने सपनों को छोड़कर। गुरु तुम्हारे सामने एक नया दृश्य उपस्थित कर देता है, जो ज्यादा मनमोहक है, जो ज्यादा प्यारा है, जो ज्यादा मधुमय है। तुम छोड़ देते हो अपने छोटे-मोटे उपद्रवों को, तुम गुरु के पीछे चल पड़ते हो, उसके साथ हो लेते हो।
"भौजल माहिं काढ़िकै जिन जीव जिलाया।"
और जैसे गुरु ने मुर्दे को जिला दिया हो, ऐसी घटना घटती है।
"सहज सजीवन कर लिया सांचे संगि लाया।"
पर ख्याल रखना, सद्गुरु जबरदस्ती चेष्टा से तुम्हें नहीं बदलता है-- सहज। उसकी मौजूदगी बदलती है।
वह कोई छेनी लेकर, हथौड़ी लेकर तुम्हारे अंग-प्रत्यंग काटने नहीं लगता है। वह तुम्हें बांधने नहीं लगता है--मर्यादाओं में, बाढ़ों में। तुम्हें

अपने निकट बुलाता है। तुम्हें अपनी खिड़की से झांकने का निमंत्रण देता है। कहता है, इस हृदय में राम का वास हो गया है, तुम.जरा अपने कान मेरे हृदय के पास ले आओ, जरा यह धड़कन सुनो! इस धड़कन में प्यारा संगीत है! उस धड़कन को सुनते ही तुम्हारे भीतर भी एक दीवानापन पैदा होता है। उस धड़कन को सुनते ही फिर तुम रुक नहीं सकते। तुम्हें पंख लगने शुरू हो गए! तुम उड़ोगे ही! उड़ना ही पड़ेगा! अब कोई उपाय नहीं है। चुनौती आ गई।
गुरु तो सिर्फ पास बुलाता है और चुनौती दे देता है। फिर सहज घटनाएँ घटनी शुरू हो जाती हैं।
सहज सजीवन कर लिया, सांचे संगि लाया।।
और चुपचाप, तुम्हें पता नहीं चलता, कब गुरु ने तुम्हारे जीवन को आमूल रूपांतरित कर दिया। कानोंकान खबर नहीं होती। यह चुपचाप हो जाता है। पगध्वनि भी नहीं सुनी जाती। कहीं कोई शोरगुल नहीं मचता। कहीं कोई बैंड-बाजे नहीं बजते। चुपचाप हो जाता है। होते-होते हो जाता है। एक दिन अचानक सुबह जागकर तुम पाते हो, तुम वही आदमी नहीं हो जो थे।
परसों एक युवती कोई वर्ष भर यहां रहने के बाद वापस लौटी अपने घर। उसकी
एक ही चिंता थी कि अब घर जा रही हूं, एक ही मुझे फिकर है कि मेरे प्रियजन मुझे पहचान पाएंगे? मेरे मां-बाप मुझे पहचान पाएंगे? मेरा पति मुझे पहचान पाएगा? मैं इतना बदल गई हूं। एक ही डर था उसके मन में कि मुझे वे पहचान नहीं सकेंगे। मैंने उससे पूछाः यह तुझे ख्याल कब आया? उसने कहा: जब तक जाने का ख्याल नहीं था, ख्याल ही नहीं आया था। यहां सब चुपचाप हो रहा था, इतना हो रहा था कि किस-किस बात का हिसाब रखो! लेकिन अब जबसे जाने का सवाल उठा है कि जाना है; मां बीमार है, उसे देखने जाना है, तबसे एक चिंता मन में सवार हुई है--वे मुझे पहचान पाएंगे? वे मुझे स्वीकार कर पाएँगे? मैं बदल गई हूँ। मेरे पति निश्चित ही उसी स्त्री को नहीं पाएंगे जो साल भर पहले उन्हें छोड़ कर आई थी।
चुपचाप घटनाएं घट जाती हैं। असली घटनाएं चुपचाप ही घटती हैं। बड़ी घटनाएँ चुपचाप ही घटती हैं। ये तो छोटी-छोटी घटनाएं हैं, जिनका शोरगुल मचता है। फूल चुपचाप खिल जाते हैं, चांद-तारे चुपचाप पैदा हो जाते हैं। सहज सजीवन कर लिया सांचे संगि लाया।।
तभी पता चलता है शिष्य को जब सत्य का संग-साथ हो जाता है; तब उसे याद आती है कि अरे, क्या हो गया! मैं कहां से कहां आ गया! मैं कौन था और कौन हो गया! हो जाती है घटना, तभी पता चलता है। मगर यह संभव तभी है जब कोई सरलता से गुरु के हाथ में अपना हाथ दे पाए। खींचातानी न करे। प्रतिरोध न करे। अड़चन-रुकावट न डाले। अवरोध न खड़ा करे।
सहज सजीवन कर लिया, सांचे संगि लाया।।
जनम सफल तब का भया, चरनौ चित लाया।
रज्जब कहते हैं, अब समझ में आ रहा है कि सफल उसी दिन हो गया था मैं, जिस दिन इन चरणों में चित्त लग गया था। वह जो घोड़े पर सवार थे और बारात जाती थी और दादू ने बीच में रोक लिया था और कहा था--
रज्जब तैं गज्जब किया, सिर से बांधा मौर।
आया था हरिभजन को, चला नरक की ठौर।।
एक क्षण में सब हो गया था। रज्जब कूद पड़ा था घोड़े से। बारात ठिठकी रह
गई थी। किसी की समझ में न आया था क्या हो रहा है। उसने चरण पकड़ लिए थे दादू के। क्रांति उसी दिन हो गई थी; पहचान आने में शायद वर्षों लग जाएं।
"जनम सफल तब का भया"...
उसी दिन हो गया था, मैं तो अब पहचान पाया।
... "चरनौ चित लाया।"
जिस क्षण गुरु के चरणों में चित्त लगा था, उसी दिन क्रांति हो गई थी। क्रांति की भी खबर मिलते-मिलते मिलती है। तुम ऐसे बेहोश हो कि तुम्हारे भीतर ही फूल खिल जाते हैं और तुम्हें पता नहीं चलता और तुम्हारे भीतर ही क्रांतियां हो जाती है और तुम्हें पता नहीं चलता। समय लग जाता है। तुम्हारे अचेतन तल में और तुम्हारे चेतन तल में बड़ा फासला है--जमीन और आसमान का। घटना तो भीतर घटती है तुम्हारे केंद्र पर, परिधि को खबर लगते-

लगते समय स्वभावतः लग जाता है। बहुत समय लग जाता है कभी। कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं। गुरु न हो तो शायद तुम चेतो ही न।
.जरा सोचो, यह दादू दयाल न आए होते इस घोड़े पर चढ़े हुए रज्जब को उतारने, थोड़ी ही देर की बात थी, यह संसार में उतरा जा रहा था। एक लंबी यात्रा शुरु होती, जिसका कोई अंत अपने हाथ में नहीं है। यह कहां जाकर समाप्त होती, यह भी कहना मुश्किल है। कहां अंत होता इसका, यह भी कहना मुश्किल है। लेकिन गुरु ने ठीक उस समय रोक लिया, द्वार पर ही रोक लिया संसार के। यह भवजाल में पड़ने ही जा रहा था और रोक लिया। मगर यह मत सोचना कि सिर्फ गुरु का ही हाथ है इस रोक लेने में। रज्जब की भी बड़ी कला है। रज्जब भी बड़े हिम्मत का आदमी है। इतना आसान तो नहीं!
मेरे पास लोग आते हैं। किसी की उम्र सत्तर साल है, वह अभी भी कहता है
कि अभी कैसे संन्यास लूँ! अभी बच्चों की शादी होनी है। बस एक लड़का और बचा है, इसकी शादी कर दूँ, इसको काम-धाम से लगा दूँ, फिर कोई चिंता नहीं है, फिर संन्यास ले लूँगा। जैसे मौत तुम्हारी प्रतीक्षा करेगी! और मौत तुमसे यह नहीं पूछेगी कि सब लड़कों की शादी हो गई कि नहीं।
हिम्मत का आदमी रहा होगा रज्जब! अभी इसकी उम्र ही क्या रही होगी? यही कोई अठारह-बीस साल की उम्र रही होगी। मगर अक्सर ऐसा हो जाता है कि जवान जो हिम्मत कर लेते हैं, बूढ़े नहीं कर पाते। नियम तो यही है कि बूढ़े होते-होते सभी को संन्यस्त हो जाना चाहिए। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि दुनिया में जो बड़े संन्यासी पैदा हुए हैं, वे सब जवानी में संन्यासी हुए। क्यों? क्योंकि बुढ़ापे में अक्सर तो ऊर्जा ही नहीं रह जाती।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था एक आदमी की। वह मरणशय्या पर पड़ा है। गीता सुनाई जा रही है। वह बेहोश है और बीच-बीच में सिर हिलाता है, हाथ ऊपर उठाता है। पास में पड़ोस की स्त्रियां बैठी हैं। कोई कहती है कि देखो, काका हाथ ऊपर उठा रहे हैं, शायद भगवान की तरफ उठा रहे हैं। आखिर एक आदमी बैठा थोड़ी देर से देख रहा था, उसने कहा--बकवास बंद करो! मैं जानता हूं काका को। उसने खीसे से बीड़ी निकाली और काका के मुंह में लगा दी और काका मरते वक्त बीड़ी पीने लगे। इधर गीता चल रही है! और दो-तीन उन्होंने कश लिए, धुआं मुंह से निकला, फिर शांति से मर गए। जिंदगी भर जो लत रही... ! उस आदमी ने कहा कि बकवास बंद करो, यह भगवान वगैरह की तरफ हाथ नहीं उठा रहे, इनको बीड़ी चाहिए। मुझे भलीभांति मालूम है, बिना बीड़ी पिए नहीं मरेंगे। और जब उन्होंने दो-तीन कश लगा लिए... वह उनका राम-नाम हुआ; हरिभजन हो गया! ... तब वे शांति से मरे। मरते वक्त तक भी तुम हरि को याद थोड़े ही कर पाओगे। याद भी आएगी तो बीड़ी
की याद आएगी, कि कोई ले आता इस वक्त, कि होता कोई प्रभु का प्यारा और ले आता इस वक्त! अब अपने से तो जाते बनता नहीं, बोल भी खो गया है, बोल भी नहीं सकते हैं और गीता चल रही हैः "सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" गीता चल रही है! और स्वभावतः गीता चल रही है, पड़ोस की स्त्रियां--धार्मिक स्त्रियां ऐसी जगह इकट्ठी हो जाती हैं--और काका हाथ उठा रहे हैं! सोचा होगा कि काका भी आखिरी अवस्था में सिद्धावस्था को पहुंच गए हैं। काका वहीं हैं जहां सदा थे। गीता वगैरह नहीं सुनी जा रही है। उनको तलफ लगी है।
आदमी बदल जाए जवानी में, जब ऊर्जा हो, जब शक्ति हो, जब प्राण हों, तो आसानी होती है। क्योंकि बदलाहट के लिए भी तो ऊर्जा की जरूरत होती है। जितनी जल्दी बदल जाओ उतना अच्छा।
रज्जब को ठीक समय पर पकड़ लिया होगा। लोग तो नाराज हुए होंगे। लोगों ने
तो कहा होगा यह कोई भली बात है? यह अपशकुन कर दिया। बारात जा रही थी, यह कोई समय था ज्ञान की चर्चा छेड़ने का? हरिचर्चा छेड़ने का यह कोई समय था? दादू पर नाराज हुए होंगे। दादू को क्षमा नहीं कर पाए होंगे। आदमी मरते वक्त संन्यास लेता है।
एक बूढ़ा आदमी मेरे पास आया। उसके लड़के ने संन्यास ले लिया है। लड़के की उम्र होगी कोई तीस साल। बाप बहुत नाराज था। पंडित है--पढ़ा-लिखा--ज्ञानी है। आकर उसने शास्त्रों की चर्चा छेड़ दी; और उसने कहा, आपको मालूम है कि संन्यास तो चौथी अवस्था है--ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ, फिर संन्यास। और आपने इस मेरे लड़के को संन्यास कैसे दे दिया? यह किस शास्त्र

में लिखा है? यह तो आखिरी अवस्था में लेने का है। यह तो जब आदमी बूढ़ा हो जाता है तब लेने का है।
मैंने कहाः ठीक, मैं आपसे राजी हो गया। आप संन्यास लेने को राजी हों
तो मैं इसका संन्यास वापस लेता हूँ। सत्तर-पचहत्तर साल का आदमी, जब वह यह भी न कह सके कि मेरा समय नहीं आया है। मैंने कहा कि पचहत्तर साल तो बस खत्म--वह भी सौ साल उम्र मानें, तो। पचहत्तर साल पर वानप्रस्थ खत्म हो गया, अब संन्यास का वक्त आ गया। सौ साल जीता कौन है? सत्तर साल औसत उम्र है। उस हिसाब से तो आपको कभी का संन्यासी हो जाना चाहिए था। मैंने कहा: आप ले लो संन्यास। आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, शास्त्र की बात कह रहे हैं। मैं शास्त्र के बिल्कुल विपरीत नहीं हूं, पक्ष में हूं।
वे बहुत घबड़ाए। उन्होंने कहा मैं फिर आकर आपसे बात करूंगा। मैंने कहाः आप जाते कहां हैं? लौटें, न लौटें! फिर इस लड़के का भी संन्यास तो वापिस लेना है। जब आप लौटोगे, तभी इसका वापिस लूंगा।
फिर वे नहीं आए। फिर भाड़ में जाए लड़का! फिर उन्होंने चिंता नहीं की।
काका फिर नहीं आए! कौन झंझट में पड़े इस! अब शास्त्र के अनुकूल तो यही है।
वे सोच रहे थे शास्त्र के अनुकूल बच्चे को बचा लेंगे, उन्होंने यह नहीं सोचा था खुद फँस जाएँगे।
जिंदगी जब प्रवाह में होती है, जब उभार में होती है, जब लोहा गर्म होता है, तब चोट हो जाए तो बड़े काम की होती है।
जनम सफल तब का भया, चरनौं चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया।।
कहते हैंः राम की कृपा हो गई मुझ पर। भक्तों का सदा का यह अनुभव रहा है
कि उसकी बिना कृपा के हम उसको खोजेंगे भी नहीं। उसकी बिना कृपा के हम उसकी तरफ जाएंगे भी नहीं। वही चाहेगा तो ही हम उसे खोजेंगे।
मिस्र के पुराने शास्त्र कहते हैं कि जब तुम परमात्मा की खोज पर निकलते हो तो एक बात पक्की समझ लेना कि उसने तुम्हें पुकारा है, अन्यथा तुम अपने से थोड़े ही खोज पर निकल सकते थे। उसने तुम्हारी याद की है। तुम उसे याद आ गए हो, इसलिए खोज शुरू हुई है।
"रज्जब राम दया करी"। राम ने दया की। और जब भी राम दया करता है तो सीधा नहीं कर सकता। क्योंकि सीधा तो राम तुम्हारी समझ में न आएगा। सीधा तो तुमसे कोई सेतु नहीं बनेगा। सीधे-सीधे तो राम इतना बेबूझ होगा तुम्हें कि सामने भी खड़ा रहे तो तुम देख न पाओगे, पहचान न पाओगे। बोले तो समझ न पाओगे। रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया।।
उसकी कृपा का परिणाम यह था कि दादू जैसा गुरु मिला। यह उसकी कृपा है
कि दादू जैसा गुरु मिला। दादू जैसा गुरु मिल जाए तो राम के मिलने में देर कितनी? मिल ही गया! समझो कि मिल ही गया। गुरु के चरणों पर हाथ पड़ गए तो उसीके छिपे चरणों पर हाथ पड़ गए। गुरु वही है जिसमें तुम्हें भगवान की पहली किरण उतरती अनुभव में आने लगे। गुरु वही है तुम्हारे लिए, जो तुम्हारे लिए परमात्मा का प्रतिबिंब बन जाए; जिसमें परमात्मा की छाया तुम्हारे लिए उतरने लगे; जिसके माध्यम से परमात्मा तुम्हारे लिए ग्राह्य हो जाए।
राम रंगीले के रंग राती।
और जब यह हुआ, जब यह घटना घटी, तो एक नई दुनिया शुरू होती है--मस्ती की, नृत्य की, उत्सव की। "राम रंगीले के रंग राती।" रज्जब कहते हैंः उस राम रंगीले के रंग में रंग गई हूं। जैसे ही भक्त परमात्मा में रंगता है, उसकी भाषा हमेशा स्त्री की हो जाती है, यह ख्याल रखना। वहां कहां दूसरा पुरुष; बस एक ही पुरुष है। वहां तो सभी स्त्री हो जाते हैं। स्त्री का मतलब, वहां तो सभी निष्क्रिय, ग्राहक, अनाक्रामक, स्वागत के द्वार हो जाते हैं। बंदनवार हो जाते हैं।
"राम रंगीले के रंग राती।"
राम सच में ही रंगीला है। और जिन्होंने राम की तस्वीरें ऐसी बनाई हैं, जिनमें रंग नहीं हैं, वे तस्वीरें झूठी हैं। क्योंकि सारे जगत के रंग उसके रंग हैं। सारे रंग उसके रंग हैं। सब रंग हैं। इंद्रधनुष के सारे रंग उसके रंग हैं। फूलों के, वृक्षों के, पक्षियों के सारे रंग उसके रंग हैं।

तितलियों के सारे रंग उसके रंग हैं। इस जगत में जितनी भाव-भंगिमाएं हैं, सब उसकी भाव-भंगिमाएं हैं।
"राम रंगीले के रंग राती।" और जो उसमें रंग जाए, उसके सारे रंगों में डूब जाए, उसका जीवन उदासी का होगा तुम सोचते हो? अगर उसका जीवन उदासी का होगा तो फिर आनंद का, उत्सव का जीवन किसका होगा? संसार में उदास रहो, संसार उदासी है, परमात्मा में उत्सव है।
मगर बड़ी उलटी बातें हो रही हैं दुनिया में। यहां सांसारिक तो थोड़े- बहुत प्रसन्न भी दिखाई पड़ते हैं, आध्यात्मिक तो बिल्कुल ऐसे बैठ जाते हैं, मुर्दा होकर! इसका मतलब क्या है? इसका मतलब साफ है, गणित सीधा है। ये जो तुम्हारे तथाकथित आध्यात्मिक लोग उदास होकर बैठे हैं, ये आध्यात्मिक नहीं हैं। नहीं तो ये कहतेः राम रंगीले के रंग राती! ये आध्यात्मिक नहीं हैं, ये सांसारिक ही हैं। संसार में थोड़ी-बहुत हंसी, थोड़ी-बहुत गूंज, थोड़ा- बहुत रस, इनको था, वह भी गया।
संसार में लोग थोड़े हंसते भी हैं; चलो झूठी ही सही, हंसी तो है! थोड़े नाचते भी हैं; व्यर्थ ही सही, मगर नाच तो है! थोड़ा रस भी संसार में बहता दिखाई पड़ता है; उथला ही सही, मगर रस तो है! यह थोड़ा उत्सव भी दिखाई पड़ता है संसार में। फिर तुम्हारे आध्यात्मिक साधु-संत हैं, वे बिल्कुल ऐसे बैठे हैं मुर्दे की भांति! यह इस बात की खबर दे रहे हैं वे कि संसार में ही उनका रस है; और संसार हाथ से गया, अब दूसरा उन्हें कोई रस है नहीं, अब क्या करें? उदास न हों तो और क्या करें? अब बस मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।
असली आध्यात्मिक व्यक्ति का लक्षण ही यही होगा कि उसके पास तुम सब रंगों की, सब ध्वनियों की बहार पाओगे। उसके पास तुम्हें उत्सव ही उत्सव मालूम होगा। वहां अगर नाच न होगा, तो फिर नाच और कहीं भी नहीं हो सकता। मंदिर उजड़ गए, मस्जिदें खाली पड़ी हैं, चर्च बेरौनक हैं, क्योंकि वहां रंग नहीं है, रूप नहीं है। वहां परमात्मा के सौंदर्य की आयोजना नहीं है। वहां परमात्मा के आनंदरूप का अवतरण नहीं है। वहां संसार से जबरदस्ती अपने को छुड़ा कर, किसी भांति संसार से भाग गए लोग बैठ गए हैं! नाराज, क्रुद्ध, परेशान, पीड़ित, उदास!
"राम रंगीले के रंग राती।"
"परम पुरुष संगि प्राण हमारो।"
यह होगा ही। यह रंगमय तो जीवन हो ही जाएगा। मधुमय तो जीवन हो ही जाएगा।
"परम पुरुष संगि प्राण हमारो।"
जब परम पुरुष के साथ होओगे तो रास न रचाओगे? जब उसकी बांसुरी बजेगी तो तुम नाचोगे नहीं? और जब वह मोरमुकुट बांध कर तुम्हारे बीच खड़ा हो जाएगा, तो तुम साधु-महात्मा बने खड़े रहोगे?
जरा सोचो, कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं, मोरमुकुट बांधे और सब महात्मा इत्यादि--अखंडानंद, पाखंडानंद--सब खड़े हैं! वे सब अपनी मालाएं फेर रहे हैं। वे कह रहे हैं--हरे राम, हरे राम! नहीं, कृष्ण के पास नृत्य चाहिए।
यह आकस्मिक नहीं है कि हिंदुओं ने कृष्ण को पूर्णावतार कहा है। राम थोड़े कम पड़ जाते लगते हैं। इतना उत्सव नहीं है। कृष्ण के पास उत्सव पूर्ण है। बहुविध प्रकट हुआ है। सब रंगों में प्रकट हुआ है। कोई निषेध नहीं है। कृष्ण के पास जैसा रास रचा है, वही खबर दे रहा है पूरे विराट की। ऐसा ही रास चल रहा है चांद-तारों का, सूरज-पृथ्वियों का। यह विराट उत्सव चल रहा है जो प्रकाश का, इसके बीच में कहीं कोई कृष्ण जरूर है। इसके बीच में कोई बांसुरी जरूर बज रही है। उसी बांसुरी की धुनें पक्षियों के कंठ में आ गई हैं। उसीकी बांसुरी के रंग फूलों में आ गए हैं। उसी बांसुरी की तरंग तितलियों में आ गई है। कहीं इस विराट के केंद्र पर कोई बांसुरी निश्चित बज रही है।
हिंदू ठीक ही कहते हैं कि कृष्ण पूर्णावतार हैं। उन्होंने हिम्मत से
यह बात कही। राम का बड़ा समादर है, लेकिन उनको अंशावतार ही कहा। कुछ कमी रह गई है। कुछ थोड़ी सी मर्यादा है। उत्सव में मर्यादा नहीं होती। उत्सव में मर्यादा हो तो उत्सव मर जाता है। उत्सव तो अमर्याद होना चाहिए।

राम रंगीले के रंग राती।
परम पुरुष संगि प्राण हमारे, मगन गलित मद-माती।।
सब डूब गया! पूर्ण मग्नता पैदा हुई है। मदमस्त।... मगन गलित मद-माती।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूं, गिनत न सीली ताती।
अब न तो सर्दी की कोई फिकर है, न गर्मी की कोई फिकर है। न सफलता, न असफलता। न सुख, न दुख। अब उस परम प्यारे के साथ नाच चल रहा है। अब कैसी फिकर? अब सब उसके हाथ में है। अब कैसी फिकर? अब कैसी चिंता?
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूं, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं अडिग होई बैठी, सिर धरि करवत काती।।
करना क्या पड़ा है इस उत्सव के लिए? सिर्फ अपने सिर को काट देना पड़ा है। सिर को काटकर रख दिया है चरणों में, फिर नाच शुरू हो गया है, जिसका कोई अंत नहीं। और उस एक ही नाम से प्रेम लग गया है।
अहंकार के कारण ही तुम रुके हो। तुम्हारा सिर भारी है। तुम्हारा सिर
सब कुछ हो गया है। तुम सोच-विचारकर चल रहे हो। तुम गणित बिठा रहे हो। तुम चालाक हो, चालबाज हो, चतुर हो। तुम्हारे जीवन में सरलता नहीं है, हृदय का भाव नहीं है। तो तुम में "भजन-भाव भरिया", कैसे घटे यह घटना! हृदय ही सूख गया है।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूं, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं...
सिर कट गया, फिर कैसा डगमग होना? यह सिर ही डगमगाता है। यह खोपड़ी ही है
जो संदेहों से भरती है। यह खोपड़ी ही है जो चंचल होती है। यह अहंकार ही है जो यहां से वहां ले जाता है; कहता है--यह कर लो, वह कर लो; वैसे हो जाओ, वैसे हो जाओ।
"डगमग नहीं अडिग होई बैठी।"
सिर कट जाए तो फिर तो अडिग हो ही गए; फिर तो सब ठहर गया। मन ठहरा कि सब ठहरा। विचार ठहरे कि सब ठहरा। बस एक काम करोः अगर कहीं राम की तुम पर कृपा हो गई हो, राम की कृपा हो रही हो और गुरु के चरण मिल जाएं, तो सिर को काटने में देर मत करना। तत्क्षण सिर काट कर चढ़ा देना। तुम गंवाओगे कुछ भी नहीं, क्योंकि तुम्हारे सिर में सिवाय भूसे के और कुछ भी नहीं है। गंवाना क्या है? भूसे के अतिरिक्त कुछ और तुमने सिर में पाया है? बेचने जाओगे तो भूसे के भी दाम नहीं मिलेंगे।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ। एक सम्राट किसी भी फकीर के चरणों में झुक जाता था। उसके वजीरों को अच्छा नहीं लगता था। और उसके वजीरों ने कहा, यह भला नहीं है; यह ठीक नहीं है। यह शोभा नहीं देता। आप इतने बड़े सम्राट हैं। ऐरे-गैरे, कोई भी फकीर चले आते हैं, भीख मांगने वाले फकीर, आप उनके चरण छूते हैं? आप सिर झुकाते हैं उनके चरणों में? यह सिर बड़े सम्राट नहीं झुकवा सकते, यह सिर कभी नहीं झुका--विजेता सम्राट था--इस सिर पर बहुमूल्य हीरे- जवाहरातों के मुकुट होते हैं। इसको आप झुकाते हैं फकीरों के चरणों में? गंदे फकीर, नंगे फकीर! उस सम्राट ने कहा, समय आने पर जवाब दूँगा। एक दिन एक आदमी को फाँसी लगी। बड़ा सुंदर आदमी था, बड़ा प्यारा आदमी था। कुछ भूल-चूक की थी, सम्राट से कुछ धोखाधड़ी की थी, फाँसी लग गई। लेकिन चेहरा उसका बड़ा सुंदर था, रूपवान था। उसकी गर्दन कटवाई सम्राट ने और अपने वजीरों को कहा कि इसको जाकर बाजार में बेच आओ। सम्राट ने कहा था तो वजीरों को जाना पड़ा। जहां गए वहीं लोगों ने कहा, हटो-हटो, भागो यहां से! यह क्या ले आए हो तुम? इसका हम क्या करेंगे? और बदबू भी आ रही है, तुम यहां से जाओ! तुम होश में हो? कौन खरीदेगा इसको?
जहां गए वहीं से भगाए गए। सांझ होते ही वे वापस लौटे। उन्होंने कहाः
यह तो बड़ा मुश्किल मामला है, दो पैसे में भी कोई लेने को तैयार नहीं है। पैसे की बात ही अलग, लोग खड़े नहीं होने देते। वे कहते हैं, अपना रास्ता पकड़ो! बात ही नहीं करते, खरीदने का तो सवाल ही नहीं, लोग हँसते हैं। वे कहते हैं, पागल हो गए हो? आदमी के सिर का हम करेंगे क्या?

सम्राट ने कहाः तुम सोचते हो, कल जब मैं मर जाऊंगा, तुम मेरे सिर को बेच पाओगे? दो पैसे में कोई खरीदेगा नहीं। भूसे के सिवाय इसमें कुछ है भी नहीं। भूसा भी बिक जाएगा।
एक और ऐसी कहानी है।
एक सूफी फकीर को कुछ डाकुओं ने पकड़ लिया। मस्त फकीर था! अलमस्त फकीर था! और उन्होंने सोचा कि बेच देंगे इसे गुलामों के बाजार में, अच्छे दाम लग जाएँगे हाथ। उसे लेकर चले। राह वह में एक सम्राट की सवारी गुजरती थी, सम्राट रुका, उसने कहा कि यह आदमी कहां ले जा रहे हो? उन्होंने कहा, हम बेचने जा रहे हैं, आपको खरीदना है? गुलाम है, खरीद लें।
उसने कहाः दस हजार रुपये में खरीद लेता हूं। लेकिन उस फकीर ने उन डाकुओं को कहा कि इतने सस्ते में बेच मत देना। ठहरो जरा, तुम्हें मेरे मूल्य का पता नहीं।
आदमी बुद्धिमान मालूम होता था। थोड़ी देर साथ उसके रहे भी थे, उसकी मस्ती भी देखी थी। हो सकता है ठीक हो। तो उन्होंने कहाः नहीं, इतने में नहीं बेचेंगे। तो सम्राट ने कहा, बीस हजार देता हूँ। उस फकीर ने कहा, तुम जरा धीरज रखो। अब तो उसकी बात पर भरोसा भी आ गया। दस से बीस हो गए। उन्होंने मना कर दिया बेचने से।
आगे फिर एक धनी की सवारी मिली। उस धनी ने कहा, पचास हजार रुपये देता हूं इस आदमी के। उस फकीर ने कहा, तुम बेच मत देना जल्दी में--वे तो बिल्कुल आतुर हो रहे थे। पचास हजार! जब ठीक कोई मूल्य बताएगा तो मैं तुम्हें खुद कह दूंगा कि बेच दो।
फिर कोई और मिल गया खरीदने वाला जो लाख रुपये देने को तैयार था, लेकिन फकीर ने कहा, जरा सावधान! अब तो वे जरा गुलाम बेचने वाले भी चिंतित हो गए कि इससे ज्यादा दाम मिल नहीं सकते। हमने बड़े-बड़े गुलाम बिकते देखे हैं, मगर एक लाख रुपया! यह जरूरत से ज्यादा हो गया! बेचने को ही थे और उस फकीर ने कहा, तुम्हारी मर्जी, फिर पछताओगे, जिंदगी भर पछताओगे! तुम्हें मेरे दाम का पता नहीं है, मुझे पता है। तुम जरा ठहरो!
थोड़ी दूर चलने पर एक घसियारा मिला। वह एक घास की पोटली लिए सिर पर जा रहा था। और उस फकीर ने कहाः इससे पूछो कितने दाम देगा? उन्होंने कहा, यह क्या दाम देगा? उसने कहाः तुम पूछो तो। फकीर को देखा उस घसियारे ने, नीचे से ऊपर तक, उसने कहाः भई ज्यादा तो मेरे पास नहीं है, मगर यह घास की पोटली दे सकता हूँ। फकीर ने कहा, बेच दो! ठीक दाम मिल रहे हैं, अब चूको मत।
सिर ठोंक लिया होगा उन डाकुओं ने कि किस पागल के चक्कर में पड़ गए।
मगर फकीर ठीक कह रहा है। इतना ही दाम है! ठीक दाम तो इतना ही है। लेकिन
इस सिर को हम बचाए फिरते हैं। इस सिर को हम अकड़ाए फिरते हैं। मजा यह है कि यह सिर अकड़ा रहे तो दो कौड़ी इसके दाम नहीं हैं और यह सिर झुक जाए तो इसकी कीमत का क्या हिसाब! मगर यह बड़ा मजा है, यह झुके तो इसमें कीमत आती है।
झुकने से कीमत आती है। झुकने से यह हीरों से तुलने योग्य हो जाता है।
जनम सफल तब का भया, चरनौं चित लामा।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया।।
डगमग नहीं अडिग होई बैठी, सिर धरि करवत काती।।
एक बड़े आरे से लेकर सिर को काट डाला है, तब से सब डांवाडोलपन चला गया,
सब थिर हो गया। प्रज्ञा ठहर गई।
और जहां विचार ठहर जाते हैं, वहीं तो परमात्मा का आगमन है। तुम्हारे विचारों की तरंगों के कारण ही तुम चूक रहे हो। देख नहीं पाते, सुन नहीं पाते, अनुभव नहीं कर पाते। परमात्मा तो सदा मौजूद है, तुम्हारी तरंगें सब विकृत कर देती हैं। ऐसा ही है जैसे चांद तो निकला हो, लेकिन झील पर बहुत लहरें हों तो छाया चांद की नहीं बनती। बने तो भी बिखर जाती हैं। झील भर पर चांदी बिखर जाती है, मगर चांद नहीं दिखाई पड़ता। फिर कभी झील पर हवा नहीं है, हवा के झोंके नहीं हैं, तरंगें नहीं हैं और चांद निकला--चांद पूरा झलकता है। ऐसे ही परमात्मा तुम में झलके, तुम ठहरो.जरा! लेकिन तुम पड़े हो विवाद में, संदेहों में, विचारों में--जिनका कोई मूल्य भी नहीं है, जिनको

पकड़-पकड़कर तुम कुछ पाओगे भी नहीं। लेकिन बड़ी जिद्द से पकड़ा है। छोड़ने को राजी नहीं हैं। बीमारियों को पकड़े बैठे हो और छोड़ने को राजी नहीं हैं!

डगमग नहीं अडिग होई बैठी, सिर धरि करवत काती।।
सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै...
और जब से यह सिर काटा है, तब से एक मजे की बात घट रही हैः सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै... । अब जैसा राम रखते हैं, हर हाल में सुख ही सुख है। संतोष से दोस्ती हो गई है।
सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै, यहु रसरीति सुहाती।
यही प्रेम की पुरानी रीति है। "यहु रसरीति सुहाती... ।" भक्त को यही सुहाती है--एक बात, कि जैसे राम रखें, वैसे रहूंगा। "जैसे" का ख्याल रखना।
उसमें तुम्हारी शर्त नहीं आनी चाहिए। सुख तो सुख, दुख तो दुख। दिन तो दिन, रात तो रात। सब उसकी हैं--रात भी उसकी, और दुख भी उसका; फूल भी उसके और काँटे भी उसके।
सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै, यहु रसरीति सुहाती।
जन रज्जब धन ध्यान तिहारो...
धनी हो जाता है आदमी, ध्यानी हो जाता है आदमी--जब सिर झुका देता है, विचारों की आहुति चढ़ा देता है; मेरे का जो भाव है, उसे गिरा देता है।
"जन रज्जब धन ध्यान तिहारो।"
फिर तो बस उसकी याद ही रह जाती है। वही एकमात्र भीतर की आवाज रह जाती है।
जन रज्जब धन ध्यान तिहारो, बेरबेर बलि जाती।।
और फिर तो बार-बार बलि जाने का मजा आने लगता है। हर घड़ी बलि जाने का मजा आने लगता है। यही है पूजा, यही है प्रर्थाना, यही है अर्चना।
कहना मुश्किल है--राम रंगीले के रंग राती--उस घड़ी में क्या घटता है, कहना मुश्किल है। कैसे सौंदर्य के बादल तुम्हारे ऊपर बरस जाते हैं, कहना मुश्किल है। कैसे सूरज, अनंत सूरज तुम्हारे अंधेरे को आलोकित कर देते हैं, कहना मुश्किल है। कोई शब्द सार्थक नहीं हैं जो बता सकें। और कैसे अपूर्व सौंदर्य का अनुभव होता है, और कैसे सुख की धार भीतर बहने लगती है, कहना मुश्किल है!
जैसे शबनम से भरी कोंपल में
किसी तितली के परों का परतव
जैसे जंगल में किसी मोर का रक्स
जैसे झोंकों में किसी शमा की जौ
तेरे शानों पे मुअत्तर जुल्फें

जैसे बरसात की महकी रुत में सांवला गीत किसी बादल का
जैसे गुलजार में भौंरों की उड़ान जैसे मंदिर में धुआं संदल का यह जवां साल खदो-खाल तेरे

मुझसे तारीफ नहीं हो सकती
तेरी तुर्शी हुई रानाई की
जिसमें शामिल हो तवाजुन का शऊर
तू वह तस्वीर है चुगताई की
बन गया है मेरा सपना कल का
खुशनुमा रंग तेरे आंचल का
साधारण प्रेम की भी परिभाषा नहीं हो पाती, तो प्रभु-प्रेम की तो कैसे हो! साधारण रूप भी शब्दों में नहीं बंधता, तो उस निराकार का रूप तो कैसे बंधे!
यह तो किसी कवि के शब्द हैं--अपनी प्रेयसी के लिए कहे हैं। कहा है--
जैसे शबनम से भरी कोंपल में

जैसे कोंपल में ओस की बूंद भरी हो।
जैसे शबनम से भरी कोंपल में
किसी तितली के परों का परतव
और पास से कोई उड़ती तितली निकल जाए और तितली के रंगीन परों की छाया ओस
की बूँद में पड़ जाए!
जैसे शबनम से भरी कोंपल में
किसी तितली के परों का परतव
जैसे जंगल में किसी मोर का रक्स
और जैसे एकांत जंगल में कोई मोर नाचे!
जैसे झोंकों में किसी शमा की लौ
और जैसे हवा के झोंके में शमा की लौ का नृत्य! तेरे शानों पे मुअत्तर जुल्फें
ऐसे तेरे बाल तेरे माथे पर!
जैसे बरसात की महकी रुत में
सांवला गीत किसी बादल का
जैसे गुलजार में भौंरों की उड़ान
जैसे मंदिर में धुआं संदल का
यह जवां साल खदो-खाल तेरे
यह तेरा रूप, यह तेरा नक्श!
मुझसे तारीफ नहीं हो सकती
साधारण रूप की तारीफ भी नहीं हो पाती।
मुझसे तारीफ नहीं हो सकती
तेरी तुर्शी हुई रानाई की
तेरे रूप की, तेरे सौंदर्य की मैं प्रशंसा नहीं कर पाता! जिसमें शामिल हो तवाजुन का शऊर
और फिर जिसमें संतुलन भी हो... सौंदर्य और संतुलन!
तू वह तस्वीर है चुगताई की
बड़े-बड़े चित्रकार भी तेरी तस्वीर न बना सकें।
बन गया है मेरा सपना कल का
खुशनुमा रंग तेरे आंचल का
इतना ही कह सकता हूं कि मैंने जिंदगी भर, कल तक जो सपने देखे थे, उन सब सपनों का रंग तेरे आंचल का रंग है। मगर कहना मुश्किल है!
मुझसे तारीफ नहीं हो सकती
तेरी तुर्शी हुई रानाई की
प्रभु के सौंदर्य का तो कैसे वर्णन हो? और प्रभु का संग-साथ मिल जाने
पर जो मस्ती उतर आती है, जो शराब ढल जाती है प्राणों में, उसकी तो कैसे अभिव्यक्ति हो? पर भक्त के जीवन को देखोगे तो अभिव्यक्ति मिलेगी--उसके उठने में, उसके बैठने में, उसकी आंखों में, उसके हाथों में। भक्त को देखोगे--उसकी भक्ति में, उसकी पूजा में, उसकी प्रार्थना में, उसकी आरती में--भक्त को देखोगे तो थोड़ी-थोड़ी खबर मिलेगी। तारीफ तो नहीं हो सकती, वचनों में आबद्ध भी नहीं किया जा सकता, रंगों में तस्वीर भी नहीं बनाई जा सकती, मगर भक्त के प्रसाद में थोड़ी-सी झलक मिल सकती है। वैसी ही झलक-- जैसे शबनम से भरी कोंपल में
किसी तितली के परों का परतव!
वैसी ही झलक--
जैसे जंगल में किसी मोर का रक्स
जैसे झोंकों में किसी शमअ की लौ
जैसे बरसात की महकी रुत में सांवला गीत किसी बादल का
जैसे गुलजार में भौंरों की उड़ान जैसे मंदिर में धुआं संदल का यह जवां साल खदो-खाल तेरे

परमात्मा बहुत निकट है, तुम नाहक उससे दूर बने हो! अपूर्व संपदा तुम
पर बरसने को तत्पर है, झोली फैलाओ! मगर तुम अपनी झोली बंद किए बैठे हो। सब कुछ मिल सकता है--और तुम ना-कुछ की तलाश कर रहे हो! हीरों की खदान पास है--और तुम कचराघर में खोज-बीन कर रहे हो!
सब बहुत निकट है; हाथ बढ़ाने की बात है--इतने निकट है! मगर तुम्हारे हाथ गलत दिशाओं में टटोल रहे हैं। तुम अंधेरों में टटोल रहे हो। तुमने आंखें बंद कर रखी हैं। तुमने हृदय को जड़ कर रखा है। तुमने अपनी बुद्धि से ही सब कुछ जीने की व्यवस्था कर रखी है। यही तुम्हारे जीवन की दुर्घटना है। इस बुद्धि को चढ़ा दो। खोज लो कहीं कोई चरण, किसी भी बहाने इस बुद्धि को चढ़ा दो। यह बुद्धि चढ़ जाए, तुम अचानक पा जाओ! रोशनी उतरे! रंग उतरे! गंध उतरे! और पहली बार तुम्हें जीवन का अर्थ मालूम हो।
जीवन बहुमूल्य है, इसे ऐसे ही मत गंवाओ। जीवन बहुत बड़ी भेंट है भगवान की! इसे ऐसे ही मत चला जाने दो। मगर अधिक लोग इसे ऐसे ही चला जाने देते हैं।
रज्जब से कुछ सीखो!
गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
तत छन परसन होत हीं भजन भाव भरिया।।
श्रवण कथा सांची सुणी, संगति सतगुरु की।
दूजा दिल आवै नहिं, जब धारी धुर की।।
भरमजाल भव काटिया, संका सब तोड़ी।
साँचा सगा जे राम का, त्यों तासूं जोड़ी।।
भौजल माहिं काढ़िकै, जिन जीव जिलाया।
सहज सजीवन कर लिया सांचे संगि लाया।।
जनम सफल तब का भया, चरनौं चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुरु पाया।।

राम रंगीले के रंग राती।
परम पुरुष संगि प्राण हमारो, मगन गलित मद-माती।।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूं, गिनत न सीली ताती।
डगमग नहीं अडिग होई बैठी, सिर धरि करवत काती।।
सब विधि सुखी राम ज्यौं राखै, यहु रसरीति सुहाती।
जन रज्जब धन ध्यान तिहारो, बेरबेर बलि जाती।।
राम रंगीले के रंग राती।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
दसवां प्रवचन

ठहर जाना पा लेना है

पहला प्रश्न: आपके हिंदी प्रवचनों में भी सत्तर--अस्सी प्रतिशत वे पाश्चात्य संन्यासी होते हैं जिन्हें हिंदी--भाषा बिल्कुल नहीं आती। आश्चर्य है कि आप फिर भी उसी तत्परता, सहजता और गहनता से बोलते हैं, मानो कि पूरी मंडली भाषा समझ रही हो। क्या आपको इस बात से कोई अड़चन नहीं आती? यह कैसे संभव है, यह समझाने की अनुकंपा करें।
चिन्मय! भाषा की यहाँ बात ही नहीं है, भाव की बात है। फिर भाषा जो समझते हैं, वे भी कहाँ समझ पाते हैं? भाषा समझने से ही तो नहीं समझ लोगे। जो कहा जा रहा है, वह भाषा में आबद्ध भला हो, भाषा में सीमित नहीं है। भाषा के द्वारा संवादित किया जा रहा हो, लेकिन भाषा का ही नहीं है। भाव से जुड़ो तो ही समझ में आएगा।
अनेक को यह प्रश्न उठता होगा मन में कि जो हिंदी--भाषा नहीं समझ रहे हैं, वे कैसे समझ रहे होंगे? मैं जो बोल रहा हूँ उसे वे नहीं समझेंगे, लेकिन मैं जो हूँ उसे वे समझेंगे। और वही मूल्यवान है। जो कहा जा रहा है, वह नहीं, वरन जहाँ से कहा जा रहा है, वह। मेरी चुप्पी मूल्यवान है। उसी चुप्पी से शब्द निर्मित हो रहे हैं। शब्द तो ऐसे हैं जैसे झील पर तरंगें। तरंगें ही थोड़े झील का सब कुछ हैं। झील बिना तरंगों के भी हो सकती है। वे मेरी झील को देख रहे हैं, उन्हें तरंगें दिखायी नहीं पड़ रही हैं, वही असली बात भी है।
और कई बार तो ऐसा हो जाता है, उल्टा ही हो जाता है, जो भाषा समझ पाता है,
वह भाषा समझने के कारण ही भाव नहीं समझ पाता। भाषा में अटक जाता है। मैंने कोई बात कही, तुमने भाषा समझी, तो तुम ऊहापोह में पड़े, सोच--विचार में उलझे, अर्थ निकालने लगे। अर्थ तो तुम्हारे होंगे। शब्द मेरे, अर्थ की कलमें तुम अपनी लगाओगे--अनर्थ हो जाएगा। बात सुनी--समझी, तुम्हारे भीतर न--मालूम कितनी स्मृतियाँ जग गयीं। तुमने जो पढ़ा है, सुना है, गुना है, वह सब आंदोलित हो उठा। तुम्हारे भीतर शोरगुल मच गया। तुम्हारे भीतर एक बाजार खड़ा हो गया। उस बाजार में मेरी आवाज खो जाएगी। तुम्हारे भीतर विवाद उठेंगे, तर्क उठेंगे, संदेह उठेंगे, क्योंकि भाषा समझ में आ रही है। तो बहुत बार यह भी हो जाता है कि भाषा समझ में न आती हो और अगर प्रेम हो, तो न तो विवाद पैदा होगा, न विचार पैदा होंगे, न ऊहापोह जन्मेगा, सन्नाटा छा जाएगा; शब्द का व्यवधान नहीं होगा, निःशब्द में सेतु बन जाएगा।
जो हिंदी--भाषा नहीं समझ रहे हैं, वे यहाँ अकारण नहीं बैठे हैं, बड़ी समझ से बैठे हैं, उतनी समझ हिंदी समझने वालों की नहीं है। क्योंकि जब मैं अंग्रेजी में बोलता हूँ, हिंदी समझने वाले विदा हो जाते हैं। फिर उनका पता नहीं चलता। वे कहते हैं--हमें अंग्रेजी समझ में नहीं आती। तुम ज़रा अपना अंधापन समझो। जिनको हिंदी समझ में नहीं आ रही है, वे बैठे सुन रहे हैं, रोज, यह भी तुम देखते हो, लेकिन जब मैं अंग्रेजी में बोलता हूँ और तुम्हें अंग्रेजी समझ में नहीं आती, तुम विदा हो जाते हो। तुम भी कभी बैठकर देखो! भाषा के बिना मुझसे जुड़कर देखो। और शायद फिर भाषा से जुड़ना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाएगा। क्योंकि यहाँ जो बात हो रही है, वह बात की बात नहीं है। बात तो केवल बहाना है, बात तो तुम्हारे मन को दिया गया खिलौना है। असली बात तो कुछ और है, बात तो कुछ और है।
असली बात तो एक अवस्था का निर्माण है--एक क्षेत्र का, एक आकाश का--जहाँ तुम मेरे साथ तरंगित हो सको। जहाँ तुम मेरे साथ लयबद्ध हो सको, जहाँ तुम्हारी साँस मेरी साँस के साथ चले। जहाँ तुम मेरे साथ ऐसे जुड़ जाओ कि मेरी ऑंखों से देख सको और कानों से सुन सको। जहाँ तुम मेरे साथ उस अंतर्यात्रा पर निकल पड़ो जहाँ परमात्मा का निवास है। यहाँ कोई दर्शनशास्त्र नहीं समझाया जा रहा है। यह कोई स्कूल नहीं है, कोई विद्यालय नहीं है, यह तो ध्यानपीठ है। यहाँ ज्ञान नहीं दिया जा रहा है, ध्यान का रस लगाया जा रहा है, ध्यान का पागलपन दिया जा रहा है, ध्यान की मस्ती बाँटी जा

रही है। लेना--देना क्या है भाषा से? मैंने जो कहा वह समझा कि नहीं समझा, उसका मूल्य कितना है? मेरे पास बैठे दो घड़ी, मेरे साथ डोले दो घड़ी, मेरे साथ एकरस हो लिए दो घड़ी; मेरे भाव में नहाए, मेरे रंग में रंगे, मेरे गीत में डोले, मेरी तरन्नुम से बँधे, बस हो गया। उन घड़ी--दो घड़ियों में कुछ हो जाएगा जो मूल्यवान है। उन दो घड़ियों में तुम संसार के पार चलोगे, अतीत चलोगे, अतिक्रमण करोगे। उन घड़ी--दो--घड़ी में भावातीत अवस्था बन जाएगी।
तो जिनको भाषा समझ में नहीं आ रही है, तो उन पर दया मत खाना, तुम यह मत सोचना कि बेचारे, ये बैठे हैं और इनको कुछ समझ में नहीं आ रहा है! बैठे हैं, उसी बैठने में कुछ हो रहा है। चुप हैं, सुनायी कुछ भी नहीं पड़ रहा है, उसी न सुनायी पड़ने में कुछ हो रहा है। भीतर कोई तरंगें नहीं चल रही हैं, सब निस्तरंग है, सब ठहरा हुआ है, ऊर्जा का ऊर्जा के साथ नृत्य हो रहा है, भाव भाव से गठबंधित हो रहा है, एक रास चल रहा है, एक रहस्य का आदान--प्रदान हो रहा है।
बोलना पड़ता है मुझे, क्योंकि तुम बिना बोले न समझोगे। लेकिन चेष्टा
तो यही है धीरे--धीरे तुम बिना बोले समझो। इस दुनिया से जाने के पहले यही चाहूँगा कि मेरे हजारों संन्यासी मेरे साथ चुप बैठे हों और समझें, बोलना न पड़े। वही गंतव्य है। जब तुम आओगे, जब तुम चुपचाप मेरे पास बैठोगे, और बात होने लगेगी, और बात हो जाएगी, और न कुछ कहना पड़ेगा, और न कुछ सुनना पड़ेगा, न कोई वक्ता होगा, न कोई श्रोता होगा, तब तुम जिन ऊँचाइयों में उठोगे और जिन गहराइयों में उतरोगे, उन्हें शब्दों में कहने का काई उपाय नहीं है। शब्द बड़े सतही हैं। उन गहराइयों को नहीं छू पाते। वह शब्दों की सामर्थ्य नहीं, उनका स्वभाव नहीं। शब्द तो बाजारू हैं, बाजार के लिए हैं, कामचलाऊ हैं। मंदिर में शब्द की क्या जरूरत?--मस्ती की जरूरत है। मधुशाला में शब्द की क्या जरूरत?--मस्ती की जरूरत है।
तुमने पूछा--"आपके हिंदी प्रवचनों में सत्तर--अस्सी प्रतिशत वे पाश्चात्य संन्यासी होते हैं जिन्हें हिंदी--भाषा बिल्कुल नहीं आती। आश्चर्य है कि फिर भी आप उसी तत्परता, सहजता और गहनता से बोलते हैं।' मैं यहाँ कोई बोलनेवाला नहीं हूँ--यहाँ कोई वक्ता नहीं है। वक्ता हो तो श्रोता पर बँधा होता है। वक्ता हो तो श्रोता को देखकर बोलता है। वक्ता हो तो श्रोता के पीछे चलता है। वक्ता हो तो ध्यान रखना पड़ता है कि श्रोता जिस बात से राजी हो, वही कहो। जिस बात से नाराजी हो, वह मत कहो। इसीलिए तो राजनीतिज्ञ के वक्तव्य कभी भी सुनिश्चित नहीं होते--हो नहीं सकते। उसे श्रोताओं को देखकर रोज अपने वक्तव्य बदल लेने पड़ते हैं। या उसे ऐसे वक्तव्य देने पड़ते हैं जिनके अनेक अर्थ हो सकें; जब जैसा अर्थ निकालना हो निकाला जा सके। राजनीतिक वक्ता खयाल रखकर बोल रहा है--श्रोता कितनी दूर तक मेरे साथ जाने को राजी है? उसे श्रोता को कहीं ले जाना है, श्रोता का कुछ उपयोग करना है। श्रोता साधन है, उसकी सीढ़ियाँ बनानी हैं, उसके कंधों पर पैर रखने हैं, उसके सिरों का उपयोग करना है; उसे यात्रा करनी है श्रोता के ऊपर। तो श्रोता की मर्जी का ध्यान रखना पड़ेगा।
मैं कोई वक्ता नहीं हूँ। मैं तुम्हारी सीढ़ी नहीं बनाना चाहता। सच तो
यह है कि मैं तुम्हारे लिए सीढ़ी बनना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम मेरा उपयोग कर लो। मेरी सीढ़ियों पर पैर रखो, मेरे कंधों पर चढ़ो और उन ऊँचाइयों को देख लो जो शायद तुम अपने ही पैरों पर खड़े रहे तो न देख सकोगे। तो मुझे तुम्हें राजी करने को कुछ नहीं बोलना है। इसलिए तो मुझसे लोग इतने नाराज हैं। जब राजी करने को न बोलूँगा तो नाराज होंगे। उन्हें धक्के लगते हैं; उन्हें बेचैनी होती है, उन्हें परेशानी होती है। मैं यहाँ तुम्हें राजी करने को नहीं हूँ। मुझे तुमसे कोई मत नहीं लेना है। मुझे तुम्हारी भीड़ अनुयायियों की तरह इकट्ठी नहीं करनी है। मेरा तुमसे कोई न्यस्त स्वार्थ नहीं है। मुझे कुछ मिला है, वह जरूर बाँट देना चाहता हूँ। जो भी मौजूद होगा, उसीको बाँटँगा। अगर मनुष्य न होंगे तो पशु--पक्षियों को बाँटँगा। अगर पशु--पक्षी न होंगे तो पौधों--पहाड़ों को बाँटँगा।
तुमने सुना है, महावीर जब पहली बार बोले तो कोई मनुष्य नहीं था सुनने को। अभी मनुष्यों को तो खबर ही नहीं लगी थी कि महावीर को ज्ञान उपलब्ध हो

गया। जब पहली बार बोले तो कोई भी नहीं था सुनने को। कहानियाँ कहती हैं कि देवता थे। देवता का मतलब होता है, कोई भी नहीं था। शून्य में बोले होंगे। कहानी लिखने वालों को अड़चन हुई होगी कि इसमें तो महावीर पागल मालूम पड़ेंगे--कि कोई सुननेवाला नहीं, क्योंकि दिखायी कोई भी नहीं पड़ता, किससे बोलते हैं--कहानी लिखनेवालों को बेचैनी हुई, तो उन्होंने देवता कल्पित किए कि देवताओं से बोले। देवता थे--अदृश्य देवता खड़े थे।...... तुम यहाँ नहीं होओगे तो मुझे भी अदृश्य देवताओं से बोलना पड़ेगा।
तुम चकित होओगे जानकर कि फिर धीरे--धीरे आदमी भी आए--आदमियों तक खबर पहुँची--फिर धीरे--धीरे आदमी ही नहीं आए, पशु--पक्षी भी आए--उन तक भी खबर पहुँची। अब महावीर पशु--पक्षियों से क्या बोलते होंगे? क्या तुम सोचते हो पशु--पक्षी महावीर जो बोलते होंगे उसे समझते होंगे? नहीं, लेकिन महावीर को तो समझते थे। जो बोला, वह नहीं समझा गया होगा, लेकिन जो महावीर का अस्तित्व था, जो धड़कन थी, जो रक्स, जो नृत्य जन्मा था महावीर में, वह तो समझा होगा। शायद आदमियों से ज्यादा बेहतर समझा होगा। महावीर के भीतर जो नृत्य हो रहा था, वह मोरों ने ज्यादा बेहतर समझा होगा तुम्हारी बजाय, क्योंकि तुम तो नाच भूल गए हो। मोर को अभी भी नाच आता है......सुनते हो इस कोयल की आवाज को? महावीर ने जो गीत गाया, कोयलें ज्यादा समझी होंगी, अभी उनका स्वर नहीं खो गया है। अभी स्वर जीवित है। आदमी का तो स्वर खो गया है। आदमी तो गीत गाना भूल गया है। आदमी तो सिर्फ रोना जानता है, गाना जानता कहाँ है? हाँ, कभी-- कभी गाने में भी रोता है, यह दूसरी बात है, मगर गाता कहाँ है? आनंद कहाँ है? उत्सव कहाँ है?
शायद पौधे ज्यादा समझे होंगे, क्योंकि पौधों में अब भी फूल खिलते हैं,
अब भी रंग आता है, गंध आती है। पौधे अब भी आकाश में उठना जानते हैं। अभी भी तारों से बातें करते हैं। हवाओं में नाचते हैं, सूरज से मुलाकात लेते हैं। महावीर के शब्द तो नहीं समझे होंगे पौधे, पशु--पक्षी, महावीर को तो समझे होंगे! और मुझे लगता है आदमियों के बजाय महावीर को पौधे और पशु ज्यादा समझे। कम--से--कम उन्होंने महावीर को पत्थर तो नहीं मारे! कम से कम उन्होंने महावीर के कानों में कीलें तो नहीं ठोंके। उन्होंने महावीर को एक गाँव से दूसरे गाँव तो नहीं खदेड़ा। वे महावीर पर नाराज तो नहीं हो गए कि तुम नग्न क्यों हो? पौधे, पशु--पक्षी नग्न ही हैं। उन्हें तो आश्चर्य इस पर होता है कि आदमी ने कपड़े क्यों पहने हैं?
इस प्रकृति में सिर्फ आदमी ही कपड़े पहने हुए हैं। आदमी ही अपने को छिपा रहा है। आदमी ही अपने से भयभीत है। आदमी ही अपनी देह से डरा है। आदमी को ही अपनी देह के प्रति हीनता की ग्रंथि पैदा हो गयी कि कुछ पाप है देह में, कुछ बुराई है देह में, छिपाओ। पशु--पक्षी, पौधे अब भी तो नग्न हैं। आदमी भर कुछ रुग्ण है। इंग्लैंड में ऐसी महिलाएँ हैं जो अपने कुत्तों को भी कपड़े पहनाती हैं। इन महिलाओं का दिमाग खराब है। और इन महिलाओं के मन में जरूर कोई गहन रोग है।
तुम जानकर यह हैरान होओगे, विक्टोरिया के जमाने में कुर्सियों के पैर
भी नंगे नहीं छोड़े जाते थे, क्योंकि पैर हैं न वे! कुर्सियों के पैर, उन पर कपड़ा चढ़ाया जाता था। क्योंकि पैर नंगे नहीं होने चाहिए। अब जो कुर्सियों के पैरों पर कपड़ा चढ़ाते होंगे, इनकी बेहूदगी देखते हो? इनका नंगापन देखते हो? इनका नंगापन देखते हो? इनकी भीतरी दरिद्रता देखते हो? इनका रोग देखते हो! इनकी कामुकता देखते हो? इनकी कामग्रसित मनोग्रंथियाँ देखते हो? ये बीमार हैं, ये विक्षिप्त हैं।
महावीर को गाँव--गाँव से भगाया गया। क्योंकि वे नग्न थे। पौधों की तरह, पशुओं की तरह, पक्षियों की तरह।
जीसस से किसी ने पूछा है, आपका मूल संदेश क्या है? जीसस ने कहा--फूलों
से पूछ लो; पक्षियों से पूछ लो; मछलियों से पूछ लो, और वे तुम्हें मेरा असली संदेश बता देंगी। क्या कह रहे हैं जीसस? जीसस कह रहे हैं--निसर्ग मेरा संदेश है। तुम फिर स्वाभाविक हो जाओ, यही मेरा संदेश है।
महावीर को ज्यादा प्यार किया पौधों ने, पशुओं ने, पक्षियों ने। कुछ आश्चर्य नहीं कि वे सुनने आते हों। सुनने आते हों कहना ठीक नहीं है,

क्योंकि भाषा तो उनकी समझ में नहीं आएगी; लेकिन महावीर को देख तो सकते हैं, महावीर की तरंग को तो छू सकते हैं। सारी दुनिया में पुलिस कुत्तों का उपयोग करती है अपराधियों को पकड़ने के लिए, हत्यारों को पकड़ने के लिए। अगर कुत्तों के पास इतना बोध है कि हत्यारों को पहचान लें, हत्यारे की गंध को पहचान लें, तो क्या कुत्तों के पास इतना बोध नहीं हो सकता कि महावीर की गंध को पहचान लें, ज्ञानी की गंध को पहचान लें? यह तो उसी तर्क का हिस्सा है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई लकड़हारा कुल्हाड़ी उठाकर वृक्ष के पास वृक्ष को काटने आता है, तो वृक्ष उदास हो जाता है। इसको अब जाँचने के उपाय हैं। अब यंत्र बन गए हैं। जैसे तुम्हारी छाती पर डाक्टर स्टेथॅस्कोप लगाकर जाँच लेता है। या कार्डियोग्राफ। तुम्हारे भीतर कुछ गड़बड़ हो गयी होती है, तो कार्डियोग्राफ पकड़ लेता है। वैसे यंत्र बन गए हैं जो हृदय की धक--धक को वृक्ष की पहचानने लगे हैं। वृक्ष की संवेदना को पकड़ते हैं। ग्राफ बन जाता है मशीन पर कि वृक्ष कैसा अनुभव कर रहा है--प्रसन्न है, दुःखी है, उदास है? हत्यारे को आते देखकर, लकड़हारे को आते देखकर वृक्ष बेचैन हो जाता है, दुःखी हो जाता है। और भी जानकर तुम आश्चर्यचकित होओगे कि एक वृक्ष काटा जाता है, तो उसके आसपास के सारे वृक्ष उदास और दुःखी हो जाते हैं। और यही वृक्ष जब माली आता है, पानी सींचने, तो बड़े आनंदविभोर हो जाते हैं। और यह भी आश्चर्य की बात है कि अभी कुल्हाड़ी चली नहीं है, सिर्फ कुल्हाड़ी को लेकर हत्यारा आ रहा है, दूर है अभी और वृक्ष उदास होने लगते हैं, बेचैन होने लगते हैं। अभी कुल्हाड़ी चली होती तो भी ठीक था, कुल्हाड़ी मारी होती वृक्ष को तो भी ठीक था, हम समझ सकते थे कि वृक्ष को चोट लगेगी। लेकिन दूर से आता कुल्हाड़ी लिए हुए आदमी! और यह भी आश्चर्य की बात है, अगर वह सिर्फ कुल्हाड़ी लिए निकल रहा है और काटने का कोई इरादा नहीं है, तो कोई वृक्ष परेशान नहीं होता। काटने का इरादा है तो ही परेशान होता है। मतलब इरादे भी पकड़े जा रहे हैं।
आदमी ही संवेदनशील नहीं है, पशु--पक्षी भी हैं। शायद ज्यादा हैं। भाषा
से ही थोड़े समझा जाता है, और भी समझने के उपाय हैं, और भी गहनतर उपाय हैं।
भाषा तो बहुत ही कामचलाऊ उपाय है।
सद्गुरु के पास होना हो तो भाषा तो निम्नतम उपाय है। मजबूरी है।
क्योंकि तुम्हारे पास और कुछ समझने को नहीं है, इसलिए इसका उपयोग करना पड़ता है।
मैंने सुना है, एक सेनापति ने एक बिल्कुल मूढ़ सेक्रेटरी अपने पास रख छोड़ा था। जड़ बुद्धि। सम्राट ने उससे पूछा कि और सब तो ठीक है, तुमने अपने स्टाफ पर बुद्धिमान लोग रखे हैं, मगर यह एक बुद्धू क्यों रखा है? यह बिल्कुल जड़ है। उस जनरल ने कहा--इसके रखने का कारण है। जब भी मैं कोई आज्ञा निकालता हूँ सैनिकों के लिए, तो पहले इसको पढ़ने को देता हूँ। अगर यह समझ लेता है, तो मैं समझता हूँ कि दुनिया में सभी लोग समझ लेंगे। अगर यह नहीं समझता, तो फिर से मैं उसको लिखवाता हूँ। इसका एक बड़ा उपयोग है, यह बड़ा कीमती आदमी है, इसको मैं अपने साथ ही रखता हूँ। जो बात यह समझ लेता है, वह दुनिया में सभी समझ लेंगे
भाषा में जो समझता है, वह आखिरी बात है। सबसे नीचे तल की बात है। जो तुम भाषा के द्वारा समझ लेते हो, वह तो कोई भी समझ लेगा जो भाषा समझता है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। भाषा से शून्य को समझो; शून्य की मात्रा बढ़ती जाए, भाषा की मात्रा कम होती जाए, तो तुम ऊपर उठने लगे।
यहाँ जो हिंदी नहीं समझ रहे हैं, और शांत बैठे हैं, वे भी कुछ समझ रहे हैं। वे तरंगित हो रहे हैं। वे तरंगों को समझ रहे हैं। वे संवेदित हो रहे हैं। उन्होंने अपना हृदय मेरे प्रति खोल रखा है। वे आंदोलित हो रहे हैं भीतर। एक भाव का रिश्ता, एक नाता बन रहा है।
मैं तुमसे कहूँगा, जब मैं अंग्रेजी में बोलता हूँ तब भाग मत जाया करो। तुम भी बैठकर सुना करो। तुम भी यह लाभ लो! ऐसा समझो कि जब हिंदी में बोलता हूँ तो उनके लिए बोलता हूँ जो हिंदी नहीं समझते और जब अंग्रेजी में बोलता हूँ तो उनके लिए बोलता हूँ जो अंग्रेजी नहीं समझते। ऐसा समझो। तब तुम दोहरे लाभ ले सकोगे--भाषा से जो समझ में आ सकता है, वह भाषा से समझ में आ

जाएगा और जो भाषा से समझ में नहीं आता, वह भी जब तुम मौन मेरे पास बैठोगे तब समझ आ जाएगा।
रही मेरी बोलने की बात, तो यहाँ कोई बोलनेवाला नहीं है। नहीं तो अड़चन होती। मैं भी सोचता कि इतने लोग यहाँ बैठे हैं जो समझते नहीं, तो मैं बोल किससे रहा हूँ? फूल खिलता है एकांत में, इसकी थोड़े ही चिंता होती है कि कितने लोग राह से गुजरेंगे जो मेरी सुगंध से आंदोलित होंगे? कितने लोग प्रभावित होंगे? कितने लोग आकर धन्यवाद करेंगे? एकांत में खिला फूल भी अपनी गंध को बिखेरता है। ऐसे ही मैं गंध को बिखेर रहा हूँ। तुम हो या नहीं; यह निमित्त की बात है। तुम हो, ठीक, तुम नहीं हो, ठीक, जो मुझसे प्रगट हो रहा है, होता रहेगा। ऐसा मत समझो कि तुम हो, इसलिए बोल रहा हूँ ऐसा समझो कि मैं बोल रहा हूँ, इसलिए तुम यहाँ हो। तुम्हारे कारण मैं यहाँ नहीं हूँ, मेरे कारण तुम यहाँ हो। तब दृष्टि बदल जाएगी।
फिर मैं तो जो करता हूँ, जो होता है, वह पूरा ही हो सकता है। तुम समझो
कि न समझो, इससे प्रयोजन नहीं है। लेकिन मैं बोलूँ, तो पूरी ही तत्परता से बोल सकता हूँ--अन्यथा बोलूँगा ही नहीं। जिस दिन मुझे लगेगा आज तत्परता से नहीं बोल सकता हूँ, उस दिन बोलूँगा ही नहीं। जो काम समग्र तत्परता से नहीं हो सकता वह मैं करुंगा ही नहीं। अपने पूरे प्राण उँडेल सकता हूँ किसी बात में, तो ही करूँगा। नहीं तो नहीं करूँगा। क्योंकि फिर बात झूठी हो जाती है। जिसमें त्वरा नहीं है, तीव्रता नहीं है, सहजता नहीं है, समग्रता नहीं है, वह बात अधूरी हो जाती है, झूठी हो जाती है। जब हँस सको पूरा तो हँसना और जब रो सको पूरा तो रोना। आधे--आधे काम मत करना।
तुम्हारी चिंता भी मेरी समझ में आती है। चिन्मय ने पूछा है; तो कारण स्पष्ट है। चिन्मय को हैरानी होगी, अगर इतने लोग न समझते हों और बोलना पड़े तो हैरानी होगी कि किससे बोलना है, यहाँ कोई समझने वाला नहीं है? समझाने की आतुरता। सुननेवाला वहाँ बैठा हो ताली बजाने को, तो बोलने में मजा आ जाता है। लेकिन वह मजा उधार है। सुननेवाले पर निर्भर है, बासा है। एक और बोलना है, जो अंतर्भाव से जगता है। तुम्हारे भीतर है इतना ज्यादा कि बाँटना है, पात्र मिले कि अपात्र मिले।
एक तिब्बती कहानी मैंने सुनी है। एक फकीर बड़ा ख्यातिनाम, दूर--दूर से लोग उसके दर्शन को आते हैं और वे सभी एक प्रार्थना करते रहे और वर्षों तक एक ही प्रार्थना करते रहे कि आप शिष्य स्वीकार क्यों नहीं करते? तो वह फकीर कहता था--कोई पात्र मिले तो स्वीकार करूँ। पात्र ही कोई नहीं दिखायी पड़ता। और उसने पात्र की ऐसी परिभाषा की थी कि अगर वैसी पात्रता का कोई व्यक्ति हो तो वह स्वयं ही गुरु हो जाएगा, वह किसी का शिष्य क्यों होगा? तो उसकी पात्रता की परिभाषा ही असंभव थी पूरा करना। न कोई पात्र मिलता था, न वह शिष्य बनाता था। सेवा--टहल के लिए एक आदमी उसके पास रहता था। वह भी शिष्य नहीं था। क्योंकि शिष्य तो वह बनाता ही नहीं था।
मरने के तीन दिन पहले एक दिन अचानक उसने ऑंख खोली सुबह और अपने उस आदमी को कहा जो उसकी सेवा--टहल करता था कि जा, पहाड़ से नीचे उतर और जो भी लोग शिष्य बनना चाहते हों, उन सबको ले आ। उसने पूछा--सबको! पात्रता का क्या होगा? उसने कहा--छोड़ पात्रता इत्यादि की बात, अब समय खोने को नहीं है। तू भाग! जो मिले, जो आने को राजी हो। उसको भरोसा नहीं आया, क्योंकि जिंदगी--भर बड़े--बड़े गुणी लोग आए थे, योग्य लोग आए थे, साधक आए थे, तपस्वी आए थे, वर्षों ध्यान किया था ऐसे लोग आए थे, चरित्रवान थे, शीलवान थे और इंकार कर दिए गए थे। क्योंकि वह बूढ़ा पात्रता की ऐसी शर्तें बताता था कि कोई भी पूरी नहीं कर पाता था।
गया गाँव में, डुंडी पीट दी की अब बूढ़ा गुरु किसी को भी शिष्य बनाने को तैयार है, जिसको भी आना हो! लोगों को यह भरोसा नहीं हुआ इस बात पर। बड़े--बड़े लौट आए थे खाली हाथ। मगर फिर कुछ लोग चल पड़े। उन्होंने कहा--चलो देखें, हर्ज क्या है, दर्शन ही हो जाएँगे! कोई भी चल पड़ा। एक आदमी बेकार था, नौकरी नहीं लगी थी, उसने सोचा--चलो, बैठे--बैठे यहीं क्या कर रहे हैं, चल पड़ो। एक की पत्नी मर गयी थी, वह वैसे ही उदास था, उसने कहा--चलो, मन ही बहल जाएगा। बाजार की छुट्टी थी आज, कुछ लोग खाली थे, उन्होंने कहा--हम भी चलते हैं। एक

छोटा बच्चा भी साथ हो लिया। ऐसे कोई भी--एक तरह की भीड़--कोई पच्चीस एक आदमी पहुँच गए। भरोसा उनको किसी को भी नहीं था कि वह गुरु स्वीकार करेगा।
गुरु ने एक--एक को बुलाया, पूछा कि क्यों दीक्षा लेना चाहते हो? उनके उत्तर बड़े अजीब थे। एक ने कहा कि मेरी पत्नी मर गयी और मैं खाली बैठा था--सच तो यह है कि दीक्षा इत्यादि से मुझे कुछ लेना--देना नहीं है--मगर कोई भी व्यस्तता चाहिए। घाव गहरा है, किसी भी काम में उलझ जाऊँ। तभी यह आदमी डुंडी पीट रहा था कि गुरु शिष्य स्वीकर करने को राजी है, जिसको भी आना हो। तो मैंने सोचा--चलो, बैठे--ठाले यही क्या करते हैं? चलो, बैठे--ठाले यह भी क्या बुरा है? बैठे--ठाले अध्यात्म! चल पड़ा।
इसने पूछा--तू किसलिए आया है? उसने कहा कि मैं, नौकरी नहीं लगती। सोचा
कि व्यर्थ बैठे रहने से तो राम--भजन ही ठीक है। शायद राम--भजन से ही नौकरी लग जाए! ऐसे लोग आ गए थे। किसी ने कहा--दुकान बंद है आज और किसी ने कुछ कहा। जो सेवा--टहल करता था, वह तो खड़ा देख रहा था, कि यह इस तरह के लोगों को कैसे शिष्य स्वीकार किया जाएगा? लेकिन गुरु ने सबको स्वीकार कर लिया।
वह जो आदमी सेवा--टहल करता था, वह चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा--आप होश में हैं, आप क्या कर रहे हैं? बड़े--बड़े ज्ञानी, बड़े--बड़े ध्यानी लौटा दिए, और इस कचरे को! उस गुरु ने कहा, अब तू सच्ची बात समझ ले। तब मेरे पास देने को कुछ था ही नहीं। अपनी दीनता छिपाता था उनकी पात्रता की बात करके। उनकी पात्रता मैंने असंभव बना दी थी सिर्फ इसीलिए कि न होगा कोई पात्र, न मेरी दीनता पता चलेगी। मेरी सुराही खाली थी। इसलिए मैं कहता था--लाओ सोने के पात्र, हीरे--जवाहरात जड़े पात्र, तो ढालूँगा सुराही। मेरी सुराही खाली थी और यह दीनता मैं किसी को बताना नहीं चाहता था; इसलिए मैंने पात्रता का इतना शोरगुल मचा रखा था। न कोई पात्र होगा, न मेरी खाली सुराही का पता चलेगा। ढालने की नौबत ही न आएगी। आज मेरी सुराही भर गयी है, अब क्या पात्र और क्या अपात्र! मिट्टी का पात्र हो तो चलेगा। और नहीं जिनके पास कोई पात्र हो--कुल्हड़ से ही पीना हो, हाथ से ही पीना हो, तो भी चलेगा। हाथ भी जिनके न हों तो उनके मुँह में ही ढाल दूँगा, तो भी चलेगा। आज पिलाना है, आज मेरे पास है। खयाल रखना, सद्गुरु तुम्हारी पात्रता से नहीं देता है। सद्गुरु अपने भराव से देता है। उसके भीतर घटा है; करेगा क्या? मेघ सघन हुआ है, बरसेगा। दिया जला है, रोशनी बिखरेगी। कमल खिला है, सुगंध उठेगी। ऐसा ही सहज।
मैं तो जो भी करूँ, या जो भी हो, वह समग्रता से ही हो सकता है। तुम समझो, तुम न समझो; तुम पात्र हो, तुम अपात्र हो; इसका हिसाब तुम ही रखो। यह हिसाब मैं नहीं रखता हूँ।
मेरे पास लोग आ जाते हैं-- आध्यात्मिक किस्म के लोग--वे कहते हैं--आप
हर किसी को संन्यास दे देते हैं! पात्रता तो सोचिए! मैं कहता हूँ-- परमात्मा हर किसी को जीवन दे देता है और पात्रता नहीं सोचता, मैं बीच में पात्रता सोचनेवाला कौन? अगर जीवन दिया जा सकता है अपात्रों को, तो संन्यास क्यों नहीं? अगर अपात्रों को परमात्मा जिलाए रखता है रोज--चोरों को भी, बेईमानों को भी--श्वास देता है, प्राण देता है, आत्मा देता है, तो संन्यास क्यों नहीं? जब परमात्मा ही हर किसी को देने को राजी है, तो मैं क्यों शर्तें लगाऊँ? जिसको लेना हो ले ले, जिसको न लेना हो न ले। हालाँकि यह सच है--केवल वे ही ले पाएँगे जो पात्र होंगे और वे वंचित रह जाएँगे जो अपात्र होंगे। क्योंकि देने से ही तुम्हें थोड़े मिल जाता है।
ज़रा सोचो फिर उस कहानी को। वह बूढ़ा देने को राजी, उसकी सुराही भर गयी। लेकिन क्या तुम सोचते हो वे सब लोग जो दीक्षा लेने आए थे, ले पाएँगे? दीक्षा के कृत्य से भला गुजर जाएँ, दीक्षा घट नहीं पाएगी। क्योंकि जब वे गुरु के चरणों में सिर झुकाएँगे तब भी वह आदमी सोच रहा होगा कि नौकरी लगती है कि नहीं, देखें? कि मेरी पत्नी तो मर गयी, अब मैं यह क्या कर रहा हँ? अच्छा तो यही होता कि जाकर दूसरी पत्नी की तलाश करता। यह मैं कहाँ के चक्कर में पड़ रहा हूँ, दूसरा सोच रहा होगा। तीसरा सोच रहा होगा कि अब जाने का वक्त आ गया, अब यहाँ कब तक बैठा रहूँ, अब दुकान खुलने का समय है, अब मुझे वापिस होना चाहिए, कि पत्नी घर राह देखती होगी, कि भोजन बन गया होगा, कि अब

तो भूख भी लग गयी है; इस तरह की बातें सोच रहे होंगे वे लोग। और मधु ढाला जाएगा इस तरह की बातों में, पहुँचेगा कैसे? गुरु तो सभी को देता है, पात्र ले पाते हैं, अपात्र वंचित रह जाते हैं। वर्षा तो सभी पर होती है। प्यासे पी लेते हैं, जो प्यासे नहीं हैं, वे मुँह फेर कर खड़े हो जाते हैं।

दूसरा प्रश्न: इस सदी का मनुष्य अधार्मिक क्यों हो गया है?
किसने तुम्हें कहा? आदमी का अहंकार हमेशा इसी तरह सोचता रहा है कि पहले, पूर्वज, बाप--दादे बड़े धार्मिक थे; और अब सब अधर्म हो गया है। किन पूर्वजों की बात कर रहे हो! ज़रा शास्त्र तो उठाकर देखो, तुम ऐसा ही आदमी पाओगे, तुम हमेशा ऐसा ही आदमी पाओगे जैसा आदमी आज है। युधिष्ठिर को जुआ खेलते नहीं देखते? द्रोपदी को दाँव पर लगाया हुआ नहीं देखते? सीता चोरी जाती है, यह नहीं देखते? राम--रावण का युद्ध होता है, यह नहीं देखते? सब तरह की चालबाजियाँ, सब तरह की घातें, सब तरह की हिंसाएँ होती हैं, यह नहीं देखते? तुम सोचते हो आज का आदमी अधार्मिक है, पहले के आदमी धार्मिक थे? तो तुम्हारे पुराणों में कथाएँ किसकी हैं? और फिर बुद्ध--महावीर--कृष्ण और सारे तीर्थंकर, सारे पैगंबर और सारे अवतार लोगों को समझा क्या रहे थे? बुद्ध चालीस साल तक एक ही बात समझाते रहे--चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो, व्यभिचार मत करो; ये किसको समझा रहे थे? धार्मिक पुरुषों को? ये जिनको समझा रहे होंगे, वे लोग चोर होंगे, बेईमान होंगे, व्यभिचारी होंगे--नहीं तो बुद्ध पागल थे। अगर समझो कि सारे महापुरुष दुनिया के कहते हों कि भाई, पागलपन मत करो, तो एक बात जाहिर है कि वे पागलखाने में उपदेश दे रहे होंगे। किसको ये उपदेश दिए जा रहे थे? साफ जाहिर है, आदमी ऐसा ही था।
और अगर तुम मुझसे पूछो, तो मेरी अपनी दृष्टि कुछ और भी है। मेरी दृष्टि है कि आज का आदमी चाहे पुराने ढाँचे--ढर्रे में न बँधा हो, इसलिए अधार्मिक लगता हो, क्योंकि सत्यनारायण की कथा न करता हो, रविवार को चर्च न जाता हो, मंदिर के पुजारी के चरणों में न झुकता हो, रोज बाइबिल न पढ़ता हो, यह हो सकता है कि आज का आदमी यह काम न करता हो, लेकिन इससे कोई आदमी अधार्मिक नहीं हो जाता। चर्च जाने से अगर आदमी धार्मिक होता, तो चर्च न जाने से अधार्मिक हो जाता। हम चर्च जानेवालों को जानते हैं। वे धार्मिक नहीं हैं। और हम सत्यनारायण की कथा करवानेवालों को जानते हैं। उनका सत्य से कोई संबंध नहीं है और न नारायण से कोई संबंध है। हम यज्ञ--हवन करनेवाले लोगों को जानते हैं, उनके यज्ञ झूठे, उनके हवन झूठे। तीर्थयात्रा करनेवालों को हम जानते हैं, हज--यात्रा करनेवालों को हम जानते हैं--चारों तरफ तो ऐसे लोग भरे पड़े हैं, उनमें कौन--सा धर्म है? कौन--सी धर्म की गंध है? कौन--सा धर्म का प्रकाश उनके भीतर से प्रगट हो रहा है? कौन--सा दिया जला है? नहीं, ये बातें धार्मिक होने से इनका कोई संबंध नहीं है।
इसलिए जो नहीं मंदिर जाते हैं और नहीं तीर्थ जाते हैं, उनको अधार्मिक
मत मान लेना। लेकिन पंडित--पुजारी उनको अधार्मिक कहेंगे, क्योंकि इन लोगों के कारण उनके व्यवसाय को नुकसान पहुँच रहा है। उनके लिए धार्मिक का अर्थ यह है, जो उनके चक्कर में है-- वह धार्मिक। जो उनके शोषण को स्वीकार करता है, वह धार्मिक। जो उनके द्वारा पैदा की गयी दासता में बँधा रहता है, वह धार्मिक। जो उनसे मुक्त होना चाहता है, वह अधार्मिक।
और सच तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति सदा मुक्त होना चाहता है। मोक्ष उसकी आकांक्षा है। वह सब चीजों से मुक्त होना चाहता है वह कोई बंधन नहीं मानना चाहता। वह बंधनों के पार जाना चाहता है। यही तो धर्म की अभीप्सा है, यही तो मुमुक्षा है--मोक्ष की आकांक्षा कि मैं सब बंधनों से मुक्त हो जाऊँ। जो सारे बंधनों से मुक्त होने चला है, वह पंडित--पुरोहितों के बनाए गए क्षुद्र--से बंधनों को अंगीकार करेगा? जो सब तरह से मुक्त होना चाहता है, वह क्रियाकांडों से भी मुक्त होगा। और तुम जिसको धार्मिक कहते हो, वह सिर्फ क्रियाकांडी है, उसको तुम धार्मिक कहते हो। किसी ने चुटैया बढ़ा रखी है--कैसा धार्मिक आदमी जा रहा है! अब चुटैया से धर्म का क्या लेना--देना? इतना सस्ता धर्म! कोई जनेऊ पहने हैं और धार्मिक हो गए! जिन्होंने तिलक लगा

लिया है और धार्मिक हो गए! धार्मिक होने का संबंध इन बातों से नहीं हो सकता। धार्मिक होने का संबंध कुछ आंतरिक है। ध्यान जले, भीतर प्रीति उमगे, प्रार्थना का फूल खिले। और मैं तुमसे कहता हूँ, इस सदी का आदमी जितना ध्यान में और प्रार्थना में अंतर्यात्रा में उत्सुक है, कभी भी नहीं था।
और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूँ कि धर्म की परिभाषा हमारी इतनी ऊँची हो गयी है, इसलिए बहुत--से लोग अधार्मिक मालूम हो रहे हैं।
धर्म की परिभाषा ऊपर उठ गयी है। हमारा धर्म का मापदंड ऊपर उठ गया है।
हमारी धर्म की कसौटी उठ गयी है। इसीलिए आदमी अधार्मिक मालूम हो रहा है।
पुराने दिनों में धर्म की कसौटी बड़ी नीची थी। युधिष्ठिर को धर्मराज कहा।
आज तुम किसी जुआरी को धर्मराज कह सकोगे? और जुआरी ऐसा--वैसा नहीं, पत्नी को भी दाँव पर लगा दिया। युधिष्ठिर आज हों तो तिहार जेल में होंगे। पत्नी को दाँव पर लगाओगे, कोई मजाक है! दुनिया सभ्य हो गयी है। नियम--कानून हैं कुछ। फिर तिहार जेल किसके लिए है?
युधिष्ठिर को काई धर्मराज कहेगा? किस आधार पर कहेगा? इन पाँच भाइयों
ने अपनी पत्नी को बाँट लिया था। पत्नी कोई संपत्ति है जो पाँच भाई बाँट सकेंगे? फिर व्यभिचार क्या है? फिर पाप क्या है? स्त्री कोई वस्तु है कि बाँट लिया? स्त्री में आत्मा नहीं है? लेकिन पुराने धर्म की परिभाषा में स्त्री में आत्मा अंगीकार नहीं थी। स्त्री पदार्थ की तरह थी। स्त्री--धन कहते थे उसे। बाप जब बेटी का विवाह करता था तो कहता था--कन्यादान। दान! तुम कोई धन--पैसा दे रहे किसको? कन्यादान जैसा बेहूदा शब्द! स्त्री--धन जैसा बेहूदा शब्द! अपमानजनक। अधार्मिक।
चीन में ऐसा था कि कोई अपनी पत्नी को मार डाले, उस पर कोई मुकदमा नहीं
चल सकता था। ऐसे ही है जैसे कि कोई अपने कुत्ते को मार डाले। इसमें मुकदमा क्या चलना? या कोई अपनी गाय को मार डाले, या अपने घोड़े को मार डाले, इसमें मुकदमा क्या चलना? अपना घोड़ा, मारें कि रखें। चीन में कोई कानून नहीं था; कोई अपनी पत्नी को मार डाले, मार सकता था। पत्नी में आत्मा अंगीकार नहीं की गयी थी। ये धार्मिक लोग थे? किस तरह के धार्मिक लोग!
नहीं, धर्म की परिभाषा बड़ी ओछी थी, बड़ी संकीर्ण थी, बड़ी साधारण थी। धर्म की परिभाषा विकसित हुई है। आदमी विकसित हुआ है, आदमी प्रौढ़ हुआ है। और यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जैसे--जैसे समय बढ़ा है, आदमी की समझ भी बढ़ी है। आज युधिष्ठिर को कोई धर्मराज नहीं कह सकेगा। आज धर्मराज होने के लिए युधिष्ठिर से काफी ऊपर जाना पड़ेगा। इसलिए बहुत--से लोग अधार्मिक मालूम हो रहे हैं। क्योंकि मापदंड ऊपर हो गया है और लोग उतने ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं। मापदंड को नीचा कर लो, बहुत--से लोग धार्मिक मालूम पड़ने लगेंगे। धर्म का शोषण बहुत हुआ है। धर्म के नाम पर भी शोषण बहुत हुआ है। इससे भी लोग बेचैन हो गए हैं और परेशान हो गए हैं। आज की दुनिया में करीब--करीब जिनको तुम अधार्मिक कहते हो, वे धार्मिक लोग हैं अगर वे ईश्वर को भी इनकार करते हैं तो इसीलिए इनकार करते हैं कि ईश्वर के नाम से बहुत ज्यादा षडयंत्र, बहुत ज्यादा शोषण हो चुका है। अब यह नाम उपयोगी नहीं है। यह नाम विदा कर दिया जाना चाहिए।
इक जनम--जनम का रोगी अपना रोग दिखाने आया, दाता
जनम--जनम दुःख पाया
दीन धरम की ओर से तेरी खोट मिटाने आया, दाता
यह कैसा भेष बनाया
तेरी अंधी श्रद्धा ने क्या--क्या अंधेर मचाया, दाता तुझको ध्यान न आया
क्या इस कारण ही मैंने तुझको भगवान बनाया, दाता क्या माँगा क्या पाया
मैं तेरी अनदेखी सूरत अपने ध्यान में लाऊँ
परबत काटके पत्थर चाटके अपना जी बहलाऊँ
आप बनाऊँ तेरी मूरत आप ही फूल चढ़ाऊँ
मैंने अपनी भूल से जुग--जुग तेरा ढोंग रचाया, दाता अपना आप लुटाया

आज मैं तेरे ऊँचे शीशमहल को ढाने आया, दाता
बात चुकाने आया
आदमी थक गया है। तुम्हारी ईश्वर की धारणा से थक गया है। तुम्हारे पाप--पुण्य की कल्पना से थक गया है। तुम्हारे पुनर्जन्म--कर्म के सिद्धांतों से थक गया है। क्योंकि उनके सबके पीछे अधर्म चला है। आदमी गरीब है, पूछो--क्यों? पिछले जन्म में पाप किए होंगे। यह गरीबी को छिपाने का आधार बन गया, यह ओट बन गयी। अच्छे कर्म करो। और अच्छे कर्म यानी क्या? वही सत्यनारायण की कथा करवाओ, तीर्थयात्रा करो, तीर्थ पर दान करो, ब्राह्मण को भोजन कराओ, ब्राह्मण देवता के चरणों में झुको--अच्छे कर्म करो। अगले जनम में सब लाभ होगा।
न पिछले का कुछ पता है न अगले का कुछ पता है। अगले--पिछले के हिसाब पर
यह समझाया जा रहा है जो ऑंख के सामने है। आदमी गरीब है, तो कह रहे हैं कि उसके पिछले जन्मों का पाप। आदमी अमीर है, तो पिछले जन्मों का पुण्य। हालत बिल्कुल उल्टी है। पुण्यों से कहीं धन इकट्ठा हुआ है? पाप के बिना असंभव है धन इकट्ठा करना। क्योंकि धन इकट्ठा करने का अर्थ ही यह होता है कि किसी के पास से छिनेगा। किसी की जेब से जाएगा, तो तुम्हारी जेब में आएगा। कहीं से हटेगा तो तुम्हारे पास ढेर लगेगा। लेकिन लुटेरे और डाकू पुण्यात्मा समझे गए, क्योंकि उनके पास धन था। सीधे--सादे लोग पापी समझे गए, क्योंकि गरीब थे। आदमी थक गया इन बातों से। ये बातें झूठी थीं। और ये बातें धर्म की नहीं थीं, ए बातें पंडित--पुरोहितों का लंबा जाल था।
आज की दुनिया में जो लोग तुम्हें अधार्मिक मालूम पड़ते हैं, मेरी दृष्टि में वे ही धार्मिक हैं, क्योंकि वे इन सब चीजों को तोड़कर बाहर आ गए हैं। वे एक नया धर्म चाहते हैं, वे धर्म की नयी परिभाषा चाहते हैं, एक नया आकाश चाहते हैं। क्योंकि नया आकाश नहीं मिल रहा है, वे अपने को अधार्मिक घोषित करने को मजबूर हैं। मैं जो प्रयास यहाँ कर रहा हूँ, वह प्रयास यही है कि जो आज अधार्मिक होने को मजबूर है उसके लिए धार्मिक होने का नया आकाश मिल सके। नया द्वार मिल सके। उसके लिए नया मंदिर निर्मित हो सके। क्रियाकांड का नहीं अतीत के ऊपर निर्भर नहीं, नवोन्मेष हो धर्म का। एक नयी भाषा हो धर्म की। नया ढंग हो जो आज की भाषा बोले, इस सदी की समझ में आ सके। अब पुरानी बात चलेगी नहीं।

एक आवाज--खुदा देख रहा है सब कुछ
अपने खालिक की परिस्तिश के लिए झुक जाओ
आओ प्यासो तुम्हें दरिया से मिलेगी शबनम
उसके इल्ताफ से महरूम न हो रुक जाओ

खनखनाती हुई जेबों के रसीले नग्में
झूमकर जब भी समाअत पै बिखर जाते हैं प्यास और भूख से लिथड़े हुए मरियल चहरे सुर्खिए--जरकी तमाजत से निखर जाते हैं

जिंदगी चीखती है--तुम मुझे रुसवा न करो पेट कहता है कि ईधन तो बहरतौर मिले रूह कहती है कि इंसान की तौहीन है यह जिस्म कहता है, नहीं और मिले और मिले

जिंदगी पेट के शफ्फाक तकाजे लेकर
हाथ फैलाए कतारों में खड़ी रहती है
कोई नग्मा, कोई खुश्बू कोई जरकार चमक
इसी उम्मीद पै राहों में गड़ी रहती है

एक आवाज--मुकद्दर की यही है तक्सीम सुबहे--नौ तुझको मिले, मुझको सियह रात मिले

गर खुदा है तो उसे यह न गवारा होगा
एक सोने में तुले एक को खैरात मिले

आज का आदमी यह सवाल उठा रहा है।

एक आवाज--मुकद्दर की यही है तक्सीम
अब तक यही समझाया गया है कि यह भाग्य का बँटवारा है कि एक होगा गरीब,
एक होगा अमीर। यह भाग्य का बँटवारा है।

एक आवाज--मुकद्दर की यही है तक्सीम
सुबहे--नौ तुझको मिले......
एक को सुबह की प्रभात मिले और दूसरे को अंधेरी रात मिले......

सुबहे--नौ तुझको मिले, मुझको सियह रात मिले
अगर खुदा है तो उसे यह न गवारा होगा
अब आदमी पूछ रहा है यह कि या तो यह पुराना ईश्वर ही झूठा था और था ही नहीं--कोई ईश्वर नहीं है--या नया ईश्वर तलाशो। नया ईश्वर गढ़ो।

गर खुदा है तो उसे यह न गवारा होगा
एक सोने में तुले एक को खैरात मिले
एक भीख माँगे और एक सोने में तुले; यह ईश्वर को गवारा नहीं हो सकता, यह भाग्य का बँटवारा नहीं हो सकता। कहीं आदमी की चालबाजी है। और अब तक दो तरह के लोगों ने मिलकर आदमी को सताया है। एक है राजनीतिज्ञ और एक है पुरोहित। और उन दोनों का सदा साथ रहा है। उन दोनों ने एक--दूसरे को सहारा दिया। उन दोनों ने मिलकर आदमी को चूसा। आदमी थक गया है। भले आदमियों ने, समझदार आदमियों ने धर्म की तरफ पीठ फेर ली है। मगर इसके कारण मैं उनको अधार्मिक नहीं कहूँगा। मैं तो कहूँगा--वे ही सच्चे धार्मिक हैं, भविष्य उनका है। हम नया ईश्वर तरासेंगे, हम नया ईश्वर गढ़ेंगे। हम नए काबा बनाएँगे--अगर पुराने काबा पड़ गए झूठे तो पड़ जाने दो। हम नए अर्थ देंगे धर्म को, नयी भावभंगिमाएँ देंगे, नए रंग देंगे--हम फिर से प्राण फूँकेंगे धर्म में।
अगर लोग अधार्मिक हैं तो इसीलिए कि अब लाश की पूजा नहीं करना चाहते। तुम्हारे धर्म का मूल्य नहीं रह गया है, गंदगी रह गयी है धर्म के नाम पर और लाश पड़ी है। जाओ और देखो तुम्हारे तीर्थस्थानों में, सिवाय धर्म की लाश के और कुछ भी नहीं है। जिनके पास भी थोड़ी समझ है, वे लाश की पूजा नहीं करेंगे। जिंदगी का सबूत दो--धर्म जिंदगी का सबूत दे।
मैंने सुना है, हबीबुल्ला नामक एक सरदार एक बार तुर्की के राजा कादिर हसन के पास अपने घोड़े को बेचने के लिए गया। राजा कादिर ने पूछा--इसकी क्या कीमत है? सरदार ने जवाब दिया--सिर्फ पाँच हजार रुपए, श्रीमान! राजा ने कहा--मित्र, इसकी कीमत पाँच सौ रुपह से अधिक नहीं है। परंतु सरदार ने पाँच हजार रुपए से कम में घोड़ा बेचने के लिए स्वीकृति न दी। राजा को घोड़ा अच्छा लगा। और इसीलिए उसने पाँच हजार रुपए देकर घोड़ा खरीद भी लिया और साथ ही यह भी कहा कि दोस्त, तुम मुझे ठग रहे हो। सरदार कुछ नहीं बोला और चुपचाप रुपए अपनी जेब में रख लिए और इसके बाद वह पलटकर गजब की तेजी से उसी घोड़े पर चढ़ा और तीर की तरह राजमहल से बाहर निकल गया। राजा कादिर ने अपने बीस घुड़सवारों को सरदार हबीबुल्ला को पकड़ने के लिए भेजा। दिन--भर पीछा करने के बाद भी वह सरदार पकड़ा न जा सका।
दूसरे दिन वही सरदार राजा कादिर हसन के दरबार में हाजिर हुआ। उसने पाँच हजार रुपए राजा के सामने रख दिए और कहा कि आपको रुपए रखने हों रुपए रख लें, घोड़ा रखना हो घोड़ा रख लें।
सबूत दे दिया उसने घोड़े की ताकत का। और क्या सबूत चाहिए, तुम्हारे बीस घुड़सवार दिन--भर पीछा करके भी धूल ही खाते रहे, घोड़े के पास भी न पहुँच सके। और क्या सबूत चाहिए? राजा ने सिर झुका लिया। पाँच हजार रुपए घोड़े के दाम दिए और पाँच हजार पुरस्कार भी।

प्रमाण दो। अगर लोग अधार्मिक हैं तो सिर्फ इसीलिए अधार्मिक हैं कि तुम्हारे धर्म से प्राण निकल गए हैं, प्रमाण निकल गए हैं। तुम्हारा धर्म निस्तेज पड़ा है। तुम्हारा धर्म केवल बुद्धुओं को राजी कर पा रहा है। बुद्धिमानों को राजी नहीं कर पा रहा है। और खयाल रखना, जब भी धर्म सिर्फ बुद्धुओं को राजी कर पाता है, तो दो कौड़ी का हो जाता है। जब धर्म बुद्धिमानों को राजी करता है, तभी उसमें कुछ मूल्य होता है।
ज़रा लौटकर देखो, बुद्ध के पास जो लोग इकट्ठे हो गए थे, वे बुद्धू नहीं थे, वे उस सदी के सबसे श्रेष्ठतम लोग थे। बुद्धू तो अभी भी अपना वैदिक हवन-- यज्ञ--याग कर रहे थे। बुद्ध के पास जो लोग इकट्ठे हो गए थे, वे बुद्धिमान थे, विचारशील लोग थे--तेजस्वी, प्रतिभाशाली। जब भी कोई नया धर्म जन्मता है, तब तेजस्वी लोग उसके करीब आते हैं--तेजस्वी ही आ सकते हैं, क्योंकि वे ही साहस कर सकते हैं। और हिम्मत और जुर्रत और जोखम उठा सकते हैं। और तेजस्वी ही उसके पास आ सकते हैं, क्योंकि वे ही तलाश भी कर सकते हैं! सत्य की उनकी खोज होती है। जो तृतीय कोटि के हैं, वे तो पुरानी लकीर के फकीर होते हैं। फिर बुद्ध मर गए। फिर बुद्ध का धर्म भी धीरे--धीरे जड़ हो गया। फिर उसके आसपास भी बुद्धुओं की जमात इकट्ठी हो गयी। फिर शंकराचार्य ने एक आवाज दी। और शंकराचार्य के आसपास फिर समझदार लोगों की जमान इकट्ठी हो गई। फिर समझदार लोग, जागरूक हुए। फिर एक नयी परिभाषा आकाश से उतरी। फिर शंकर में एक नया आविर्भाव हुआ, धर्म की नयी प्रतिभा जगी। अब शंकर को गए भी हजार साल बीत गए। अब फिर बुद्धुओं की जमात शंकर के आसपास इकट्ठी है। पुरी के शंकराचार्य जैसे लोग अब शंकराचार्य हैं। जिनमें तुम लाख खोजो, बुद्धि न पा सकोगे। जिनमें प्रतिभा का कोई निखार नहीं पा सकोगे। जिनमें नियमबद्धता है और जड़ता है। जो लकीर के फकीर हैं। और जो लकीर से इंच--भर यहाँ--वहाँ नहीं हो सकते।
फिर नए धर्म की जरूरत है। सदा ही नए धर्म की जरूरत रहेगी। क्योंकि यह
एक ऐतिहासिक पहलू है: जब भी नया धर्म पैदा होता है--नए धर्म का मतलब जब भी धर्म नया वेश लेता है, नयी सदी का वेश लेता है, नयी भाषा का परिधान पहनता है और उतरता है--तो बुद्धिमान लोग उसके आसपास इकट्ठे होते हैं। बुद्धू उसका विरोध करते हैं। और जब नया धर्म धीरे--धीरे पुराना पड़ जाता है, लकीरें बन जाती हैं, तो बुद्धिमान उससे हट जाते हैं। फिर बुद्धू उसमें सम्मिलित हो जाते हैं। जब कोई धर्म मरने के करीब होता है तो बुद्धुओं के हाथ में होता है और जब कोई धर्म जन्मने के करीब होता है तो बुद्धों के हाथ में होता है। तुम्हें अगर दुनिया में आज अधर्म दिखायी पड़ रहा है, तो उसका एक ही कारण है--आज नए धर्म को संजीवन देनेवाले लोगों की कमी है। और पुराने धर्म में लोग अब नहीं जाएँगे। जाना भी नहीं चाहिए। पीछे लौटकर कोई जीवन की यात्रा होती भी नहीं है। यात्रा सदा आगे की तरफ है। यात्रा सदा भविष्य की ओर है।
उतारो नए वेद। गाओ नए उपनिषद। फिर उठने दो भगवद्गीता को। तो लोग धार्मिक होंगे। अब तुम कहो कि हमारी पुरानी भगवद्गीता, इसी को मानकर चलो; अब यह संभव नहीं है। अतीत को आदमी मानकर चलें भी क्यों? समय प्रवाहमान है। लेकिन पंडित--पुरोहित को तो रस अतीत में है, क्योंकि उसका न्यस्त स्वार्थ तो अतीत से है। भविष्य से उसको क्या लेना--देना?
अब यह खयाल में ले लेना, धर्म तो भविष्य से ही जीवित होता है। और पंडित--पुरोहित जीता है अतीत से, इसलिए पंडित--पुरोहित और धर्म का कभी कोई संबंध नहीं होता। मेरे देखे, पंडित--पुरोहित इस दुनिया में सबसे ज्यादा अधार्मिक लोग हैं। उनको एक ही काम है--उनकी दुकान चलती रहे। वे हर मौके से अपनी दुकान को ही उठा लेते हैं। कोई भी बहाना मिल जाए। अब दुनिया में अशांति है, वे कहेंगे--यज्ञ करो; शतचंडी यज्ञ। विश्वशांति के लिए! विश्वशांति से तुम्हारे यज्ञ का क्या लेना--देना? और कितने यज्ञ तुम कर चुके हो, विश्वशांति होती नहीं-- विश्वशांति तो छोड़ो, तुम एकाध मुहल्ले में तो शांति करवा के दिखा दो! मुहल्ले को छोड़ो, वे जो पाँच सौ ब्राह्मण एक करोड़ रुपए को फूँकने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं, उनमें ही भारी अशांति होती है, और झगड़ा मचा रहता है कि कौन कितना खींच ले। तुम जरा यज्ञ जब पूरा

हो जाता है, तब ज़रा जाकर देखना--वहाँ कैसी खींचातान मचती है। किसको कितना मिल गया, कौन ने ज्यादा पा लिया, किसको कम मिला--सब उपद्रव वही--का--वही, तुम विश्वशांति करने चले थे! कोई भी बहाना खोज लेते हो। आदमी अपने ही व्यवसाय में लगा रहता है।
मैंने सुना है, अपातकाल से पहले तथा बाद की स्थिति पर लेखकों को एक-- दूसरे पर आक्षेप करते देखकर एक श्रोता ने कहा-- आप जब अधिक गर्मी में आएँ, हमारी कंपनी के जूते चलाएँ।
वह अपना जूता बेचने में लगे हैं! उनको इसकी कोई फिकर नहीं कि यहाँ क्या हो रहा है। आप जब अधिक गर्मी में आएँ, हमारी कंपनी के जूते चलाएँ। वह बेचारा जूता कंपनी का एजेंट होगा। वहाँ बैठा होगा, उसने देखा कि अब अवसर आ रहा है करीब, अब जूते चलेंगे, इस मौके को चूकना नहीं चाहिए।
तुम्हारे पंडित--पुरोहित हर मौके पर एक ही काम कर रहे हैं--किसी तरह पुराने को घसीटकर ले आओ। तुम बीमार हो, वे कहते हैं--चलो, यह मंत्र, यह पाठ, यह पूजा तुम्हें नौकरी नहीं मिलती, यह मंत्र, यह पाठ, यह पूजा। परिवार में प्रेम नहीं है, यह मंत्र, यह पाठ, यह पूजा। तुम लाओ कोई भी बीमारी, उनके पास उत्तर तैयार है। और मजा यह है कि उनके उत्तर से कुछ हल नहीं हुआ--कभी हल नहीं हुआ। न किसी को नौकरी मिली है, न किसी के घर में शांति हुई है, लेकिन जब तुम्हारे घर में शांति एक मंत्र से नहीं होती, तो तुम ऐसे मूढ़ हो कि तुम सोचते हो कि इस पंडित को ठीक मंत्र नहीं आता, किसी दूसरे पंडित के पास जाएँ। चले तुम दूसरे बाबा की तलाश में! वहाँ नहीं मिलेगा तो तीसरे बाबा की तलाश। खोजते रहते हो और ऐसे ही जिंदगी गँवा देते हो।
धर्म तुम्हारी जिंदगी की छोटी--मोटी समस्याओं का उत्तर नहीं है, धर्म
तो तुम्हारे जीवन की समस्या का उत्तर है। इसे तुम ठीक से समझ लो। न तुम्हारी बीमारी का उत्तर है धर्म में, न तुम्हारे व्यवसाय की सफलता का उत्तर है धर्म में, न अदालत में जीतने की कोई व्यवस्था है धर्म में। अगर अदालत में जीतना हो तो बेहतर है अधार्मिक लोगों की सलाह लो, क्योंकि अदालतों में उनकी चलती है। और अगर व्यवसाय में सफल होना है तो धर्म इत्यादि की बात भूल जाओ, क्योंकि व्यवसाय अधर्म से चलता है। धर्म का संबंध ही इन सब बातों से नहीं है। धर्म तो उत्तर है पूरे जीवन का। यह क्षुद्र-- क्षुद्र सस्याओं का उत्तर वहाँ नहीं है। तुम्हारा पूरा जीवन ही जब तुम्हें एक समस्या की भाँति लगे, जब तुम्हें लगे कि मैं क्यों हूँ, किसलिए हूँ, क्या हूँ, तभी धर्म का उत्तर तुम्हारे काम आ सकता है। और वह उत्तर तुम्हें पंडित--पुरोहित से नहीं मिलेगा, सद्गुरु से मिलेगा।
सद्गुरु का अर्थ होता है, जो किसी शास्त्र की गवाही से नहीं बोल रहा है। जो अपनी बात की खुद ही गवाही है। जो खुद ही साक्षी है। जो कह रहा है-- मैंने देखा है। जो कहता है--मैंने जाना है। तुम आओ और मैं तुम्हारी ऑंखें भी खोलूँगा। तुम आओ मेरे पास और मेरे हृदय से झाँको; यह खिड़की तुम्हें परमात्मा का अनुभव कराएगी। लेकिन उस अनुभव से तुम यह मत सोचना कि अदालत का मुकदमा जीत जाओगे। जीत रहे होओगे तो हार जाओगे। बाजार में सफलता मिलेगी, यह मत सोचना। मिल रही होगी तो सब डाँवाँडोल हो जाएगी।
यह संसार चलता है झूठ से। परमात्मा अर्थात् सत्य।
सत्य का एक नया प्रतिमान जन्म रहा है, एक नया भाव जन्म रहा है। और जब
तक वह नया भाव विस्तीर्ण नहीं हो जाता तुम्हें ऐसा लगेगा कि लोग अधार्मिक हो गए हैं। लोग अधार्मिक नहीं हो गए हैं, सिर्फ पुराना धर्म मर गया है। मौरे नए धर्म की जरूरत गहरी प्यास की तरह अनुभव की जा रही है।

तीसरा प्रश्न: बहुत दिनों से बड़ी बेचैन और गुमसुम हो रही हूँ। पहले
की तरह खुलकर हँस भी नहीं सकती हूँ। तारीख पंद्रह और सोलह दोनों दिनों के दर्शन से अपूर्व आनंदित हुई। लेकिन चार रात से सो नहीं पाती और ऐसी हालत बहुत दिनों से है।

तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा
तेरे सामने मेरा हाल है

तेरी एक निगाह की बात है
मेरी जिंदगी का सवाल है
तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा......
वीणा, बेचैनी बढ़ेगी। और बढ़ेगी। क्योंकि जिसे तुमने अब तक चैन समझ रखा था, वह झूठा था। जिसको तुमने अब तक घर समझा था, सराय थी। जरा सोचो, एक आदमी सराय में ठहरा हो और उसे घर समझता हो, फिर एक दिन उसे याद आनी शुरू हो जाए कि यह सराय है, तो बेचैनी बढ़ेगी। कल तक सब ठीक चलता था, घर मानकर बैठे रहते थे, आज पता चला सराय है। फिर घर कहाँ है? अब घर को तलाशना होगा। या घर को बनाना होगा। सब निश्चिंत हो गया था, सराय को घर मान लिया था, कोई चिंता न रही, फिकर न रही, आश्वस्त हो गए थ, सब आश्वासन गया, सब सुरक्षा गयी। ऐसा ही हो रहा है। जो मेरे पास आए हैं, वे बेचैन होंगे। तुम्हारा चैन मैं तुमसे छीन लूँगा। तुम्हारा चैन झूठा। तुम्हारा चैन ही क्या है? कि सब ठीक चल रहा है। कुछ ठीक नहीं चल रहा है।
मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक था बहुत वर्षों तक। सुबह मैं घूमने निकलता था, दो--चार विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और भी थे जो घूमने निकलते थे। लेकिन धीरे--धीरे जिस रास्ते पर मैं घूमने जाता था, उस पर उन्होंने घूमने जाना बंद कर दिया। क्योंकि मैं उनसे पूछता--कहिए, कैसे हैं? वे कहते--सब ठीक। मैं उनसे पूछता कि कुछ भी ठीक नहीं है, मुझे बताइए--क्या ठीक? आपकी शकल तो कुछ और कह रही है कि कुछ भी ठीक नहीं है। यह शकल तो उदास है। वह तिलमिला जाते। सुबह--सुबह यह कौन सुनना चाहता है! और जब लोग कहते हैं सब ठीक है, तो उनका मतलब थोड़े ही होता है सब ठीक है, वे कह रहे हैं--बस, छोड़ो भी, जाने दो; सब ठीक है, आगे बात नहीं चलानी! आगे बात छेड़ना भी मत। मैं उनके साथ ही हो लेता कि यह तय ही हो जाए कि सब ठीक है कि नहीं है। वे मुझसे कन्नी काटने लगे। मैं जिस रास्ते पर घूमने जाता, उस पर उन्होंने जाना ही बंद कर दिया। मेरा रास्ता एकदम सन्नाटा हो गया, मैंने कहा--यह भी अच्छा हुआ! सुकरात से लोग नाराज थे यूनान में। नाराजगी का एक कारण यही था कि तुम कुछ भी कहो और सुकरात तुम्हें फिर पीछा नहीं छोड़ेगा। तुमने ऐसी औपचारिक बात कही और वह तुम्हारा पीछा पकड़ लेगा, बीच बाजार में हाथ पकड़कर रोक लेगा, वह कहेगा अब इसे सिद्ध करो।
तुम भी जानते हो, दुनिया जानती है कि यहाँ कुछ भी ठीक नहीं है, मगर मानकर चल रहे हैं। एक मनौती की दुनिया बना ली है।
वीणा, मनौती की दुनिया टूटती है तो बेचैनी होनी शुरू होती है। कल तक तेरा घर था, पति था, बच्चे थे, अब कुछ भी नहीं। बेचैनी न होगी तो क्या होगी? कल तक सब ठीक चल रहा था, एक सपना था, मैंने तुझे झकझोरा और जगा दिया, अब तू ऑंखें बंद करके कोशिश कर रही है कि सपना फिर जम जाए--कोई सपना दुबारा थोड़े ही जम सकता है, उखड़ गया सो उखड़ गया। तुमने कभी कोशिश की? आधे सपने में उठ आए, फिर ऑंख बंद कर ली अब पूरा तो देख लें कम--से--कम--फिर वह पूरा नहीं होता। वह गया तो गया। सपने को तोड़कर फिर पूरा नहीं किया जा सकता।
बेचैनी तो बढ़ेगी। यह अच्छा लक्षण है। कठिन लगेगा, घाव की तरह लगेगा, छाती में छुरी की तरह चुभेगा--और तू ठीक ही कहती है: तेरी एक निगाह की बात है, मेरी जिंदगी का सवाल है। मुझे भी पता है। उसी निगाह ने तो सब गड़बड़ की है। उसी निगाह ने तो बेचैनी पैदा कर दी। उसी निगाह की तो तू शिकार हो गयी। मगर यह शुभ हुआ है। जो आज बेचैनी है, वह कल असली चैन में ले जाएगी।
एक झूठा चैन है, एक असली चैन है। एक सराय को घर मानना है और फिर एक घर
को पा लेना है। यह झूठे चैन में जिंदगी ही व्यर्थ जाती है। यह तो छिन गयी बात। अब लौटने का कोई उपाय नहीं। जब एक दफे जान लिया कि यह सराय है, अब तुम लाख उपाय करो, खूब सजाओ दीवालों को, बंदनवार लटकाओ, व्यवस्था जमाओ, नया फर्नीचर लाओ, मगर एक बार पता चल गया कि यह सराय है, अब चैन नहीं होगा--चैन नहीं हो सकता। यह जिंदगी सराय है।
सूफी फकीर हुआ--इब्राहीम। सम्राट था, अपने महल में सोया था, रात देखा-- छप्पर पर कोई चल रहा है। उसने पूछा--कौन है, भाई? ऊपर छप्पर पर क्या कर रहा है? सम्राट वैसे ही घबड़ाया हुआ आदमी होता है। छप्पर पर कौन चढ़ आया? क्या कर रहा है? कोई दुश्मन तो नहीं आ गया? खपरे उठाकर अंदर तो नहीं कूद पड़ेगा? उस

ऊपर वाले आदमी ने कहा--तुम शांति से सोए रहो, मेरा ऊँट खो गया है, मैं उसको खोज रहा हूँ। इब्राहीम तो हैरान हो गया कि ऊँट खो गया है, छप्पर पर खोज रहे हो, राजमहल की! तुम्हारा ऊँट छप्पर पर कहाँ जाएगा? उठा। सिपाहियों को कहा कि पकड़ो इस आदमी को। या तो यह पागल है--और खतरनाक हो सकता है। लेकिन वह आदमी पकड़ा नहीं जा सका। वह निकल भागा।
दूसरे दिन इब्राहीम बड़ा उदास था। सिंहासन पर बैठा था, मगर उदास था। बार--बार उसे याद आने लगी--यह आदमी कौन था? रात छप्पर पर चढ़ा कैसे? पहरा इतना है! फिर निकल भी भागा। और उत्तर जो उसने दिया, ऊँट खोज रहा हूँ! इससे दो बातें हो लेतीं तो हल हो जाता। रात--भर सो भी नहीं सका, इसी में पड़ा रहा सोच में और तभी उसने देखा कि द्वारपाल से कोई आदमी हुज्जत कर रहा है।
एक आदमी दरवाजे पर खड़ा कह रहा था द्वारपाल से--मुझे रुकने दो, मुझे इस धर्मशाला में रुकने दो। मैं रुक कर रहूँगा। द्वारपाल कह रहा था--तुम पागल तो नहीं हो, होश में हो? यह धर्मशाला नहीं है, यह सम्राट का निवासस्थान है, यह सम्राट का खुद का निजी घर है। और वह आदमी कह रहा था--छोड़ो बकवास, मुझे पक्का पता है--यह धर्मशाला है, सराय है। सम्राट ने भीतर से आवाज सुनी, यह आवाज पहचानी मालूम हुई, तत्क्षण उसे खयाल आया यह वही आवाज है जो रात छप्पर पर कह रहा था आदमी। वही कड़क आवाज में, वही विशिष्टता। उसने कहा--इस आदमी को भीतर लाओ, भगाओ मत। वह आदमी भीतर लाया गया--एक मस्त फकीर था।
उस फकीर से सम्राट ने कहा--यह हुज्जत करनी शोभा देती है? तुम जानते हो भलीभाँति यह सम्राट का महल है। मुझे देखते हो? यह मेरा सिंहासन देखते हो? यह मेरा दरबार देखते हो? यह धर्मशाला नहीं है। और उस फकीर ने कहा--मैं फिर कहता हूँ कि यह धर्मशाला है। और मैं इसमें रुकूँगा। उसने इतने बल से कहा कि सम्राट भी कँप गया भीतर। उससे पूछा--तुम किस प्रमाण से कहते हो कि धर्मशाला है? उस फकीर ने कहा--मैं पहले भी आया हूँ तब यहाँ एक दूसरा आदमी बैठा था सिंहासन पर। और वह भी यही कहता था यह मेरा घर है। अब वह आदमी कहाँ है? सम्राट ने कहा--अब मैं समझा, वह मेरे पिता थे, वह स्वर्गीय हो गए। और उस फकीर ने कहा--उसके पहले भी मैं यहाँ आया था, तब एक तीसरा आदमी बैठा था, एक बुङ्ढा यहाँ था, वह भी यही कह रहा था कि मेरा घर है, वह कहाँ है? सम्राट ने कहा--तुम फिजूल की बकवास में पड़े हो, वे मेरे दादा थे। उस फकीर ने कहा--जब इतने लोग यहाँ रहते हैं और अपना घर बताते हैं और चले जाते हैं, कोई भी रह नहीं पाता, यह क्या खाक घर है! तुम अगली बार मुझे मिलोगे? पक्का वायदा करते हो कि जब मैं दुबारा आऊँगा, तुम यहाँ रहोगे?हाथ--पैर कँप गए होंगे, पसीना आ गया होगा, झुरझुरी फैल गयी होगी इब्राहीम के हृदय में। बात तो सच थी। अगले दिन का भरोसा नहीं है। और इतने लोग इस महल में रह चुके और सभी ने इसको घर समझा और सभी जा चुके--घर होता तो रहते, सराय ही है। कोई दो दिन ठहरता, कोई दो साल ठहरता है, कोई ज्यादा ठहर जाता है, मगर है तो सराय। इब्राहीम उतरकर नीचे खड़ा हो गया, उस फकीर के चरणों में गिर पड़ा और कहा कि तुम रुको, यह सराय ही है, मैं चला। उसी क्षण इब्राहीम ने महल छोड़ दिया।
ऐसा ही कुछ हो रहा है, वीणा! बेचैनी तो होगी। तेरे घर को मैंने सराय बता दिया। चलते वक्त सम्राट ने इतना ही पूछा था--एक बात और बता दें, वह रात का सवाल, नहीं तो मैं जिंदगी--भर उसी में उलझा रहूँगा। यह तो ठीक हो गया, यह सिद्ध हो गया, यह सराय ही है, तू मजे से ठहर। वह रात जो तू ऊँट खोजते निकला था मेरे छप्पर पर, वह क्या मामला था? उस फकीर ने कहा--वह ऐसा ही मामला था, वह तुझे सजग करने की चेष्टा थी, कि जैसे महलों के छप्परों पर ऊँट नहीं खोते, ऐसे ही संसार में आनंद नहीं खोया है। और जैसे ऊँटों को पाने के लिए छप्परों पर जाना मूढ़ता है, पागलपन है, वैसे ही आनंद को खोजने अपने से बाहर जाना मूढ़ता है, पागलपन है। सोने के सिंहासनों पर बैठ जाने से आनंद नहीं मिलता। आनंद वहाँ खोया नहीं है। आनंद कहीं और खोया है! जैसे ऊँट छप्पर पर नहीं खोते, जैसे यह असंभव है, ऐसे ही आनंद भी सोने के सिंहासनों पर बैठकर मिल नहीं जाता। यह भी उतना ही असंभव है। यही कहने को मैंने तुझसे रात का उपाय किया था। तू उस समय नहीं चौंका, तो मुझे फिर आना पड़ा। अब यह सराय की बात लेकर आना पड़ा।

तो वीणा, तुझे दिखायी पड़ना शुरू हो गया है कि सराय सराय है। इसलिए बेचैनी है। "बहुत दिनों से बड़ी बेचैन और गुमसुम हो रही हूँ'। और गुमसुम भी हो ही जाएगी। जब घर सराय हो जाए, अपने अपने न मालूम पड़ें, पराए पराए न मालूम पड़ें, गुमसुम न होओगे तो करोगे क्या? एकदम सन्नाटा छा जाएगा। पुराना सब अस्त--व्यस्त हो गया। अब पुरानी कोई बात सार्थक नहीं मालूम होती, संगत नहीं मालूम होती। एक चुप्पी आ जाएगी। "पहले की तरह खुलकर हँस भी नहीं सकती हूँ'। वह हँसी सब झूठी थी। अब कैसे हँसोगी? वह हँसी झूठी थी, वह हँसी तो सिर्फ ऑंसुओं को छिपाने का उपाय थी।
फेड्रिक नीत्शे ने कहा है......किसी मित्र ने उससे पूछा कि तुम हमेशा हँसते हो, बात क्या है? तुम इतने प्रसन्न क्यों हो? उसने कहा--मत पूछो। यह बात पूछो मत। असल में मैं प्रसन्न आदमी नहीं हूँ--वह था भी नहीं प्रसन्न आदमी--उसने कहा मैं बहुत दुःखी आदमी हूँ, लेकिन मैं हँसता रहता हूँ। अगर मैं न हँसूँ, तो मुझे डर है कि मैं रोने लगूँगा। हँसकर रोने को छिपा लेता हूँ।
तुम्हारी हँसी में तुम्हारे ऑंसुओं की खनक होती है, भनक होती है। मैंने तुम्हें हँसते देखा है, मैंने वीणा को हँसते देखा है, वह हँसी झूठी थी। वह हँसी ऊपर--ऊपर थी। एक छिपाव था उसमें। उसमें इतना ही कहना था--अब रोने से क्या सार है? फायदा क्या है; कौन सुनेगा? कौन समझेगा? नाहक रोकर और अपने को दुःखी क्यों करना है? उलझा लो अपने को, लगालो अपने को किसी काम में। लोग मनोरंजन के साधन खोजते रहते हैं। चलो सिनेमा हो आओ! दो घड़ी अपने को भूल जाएँगे। चलो उपन्यास पढ़ लो। कि चलो रेडियो, कि चलो संगीत, कि चलो क्लब, कहीं भी अपने को उलझा लो। कहीं चलो, चार लोग बैठेंगे, हँसेगे, गपशप करेंगे, थोड़ी चिंता कम हो जाएगी। वे सब हँसियाँ झूठी हैं।
अब तो असली रोना पैदा होगा। और असली रोने के बाद असली हँसी है। नकली हँसी गयी, ऊपर के आवरण गए, अब ऑंसू बहेंगे। और उन ऑंसुओं के बाद ऑंखें स्वच्छ हो जाएँगी--ऑंख ही नहीं, ऑंसू हृदय को भी स्वच्छ कर जाते हैं--फिर एक हँसी आएगी, बुद्धों की हँसी, एक आनंद का भाव, एक मुस्कान जो तुम्हारे रोएँ--रोएँ पर फैल जाएगी। जो तुम सोओ तो भी मौजूद रहेगी। जो जिंदगी में भी साथ होगी, मौत में भी साथ होगी। जो तुम्हारा स्वभाव होगी। इसके पहले कि वह हँसी आए, झूठी हँसी तो जाएगी।
असत्य को असत्य की भाँति जान लेना सत्य को जानने का एकमात्र उपाय है। असार को असार की भाँति पहचान लेना सार की पहचान की तरफ पहला कदम है।
"पहले की तरह खुलकर हँस भी नहीं सकती हूँ। तारीख पंद्रह और सोलह दोनों दिनों के दर्शन से अपूर्व आनंदित हुई हूँ। लेकिन चार रात से सो नहीं पाती और ऐसी हालत बहुत दिनों से है'। मेरे पास आओगी, मेरे पास बैठोगी, तो कुछ-- कुछ तुम्हें तुम्हारे भविष्य की झलक मिलेगी, वही "दर्शन' है। कुछ--कुछ जैसा तुम्हारे भीतर होना चाहिए, उसका थोड़ा आभास होगा--जैसे दूर से आती हुई संगीत की आवाज सुनायी पड़ी हो। जितने मेरे करीब आओगे, उतना तुम्हारा भविष्य तुम्हारे करीब आ रहा है। मेरे भीतर जो हो गया है, वह तुम्हारे भीतर होना है।
बुद्ध ने कहा है, अपने एक शिष्य को, कि तू चिंतित न हो, तू दुःखी मत हो,
तू परेशान मत हो, क्योंकि मैं भी तेरे ही जैसा चिंतित था, तेरे ही जैसा दुःखी था, तेरे ही जैसा परेशान था; एक दिन था मैं तेरे जैसा था, एक दिन होगा कि तू मेरे जैसा हो जाएगा। क्योंकि हम दोनों स्वभावतः एक--जैसे हैं। अब मैं आनंदित हूँ, अब मैं प्रसन्न हूँ, तू ज़रा मेरे करीब आ, गौर से मुझे देख, यह तेरा भविष्य है। तू मेरा अतीत है, मैं तेरा भविष्य हूँ। वीणा, यही मैं तुझसे कहता हूँ। तू मेरा अतीत है, मैं तेरा भविष्य हूँ। यही तो सारे गुरुओं ने अपने शिष्यों से कहा है। सत्संग का और अर्थ क्या होता है? इतना ही अर्थ होता है कि गुरु के दर्पण में अपने भविष्य की छाया को देख लेना। आनंद होगा, रसविभोर हो उठोगी।
और कहा कि "चार दिन से सो नहीं पाती' पुरानी नींद भी गयी, पुराने सपने
भी गए। नींद की भी गुणवत्ता बदलेगी--जल्दी ही बदलेगी--एक नए ढंग की नींद आनी शुरू होगी। एक ऐसी नींद जिसमें आदमी सोया भी होता है और जागा भी होता

है, एक ऐसी नींद जिसमें शरीर सोया होता है और प्राण जागे होते हैं, और भीतर चेतना का दिया जलता ही रहता है। पुरानी नींद तो गयी। और अब कोशिश भी मत करना उसको लौटाने की। लौटायी भी नहीं जा सकती। मैं उसे लौटने भी नहीं दूँगा। अड़चन होगी, कठिनाई होगी--नींद न आए रात--भर तो लगेगा कुछ खाली--खाली हो गया। घबड़ाना मत। जल्दी ही एक नयी नींद इसका स्थान लेगी। पुराने का स्थान खाली करने दो, नया मेहमान आता ही होगा। घर खाली हो जाए पुराने से तो नया आ जाए। नयी नींद आएगी अब। योगियों ने उसको श्वान--निद्रा कहा है। जैसे कुत्ता सोता है और जागा भी रहता है--ज़रा--सी खनक हो जाए और खड़ा हो जाता है। ज़रा--सी आवाज हो जाए और ऑंख खोल देता है।
कृष्ण ने कहा है--जब सब सोते हैं, तब भी योगी जागता है। "या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी'। क्या कहा है? इसका कोई मतलब यह थोड़े ही है कि योगी बैठा रहता है ऑंखें खोले अपना छप्पर देखता रहता है! ऑंख तो उसकी भी बंद होती है, देह तो उसकी भी सो जाती है, लेकिन कुछ है भीतर जो नहीं सोता। कुछ है भीतर जो जागा रहता है--चैतन्य जागा रहता है। अभी हालत ऐसी है कि तुम राह पर चलते हो, बाजार में काम करते हो, दुकान पर बैठते हो, सब करते हो और सोए हुए हो। अभी तुम जागे हो नाममात्र को। वस्तुतः सोए हो। योगी सोता है नाममात्र को, वस्तुतः जागा होता है। अभी तुम्हारा दिन भी रात है, तब तुम्हारी रात भी दिन हो जाती है। जल्दी ही वैसी घड़ी भी आएगी। और जो प्रतीक्षा करते हैं, जो धीरज से प्रतीक्षा करते हैं, उनकी झोली निश्चित अपूर्व अनुभवों से भर दी जाती है।
तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा
तेरे सामने मेरा हाल है
तेरी एक निगाह की बात है
मेरी जिंदगी का सवाल है
तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा......
मुझे पता है। मुझे खयाल में है। जो मुझसे जुड़े हैं, उनमें से एक--एक का मुझे पता है--कौन कहाँ है? कौन के भीतर क्या हो रहा है, कैसा हो रहा है? जिस दिन मैंने तुम्हें संन्यास दिया, उस दिन से यह मेरा उत्तरदायित्व हो गया कि जीवन में कि मृत्यु में, सब तरफ, सब जगह तुम्हें साथ दूँ। तुम्हारी तैयारी--भर होनी चाहिए साथ लेने की। मेरे हाथ, कितने ही दूर तुम होओ, तुम्हारे पास पहुँच जाएँगे।

आखिरी प्रश्न: परमात्मा से वियोग क्यों?
मनुष्य की तरफ से ही है। परमात्मा की तरफ से ज़रा भी नहीं। विस्मरण है, वियोग नहीं। वियोग हो जाए तो फिर तो योग हो न सकेगा--फिर कैसे होगा योग? फिर कहाँ खोजेंगे उसे? फिर उसका पता--ठिकाना भी तो मालूम नहीं। उसका नाम-- धाम भी तो मालूम नहीं। किस दिशा पर जाओगे? फिर तो सब तरफ अंधेरा होगा; किस दीए को लेकर खोजोगे? किसको खोजोगे? और मिल भी जाएगा रास्ते में तो कैसे पहचानोगे? क्या प्रत्यभिज्ञा होगी? नहीं, वियोग नहीं हुआ है। वियोग हो गया तो फिर योग हो ही नहीं सकता।
योग हो सकता है इसीलिए कि वियोग हुआ नहीं, सिर्फ विस्मरण हुआ है। परमात्मा से तुम अभी भी जुड़े हो, इस क्षण भी जुड़े हो--उतने ही जितने पहले जुड़े थे, उतने ही जितने आगे जुड़े रहोगे। तुम परमात्मा में उतने ही हो, जितना मैं हूँ। तुम परमात्मा में उतने ही हो, जितने कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं, बुद्ध हैं। परमात्मा में कम और ज्यादा होने का उपाय नहीं है। परमात्मा में होकर ही हमारा जीवन है। हमारी श्वास--श्वास उसकी ही है। और हमारी धड़कन--धड़कन उसकी है। लेकिन हम भूल गए हैं। किसी को याद आ गयी है, किसी को याद भूल गयी है।
मछली सागर में है। जिस मछली को याद आ गयी कि यही सागर है, वह बुद्ध हो गयी। और जिस मछली को याद नहीं आ रही कि यही सागर है और पूछती फिरती है कि सागर कहाँ है? और......ठीक ही पूछती है। क्योंकि सागर में ही पैदा हुई, सागर में ही बड़ी हुई तो सागर का पता कैसे चले? सोच--विचार करती है, ऑंख बंद कर लेती है, योगासन साधती है--सागर कहाँ है? गुरुजनों से पूछती है, दार्शनिक--

चिंतकों के पास जाती है--सागर कहाँ है? और उत्तर हजार मिलते हैं। मगर वे सब उत्तर व्यर्थ हैं। क्योंकि सागर यहीं है। सागर यही है। मछली सागर में है। कबीर ने कहा है न कि मुझे बड़ी हँसी आयी यह जानकर कि मछली सागर में प्यासी! "मोहे आवै बहुत, हाँसी, मछली सागर में प्यासी'। यही हमारी दशा है। तुम पूछते हो--परमात्मा से वियोग क्यों है? नहीं, है ही नहीं वियोग; विस्मरण है तुम बस भूल गए हो। और भूलने का कारण यही है कि परमात्मा चौबीस घंटे उपलब्ध है, अहर्निश उपलब्ध है, सतत् उपलबध है। जो सतत् उपलब्ध हो जाता है, वह हमें भूल जाता है। तुम्हें अपनी श्वास की याद आती है? सतत् उपलब्ध है। कोई अड़चन होती है तो याद आती है। सर्दी--जुकाम हो गया, तो याद आती है श्वास की। नहीं तो याद नहीं आती। तुमने खयाल किया, सिर में दर्द होता है तो सिर की याद आती है। नहीं तो सिर की कहीं याद आती है?
संस्कृत में शब्द है--वेदना। उसके दो अर्थ होते हैं--एक दुःख और एक ज्ञान। वेदना उसी सूत्र से आया है, जिससे वेद। उसका एक अर्थ होता है--ज्ञान और एक अर्थ होता है--दुःख। दुःख और ज्ञान एक ही शब्द के अर्थ? दुःख के कारण ही ज्ञान होता है। और परमात्मा ने तुम्हें कभी दुःख नहीं दिया, इसलिए उसका ज्ञान नहीं हो रहा है। सुख--ही--सुख दिया है। उसकी तरफ से सुख की ही धारा बहती रही है। उसने तुम्हें दुःख नहीं दिया, इसलिए उसका ज्ञान नहीं हो रहा है।
और जितने दुःख तुमने दिए हैं अपने को, वे तुमने ही दिए हैं। अपने ही दुःखों के कारण तुम उससे दूर मालूम पड़ रहे हो। अपने ही चक्कर तुमने खड़े कर लिए हैं। तुमने खूब शोरगुल मचा रखा है अपने चारों तरफ, तुमने खूब धुऑं उठा रखा है अपने चारों तरफ--विचार का, वासना का, क्रोध का, काम का--इतना धुऑं उठा रखा है कि दिखायी नहीं पड़ रहा है परमात्मा। और परमात्मा ही तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए है--बाहर भी वही, भीतर भी वही।
परमात्मा को खोजने मत निकल जाना। परमात्मा को खोजने निकले कि चूके। जागो, होश से भरो, यहीं पा लो, अभी पा लो। कल देखा नहीं रज्जब ने कहा--"तत छन परसन होत ही'। परस होते ही, एक क्षण में यह क्रांति घट जाती है। परमात्मा को पाने में समय की यात्रा नहीं करनी होती है। एक क्षण में यह क्रांति घट जाती है। तत्क्षण। इसी क्षण। न पड़ो विचार में, इसी क्षण न पड़ो ऊहापोह में, इसी क्षण बस मौजूद रह जाओ--शांत, स्थिर--यह पक्षियों की आवाजें हों, ये सूरज की किरणें, यह उपस्थिति, और तुम चुप, मौन, सन्नाटे में। फिर कबीर तुम पर नहीं हँसेगे। फिर कबीर देख लेंगे कि कम--से--कम इस मछली को तो सागर मिल गया।
और जिस दिन कबीर तुम पर न हँसे, उस दिन ही तुम हँसने के हकदार हो। जब तक कबीर तुम पर हँसते हैं, तब तक तुम सिर्फ रोने के हकदार हो, हँसने के नहीं हो।
परमात्मा से कोई वियोग न कभी हुआ है, न हो सकता है। परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है। जागो और अपने अधिकार को माँग लो। तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है परमात्मा। एक क्षण को भी न तुमने खोया है, न तुम खो सकते हो। चाहो तो भी नहीं खो सकते हो। पापी--से--पापी आदमी में परमात्मा उतना ही है जितना पुण्यात्मा में। उसकी नजर में कुछ भेद नहीं है। वियोग ज़रा भी नहीं है, इसीलिए योग हो सकता है।
इस भाव से भरो। मेरी ऑंख में झाँको। यही भाव तुम में उँडेलना चाहता हूँ। यही भाव तुममें भरना चाहता हूँ। मगर तुम इधर--उधर देखते हो, तुम ऑंखें बचाते हो; तुम कहते हो, हमें तो परमात्मा को खोजना है। मैं कहता हूँ--अभी है, यहीं है, मिला हुआ है। तुम कहते हो--यह कैसे हो सकता है? यह तो असंभव दिखता है। मैं तो खोजूँगा। बस उसी खोज से तुम वंचित रह जाते हो। वही खोज तुम्हें दूर--से--दूर भटकाए रहती है। खोजने वाले भटकते हैं, ठहर जानेवाले पा लेते हैं।
आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
ग्यारहवां प्रवचन

राम बिन सावन सह्यो न जाइ

रामबिन सावन सह्यो न जाइ।
काली घटा काल होइ आई, कामनि दगधै माइ।।
कनक-अवास-वास सब फीके, बिन पिय के परसंग।
महाबिपत बेहाल लाल बिन, लागै बिरह-भुअंग।।
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलैं, ते मारत तन तीर।।
सकल सिंगार भार ज्यूँ लागैं, मन भावै कछु नाहीं।
रज्जब रंग कौन सू कीजै, जे पीव नाहीं माहीं।।

भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार।।
बाछै ऊरध अरध सूं लागै, भूले मुगंध गँवार।
खाइ हलाहल जीयो चाहै, मरत न लागै बार।।
बैठे सिला समुद्र तिरन कूं, सो सब बूड़नहार।
नाम बिना नाहीं निसतारा, कबहूं न पहुंचै पार।।
सुख के काज धसे दीरघ दुख, बहे काल की धार।
जन रज्जब यूं जगत बिगूच्यो, इस माया की लार।।

ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
मुझको ईमान से अब कोई सरोकार नहीं
मैंने देखा है इन आंखों से मुरव्वत का मयाल मुझको अब मेहरो-मोहब्बत से कोई प्यार नहीं मैंने इंसान को चाहा भी तो क्या पाया है
अब मेरा कुफ्र खुदा का भी तलबगार नहीं
जा किसी और से ईमान का सौदा कर ले
मैं तेरी नेक दुआओं का खरीदार नहीं

ऐ गदागर! मुझे ईमान की बख्शिश के एवज
ए दुआ क्यों नहीं देता कि मैं जरदार बनूं बेच डालूं सरे-बाजार जमीरे-हस्ती
और एहसास की जिल्लत का अलमदार बनूं आदमीयत का गला काटके इज्जत पाउं
जुल्म के साये में राहत का तलबगार बनूं राजे-रोशन में यतीमों के घरौंदे लूटूं और बेवाओं की दौलत का परिस्तार बनूं

ऐ गदागर! मुझे हैरान निगाहों से न देख मेरा कुचला हुआ एहसास यही कहता है
देख इन शिंगरफी चेहरों के शफक-रंग खतूत जिनसे मजबूर घरानों का लहू बहता है
देख इन ऊंचे मकानात के तहखानों को
जिनकी हर सांस में जहराब घुला रहता है देख ईमान की गिरती हई दीवारों को
जिनकी तामीर में इंसान सितम सहता है

ऐ गदागर! मुझे ईमान से क्या है लेना
इससे मुफ्लिस की कबा तक भी नहीं सिल सकती ये जवां जिस्म, ये भरपूर निगाहें, ये सरूर-- फिक्रे-इंसान बजुज इनके नहीं खुल सकती

चार दिन ऐश से जीना है मुझे भी, लेकिन
हट के दौलत से कोई चीज नहीं मिल सकती
और दौलत वो शिकंजा है कि जिसमें फंस कर
हम तो क्या सिलवते-यजदां भी नहीं हिल सकती
ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
जमाना बदला है। जिस हवा में रज्जब ने गीत गाया था, वह हवा अब नहीं। तो शायद गीत तुम्हारी समझ में आए, न आए। अब तो ऐसे गीत समझ में आते हैं--"ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे।" हे भिक्षु, मुझे धर्म की बख्शीश मत दे। मुझे धर्म का प्रसाद मत दे। मुझे धर्म की नसीहत मत दे। मुझे धर्म का उपहार मत दे।
ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
मुझको ईमान से अब कोई सरोकार नहीं
आज धर्म से किसको क्या लेना-देना है?
मैंने देखा है इन आंखों से मुरव्वत का मयाल
मुझको अब मेहरो-मोहब्बत से कोई प्यार नहीं
लोगों ने प्यार को हारते देख लिया है। लोगों ने प्यार को पराजित होते देख लिया है। प्रेम की विजय की बात कल्पना हो गई। और जहां प्रेम कल्पना हो जाए, वहां प्रार्थना के जन्मने का सवाल कहां? प्रेम ही तो अपनी अंतिम उड़ान में प्रार्थना बनता है। प्रेम का ही सार-निचोड़ तो प्रार्थना है। झूठे क्रियाकांड रह गए हैं। उनके भीतर से प्राण निकल गए हैं। लोग प्रार्थनाएं अब भी कर रहे हैं, मगर प्रार्थना करनवाले हृदय कहां? लोग अब भी मंदिरों- मस्जिदों में जा रहे हैं। आदत हो गई है जाने की। रिवाज हो गया है जाने का। औपचारिकता है जाने की। सामाजिक व्यवहार है वहां जाना। जिंदगी के चलने में सुविधा मिलती है। उपयोगी है। लेकिन आदमी के हृदय से मंदिर मिट गया है। तो बाहर के मंदिर बहुत काम आ नहीं सकते। अब भी लोग राम और कृष्ण का नाम लेते हैं, मगर ओंठ, बस ओंठ तक ही यह बात होती है। हृदय तक इसकी पहुँच नहीं। अब कौन प्रभु के प्रेम में पागल होता है? अब तो प्रभु के प्रेम में जो पागल होता है, उसे लोग बस पागल ही मानते हैं। सिर्फ पागल ही मानते हैं।
ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
मुझको ईमान से अब कोई सरोकार नहीं
मैंने देखा है इन आंखों से मुरब्बत का मयाल
मुझको अब मेहरो-मोहब्बत से कोई प्यार नहीं
मैंने इंसान को चाहा भी तो क्या पाया है
अब मेरा कुफ्र खुदा का भी तलबगार नहीं
और जब आदमी को चाहकर कुछ न मिलता हो, तो परमात्मा को भी कोई क्यों चाहे? जब चाहने से आदमी को कुछ नहीं मिलता, तो परमात्मा को चाहने से भी क्या मिल जाएगा? परमात्मा को चाहने का रस तो तभी जगता है जब आदमी को चाहने से कुछ मिलता है। जब छोटे-छोटे प्रेम से उसकी किरणें मिलती हैं, तो फिर सूरज की आकांक्षा पैदा होती है।
तुमने अगर किसी एक आदमी को चाहा और उसकी चाहत तुम्हारे जीवन में रंग
भर गई और उसके प्रेम ने तुम्हारे जीवन को सुगंध दे दी, तो आज नहीं कल तुम परमात्मा के प्रेम में पड़ोगे। पड़ना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं बचने का। भागोगे कहां? जब क्षणभंगुर के प्रेम से ऐसा रस बहा, तो शाश्वत के प्रेम से कैसा रस न बहेगा? सीधा गणित है, साफ गणित है। बुद्धिहीन से बुद्धिहीन को भी समझ में आ जाएगा। जब एक फूल से इतनी सुगंध मिली, तो उस विराट के साथ संबंध जुड़ जाने से कैसा नृत्य नहीं होगा, कैसा उत्सव नहीं होगा? क्षणभंगुर ने भी नाच दे दिया था। क्षणभंगुर जो पानी के बबूले की तरह था, वह भी आँखों को नई रोशनी से भर गया था। सपने उठे थे आकाश के। तुम मिट्टी नहीं रह जाते जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, देह भूल ही जाती है। प्रेम के क्षणों में तुम आत्मा हो जाते हो। वही अनुभव परमात्मा के प्रेम की तरफ ले जाता है।
मैंने इंसान को चाहा भी तो क्या पाया है
अब मेरा कुफ्र खुदा का भी तलबगार नहीं

जा किसी और से ईमान का सौदा कर ले
मैं तेरी नेक दुआओं का खरीदार नहीं
आज की हवा ऐसी है। और मैं यह कहना चाहूंगा कि इस हवा में धार्मिकों का हाथ है। तथाकथित धार्मिकों के कारण ही यह हवा है। झूठे धर्म के कारण यह हवा है। थोथे धर्म के कारण यह हवा है। धर्म की लाशें पड़ी हैं, उनसे यह दुर्गंध उठ रही है। उनके कारण आदमी ईश्वर से विमुख हो रहा है। उनके कारण ईश्वर की तरफ मुंह करने की आकांक्षा भी नहीं जगती। देखो तुम्हारे पंडित-पुरोहितों-पुजारियों की तरफ, उन्हें देख कर तुम्हें कुछ ऐसा भाव उठता है कि नाचें और मग्न हो जाएं? उनके जीवन में भी तो नाच नहीं है। जन्म हो गए उनको घंटियां बजाते मंदिरों में, हृदय की वीणा अभी भी नहीं बजी। जन्म हो गए उन्हें फूल चढ़ाते मंदिरों में, पत्थरों के सामने झुकते-झुकते वे भी पत्थर हो गए हैं; उनकी प्रार्थनाएं नपुंसक, उनके क्रियाकांड थोथे, सब पाखंड है, सब धोखा है। आंखें हैं आदमी के पास, आदमी एकदम अंधा नहीं है। इतना दिखाई पड़ता है। जन्मों-जन्मों तक जो मंदिरों की पूजा और प्रार्थना से कुछ न पा सके हों, उनका परमात्मा झूठा ही होगा। कौन उनके परमात्मा की तरफ आतुर हो? कौन उनके परमात्मा को चाहे?
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं--जमीन आज नास्तिक है नास्तिकों के कारण नहीं, तथाकथित आस्तिकों के कारण। लोग ईश्वर के भी तलबगार नहीं हैं। देखते हैं ईश्वर के तलबगारों का झूठ, उस झूठ में अब कोई सम्मिलित नहीं होना चाहता।
इसलिए तुम्हें थोड़ी अड़चन होगी। ये गीत किसी और हवा में गाए गए थे। यह पौधा किसी और जमीन में उगा था। वह जमीन बदली है, लेकिन फिर भी अगर थोड़ी सहानुभूति से समझोगे, अगर थोड़े पंडित-पुरोहितों के जाल को छोड़ कर समझोगे, तो बात समझ में आ जाएगी। नहीं आए, ऐसा कुछ नहीं है। क्योंकि तुम्हारे भी गहन तल में, तुम्हारे हृदय की भी गहराइयों में, लाख उपाय करो परमात्मा की खोज छिपी पड़ी है। कोई आदमी बिना परमात्मा को पाए तृप्त होता नहीं। उसी को पाकर संतोष होता है। और कोई कितना ही उसकी तरफ पीठ कर ले, और कोई कितना ही नाराजगी में कह दे कि अब मैं तेरा तलबगार नहीं, नाराजगी एक बात है, यह तलब मिट जानेवाली तलब नहीं। यह प्यास ऐसी कोई प्यास नहीं है कि तुमने कह दी और मिट गई। यह तो परमात्मा बरसेगा तुम्हारे कंठ में तो ही मिटेगी।
यह प्यास मनुष्य की संपदा है। इसी प्यास के कारण तो आदमी लाख धर्म के नाम से पाखंड चलाता रहे, तो भी धर्म में थोड़ी न बहुत उत्सुकता बनी रहती है। लाख धर्म के नाम से शोषण चलता रहे, मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे झूठे हो जाएं, तो भी आदमी कोई नई राह खोज लेता है। कोई नया मार्ग खोज लेता है। मंदिर-मस्जिदों को बचाकर निकल जाता है, लेकिन परमात्मा की तलाश जारी रहती है। प्यास कुछ ऐसी है, कि बिना परमात्मा को पाए मिट नहीं सकती।
इसलिए समझ तो सकोगे, स्वभावतः क्षमता भीतर समझने की है, मगर ये गीत और हवा में गाए गए थे, कोई और माहौल में गाए गए थे। ए किसी और तरह के लोगों ने गाए थे, किन्हीं और तरह के लोगों के सामने गाए थे। वे लोग धीरे-धीरे विदा हो गए हैं, वैसी मस्त मधुशालाएं अब नहीं रहीं, वैसे आनंद के सत्संग अब नहीं रहे।
सुनो! राम बिन सावन सह्यो न जाइ।
राम के बिना सावन सहा नहीं जाता। राम अर्थात परम प्यारा। नाम कुछ भी दो। अल्लाह कहो, राम कहो, रहीम कहो, जो भी नाम देना हो, वह परम प्यारा है। जिसके बिना सब फीका है, जिसके बिना हम हैं तो लेकिन नहीं जैसे हैं। जिसके बिना हम खाली-खाली हैं। जिसके बिना हमारा कोई मूल्य नहीं। जिसके बिना हम जीते जरूर हैं, मगर जीना नाममात्र का जीना है। सच कहो तो मरते ही हैं। जिसके बिना हम जीते नहीं। बस मौत ही करीब आती है और हाथ लगता क्या है? रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते जाते हैं। चल किस तरफ रहे हो? पहुँचोगे कहां? बस मौत में पहुँच जाते हो। यह भी कोई जिंदगी हुई?
जिंदगी की परिभाषा क्या है? जिंदगी की परिभाषा है कि जो महा जिंदगी में ले जाए। जीवन अगर सच्चा है, तो उसका अंतिम फल महा जीवन होगा। लेकिन इस जीवन का फल तो मृत्यु होती है, यह कैसा जीवन! यह जीवन होगा ही नहीं। कहीं

कुछ भूल हो गई। कहीं कुछ चूक हो गई। कुछ-का-कुछ समझ बैठे हैं। परमात्मा के साथ के बिना कोई जीवन नहीं है। उसके साथ है जीवन। उसके विरोध में है मृत्यु। उससे जो अलग है, वह मरेगा। जो उसके साथ है, कभी नहीं मरेगा।
जीसस का एक प्यारा वचन है। आओ, मेरे साथ हो जाओ, क्योंकि जो मेरे साथ हैं वे कभी नहीं मरेंगे। जो मेरे साथ हैं, उनकी कोई मृत्यु नहीं है। जीसस क्या कह रहे हैं? जीसस ये कह रहे हैं--आदमी दो ढंग से जी सकता है। एक ढंग है अलग-अलग, अहंकार की भांति, मैं की भांति, परमात्मा के विरोध में, असहयोग में, परमात्मा से भिन्न। ऐसे ही अधिक लोग जीते हैं। उनके जीवन का केंद्र मैं है। मैं ऐसा कर लूं, मैं वैसा हो जाऊं, मैं वह पा लूं, उनकी अपनी कुछ मर्जी है, कोई आकांक्षा है जिसे वे पूरी करना चाहते हैं। वे दुनिया को दिखा देना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ। वे यहां हस्ताक्षर कर जाना चाहते हैं पत्थरों पर--खुद तो मिट जाएंगे लेकिन नाम रह जाएगा। समय की रेत पर वे चिह्न छोड़ जाना चाहते हैं। पागल हैं वे, क्योंकि रेत पर कहीं कोई चिह्न छूटे हैं? आएंगी हवाएं और चिह्न मिट जाएंगे। यहां पत्थर भी रेत हो जाते हैं। यहां नाम भी पत्थरों पर लिखोगे तो कितनी देर टिकेगा? और इस शाश्वत की विराट व्यवस्था में तुम्हारे नाम-धाम का छूट जाना सब फिजूल है, सब सपना है। मगर अहंकार ऐसे ही जीता है कि मैं कुछ कर जाऊं, मैं कुछ दिखा जाऊं, मैं कुछ हो जाऊं।
और अहंकार की अपनी मर्जी होती है कि ऐसा होना चाहिए, ऐसा होगा तो ही मैं तृप्त होऊंगा, ऐसा नहीं होगा तो मैं असंतुष्ट रहूँगा। इसीलिए तो इतने लोग असंतुष्ट हैं क्योंकि जैसा तुम चाहते हो, वैसा नहीं होता। यह अस्तित्व तुम्हारी चाह से नहीं चल सकता। यह तुम्हारी चाह से चलता तो कभी का पागल हो जाता। क्योंकि तुम्हारी इतनी चाहें हैं। इन सारी चाहों को पूरा नहीं किया जा सकता। एक क्षण तुम एक बात चाहते हो, दूसरे क्षण दूसरी बात चाहते हो। यह तो एक आदमी की बात हुई। फिर यहां इतने आदमी हैं, इतने पशु हैं, इतने पक्षी हैं, इतने पौधे हैं, इतने जीवन हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। इन सब की चाहें कैसे पूरी हो सकती हैं! अस्तित्व की चाह पूरी होती है। आदमी की चाह पूरी नहीं होती। हां, कभी- कभी तुम्हारी चाह पूरी हो जाती है, तो यही समझना कि संयोगवशात तुम्हारी चाह अस्तित्व की चाह के साथ एक पड़ गई थी। तुमने कभी भूल-चूक से वही चाह लिया था जो परमात्मा चाह रहा था। इसलिए तुम सफल हो गए। तुम उसी धारा में बह गए जिस तरफ परमात्मा बह रहा था। कभी-कभी तुम सफल हो जाते हो, उसका कारण यही होता है।
तुम कभी सफल नहीं होते, परमात्मा सदा सफल होता है। तुम सदा हारते हो।
सौ में निन्यानबे मौके पर तो तुम हारते हो। इस हार से कुछ सीखो। इससे एक बात सीखो कि मेरी मर्जी पूरी नहीं हो सकती। जिस आदमी को यह दिखाई पड़ गया कि मेरी मर्जी पूरी नहीं हो सकती, उस आदमी को दूसरी चीज दिखाई पड़ने में ज्यादा देर नहीं लगती कि परमात्मा की मर्जी ही पूरी होती है। तो मैं उसकी मर्जी के साथ एक हो जाऊं। तो वह जो करे वह ठीक। मेरा उससे कुछ विरोध न रहे। मेरा सहयोग संग हो जाए। अगर ठीक से समझो तो इसी का नाम सत्संग है। परमात्मा की मर्जी के साथ एक हो जाना। कह देना कि तू कर। मैं तेरे हाथ की बांसुरी हूं, तू बजा, तू गा। तेरा गीत मुझसे बहे, मैं बाधा न बनूं, बस इतना काफी है। फिर जीवन में कोई असफलता नहीं है; फिर कोई विफलता नहीं है। फिर कैसी विफलता! फिर जो होता है वही सफलता है। फिर तो बीच मझधार में भी जाओ तो वही किनारा है। उसकी जो मर्जी! जिस आदमी ने अपनी मर्जी छोड़ दी, वही आदमी धार्मिक है। और जिसने अपनी मर्जी छोड़ दी, वही परमात्मा के साथ है।
राम बिन सावन सह्यो न जाइ।
और जिसको यह बात समझ में आ गई, उसे एक बात दिखाई पड़ेगी कि सारा अस्तित्व कितनी मस्ती और कितने आनंद से भरा है! सावन सदा ही आया हुआ है। सावन ही सावन है। यह प्रकृति सदा उत्सव में लीन है। यहां महोत्सव अखंड चल रहा है। एक क्षण को विराम नहीं है। यह महोत्सव की तरंगें उठती ही जाती हैं। यह लहरें सदा टकराती रहती हैं। यह नृत्य चलता ही रहता है चांद-तारों का। यह चारों तरफ जो विराट उत्सव चल रहा है, यही सावन है। और जिसको यह बात

दिखाई पड़ गई, उसको एक बात दिखाई पड़ेगी कि परमात्मा के बिना इतना सौंदर्य कैसे सहूं! परमात्मा के बिना इतना रस कैसे सहूं! परमात्मा के बिना इतना उत्सव उन्माद ले आएगा, मैं पागल हो जाऊंगा। मैं सह न पाऊंगा, असह्य हो जाएगा।
ध्यान रखना, दुख ही असह्य नहीं होते, सुख भी असह्य हो जाते हैं। और अगर तुमने असह्य होने की प्रक्रिया के भीतर झांका हो तो तुम बहुत हैरान होओगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि असह्य दुख, ऐसा शब्द बनाना ठीक नहीं; क्योंकि कोई दुख असह्य नहीं हो पाता। असह्य होने से पहले ही आदमी बेहोश हो जाता है। यह दुख की अंतरंग व्यवस्था है जब तक सह सकता है तभी तक होश रहता है। जैसे ही सहने के बाहर होने लगता है दुख, आदमी बेहोश हो जाता है। यह प्रकृति की अंतरंग व्यवस्था है तुम्हें दुख से बचाने की। तो असह्य दुख होता ही नहीं। कहते हैं हम, लेकिन असह्य दुख होता नहीं। जब असह्य दुख होता है तो बेहोश हो जाते हैं। उसका पता ही नहीं चलता। इसीलिए तो सिर में चोट लगती है, बेहोश हो गए। पीड़ा भयंकर है, प्रकृति तुम्हें बचा लेती है बेहोश करके। पीड़ा नहीं सहने देती।
दुख तो असह्य होता ही नहीं। लेकिन सुख हो सकता है असह्य। क्योंकि सुख
को सहने के लिए प्रकृति की तरफ से बचाव की कोई व्यवस्था नहीं है। सुख ऊंचाइयों से ऊंचाइयों पर जा सकता है। ऐसी ऊंचाइयों पर, जहां तुम बिखरने लगो, जहां तुम टूटने लगो, जहां तुम टुकड़े-टुकड़े होने लगो, जहां तुम अपने को सम्हाल न सको, जहां नृत्य ऐसा हो जाए कि तुम खंड-खंड हो जाओगे। और अगर जीवन के उत्सव को देखोगे तो ऐसा ही रस तुम में पैदा होगा। परमात्मा के बिना उसे सहा नहीं जा सकता। इतना बड़ा सागर सम्हालना हो अपने भीतर, तो पात्र भी इतना ही बड़ा होना चाहिए। यह पात्र उसी का हो सकता है। यह पात्रता अपनी नहीं हो सकती।
राम बिन सावन सह्यो न जाइ।
राम के बिना यह जीवन का महोत्सव सहा नहीं जाता। शायद इसीलिए लोग जीवन
के उत्सव को देखते भी नहीं। वे जीवन में दुख ही तलाशते रहते हैं, शिकायतें ही खोजते रहते हैं, काँटे बीनते रहते हैं, अँधेरी रातों की गिनती करते रहते हैं। उससे व्यवस्था ठीक बनी रहती है। अगर जीवन का सुख तुम देखोगे, तो अकेले कैसे सहोगे? सुख बाँटना पड़ता है।
तुमने कभी सुख की यह महत्ता समझी? दुख आदमी अकेले सहना चाहता है, सुख बांटना चाहता है। जब कोई दुखी होता है, द्वार-दरवाजे बंद करके अपने कमरे में छिप जाता है, कहता है--न मुझे कोई छेड़ो, न मुझे कुछ कहो, न मुझे बाहर ले जाओ, मुझे मुझमें डूब जाने दो, मैं दुखी हूं। दुखी आदमी कभी-कभी शराब पी लेता है, सिर्फ इसीलिए ताकि सबसे संबंध टूट जाएं। और दुखी आदमी कभी-कभी आत्यंतिक घड़ियों में आत्मघात कर लेता है। वह इसीलिए कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। मैं ही नहीं होऊंगा, तो फिर किससे संबंध, किससे नाता? लेकिन जब सुख पैदा होता है, तो आदमी बांटना चाहता है। महावीर जब दुखी थे, जंगल चले गए। जैन-शास्त्रों में उसकी बड़ी-बड़ी कहानियां हैं। लेकिन वह असली कहानी नहीं है, वह महावीर का असली रा.ज नहीं है, असली राज तो तब है जब महावीर आनंदित हुए--तब क्या हुआ? तब वे जंगल से वापस बस्ती लौट आए। अब बांटना है। अकेले जंगल में क्या करोगे? हमने सदपुरुषों की जो कहानियां लिखी हैं, वे भी अधूरी हैं। उसमें हमने यह तो खूब चर्चा किया है कि वह कैसे छोड़ कर चले गए--बड़े-बड़े महल, सोने के महल, बड़े राज्य, हाथी-घोड़े, उनकी बड़ी संख्या, बड़ा धन, बड़ी दौलत कैसे छोड़ कर चले गए उसका हमने खूब रसपूर्ण विवेचन और वर्णन किया है, लेकिन दूसरी बात हम नहीं कहते कि वह वापस क्यों लौट आए? एक दिन सब वापस लौटे। बुद्ध भी छह साल के बाद वापस आ गए, महावीर बारह साल के बाद वापस आ गए--एक दिन सभी वापस आ गए। अब क्या हुआ था? जब चले ही गए थे तो चले ही जाना था। अब इसी दुनिया में वापस क्या आना था? लेकिन आना पड़ा। जब आनंद फला तो बांटना पड़ेगा। आनंद को सम्हाला नहीं जा सकता। और आनंद बांटने के लिए सबसे ज्यादा योग्य पात्र कौन हो सकता है?
परमात्मा सामने हो तो भक्त नाच ले मन भर कर। फिर बांध ले घूंघर पैरों में। फिर नाच ले। फिर चिंता न हो। फिर उस विराट में अपने सारे नृत्य को

डुबा दे। नहीं तो सावन बड़ा भारी होने लगता है। तुमने अगर साधारण जीवन में प्रेम किया है, तो भी सावन भारी होने लगता है। उसीको प्रतीक मान कर रज्जब ने यह गीत लिखा है। प्रेयसी और मौसम गुजार लेती है, प्रतीक्षा कर लेती है, लेकिन जब सावन आ जाता है और आकाश में बादल घिरने लगते हैं और भूखी-प्यासी धरती के तृप्त होने का क्षण करीब आने लगता है, वृक्षों पर नये पत्ते आ जाते हैं, नई रिमझिम शुरू होती है, मोर नाचने लगते हैं, पपीहे गीत गाने लगते हैं, कोयल पुकारने लगती है, सब तरफ उत्सव होने लगता है, फूल खिलने लगते हैं, तब असह्य हो जाता है। राम बिन सावन सह्यो न जाइ।
साधारण प्रेम में भी प्रीतम के बिना सावन को सहना मुश्किल हो जाता है। दुर्दिन तो गुजर जाते हैं, सुदिन नहीं गुजरते। दुख तो बिता लेता है आदमी अकेले भी--सच तो यह है, अगर तुमने किसी को प्रेम किया है, तो उससे तुम दुख की बात करना ही न चाहोगे। तुम चाहोगे कि दुख की क्या बात करनी? दुख अकेले सह लोगे। दुख चुपचाप घूंट की तरह पी लोगे। लेकिन जब सुख उमगेगा, तब तुम उसके गले में हाथ डालना चाहोगे, हाथ में हाथ लेकर नाचना चाहोगे।
जो साधारण प्रेम की प्रक्रिया है, वही प्रार्थना की भी है। उन दोनों में जो अंतर है, वह परिमाण का अंतर है। लेकिन गुण का अंतर नहीं है-- गुणात्मक कोई भेद नहीं है। परिमाणात्मक भेद जरूर है। अनंत-अनंत गुना बड़ा है प्रार्थना का आनंद। लेकिन है वह प्रेम की ही बूँद जो सागर हो गई है। राम बिन सावन सह्यो न जाइ।
अफसानए-निगाहे-मुहब्बत न पूछिए
कहते हैं किसको ह 180े मसर्रत न पूछिए
वह मस्त-मस्त रात वह बादः बदस्त रात
उस मस्त-मस्त रात की कीमत न पूछिए
होती है दिल में इक खलिशे-बेकरार सी
वल्लाह उस नजर की शरारत न पूछिए
आलम तमाम आंसुओं का एक शैल था
मुझसे फसानए-शबे-फुर्कत न पूछिए
रातों को कर रही हूं सितारों से गुफ्तुगू
मुझसे मेरे जुनूं की हिकायत न पूछिए
क्या हो गया आपकी नज्मः को क्या कहूं
हालत न पूछिए, मेरी हालत न पूछिए
प्रेम दीवाना कर जाता है। और सावन द्वार पर दस्तक दे, तो प्रेम में फिर ऐसी बाढ़ आती है! उसी बाढ़ की चर्चा है। और फिर यह प्रेम भी परमात्मा का प्रेम! यह कोई छोटे-मोटे प्रेमी का प्रेम नहीं, जो आज है कल नहीं हो जाएगा, ऐसा प्रेम जो सदा के लिए है, आता है तो जाता नहीं, जो शाश्वत है, जो समय की परिधियाँ नहीं मानता, जो आकाश से विराटतर है। भक्त का भाव समझो, भक्त के भीतर की दीवानगी समझो--
काली घटा काल होइ आई, कामनि दगधै माइ।।
भीतर-भीतर आग जल रही है, बाहर सावन आ गया है, और प्रियतम का कोई पता नहीं। घटाएं घिर गईं--सुंदर घटाएं, प्यारी घटाएं--लेकिन प्रियतम के बिना ये प्यारी घटाएं, ये सुंदर घटाएं कैसे प्यारी लगें, कैसे सुंदर लगें? ख्याल करो, हमें प्रकृति में वही दिखाई पड़ता है जो हमारे भीतर घटता है। तुम्हारा प्यारा घर आया है, तो अमावस की रात भी पूर्णिमा हो जाती है। और तुम्हारा प्यारा घर नहीं आया, तो पूर्णिमा की रात भी तो अमावस ही रहती है। प्रियतम आ गया है तो चांद नाचता हुआ मालूम पड़ता है आकाश में। तुम्हारा हृदय नाच रहा है। चांद पर तुम्हारे हृदय का नाच प्रतिबिंबित होने लगता है। तुम्हारा प्यारा जा रहा है, चांद अब भी वैसा का वैसा है, लेकिन तुम्हारा हृदय रो रहा है, देखो चांद की तरफ और आंसू टपकते मालूम पड़ते हैं चांद से। हमें जो बाहर दिखाई पड़ता है, वह भीतर का प्रतिफलन है। जो हमारे भीतर होता है, वही हमें बाहर के पर्दे पर दिखाई देता है। तो जो तुम्हें बाहर दिखाई पड़े, उससे अपने भीतर का इशारा लेना। जो तुम्हें बाहर दिखाई पड़े, उससे समझ लेना कि तुम्हारे भीतर क्या है? दर्पण के सामने खड़े हो न, जो चेहरा दर्पण में दिखाई पड़ता है वह दर्पण में नहीं है, वह तुम्हारा चेहरा

है। ऐसे ही हम प्रतिक्षण प्रकृति के दर्पण के सामने खड़े हैं। वहां जो भी दिखाई पड़ता है, वह अपना ही चेहरा है। उससे अपने ही चेहरे की पहचान लेनी है।
"काली घटा काल होइ आई"। यह मस्त काली घटा, यह जो नाचती हुई घटा चली जा रही है, यह ऐसे लगती है जैसे मौत आ रही है। "कामनि दगधै माइ"। और भीतर-भीतर मिलन की आतुरता। एक हो जाने की आतुरता काम है।
काम का अर्थ समझो।
काम का अर्थ हैः दो में पीड़ा है, एक में रस है। एक हो जाने में आनंद है। साधारण स्त्री-पुरुष भी जब प्रेम में गहन भर जाते हैं, तो एक हो जाना चाहते हैं, जुड़ जाना चाहते हैं। और वही तो प्रेम का दुर्भाग्य है कि एक नहीं हो पाते। इसलिए सभी प्रेम असफल होते हैं। क्योंकि प्रेम की आकांक्षा यही है कि एक हो जाएं और एक होना संभव नहीं है। दो देहें कैसे एक हो सकती हैं? क्षण भर को शायद हो भी जाएं, मगर फिर क्षण भर के बाद गहन अंधेरे गर्त, गहराई में गिर जाना पड़ता है। फिर अंधेरी खाई में भटक जाना पड़ता है। और भी पीड़ा होने लगती है। वह जो क्षण भर का मिलन हुआ था, उससे विरह और घना हो जाता है। उसके संदर्भ में विरह और भी प्रगाढ़ हो जाता है। संसार में प्रेम की आकांक्षा है कि एक हो जाएं और यह आकांक्षा पूरी नहीं होती, यह आकांक्षा तो सिर्फ परमात्मा के साथ पूरी हो सकती है। वह जो तुम्हारे भीतर काम का प्रबल वेग है, वह राम के साथ ही पूरा हो सकता है और कोई उपाय नहीं। क्योंकि उसके साथ देह का मिलन नहीं है, आत्मा का मिलन है। वहां सीमाएं सदा के लिए खो सकती हैं। वहां हम डुबकी मार सकते हैं। कभी लौटने की फिर जरूरत नहीं है। काली घटा काल होइ आई, कामनि दगधै माइ।।
कनक-अवास-वास सब फीके...
सोने का महल फीका पड़ गया। सुंदर वस्त्र फीके पड़ गए।
कनक-अवास-वास सब फीके, बिन पिय के परसंग।
और जब प्यारे का प्रसंग न हो साथ, प्यारे का संदर्भ न हो साथ, सब फीका
पड़ जाता है। जीवन के बड़े से बड़े सुख प्रेम के प्रसंग में घटते हैं। तुम अपने जीवन में भी थोड़ा अवलोकन करना। तुम्हारे जीवन के जो बड़े से बड़े सुख के क्षण आए हैं, वे अकेले में नहीं आए हैं, वे प्रेम के प्रसंग में आए हैं। जो तुम्हारे जीवन में कभी क्षण भर को झरोखा खुला है और अनंत की झलक मिली है, वह अकेले में नहीं मिली है, वह प्रेम के प्रसंग में मिली है। जहां भी प्रेम फलित हुआ है, जहां भी प्रेम पका है, वहीं जीवन को देखने का एक नया प्रसंग, एक नया संदर्भ मिल जाता है।
शब्दों में अर्थ नहीं होते--इसे ऐसा समझो--और न घटनाओं में अर्थ होते हैं। किसी शब्द में कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ तो वाक्य में होता है। जब उस शब्द को तुम वाक्य के भीतर रखते हो, उसमें अर्थ आ जाता है। दूसरे वाक्य में उसी शब्द का दूसरा अर्थ हो जाएगा। तीसरे वाक्य में तीसरा अर्थ हो जाएगा। फिर वाक्य का भी अपने में अर्थ नहीं होता है, पूरे पृष्ठ के संदर्भ में अर्थ होता है। पृष्ठ का पूरी पुस्तक के संदर्भ में अर्थ होता है। अगर तुम इस बात को ठीक तरह से समझोगे तो इकहरी-इकहरी घटनाओं में कोई अर्थ नहीं होता, घटनाओं के प्रसंग और संदर्भ में अर्थ होता है। और जितना बड़ा संदर्भ हो, उतना ही अर्थ बड़ा होता जाता है।
बड़े से बड़ा अर्थ घटता है परमात्मा के प्रेम के प्रसंग में। क्योंकि
वह बड़ा से बड़ा संदर्भ है। उससे बड़ा फिर कोई संदर्भ नहीं। वह महाकाव्य है। उसके साथ जुड़कर क्षुद्र से शब्द स्वर्ण के हो जाते हैं। उसके साथ जुड़ कर कंकड़-पत्थर हीरे-मोती हो जाते हैं।
"कनक-अवास-वास सब फीके।"
सब है, लेकिन सब फीका है। यही तो आज की दुनिया का सबसे बड़ा विचारणीय प्रश्न है। मनुष्य इतना समृद्ध कभी भी नहीं था जितना आज है, विज्ञान ने मनुष्य को बड़ी समृद्धि दी है, बड़ी सुविधा दी है। सब है, चांद पर जाने की क्षमता है, मगर परमात्मा से संदर्भ छूट गया है। इसीलिए सब होते भी आदमी बिल्कुल फीका है। बिल्कुल कोरा है, खाली है, रिक्त है। बाहर धन का ढेर लग गया है, स्वर्ण के महल निर्मित हो गए हैं--और भीतर? भीतर बड़ी कंगाली है।

भीतर आदमी बिल्कुल भिखारी है। यह आज के मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है कि क्या हो गया, क्यों ऐसा हुआ? भीतर आदमी को अर्थहीनता क्यों मालूम होती है? दुनिया के बड़े से बड़े विचारक जिस प्रश्न पर सर्वाधिक चिंतातुर हैं,
वह प्रश्न है--अर्थवत्ता का। आदमी की अर्थवत्ता क्यों खो गई है? लोग क्यों पूछ रहे हैं कि जीवन का अर्थ क्या है? जीवन में कोई अर्थ है भी नहीं, हो भी नहीं सकता। अर्थ तो किसी संदर्भ में होता है। परमात्मा के संदर्भ में अर्थ था, वह संदर्भ खो गया है। ऐसा ही समझो कि तुम्हें किसी किताब का एक पन्ना हवा में उड़ता हुआ मिल जाए, तुम उसे पढ़ जाओ, कुछ अर्थ समझ में न आएगा। अर्थ तो पूरी किताब में था। या तुम्हें कविता की एक पंक्ति मिल जाए और अर्थ समझ में न आए। अर्थ तो पूरी कविता में था। या तुम्हें एक शब्द मिल जाए और अर्थ समझ आए। ऐसी ही हालत आदमी की हो गई है, आदमी संदर्भ से टूट गया है। उसकी जड़ें आज परमात्मा के साथ जुड़ी हुई मालूम नहीं होतीं। अकेला खड़ा है, पृष्ठभूमि खो गई है, समझ में नहीं आता मैं कौन हूं। कनक-अवास-वास सब फीके, बिन पिय के परसंग।
मैं तलूए-सुबहे-नौसे अभी मुतमईन नहीं हूं
तेरा हुस्न भी तो होता किसी खुशनुमा किरन में
सरेबाम पुकारा, लबे-दार भी सदा दी
मैं कहां-कहां न पहुंचा तेरी दीद की लगन में
मैं लिए-लिए फिरा हूं गमे-जिंदगी की लाश
कभी अपनी खिलवतों में, कभी तेरी अंजुमन में
तेरे गम में बह गया है मेरा एक-एक आंसू
नहीं अब कोई सितारा जो चमक सके गगन में
एक बार उसकी जरा सी झलक मिल जाए कि सारे सितारे फीके हो जाते हैं। फिर कोई सितारा नहीं चमक सकता। फिर कोई धन धन नहीं। ध्यान की भनक पड़ जाए कि फिर कोई धन धन नहीं। प्रार्थना की जरा सी सुगबुगाहट भीतर हो जाए, फिर कोई प्रेम प्रेम नहीं। परमात्मा है, ऐसा आभास होने लगे कि फिर इस जीवन में जो भी अर्थ थे वे सब बदल गए। फिर एक नये अर्थ की यात्रा शुरू हुई। तीर्थयात्रा शुरू हुई। अब तुम ठीक-ठीक संदर्भ में आने शुरू हुए। अब तुम्हें अपनी जड़ें मिलीं।
महाबिपत बेहाल लाल बिन, लागै बिरह-भुअंग।।
बड़ी विपत्ति है, बड़ी बेहाली है, उसके बिना--प्यारे के बिना।
महाबिपत बेहाल लाल बिन लागै बिरह-भुअंग।
और विरह ने ऐसे पकड़ा है, जैसे भुजंग ने पकड़ लिया हो। जैसे किसी भयंकर सर्प की लपेट में पड़ गए हों। कोई भयंकर सर्प कुंडली मार कर चारों तरफ बैठ गया हो, ऐसा उसके विरह ने पकड़ा है। आज ऐसा विरह किसी को पकड़ता नहीं। दुर्भाग्य है। क्योंकि जितना बड़ा विरह तुम्हें पकड़े, उतने ही बड़े मिलन की आशा है। विरह ही हमारे छोटे-छोटे हैं तो मिलन भी हमारे छोटे-छोटे हैं। विरह और मिलन में अनुपात होता है। जब कोई परमात्मा के विरह से तड़फता है, तो उसके तड़फने में भी एक सौंदर्य है। और एक आदमी धन के लिए तड़फ रहा है, उसके तड़फने में एक कुरूपता है। एक आदमी पद के लिए तड़फ रहा है, उसकी तड़फ अमानवीय है, जंगली है। उसकी तड़फ में संस्कृति नहीं है। उसकी तड़फ में मनुष्य के ऊंचे मूल्यों का कोई स्थान नहीं है।
तड़फो तो किसी बड़ी बात के लिए तड़फो। जब तड़फ ही रहे हो तो क्षुद्र के लिए क्या तड़फना! जब खोजने ही चले हो, तो परमधन को खोजो। और जब यात्रा ही शुरू की है तो परमपद की करना।
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धीर।
रज्जब कहते हैं, सेज सूनी है। सजी है और सूनी है। सावन द्वार पर खड़ा है
और सब सूना है। "सूनी सेज बिथा कहूं कासूं।" और यह मेरी व्यथा ऐसी है कि किससे कहूं? इसे तो जानने वाले ही समझेंगे। धन्यभागी हैं वे जिनके जीवन में ऐसी व्यथा है कि जिसको कहने के लिए भी पात्र खोजना पड़े! धन्यभागी हैं वे जिनकी व्यथा को साधारणतः कहा न जा सके! उसका अर्थ हुआ कि परम की व्यथा उनके भीतर पैदा हुई है।
परेशां रात सारी है सितारो तुम तो सो जाओ

सकूने-मर्ग तारी है सितारो तुम तो सो जाओ हंसो और हंसते-हंसते डूबते जाओ खलाओं में हमें यह रात भारी है, सितारो तुम तो सो जाओ हमें तो आज की शब पौ फटे तक जागना होगा
यही किस्मत हमारी है, सितारो तुम तो सो जाओ तुम्हें क्या? आज भी कोई अगर मिलने नहीं आया
यह बाजी हमने हारी है, सितारो तुम तो सो जाओ
कहे जाते हो रो-रो कर हमारा हाल दुनिया से
यह कैसी राजदारी है, सितारो तुम तो सो जाओ
हमें भी नींद आ जाएगी, हम भी सो ही जाएंगे
अभी कुछ बेकरारी है, सितारो तुम तो सो जाओ
शायद सितारे समझें, आदमी तो नहीं समझेगा। आदमी तो ऐसा नासमझ हो गया है, ऐसा पत्थर हो गया है, ऐसा पाषाण हो गया है! किससे कहें?
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धीर।
कोई धीरज नहीं है। एक भयंकर अशांति का जन्म हुआ है।
जीसस का एक वचन तुम्हें याद दिलाता हूं--
किसी ने जीसस से पूछा है कि क्या आप वही हैं जिसके संबंध में शास्त्र कहते हैं कि उसके आगमन पर दुनिया में शांति हो जाएगी? जीसस ने उस आदमी को गौर से देखा और कहा, मैं शांति लेकर नहीं, तलवार लेकर आया हूं। मैं तुम्हें अशांत करने आया हूं। ईसाई विचारक दो हजार साल से इस वचन पर चिंतन करते रहे। यह वचन जीसस ने न कहा होता तो अच्छा था। क्योंकि जीसस तो शांति के दूत हैं और यह वचन कि मैं शांति लेकर नहीं तलवार लेकर आया हूं, मैं तुम्हें अशांत करने आया हूँ! लेकिन यह वचन सार्थक है। और जीसस ने कहा तो ठीक ही किया। मैं इसके साथ पूरी तरह सहमत हूं। इस दुनिया में जो भी भगवान का प्यारा है, वह तुम्हें अशांत ही करेगा। तुम वैसे शांत हो--शांत मतलब चल रहे हो; सब ठीक-ठाक है। दुकान कर रहे, बाजार कर रहे, बच्चे पैदा कर रहे, सो रहे, उठ रहे, कमा रहे, जीत रहे, हार रहे, जिंदगी बीत रही है, सब ठीक-ठाक है--अगर तुम किसी परमात्मा के प्यारे के निकट पड़ गए तो यह सब ठीक-ठाक एक क्षण में बिखर जाएगा। क्योंकि पहली दफे तुम्हें दिखाई पड़ेगा तुमने जिंदगी यूं ही गंवाई, कूड़ा-करकट बीनने में गंवाई। गहरी अशांति पैदा होगी। बड़ी बेचैनी पैदा होगी। बड़ा अधैर्य पैदा होगा। एक आध्यात्मिक असंतोष पैदा होगा।
एक असंतोष है सांसारिक वस्तुओं के लिए। वह असंतोष अधार्मिक आदमी का लक्षण है। एक असंतोष है परमात्मा को पाने के लिए। वह असंतोष धार्मिक आदमी का लक्षण है। जो बाहर की चीजों से असंतुष्ट हैं, वे बाहर दौड़ते रहते हैं। जो भीतर की आकांक्षा से भर जाते हैं, भीतर के अनुभव के लिए लालायित हो जाते हैं, जिन्हें भीतर का असंतोष पकड़ लेता है--"डिवाइन डिसकंटेंट"--जिन्हें एक दिव्य असंतुष्टि पकड़ लेती है, वे भीतर की खोज पर निकल जाते हैं।
बाहर से संतुष्ट हो जाओ और भीतर असंतुष्ट हो जाओ! अभी हालत तुम्हारी उलटी है--भीतर से बिल्कुल संतुष्ट हो, बाहर बड़े असंतुष्ट हो। कहते हैं--यह मकान छोटा है, यह दुकान छोटी है, थोड़ी बड़ी कर लें; यह धन का ढेर छोटा है, थोड़ा बड़ा कर लें; यह पद भी कोई पद है, थोड़ा बड़ा पद खोज लें; अभी थोड़ी शक्ति है, लगा लें; अभी थोड़ा मौका है, अवसर है। बाहर से तुम असंतुष्ट हो और भीतर तुम देखते भी नहीं कि भीतर कुछ भी नहीं है, तुम बिल्कुल खाली हो, वहां अँधेरा है। वहां दीया भी नहीं जला कभी और बाहर दीवाली मना रहे हो! और भीतर दिवाला है।
थोड़ा भीतर भी देखो। ये बाहर के दीये बहुत दूर तक काम न आएंगे, जलेंगे
और बुझ जाएंगे। इनसे कोई रोशनी न कभी किसी को मिली है, न मिल सकती है। मौत आएगी और उसका एक झोंका इन सबको मिटा जाएगा। कुछ ऐसा दीया जला लो जिसे मौत न बुझा सके।
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धीर।
भक्त बड़ा बेचैन हो जाता है। इस बेचैनी के बाद ही चैन है। जितनी बड़ी बेचैनी उतना ही बड़ा चैन है। यह बेचैनी कीमत है जो चुकानी पड़ती है उस चैन के लिए। भक्त बड़ा दुखी हो जाता है। तुम क्या खाक दुखी हो! तुम्हारा दुख भी

छोटा है, क्षुद्र है। भक्त बड़ा दुखी हो जाता है। भक्त की छाती में तो घाव ही घाव रह जाते हैं। उसकी आंखों में आंसू ही आंसू रह जाते हैं। रुदन के सिवा उसे कुछ नहीं सूझता। उसे चारों तरफ अंधेरा दिखाई पड़ता है और भीतर रिक्तता दिखाई पड़ती है। और एक बात कोई भीतर गहरे में कहे चला जाता है कि चाहो तो सब बदल सकता है, सावन द्वार पर खड़ा है, प्यारे से मिलना भी हो सकता है!
तुम उस पीड़ा को थोड़ा सोचो, विचारो! जब सब हो सकता है और कुछ भी होता नहीं मालूम होता। घड़ियाँ बीतती जाती हैं प्रतीक्षा की और उसकी पगध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। भक्त न मालूम कितनी भावदशाओं से ऐसी अवस्था में गुजरता है।
जी में हसरत है सुनाएं उन्हें अफसानए-गम
कभी मौका मिले सब कुछ कहें उनकी ही कसम
लेकिन आते नहीं सुनते नहीं रूदादे-अलम
कितने मजबूर हैं बतलाएं यह है कैसा सितम
इस पै तुर्रा है कि उल्फत का भी इकरार करो
हम को पूजो, हमें चाहो, हमें तुम प्यार करो ऐसे बेरहम हैं इंसाफ का भी पास नहीं
महर की जर्रा बराबर भी तो बू-बास नहीं
ऐसी बेमेहरी पै भी दिल कि मेरे पास नहीं
अब भी आ जाएं कि जीने की कोई आस नहीं
और खुद आके कहें इश्क का इजहार करो
हमको पूजो, हमें चाहो, हमें तुम प्यार करो
आवाज सुनाई पड़ती है--हमको पूजो, हमें चाहो, हमें तुम प्यार करो; मगर कहां से आवाज आती है, स्रोत का पता नहीं चलता। कोई पुकार आती है बहुत दूर से, या बहुत गहरे से, या बहुत भीतर से, मगर पता नहीं चलता। कौन पुकार दे रहा है, दिखाई नहीं पड़ता। और पुकार सघन होती चली जाती है। और पुकार की सघनता के साथ-साथ भक्त की पीड़ा सघन होती चली जाती है। एक आग जलने लगती है, एक विरह की अग्नि में भक्त जलता है। यही असली यज्ञ है।
बंद करो तुम्हारे यज्ञ जो तुम बाहर कर रहे हो। व्यर्थ न जलाओ उनमें गेहूं और घी, व्यर्थ न बहाओ इन चीजों को। जलाना हो, अपने अहंकार को अपने भीतर परमात्मा की विरह की आग में जलाओ। मिटाना है, अपने को वहां मिटाओ। वहीं बने वेदी हवन की। सच्चा यज्ञ वहीं है, जीवनयज्ञ वहीं है। और जिस दिन तुम बिल्कुल राख हो जाओगे, बिल्कुल राख, उसी क्षण मिलन हो जाता है। तुम मिटे कि मिलन हुआ। तुम्हारे मिटने में ही मिलन है।
शबे-इंतजार की कश-म-कश में न पूछ कैसे सहर हुई
कभी इक चिराग जला दिया, कभी इक चिराग बुझा दिया
विरह की रात लंबी होती है। कैसे सुबह होती है, बड़ा मुश्किल है कहना।
शबे इंतजार की कश-म-कश में न पूछ कैसे सहर हुई
जिनकी हो गई सुबह, वे भी नहीं बता पाते कि कैसे हो गई है। बड़ी लंबी थी यात्रा, बड़ी लंबी थी रात; "कभी एक चिराग जला दिया, कभी एक चिराग बुझा दिया," किसी तरह कुछ करते रहे। प्रार्थना की, पूजा की, मंत्र किए, जाप किए, वह सब बस ऐसा ही था--कभी एक चिराग जला दिया, कभी एक चिराग बुझा दिया। मगर उस सबके पीछे एक विरह था, वही असली बात है। उस सबके पीछे एक तलाश थी, टटोलना था, वही असली बात है। खोज थी। क्या तुमने खोजने के लिया किया, उसका मूल्य नहीं है बहुत, बस खोज भी भीतर, इसीका मूल्य है। परमात्मा तुम क्या करते हो यह नहीं देखता, तुम क्या चाहते हो, यही देखता है। तुम्हारी अभीप्साएं जांची जाती हैं, तुम्हारी आकांक्षाएं पहचानी जाती हैं। तुम्हारे अंतर्भाव पढ़े जाते हैं।
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलैं ते मारत तन तीर।।
और सबके प्रेमी उन्हें मिले जा रहे हैं, भक्त का प्रेमी उसे कब मिलेगा? सावन आ गया। दूल्हनें सज गईं, दूल्हे सज गए, जिनकी प्रतीक्षा थी वे प्यारे आने लगे, प्रेयसियों को मिलने लगे, सावन आ गया, "दादुर मोर पपीहा

बोलैं ते मारत तन तीर," पशु-पक्षी भी अपने प्रियतमों को मिलने लगे, सब तरफ मिलन की घड़ी आ गई--सावन यानी मिलन की घड़ी--प्यार सबका पकने लगा, और भक्त के भगवान का कोई पता नहीं। वहां बस अभी भी अंधेरी रात है। वहां अभी भी बस रेगिस्तान है। वहां अभी बस विरह का ही स्वाद है।
सिसकियां लेती हुई गमगीन हवाओ चुप रहो
अपनी हालत पर न फूलों को हंसाओ, चुप रहो
सुबह से पहले न बोलो हमनवाओ चुप रहो
सो रहे हैं दर्द उनको मत जागाओ चुप रहो
बंद हैं सब मैकदे साकी बने हैं महतसिब
ऐ गरजती गूंजती काली घटाओ चुप रहो धड़कनें काफी हैं, इजहारे-तमन्ना के लिए अपने ओंठों से कभी आगे न आओ चुप रहो तुमको है मालूम आखिर कौन सा मौसम है यह फसले-गुल आने तलक ऐ खुशनवाओ चुप रहो सोच की दीवार से लग कर हैं गम बैठे हुए दिल में भी नग्मा न कोई गुनगुनाओ चुप रहो बुझ गए हालात के शोले तो देखा जाएगा
वक्त से पहले अंधेरे में न जाओ, चुप रहो
देख लेना घर से निकलेगा न हमसाया कोई
ऐ मेरे यारो मेरे दर्द-आश्नाओ चुप रहो
क्यों शरीके-गम बनाते हो किसी को ऐ "कतील!"
अपनी सूली अपने कांधे पर उठाए चुप रहो
"अपनी सूली अपने कांधे पर उठाए चुप रहो"। यह भक्त की जीवन-व्यथा है। "क्यों शरीके-गम बनाते हो किसीको ऐ "कतील!" दुख कहो भी तो किससे कहो? कहने का सार भी क्या है! समझेगा कौन? लोग हंसेंगे ज्यादा से ज्यादा। समझेंगे पागल हो तुम।
क्यों शरीके-गम बनाते हो किसीको ऐ "कतील!"
अपनी सूली अपने कांधे पर उठाए चुप रहो
भक्त को चुपचाप सहना पड़ता है, चुपचाप रोना पड़ता है। मैं उन भक्तों की बात नहीं कर रहा हूं जो अखंड पाठ करवा देते हैं। उन्हें तो भक्ति का कुछ पता ही नहीं है। चौबीस घंटे शोरगुल मचवा देते हैं। मोहल्ले-पड़ोस के लोगों की नींद खराब करवा देते हैं। भक्ति का तो बड़ा चुपचाप निवेदन है। रात के अंधेरे में, एकांत में। किससे कहना है अपना गम, कौन समझेगा यहां? लोग आंसू देखेंगे, हंसेगे। चुपचाप रो लेना, चुपचाप पुकार लेना। यह बात भीतर की भीतर रहे। यह किसी को पता भी चलाने की बात नहीं, क्योंकि आदमी बड़ा चालबाज है। कभी-कभी तो लोगों को पता चले इसीलिए आयोजन करने लगता है। यह सब आयोजन झूठे हो जाते हैं। बस परमात्मा को पता चले इतना काफी है। तुम दूसरों को पता चलवाने की कोशिश मत करना।
तुमने देखा है, अगर कोई मंदिर में पूजा कर रहा हो, दो-चार-दस आदमी इकट्ठे हो जाएं, उसकी पूजा बड़े जोर-शोर से होने लगती है। उसके हाथ की आरती और जोर-शोर से उतरने लगती है। अगर फोटोग्राफर भी आ जाए, अखबारनवीस भी आ जाएं, फिर तो कहना क्या! वह ऐसा मस्त हो जाता है कि कबीरदास जी क्या हुए होंगे! कि बाबा नानक सिर ठोक लेते कि हम भी पीछे पड़ गए! कि मीरा भी सोचती कि अब यहां नाचना ठीक है कि नहीं! लेकिन जब देखता है कोई भी नहीं है देखने वाला, तो जल्दी से घंटी-वंटी बजा कर, पानी इत्यादि छिड़ कर भाग खड़ा होता है। भगवान से तो कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारे पूजा-पाठ भी तुम्हारे अहंकार की घोषणाएं बन जाते हैं।
क्यों शरीके-गम बनाते हो किसी को ऐ "कतील!"
अपनी सूली अपने कांधे पर उठाए चुप रहो
सकल सिंगार भार ज्यूं लागैं, मन भावै कछु नाहीं।
रज्जब कहते हैं--साराशृंगार किए बैठा हूं। क्या श्रृंगार है भक्त का? अपने पात्र को मांजा है, शुद्ध किया है, अपने भीतर के विषाक्त भावों से मुक्ति पाई है--क्रोध छोड़ा है, मोह छोड़ा है, लोभ छोड़ा है, आसक्तियां छोड़ी

हैं, ईर्ष्याएं-वैमनस्य छोड़े हैं, द्वैत छोड़ा है, द्वंद्व छोड़ा है, तर्क छोड़ा है, संदेह छोड़े हैं--सब तरफ से अपने को सजाया है। क्या हैशृंगार भक्त का? श्रद्धा हैशृंगार। "सकलशृंगार भार ज्यूं लागैं।" लेकिन जब तक प्यारा न मिल जाए तब तक सब श्रृंगार भार हैं। प्यारा मिल जाए तब तो बात ही बदल जाती है। तब तो रंग ही बदल जाता है, तब तो ढंग ही बदल जाता है।
चांदनी रात फिक्रे-शेरो-सुखन
मैंने चांदी के बुत तराशे हैं
उनमें तुम रूह पूंक दो, वर्ना
मेरे अफ्कार सर्द लाशें हैं
फिर तुम गीत गाते रहो, उनमें प्राण नहीं। "मेरे अफ्कार सर्द लाशें हैं," मेरी अभिव्यक्तियों में कोई प्राण नहीं। "उनमें तुम रूह पूंक दो;" तुम डालो प्राण तो पड़े प्राण। ऐसे भी गीत हैं जब गायक नहीं गाता, सिर्फ गायक माध्यम होता है और परमात्मा गाता है। तब मजा और। तब आकाश पृथ्वी पर उतरता है। और ऐसे भी गीत हैं जो गायक ही गाता है; परमात्मा का उनमें कुछ पता नहीं होता। तब वे कितने ही शब्दों की दृष्टि से सुंदर हों, मगर निष्प्राण होते हैं।
कवि और ऋषि का यही भेद है।
कवि खुद ही गाता है, ऋषि परमात्मा को गाने देता है। दोनों गाते हैं, दोनों गायक हैं, ऊपर से देखने पर कोई भेद नहीं है, दोनों के ओंठ शब्दों को बनाते हैं, दोनों के कंठों से वाणी निकलती है, मगर एक की सिर्फ कंठ से ही आ रही है, और दूसरे की बैकुंठ से आ रही है--उसकी अपनी नहीं है, बांस की बांसुरी जैसा है, खाली है।
कबीर ने कहाः मैं बांस की पोंगरी, सब गीत तुम्हारे। कुछ भूल-चूक हो जाती हो, मेरी--बांस की पोंगरी हूं, स्वरों को बिगाड़ देती हूं, बेसुरा कर देती हूँ, वह भूल-चूक मेरी। सब सुंदर तुम्हारा, सब असुंदर मेरा। चूक-चूक मेरी, ठीक-ठीक तुम्हारा। पुण्य हो तो तुमसे, पाप हो जाए--मुझसे। यह भक्त का भाव है।
चांदनी रात फिक्रे-शेरो-सुखन
मैंने चांदी के बुत तराशे हैं
उनमें तुम रूह पूंक दो वर्ना
मेरे अफ्कार सर्द लाशें हैं
सकल सिंगार भार क्यूं लागैं, मन भावै कछु नाहीं।
मन को भाए भी क्या अब; जब मनभावन से मन लग गया तो मन को फिर कुछ नहीं भाता। जब मनमोहन से मन लग गया तो मन को फिर कुछ नहीं भाता। फिर सब फीका है। सब स्वाद बेस्वाद है। सब स्वर विसंगीत हैं। सब सौंदर्य सतही है, ऊपर-ऊपर है। उस प्यारे की मौजूदगी ही आए तो अस्तित्व श्वासें लेता है, धड़कता है। रज्जब रंग कौन सूं कीजै, जे पीव नाहीं माहीं।
आनंद कैसे करूं, रज्जब कहते हैं। "रज्जब रंग कौन सूं कीजै।" कैसे रंग
से भरूं, कैसे नाचूं, कैसे उत्सव मनाऊं, कैसे रास रचाऊं, जे पीव नाहीं माहीं, अभी भीतर परमात्मा आकर मौजूद नहीं हुआ। वह आए तो फिर नाच ही नाच है, बिना आयोजन के। चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती है और नाच शुरू हो जाता है। और परमात्मा भीतर न हो, तो हम हजार आयोजन करें, हमारे आयोजन सब झूठे हैं, सब पाखंड हैं।
धर्म पाखंड हो गया है हमारे आयोजनों के कारण। जब तुम चेष्टा करके कुछ करते हो, तब पाखंड होता है। जब उसकी मौजूदगी के अनुभव से सहज तुम्हारे भीतर कुछ होता है, स्वस्फूर्त, तब धर्म सच्चा होता है। सिखाए धर्म व्यर्थ हैं। पढ़ लिया गीता में या कुरान में और किया, तो बस आयोजित है। परमात्मा को पुकारो भीतर। उसकी प्रतिमा वहां निर्मित होने दो।
और ध्यान रखना, प्यास हो तो जरूर बात हो जाती है। बस पूरी प्यास चाहिए; इसके अतिरिक्त आदमी के बस में कुछ भी नहीं है।
अलग बैठे थे, फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तिश्नगी कामिल तो परवाने भी आएंगे

तिश्नगी कामिल, बस पूर्ण प्यास चाहिए, साकी कब तक बचाएगा, कब तक बच-बच
कर निकलेगा?
अलग बैठे थे, फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तिश्नगी कामिल तो परवाने भी आएंगे
जरूर आएंगे जब दीया जलता है, तो परवाना आता है। और जब प्यास जलती है,
तो प्यारा आता है। आना ही पड़ता है। तुमने शर्त पूरी कर दी--उतनी ही शर्त है, बस प्यास की शर्त है। तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी प्यास की अभिव्यक्ति होनी चाहिए और कुछ भी नहीं। माँगना मत कुछ और। कुछ और चाहना मत। चाहना तो उसको चाहना, मांगना तो उसको मांगना, और कुछ मत माँगना।
रज्जब रंग कौन सूं कीजै, जे पीव नाहीं माहीं।।
रज्जब कहते हैं--सावन तो आ गया, नाचना तो मुझे भी है, नाचना तो मुझे भी चाहिए, सावन का सम्मान तो मुझे भी करना है। पक्षी गीत गा उठे, बादल घिर गए, मोर नाच उठे--दादुर मोर पपीहा बोलैं, ते मारत तन तीर--तीर मुझे भी चुभ रहा है सावन का, यह सौंदर्य मुझे भी जगा रहा है। यह चारों तरफ हो रहा उत्सव और मैं कैसे अलग-थलग बैठा रहूं! मगर करूं क्या? मेरा प्राणप्यारा अभी आया नहीं, उसकी पगध्वनि भी मुझे सुनाई नहीं पड़ रही।
भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
और यह हो क्यों गया? ऐसा हो कैसे गया? --कि प्यारा नहीं मिल रहा है। भजन बिन भूलि पर्यो संसार। हमने ही उसकी याद धीरे-धीरे गंवा दी है। भजन का अर्थ है--उसकी याद, उसकी स्मृति, सुरति। हमने ही धीरे-धीरे उसकी याद भुला दी। उसने हमें भुला दिया, ऐसा कोई भक्त नहीं कहेगा। ऐसा लांछन भक्त भगवान पर लगा नहीं सकता। हमने ही भुला दिया है। हम ही पीठ करके खड़े हो गए हैं। हमने ही कुछ ऐसा इंतजाम कर लिया है कि हम उससे दूर-दूर हो गए हैं। परमात्मा हम से दूर नहीं है, हम उससे दूर हैं।
भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
भजन को भूल गए हैं--भजन यानी परमात्मा के स्मरण को। और जो परमात्मा के स्मरण को भूल जाता है, वह संसार के स्मरण से भर जाता है। स्मरण तो करना ही पड़ेगा। स्मृति में कोई चीज तो भरेगी ही। अगर अमृत न भरोगे तो जहर भरेगा। अगर शुभ न भरोगे तो अशुभ भरेगा। अगर प्रेम न भरोगे तो घृणा भरेगी। पात्र खाली तो रहेगा नहीं। वह तो पात्र का गुण नहीं है खाली रहना, पात्र तो भरेगा ही। अगर सुगंध न भरेगी तो दुर्गंध भरेगी।
ऊर्जा का नियम है कि वह कुछ करेगी; ऊर्जा कृत्य बनेगी। अगर तुमने सृजन
न किया तो तुम विनाश करने में लग जाओगे। अगर तुमने निर्माण न किया तो तुम मिटाने में लग जाओगे। इसके पहले कि तुम्हारी ऊर्जा विध्वंस बने, सृजन बनाओ। और इसके पहले कि तुम्हारी ऊर्जा संसार की स्मृति में उलझ जाए, खो जाए... जरा देखते हो कभी, अपने को भी सोचते हो कभी? दिन भर भी संसार सोचते, रात बिस्तर पर पड़े तो भी संसार सोचते, नींद भी नहीं आती संसार की याद में ही, मन उलझा रहता है--सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, दिन और रात, वर्ष आते और जाते और तुम संसार की ही चिंता में डूबे रहते हो। और पाओगे क्या इस चिंता से? थोड़ी तो बुद्धिमानी बरतो।
भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार।।
और फिर तुम चाहे पश्चिम जाओ, चाहे पूरब जाओ; फिर चाहे हिंदू होओ, चाहे मुसलमान; चाहे इस दिशा में पूजो, चाहे उस दिशा में; चाहे तुम्हारी काशी इधर हो और तुम्हारा काबा वहां हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। जाओ तुम्हें जहां जाना है, अगर भजन नहीं किया है--भजन यानी अगर परमात्मा का स्मरण नहीं जगाया है, संसार के स्मरण से भरे हो--तो तुम काशी भी जाकर कुछ भेद नहीं कर पाओगे। काशी में भी तुम संसार का ही स्मरण करोगे। और काबा में जाकर भी तुम संसार का स्मरण करोगे। तुम्हारी मांगें संसार की ही होंगी।
तुम जरा सोचो, अगर मैं तुम्हें ऐसी एक पहेली दूं कि कल सुबह जब तुम उठोगे, परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा होगा। और तुमसे पूछेगा--तीन वरदान मांग लो। तुम.जरा सोचना कौन से तीन वरदान तुम मांगोगे? किसी को बताने की जरूरत नहीं है, इसलिए धोखा देने की भी कोई जरूरत नहीं है, खुद ही सोचना कौन

से तीन वरदान मांगोगे? तुम बड़े हैरान होओगे अपने वरदानों की मांग को देख कर। तुम जरूर कुछ क्षुद्र मांगोगे। परमात्मा भी सामने खड़ा होगा, तो तुम उससे चूक जाओगे। तुम्हें शायद ही याद आए कि तुम कहो कि अब और वरदान की क्या जरूरत! आप मिल गए तो बस! तुम्हें शायद ही यह याद आए कि तुम कहो कि नहीं, अब कोई वरदान नहीं चाहिए। बस ये चरण अब सदा मेरे हाथ में रहें, इन चरणों से लगा रहूं, इन चरणों की लौं लगी रहे, बस पर्याप्त। मांग सकोगे ऐसा? अगर बहुत सोचोगे-समझोगे तो कहोगे कि नंबर तीन पर इसको मांग लेंगे, पहले नंबर दो तो निबटा लें।
तुम इस बात को ही न मांग सकोगे। तुम्हारा हृदय तो संसार की याद से भरा है। तुम कहोगे--यह मौका क्यों चूकें? तुम कहोगे--कि राष्टपति बना दो, कि प्रधानमंत्री बना दो; कि दुनिया का सबसे बड़ा धनपति बन जाऊं।
ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
मुझको ईमान से अब कोई सरोकार नहीं
मैंने देखा है इन आंखों से मुरव्वत का मयाल
मुझको अब मेहरी-मोहब्बत से कोई प्यार नहीं
मैंने इंसान को चाहा भी तो क्या पाया
अब मेरा कुफ्र खुदा का भी तलबगार नहीं
जा किसी और से ईमान का सौदा कर ले
मैं तेरी नेक दुआओं का खरीददार नहीं

भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार।।
बस एक बात तुम्हारी पक्की हो गई कि तुम्हारे हृदय में परमात्मा का विचार नहीं उठता। और सब विचार उठते हैं, अनंत विचार उठते हैं, एक विचार चूक गया है--और वही सार्थक है। और जिसने उसे पा लिया, सब पा लिया। और जिसने उसे गंवा दिया, उसने सब गँवा दिया। और तुम जिसे समझ रहे हो संपत्ति, वह विपत्ति है।
दस्ते-पुरखूं को कफे-दस्ते-निगारां समझे
हत्यारे के हाथ को, खूनी के हाथ को चितेरे का हाथ समझे।
दस्ते-पुरखूं को कफे-दस्ते-निगारां समझे
कत्लगह थी जिसे हम महफिले-यारां समझे
और जहां मारा जाना था, जो कत्लगह थी, कत्लखाना था--कत्लगह थी जिसे हम महफिले-यारां समझे। ऐसा ही हुआ है संसार में। तुम कुछ-का-कुछ समझ रहे हो। यह कत्लगह है, यहां सभी मरने को तैयार खड़े हैं, यहां "क्यू" लगा है मौत का, इसको तुम घर समझ रहे हो?
दस्ते-पुरखूं को कफे-दस्ते-निगारां समझे
कत्लगह थी जिसे हम महफिले-यारां समझे
कुछ भी दामन में नहीं खारे-मलामत के सिवा
ऐ जुनूं, हम भी किसे कूए-बहारां समझे
आखिर में पाओगे कि दामन में सिवाय कांटों के और कुछ भी नहीं।
कुछ भी दामन में नहीं खारे-मलामत के सिवा
कांटे-ही-कांटे इकट्ठे हो जाएंगे। हो ही रहे हैं। तुम वही इकट्ठे कर रहे हो। तुम कांटों को फूल समझ रहे हो।
कुछ भी दामन में नहीं खारे-मलामत के सिवा
ऐ जुनूं हम भी किसे कुए-बहारां समझे
और हमने जिसे बसंत की गली समझा--कूए-बहारां--हमने जहां समझा था आनंद घटित होगा, जहां हमने सोचा था अमृत की वर्षा होगी, वहां सिवाय काँटों के और कुछ भी नहीं मिला। इस दुनिया से लोग हार कर जाते हैं। जीत कर भी जा सकते हो। मगर जीत उसके साथ है--"राम बिन सावन सह्यो न जाइ"। जीत उसके साथ है, हार अकेले-अकेले। जो उसके साथ हो लेता है, जीत जाता है। उसे मिल गई कूए-बहारां, उसे मिल गए बसंत के क्षण। फिर उसके जीवन में बसंत के अतिरिक्त कभी और कुछ नहीं घटता। फिर सावन भी है, प्यारा भी है और मिलन शाश्वत है।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार।।

बाछै उरध अरध सूं लागै भूले मुगध गंवार।
हे मूढ़, हे गंवार, तू चाहता तो स्वर्ग है, लेकिन बना लेता नरक है। यही हमारा संसार है। सब सुख चाहते हैं, और सब दुख पाते हैं। सब प्रतिष्ठा चाहते हैं और सब अप्रतिष्ठा पाते हैं। सब सम्मान चाहते हैं और सब अपमान पाते हैं। स्तुति मांगते हो, गालियां मिलती हैं। "बाछै उरध अरध सूं लागै" मांगते तो ऊपर को हो, मिलता नीचे का है। आकांक्षा तो बड़ी ऊंची करते हो, मगर परिणाम बिल्कुल नहीं देखते कि परिणाम क्या है? बाछै उरध अरध सूं लागै," ऊर्ध्वयात्रा की तो आकांक्षा है, मगर अधोगामी हो जाते हो। "भूले मुगध गंवार।"
"खाइ हलाहल जीयो चाहै"। जहर तो पीते हो और सदा जीता रहूं, ऐसी मन में वासना है। यह कैसे होगा? यह असंभव हो नहीं सकता।
"खाइ हलाहल जीयो चाहै, मरत न लागै बार।"
जीना चाहते हैं सदा और जो सदा है उसके साथ संबंध नहीं जोड़ते। संबंध जोड़ते उसके साथ जो क्षणभंगुर है। और जीना चाहते हैं सदा। देह के साथ संबंध जोड़ते हैं--जो आज है और कल नहीं हो जाएगी। आत्मा के साथ संबंध नहीं जोड़ते-- जो कल भी थी, आज भी है, और कल भी होगी।
"खाइ हलाहल जीयो चाहै, मरत न लागै बार।"
और देर कहां लगती है मरने में। और रोज तुम लोगों को मरते देखते हो, रोज अरथी उठाते हो, रोज लोगों को मरघट पहुंचा आते हो, मगर तुम्हें यह ख्याल नहीं आता कि जल्दी ही तुम्हारी घड़ी भी पास आ रही है। और तुम्हारी जिंदगी में कोई फर्क नहीं आता।
मैं छोटा था, तो मुझे मरघट जाने का शौक था। मरघट से मुझे बहुत मिला। गांव में कोई भी मरे--इसका कोई मुझे सवाल नहीं था--मैं सभी की अर्थी में जाता था। जब मैं स्कूल न पहुंचूं तो मेरे शिक्षक समझ लें कि कोई मर गया होगा गांव में। जब मैं घर खाने के वक्त न पहुंचूं तो घर के लाग समझ लें कि कोई मर गया होगा गांव में--जाओ, भेजो किसी को मरघट, पकड़ के लाए!
जब भी कोई मरता, मैं उसके साथ मरघट जाता। और मरघट पर जाकर दो हैरानी की बातें मुझे हमेशा दिखाई पड़तीं। उधर आदमी जल रहा है और लोग बैठे संसार की गपशप कर रहे हैं। इससे मैं हमेशा चमत्कृत हुआ। आदमी जल रहा है, कल तक इससे बातें करते थे, यह इनका दोस्त था, मित्र था, प्रियजन था, आज वह जल रहा है, उसकी अरथी में आग लगा दी है, अब बैठ कर वहीं आस-पास गपशप हो रही है--संसार की गपशप हो रही है कि फिल्म कौन सी लगी है? कैसी है? फलां आदमी का क्या हाल है? वही बाजार!
इनको याद भी नहीं आ रही कि यह मौत तुम्हारी भी मौत है। यह घड़ी तो ध्यान
की थी। यह तो बैठ कर सोचने की थी। यह तो विचार की थी। यह आदमी मर गया, यह भी इन्हीं बातों को करते मर गया कि कौन सी फिल्म कहां लगी है, और हम भी इन्हीं बातों को करते मर जाएंगे। लेकिन मुझे धीरे-धीरे समझ में आना शुरू हुआ, वे अपने को बचाने के लिए बातों में उलझाए हुए हैं। यह आदमी मर गया, यह बात दिखाई नहीं पड़नी चाहिए। क्योंकि यह अस्त-व्यस्त कर देगी। यह उनकी जिंदगी के ढांचे को तोड़-मरोड़ देगी। उनको फिर परमात्मा की याद करने को मजबूर होना पड़ेगा। फिर संसार का स्मरण करने से काम न चलेगा। क्योंकि संसार का स्मरण करते-करते रोज लोग मर रहे हैं।
कब तुम्हें सुध आएगी कि हम उसका स्मरण करें कि फिर मरना न हो! और ऐसा सूत्र तुम्हारे भीतर है। और ऐसी तुम्हारी संभावना है तुम अमरत्व के पुत्र हो! वेद कहते हैं--"अमृतस्य पुत्रः।" हे अमृत के पुत्रो, तुम क्यों मृत्यु में उलझ गए हो? जो संसार में उलझा, वह मृत्यु में उलझा। क्योंकि संसार मरणधर्मा है। जिसने प्रभु को स्मरण किया, वह अमृत हुआ। जैसा होना है, उससे ही साथ जोड़ लो। जैसा होना है, उससे ही दोस्ती कर लो। दोस्ती सोच-समझ कर करना। "खाइ हलाहल जीयो चाहै, मरत न लागै बार।"
"बैठे सिला समुद्र तिरन को", और मजा देखते हो कि लोग चट्टान समुद्र में डाल कर उस पर बैठ कर पार होने के इरादे कर रहे हैं। चट्टान तो डूबेगी ही डूबेगी प्यारे, तुम भी डूबोगे! ऐसे तो बिना ही चट्टान के भी चलते तो शायद पहुंच जाते। धन की नाव बना रहे हैं लोग, पद की नाव बना रहे हैं लोग, ये

चट्टानें हैं, ये तुम्हें डुबा देंगी। इनके साथ डूबना हो सकता है। इनके साथ पार होना नहीं हो सकता। "बैठे सिला समुद्र को", अहंकार की चट्टान लेकर चले हो, अकड़ लेकर चले हो? "बैठे सिला समुद्र तिरन को सो सब बूड़नहार।" वे सब डूबने वाले हैं। उस पार ले जानेवाली तो एक ही नाव है--नानक नाम जहाज। उसका नाम ही बस एकमात्र नाव है। उसका स्मरण ही; भजन बिन भूलि पर्यो संसार।
"नाम बिना नाहीं निस्तारा।"
ये छोटे से शब्द, ये चार शब्द तुम्हारी समझ में आ जाएं तो तुम्हारी जिंदगी में जादू आ जाए। नाम बिना नाहीं निस्तारा, इतनी भर तुम्हारी पकड़ हो जाए तो सब मंदिरों व सब मस्जिदों के राज तुम्हारे हाथों में आ गए, सब शास्त्रों की संपदा तुम्हें मिल गई।
"नाम बिना नाहीं निस्तारा।"
उसके नाम के बिना न कोई कभी पार हुआ है और न कभी कोई पार हो सकता है। "कबहुं न पहुंचै पार।" और जो इस सत्य को देख ले कि उसका स्मरण पार ले जाने वाला है, उसकी जिंदगी में इसी क्षण नृत्य शुरू हो जाता है। यह बात ही इतनी आह्लादकारी है, उदासी मिट जाती है, आंखों में नई चमक आ जाती है।
देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बहार
रक्स करना है तो फिर पांव की जंजीर न देख
.जरा पार आंख उठ जाए, देख जिंदां से परे, कारागृह से जरा ऊपर देखो, देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बहार, .जरा आकाश की तरफ देखो, जरा ऊपर उठो अपनी सीमाओं से--धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, नाम-धाम, इन सीमाओं के.जरा ऊपर उठो--देख जिंदां से परे रंगे-चमन जोशे-बहार, रक्स करना है तो फिर पाँव की जंजीर न देख। और जिन्हें नाच करना है, वे फिर बैठे हुए पांव की जंजीर ही नहीं देखते रहते। और जिसने ऊपर की तरफ देखा और नाच शुरू हुआ, उसकी नाच में सारी जंजीरें अपने से टूट जाती हैं।
जंजीरों के लिए बैठे रहने की कोई जरूरत नहीं है। जंजीरों ने तुम्हें नहीं बांधा है, तुम नाच भूल गए हो इसलिए जंजीरें हैं। जंजीरें तुम्हारे नाच को नहीं रोक रही हैं, नाच के न होने के कारण जंजीरें निर्मित हो गई हैं।
नाम बिना नाहीं निस्तारा कबहुं न पहुंचै पार।।
सुख के काज धसे दीरघ दुखष्ठ
देखते हो मूढ़ता? भूले मुगध गंवार। क्या है मूढ़ता इस जगत की? सुख के काज धसे दीरघ दुख। चाहते तो सुख हैं और घुसते जाते दुख में हैं। मांगते स्वर्ग हैं और खोजते जाते नरक। और तुम जानते हो कि यही हो रहा है। जितने दिन तुमने दुख उठाया है अब तक, ख्याल करो, चाहा तो सदा सुख है और पाया सदा दुख, यह मामला क्या है? यह गणित कैसा है? तुम अब तक खोजते किसे रहे? सुख खोजते रहे। और पाते क्या रहे? दुख पाते रहे। जरूर कहीं भूल हो रही है। तुम्हारे भीतर कोई बुनियादी भ्रांति है।
सुख के काज धसे दीरघ दुख बहे काल की धार।
और इसी में समय की धारा तुम्हें मृत्यु की तरफ बहाए ले जा रही है। यह बदलना होगा।
निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है
हजारो हैं सफे जिनमें, न मै आई, न जाम आया
कितने लोग हैं यहां जो जीवन का रस, जीवन का अमृत बिना पीए मर जाते हैं। जिनके हाथ में न कभी शराब लगी, न कभी प्याली पड़ी।
निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है
मधुशाला का नियम बदलने की जरूरत है। मधुशाला की व्यवस्था बदलने की जरूरत है। जीवन का ढंग बदलने की जरूरत है।
निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है।
हजारो हैं सफे जिनमें, न मै आई, न जाम आया
कितने लोग हैं, जो जीवित तो हैं लेकिन जीवन को जाने बिना। जो परमात्मा में जी रहे हैं परमात्मा को पीए बिना। सागर में हैं और प्यासे हैं। इनका कोई परिचय ही नहीं हुआ अमृत से।

मैं तुम्हारी तरफ देखता हूं तो मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि तुम कैसे इंतजाम किए जा रहे हो, तुम कैसे दुख का आयोजन किए जा रहे हो? कब जागोगे? कब देखोगे? अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारे चले जा रहे हो। भूले मुगध गँवार।
सुख के काज धसे दीरघ दुख, बहे काल की धार।
जन रज्जब यूँ जगत बिगूच्यो, इस माया की लार।।
इस तरह जगत अड़चन में पड़ा है। और माया की बुनियादी भ्रांति क्या है? माया की भ्रांति यही है कि उसने नरक के दरवाजे पर स्वर्ग लिख दिया है। दुख के दरवाजे पर सुख लिख दिया है। विपत्ति के दरवाजे पर संपत्ति लिख दिया है। बस चले तुम! तुम यह देखते ही नहीं कि वहां हो क्या रहा है? चले धन की खोज में! जरा धनियों की तरफ तो देखो। उन्हें मिला है कुछ? चले पद की खोज में। जो पद पर हैं.जरा उनकी अंतरात्मा में तो झांको! उन्हें मिला है कुछ? चले बने सिकंदर। सिकंदर को क्या मिला है? आज तक इस दुनिया में किसी धनी ने कहा है कि मुझे कुछ मिला? .जरा मनुष्य का इतिहास पलटो, सदियों-सदियों के अनुभव में तलाशो।
हां, कभी-कभी किसी बुद्ध ने, किसी महावीर ने, किसी कृष्ण ने, कबीर ने कहा है कि मुझे मिला है। लेकिन न तो यह धन के तलाशी थे, न पद के तलाशी थे। इनकी तलाश तो राम की थी। यह संसार के खोजी ही न थे। ये तो भजन में भीगे हुए लोग थे। इनने कहा है कि मिला है। इनकी तुम सुनते नहीं। इनकी न सुनने के तुमने कई उपाय कर लिए हैं। तुमने अपने को इनकी तरफ बज्र बहरा कर लिया है। तुम इनकी तरफ देखते नहीं। और कभी मजबूरी में अगर तुम्हें देखना भी पड़ता है तो तुम कहते हो--महाराज, ठीक ही कहते होओगे आप, यह रही पूजा, आपके चरण छूए लेते हैं, मगर मुझे बख्शो!
ऐ गदागर! मुझे ईमान की सौगात न दे
मुझको ईमान से अब कोई सरोकार नहीं
मैंने देखा है इन आंखों से मुरव्वत का मयाल,
मुझको अब मेहरो-मोहब्बत से कोई प्यार नहीं
मैंने इंसान को चाहा भी तो क्या पाया है
अब मेरा कुफ्र खुदा का भी तलबगार नहीं
जा किसी और से ईमान का सौदा कर ले
मैं तेरी नेक दुआओं का खरीदार नहीं
तुमने बुद्ध से यही कहा, तुमने महावीर से यही कहा, तुमने कृष्ण से यही कहा, क्राइस्ट से यही कहा, कबीर से यही कहा, यही तुम मुझसे कह रहे हो, यही तुम्हारे कहने की आदत पड़ गई है। यह आदत छोड़ो। इसी आदत में तुमने बहुत जन्म गंवाए हैं। इस जन्म को भी मत गंवा देना।
जन रज्जब यूं जगत बिगूच्यो, इस माया की लार।।
इस माया के पीछे चल-चल कर, इस झूठे सूत्र के पीछे चल-चल कर लोग बिगूचन में पड़े हैं, अड़चन में पड़े हैं, उलझन में पड़े हैं और जब मैं लोगों की बात कर रहा हूँ। तो ख्याल रखना, तुम्हारी बात कर रहा हूँ। नहीं तो लोग बड़े होशियार हैं, वे सोचते हैं--लोगों की बात हो रही है।
एक फकीर चर्च में हर रविवार को बोलता। और एक आदमी सदा सुनने आता, सामने ही बैठता। और जब भी प्रवचन पूरा होता तो उस फकीर के पास आता और कहता कि बिल्कुल ठीक किया; जो बातें कहीं, इनकी लोगों को बड़ी जरूरत है। लोगों को! आखिर फकीर सुन-सुनकर परेशान होने लगा। हर बार यही होता। कुछ भी कहे वह और वह आदमी आता और कहता कि अच्छा फटकारा! अच्छी जूतियां लगाईं, लोगों को इसकी जरूरत है!
एक दिन संयोग की बात खूब वर्षा हो गई, कोई नहीं आया, अकेला वही आदमी आया। फकीर ने सोचा कि आज का मौका चूकना नहीं है। उसने खूब जूतियाँ चलाईर्ं। उसने खूब फटकारें लगाईं। उसने इधर से मारा, उधर से मारा। मगर उस आदमी पर कुछ चोट ही न पड़े, वह बड़ा मस्त बैठा! फकीर भी थोड़ा हैरान होने लगा कि अब तो आज कोई है भी नहीं, अब यह मस्त क्या बैठा है! आज यह क्या कहेगा? लेकिन उस आदमी ने जो कहा सुन लेना ठीक से; जाते वक्त उसने कहा--गजब कर दिया, खूब मारा, हालांकि आज कोई आए नहीं थे। अगर आए होते, तो खूब फटकारा, बड़ी

जरूरत थी। इन्हीं चीजों की जरूरत थी। कोई फिकर न करो, मैं गांव-गांव में जाकर, घर-घर जाकर लोगों को कह आऊंगा।
मगर अपनी तरफ कोई लेना नहीं चाहता। लोग सोचते हैं, ये दूसरों की बातें
चल रही हैं।
मैं तुमसे कह रहा हूं। लोगों से कह रहा हूं, तो मैं तुमसे कह रहा हूं।
और किसी की यहां बात नहीं हो रही है। और किसी की बात करने की जरूरत भी नहीं है। जो यहां हैं, उनकी बात हो रही है। यह बात सीधी-सीधी है। जो भी मैं तुमसे कह रहा हूं, ठीक तुमसे कह रहा हूं। तुम यह मत सोचना कि यह पड़ोसी के लिए लागू है। तो यह बच्चू जो बगल में बैठा है, यही धन के पीछे पागल है; अच्छी पड़ी! हम तो पहले ही इसको समझाते थे, मगर कभी समझा नहीं। यह जो बगल में बैठे हैं नेता जी; अच्छी पड़ी, पद के पीछे दीवाने हैं। चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे थे, ठीक मारे गए। मैं तुमसे कह रहा हूँ। और जब तक तुम सीधे-सीधे लेना शुरू न करोगे, ये अमृतदायी वचन व्यर्थ चले जाएंगे। वर्षा होगी और तुम्हारा घड़ा खाली का खाली रह जाएगा।
ये सूत्र अनूठे हैं, इन्हें गुनगुनाना। ये सूत्र तुम्हारी समझ में आने लगें तो जिंदगी बड़ी सहल होने लगे।
मुझे सहल हो गईर्ं मजिलें वो हवा के रुख भी बदल गए
तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराग राह में जल गए
ये सूत्र तुम्हारी समझ में आ जाएं तो तुम्हारे हाथ में परमात्मा का हाथ आने लगे। वह तो तैयार ही खड़ा है, उसने तो हाथ तुम्हारी तरफ बढ़ाया ही हुआ है, कब से बढ़ाए-बढ़ाए थक गया है, मगर तुम हाथ हाथ में लेते नहीं।
मुझे सहल हो गईर्ं मंजिलें, वो हवा के रुख भी बदल गए
तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराग राह में जल गए
कठिन नहीं है कि चिराग राह में जल जाएं। कठिन नहीं है कि सावन में प्यारा भी आ जाए। सावन भी उसी का है, इसी में कहीं छिपा होगा। यहीं कहीं होगा पास-पड़ोस में। उसके बिना सावन भी कहां? यह सावन उसी की आभा है। यह सावन उसी की तरंग है। यह सावन उसी की छाया है। सावन आ गया, तो सावन का मालिक भी आ ही गया होगा। थोड़ा खोजें, थोड़ा तलाशें, थोड़ा पुकारें, थोड़े प्यास से भरें।
अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी कि पड़ी हम पर
अगर है तिश्नगी कामिल तो परवाने भी आएंगे

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
बारहवां प्रवचन

नीड़-निर्माण का मजाः जब आँधी हो

पहला प्रश्नः आप कृष्ण, क्राइस्ट, कबीर, सभी पर क्यों बोल रहे हैं?

मैं सभी हूं! तुम भी सभी हो। मुझे याद है, तुम्हें याद नहीं। इतना ही भेद है। मनुष्य की सारी वसीयत तुम्हारी है। मुनष्य की ही क्यों, अस्तित्व की सारी वसीयत तुम्हारी है। जो भी आज तक हुआ है, सब तुम्हारा है। और जो कल भी होगा, वह भी तुम्हारा है। तुम्हारे भीतर सारा अतीत छिपा है और सारा भविष्य भी। बुद्ध भी तुम्हारे भीतर हुए! महावीर भी। और आने वाले बुद्ध भी तुम्हारे ही भीतर जगेंगे, जन्मेंगे, जीएंगे; चलेंगे, उठेंगे, बोलेंगे। तुम इस विराट के साथ एक हो। इस बात की याद दिलाने के लिए बोल रहा हूं, सब पर बोल रहा हूं।
मनुष्य ने पुराने दिनों में बहुत संकीर्ण घेरे बना लिए थे, उन्हें तोड़ देना जरूरी है। जो कबीर को मानता है, वह कबीर के घेरे में बंद हो जाता है। जो क्राइस्ट को मानता है, वह क्राइस्ट के घेरे में बंद हो जाता है। ऐसे छोटे-छोटे डबरे लोगों ने बना लिए हैं। मैं सारे डबरे तोड़ रहा हूं, ताकि सागर प्रगट हो। कबीर का अपना ढंग है; और कृष्ण का अपना; महावीर का अपना और मोहम्मद का अपना। ये ढंग के ही भेद हैं। लेकिन जो जीवन-धारा, जो रसगंगा बही है, वह तो एक ही है। ये एक ही रसगंगा के अलग-अलग घाट, अलग-अलग तीर्थ हैं। तुम इन्हें अलग-अलग देखना बंद करो। इन्हें अलग-अलग देख कर बड़ी अड़चन पैदा हुई है। धर्म के नाम पर बहुत खून बहा। धर्म के नाम पर बहुत अधर्म हुआ है। और धर्म के नाम पर बहुत सीमाएं, पाखंड, औपचारिकताएं, क्षुद्रताएं निर्मित हो गई हैं। वे सब तोड़ देनी हैं।
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च, इनके होने के ढंग कितने ही अलग हों, लेकिन जिसके लिए ये निर्मित हैं वह मालिक एक है। उस मालिक की तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं। फिर जिसे जिस भांति रुच जाए। रुचि भर का भेद होगा। किसी को कृष्ण का ढंग रुचता है, तो जरूर उसी ढंग से चले। उसी बांसुरी के स्वर पर नाचे। किसी को बुद्ध का ढंग रुचता है, तो बुद्ध के साथ जोड़ ले नाता। लेकिन स्मरण सदा रखे कि डबरा न बन जाए। तुम्हारा बुद्ध का प्रेम इतना बड़ा होना चाहिए कि उसमें महावीर, मोहम्मद, क्राइस्ट, जरथुस्त्र समा जाएं। प्रेम अगर छोटा हो, तो घृणा हो जाता है। छोटा होने के कारण ही घृणा हो जाता है। इस पृथ्वी पर सारे लोग प्रेम करते हैं, फिर भी घृणा का राज्य है। क्या होगा कारण? सारे लोगों का प्रेम छोटा-छोटा है। छोटा प्रेम घृणा बन जाता है। प्रेम तो बड़ा ही हो तो प्रेम रहता है। प्रेम तो विराट ही हो तो प्रेम रहता है। प्रेम का विराट होना उसकी अनिवार्य लक्षणा है। आंगनों से प्रेम न करो। आंगनों में रहना भी पड़े तो रहो, मगर प्रेम तो आकाश से ही हो। तुम्हारे आंगन में भी जो आकाश है, वह विराट का ही हिस्सा है। तुमने एक दीवाल बना ली है, तुम्हारी दीवाल अपने ढंग की है, किसी ने पत्थर रख लिए हैं, किसी ने ईंटें जोड़ ली हैं, किसी ने संगमरमर की दीवाल बना ली है, मगर यह दीवालों का भेद है। यह जो आकाश तुम्हारे आंगन में उतरा है, उसमें कुछ भेद नहीं है। किसी का आड़ा है आंगन, किसी का तिरछा है, और किसी ने कोई और रूप दिया है, यह तुम्हारी मौज। तुम्हारा आंगन है, तुम जैसा चाहो बनाओ। जिस आकृति में चाहो बनाओ। लेकिन याद रखना, जो आकाश उतरा है उसका कोई आकार नहीं है। आकाश निराकार है।
निराकार भूल गया, आकार हाथ में पकड़कर रह गया। आंगन तो भूल ही गया, क्योंकि आंगन तो आकाश का अंग है, आंगन को घेरने वाली दीवाल महत्त्वपूर्ण हो गई। ऐसे तुम हिंदू बने, मुसलमान बने, जैन बने, ईसाई बने। और जितने तुम मुसलमान बन गए, हिंदू बन गए, जैन बन गए, उतने ही तुम कम आदमी हो गए। आदमी बनो। सारी वसीयत तुम्हारी है। कुरान भी गूंजे तुम्हारे भीतर, और गीता का भी गीत उठे; सब तुम्हारा है। इतने विराट में से तुम क्षुद्र को चुन कर दरिद्र क्यों होना चाहते हो? लेकिन अहंकार क्षुद्र के साथ ही संयोग बना

पाता है। विराट से संयोग बनाए तो मौत हो जाती है। अहंकार को मिटना पड़ता है। बूँद सागर से दोस्ती बनाएगी तो खो जाएगी। इससे लोग डरते हैं। इससे लोग छोटे-छोटे आयोजन कर लेते हैं।
और फिर जब तुम एक छोटा सा आयोजन कर लेते हो, तो उससे भिन्न जो है सब, विपरीत मालूम होने लगता है। जो तुम्हारे साथ नहीं, वह दुश्मन मालूम होने लगता है। फिर राजनीति पैदा होती है, धर्म तो नष्ट हो जाता है। यह तो राजनीति की भाषा है कि जो मेरे साथ नहीं, वह मेरा दुश्मन। जो मेरा गीत न गाए, वह मेरा दुश्मन। जो मेरी बाँसुरी न बजाए, वह मेरा दुश्मन। जो मेरे डंग से न नाचे, वह मेरा दुश्मन। तो दुनिया में मित्र तो कम रह जाते हैं, दुश्मन बहुत हो जाते हैं।
और यह सारा जगत परमात्मा से व्याप्त है। इस परमात्मा से तुम मैत्री
ही बनाओ सिर्फ। और ख्याल रखना, लाल रंग लाल है, हरा रंग हरा है, नीला रंग नीला है। भिन्न हैं बहुत, मगर फिर भी अभिन्न हैं, क्योंकि हैं तो सभी एक ही प्रकाश के अंग। एक ही इंद्रधनुष के हिस्से हैं। और दुनिया सुंदर है, क्योंकि सतरंगी है। यहां बहुत रूपों में बुद्ध का अवतरण हुआ है। बहुत रूपों में दीया जला है। परवाने इसकी फिकर नहीं करते कि दीया मिट्टी का है कि सोने का है, परवाने तो दीये को पहचानते हैं और दीये के साथ जोड़ लेते हैं दोस्ती और मिट जाते हैं। दीये की ज्योति को पहचानते हैं।
तुम ज्योति को पहचान सको, इसलिए इन सबकी बात कर रहा हूं। तुम विराट हो सको, इसलिए इन सबकी बात कर रहा हूं। छोटे न बनो।
बुसअते-बज्मे-जहां में हम न मानेंगे कभी
एक ही साकी रहे और एक पैमाना रहे
इतनी बड़ी दुनिया में, इतने विस्तीर्ण विराट में, इतने असीम में, तुमने
भी क्या जिद कर रखी है कि एक ही साकी रहे और एक ही पैमाना रहे! तुमने भी क्या जिद कर रखी है कि इसी मधुशाला से पीएंगे! जब कि सब तरफ उसका मधु बरसता हो।
बुसअते-बज्मे जहां में हम न मानेंगे कभी
एक ही साकी रहे और एक पैमाना रहे
सब सुराहियों से पिओ। सब मुधशालाएं तुम्हारी हैं। सब मंदिर-मस्जिद तुम्हारे हैं। जहां मौज हो, वहां प्रार्थना करो। जो निकट पड़ जाए, वहां पूजा करो।.जरा उठो और तुम चौंककर पाओगे कि अगर तुम मंदिर में भी पूजा कर पाते हो और मस्जिद में भी और गुरुद्वारे में भी और शिवालय में भी और चैत्यालय में भी, तुम अचानक पाओगे तुम्हारे हृदय का विस्तार होने लगा। तुम्हारी प्रार्थना बड़ी होने लगी। फैलने लगी, विस्तीर्ण होने लगी। छोटी- छोटी प्रार्थनाएं लिए चल रहे हो! इतना बड़ा आकाश मिल सकता है, तुम जमीन पर सरक रहे हो! और तुम मुझसे पूछते हो कि आप कृष्ण, क्राइस्ट, कबीर, सभी पर क्यों बोल रहे हैं!
एक और मित्र ने पूछा है उन्होंने पूछा है कि अतीत में तो कोई बुद्धपुरुष दूसरे बुद्धपुरुषों के वचनों पर नहीं बोला। उनकी तुम उनसे पूछ लेना, मेरे लिए तो कोई दूसरा नहीं है। जब बुद्ध पर बोलता हूं, तो बुद्ध ही हो जाता हूं। अभी रज्जब पर बोल रहा हूं तो रज्जब ही हो गया हूं। मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है। वे क्यों नही बोले दूसरों पर, तुम्हारा कहीं उनसे मिलना हो जाए उनसे पूछ लेना। मैं क्यों बोल रहा हूं, इसका उत्तर तुम्हें दे सकता हूं। मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है। बुद्धत्व का स्वाद एक है। जैसे सब सागर नमकीन हैं; ऐसे बुद्धत्व का स्वाद एक है। बाहर से चखो तो प्रेम, भीतर से चखो तो ध्यान। अपने भीतर जाकर उतरकर चखो तो ध्यान उसका स्वाद है और अपने बाहर किसी को बांट दो तो प्रेम उसका स्वाद है। एक पहलू सिक्के का प्रेम है, एक पहलू ध्यान है। कुछ बुद्धों ने एक पहलू पर जोर दिया, कुछ बुद्धों ने दूसरे पहलू पर जोर दिया। क्योंकि एक को पा लेने से दूसरा अपने- आप मिल जाता है। बुद्ध ने कहा ध्यान पा लो, प्रेम अपने से उपलब्ध होता है। और मीरा ने कहा प्रेम पा लो, ध्यान अपने से उपलब्ध होता है। तुम एक पा लो, दूसरा अपने से मिल जाता है। मैं तुम्हें याद दिला रहा हूं कि चाहो तो तुम

दोनों भी एकसाथ पा लो। जो तुम्हारी मर्जी हो, एक से चलना है एक से चलो, दूसरा मिल जाएगा, दोनों को एकसाथ पाना हो तो दोनों को एकसाथ पा लो।
मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है।
उन मित्र ने यह भी पूछा हैः और यही नहीं कि आप दूसरे बुद्धपुरुषों के वचन पर बोलते हैं, आप ऐसे लोगों का काव्य भी उद्धरण कर देते हैं जो बुद्धपुरुष नहीं हैं।
मेरे लेखे यहां कोई भी नहीं है जो बुद्धपुरुष न हो। तुम्हें पता न होगा। हो तो तुम वही। सोए-सोए हो, तंद्रा में हो, खोए-खोए हो, मगर हो तो तुम वही। बुद्ध ने कहा है, जिस दिन मैं बुद्ध हुआ, उसी दिन मेरे लिए सारा अस्तित्व बुद्ध हो गया। मैं भी तुमसे यही कहता हूं। यह हो सकता है कि जिन कवियों की पंक्तियां मैं उद्घृत करता हूं, उन्हें भी याद न हो कि वे कौन हैं। मगर मैं अपने को जान कर, अपने को पहचान कर इस पहचान को भी पा लिया हूं कि सबके भीतर वही बोल रहा है। और कभी-कभी सोए हुए आदमी से भी उसकी ऐसी प्यारी पुकार उठती है! और कभी-कभी सोया हुआ आदमी भी ऐसे प्यारे शब्दों में उसकी अनुगूँज कर जाता है!
वस्तुतः जो भी श्रेष्ठ काव्य है, वह कवि के द्वारा निर्मित नहीं होता, कवि से सिर्फ बहता है। उस घड़ी में कवि मिट गया होता है और परमात्मा ही होता है। ज्यादा देर यह बात नहीं टिकती, फिर कवि लौट आता है, न केवल लौट आता है बल्कि अपनी कविता पर--जो उसकी नहीं है, उससे आई है, उससे बही है--उसका दावेदार हो जाता है। उस पर हस्ताक्षर कर देता है कि यह मेरी कविता है। लेकिन जगत के सारे विचारशील कवियों ने यह कहा है कि जो भी हमसे श्रेष्ठ पैदा हुआ है, वह हमसे नहीं आया, हमसे पार कहीं से आया है।
रवींद्रनाथ ने कहा है कि जो भी श्रेष्ठ है मेरे गीतों में, वह मेरा नहीं है। कहीं-कहीं कोई पंक्ति जो अद्भभुत स्वर्णमयी हो उठी है, वह मेरी नहीं है। उसमें चमक किसी और ही रोशनी की है। हां, मेरे ओंठों का उपयोग हुआ है। ऐसा ही समझो कि तुम अपनी कलम से एक गीत लिखते हो, अगर कलम भी बोल सकती होती तो कहती कि गीत मैंने लिखा है। कलम बोल नहीं सकती, बस इतनी ही दिक्कत है। कलम भी बोल सकती होती तो झंझट खड़ी हो जाती, कलम कहती कि मेरे बिना तो नहीं लिखा न; मैंने लिखा है, मैं मालिक हूं।
कवि अपने गहरे क्षणों में सिर्फ कलम हो जाता है। इसलिए हम सदा से मानते रहे हैं कि वेद अपौरुषेय हैं; उनको किसी पुरुष ने नहीं लिखा है। इसका यह मतलब नहीं कि पुरुष ने नहीं लिखा, पुरुषों ने ही लिखा है, क्योंकि लिखावट तो जब भी होगी कलम से ही होगी, कलम तो चाहनी ही होगी, बिना कलम के कैसे लिखोगे, लिखा तो पुरुषों ने ही है, मनुष्यों ने ही है, मगर जिन्होंने लिखा, लिखते क्षण में वे मिट गए थे। द्वार हो गए थे। उनके पार से आकाश झलका था, चांद-तारों ने रोशनी फेंकी थी, परमात्मा उनसे बोल सकता था, उन्होंने जगह दे दी थी, राह से हट गए थे, बाधा न रहे थे, अवरोध हटा लिए थे, कहा था, मैं मौजूद हूं, मेरा उपयोग कर लो; उपकरण हो गए थे, निमित्त-मात्र थे। जैसे कलम निमित्त-मात्र है। कलम लिखती नहीं कविता, सिर्फ निमित्त है लिखने में; लिखी जाती है कविता उससे, मगर आती कहीं और से है। वेद ही अपौरुषेय नहीं हैं, कुरान भी अपौरुषेय है। और बाइबिल भी। मगर वेद, कुरान और बाइबिल को हम मान भी लें अपौरुषेय, मेरे देखे तो साधारण से साधारण कवि में भी कभी-कभी अपौरुषेय तत्व उतर आता है, उसकी झलक आ जाती है। उसे पता नहीं, इतना उसका ध्यान अभी गहरा नहीं कि पहचान ले कहां से यह स्वर आया, अभी इतनी गहरी उसकी प्रज्ञा नहीं है कि प्रत्यभिज्ञा कर ले कहां से, किस द्वार से यह किरण उतरी, सोचता है मेरी ही है, दावेदार बन जाता है; लेकिन जब जागेगा, तो पाएगा कि मेरा कुछ भी नहीं है।
तो ठीक पूछा तुमने कि मैं कभी-कभी उनके उद्धरण भी देता हूं जिनको साधारणतः कोई बुद्धपुरुष नहीं कहेगा। लेकिन मैं तो वृक्षों की भी बातें करता हूं, पहाड़ों की भी बातें करता हूं, चांद-तारों की भी बातें करता हूं, इनमें भी मेरे लिए बुद्ध ही सोए हुए हैं। वृक्ष में बुद्ध हरे हैं, पहाड़ में बड़ी गहरी नींद में सोए हैं--जागेंगे कभी; कभी वह घड़ी आएगी जब पहाड़ भी जागेगा और बुद्धत्व को उपलब्ध होगा और वृक्ष भी जागेगा, और बुद्धत्व को

उपलब्ध होगा; कभी तुम भी वृक्ष थे और कभी तुम भी पहाड़ थे, यात्रा करते-करते अब तुम आदमी हो गए हो, अब एक कदम और उठाओगे तो बुद्ध हो जाओगे।
तुम्हारे स्वभाव की परिभाषा क्या है? स्वभाव की एक ही परिभाषा है, जो अंततः तुम्हारे भीतर होगा, वही तुम्हारा स्वभाव है। जो अंतिम शिखर होगा तुम्हारा वही तुम्हारा स्वभाव है। क्योंकि वही तुम्हारा अंतिम शिखर हो सकता है जो तुम्हारे भीतर सदा से अंतर्तम में छिपा पड़ा था। एक बीज है, इसका स्वभाव तो पहचान में नहीं आता। बीज तो बंद है, पहचानोगे कैसे? ताले पड़े हैं बीज पर, द्वार-दरवाजे बंद हैं, कुंजी भी मिलती नहीं कोई। इस बीज को फिर तुम डाल देते हो भूमि में, फिर यह टूटता है, अंकुरित होता, फिर इसमें वृक्ष पैदा होता है, फिर एक दिन तुम पाते हो कि फूलों से लद गया वृक्ष; अब तुम जानते हो कि यह बीज का स्वभाव क्या था। यह गुलमोहर था। यह जो आज सुर्ख फूलों से भर गया है, यह लपटों की तरह आकाश में इसने फूल उठा दिए हैं। इन फूलों से भरा है, यह इसका स्वभाव था। बीज में तो पहचान में न आ सका था, लेकिन फूलों में पहचान में आ गया। तुम बीज हो, बुद्ध के फूल खिल गए हैं, मगर तुम्हारे बीज में भी यही सब भरा है। तुम्हारा बीज भी इसी सबको अपने भीतर लिए है। तुम छोटे नहीं हो, तुम कितने ही छोटे अपने को बना लिए हो मगर तुम छोटे नहीं हो।
तो मैं तो उनसे भी चुन लेता हूं, जिनको तुम साधारणतः बुद्धपुरुष न कहोगे। मेरे लिए बुद्धों में और अबुद्धों में जो भेद है, बड़ा छोटा सा है। जरा सा है। बुद्ध जागे हैं, अबुद्ध सोए हैं। स्वभाव में रत्ती-मात्र का भेद नहीं है। और कभी-कभी सोया हुआ आदमी भी ऐसी बातें बोल जाता है, कभी-कभी छोटे बच्चे ऐसी बातें बोल जाते हैं कि बड़े-बूढ़े और सयाने मात हो जाएं। कभी- कभी छोटे बच्चों के मुंह से ऐसी बातें निकल आती हैं--जो अभी तुतलाते हैं, जिन्हें अभी बोलना भी ठीक से नहीं आया--ऐसे सत्य प्रगट हो जाते हैं कि जिनके सामने बड़े-बड़े सत्य को विचार करनेवाले विचारक फीके पड़ जाएं, छोटे पड़ जाएं। यही तो जिंदगी का रहस्य है। इसलिए मुझे कोई अड़चन नहीं होती।
फिर मैं इसकी फिकर नहीं करता कि कवि का क्या प्रयोजन है। कवि के शब्द
ले लेता हूं, अर्थ तो मैं अपने डालता हूं। शायद कवि पढ़ेगा, सुनेगा, तो खुद भी चौंकेगा-शायद ये उसके अर्थ रहे भी न हों, शायद इस भाँति उसने सोचा भी न हो। उसने तो शायद शराब का गीत शराब के लिए ही लिखा हो, लेकिन जब मैं उसका गीत उद्धृत करता हूं, तो मेरे लिए शराब शराब नहीं रह जाती, परमात्मा का आनंदरस हो जाता है। रसो वै सः। अर्थ तो मैं अपने डाल देता हूं, रंग तो मैं अपना डाल देता हूं। सुराही मैं किसी की उठा लेता हूं, रस तो मैं अपना डाल देता हूं। तुम्हें यह याद दिलाना चाहता हूं कि तुम बुद्धत्व से बहुत दूर नहीं हो।.जरा जागने की बात है। एक क्षण में भी हो सकती है। और भजन-भाव जग सकता है, फूल खिल सकते हैं।
फिर उन मित्र ने यह भी पूछा है कि आपका हर शब्द काव्य है, फिर आप बाहर
के काव्य से क्यों उद्धरण देते हैं?
कौन बाहर, कौन भीतर? कहां बाहर, कहां भीतर? ये बाहर-भीतर के भेद छोड़ो। यहां सब एक हैं। यहां न कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है। यही मेरा काव्य है, जिसमें न कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है; न कुछ अपना है, न पराया है। इस एकरसता में डूबो।
लेकिन तुम्हें संकीर्ण दायरे पसंद आते हैं। तुम्हें बड़ी अड़चन होती है
यह बात मानकर कि मैं कबीर पर बोलूं, फरीद पर बोलूं, रूमी पर बोलूं, तुम्हें बड़ी अड़चन होती है।
मैं एक जैन-संत पर बोल रहा था, बीच में फरीद का मैंने उल्लेख किया--और फरीद तो मुसलमान था--एक सज्जन मेरे सामने ही बैठे बड़े मस्त हो रहे थे, एकदम चौंके, उठ कर चल पड़े। बाद में उन्होंने मुझे खबर भेजी कि आपने जैन-संत पर बोलते समय और मुसलमान फकीर का उल्लेख किया, यह बात ठीक नहीं है। कहां अहिंसा और कहां हिंसा? कहां वीतराग जैन-संत और कहां फरीद? आपने दोनों की तुलना की! इससे हमारे हृदय को बड़ी चोट पहुंची।
ऐसे ओछे हो गए हैं लोग। उन्हें फरीद का कुछ पता नहीं है। फरीद उतना ही वीतराग है, जितने उनके जैन-संत वीतराग होंगे। शायद थोड़ा ज्यादा ही। उनकी

कठिनाई क्या है? उनकी कठिनाई यह है कि उनका जैन-मुनि तो पत्नी को छोड़ कर चला गया है और यह फकीर ने तो पत्नी नहीं छोड़ी है। मगर यह हो सकता है जो पत्नी को छोड़ कर चला गया है वह पत्नी से डरता हो, भयभीत हो, पत्नी के पास रहेगा तो वासना जगने की संभावना रही होगी; और जो पत्नी के पास ही रहा आया, वह इतना वीतराग हो कि अब पास और दूर से क्या फर्क पड़ता है? पत्नी है तो रही आए। भीतर की वासना दग्ध हो गई हो तो पत्नी से भागने की जरूरत भी क्या है? कोई पत्नी से थोड़े ही भागता है, अपनी ही वासनाओं से, अपने ही रोगों से, अपने ही भीतर छिपे हुए सांप-बिच्छुओं से भागता है। मगर वे तो तुम्हारे साथ ही चले जाते हैं। मगर हम ऊपर से देखने के आदी हैं। हम तो लेबिल लगा कर बैठे हैं। लेबिल लगा दिए हैं और अपने-अपने लेबल को सम्हाले बैठे हैं, और अपनी सीमा में दूसरे को प्रवेश नहीं करने देते।
मुझसे सभी नाराज हैं। होना चाहिए था सभी को प्रसन्न, क्योंकि मैं सभी
के संतों की बातें कर रहा हूं, लेकिन सभी नाराज हैं। नाराज इसलिए हैं कि उनके ही संत की बात अगर करता, तो ठीक था। और संतों को बीच में ले आया हूं! सभी की प्रशंसा कर रहा हूं! इससे उनकी सीमाएं डगमगा गई हैं। इससे उन्हें बेचैनी पैदा हो गई है।
फिर तुमने बुद्धपुरुषों के बीच बड़े फासले खड़े कर रखे हैं। जैन बुद्ध
को ज्ञानी नहीं मानते। और न ही बौद्ध महावीर को उपलब्ध सिद्ध मानते हैं। औरों की तो बात छोड़ो, इतने पास-पास ये दोनों आदमी थे--महावीर और बुद्ध--फिर भी दोनों के अनुयायी दोनों को स्वीकार नहीं कर पाते। तुम्हारे मन छोटे हैं, संकीर्ण हैं। तुम एक ढांचा बना लेते हो। उस ढांचे में जो आ जाए, बस वही ठीक। मैं ढांचे मिटा रहा हूं। मैं तुम्हें उस दिशा में ले चल रहा हूं जहां तुम एक दिन कह सकोगे--सब ठीक; जहां किसी ढांचे के आधार से न कहोगे सब ठीक, बल्कि जीवन ठीक ही हो सकता है, गलत होगा ही कैसे; सब ठीक, क्योंकि सब परमात्मा से व्याप्त है; सब उसकी लीला, तो गलत कैसे होगा? जिस दिन तुम गलत में भी ठीक देख लोगे, उस दिन समझना कि तुमने ठीक को देखा। जब तक तुम्हें गलत अलग और ठीक अलग दिखता है, तब तक तुमने ठीक को अभी देखा नहीं। जिस दिन तुम्हें अंधेरे में भी रोशनी दिखाई पड़ेगी, उसी दिन जानना कि रोशनी पहचाने हो। उसके पहले तुमने रोशनी पहचानी नहीं।
मुझे न तो बुद्धों में कुछ फर्क है, और न बुद्धों और अबुद्धों में कुछ फर्क है। मेरी दृष्टि में कोई फर्क ही नहीं है। सबका स्वीकार है, सबका अंगीकार है। और ऐसा ही सर्वस्वीकार तुम्हारे भीतर जगे, यह मेरी चेष्टा है।
तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूंघे?
इनको मसला न करो
कितनी आजुर्दा
मगर भीनी महक देते हैं
इनको फेंका न करो
गर्द-आलूद बुझे चेहरों को भी समझा करो सिर्फ देखा न करो
हाथ के छालों का
घट्टों का
मदावा भी करो
सिर्फ छेड़ा न करो
तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूंघे? ये सब सूखे बेले हैं।
अतीत में कितने फूल खिले हैं। तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूंघे? इनको मसला न करो
कितनी आजुर्दा
मगर भीनी महक देते हैं
इनको फेंका न करो

सारा अतीत अपने भीतर समा लेने जैसा है। सारा अतीत तुम्हारा है। और ध्यान रखना, मैं परंपरावादी नहीं हूं। मैं नहीं चाहता कि तुम अतीत से बंधे रहो। मगर मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम अतीत के शत्रु हो जाओ। मैं चाहता हूं, अतीत को तुम अपने में समा लो और अतीत से आगे बढ़ो। जितना हो चुका है, वह तुम्हारा है, और बहुत कुछ होना है। अतीत पर रुकना मत।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, अतीत-उन्मुख। वे अतीत में ही अटके रहते हैं। उनकी आंखें पीछे की तरफ फिर गई हैं। वे वेद में ही तलाश करते रहते हैं। उनको जो पीछे हुआ है, वही ठीक है, आगे सब गलत है। फिर इनके विपरीत दूसरे तरह के लोग हैं। वे कहते हैं, जो आगे होगा वही ठीक है। पीछे जो हुआ है, सब गलत है। मैं तुमसे कहता हूं, पीछे जो हुआ है वह भी ठीक है, आगे और भी ठीक होने को है। तुम पीछे को भी सम्हाल लो, पीछे की संपदा को भी सम्हालो अपने में, तुम ज्यादा समृद्ध हो जाओगे। और उसी समृद्धि की बुनियाद पर भविष्य के महल खड़े होंगे और भविष्य के मंदिर उठेंगे। जो अतीत में जाना गया है, उससे बहुत कुछ ज्यादा भविष्य में जाना जा सकेगा। क्योंकि अतीत के कंधे पर हम खड़े हो सकते हैं। इसलिए बोल रहा हूं कबीर पर भी, क्राइस्ट पर भी, कृष्ण पर भी, ताकि तुम इन सब कंधों का सहारा ले लो; ताकि तुम इन सब कंधों पर खड़े हो जाओ, तुम ऊपर उठो।
कभी किसी छोटे बच्चे को बाप के कंधों पर खड़ा हुआ देखा है! फिर उसे दूर
तक दिखाई पड़ने लगता है। तुम इन सारे कंधों का उपयोग कर लो, ये तुम्हारी सीढ़ियाँ हैं। तुम इन पर चढ़ते चले जाओ, ताकि तुम्हें और दूर और विस्तीर्ण दिखाई पड़ने लगे। पूजा मत करो इनकी, इनको आत्मसात कर लो। तुम पूजा में पड़े हो! पूजा बचने का उपाय है। मैं तुम्हें पूजा नहीं सिखा रहा हूं, तुम्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया सिखा रहा हूं। इसलिए पुनरुज्जीवित करता हूं-- अभी रज्जब पर बोल रहा हूं, तो कोशिश यह है कि अब तुम रज्जब को सीधा पढ़ोगे तो कुछ तुम्हारे हाथ में आएगा नहीं, शब्द रह जाएंगे, मैं अपने प्राण रज्जब में डाल देता हूं, जैसे रज्जब ने बोला होता वैसे तुमसे फिर बोलता हूं, तुम्हें एक मौका देता हूं रज्जब के साथ सत्संग कर लेने का, यह कोई रज्जब के ऊपर टीका नहीं हो रही है, यह रज्जब के ऊपर कोई व्याख्या नहीं हो रही है, मैं कोई पंडित नहीं हूं, न कोई भाषाशास्त्री हूं, न कोई इतिहासज्ञ हूं; यह रज्जब के ऊपर कोई व्याख्यान नहीं हो रहा है, रज्जब को निमंत्रित कर रहा हूं कि मेरा उपयोग कर लो, थोड़ी देर को फिर लोगों को सत्संग का मौका दे दो, फिर से तुम्हारी वाणी जीवित हो जाए।
तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूंघे?
इनको मसला न करो
कितनी आजुर्दा
मगर भीनी महक देते हैं,
इनको फेंका न करो
तुमने सूखे हुए बेले भी कभी सूंघे?
ये सूखे हुए बेलों को फिर से हरा कर रहा हूं। ताकि फिर एक बार तुम्हारे नासापुट इनकी अपूर्व सुगंध से भर जाएं। कौन जाने कौन-सा फूल तुमको पकड़ ले और रूपांतरित कर जाए। कौन जाने कौन सी वाणी तुम्हारी हृदय-तंत्री को छू दे। कौन जाने मीरा तुम्हें जगाए कि महावीर तुम्हें जगाए। कौन जाने किसकी पुकार तुम्हारे सोए प्राणों को मथ डाले। इसलिए सबको बुला रहा हूं।
जो सत्संग तुम्हें उपलब्ध हो रहा है, वैसा सत्संग पृथ्वी पर कभी किसी
को उपलब्ध नहीं हुआ था। इसलिए सबको बुला रहा हूं। सारी गंगा तुम्हें उपलब्ध करवा दे रहा हूं। जो घाट तुम्हें रुच जाए, जहां और जिस नाव में तुम बैठ जाना चाहो बैठ जाओ, पार उतरना है। पार उतरना ही है। कोई भी बहाने से पार उतरो। अटके मत रह जाओ। इसलिए सब पर बोल रहा हूं। मैं सब हूं। तुम भी सब हो। मुझे याद है, तुम्हें याद नहीं। तुम्हें याद दिलाने के लिए बोल रहा हूं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा, जंजीरें टूट जाती है। लेकिन मेरी जंजीरें टूटीं नहीं, पर अब वही जंजीरें नूपुर बन कर बज रही हैं।

हेमा! यही मतलब है जंजीर टूट जाने का। जंजीर है ही नहीं। माना है तो जंजीर है। संसार है कहां? माना है तो संसार है। जागो और जंजीरें नूपुर बन जाती हैं--यही तो मजा है--संसार निर्वाण हो जाता है। इसलिए तो मैं कहता हूं, संसार से भागना नहीं है, जागना है। भागने में तो यह बात हमने मान ही ली कि संसार में निर्वाण नहीं हो सकता। भागने में तो हमने यह बात मान ही ली कि जंजीरें सच्ची हैं और तोड़नी पड़ेंगी। जंजीरे झूठी हैं, सपना हैं। देखते ही नूपुर बज उठते हैं। गुलामी है नहीं, भ्रांति है; समझते ही गुलामी विसर्जित हो जाती है। स्वतंत्रता का संगीत जगने लगता है।
छलके न सुबू और झूम उठे, कतरा न मिले और प्यास बुझे
यह जर्फ है पीने वालों का साकी का कोई एजाज नहीं
पीने का ढंग चाहिए। पीने की शैली आनी चाहिए। तो फिर ऐसी अदभुत घटना भी
घट जाती है। "छलके न सुबू और झूम उठे, कतरा न मिले और प्यास बुझे।" एक बूंद भी नहीं जाती कंठ में और प्यास बुझ जाती है। सुराही छलकती भी नहीं और प्याले भर जाते हैं। "यह जर्फ है पीने वालों का", यह विशिष्टता है पीने वालों की, "साकी का कोई ऐजाज नहीं"--पिलाने वाले का कोई चमत्कार नहीं। पीने का ढंग आ जाए, पियक्कड़ होने की कला आ जाए, तो संसार निर्वाण है, पदार्थ परमात्मा है; और साधारण से कृत्य असाधारण हो जाते हैं। उठना-बैठना पूजा हो जाती है। प्रेम प्रार्थना हो जाती है। इस जगत में जो भी मिलता है, प्रभु ही मिलता है। आंख बदली कि सब बदला।
हेमा, ठीक कहती है तू कि जंजीरें टूटी नहीं है, पर अब वही जंजीरें नूपुर बन कर बज रही हैं। यही जंजीर के टूटने का मतलब है। अब जंजीरें कहां हैं, अब नूपुर हैं। जंजीरें गईं। वह हमारी भ्रांति थी। जैसे रास्ते पर किसी ने रस्सी को पड़ा देखा था और सांप समझ लिया था। अब रोशनी हो गई, या दीया जल गया, आंख खुल गई, गौर से देखा, रस्सी है; सांप गया, सांप का भय गया। ऐसा ही यह संसार है। हमने कुछ का कुछ समझ लिया है।
इसलिए तो मैं कहता हूं कि संबंधों से भागना मत। क्योंकि जिस पत्नी को छोड़ कर तुम भाग रहे हो, उसमें परमात्मा बसा है। और जिस पति को छोड़ कर तुम भाग रहे हो, उसमें परमात्मा बसा है। जिस बेटे को छोड़ कर तुम जंगल जा रहे हो, उसमें भी परमात्मा ही आया हुआ है। तुम जा कहां रहे हो? परमात्मा तुम्हें खोजने कितने रूप में आया है--पत्नी के रूप में, बेटे के रूप में, बेटी के रूप में, मां के रूप में, मित्र के रूप में, पड़ोसी के रूप में, परमात्मा ने कितने रूप धरे हैं तुम्हें खोजने को! तुम्हें सब तरफ से तलाश रहा है, तुम जंगल जा रहे हो!
जागने भर की बात है, सब बदल जाता है। आंसू मुस्कुराहटें हो जाते हैं। कारागृह मंदिर हो जाता है।
हालते दिल अयां हो गई
खामोशी तर्जुमां हो गई
हालते जिंदगी का बयां
दुखभरी दास्तां हो गई
कोशिशे इल्तफातो करम
कोशिशे रायगां हो गई
दास्ताने गमे आरजू
जब बढ़ी बेकरां हो गई
खुल गया जिंदगी का भरम
हर नफस इम्तहां हो गई
तुमने हंस कर जो देखा मुझे
जिंदगी नग्माख्वां हो गई
उसकी बस एक हंस कर देख लेने की बात--"तुमने हंस कर जो देखा मुझे, जिंदगी नग्माख्वां हो गई।" गए सब रोने के दिन, गीत के दिन आ गए--"जिंदगी नग्माख्वां हो गई", जिंदगी गायक हो गई। आंसू मुस्कुराहट में बदल जाते हैं।

और जहां तुमने दुख के अतिरिक्त कुछ भी न पाया था, वहां दुख ही भर नहीं मिलता और सब मिलता है। जहां तुमने नरक ही नरक पाया था, अचानक तुम हैरान हो जाते हो कि नर्क गया कहां? स्वर्ग का अवतरण हो गया।
स्वर्ग और नरक कहीं और नहीं हैं। यहीं हैं, तुम्हारी नजर में हैं; तुम्हारी दृष्टि सृष्टि है। देखने की कला सीखो, पीने की कला सीखो। जिंदगी एक अवसर है जीने की कला सीखने का। इसलिए मैं तुम्हें जीवन से जरा भी नहीं तोड़ना चाहता। जीवन से जोड़ना चाहता हूं। समग्रीभूत भाव से तुम जीवन के साथ एक होकर जीवन को देखो, पहचानो, जीओ, यहीं कहीं रा.ज छिपा है।

तीसरा प्रश्नः भगवान दो-तीन दिन से मैं यहां आई हूं। शायद थोड़े दिन रह जाऊंगी। लेकिन मैं आपको किडनेप करने आई हूं। आपके सब संन्यासियों को सावधान कर दें। फिर ऐसा न हो कि मैंने बताया नहीं था। यह सवाल नहीं है, झांसा चिट्ठी है। आप तो हर रोज मेरे साथ हैं, फिर कभी-कभी भाग भी तो जाते हैं। अब आप भाग न सकेंगे और मैं नहीं जाऊंगी।

योगिनी! इरादा बिल्कुल नेक है। गुरु को चुराना ही होता है। गुरु को चुरा कर अपने हृदय में बसाना ही होता है। और कोई उपाय भी नहीं है। तुम्हें "किडनेप" करने की मेहनत न करनी पड़ेगी, मैं तो खुद ही तुम्हारे साथ चलने को राजी हूं। जगह दो। सिंहासन खाली करो। सिंहासन से अहंकार को उतर जाने दो। तो मैं तुम्हारे साथ अभी हो जाऊं। और जब-जब तुम्हारे मन से, सिंहासन से अहंकार उतर जाता है, तब-तब साथ हो जाता है। जब-जब अहंकार फिर सिंहासन पर बैठ जाता है, तब-तब साथ टूट जाता है। यह सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। तुम चाहो तो चौबीस घंटे मुझे साथ रखो। तुम्हारी मर्जी की बात है।
इसलिए अगर कुछ करना है तो वहां भीतर कुछ करना होगा। वहां याद को सघन करो। वहां से "मैं-भाव" को जाने दो। यह "मैं-भाव" इतना गहन होकर बैठा है, इतनी गहराई तक इसकी जड़ें प्रविष्ट हो गई हैं कि तुम इसकी शाखा-प्रशाखा काटते रहो, कुछ नहीं होगा; नये अंकुर निकल आते हैं। इसकी जड़ काटनी होगी। जड़ कैसे कटती है?
दो ही उपाय हैं। या तो प्रेम से कट जाती है जड़, या ध्यान से कटती है जड़।
दो में से कोई एक उपाय चुन लो। वही मुझे किडनेप करने का उपाय है। या तो प्रेम से, इतने प्रेम से भर जाओ कि अहंकार उसमें डूब ही जाए। और या, इतने ध्यान से भर जाओ कि जागरूकता इतनी सघन हो कि अहंकार है ही नहीं, यह दिखाई पड़ जाए। ध्यानी को दिखाई पड़ जाता है कि अहंकार न कभी था, न है। एक झूठ था। एक धारणा थी। और प्रेमी को दिखाई पड़ जाता है, क्योंकि प्रेम अहंकार को डुबा देता है। उस झूठी धारणा को किसी के प्रेम में बहा देता है। बाढ़ आ जाती है प्रेम की और अहंकार की झूठी धारणा बह जाती है। दो में से कुछ एक उपाय है।
और मैंने तुझे आनंद योगिनी नाम दिया है। इसीलिए दिया है--ध्यान तेरा मार्ग है। ध्यान तेरा योग है। योग अर्थात ध्यान, जागरूकपन। और-और जाग। उठते-बैठते-सोते एक ही स्मरण रहे कि जो भी मैं करूं, जो भी मुझसे हो, उसमें बेहोशी न हो। चलूं तो होशपूर्वक, बैठूं तो होशपूर्वक, बस होश को सँभालो। होश के सम्हलते-सम्हलते एक दिन तुम अचानक पाओगे, सब घटित हो गया है।

चौथा प्रश्नः संसार संन्यास में बाधाएं डाल रहा है। परिवार विरोध में है; पत्नी विरोध में है; समाज विरोध में है; और आपकी निंदा में वे सभी सहमत हैं। मैं क्या करूं?

संसार बाधा डाले, यह स्वाभाविक है। इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं। संसार बाधा न डाले तो संन्यास की कोई जरूरत ही न रह जाए। संसार बाधा डालता है, इसी में तो चुनौती है। जो हिम्मतवर हैं, वे चुनौती स्वीकार कर लेते हैं।
समाज को छोड़ना नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि समाज को छोड़ना है; मगर समाज की हर बात मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति स्वतंत्र है।

उसकी अंतःप्रज्ञा स्वतंत्र है। अपनी निजता की घोषणा करो। संसार तो संन्यास का विरोध करेगा। क्योंकि संसार नहीं चाहता कि तुम्हारे भीतर निजता हो। निजता खतरनाक है समाज के लिए, संसार के लिए। संसार तो चाहता है कि तुम एक कुशल यंत्र होओ, बस। आत्मा तुम में होनी नहीं चाहिए; आत्मा से झंझट होती है।
अब एक सैनिक के पास अगर आत्मा हो, तो वह सैनिक नहीं हो पाएगा। क्योंकि आत्मा हो तो हजार प्रश्न उठेंगे। वह पूछेगा कि मैं गोली इस आदमी पर क्यों चलाऊं? इसने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं। इससे मेरी पहचान तक नहीं; दुश्मनी की तो बात दूर। दुश्मनी से पहले दोस्ती तो होनी चाहिए, कम से कम पहचान तो होनी ही चाहिए। इसे मैंने पहले कभी देखा भी नहीं। इसे मैं क्यों गोली मारूं? और जैसे मेरी पत्नी मेरे घर राह देखती है, इसकी पत्नी भी इसके घर राह देखती होगी। और मेरे बच्चे प्रार्थना कर रहे होंगे कि मैं मारा न जाऊं, और इसके बच्चे भी प्रार्थना कर रहे होंगे कि यह मारा न जाए। जैसे मैं रोटी के लिए अपनी जिंदगी दाँव पर लगा दिया हूं, ऐसे ही रोटी के लिए इसने जिंदगी दांव पर लगा दी है। हम दोनों संग-साथी हैं; हम दुश्मन नहीं हैं। अगर गोली चलानी भी होगी तो हम दोनों मिलकर तुम पर गोली चलाएंगे जो गोली चलाने की आज्ञाएं दिलवा रहे हों। अगर आत्मा होगी तो बड़ा खतरा हो जाएगा। दुनिया में सैनिक नहीं हो सकेंगे।
समाज गुलाम चाहता है; स्वतंत्र, विचारशील लोग नहीं। संसार चाहता है ऐसे लोग जो आज्ञाकारी हों; बगावती और विद्रोही नहीं; कभी पूछें नहीं कि ऐसा क्यों करें। समाज गुलाम चाहता है। तुम इतिहास की किताबों में पढ़ते हो कि पहले गुलामी होती थी, वह झूठी बात है। गुलामी अब भी है। उतनी की उतनी है। नाम बदल गए हैं, ऊपर का रंग-रोगन बदल दिया गया है, बात वही है। समाज स्वतंत्र व्यक्ति को स्वीकार करने में घबड़ाता है, क्योंकि स्वतंत्र व्यक्ति स्वतंत्र है, यही अड़चन है। वह अपने ढंग से जीएगा, अपने ढंग से चलेगा। तुम एक स्वतंत्र व्यक्ति से जिसके पास अपनी निजता है अगर कहोगे कि यह गणेश जी हैं, इनकी पूजा करो। वह कहेगा कि कहां के गणेश जी, यह मिट्टी का लौंदा है, तुमने बना कर खड़ा कर दिया है! कैसी पूजा! आदमी की बनाई चीज की कैसी पूजा! पूजा ही करनी है तो उसकी करूंगा जिसने सब बनाया है। अभी तुम बना कर तैयार किए हो, यह तुम्हारे हाथ का खिलौना है--फिर चाहे गणेश जी कहो, चाहे हनुमान जी कहो, चाहे हजार और नाम रखो--इसकी मैं कैसी पूजा करूं? और अगर करूंगा भी तो यह पूजा झूठी होगी, मेरे हृदय की नहीं होगी।
आत्मा होगी तो आत्मा का स्वर होगा। आत्मा होगी तो अंतःकरण होगा। वह आदमी कहेगा कि मैं झुकूंगा नहीं आदमी की बनाई हुई चीजों के सामने। झुकूंगा उसके सामने जिसने सब बनाया है, जिसने मुझे बनाया है, जिसने तुम्हें बनाया, जिसने तुम्हारे गणेश जी बनाए, उसी के सामने झुकूंगा, उसी मालिक के सामने झुकूंगा। अड़चन खड़ी हो जाएगी। गणेश-उत्सव कैसे मनाओगे? होली का हुड़दंग कैसे करोगे? दीवाली पर लक्ष्मी का पूजन कैसे होगा? जिसके पास थोड़ी भी बुद्धि है, चैतन्य है, समझ है, वह कहेगा--सिक्कों का अर्चन-पूजन! धन की पूजा, इस धार्मिक देश में और! जहां लोगों को यह भ्रांति सवार है कि हम दुनिया के सबसे ज्यादा आध्यात्मिक लोग हैं। दुनिया में कहीं भी धन की पूजा नहीं होती, सिवाय इस देश को छोड़ कर--और यह आध्यात्मिक देश है! और सारी दुनिया पदार्थवादी है! और हम ही अध्यात्मवादी हैं! और दीवाली आ जाती है तो दीये जलाते हैं और लक्ष्मी-पूजन हो रहा है! सिक्के का ढेर लगाए हुए हैं, उसके सामने मंत्रोच्चार हो रहा है! धन की ऐसी पूजा, ऐसी निर्लज्ज पूजा, ऐसी बेशर्म पूजा दुनिया में कहीं नहीं होती। तुममें थोड़ी निजता हो, थोड़ा सोच-विचार हो, तो तुम कहोगे--यह मैं क्या कर रहा हूं? चांदी-सोने के ठीकरों की पूजा कर रहा हूं! और यह बुद्ध और महावीर का देश! बातें बुद्ध और महावीर की, पूजा धन की! तुम्हें विसंगति दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगी। तुम कैसे इस सारे ढोंग में जी सकोगे जो चलता है? मुश्किल हो जाएगा ढोंग में चलना। और ऐसे हर व्यक्ति अगर ढोंग में चलने को राजी न हो जाएं, तो समाज बिखरेगा। यह समाज तो बिखर जाएगा, एक नया समाज पैदा होगा। यह समाज बिखरना

नहीं चाहता--इस समाज के न्यस्त स्वार्थ हैं। यह समाज बना रहना चाहता है। यह तुम्हें मिटाकर ही बना रह सकता है। यह तुम्हें मारकर ही जी सकता है। इसलिए जैसे ही बच्चा पैदा होता है समाज उसकी हत्या करने में लग जाता है। हर बच्चे की हत्या कर दी गई है। तुम इस ख्याल में मत रहना कि तुम जिंदा हो। तुम्हें जिंदा होने नहीं दिया गया है। तुम्हारे जिंदा होने के पहले तुम्हारी हत्या कर दी गई है। सब बच्चे बचपन में ही मार डाले गए हैं। फिर लाशें जी रही हैं। इसीलिए तो दुनिया में इतनी मूढ़ता है, इतना अंधकार है, इतनी गुलामी है, इतनी हिंसा है, इतना वैमनस्य है। आदमी नहीं हैं यहां।
और तुम अगर संन्यासी होना चाहते हो, तो तुम बगावत कर रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि मैं अपनी हत्या नहीं होने दूंगा। यह मेरा जीवन है, मैं अपने ढंग से जीऊंगा, मैं अपने रंग से जीऊंगा, मुझे अपना गीत गाना है, मैं किसी दूसरे के ताल पर नाचने को राजी नहीं हँ। नाचना होगा तो नाचूंगा, नहीं नाचना होगा तो नहीं नाचूंगा, लेकिन तुम बीन बजाओ और मैं नाचूं, यह नहीं हो सकता। संसार बाधा डालेगा। लेकिन इस बाधा से घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। इसे चुनौती बनाओ। यह मौका है। इससे टक्कर लो।
हमारी फितरते आजाद पर क्या-क्या कमंदे हैं
सुरीली कितनी आवाजें-सलासिल होती जाती हैं
उधर दी जा रही हैं रफ्तें दीवारे जिंदा को
इधर आजादियों की फिक्र कामिल होती जाती है
हवाओं को इधर जिद है कि एक तिनका न रह जाए
इधर फिक्रे नशेमन और महकम होती जाती है
यकीनन आ गया है मैकदां में तिश्नालब कोई
कि पीता जा रहा हूं कैफियत कम होती जाती है
"हमारी फितरते आजाद पर क्या-क्या कमंदे हैं।" हमारे स्वतंत्र स्वभाव
पर कितनी बेड़ियां हैं, कितनी दीवालें हैं, कितनी जंजीरें हैं!
हमारी फितरते आजाद पर क्या-क्या कमंदे हैं
सुरीली कितनी आवाजे-सलासिल होती जाती है
और यह जो आयोजन है दासता का, ब.ड़ी कुशलता से किया है। इतनी कुशलता से किया गया है कि बेड़ियां बजें भी तो उनमें से सुरीली आवाज निकले, उनका स्वर मोहक हो, जैसे बीन बजे, तुम्हें याद ही न पड़े कि बेड़ियां हैं। बेड़ियों को ऐसा सोने-चांदी से मढ़ा गया है कि तुम्हें भ्रांति होती रहे कि आभूषण हैं। छोड़ने की तो बात दूर, तुम उन्हें बचाने में लग जाओगे कि कोई चुरा न ले जाए। कारागृह को इतना रंगीन रँगा गया है कि तुम समझते हो तुम्हारा घर है। हमारे फितरते आजाद पर क्या-क्या कमंदे हैं
सुरीली कितनी आवाजे-सलासिल होती जाती है
उधर दी जा रही हैं रफ्तें दीवारे जिंदा को
और रोज-रोज ए दीवालें बड़ी की जा रही हैं, कारागृह मजबूत किया जा रहा है, नये पहरे बिठाए जा रहे हैं।
उधर दी जा रही हैं रफ्तें दीवारे जिंदा को
इधर आजादियों की फिक्र कामिल होती जाती है
लेकिन अगर हिम्मतवर आदमी हो तो जैसे-जैसे जेलखाने की दीवाल बड़ी होती
है वैसे-वैसे आजाद होने की आकांक्षा गहन होती है।
इधर आजादियों की फिक्र कामिल होती जाती है
चुनौती लो।
हवाओं को इधर जिद है कि इक तिनका न रह जाए
इधर फिक्रे नशेमन और महकम होती जाती है
माना कि तूफान हैं और आंधियां हैं, और संसार है और परिवार है और समाज
है और सब मिल कर तुम्हारे संन्यास के नीड़ को बनने न देंगे, तुम्हारी बगावत को वे काट डालेंगे, तुम्हारी आत्मा को जनमने न देंगे, माना--
हवाओं को इधर जिद है कि इक तिनका न रह जाए
इधर फिक्रे नशेमन और महकम होती जाती है
अगर हिम्मत हो तो नीड़-निर्माण की हिम्मत बढ़ाओ, नीड़-निर्माण की अभीप्सा को और प्रबल होने दो, जितने जोर से तूफान आए, उतने जोर से संकल्प

जगे। तूफान जिद करे कि एक तिनके को न बचने देंगे, तुम भी जिद करना कि नीड़-निर्माण करके रहेंगे। यह नीड़-निर्माण का मजा ही तब है जब आंधी में हो। यकीनन आ गया है मैकदां में तिश्नालब कोई
अब पता चल जाने दो मधुशाला को कि आगया है सचमुच में कोई प्यासा, ऐसे ही नहीं जाएगा, बिना पिए नहीं चला जाएगा।
यकीनन आ गया है मैकदां में तिश्नालब कोई
कि पीता जा रहा हूं कैफियत कम होती जाती है
जब सच्ची कोई प्यास होती है तो जितना पियो, उतनी प्यास बढ़ती जाती है,
कि जितना पिओ, कि इधर पीते जाते हो और प्यास और सघन होती जाती है।
संन्यास तो एक मदिरा है। हिम्मत करनी होगी। पियक्कड़ बनना होगा। और मैं जानता हूं अड़चनें हैं। संसार, तुम कहते हो, संसार संन्यास में बाधाएं डाल रहा है। परिवार विरोध में है। परिवार के विरोध के भी कारण हैं। क्योंकि संन्यास के नाम पर अब तक जो चला है, वह परिवार-विरोधी था। संन्यास के नाम पर अब तक जो चला है, वह जीवन-विरोधी था। पत्नी घबड़ा रही होगी कि संन्यासी हो जाओगे, तो घर छोड़ दोगे। समझाओ अपने परिवार को कि यह संन्यास का एक नया आविर्भाव है। यहां कुछ छोड़ना नहीं है। यहां पत्नी को छोड़ कर भाग नहीं जाना है, और न परिवार को, न जिम्मेवारियों को, न दायित्व को। सच तो यह है कि संन्यासी होकर तुम जितने अपने परिवार के लिए प्रेमपूर्ण हो सकोगे, उतने बिना संन्यासी होकर नहीं हो सकोगे। मैं तो प्रेम सिखा रहा हूं। परिवार भयभीत होगा, पत्नी भयभीत होगी--स्वाभाविक है। तथाकथित संन्यास के नाम पर कितनी पत्नियां पति के रहते विधवा नहीं हो गई हैं! आंकड़े इकट्ठे करो, तुम बहुत हैरान हो जाओगे। तुम कहते हो, महावीर के पास पचास हजार लोग संन्यस्त हुए। वह तो ठीक। इनकी पचास हजार पत्नियों का क्या हुआ? उन पचास हजार पत्नियों के साथ छोटे-छोटे बच्चे होंगे, उनका क्या हुआ? उन्होंने भीख मांगी, यतीमखानों में पले; बेवक्त मरे, बीमार रहे, शिक्षा मिली नहीं मिली! ये पचास हजार जो संन्यासी हो गए यह तो ठीक, बड़ा गौरव का काम हुआ, लेकिन पचास हजार जो पत्नियां छूट गईं, इनमें से कितनी को वेश्या हो जाना पड़ा, इसका भी तो कुछ हिसाब लगाओ! कितनों को भीख मांगनी पड़ी। धर्म के नाम पर! और उनके मुँह भी बंद कर दिए; क्योंकि पति ने कोई बहुत बड़ा काम किया है, बोला भी नहीं जा सकता।
यह पुरानी संन्यास की धारणा ऐसी जीवन-विरोधी थी, ऐसी आनंद-विरोधी थी; हजारों-हजारों साल की छाप पड़ गई है लोगों के मन पर, संन्यास शब्द से ही घबड़ाहट हो जाती है। संन्यास, और भीतर एक कंपन हो जाता है; अचेतन मन कांप जाता है। शायद तुम्हारी यह पत्नी पहले भी कभी किसी जन्म में किसी संन्यासी के कारण दुख भोग चुकी होगी; वह अभी भी इसके अचेतन तल में पड़ी होगी बात--फिर संन्यास! फिर वही दुख की कथा! फिर वही नरक! फिर बच्चों का क्या होगा? यह कच्ची गृहस्थी है, इसका क्या होगा? अगर यह घबड़ा जाती हो तो आश्चर्य नहीं। इसे समझाओ। यह संन्यास एक बिल्कुल नया जीवन का दृष्टिकोण है, एक नया दर्शन है। यहां हम छोड़ने को किसी को कह नहीं रहे हैं। यहां हम भगोड़े पैदा नहीं कर रहे हैं। यहां तो हम ऐसे लोग पैदा कर रहे हैं जो बीच बाजार में ध्यानी हों, और जो परिवार में रह कर परमात्मा को पाने की अभीप्सा से भरें। यह जीवन भी परमात्मा ने दिया है; इसे छोड़ कर जाना परमात्मा के साथ धोखा करना है। जो उसने दिया है, उसकी भेंट को पूरी तरह स्वीकार करो। इसे अवसर बनाओ। इस अवसर से अपने को विकसित करो। यह एक चुनौती है। तो तुम्हारी पत्नी भी समझेगी, परिवार भी समझेगा।
लेकिन ख्याल रखना कि मेरा संन्यास ठीक से समझ लेना, कई बार तो ऐसा हो जाता है कि तुम जब मेरा संन्यास लेते हो तब तुम्हारी भी धारणा यही होती है कि तुम भी कोई पुरानी प्रक्रिया का संन्यास ले रहे हो। तुम्हारे मन में भी धारणा यही बैठी है।
मेरे से लोग संन्यास ले गए हैं, फिर वे मुझे पत्र लिखते हैं कि जब आपने संन्यास दे दिया, अब घर में मन नहीं लगता, अब काम में मन नहीं लगता, और आप घर भी नहीं छोड़ने देते! मुझे आज्ञा दें तो मैं जंगल जाना चाहता हूं। जंगल जाना आसान लगता है। जंगल ही भेजना होता तो परमात्मा ने तुम्हें जंगल में

पैदा किया होता! बहुतों को जंगल में पैदा किया हुआ है न। तुमको आदमी बनाया; कुछ तुमसे आशा रखी है। तुमको भेड़िया बनाता, तुमको जंगल में ही रखता। तुमसे कुछ बड़ी आशा रखी है कि तुम बीच संसार में रह कर और अपने भीतर जंगल को पैदा कर सकोगे। जंगल में तुम्हारे जाने की जरूरत नहीं है; जंगल को तुम्हारे भीतर लाने की जरूरत है। हिमालय पर तुम्हें नहीं जाना है; हिमालय को तुम्हारी आत्मा में जगाना है। उतनी ही शांति, उतना ही धैर्य, उतना ही सन्नाटा, उतना ही मौन, उतना कुआंरा सौंदर्य तुम्हारे भीतर पैदा होना है। पशु जंगल में रहता है, संन्यासी के भीतर जंगल बैठा है, इतना फर्क है। तुम भी जंगल में जाकर रहने लगो, तुम भी पशु हो जाओगे। मैं जंगल जाने के पक्ष में नहीं हूं।
मेरा संन्यास लोगों को लगता है सरल--जिन्होंने लिया नहीं--जिन्होंने लिया है, उनको पता चलता है कठिन है। आमतौर से लोग यही समझते हैं कि इन्होंने संन्यास को बिल्कुल सरल बना दिया। कुछ नहीं छोड़ना है, न कहीं जाना है, न कुछ अड़चन है, घर में ही रहे, नौकरी की, दुकान भी की, बच्चे भी, पत्नी भी, सब ठीक और संन्यासी भी हो गए। बिल्कुल सरल है। तुम्हें समझ में नहीं आई यह बात अभी। जरा होकर देखो।
जंगल में बैठ कर संन्यास सरल है। झंझट के बाहर हो गए। दुकान पर बैठ कर बहुत कठिन है। अब ग्राहक में राम देखना पड़ेगा। और यही अड़चन है। ग्राहक में राम देखो तो उसकी जेब कैसे काटो! जेब काटो तो राम नहीं दिखाई पड़ता। राम देखो, जेब नहीं कटती। अब मुश्किल हुई! घर में हो और आसक्त न होओ--आसक्ति के सारे उपकरण मौजूद हैं, और आसक्त न होओ। उपकरण न हों तो आदमी अपने को कहीं भी उलझा ले, रामधुन करता रहे, जोर-जोर से हनुमान चालीसा पढ़ता रहे; उलझा ले कहीं अपने को, भूला रहे; लेकिन सामने सारे उपकरण मौजूद हैं! जरा चौके में बैठ कर जहां पत्नी सुंदर सुस्वाद भोजन बना रही हो, एक दिन उपवास करो! उपवास के दिन तुम्हें पता है लोग क्या करते हैं? मंदिर चले जाते हैं। जैन पर्यूषण में उपवास करते हैं, तो फिर घर में नहीं रहते। क्योंकि घर में खतरा है। बच्चों के लिए भोजन भी पकेगा, सुगंध भी उड़ेगी भोजन की; चौके से आती खनकार बर्तनों की आवाज, सब पुकारेगी। आज बहुत पुकारेगी। और दिन तो सुनाई भी नहीं पड़ती थी। और दिन तो अपना अखबार पढ़ते रहते थे--कौन सुनता था चौके में क्या आवाज आ रही है! लेकिन आज पेट खाली है। आज अखबार पढ़ने में मन नहीं लगता। आज मन चौके की तरफ भाग रहा है। बच्चे किलकारी कर रहे हैं। बच्चे कह रहे हैं मां से कि आज खीर बहुत बढ़िया बनी है। अब यह प्राण संकट में पड़ रहे हैं! यह उपवासी आदमी, इसकी मुसीबत समझो तुम!
तो यह जाकर मंदिर में बैठ जाता है। मंदिर में और भी उपवासी बैठे हैं। इसी जैसे और भी बुद्धू हैं न! वे सब वहां बैठे हैं। वे एक-दूसरे को सहारा देते हैं। क्योंकि वहां बैठे हैं शांत बनकर। भूख सबको लगी है, मगर अब वहां के लोग इतने शांत बैठे हैं, अपनी फजीहत कौन कराए। वह भी शांत बैठे हैं। मुनि महाराज का प्रवचन सुन रहे हैं। प्रवचन में उपवास की प्रशंसा की जा रही है। भोजन का विरोध किया जा रहा है। जो आज भोजन कर रहे हैं, उन सब का नरक जाना निश्चित है। इससे चित्त को आनंद भी आ रहा है कि ठीक है, बाद में भटकोगे; बाद में भोगोगे। आज मैंने तकलीफ उठा ली, कोई बात नहीं; देख लेंगे, एक-एक बात का बदला ले लिया जाएगा। मन में बड़ा मजा आ रहा है कि मैं पुण्यात्मा और बाकी सारा जगत पापी। बिचारों को कुछ पता नहीं है। ऐसे तुम अपने को समझा रहे हो।
मेरा संन्यास ऐसा है कि तुम घर में बैठे हो, बाजार में बैठे हो, सारे उपकरण, वासना को जगाने वाली सारी चुनौतियां, सारे संवेग उपस्थित हैं, और वहां निश्चित हो। और कोई चीज छूती नहीं है, कोई चीज आभा नहीं डालती। तुम कहते हो, यह सरल है! फिर तुम्हें सरलता और कठिनता शब्दों का अर्थ मालूम नहीं।
ऐसा ही प्रचार किया जा रहा है सारे देश में कि मेरा संन्यास सरल है।
आओ, बनो संन्यासी और जानो! ऊपर से सरल दिखाई पड़ रहा है, भीतर बड़ी कठिनाई है।
गहरी कठिनाई है।

वे विरोध करेंगे। उन्हें पता नहीं है। उन्हें समझाओ। और समझाना सिर्फ शाब्दिक नहीं होना चाहिए, तुम्हारे व्यक्तित्व से समझाओ। मेरे पास आने से तुम्हारी पत्नी को पता चलना चाहिए, कि तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण हो गए हो, तो समझा पाओगे, नहीं तो नहीं समझा पाओगे। बातचीत से क्या होता है! पत्नियाँ बातचीत तो पतियों की सुनतीं ही नहीं, ख्याल रखना। पत्नियाँ तो पतियों की बातचीत को बकवास समझती हैं। तुम बके जाते हो, वह सुनती नहीं। पत्नियाँ ज्यादा व्यावहारिक हैं, वे तो तुम्हारे व्यक्तित्व को देखती हैं। तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण हो गए हो, तुम्हारे जीवन में ज्यादा करुणा आ गई है; तुम्हारा मोह-लोभ कम हुआ है, तुम्हारी वासना क्षीण हुई है? ये सब बातें सबूत देंगी।
अब पत्नी देखती है तुम हो तो वैसे ही के वैसे। शायद और क्रोधी हो गए। क्योंकि ध्यान करने बैठते हो, बच्चे ने शोरगुल कर दिया, आ गए निकलकर बाहर दुर्वासा ऋषि की भांति, तैयार अभिशाप देने को, जन्म-जन्म तक के लिए नष्ट कर देने की तैयारी, पत्नी अगर यह देखेगी तो उसे भरोसा नहीं आएगा कि यह संन्यास कुछ भिन्न है। भिन्नता का अनुभव कराओ। तुम्हारी जिंदगी में थोड़ा नाच आने दो। तुम्हारी जिंदगी में थोड़ी रसधार बहने दो। स्त्रियां बहुत व्यावहारिक हैं। बुद्धि से समझाने की जरूरत नहीं है, उनके समझने का एक अलग ढंग है--अस्तित्वगत--तुम्हें देख कर वे पहचान लेंगी, उनकी आंखें आनंद के आंसुओं से भर जाएंगी, वे तुम्हारे संन्यास में सहयोगी बन जाएंगी। इतना ही नहीं, वे स्वयं भी संन्यास के लिए आतुर और उत्सुक हो जाएंगी।
मैं तुम्हें जीवन दे रहा हूं, तुमसे जीवन छीन नहीं रहा हूं, इसके प्रमाण दो।
रही यह बात कि आपकी सभी निंदा करते हैं। मैं क्या करूं? या तो उनके साथ सम्मिलित हो जाओ--अगर संन्यास से बचना हो। वे भी बेचारे इसीलिए निंदा कर रहे हैं। मैं उनके लिए एक खतरा हो गया हूं। मेरी मौजूदगी उन्हें बेचैन कर रही है। मेरी मौजूदगी उनकी शांति छीन रही है, उनका संतोष छीन रही है। मेरी मौजूदगी उन्हें याद दिला रही है कि कुछ और भी होने का एक ढंग है, जिंदगी और ढंग से भी जी जा सकती है, जिंदगी को एक और रंग भी दिया जा सकता है। उनकी जिंदगी उदास है, उनकी जिंदगी पश्चात्ताप से भरी है, उनकी जिंदगी एक हार है और एक पराजय का लंबा-लंबा इतिहास है। मेरी मौजूदगी उन्हें यह ख्याल दिला रही है कि अब तक उन्होंने जो किया, वह व्यर्थ गया, लेकिन अहंकार मानने नहीं देता कि अब तक जो किया, वह गलत गया। कौन मानने को राजी होता है कि मैंने जो पचास साल जिए, वह अज्ञान में जिए। पचास साल अज्ञान में! कोई मानने को राजी नहीं होता। आदमी अपनी प्रतिष्ठा का बचाव करता है।
वे मेरी निंदा में लगे हैं क्योंकि उन्हें अपनी प्रतिष्ठा बचानी है। अगर मैं सही हूं, तो वे सब गलत हैं। यहां समझौता होने वाला नहीं है, मैं कोई समझौतावादी नहीं हूं। या तो दो और दो चार होते हैं, या दो और दो चार नहीं होते। मैं तो सीधी बात कह रहा हूं। वह सीधी बात उनको बेचैन कर रही है, तीर की तरह चुभ रही है। उनकी निंदा मेरी निंदा नहीं है, सिर्फ आत्म-रक्षा है। वे अपनी आत्म-रक्षा में लगे हैं। तो अगर तुम्हें भी संन्यास से बचना हो, तो तुम भी निंदा में लग जाओ--वही उपाय है बचने का। और, अगर तुम्हें संन्यास में जाना हो, तो उन्हें निंदा करने दो! उनकी निंदा से क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारे-मेरे बीच जो घट रहा है, उनकी निंदा से गलत नहीं होता। अगर कुछ घट रहा है तुम्हारे-मेरे बीच, अगर कोई सेतु बन रहा है, अगर प्रेम के धागे फैल रहे हैं तुम्हारे-मेरे बीच, तुम्हारे-मेरे बीच कोई एक अनुभव सघन हो रहा है, तो उनकी निंदा से क्या फर्क पड़ता है? हंस लेना।
उनकी निंदा से तुम भी बेचैन हो जाते हो। उसका कारण यही है कि तुम भी अभी डांवाडोल हो। नहीं तो निंदा बेचैन नहीं करेगी। मुझे कोई चिंता नहीं है उनकी निंदा से--सारी दुनिया निंदा करे! अगर दुनिया को निंदा करने में मजा आता है, तो उन्हें मजा लेने दो। मजा लेने का उन्हें हक है। यह उनकी स्वतंत्रता है। मुझे इससे कोई अड़चन नहीं है।
सच तो यह है, उनकी निंदा से सिर्फ यही सबूत मिलता है कि जो मैं कह रहा हूं, उसमें कुछ सच है। सत्य की सदा निंदा हुई है। सत्य के साथ सदा यही

व्यवहार हुआ है। वही व्यवहार मेरे साथ हो रहा है। यह व्यवहार बढ़ता जाएगा। जैसे-जैसे मेरे रंग में लोग रंगेंगे, जैसे-जैसे यह हवा फैलेगी, ये तरंगें व्याप्त होंगी पृथ्वी के कोने-कोने में, यह व्यवहार बढ़ता जाएगा।
कल मुझे खबर मिली कि ब्राजील की सरकार ने मेरे केंद्रों को बंद करवा दिया है। पुलिस ने हमले किए हैं, केंद्र बंद कर दिए हैं। अब ब्राजील की सरकार का मैं क्या बिगाड़ रहा हूं! न ब्राजील कभी गया हूं--और न कभी जाऊंगा। मेरे संन्यासी उनका क्या बिगाड़ रहे हैं? मिल-जुल लेते हैं, नाच लेते हैं, गीत गा लेते हैं, ध्यान कर लेते हैं, प्रेम की दो बातें कर लेते हैं; उनका क्या बिगाड़ रहे हैं? उन्हें क्या बेचैनी हो रही है? उन्हें क्या अड़चन हो रही है? यह बढ़ेगा।
स्विट्जरलैंड से अभी एक महिला आई। उसने कहाः जब मैं भारतीय राजदूतावास में वहां गई तो उन्होंने मुझे लिस्ट दी, उसमें आठ आश्रमों के नाम दिए और साथ में यह भी कहा कि इन आठ में से किसी में भी जाना, मगर पूना भूल कर मत जाना। वे आठ आश्रम कौन से हैं? वे आश्रम वैसे हैं, दकियानूसी आश्रम! बाबा मुक्तानंद; इनके आश्रम जाना। क्योंकि इनके आश्रम से समाज को कोई खतरा नहीं है। और वह महिला यहां आने को तैयार थी, यहां आना चाहती थी, यहीं आने के लिए आ रही थी। उसने गैरिक वस्त्र पहन रखे थे; संन्यास की तैयारी करके आ रही थी। तो राजदूतावास में उससे कहा गया कि तेरे गैरिक वस्त्र इस बात की संभावना है कि तू पूना जा रही है। पूना नहीं जाना है। अगर पूना जाना हो, तो हम आज्ञा नहीं दे सकते भारत में प्रवेश की। उसे झूठ बोल कर आना पड़ा है कि वह पूना नहीं जाएगी।
बी. बी. सी. से कल पत्र मुझे आया है। बी. बी. सी. कोशिश करती है, आधी फिल्म उन्होंने बना ली है इस आश्रम की, आधे में भारतीय सरकार ने उनको अटका दिया है। अब वे कोशिश कर रहे हैं, मगर सरकार आज्ञा नहीं देती प्रवेश की। अगर इस आश्रम की फिल्म बनानी है तो उन्हें भारत में प्रवेश की आज्ञा नहीं है। इंगलैंड में भारतीय उच्चायुक्त से जाकर बार-बार मिल रहे हैं और उच्चायुक्त कहता है कि कोई संभावना नहीं, हम आज्ञा दे नहीं सकते। अब यह संयोग की ही बात नहीं है कि जो व्यक्ति भारत का उच्चायुक्त है लंदन में, वह पूना का है। उसको अड़चन होगी, उसको भारी अड़चन होगी। वह सज्जन मुझे मिल भी चुके हैं। मुझे जब मिले थे, तब भी बेचैन हो गए थे वह। क्योंकि मेरी बातों के साथ मेल खाना, साहस चाहिए। राजनेताओं में साहस तो होता ही नहीं। राजनेता में कोई आत्मा तो होती ही नहीं। वह तो अपनी आत्मा को बेच देता है-- तभी राजनेता हो पाता है। जो राजनेता जितनी कुशलता से अपनी आत्मा को बेचने में सफल हो जाता है, उतनी जल्दी ऊँचे पदों पर पहुँच जाता है। आत्मा बेचकर ही पहुंचना होता है।
यह उपद्रव बढ़ता जाएगा। और भी देशों से खबरें आनी शुरू हुई हैं। जर्मनी से खबर आई है कि अगर हम जाकर उनसे कहते हैं कि हमें पूना जाना है तो आज्ञा नहीं मिलती जर्मनी छोड़ने की। हमें झूठ बोल कर आना पड़ रहा है कि हम कहीं और जा रहे हैं।
यह शिकंजा रोज-रोज गहरा होता जाएगा। यह कठिनाई बढ़ने वाली है। क्योंकि मैं एक आग हूं। तुम्हें जो गैरिक वस्त्र दिए हैं ये इसीलिए दिए हैं, यह आग का रंग है। और मैं चाहता हूं, यह आग सारी दुनिया में फैल जाए। यह जैसे-जैसे फैलेगी वैसे-वैसे कठिनाई आने वाली है। निंदा भी बढ़ेगी, अड़चनें भी बढ़ेंगीं, बाधाएं भी बढ़ेंगी, यह सब होगा। लेकिन यह सदा ऐसा ही हुआ है। ऐसा ही फिर होगा। यह कुछ नया नहीं है। यह आदमी का सदा से सत्य के साथ व्यवहार रहा है। डराके मौजे तलातुमसे हमनशीनों को
यही तो हैं जो डुबोया किए सफीनों को
कभी नजर भी उठाई न सूए-बादए-नाब
कभी चढ़ा गए पिघलाके आबगीनों को
हुए हैं काफिले जुल्मतके वादियों में रवां
चिरागे-राह किए, खूंचुकां जबीनों को
तुझे न माने कोई, तुझको इससे क्या "मजरूह"! चल अपनी राह भटकने दे नुक्तःचीनों को

कोई माने, न माने, इसकी तुम फिकर छोड़ो
तुझे न माने कोई तुझको इससे क्या "मजरूह"!
चल अपनी राह भटकने दे नुक्तःचीनों को
वे जो निंदा कर रहे हैं, उनको निंदा में रस लेने दो। तुम अपनी राह चलो। अगर तुम्हारे साथ सत्य है, तो धीरे-धीरे और भी लोग तुम्हारे साथ होने लगेंगे। सत्य के साथ धीरे-धीरे ही लोग होते हैं। और थोड़े ही लोग होते हैं। क्योंकि सिर्फ साहसी! अब महावीर के साथ कितने लोग हो गए थे? बुद्ध के साथ कितने लोग हो गए थे? थोड़े ही लोग। और उनको यह सब निंदा सहनी पड़ी थी, जो तुम्हें सहनी पड़ रही है। क्राइस्ट के साथ कितने लोग थे? बहुत थोड़े लोग। और सारी निंदा सहनी पड़ी। और क्राइस्ट को सूली पर चढ़ना पड़ा। और शिष्यों को जिंदगी भर दुख झेलना पड़ा--एक गांव से दूसरे गांव भगाए गए। यह सब फिर हो सकता है, क्योंकि आदमी वैसा का वैसा है। और आदमी की वृत्तियां वैसी की वैसी हैं।
लेकिन अगर साहस है, तो संन्यास के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। साहस है, तो सत्य के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।
घबड़ाओ मत। इस सारी स्थिति को उपयोग कर लो। यह सारी स्थिति या तो तुम्हें रुकावट का कारण बन सकती है, या तुम्हें धक्का देने का कारण बन सकती है; सब तुम पर निर्भर है। राह पर पड़ा हुआ पत्थर, या तो रुक जाओ; या पत्थर पर चढ़ जाओ, उसे सीढ़ी बना लो। इस सारी स्थिति को सीढ़ी बनाना है। पांचवां प्रश्न भी इससे ही संबंधित प्रश्न हैः

संन्यास मेरे भाग्य में है या नहीं?

संन्यास स्वतंत्रता है। न तो भाग्य में होता, न नहीं होता। संन्यास भाग्य की, बात ही नहीं है। जो भाग्य में है, वह तो परतंत्रता है। संन्यास तुम्हारा चुनाव है--बोधपूर्वक, स्वेच्छा से। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है कि संन्यास की बात लिखवा कर पैदा हुआ है, कि विधि ने लिख दी है कि संन्यासी होगा, कि विधि ने लिख दिया कि संन्यासी नहीं होगा। संन्यास विधि से बाहर है। संन्यास एकमात्र चीज है जो विधि से बाहर है। बाकी सारी चीजें करीब-करीब नियत हैं।
तुम कितने दिन जिंदा रहोगे, नियत है। तुम्हारे मां-बाप से कितनी तुम्हें उम्र मिली है, वह नियत हो गया, तुम्हारे जन्म में ही नक्शा मिल गया है। तुम पुरुष होओगे कि स्त्री, वह भी नियत हो गया मां-बाप के द्वारा। तुम बीमार रहोगे कि स्वस्थ, वह भी बहुत कुछ नियत हो गया मां-बाप के द्वारा। तुम्हारा रंग क्या होगा, रूप क्या होगा, वह भी नियत हो गया। फिर तुम्हारी जिंदगी में सारी वासनाएं हैं वह भी तुम लेकर आए हो। लेकिन एक बात भर तुम लेकर नहीं आए हो, वह तुम्हारी परम स्वतंत्रता है, कि तुम इस संसार में निर्वाण को बना सकोगे या नहीं--यह तुम्हारी परम स्वतंत्रता है। इसकी कोई नियति नहीं है।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। बुद्ध एक नदी के पास से गुजरे, उनके पैरों के चिह्न गीली रेत पर बन गए। और उनके पीछे-पीछे एक ज्योतिषी आ रहा है। वह अभी लौटा है काशी से बारह वर्ष ज्योतिष का अध्ययन करके। तो अभी नया- नया जोश भी है, अध्ययन का प्रभाव भी है, प्रयोग करने की आकांक्षा भी है। उसने ये सुंदर चरण-चिह्न देखे रेत पर बने, उसने झुक कर नीचे देखा कि इतने सुंदर चरण-चिह्न, और चरण-चिह्नों में उसने वह चिह्न देखा जो केवल चक्रवर्ती सम्राट को होता है। वह तो बहुत हैरान हो गया। चक्रवर्ती सम्राट, इस छोटे से गांव के पास की इस गंदी सी नदी के किनारे, नंगे पैर रेत पर चले, भरी दुपहरी में! चक्रवर्ती सम्राट, यह हो नहीं सकता। उसे तो बड़ी मुश्किल हो गई। उसने कहाः बारह साल बेकार गए। या तो मेरा सारा ज्योतिषशास्त्र व्यर्थ हो गया; और या फिर चक्रवर्ती ऐसे घूमने लगे गांव-गांव! नंगे पैर! चक्रवर्ती महल से नहीं उतरेगा, चक्रवर्ती सिंहासन से नहीं उतरेगा, चक्रवर्ती अपने रथ से नहीं उतरेगा--और नंगे पैर, और भरी दुपहरी में, गरम रेत, और यह छोटा सा उजड़ा सा गरीब गांव, सौ-पचास घर!

वह रेत के ऊपर बने चरण-चिह्नों का पीछा करता हुआ इस आदमी की तलाश में गया। बुद्ध एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। बुद्ध को देखा तो और मुश्किल हो गई। आदमी तो लगता है चक्रवर्ती सम्राट जैसा, मगर है भिखारी; भिक्षापात्र बगल में रखा हुआ है, फटा सा चीवर पहन रखा है, देह सुंदर है-- स्वर्ण जैसी, चेहरे पर अपूर्व आभा है, आंखें ऐसी कि कमल की पंखुड़ियों जैसी कोमल, और नंगे पैर; जूता भी नहीं है। वह बुद्ध के पास आकर बैठा, उसने कहा-- मुझे अड़चन में डाल दिया है आपने, मेरी गुत्थी सुलझा दें। मेरे बारह साल बेकार गए। ये जो मैं शास्त्र लिए आया हूं काशी से--दबाए हैं शास्त्र अपनी बगल में--ये बेकार हैं। अगर बेकार हैं, तो इनको मैं नदी में डाल दूं, बारह साल बेकार गए, किसी और काम में लगूं। क्योंकि मेरे शास्त्र कहते हैं कि ये चरण-चिह्न तो केवल चक्रवर्ती सम्राट के होते हैं। यह पैर में चक्र का चिह्न है। आप का पैर देख लूं। पैर देखा, चिह्न बिल्कुल स्पष्ट है, कहीं कोई संदेह की बात नहीं है।
बुद्ध ने कहाः तुम परेशान न होओ। शास्त्रों को फेंकने की जरूरत नहीं है; साधारणतः तुम्हारा शास्त्र सभी लोगों पर लागू होगा; सिर्फ संन्यासियों पर लागू करने की कोशिश मत करना। निन्यानबे प्रतिशत तुम्हारा शास्त्र लागू होगा। लेकिन संन्यास हाथ की रेखाओं में नहीं होता, पैर की रेखाओं में नहीं होता। और चक्रवर्ती सम्राट भी संन्यासी हो सकता है। इसमें कोई बाधा है? संन्यास तो किसी के जीवन में फल सकता है। यह फूल तो गरीब के जीवन में लग सकता है, अमीर के जीवन में लग सकता है। ज्ञानी-अज्ञानी के जीवन में लग सकता है, सुंदर-कुरूप के जीवन में लग सकता है।
नहीं, संन्यास का भाग्य से कोई संबंध नहीं है। लेकिन लगता यह है कि तुम भाग्य की आड़ लेना चाहते होओगे। तुम सोचते होओगे, भाग्य में होगा तो अपने से होगा। और नहीं होगा भाग्य में तो नहीं होगा। बचना चाह रहे हो। यह तुम्हारे लेने से होगा, भाग्य से नहीं होगा। यह भाग्य तुम्हारा बहाना है, यह तुम्हारी तरकीब है, यह तुम्हारी आड़ है। धोखा मत दो अपने को। संन्यास नहीं लेना है, मत लो। मगर जान कर कि यह कोई भाग्य की बात नहीं है, यह लिखा हुआ नहीं है। संन्यास का अर्थ ही है भाग्य के पार जाना, नियति के पार जाना, बंधे-बंधाए के पार जाना।
तकदीर का शिकवा बेमानी, जीना ही तुझे मंजूर नहीं
आप अपना मुकद्दर बन न सके इतना तो कोई मजबूर नहीं
महफिल, अहले दिल है, यहां हम सब मैकश, हम सब साकी
तफरीह करें इंसानों में इस बज्म का यह दस्तूर नहीं
वे कौनसी सुबहें हैं जिनमें बेदार नहीं अफसूँ तेरा
वे कौनसी काली रातें हैं जो मेरे नशे में चूर नहीं
सुनते हैं कि कांटों से गुल तक हैं राह में लाखों वीराने
कहता है मगर यह अज्मे-जुनूं सेहरा से गुलिस्तां दूर नहीं
"मजरूह!" उठी है मौजे-सबा आसार लिए तूफानों के
हर कतरो-शबनम बन जाए इक जूए-रवां कुछ दूर नहीं
"तकदीर का शिकवा बेमानी।" भाग्य को बीच में मत लाओ। भाग्य की शिकायत
मत करना कि क्या करें--मरते वक्त यह मत कहना कि क्या करें, भाग्य में नहीं थी प्रार्थना, भाग्य में नहीं था भजन, भाग्य में नहीं थी पूजा। यह बात मत करना।
तकदीर का शिकवा बेमानी जीना ही तुझे मंजूर नहीं
आप अपना मुकद्दर बन न सके इतना तो कोई मजबूर नहीं
मजबूरियां बहुत हैं, मगर इस संबंध में नहीं है। परमात्मा को तो प्रत्येक व्यक्ति पाने का अधिकारी है। उसमें कुछ भेद नहीं है। उस संबंध में कोई ज्यादा हकदार, कोई कम हकदार ऐसा नहीं है। उस संबंध में सब समान हकदार हैं। यह हमारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है। समझो--
कहता है मगर यह अज्मे-जुनूं सेहरा से गुलिस्तां दूर नहीं
मरुस्थल से गुलिस्तां दूर नहीं है। बहुत पास है। संसार से निर्वाण दूर नहीं है; बहुत पास। एक कदम ही उठाने की बात है। उस कदम का नाम ही संन्यास है। और वह कदम प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।

हरम से मैकदे तक मंजिले-यक उम्र थी साकी
सहारा गर न देती लगजिशे पैहम तो क्या करते
वो मिट्टी को मिजाजे-गुल अता कर देते ऐ वाइ.ज!
जमीं से दूर, फिक्रे-जन्नते-आदम तो क्या करते
सवाल उनका, जवाब उनका, सकूत उनका, खिताब उनका
हम उनकी अंजुमन में सर न खम करते तो क्या करते
संन्यास सिर को गंवाने की कला है। संन्यास अपने को मिटाने की कला है।
यह न होने की कला है।
सवाल उनका, जवाब उनका, सकूत उनका, खिताब उनका
हम उनके अंजुमन में सर न खम करते तो कया करते
सुनो मैं जो तुमसे कह रहा हूं। गुनो जो मैं तुमसे कह रहा हूं। मेरे बहाने तुम्हारा भविष्य तुमसे बोल रहा है। उसे पहचानो। और अगर पहचान में थोड़ी भी किरण आ जाती हो, तो साहस करो, उठो, चलो। सेहरा से गुलिस्तां दूर नहीं। पास ही है। एक ही कदम की बात है।
मगर हम नई-नई तरकीबें खोज लेते हैं। कोई कहता है--हमारे कर्म में नहीं। कोई कहता है--हमारे भाग्य में नहीं। कोई कहता है--जब भगवान की मर्जी होगी। और सारी बातों के लिए तुम ये बातें नहीं सोचते। और सारी बातों के लिए तुम स्वयं दौड़ते रहते हो। सिर्फ जब जीवन में जरूर कोई क्रांति की बात आ जाती है करीब, तब तुम थक जाते हो, तब तुम ठिठक जाते हो, तब तुम कहने लगते हो--जब भाग्य में होगा तो होगा, अब मैं क्या कर सकता हूं, यह अपने हाथ की बात नहीं। ऐसे तुमने बहाना कर लिया, ऐसे अपने को बचा लिया। ऐसे ही बचते रहे हो अब तक। और ऐसे ही जीवन को गँवाते रहे हो। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं--और सब भाग्य में होगा, और सब भविष्य के भीतर आता होगा, संन्यास नहीं आता। संन्यास स्वेच्छा से लिया गया निर्णय है। संन्यास तुम्हारी परम स्वतंत्रता की घोषणा है। गुलाम रहना हो गुलाम रहो, मगर याद रखना, तुम अपनी मर्जी से गुलाम हो। मुक्त होना हो मुक्त हो जाओ। तुम्हारी मर्जी के बिना कुछ भी न होगा। परमात्मा भी तुम्हारी मर्जी के बिना तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। इतनी मनुष्य की गरिमा रखी है उसने। इतना मनुष्य को सम्मान दिया है।

आखिरी सवालः समाधि की अंतर्दशा के संबंध में कुछ कहें।

समाधि के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। समाधि बात बात के बाहर
की है। समाधि अनुभव है। समाधि कैसे फलित हो जाए, यह तो मैं तुम्हें बता सकता हूं, लेकिन समाधि में क्या है, क्या होता है समाधि में, मैं भी नहीं बता सकता, कोई और भी नहीं बता सकता--न कभी किसी ने बताया है, न कभी कोई बता सकेगा। समाधि शब्दों में नहीं समाती। शब्दातीत अनुभव है, समयातीत अनुभव है; सारे विशेषणों के पार है, सारी अभिव्यक्तियों से दूर है, भावातीत दशा है।
तुम पूछते हो समाधि की अंतर्दशा के संबंध में कुछ कहें। तो पहली तो बात, समाधि के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम अगर मेरे पास बैठना सीख जाओ तो तुम समाधि के पास बैठे हो। तुम अगर मेरी आंख में देखना सीख जाओ तो तुमने समाधि में झाँका। तुम अगर मेरा हाथ अपने हाथ में ले लो तो तुमने समाधि का हाथ अपने हाथ में लिया।
एक दिन ऐसा हुआ कि रामकृष्ण की तस्वीर एक चित्रकार ने बनाई है और तस्वीर लेकर वह आया और रामकृष्ण ने तस्वीर देखी और तस्वीर के चरणों में सिर झुका दिया। खुद की ही तस्वीर थी। शिष्य थोड़े चौंके। शिष्य थोड़े बेचैन हुए। पास में बैठे किसी शिष्य ने कहा कि परमहंसदेव, आप यह क्या कर रहे हैं? होश में हैं? यह तस्वीर आपकी है; अपनी ही तस्वीर को सिर झुका रहे हैं! रामकृष्ण ने कहाः भली याद दिलाई, मैंने तो समाधि को सिर झुकाया। यह तस्वीर समाधि की है। मेरा रंग-रूप है, मगर वह तो गौण है, इस चित्रकार ने मेरे भीतर के भाव को भी रंग में थोड़ा-थोड़ा पकड़ा, रूप में थोड़ा-थोड़ा पकड़ा, मैंने तो उसी भावदशा को नमस्कार किया है।

समाधि के संबंध में कुछ नहीं कह सकता, लेकिन तुमसे जो बोल रहा हूं, वह समाधि बोल रही है। तुम जिसे देख रहे हो, वह समाधि है। मेरे निकट आओ, मेरा स्वाद लो, मेरी सुराही से थोड़ी शराब पीओ।
और दूसरी बात, समाधि कोई अंतर्दशा नहीं है--वहां न कुछ अंतर है, न कुछ बाह्य। वहां अंतर और बाह्य का भेद मिट गया है। कहने को कहते हैं अंतर्दशा, मगर वस्तुतः वहां न कुछ बाहर है, न भीतर है। वहां सब द्वंद्व समाप्त हो गए-- बाहर-भीतर भी द्वंद्व है।
लोग कहते हैं समाधि परमात्मा का अनुभव है, ऐसी भी बात नहीं, वहां कोई अनुभव नहीं है, कोई अनुभोक्ता नहीं है। लोग कहते हैं समाधि परमात्मा का साक्षात्कार है। कौन साक्षात्कार करेगा और किसका करेगा? वहां दो नहीं हैं। ज्ञान में तो दो चाहिए--ज्ञाता और ज्ञेय; दर्शन में दो चाहिए--दृश्य और दृष्टा। समाधि तो एकात्म अनुभव है। परमात्मा का दर्शन नहीं होता, मैं परमात्मा हूं, ऐसा अनुभव होता है। अहं-ब्रह्मास्मि! --ऐसी उद्घोषणा है समाधि।
फिर दशा शब्द ठीक नहीं है। क्योंकि दशा से ऐसा लगता है--कोई ठहरी हुई चीज। जैसे डबरा, बहता नहीं। समाधि सरिता है, गत्यात्मकता है, ऊर्जा है, नृत्य है, अंतर-नृत्य कहो तो ज्यादा ठीक, अंतर-ऊर्जा कहो तो ज्यादा ठीक, अंतर-प्रवाह कहो तो ज्यादा ठीक। जैसे बिजली कौंधती है, जैसे नदी बहती है, ऐसा प्रवाह है, अनंत से अनंत तक। दशा शब्द में ऐसा लगता है--सब ठहरा हुआ। दुर्दशा में दशा शब्द ठीक-ठीक है। दुर्दशा में दशा शब्द बिल्कुल ठीक है, सब ठहरा हुआ। समाधि दशा नहीं है। ऐसा समझो कि एक नर्तकी नृत्य करती है। नृत्य क्या एक दशा है?
रक्स करती हुई नर्तकी का बदन--
जैसे दीपक की लौ, जैसे नागिन का फन
जैसे चटके कली, जैसे लहके चमन
जैसे उमड़े घटा, जैसे फूटे किरन
जैसे आंधी उठे, जैसे भड़के अगन
जैसे पहलू में दिल, जैसे दिल में लगन
जैसे मुड़ती नदी, जैसे उड़ती पवन
जैसे तितली का पर, जैसे भंवरे का मन
जैसे विरहा का दुख, जैसे चोरी का धन
जैसे मन में तड़फ, जैसे वन में हिरन
--रक्स करती हुई नर्तकी का बदन
समाधि--जैसे दीपक की लौ, जैसे नागिन का फन। समाधि--जैसे चटके कली, जैसे लहके चमन। समाधि--जैसे उमड़े घटा, जैसे फूटे किरन। गत्यात्मकता, ऊर्जा, प्रवाह, जीवंतता। परमात्मा कोई ठहरी हुई चीज नहीं। परमात्मा शाश्वत प्रवाह है। इसीलिए तो परमात्मा जीवन है। परमात्मा पत्थर नहीं है, परमात्मा फूल है।
समाधि को जानो तो जान पाओगे। मैं राजी तुम्हें समाधि में ले चलने को हूं, तुम बाहर-बाहर से मत पूछो। मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ समझोगे। तुम बाहर-बाहर से पूछोगे तो चूकोगे। आओ, द्वार खुले हैं, दस्तक भी देने की कोई जरूरत नहीं है, आओ, भीतर आओ। और अगर तुम जरा हिम्मत करो इस देहली के पार होने की, तो तुम जान लोगे समाधि क्या है। समाधि स्वयं का मिट जाना और परमात्मा का आविर्भाव है। समाधि समाधान है। इसलिए समाधि कहते हैं उसे। सारी समस्याओं का समाधान। फिर कोई समस्या न रही, कोई प्रश्न न रहा, कोई चिंता न रही, सब शांत हो गया, सब प्रश्न गिर गए, सब समस्याएं तिरोहित हो गयीं, एक शून्य रह गया। लेकिन उसी शून्य में पूर्ण उतरता है। तुम शून्य बनो, पूर्ण उतरने को तत्पर बैठा है। तुम्हारी तरफ से समाधि शून्य है, परमात्मा की तरफ से समाधि पूर्ण है।
लेकिन एक बात स्मरण रखना सदा, जो भी समाधि के संबंध में कहा जाए--मैं
भी जो कह रहा हूं, वह भी सम्मिलित है--वह सभी कामचलाऊ है। पूछा है तो कह रहा हूं। पूछा है तो कहना पड़ता है। लेकिन जो है, कहने में नहीं आता है। जो है, वह जानने में आता है, अनुभव में आता है। मैं कुछ कहूंगा, शब्दों का उपयोग

करना पड़ेगा। शब्द में लाते ही वह जो विराट आकाश था समाधि का, सिकुड़ कर बहुत छोटा हो गया। और यह बड़ी असंभव बात है।
एक छोटा बच्चा किताब पढ़ रहा था। इतिहास की किताब और उसने पढ़ा नेपोलियन का यह प्रसिद्ध वचन कि संसार में असंभव कुछ भी नहीं, वह खिल- खिला कर हंसने लगा। उसके बाप ने पूछाः क्या बात है? तू किताब पढ़ रहा है कि हंस रहा है? उसने कहा मैं इसलिए हंस रहा हूं कि यह इसमें लिखा है--संसार में असंभव कोई बात नहीं। पिता ने भी कहाः ठीक ही कहा है, संसार में असंभव कोई बात नहीं है। लड़के ने कहा फिर रुको, मैंने आज ही सुबह एक काम करके देखा है जो बिल्कुल असंभव है। बाप ने कहाः कौन सा काम? उसने कहाः मैं लाता हूं अभी। वह भागा, स्नान-गृह से जाकर टूथपेस्ट उठा लाया और उसने कहाः इसमें से पहले टूथपेस्ट निकालो, फिर भीतर करो, यह असंभव है--नेपोलियन के जमाने में टूथपेस्ट नहीं होता होगा। इसलिए मुझे हँसी आ गई, क्योंकि सुबह ही मैंने बहुत कोशिश की, लाख कोशिश की मगर फिर भीतर नहीं जाता।
समाधि का अर्थ हैः पहले मन से बाहर आओ; टूथपेस्ट निकाल लिया। अब समाधि
के संबंध में बताने का मतलब है--टूथपेस्ट को फिर भीतर करो, फिर शब्दों में लौटो; असंभव है। शायद टूथपेस्ट तो किसी तरह से आ भी जाए, कोई उपाय बनाए जा सकते हैं, लेकिन शब्द के बाहर जाकर समाधि का अनुभव होता है, फिर शब्द के भीतर उसको लाना असंभव है। इशारे हो सकते हैं। वही इशारे मैंने किए हैं। ये सब इशारे हैं--
जैसे दीपक की लौ, जैसे नागिन का फन
जैसे चटके कली, जैसे लहके चमन
जैसे उमड़े घटा, जैसे फूटे किरन
जैसे आंधी उठे, जैसे भड़के अगन
जैसे पहलू में दिल, जैसे दिल में लगन
जैसे मुड़ती नदी, जैसे उड़ती पवन
जैसे तितली का पर, जैसे भंवरे का मन
जैसे विरहा का दुख, जैसे चोरी का धन
जैसे मन में तड़फ, जैसे वन में हिरन
इशारे। इनको पकड़ मत लेना; ये परिभाषा नहीं हैं। मगर अगर ये इशारे तुम्हें पुकारने लगें, ये इशारे प्यास बन जाएं, तुम्हें खींचने लगें, एक अदम्य आकर्षण पैदा हो जाए, अभीप्सा जगे कि जान कर रहेंगे, तो काम हो गया। जो मैं यहां बोल रहा हूं, उससे तुम्हें समाधि को नहीं समझा सकूंगा; लेकिन जो मैं बोल रहा हूं, अगर उससे तुम्हारे भीतर प्यास जग आए, तो एक दिन समाधि का फूल भी तुम्हारे भीतर खिलेगा, तुम्हारा हक है। अपने अधिकार की मांग करो।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
तेरहवां प्रवचन

गुरु की याद में रंग भी बहुत, नूर भी बहुत

मार भली जो सतगुरु देहि। फेरि-बदल औरे करि लेहि।।
ज्यूं माटी कूं कुटे कुंभार। त्यूं सतगुरु की मार विचार।।
भाव भिन्न कछु औरे होइ। ताते रे मन मार न जोइ।।
जैसा लोहा घड़ै लुहार। कूटि-काटि करि लैवै सार।।
मारै मारि मिहरि करि लेहि। तो निपजै फिरि मार न देहि।।
ज्यूं सांटी संपुट में आनि। सूधी करै तीरगर पानि।।
मन तोड़न का नाहीं भाव। जे तुछ तूटि जाय तो जाव।।
ज्यूं कपड़ा दरजी के जाय। टूक-टूक करि लेहि बनाय।।
त्यूं रज्जब सतगुरु का खेल। ताते समझि मार सब झेल।।
दादू दीनदयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर।
जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर।।
रज्जब कूं अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
दुख दरिद्र तब का गया, सुख संपत्ति अपार।।
रज्जब नर नारी सकल, चकवा चकवी जोड़।
गुरु-बैन बिच रैन में, किया दुहूं घर फोड़।।
गुरु दीरघ गोबिंद सूं, सारै सिष्य सुकाज।
रज्जब मक्का बड़ा परि, पहुँचे बैठि जहाज।।
कामधेनु गुरु क्या है, जो सिष निःकामी होइ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मंदभागी सिष जोइ।।

उदास हैं आस्माँ के तारे
बुझे-बुझे हैं सभी नजारे
हसीं बहारें भी रो रही हैं
लुटा है यूं मेरा आशियाना
यह अनुभव सभी का है। यह अनुभव संसार का है। यहां सिर्फ आदमी लुटता है, उजड़ता है, बसता नहीं। यहां बसने का कोई उपाय नहीं। यह बस्ती नहीं है, मरघट है। यहां सिर्फ मृत्यु के लिए प्रतीक्षा में खड़े हुए लोग हैं-- पंक्तिबद्ध। आएगी जब घड़ी, उठ जाएंगे। कभी भी आ सकती है घड़ी। यों तो उसी दिन आ गई जिस दिन जन्म हुआ। जन्म के साथ ही साथ मौत आ गई छाया की भांति। जिसका जन्म हुआ, अब मृत्यु से न बच सकेगा। जन्म में ही मृत्यु निश्चित हो गई, थिर हो गई।
जहां मृत्यु ही घटनी है, जहां उजड़ना ही है, वहां जो बसने का ख्याल रखते हैं, वे नासमझ हैं। और जहां सिर्फ् एक ही बात निश्चित है और सब अनिश्चित है, जहां सिर्फ मृत्यु निश्चित है, वहां जो घर बनाते हैं, वे व्यर्थ ही बनाते हैं। यह घर उजड़ेगा। और इस घर के बनाने में पीड़ा उठाई, फिर इस घर के उजड़ने में पीड़ा उठानी पड़ेगी। यहां पीड़ा ही पीड़ा है। दुख ही दुख है। संसार दुख का सागर है। ऐसा जिसे अनुभव होता है, वही परमात्मा की तलाश में निकलता है। जिसने इस घर को ही असली घर समझ लिया, फिर उसकी खोज बंद हो गई।
जिसे दिखाई पड़ा कि यह नीड़ असली नीड़ नहीं है, असली नीड़ की तलाश करनी है अभी, ज्यादा से ज्यादा सराय है, रात भर को रुक गए हैं, सुबह हुए चलना पड़ेगा; पड़ाव है ज्यादा से ज्यादा, मंजिल नहीं है यह, उनके जीवन में अज्ञात की तलाश शुरू होती है। उस अज्ञात को हम जो भी नाम देना चाहें दें; परमात्मा कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, सत्य कहें, समाधि कहें, ये सिर्फ नामों के भेद हैं। लेकिन इनकी खोज के पहले यह अनिवार्य है अनुभव हो जाना कि यहां घर बन नहीं सकता। यहां घोसले बिगड़ने को ही बनते हैं यहां सब आशियाने उजड़ जाते हैं। उजड़ना यहां का स्वभाव है। बसना धोखा है, उजड़ना सचाई है। बसना भ्रांति है। थोड़ी-बहुत देर कोई सपना देख सकता है बसने का, लेकिन सपने, सपने हैं। कितनी देर भुलाए रखोगे अपने को सपने में?

जो जितनी जल्दी सपने को सपने की भांति देख ले, उतना बुद्धिमान है। कोई युवावस्था में देख लेता है, कोई बुढ़ापे तक में नहीं देख पाता। तुम्हारी बद्धिमत्ता की एक ही कसौटी है--जितने जल्दी तुम यह देख लो कि यह कागज की नाव है जिसमें तुम बैठे हो, यह डूबेगी; अब डूबी, तब डूबी; और यह रेत पर बनाया गया घर है, यह गिरेगा; अब गिरा, तब गिरा। इसके पहले कि घर गिर जाए, जो इस घर से मुक्त हो जाता है, इस घर के लगाव से मुक्त हो जाता है, मोह से मुक्त हो जाता है, उसके जीवन में एक नई किरण उतरती है--परमात्मा की खोज शुरू होती है।
फूल पै धूल, बबूल पै शबनम, देखने वाले देखता जा
अब है यही इंसाफ का आलम, देखने वाले देखता जा
परवानों की राख उड़ा दी वादे-सहर के झोंकों ने
शमअ बनी है पैकरे-मातम देखनेवाले देखता जा
एक पुराना मदफन जिसमें दफ्न हैं लाखों उम्मीदें
छलनी-छलनी सीनए-आदम देखने वाले देखता जा
एक तेरा ही दिल नहीं घायल दर्द के मारे और भी हैं
कुछ अपना कुछ दुनिया का गम देखने वाले देखता जा
.जरा आंख खोलो और जरा देखो। तो क्या पाओगे यहां? एक पुराना मदफन जिसमें दफ्न हैं लाखों उम्मीदें। खुद को क्या पाओगे? एक पुरानी कब्र, जिसमें हजारों-हजारों आकांक्षाओं की मृत्यु घट चुकी है; जिसमें हजारों अभीप्साएं मुर्दा होकर गिर गई हैं, सड़ गई हैं।
एक पुराना मदपन जिसमें दफ्न हैं लाखों उम्मीदें
छलनी-छलनी सीनए-आदम देखने वाले देखता जा
और यहां हर हृदय छलनी-छलनी हो गया है। किसी तरह सम्हाले हैं अपने को
और चल रहे हैं, बात और है। मगर पैर सबके डगमगा गए हैं। हवाएं ऐसी हैं, आंधियां ऐसी हैं। नावें सब डांवाडोल हैं। लेकिन कुछ हैं जो नावों को किसी तरह सम्हालने में ही सारा जीवन, सारी ऊर्जा लगा देते हैं। पानी में बहा दी उन्होंने जीवन की बहुमूल्य संपदा। कुछ हैं जो यह देख कर कि यहां जीवन में शाश्वत कुछ भी नहीं है, सब क्षणभंगुर है, मुड़ जाते शाश्वत की ओर भीतर अंधेरा घर बसाए बैठा रहेगा। तुम बाहर के दिये जलाते रहोगे, उस मुड़ने में ही क्रांति घटित होती है। व्यक्ति के जीवन में धर्म का जन्म होता है।
न शास्त्र पढ़ने से होगा यह, न मंदिर-मस्जिद जाने से होगा यह, यह तो जिंदगी का दुख रूप देखोगे तो होगा। जीवन को ठीक-ठीक पहचानोगे तो होगा। राम-राम जपने से नहीं होगा। तुम ऊपर राम-राम जपते रहोगे, भीतर काम अपने सपने सजाता रहेगा। तुम मालाएं फेरते रहोगे, भीतर गहन अंधेरी रात अमावस बनी रहेगी। जीवन को देखो!
और जीवन दिखाई न पड़े, इसके हमने बड़े उपाय कर रखे हैं। करने ही पड़ेंगे। अगर जीवन का दुख सभी को दिखाई पड़ने लगे, तो यह जो राग-रंग दिखाई पड़ता है, यह जो आशा-उमंग-उत्साह दिखाई पड़ता है, यह सब एकदम तिरोहित हो जाए। ये जो लोग दिखाई पड़ते हैं चले जा रहे हैं, बड़ी तीव्रता से, इनकी गति टूट जाए। इन्हें साफ हो जाए कि यहां कोई मंजिल कभी किसी को मिली नहीं। फिर कैसे दौड़ सकेंगे? फिर किसके लिए दौड़ना है? फिर ये जो सपने बना रहे हैं और योजनाएं बना रहे हैं और चिंताएं कर रहे हैं, और विचार और ऊहापोह कर रहे हैं--क्या करें, क्या न करें--सब एकदम भस्मीभूत हो जाएगा।
हमने एक दुनिया बना ली है, असली दुनिया से बचने के लिए हमने एक विचारों का जाल खड़ा कर लिया है, अपने चारों तरफ विचार की एक पर्त बना ली है, उसके माध्यम से ही दुनिया को देखते हैं। हम अपनी आशाओं के चश्मों से ही दुनिया को देखते हैं। फिर दुनिया हमें रंगीन दिखाई पड़ने लगती है। चश्मे का दुनिया का रंग मालूम होने लगता है। और बचपन से हर बच्चे को उसके मां-बाप चश्मे देते हैं, महत्त्वाकांक्षा देते हैं, वासना देते हैं--कुछ हो जाना, कुछ बनकर बता देना, नाम रख लेना, यश कमा लेना, पद, प्रतिष्ठा, धन। हर एक को हम यही आशाओं का पाठ पढ़ाते हैं। और ये सब आशाएं एक दिन व्यर्थ हो जाती हैं। ये सब आशाएं झूठी सिद्ध होती हैं। यहां किसी की भी महत्त्वाकांक्षा कभी

पूरी नहीं हुई। ऐसा जगत का स्वभाव नहीं किसी की महत्त्वाकांक्षा पूरी करे। तब परमात्मा की खोज शुरू होती है।
असार दिख जाए संसार में, तो फिर सार को बिना खोजे कैसे रहोगे? आंख मुड़ती है, और दिशाओं में गति शुरू होती है। बहिर्यात्रा बंद होती है, अंतर्यात्रा शुरू होती है। और ध्यान रखना, अंतर्यात्रा का ही दूसरा नाम तीर्थयात्रा है। अगर तुम्हारा तीर्थ बाहर है तो तुम्हारा तीर्थ संसार का हिस्सा है। जाओ काशी, जाओ काबा, ये तीर्थ नहीं हैं। तीर्थ तो एक ही है--भीतर जाओ; जहां राम मिले, वहां जाओ; जहां शाश्वत मिले, वहां जाओ। न तो काबा में मिलेगा, न काशी में, न कैलाश में। बाहर की यात्रा चाहे तुम धर्म के नाम पर करो और चाहे धन के नाम पर, बाहर की ही यात्रा है। और बाहर की यात्रा तुम्हें भीतर न लाएगी।
बाहर कुछ मिलता ही नहीं। इस बात को मानने में पीड़ा होती है, क्योंकि हमारा सब किया अनकिया हो जाता है। हमने अब तक जो भी जिंदगी में दाँव लगाए हैं, वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। हम देखना नहीं चाहते।
एक मेरे परिचित थे; उनकी पत्नी मेरे पास आई। उसने कहा कि शक है कि मेरे पति को केंसर है, मगर वे डाक्टर के पास नहीं जाते। वे कहते हैं--मुझे कोई बीमारी ही नहीं है, तो मैं जाऊं क्यों? मैंने उन मित्र को बुलाया। मैंने कहा तुम्हारी पत्नी परेशान है। वे बोले व्यर्थ परेशान है। जब मैं बीमार ही नहीं हूं तो मैं डाक्टर के पास जाऊंगा क्यों? मैंने उनसे कहा जब तुम बीमार नहीं हो, तो डाक्टर के पास जाने में इतना डर क्या है? पत्नी का मन रह जाएगा, मुझे भी दिख रहा है कि तुम बीमार नहीं हो, और डाक्टर को भी दिख जाएगा, कोई भी डाक्टर तुम्हारी पत्नी की मान कर बीमार थोड़े ही समझ लेगा। अब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। शक तो उन्हें भी है, भीतर डर तो उन्हें भी है। इसी डर के कारण डाक्टर के पास नहीं जा रहे हैं कि कहीं शक सच्चा साबित न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि केंसर हो ही। पर मेरे पास आ गए तो मुश्किल में पड़ गए, अब उनको उत्तर देते न सूझे। मैंने कहा, पत्नी परेशान है, यह बीमार हो जाएगी इस तरह परेशान होते-होते; रात सोती नहीं; यही फिक्र लगी रहती है; इसका भ्रम मिटा दोः तुम बिल्कुल ठीक मालूम दे रहे हो, डाक्टर को भी ठीक मालूम होओगे, मगर इसका भ्रम टूट जाएगा, इसको शांति मिल जाएगी; इसकी खातिर तुम चले जाओ। अब मना करने का कोई उपाय न रहा।
मैं उन्हें डाक्टर के पास ले गया। मैं साथ ही उनके गया, क्योंकि मुझे
डर था रास्ते में वे पत्नी को कुछ न कुछ कह कर भाग खड़े होंगे। डाक्टर से उन्हें डर लग रहा था। और वही हुआ, कैंसर उन्हें था। वे एकदम रोने लगे। मैंने उन्हें कभी रोते नहीं देखा था। और कहने लगे कि आपने मुझे मुसीबत में डाला। जैसे कि मैंने उनको केंसर करवा दिया। सब ठीक-ठाक चल रहा था, अब मुझे मुश्किल में डाल दिया। मैंने कहा, मुश्किल में तुम थे। अब कुछ उपाय खोजा जा सकता है।
लेकिन उनकी तर्कसरणी समझते हो? उनकी तर्कसरणी इस संसार में अधिक लोगों की तर्कसरणी है। इसलिए लोग सदगुरुओं के पास नहीं जाते। डर है कि वहां रोग दिखाई न पड़ जाए। भय है कि कहीं जीवन की व्यर्थता समझ में न आ जाए। फिर क्या करेंगे? कहीं हाथ खाली हैं, ऐसा अनुभव में न आ जाए अभी तो मुट्ठी बांध रखी है और भरोसा कर रखा है कि हीरे-जवाहरात हाथ में हैं। उस भरोसे में मजा है। उस भरोसे से ही जीए जा रहे हैं। गर्मी है, उत्साह है। कहीं कोई सदगुरु हाथ खोल कर दिखा न दे कि सब मिट्टी है यहां, न कोई हीरे हैं, न कोई जवाहरात हैं। तो तुम एकदम गिर पड़ोगे स्वर्ग से। एकदम सिंहासन से उतर जाओगे। तुमने अपने टूटे-फूटे मकान को महल समझ रखा है। सदगुरु के पास जाओगे तो झकझोर कर दिखा देगा कि यह टूटा-फूटा झोपड़ा है; कहां का महल, किस सपने में पड़े हो?
क्रोध भी आएगा सदगुरु पर।
सदा से सदगुरुओं पर लोगों को क्रोध आया है। यह क्रोध आकस्मिक नहीं है। इस क्रोध के पीछे बड़ा मनोविज्ञान है। तुमने ऐसे ही थोड़े महावीर को गालियाँ दीं। तुमने ऐसे ही थोड़े बुद्ध को पत्थर मारे। तुमने ऐसे ही थोड़े सुकरात को जहर पिला दिया। कोई व्यर्थ झंझट करने जाता है? हर किसी को कोई

पत्थर नहीं मारता। साधु-संतों की तो लोग पूजा करते हैं। उनके चरणों में फूल चढ़ाते हैं, उनसे आशीर्वाद लेने जाते हैं। तो इस दुनिया में दो तरह के साधु-संत हैं। एक साधु-संत, जो तुम्हे सांत्वना देते हैं। उनकी तुम पूजा करते हो। जो तुम्हें सांत्वना देता है, जो कहता है--आपको और कैंसर, कभी नहीं हो सकता। हाथ की रेखाओं में ही नहीं है। मैंने हाथ देख कर बता दिया। आपको और कैंसर! कभी नहीं हो सकता। आप जैसे सरलचित्त व्यक्ति, सेवाभावी, मंदिर-मस्जिद जाने वाले, गीता-कुरान पढ़ने वाले, आपको केंसर! कभी नहीं। यह तो नास्तिकों को होता है। चित्त प्रसन्न हुआ। आप अपने घर आ गए। कोई सांत्वना दे तो तुम प्रसन्न होते हो।
तुम ख्याल रखना, ये दो तरह के साधु-संत इस जमीन पर सदा रहे हैं। तुम्हें सांत्वना देने वाला, तुम्हारे घावों को छिपाने वाला, तुम्हारे घावों पर दो फूल रख देने वाला तुम्हें प्यारा लगता है, हालांकि वह तुम्हारा दुश्मन है। वह तुम्हारे संसार को उजड़ने न देगा। वह तुम्हें भटकाए रखेगा। मगर तुम भटकना चाहते हो। इसलिए भटकाने वाले तुम्हें प्यारे मालूम पड़ते हैं। कभी सौ में एक ऐसा साधु भी होता है, जो तुम्हें सांत्वना नहीं देता। वरन विपरीत तुम्हारी सारी सांत्वनाएं छीन लेता है। तुम्हारी सारी आशाएं छीन लेता है। तुम्हारी आंख से सारे सपने खींच लेता है। ऐसे संतों को तुम पत्थर मारोगे ही। तुम हजार उपाय खोजोगे। इस व्यक्ति से तुम्हारे भीतर भय पैदा हो गया। इसने तुम्हें कंपा दिया। मगर यही सदगुरु है। निन्यानबे तो सब असदगुरु हैं, मिथ्या, झूठे। वे तो तुम्हारे संसार का ही श्रृंगार हैं। तुम्हारी दुकान, तुम्हारी बाजार, तुम्हारी वासनाओं- कामनाओं का हिस्सा हैं। तुम उनको जहर देने वाले नहीं हो। और न तुम उनको पत्थर मारोगे। तुम तो उनकी पूजा करोगे।
लेकिन बुद्ध को तुम पत्थर मारोगे। दादू को तुम सताओगे। कबीर को तुम परेशान करोगे। तुम परेशान करोगे इसलिए कि कबीर की मौजूदगी तुम्हें परेशान कर रही है। तुम्हारा जिम्मा नहीं; कसूर है तो कबीर का ही है। कबीर तुम्हारी पर्त-पर्त को उघाड़ कर रखे दे रहे हैं। तुम्हारे घाव उघाड़े दे रहे हैं, दबा-दबा कर तुम्हारी मवाद तुम्हें दिखाए दे रहे हैं। तुम्हारे भीतर से घाव और तुम्हारे नासूर और तुम्हारे केंसर तुम्हारी आंखों में उघाड़ कर ला रहे हैं। तुम नाराज हो जाओगे।
जिन मित्र की मैंने तुमसे बात की, वे जितने दिन जिंदा रहे, मुझसे नाराज रहे। फिर मेरे पास नहीं आए। उनकी नाराजगी का कारण साफ है। मैं उन्हें दुश्मन मालूम पड़ रहा हूं, क्योंकि सब ठीक चल रहा था, अब वे डगमगा गए, अब वे घबड़ा गए।
ईश्वर की तलाश में तो तुम्हारा संसार बिल्कुल डगमगा जाए तो ही शुरू
हो सकती है। इससे कम में तलाश शुरू नहीं होती। अगर तुम्हारे पैर.जरा भी संसार में जमे रहें तो तुम कहोगे, अभी क्या जल्दी है? अभी थोड़ी देर और रस ले लें। थोड़ी देर और मजा कर लें। थोड़ी देर यह उत्सव और चलता है चल लेने दें। जल्दी क्या है, परमात्मा प्रतीक्षा कर सकता है। वह तो शाश्वत है, सदा है, फिर खोज लेंगे। तुम परमात्मा को कल पर टालते जाओगे अगर तुम्हारे पैर .जरा भी जमीन पर रुकें। सदगुरु वही है, जो तुम्हारे पैर के नीचे से सारी जमीन खींच ले। नाराज न होओगे तो क्या करोगे?
मैं जानता हूं, जिन्होंने सुकरात को जहर दिया, तुम्हारे जैसे ही लोग थे। परेशान हो गए थे। अदालत में जिसने तय किया कि सुकरात को जहर दिया जाए, उसने सुकरात को दो विकल्प भी दिए थे। अदालत ने यह कहा था कि अगर तुम एथेंस छोड़ दो तो हमें तुम्हारी कोई चिंता नहीं है। फिर तुम जिंदा रहो, तुम्हें जो करना है करो। अगर एथेंस नहीं छोड़ते हो तो मृत्यु की सजा। क्योंकि एथेंस के नागरिक तुमसे परेशान हो गए हैं। दूसरा विकल्प, अगर तुम एथेंस में ही रहना पसंद करो तो अब तक तुम जो काम कर रहे थे, वह बंद कर दो। लोगों को जगाने का काम बंद करो। लोग नहीं जगना चाहते। तुम सत्य की बात करनी बंद करो। अगर लोगों को असत्य प्रिय है तो उनकी स्वतंत्रता है, उनको असत्य प्रिय रहने दो। तुम यह लोगों का पीछा मत करो। तुम लोगों को बेचैन मत करो। लोगों के घावों में अंगुलियां डाल कर उन्हें मत दिखाओ कि ये घाव हैं। दर्द होता है,

पीड़ा होती है। तो तुम चुप हो जाओ। अगर तुम चुपचाप रहो, हमें कोई एतराज नहीं, जिंदा रह सकते हो।
लेकिन सुकरात ने कहाः एथेंस मैं छोड़ कर जाऊं कहां? जहां जाऊंगा वहीं
यह मुसीबत फिर से पैदा हो जाएगी। क्योंकि वहां भी ऐसे ही लोग हैं। वे भी नाराज होंगे। रही मेरे चुप हो जाने की बात, वह संभव नहीं है। सत्य तो बोलेगा, कीमत कुछ भी चुकानी पड़े। सत्य अनबोला नहीं रहेगा। सत्य की तो घोषणा होगी। यह मेरे वश में नही है, सुकरात ने कहा, कि मैं रोक लूं। मैं हूं कहां अब? सत्य ही है। और जो होना है, वही होगा। फिर तुम चिंता न करो। मरना तो मुझे है ही, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, मरूंगा तो हई। ऐसे मरा, वैसे मरा, क्या फर्क पड़ता है? तुम्हें जो सजा देनी है, तुम दे दो। तुम मुझे बचने के उपाय मत बताओ, क्योंकि इस जिंदगी में बचने का कोई उपाय ही नहीं। यह जिंदगी ही विकल्प नहीं देती, यहां मौत निर्णीत है। तो कब मरे--आज कि कल कि परसों; कैसे मरे--बीमारी से मरे, बिस्तर पर मरे, जहर देकर मारे गए, कि सूली पर लटका कर मारे गए, क्या फर्क पड़ता है? मौत आती ही है। किस ढाँचे में आती है, किस शैली से आती है, इससे.जरा भी भेद नहीं होता।
सुकरात पर लोग नाराज नहीं थे ऐसे ही, कारण था।
जिस आदमी के जीवन में संसार में अभी लगाव है, वह सदगुरुओं से नाराज होगा। तुम तो गुरुओं के पास भी इसलिए जाते हो कि संसार की कुछ आकांक्षा पूरी हो जाए। ऐसे भूले-भटके लोग मेरे पास भी आ जाते हैं। एक ही बार आते हैं, क्योंकि दोबारा फिर उनके आने का कोई उपाय नहीं रह जाता। वे समझ जाते हैं कि यह स्थान नहीं है। वे मेरे पास आ जाते हैं कि चुनाव में खड़ा हुआ हूं, आशीर्वाद दे दें। तुम्हें चुनाव में जिताने का आशीर्वाद कोई सदगुरु देगा? सदगुरु आशीर्वाद देगा कि जितनी जल्दी हार जाओ, उतना अच्छा। हारे को हरिनाम। हारो तो हरि का नाम याद आए। जीतो तो कैसे याद आएगा? जीत में तो अकड़ बढ़ती चली जाएगी। मेरे पास भी लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, कि व्यवसाय शुरू कर रहा हूँ, आपके आशीर्वाद से शुरू करना है। मैं कहता हूं, तुम कहीं और जाओ। मेरे आशीर्वाद से शुरू करोगे, व्यवसाय चलेगा ही नहीं। मेरा आशीर्वाद तो एक ही हो सकता है कि तुम्हारे सब व्यवसाय टूट जाएं। मगर तब तुम नाराज न होओ तो क्या होओ? तुम फिर मुझ से बदला न लो तो क्या करो? तुम फिर अपने रास्ते खोजोगे मुझसे बदला लेने के। तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। तुम्हारी तकलीफ भी स्वाभाविक है।
इसलिए एक बात ख्याल रखना, तभी आज के सूत्र समझ में आ सकेंगे। संसार व्यर्थ है ऐसी तुम्हारी थोड़ी प्रतीति हो जाए तो सदगुरु से संबंध जुड़ सकता है। अन्यथा तुम्हारे संबंध असदगुरुओं से ही जुड़ेंगे, क्योंकि तुम उनके पास भी संसार की ही सुरक्षा के लिए जाओगे। तुम उनसे भी धन माँगोगे, पद माँगोगे, प्रतिष्ठा मांगोगे। पुत्र मांगोगे, पुत्री मांगोगे, व्यवसाय मांगोगे, धंधा, सफलता, बस तुम संसार ही मांगोगे। किसी न किसी बहाने तुम्हारे मन में संसार की ही आकांक्षा होगी। और जिसके मन में संसार की आकांक्षा है, वह असदगुरु के पास ही जा सकता है। उसका मेल असदगुरु से ही पड़ सकता है।
मुझसे लोग कभी-कभी आकर पूछते हैं कि निर्णय कैसे करें कि सदगुरु कौन है? मैं उनसे कहता हूं--तुम इसकी फिकर ही मत करो, तुम क्या निर्णय करोगे कि सदगुरु कौन है? तुम इतनी ही फिक्र कर लो कि तुम्हारा संसार चुक गया? फिर तुम्हें असदगुरु से संबंध जुड़ ही नहीं सकता। क्योंकि असदगुरु दे सकता है संसार की ही वासनाएं, संसार के ही प्रलोभन, संसार की ही महत्त्वाकांक्षाएं। उसके आशीर्वाद सांसारिक हैं। तुम्हारा संबंध ही असदगुरु से नहीं जुड़ सकता। इसलिए सवाल यह नहीं है कि हम सदगुरु को कैसे पहचानें, सवाल यह है कि हमारे भीतर अगर संसार की आकांक्षा क्षीण हो गई है, तो तुम्हारा जिससे संबंध बैठेगा, जिससे तुम्हारा प्रेम हो जाएगा, वह सदगुरु ही होगा। असदगुरु को तो तुम तत्क्षण देख लोगे। क्योंकि तुम ध्यान माँगोगे, वह धन का आशीर्वाद देगा। तुम परमात्मा माँगोगे, वह पद का आशीर्वाद देगा। तुम कुछ मांगोगे, वह कुछ देगा। तुम्हारी आंखें साफ-साफ

देख लेंगी कि वह जो दे रहा है, यह वही संसार है जिसे तुम छोड़ आए; या जिसे तुम देख आए कि व्यर्थ है।
कोई निर्णय नहीं कर सकता कि सदगुरु कौन है, असदगुरु कौन है? लेकिन यह निर्णय तो तुम कर ही सकते हो कि तुम्हारे भीतर संसार का रस चुक गया है या शेष है? अगर चुक गया, तो तुम जिसे भी पा लोगे वह सदगुरु होगा।
और जिस व्यक्ति के जीवन में संसार का रस चुक गया है अैर परमात्मा की खोज शुरू हो गई है, उसे सदगुरु खोजना ही होगा। क्योंकि परमात्मा से सीधा- सीधा संबंध बनाना करीब-करीब असंभव है। मैं कहता हूं, करीब-करीब असंभव है; क्योंकि कभी-कभी बन जाता है। मगर निन्यानबे मौकों पर नहीं बनता। निन्यानबे मौकों पर बीच में एक सेतु की जरूरत पड़ती है। वही सेतु सदगुरु है।
हम तो समो चुके हैं तुझे सांस-सांस में
यह और बात है कि तुझे आग ही नहीं
क्या हो सकेगा इसका मदावा शराब से
यह जिंदगी का गम है, गमे-आशिकी नहीं
अहले-वफा में ऐसे भी कुछ नामुराद हैं
जिनको तेरी जफा भी मय्यसर हुई नहीं
ऐ "शाद"! क्या बात है कि बज्मे-हयात में
शमएं तो जल रही हैं, मगर रोशनी नहीं
यहां जल तो रहे हैं दीये सब तरफ, मगर रोशनी नहीं हो रही है, क्योंकि अभी तुम्हारे पास आंखें ही उन दीयों की रोशनी देखने के योग्य नहीं है। सूरज तो निकला हुआ है, मगर तुम अंधेरे में हो। तुम्हें आंख खोलने की याद ही भूल गई है। तुम आंख बंद किए खड़े हो और सूरज को देखना चाह रहे हो! सदगुरु का इतना ही अर्थ है, सदगुरु तुम्हें सूरज नहीं दे देगा, सदगुरु सिर्फ तुम्हें आंख खोलने की कला दे देगा, सूरज तो मौजूद है। सदगुरु तुम्हें परमात्मा नहीं दे देगा, परमात्मा तो मौजूद ही है, न देना है, न लेना है, लेकिन सदगुरु तुम्हारे भीतर सरगम बिठा देगा कि वह परम संगीत सुनाई पड़ने लगे। सदगुरु तुम्हें सुनने की कला दे देगा ताकि तुम्हारे कान उस मधुर रस को सुन लें, जो प्रतिपल मौजूद है। तुम्हारे कान अभी केवल शोरगुल सुनने में समर्थ हैं। बाजार का उपद्रव सुनने में समर्थ हैं। हंगामा होता हो तो सुन लेते है। भीड़-भाड़ की आवाज हो, शोरगुल हो, नारे हों, सुन लेते हैं। वह जो भीतर ओंकार का नाद हो रहा है, उसे नहीं सुन पाते। वह अति सूक्ष्म है।
कोई संगीतज्ञ से संबंध जोड़ना पड़ेगा, जो धीरे-धीरे एक-एक कदम सूक्ष्मता में तुम्हें उतारता जाए। किसी का हाथ पकड़ना होगा जिसे देखना आ गया है। अंधे आदमी को रास्ता पार करना हो तोकिसी का हाथ पकड़ लेता है। और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि जिसका हाथ पकड़ा है, हो सकता है वह भी अंधा हो, मगर यह भरोसा कि किसी का हाथ पकड़ा है बल दे देता है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जिन्होंने परमात्मा को नहीं जाना है, उनको भी जिन्होंने प्रेम और श्रद्धा से स्वीकार कर लिया है वे परमात्मा तक पहुंच गए हैं। गुरु तो निमित्तमात्र है।
ऐसी घटना भी घटती है।
मैंने सुना, एक अंधा आदमी राह के किनारे खड़ा रास्ता देख रहा है कि कोई
आ जाए और उसे पार करा दे। तभी एक और आदमी भी आकर खड़ा हो गया पास में, वह भी अंधा है और किसी की राह देख रहा है। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ टटोला, दोनों ने यह समझा कि चलो, आ गया कोई; दोनों रास्ता पार कर गए। उस पार जाकर दोनों ने एक-दूसरे को धन्यवाद दिया कि बड़ी कृपा की कि मुझे पार करवा दिया। दूसरे ने कहा कि आप क्या कहते हैं, कृपा आपने की कि मुझे पार करवा दिया। तब पता चला राज कि दोनों अंधे थे। मगर यह भरोसा आ गया कि कोई हाथ पकड़े है, यात्रा सुगम हो गई।
श्रद्धा आ जाए तो शक्ति आ जाती है। फिर अगर आंखवाले आदमी का हाथ मिल जाए तब तो कहना क्या? मैं तो सिर्फ यह उदाहरण के लिए कह रहा हूँ कि कभी-कभी अंधों ने भी एक-दूसरे का साथ देकर पार करवा दिया है; तो आंख वाले का हाथ मिल जाए तब तो कहना क्या?

दीये जले हुए हैं, सूरज निकला हुआ है, फूल खिले हुए हैं, सिर्फ तुम्हें कला भूल गई है। तुम्हारी संवेदना क्षीण हो गई है। तुम जड़ हो गए हो। न तुम्हें सुनाई पड़ता, न तुम्हें दिखाई पड़ता, तुम्हारे हृदय में अब कोई धड़कन नहीं है। प्रेम बरस रहा है।
जीसस ने कहाः ईश्वर प्रेम है। हम सुन भी लेते हैं, मगर समझ में नहीं आता। प्रेम बरस रहा है। इस क्षण भी बरस रहा है। ऐसी कोई घड़ी नहीं है जब तुम्हारे ऊपर प्रभु का प्रेम नहीं बरस रहा है। एक क्षण को भी उसका प्रेम का बरसना बंद हो जाए, तुम्हारे जीवन का सेतु टूट जाए। उसके प्रेम से ही तुम जी रहे हो। उसके प्रसाद से ही तुम श्वास ले रहे हो। उसके प्रसाद ही तुम्हारा अस्तित्व है। मगर पहचान नहीं रह गई है, बोध नहीं रह गया है। जिसे बोध हो, उसके साथ मैत्री बना लेने का नाम ही सदगुरु को खोजना 158158 है। वो रिंदे पाकबाज हैं छूलें अगर हमें
दोजख की आग को भी गुलिस्तां बनाएं हम
उन पियक्कड़ों से.जरा दोस्ती हो जाए जो परमात्मा को पीकर बैठे हैं। जिन्होंने परमात्मा की शराब पी ली है, जिन्होंने वह पवित्र शराब पी ली है-- वो रिंदे पाकबाज हैं, छूलें अगर हमें
दोजख की आग को भी गुलिस्ताँ बनाएं हम
बस इतना हो जाए तो नरक की आग भी गुलिस्तां बन जाए, तो नरक की आग में भी फूल खिल जाएं, तो नरक का अंधेरा भी रोशनी हो जाए। नरक कहीं है ही नहीं सिवाय तुम्हारी आंख के बंद होने के। कहीं और नरक नहीं है। तुम्हारा अंधापन ही तुम्हारा नरक है। आंख खुल जाए तो स्वर्ग ही स्वर्ग है। स्वर्ग के अतिरिक्त यहां कुछ है ही नहीं। यह सारा-का-सारा स्वर्ग। है यह अस्तित्व सब रूपों का स्वर्ग है। लेकिन यह मैं जानता हूं कि लोग नरक में जी रहे हैं। यह बड़ी अड़चन की बात है, अस्तित्व पूरा का पूरा स्वर्ग है और मजा ऐसा है कि लोग नरक में जी रहे हैं अधिक लोग नरक में जी रहे हैं--कभी कोई स्वर्ग में जीता है।
कैसे संबंध जुड़े इस स्वर्ग से? कैसे घटना घटे? कैसे ये अंधेरी रात कटे? कैसे ये विरह के क्षण पूरे हों? किसी पियक्कड़ को खोज लो। किसी मतवाले को खोज लो। और मतवाले सदा हैं। तुम नहीं खोज पाते हो उसका कारण एक ही है सिर्फ कि तुम हमेशा पुराने मतवालों को खोज रहे हो, जो अब नहीं है। कोई बुद्ध को खोज रहा है, बुद्ध अब नहीं हैं। यह तो बात ऐसी साफ है कि अब बुद्ध नहीं हैं। कोई महावीर को खोज रहा है, महावीर अब नहीं हैं। और मजा यह है कि तुम जब महावीर मौजूद थे तब तुम महावीर को नहीं खोज रहे थे, तब तुम कृष्ण को खोज रहे थे। और जब कृष्ण मौजूद थे, तब तुम किसी और को खोज रहे थे। तुम हमेशा मुर्दों को खोजते हो। और परमात्मा सदा जीवित रूप में मौजूद होता है। तुम्हारे मंदिरों में तुम मुर्दों की पूजा कर रहे हो और परमात्मा कहीं जिंदा है, चल रहा है, उठ रहा है, बैठ रहा है। अभी गीत कहीं गाया जा रहा है, तुम भगवद्गीता पढ़ रहे हो। तुम कुरान की आयतें रट रहे हो, कहीं अभी आयतें उतर रही हैं। कहीं परमात्मा अभी फिर पुकार रहा है, लेकिन तुम वेद में उलझे हो, और कहीं वेद रचे जा रहे हैं, कहीं एक-एक शब्द ऋचा है।
मगर तुम्हारी कठिनाई यह है कि तुम सदा मुर्दे को पूजते हो। मुर्दे को पूजने के पीछे कारण है। मुर्दे की प्रतिष्ठा है, हजारों साल की प्रतिष्ठा है। तुम बाजार में जीने के आदी हो। बाजार में पुराने की क्रेडिट होती है। नाम बिकता है। नये को कौन खरीदता है? नये को बेचना मुश्किल है। नई चीज भी चलानी हो तो लोग पुराना नाम खरीद लेते हैं। पुराने नाम के खूब दाम मिलते हैं। तुम अगर नई साबुन बनाओ और लक्स टॉयलट साबुन का नाम खरीद लो, तो बिकेगी, बिक जाएगी, कोई फिक्र न करेगा कि नई है कि पुरानी। लेकिन नई साबुन बनाओ तो बिकना आसान नहीं है। नाम चाहिए--लोग नाम खरीदते हैं। लोग नाम से परिचित हैं। लोग विज्ञापन खरीदते हैं--हजारों साल का विज्ञापन है।
मैंने सुना है, अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति एंडयू कारनेगी विज्ञापनों के बड़े खिलाफ था। वह कभी एडवरटाइजमेंट देता नहीं था किसी अखबार में। लेकिन एक अखबार का मालिक उसके पीछे ही पड़ा था। वह कितना ही उसको भगाता, वह फिर लौट-लौट कर दो-चार दिन में आ जाता। उसको भरोसा था कि वह

राजी कर लेगा। एक दिन सुबह ही सुबह पहुंचा, एण्ड्रू कारनेगी को उसने बगीचे में ही पकड़ लिया। एण्ड्रू कारनेगी ने कहा--भई, आ गए फिर तुम, मुझे विज्ञापन देने नहीं हैं। उसने पूछाः लेकिन क्यों नहीं देने हैं? आप मुझे एक दफे ठीक-ठीक समझा दें, मैं दुबारा न आऊं। क्यों नहीं देने हैं। तर्क क्या है? उसने कहा कि मेरी चीजें बिक ही रही हैं, मैं क्यों विज्ञापन दूं? लोग मेरी चीजों को खरीद ही रहे हैं, लोगों को पता ही है, विज्ञापन की मुझे कोई जरूरत नहीं है। तभी पहाड़ी के ऊपर बने हुए चर्च की घंटियां बजने लगीं। उस विज्ञापन मांगने वाले अखबार के मालिक ने कहाः आप सुनते हैं? यह चर्च कितने दिनों से वहां है? एण्ड्रू कारनेगी ने कहा कि यह सौ साल पुराना चर्च है। उस अखबार के मालिक ने कहाः अभी यह सुबह-शाम घंटियां बजाता है कि नहीं? नहीं तो लोग भूल जाएंगे। ये घंटियां विज्ञापन हैं कि मैं अभी हूं कि मुझे भूल मत जाना।
और कहते हैं एण्ड्रू कारनेगी थोड़ी देर चर्च की घंटियां सुनता रहा, और उसने विज्ञापन देना शुरू कर दिया। उसे बात समझ में आ गई। लोग विज्ञापन को अर्थ देते हैं, मूल्य देते हैं।
अब वेद का विज्ञापन पुराना है। इसीलिए तो सभी धर्मों के लोग यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं--हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है। वैज्ञानिक शोध से पता चलता है कि वेद पांच हजार साल से पुराने नहीं हैं। लेकिन लोकमान्य तिलक कहते हैं--नब्बे हजार साल पुराने हैं। हिंदू तो कहते हैं-- सनातन हैं। हम कोई सालों में गिनती नहीं करना चाहते। क्योंकि सालों में गिनती करना खतरनाक है। कोई दूसरी किताब निकल आए जो ज्यादा पुरानी हो! सनातन हैं। सदा से हैं। ऐसा कभी था ही नहीं जब वेद नहीं थे। यह इतना आग्रह क्यों है?
जैनों से पूछो, जैन कहते हैं, जैन-धर्म हिंदू धर्म से पुराना है। हमारे तीर्थंकर सबसे ज्यादा पुराने हैं। दलीलें खोजते हैं। वे कहते हैं, हमारे पहले तीर्थंकर का नाम ऋग्वेद में उपलब्ध है। और आदर से उपलब्ध है। तो उसका मतलब यह हुआ कि जब ऋग्वेद लिखा गया, तब भी हमारा धर्म था, हमारा पहला तीर्थंकर हो चुका था। और इतने आदर से उल्लेख किया गया है पहले तीर्थंकर का जैसा कि हम समसामयिक आदमी का कभी नहीं करते। समसामयिक की तो हम निंदा करते हैं। हम तो आदर ही पुराने का करते हैं। हमारी तो आदर की प्रक्रिया ही पुराने के लिए है। तो वे कहते हैं, इतने आदर से उल्लेख किया है पहले तीर्थंकर का, इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर को मरे हजारों साल हो चुके होंगे। अगर समसामयिक होते तीर्थंकर तो एक तो आदर ही नहीं होता, नाम का उल्लेख भी नहीं हो सकता था। तो ऋग्वेद से ज्यादा पुराना जैन धर्म है।
सब की चेष्टा यही है कि उनकी किताब, उनका धर्म सबसे ज्यादा पुराना हो। क्यों? पुराने की प्रतिष्ठा है। पुराने के साथ परंपरा जुड़ जाती है। हजारों साल का इतिहास, कहानियां, कथाएं, घटनाएं जुड़ जाती हैं। बल पैदा हो जाता है। जब नया पैदा होता है तो उसके साथ न कोई परंपरा होती है, न कोई कहानियाँ होती हैं, न कोई पुराण होते हैं। मगर परमात्मा सदा ही नया है। परमात्मा सदा नूतन है--नित-नूतन है। तुम्हारी अड़चन यही है कि तुम पुराने में खोजते हो और नहीं पाते। और पुराने में खोजने के कारण तुम पंडित के हाथ के शिकार हो जाते हो। क्योंकि पंडित पुराने का धंधा करता है। पंडित पुराने से जीता है। पंडित परंपरा का शोषण करता है। तुम्हारी परंपरा की आकांक्षा का पंडित ठीक-ठीक शोषण कर लेता है। फिर तुम्हें पंडित के हाथ पड़ जाना होता है।
और पंडित तुम्हें सांत्वना दे सकता है, सत्य नहीं। सत्य तो उसे खुद भी नहीं मिला। उसके हाथ में भी मुर्दा शब्द हैं। वह मुर्दा शब्दों से ही तुम्हें भर देगा। तुम्हारे मस्तिष्क में भी मुर्दा शब्द डाल देगा। सदगुरु की खोज तो तभी हो सकती है जब तुम एक बात समझ लो कि अब बुद्ध तो मिलेंगे नहीं, अब किसी जीवित बुद्ध को तलाशना है। अब महावीर तो मिलेंगे नहीं, अब किसी जीवित महावीर को तलाशना है। और यह भी ख्याल रखना कि महावीर एक दफा ही एक ढंग के होते हैं। दूसरी दफा उसी ढंग के नहीं होते। इस जगत में

पुनरुक्ति नहीं होती। यह भी एक अड़चन है खोजी के लिए। तुमने एक ढांचा बना लिया है। चलो, ठीक, आज के महावीर को खोज लेंगे, मगर आज का महावीर प्राकृत भाषा नहीं बोलेगा। कैसे बोलेगा? आज का महावीर हो सकता है हिंदी बोले, मराठी बोले, गुजराती बोले; और तुम प्राकृत बोलनेवाले महावीर को खोजोगे, क्योंकि मूल महावीर ने प्राकृत बोली थी। नहीं पाओगे।
महावीर का एक ढंग था, एक जीवन-दृष्टि थी, एक शैली थी। अद्वितीय थी, अनूठी थी, मगर इस दुनिया में कार्बनकॉपी होती ही नहीं। और कार्बनकॉपी का खतरा है। अगर तुम महावीर को खोजने गए तो किसी कार्बन कॉपी के चक्कर में पड़ जाओगे। कहीं न कहीं लोग हैं जो कार्बनकॉपी कर रहे हैं, जो ठीक महावीर जैसे ही चल रहे हैं, उठ रहे हैं, बैठ रहे हैं, वैसे ही भोजन कर रहे हैं, उसी ढंग से नग्न हैं, उसी ढंग का उन्होंने आचरण बना लिया है, उनके चक्कर में तुम पड़ जाओगे।
और ध्यान रखना, परमात्मा कभी पुनरुक्त नहीं होता। परमात्मा सदा ही अद्वितीय है, बेजा.ेड है। महावीर बस एक बार होते हैं, दुबारा नहीं होते--न तो महावीर के पहले कभी हुए थे, न महावीर के बाद कभी होंगे। मोहम्मद एक ही बार होते हैं, दुबारा नहीं होते हैं। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि परमात्मा होना बंद हो जाता है। परमात्मा रोज नये रूप लेता है। परमात्मा सृजनात्मक है।
नये को पहचानने की क्षमता चाहिए, तो सदगुरु मिलेगा। अगर पुराने की पकड़ है तो तुम्हें नकलची मिलेंगे, अभिनेता मिलेंगे; कुशल अभिनेता मिल जाएंगे; पंडित मिलेंगे, पुजारी मिलेंगे, पुरोहित मिलेंगे, अनुयायी मिलेंगे, मगर मौलिक अनुभव को उपलब्ध व्यक्ति नहीं मिल पाएगा। इस सारी पक्षपात की धारणा को आंख से उतार कर जो खोजने निकलता है, उसे निश्चित सदगुरु मिल जाता है। सदगुरु सदा मौजूद है। इस पृथ्वी पर ऐसा कभी नहीं होता जब परमात्मा का दीया कहीं न कहीं प्रगाढ़ होकर न जलता हो। ऐसा हो ही नहीं सकता। उसकी अनुकंपा अपार है। उसकी अनुकंपा का ही तो यह प्रमाण होगा कि अब भी वह आदमी से निराश नहीं हुआ है, अब भी कहीं उतरता है, अब भी कहीं पुकारता है, वैसे ही जैसे पुराने दिनों में पुकारता था अब भी पुकारता है। मगर तुम्हें उसकी नई भाषा समझनी होगी, नया रंग-ढंग समझना होगा। वह आज के अनुकूल होगा। और सदा ही चूंकि नया होगा, इसलिए जो लोग पुराने नक्शे लेकर चलेंगे उन्हें वह कभी भी नहीं मिल पाएगा। वह किसी पुराने नक्शे के ढांचे में बैठेगा नहीं। इसलिए बड़ी खुली आंख चाहिए। लेकिन अगर तुम खोज में निकले हो, अगर सच में ही खोज तुम्हारे रोएं-रोएं को पकड़ ली, तो यह घटना घटेगी। हंगामें उठ रहे हैं मेरी सांस-सांस में
सर से कदम तक इक दिले-बेकरार हूँ
अगर तुम्हारे रोएं-रोएं में बेकरारी है, बेचैनी है, खोजना ही है, सदगुरु को, प्यास है, सघन प्यास, ज्वलंत प्यास, तुम्हारा रोआं-रोआं जल रहा है--
हंगामें उठ रहे हैं मेरी सांस-सांस से
सर से कदम तक इक दिले-बेकरार हूं
--तो देर नहीं लगेगी।
जितनी प्रगाढ़ होगी अभीप्सा, उतना ही शीघ्र मिलन हो जाता है। और सदगुरु से पहली दफा आंख मिली कि बस बात हो गई। यह भी पहली आंख का प्रेम है। पहली दृष्टि। बस आंख तुम्हारी साफ होनी चाहिए, पुराने कूड़ा-करकट से भरी नहीं होनी चाहिए; आंख साफ हो, एक बार सदगुरु से मिली तो बात हो गई। दुश्मनों ने तो दुश्मनी की है
दोस्तों ने भी क्या कमी की है
अक्ल से सिर्फ जह्न रौशन था
इश्क ने दिल में रोशनी की है
यह प्रेम की घटना है। यह महा प्रेम की घटना है। "इश्क ने दिल में रोशनी
की है, अक्ल से सिर्फ जह्न रौशन था"। शास्त्रों से ज्यादा से ज्यादा बुद्धि में थोड़ी रोशनी हो सकती है। मगर वह रोशनी बहुत काम की नहीं, उधार

है, बासी है, पराई है। अपनी रोशनी तो हृदय में उठती है। अपनी लपट तो हृदय में जगती है। "अक्ल से सिर्फ जह्न रौशन था, इश्क ने दिल में रोशनी की है"। जब तुम्हारे भीतर प्रकाश धड़कता है हृदय में, तब तुम ठीक रास्ते पर आ गए। खोजो उन आंखों को जिनको देखते ही प्रेम जग जाए। खोजो उन हाथों को जिनके स्पर्श से ही प्रेम जग जाए। फिर सब सुगम हो जाता है।
ऐसी ही तो घटना रज्जब के जीवन में घटी। घोड़े पर सवार, बारात जाती थी कि दादू दयाल बीच में आ खड़े हो गए, आंख से आंख मिली और बस बात हो गई। बात की बात हो गई। उतार कर फेंक दिया सिर से मौर, दादू के चरणों में सिर रख दिया--दादू को सिरमौर बना लिया।
मार भली जो सतगुरु देहि। फेरि बदल औरे करि लेहि।।
सस्ता नहीं है सदगुरु का साथ फिर। सदगुरु मारेगा, मिटाएगा तोड़ेगा। हिम्मतवर ही उसके पास हो सकते हैं। जो सांत्वना की तलाश में गए थे वे तो दूर से ही भाग खड़े होंगे। तुम तो गए थे कि कोई तुम्हारे गले में फूलमाला पहनाएगा और वहां गर्दन काटी जाने लगी, तुम कैसे टिकोगे? गर्दन कटवाने की हिम्मत हो तो ही टिकोगे। सिर रख दिया चरणों में, इसका मतलब समझते हो? इसका मतलब सिर्फ औपचारिक नहीं होता, इसका मतलब सिर्फ प्रणाम करने का कोई ढंग नहीं है, सिर रख दिया चरणों में इसका मतलब होता है--यह रही गर्दन, काटना हो काटो। मैं ना-नुच नहीं करूंगा। हटेगी नहीं यह गर्दन। उठा लो तलवार और काट दो, यहीं इसी मस्ती से कट जाऊंगा; शिकायत नहीं होगी; इसी आनंद-अहोभाव से मर जाऊंगा, मिट जाऊंगा। मुझे मिटा दो, मैं अपने ढंग से रहकर देख लिया हूं और पीड़ा के अतिरिक्त कुछ भी न पाया, अब मुझे मिटा दो, अब मुझे जला दो, मेरी मृत्यु बनो, मेरी सूली बन जाओ। यह अहंकार मुझे जन्मों-जन्मों तक सताया है। इस अहंकार से न मालूम मैंने कितने-कितने सपने देखे, कितने विषाद सहे, इस अहंकार ने मुझे कहां-कहां नहीं भटकाया है, इस अहंकार में बहुत भटक चुका हूं, अब तुम इसे मिटा दो। मुझमें मेरा-भाव न रह जाए, मेरी खुदी मिटा दो। चरणों में सिर रखना सिर्फ नमस्कार नहीं है। इसलिए पश्चिम के लोग थोड़े हैरान होते हैं--यह भी कोई नमस्कार करने का ढंग है कि किसी के पैरों में सिर रखो! उन्हें पता नहीं यह नमस्कार का ढंग ही नहीं है। इसका नमस्कार से कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो कुछ और ही बात है। यह तो समर्पण का भाव है। यह तो समर्पण की घोषणा है कि यह रहा सिर, अब जो मर्जी हो वैसा करो।
"मार भली जो सतगुरु देहि।"
रज्जब कहते हैंः उससे ज्यादा प्यारी दुनिया में और कोई चीज नहीं। सदगुरु की मार। और मारेगा सब तरफ से, क्योंकि न मालूम कितना कचरा है सदियों-सदियों पुराना जो छीनना है। और जिसे तुम संपत्ति समझ कर पकड़े बैठे हो। और तुम्हारे भीतर न मालूम कितने रोग हैं जिन रोगों को नष्ट करना है। उन रोगों को तुमने अब तक अपना जीवन जाना है। तुम्हारे भीतर न मालूम कितने न्यस्त स्वार्थ हैं--काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है। तुम्हारे भीतर न मालूम कितनी विषाक्त मनोदशाएं हैं, उन सब को मिटाना है। एक-एक करके काटना है। तुम्हें तैयार करना है।
मार भली जो सतगुरु देहि। फेरि बदल औरे करि लेहि।।
जो उस मार को झेलने को राजी हो जाता है स्वागत से, सम्मान से, श्रद्धा से, फेरि बदल औरे करि लेहि, गुरु उसे बदल कर कुछ का कुछ कर लेता है--और ही बना देता है! रूपांतरण हो जाता है। इंच-इंच काटना पड़ता है। इसलिए थोड़े से हिम्मतवर योद्धा ही सदगुरुओं के पास रुकते हैं। कमजोर भाग जाते हैं। कमजोर भागने के लिए न मालूम कितने उपाय खोज लेते हैं, कितने तर्क खोज लेते हैं। न मालूम क्या-क्या उनके मन में विचार उठ आते हैं और भाग खड़े होते हैं। मगर ध्यान रखना, वे सब भागने के लिए व्यवस्थाएं हैं, पलायन की व्यवस्थाएं हैं।
ज्यूं माटी कूं कुटै कुंभार। त्यूं सतगुरु की मार विचार।।
और जब सतगुरु मारे, उठे उसकी तलवार, काटने लगे तुम्हारी गर्दन, तो रज्जब कहते हैं--सोचना अपने मन में, क्योंकि मन तो भागने को होगा, और मन कहेगा इसलिए थोड़े ही आए थे; आए थे कि थोड़ा ज्ञान हो जाए, आए थे कि थोड़ी शांति हो जाए, आए थे कि थोड़ा सुख हो जाए, आए थे कि थोड़ी संपदा मिल जाए, आए थे

कि थोड़ा सम्मान बढ़े, आए थे कि दुनिया में थोड़ा कुछ कर दिखाएं--नाम छोड़ जाएं, कुछ हस्ताक्षर बन जाएं--कोई गर्दन कटाने तो आए नहीं थे। यह क्या होने लगा? "ज्यूं माटी कूं कुटै कुंभार।"
तो रज्जब कहते हैं, जाकर देखना, जैसे कुम्हार माटी को कूटता है, बिना कूटे माटी तैयार नहीं होती; तुम भी माटी हो, अभी माटी से ज्यादा नहीं हो, क्योंकि अभी मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की लक्षणा है। हां, माटी तुम्हारी देह में कहीं अमृत भी छिपा है, मगर कूट-कूट कर उसे मुक्त करना होगा। तुम्हारी देह में आत्मा भी दबी पड़ी है, मगर उसके लिए राह बनानी होगी। अभी तो तुम देह-ही-देह हो। अभी तो तुम शरीर-शरीर हो--माटी और कुछ भी नहीं, बस माटी।
"ज्यूं माटी कूं कुटै कुंभार।" तो गुरु उठाएगा अपने शस्त्र, कूटना शुरू करेगा; मृत्यु से अमृत को अलग करना है, जड़ से चेतन को अलग करना है, निद्रा से होश को अलग करना है।
ज्यूं माटी कूं कुटै कुंभार। त्यूं सतगुरु की मार विचार।।
सदा ध्यान रखना, जब मार पड़े तो घबड़ा मत जाना। सोचना कि ठीक, कुम्हार के हाथ में पड़ गया हूं, अब माटी पिटती है, अब कुछ होगा। फेरि-बदल औरे करि लेहि। निजामे-आलम बदल रहा है, खुदा भी शायद नया बनेगा
नये-नये से हैं सब मुजाविर, नई-नई सी हैं खानकाहें
रहे-तलब में जो थक के बैठें, मेरी नजर में वे बुलहविस हैं
रहे-तलब में कयाम कैसा? रहे-तलब में कहां पनाहें
जो खोजने चला है, सच में ही खोजने चला है, जो सत्य का खोजी है, सत्यार्थी है, रहे-तलब में कयाम कैसा, फिर वह सोचता नहीं कि दांव पर क्या लगाना और क्या बचाना! रहे-तलब में कहां पनाहें! फिर वह शरण भी नहीं लेता। अपनी गर्दन छिपाता भी नहीं। गुरु बरसता है तो वह छाता नहीं तान लेता। गुरु बरसता है, तो वह अपने चारों तरफ बचाव के लिए आयोजन नहीं कर लेता, रक्षा का इंतजाम नहीं करता। रहे-तलब में कहां पनाहें!
और, "रहे-तलब में जो थक के बैठ जाएं, मेरी नजर में वे बुलहविस हैं।" और
जो गुरु के पास आकर जल्दी ही थक जाएं, उसका मतलब इतना ही है कि अभी संसार से उनका मन मुक्त नहीं हुआ था, अभी संसार में कुछ लगाव बना था, अभी संसार में वासना बनी थी; यूं ही चले आए थे, कच्चे-कच्चे चले आए थे, अभी पके नहीं थे, अभी परिपक्व नहीं थे; सुन लिया होगा कि संसार व्यर्थ है, मगर जाना नहीं था; पढ़ लिया होगा कि सब संसार माया है, मगर यह अपनी अनुभूति नहीं थी। "रहे-तलब में जो थक के बैठें," और जो कहें कि बस थक गए, .जरा में थक जाएं, "मेरी नजर में वे बुलहविस हैं।" वे वासनाग्रस्त लोग हैं, जो भूल से आ गए।
"रहे-तलब में कयाम कैसा?"
विश्राम कैसा? सत्य को खोजने जो चला है, वह सब दांव पर लगाता है, कुछ
भी बचाता नहीं--रहे-तलब में कहां पनाहें? और वह कोई रक्षावरण अपने चारों तरफ खड़ा नहीं करता--न बुद्धि के, न विचार के, न देह के। सब तरह से अपने को खुला छोड़ देता है।
"भाव भिन्न कछु औरे होइ।"
और जब गुरु मारता है, तो यह मत सोचना कि नाराज है। गुरु और नाराज! असंभव। यह मत सोचना कि तुम्हारा अपमान कर रहा है। गुरु और किसी का अपमान करे! असंभव।
"भाव भिन्न कछु औरे होइ।"
उसका भाव कुछ और है। कोई कुम्हार मिट्टी को पीट रहा है तो अपमान थोड़े
ही कर रहा है, सच में सम्मान कर रहा है। इस मिट्टी को चुना है, कि इस मिट्टी से कुछ मूर्ति बनानी है। और भी मिट्टियां थीं बहुत, उनको नहीं कूटा है, नहीं पीटा है, उनको योग्य नहीं समझा है। जब मूर्तिकार एक पत्थर पर छेनी लेकर जुट जाता है तोड़ने, तो पत्थर का अपमान नहीं है, सम्मान है। पत्थर तो बहुत थे दुनिया में, इस पत्थर को चुना है, इस पत्थर से भगवत्ता निर्मित होगी, इस पत्थर में कुछ विशिष्टता है।
भाव भिन्न कछु औरे होइ। ताते रे मन मार न जोइ।।

इसलिए मार पर ध्यान मत देना, भाव पर ध्यान देना। गुरु क्या कर रहा है इसका ध्यान ही मत देना, सदा खोजना उसकी आकांक्षा क्या है? और वहां तुम सदा अनुकंपा पाओगे। वहां तुम सदा करुणा पाओगे। वहां तुम सदा प्रेम पाओगे और जितना ज्यादा प्रेम होगा, गुरु उतना ही कठोर होगा।
जैसा लोहा घड़ै लुहार। कूटि-काटि करि लैवै सार।।
लोहे जैसे ही कठोर हो तुम, कठिन हो तुम, आग में तुम्हें गलाना होगा, तो
ही तुम तरल हो पाओगे। आग में तुम्हें गलाना होगा, तो ही तुम नरम हो पाओगे।
जैसा लोहा घड़ै लुहार। कूट-काटि करि लैवै सार।।
और कूटेगा और काटेगा, तभी सार उत्पन्न हो सकेगा। जैसे तुम हो, ऐसे तो असार हो। अनगढ़ पत्थर हो, कि मिट्टी का ढेर हो, कि लोहा हो।
"मारै मारि मिहरि करि लेहि"। एक हाथ से मारता है गुरु और जो मार को झेल लेता है, उसी क्षण पाएगा उसकी मेहर, उसकी अनुकंपा की वर्षा भी दूसरे हाथ से हो रही है। मगर उसको ही पता चलेगा जो मार झेल लेगा स्वागत से। जो भाग खड़ा होगा, वह उसकी मेहर से वंचित रह जाएगा, उसकी अनुकंपा से वंचित रह जाएगा। "मारै मारि मिहरि करि लेहि।" ऐसे मारता है, फिर पुचकार लेता है। चोट करता है, फिर सहलाता है। फिर-फिर चोट करेगा। और हर चोट पहली चोट से गहरी होती जाएगी। और हर चोट के बाद, हर गहरी चोट के बाद गहरी अनुकंपा तुम्हें उपलब्ध होने लगेगी। ऊपर से जो देखेगा, उसे कुछ समझ न आएगा। ये भीतर के रा.ज हैं; उन पर ही खुलते हैं जो भीतर प्रवेश करते हैं।
मारै मार मिहरि करि लेहि। तो निपजै फिरि मार न देहि।।
यह मार तब तक चलती रहती है जब तक कि तुम्हारे भीतर का दीया न जल जाए, ज्ञान की दृष्टि पैदा न हो जाए, साक्षी का जन्म न हो जाए, सार का आविर्भाव न हो जाए।
"तो निपजै फिरि मार न देहि।"
और जब इस दृष्टि का जन्म हो जाता है, फिर कोई मार नहीं है। फिर गुरु तो मारता ही नहीं है। फिर मृत्यु भी नहीं मार सकती। फिर मार ही नहीं है, फिर मृत्यु ही नहीं है। फिर अमृत है। मगर उस अमृत के पहले बहुत बार मरना होता है। और धन्यभागी हैं वे जो गुरु के हाथ से बहुत बार मरने को तैयार होते हैं।
ज्यूं सांटी संपुट में आनि। सूधी करै तीरगर पानि।।
जैसे तीर बनाने वाले तीर को संड़सी से पकड़ता है, हथौड़ी से कूटता है, सीधा करता है। "ज्यूं सांटी संपुट में आनि," जैसे तीर को पकड़ लिया हो सँड़सी से तीरगर ने, ऐसा गुरु शिष्य को पकड़ लेता है। छूटना मुश्किल हो जाता है।
भागना मुश्किल हो जाता है। जो पहले ही भाग गए, पकड़ के पहले भाग गए वे भाग गए, जो पकड़ में आ गए, वे नहीं भाग पाते।
ज्यूं सांटी संपुट में आनि। सूधी करै तीरगर पानि।।
तुम्हारें तीर बड़े इरछे-तिरछे हैं। इनसे कोई लक्ष्यभेद नहीं हो सकता। चलाओ कहीं, पहुंचेंगे कहीं। ये सीधे ही नहीं हैं। तीर को तो सीधा होना चाहिए तो ही लक्ष्य-भेद हो सकता है। तुम्हारी सब चाल इतनी तिरछी है, तुम इतने तिरछे चलते रहे हो जन्मों-जन्मों में कि तुम्हारा कुछ पक्का नहीं, कहो कुछ, करो कुछ, करना कुछ चाहते थे--तुम्हारा कुछ पक्का नहीं है। अमरीका का प्रसिद्ध विचारक और लेखक मार्कट्वेन एक सभा से व्याख्यान करके लौटा। उसकी पत्नी ने उसके घर आने पर पूछाः व्याख्यान कैसा रहा? मार्क ट्वेन ने पूछाः कौन सा व्याख्यान? जो मैं देना चाहता था, वह? या जो मैंने दिया, वह? या अब जो मैं सोचता हूं जो मुझे देना चाहिए था, वह? कौन सा व्याख्यान?
आदमी पर्त-दर-पर्त तिरछा है। तुम भी जानते हो। कहते कुछ--मुंह कुछ कहता, आंख कुछ कहती; मुंह से हां कहते हो, आंख न कहती है; मुंह से न कहते हो, आंख हां कहती; और भीतर कुछ और, भाव कुछ और; न तुम कहे की सुनोगे, न तुम भाव की सुनोगे, करोगे तुम जब तब न मालूम क्या करोगे? कुछ पक्का नहीं है। आदमी बिल्कुल तिरछा-तिरछा है, सीधा नहीं है। गुरु को इस तीर को सीधा करना होगा। तुम्हारी वाणी, तुम्हारे विचार, तुम्हारे आचरण, तुम्हारे अस्तित्व को एक तारतम्यता देनी होगी, एक सुसंबद्धता देनी होगी, एक संगति देनी होगी। तुम

अभी विवादग्रस्त हो। तुम्हारे भीतर बहुत दिशाएं चल रही हैं। तुम्हारा एक हाथ पश्चिम जा रहा है, एक हाथ पूर्व जा रहा है; एक पैर दक्षिण जा रहा है, एक पैर उत्तर जा रहा है; तुम चारों दिशाओं में चारों धामों की यात्रा पर एक साथ निकल पड़े हो। चारों धाम इकट्ठे कर लेने का इरादा है। तुम कहीं नहीं पहुंचोगे। क्योंकि तुम पहुंच सकते हो तभी जब तुम समग्रीभूत होकर एक दिशा में गति करो।
ज्यूं सांटी संपुट में आनि। सूधी करै तीरगर पानि।।
और कठिनाइयां तो होंगी--मिट्टी कूटी जाएगी, लोहा गलाया जाएगा, पत्थर तोड़ा जाएगा, तीर को कूटा जाएगा, पीटा जाएगा, सींखचों में पकड़ा जाएगा। हमने भी इक सुबह की खातिर
जलते-बुझते रात गुजारी
दुख की धूप में सूख के अक्सर
फलती है जीवन की क्यारी
दुख की धूप में सूख के अक्सर, फलती है जीवन की क्यारी। इस दुख को आनंदभाव से स्वीकार कर लेने का नाम ही तप है। गुरु और शिष्य के बीच जो संबंध है, वही तपश्चर्या है।
"मन तोड़न का नाहीं भाव।"
तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता गुरु, तुम्हें बनाना चाहता है। मगर बनाने
के लिए तोड़ना पड़ता है।
मन तोड़न का नाहीं भाव। जे तुछ तूटि जाय तौ जाव।।
और जो टूट जाते हों, उनका जिम्मा उन्हीं पर है। वे तुच्छ हैं, निकम्मे हैं, समझे नहीं बात, गुरु का हथौड़ा देखा और भाग खड़े हुए, एकाध चोट खाई और भाग खड़े हुए, इतना भी मौका न दिया कि चोट के बाद मेहेर बरस जाती।
ऐसा रोज यहां हो रहा है। क्योंकि यह तो प्रयोगशाला है। यहां लोग बनाए-मिटाए जा रहे हैं। यहां मिट्टियां कूटी जा रही हैं। यहां लोहे गलाए जा रहे हैं। यहां रोज यह होता है, कोई व्यक्ति जरा सी बात उसके विपरीत पड़ जाए, एक शब्द उसके विपरीत पड़ जाए, बस फिर दुबारा दिखाई नहीं पड़ता। फिर जो भागा सो भागा। फिर लौट कर नहीं देखता। वह यह भी मौका नहीं देता कि जो चोट की गई थी, उसको सहलाने का समय दे देता। वह इतना भी मौका नहीं देता कि जो मार की गई थी, उस मार के पीछे जो करुणा की वर्षा होने वाली थी, उसका भी थोड़ा स्वाद ले लेता। बस वह भाग जाता है। तुच्छ आदमी धैर्यवान नहीं होता। और ये रास्ते हैं धीरज के रास्ते। जीवन को रूपांतरण करना धीरज की बात है।
"जे तुछ तूटि जाय तौ जाव।।"
और अगर कोई टूट जाता हो तो ध्यान रखना, वह अपने ही कारण टूट गया। "मन तोड़न का नाहीं भाव"।
शिष्य को तो प्रतीक्षा में होना चाहिए, अनंत धैर्य में होना चाहिए।
इस कदर थे तेरी खातिर गोशबर आवाज हम
जब कली चटकी तेरे पैगाम का धोखा हुआ
शिष्य को तो ऐसा होना चाहिए कि कान ही कान हो जाए जब गुरु बोले, आंख ही आंख हो जाए जब गुरु को देखे, हाथ ही हाथ हो जाए जब गुरु का हाथ उसे छुए।
इस कदर थे तेरी खातिर गोशबर आवाज हम
ऐसी टकटकी लगा कर सुन रहे थे, ऐसा कान हो गए थे--
इस कदर थे तेरी खातिर गोशबर आवाज हम
जब कली चटकी तेरे पैगाम का धोखा हुआ
इधर फूल भी खिला हो, जरा सी आवाज हुई हो--फूल के खिलने में कोई बड़ी आवाज नहीं होती--जब कली चटकी तेरे पैगाम का धोखा हुआ, लगा तेरा कोई संदेश आया। ऐसे ही संदेश आते हैं। इतने धैर्य में, इतनी शांति में, इतने अहोभाव में; कली चटकने की तरह ही संदेश आते हैं। हथौड़ों की चोट है और कलियों का चटकना भी है। हथौड़ों की चोट को ही मत देखते रहना, क्योंकि पीछे कली भी चटकने वाली है। हथौड़े की चोट में ही खो गए, तो चूक गए। अवसर द्वार आया था, भर जाते तुम, सदा के लिए भर जाते, खाली के खाली रह गए।
ज्यूं कपड़ा दरजी के जाय। टूक-टूक करि लेहि बनाय।।

बनाने के पहले टुकड़े-टुकड़े करना जरूरी है। क्यों? क्योंकि तुम गलत ढंग से जुड़ गए हो। तुम्हारे सब अंग गलत ढंग से जुड़ गए हैं। तुम्हारा हाथ वहां है जहां पैर होना था, तुम्हारा पैर वहां है जहां सिर होना था, तुम्हारा सिर वहां है जहां पेट होना था। तुम कहोगे यह भी कोई बात हुई? जार्ज गुर्जिएफ ने इसका बहुत गहरा विश्लेषण किया है--इस सदी का एक सदगुरु। उसने लिखा है कि जब किसी आदमी के मस्तिष्क में कामवासना चलती है, तो उसका मतलब हुआ--यौन-केंद्र मस्तिष्क में चला गया। यौन-केंद्र पर कामवासना की ऊर्जा रहे, यह स्वाभाविक। लेकिन मस्तिष्क में चली जाए, यह विकृति। जब कोई आदमी भाव भी खोपड़ी से करने लगता है, तो गड़बड़ हो गई; भाव हृदय में होना चाहिए, हृदय उसका केंद्र है। तो हृदय और मस्तिष्क मिश्रित हो गए; गडमड हो गए, खिचड़ी बन गई। तुम्हारे सब अंग-प्रत्यंग गलत जुड़ गए हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मेरा विचार है कि मेरे भीतर आपके प्रति श्रद्धा पैदा हो रही है। मैं पूछता हूं--विचार? श्रद्धा पैदा होती है तो विचार नहीं होता। श्रद्धा का विचार से कोई संबंध नहीं है। श्रद्धा तो विचारातीत है। श्रद्धा में विचार कहां? संदेह में विचार होता है, संदेह विचार है, श्रद्धा विचार से मुक्ति है। इसलिए तो विचार करने वाले आदमी को श्रद्धा करने वाला आदमी अंधा मालूम होता है। उसकी बात में बल है। वह कहता है--सब श्रद्धा अंधी होती है, क्योंकि विचार की जगह नहीं है उसमें, तर्क का उपाय नहीं है उसमें। जब कोई कहता है कि मेरा विचार है कि मेरे मन में आपके प्रति श्रद्धा पैदा हो रही है, तो वह सिर से श्रद्धा कर रहा है जो कि गलत बात है। श्रद्धा का केंद्र वहां नहीं है, श्रद्धा का केंद्र हृदय है।
जब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाते हो और जब तुम प्रेम की बात करते हो, तुमने ख्याल किया, अचानक ही तुम्हारा हाथ अपने हृदय पर चला जाता है जब तुम प्रेम की बात करते हो। कोई ऐसा नहीं करता कि अपने सिर पर हाथ रखकर कहे-- मुझे तुमसे प्रेम हो गया है। अगर ऐसा कोई आदमी करे तो क्या होगा? इसका मतलब है कि सब गड़बड़ हो गया है। जब प्रेम होता है तो हाथ हृदय पर जाता है, हृदय प्रेम का केंद्र है। तर्क का केंद्र मस्तिष्क है। तुम भीतर बिल्कुल गडमड हो गए हो। तुम्हारे सब तार गलत-सही जुड़ गए हैं। कुछ का कुछ हो गया है। जैसे यंत्र के अंग-प्रत्यंग गलत जुड़ गए हों।
सब तुम्हारे भीतर है। ऐसा ही समझो कि कार है खड़ी द्वार पर, सब उसके भीतर है, लेकिन चीजें गलत-सलत जुड़ी हैं--जहां इंजन होना चाहिए, वहां इंजन नहीं है; जहां ब्रेक होनी चाहिए, वहां ब्रेक नहीं है, वे कहीं और जुड़े हैं; सब अस्त-व्यस्त हो गया है, यह गाड़ी चल नहीं सकती। तुम्हारी भी जीवन की गाड़ी कहां चल रही है? तुम्हारी जीवन की गाड़ी शाब्दिक अर्थों में गाड़ी है। यह शब्द सुनते हो? गाड़ी हम बनाए हुए हैं उस चीज के लिए जो चलती है, लेकिन गाड़ी का मतलब होता है--गड़ी; चलने वाली नहीं। तुम्हारी गाड़ी बिल्कुल गड़ी है, सच में गाड़ी है, चलती-वलती नहीं, कहां चलना है, कहां जाना है, यहीं गड़े-गड़े मर जाना है। लोग वहीं पैदा होते हैं, वहीं मर जाते हैं, इंच भर जीवन में यात्रा नहीं होती--वहीं के वहीं मर जाते हैं जैसे आए थे। और सब लेकर आए थे। तो गुरु तोड़ेगा।
ज्यूं कपड़ा दरजी के जाय। टूक-टूक करि लेहि बनाय।।
पहले काटेगा। जहां-जहां गलत अंग जुड़ गए हैं, सब काट देगा। कभी-कभी ऐसा
हो जाता है न, तुम गिर पड़े, हड्डी टूट गई, फिर हड्डी गलत जुड़ गई। तो सर्जन को फिर से तोड़नी पड़ती है। फिर ठीक से जोड़नी पड़ती है।
सदगुरु सर्जन है। और तुम्हारी हड्डियां ही गलत नहीं जुड़ी हैं, तुम्हारा सब कुछ गलत जुड़ गया है। क्योंकि तुमने अज्ञान में सब जोड़ लिया है। तुम्हें कुछ पता ही नहीं था क्या कहां होना चाहिए। "टूक टूक करि लेहि बनाय।" तोड़ने में पीड़ा भी होगी लेकिन।
त्यूं रज्जब सतगुरु का खेल। ताते समझि मार सब झेल।
लेकिन इसको खेल की तरह लेना। सतगुरु का खेल समझना।
त्यूं रज्जब सतगुरु का खेल। ताते समझि मार सब झेल।।
खेल ही समझकर खेलो तो झेल पाओगे। अगर बहुत गंभीर हो गए, बहुत परेशान
हो गए, बहुत बेचैन हो गए, तो भाग जाओगे। अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई

आदमी ऑपरेशन की टेबल से बीच में भाग जाए, तो जितनी हालत पहले खराब थी उससे ज्यादा हालत अब हो जाएगी। पहले ही ठीक थे। इसलिए जो लोग अधकचरे धार्मिक हो जाते हैं, उनकी दुर्गति बहुत है, उनकी दुर्दशा बहुत है। या तो ऑपरेशन की टेबल पर ही मत जाना।
मैंने सुना है ऐसा हुआ था। एक नेता जी का ऑपरेशन हुआ। उनका मस्तिष्क निकाल कर चिकित्सक उसको साफ कर रहे थे--नेताओं का मस्तिष्क साफ करने की जरूरत पड़ती ही है। असल में हर साल नेताओं के मस्तिष्क को निकालकर, साफ-सुथरा करके फिर से रखना चाहिए। वे साफ-सुथरा कर रहे थे, समय लग रहा था साफ-सुथरा करने में--नेता जी का मस्तिष्क, समय लगेगा ही--तभी एक आदमी भागा हुआ भीतर आया और उसने कहाः नेता जी, नेता जी, आप पड़े यहां क्या कर रहे हो? आप प्रधानमंत्री हो गए। वे नेता जी तो उठे और चलने लगे। डाक्टरों ने कहाः रुको भाई, कहां जा रहे हो? आपका मस्तिष्क अभी खोपड़ी के बाहर है। उसने कहाः अब हमें मस्तिष्क की जरूरत ही क्या, प्रधानमंत्री हो गए! अब मस्तिष्क सम्हाल कर रखना, अब हमें कोई जरूरत नहीं है।
ऑपरेशन की टेबल से बीच में मत भाग जाना। नहीं तो और दुर्दशा हो जाती है। मेरा भी यह अनुभव है, जिन्होंने कभी ध्यान नहीं किया, वे ही ठीक हैं। लेकिन जो आधा-धूधा ध्यान कर लेते हैं, वे और मुश्किल में पड़ जाते हैं। जिन्होंने कभी योग नहीं किया, वे ही ठीक हैं। जिन्होंने कुछ आधा-धूधा योग कर लिया, वे और मुश्किल में पड़ जाते हैं। पुराना भी सब अस्तव्यस्त हो जाता है, नया जम नहीं पाता, उनके भीतर एक तरह की अराजकता हो जाती है, एक तरह की विक्षिप्तता हो जाती है। और इस दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनकी हालत विक्षिप्त है। बीच से भाग गए हैं।
सदगुरु के चरणों में जाओ तो पीछे के सब सेतु तोड़ ही देना, लौटने का उपाय ही मत रखना, सीढ़ी गिरा देना; तो ही यह काम हो पाएगा। और तो ही यह काम अपने सर्वांग सुंदर रूप में हो पाएगा। लेकिन जाते भी हम हैं। और जाते भी हम कहां हैं? आधे-आधे जाते हैं तो भागने का खतरा है।
मेरे पास लोग आते हैं, परसों ही किसी ने पत्र लिख कर पूछाः संन्यस्त होना चाहता हूं, लेकिन अगर गैरिक वस्त्र और माला न पहनूं तो?
तो काहे के लिए संन्यस्त होना चाहते हो! इतना सा भी न कर सकोगे--यह भी कोई बड़ा काम है तुम समझ रहे हो? गेरुआ वस्त्र पहन लिया, माला पहन ली, तुम समझ रहे हो कोई बड़ा काम कर लिया? कोई सात समुद्र लांघ लिए? कोई गौरीशंकर का पहाड़ चढ़ गए? किसी रंग का कपड़ा तो पहनते ही होगे न! तो गैरिक का पहन लिया! और जरा सी माला गले में लटका ली, तुम समझे कि सिद्धपुरुष हो गए! मगर यह भी नहीं हो सकता है। इसमें शर्त लगा रहे हो कि ऐसे ही संन्यास मिल जाए, यह भी न करना पड़े। तो आगे फिर जो करना है, उसमें क्या होगा? यह तुम्हारी हालत तो ऐसी है कि ऑपरेशन को आए और बोले कि अगर टेबल पर न लेटना पड़े तो चलेगा, हालांकि टेबल पर लेटना कोई ऑपरेशन नहीं है। टेबल पर लेटने से ही कोई सब कुछ नहीं हो गया, मगर जो आदमी टेबल पर लेटने को ही राजी नहीं है, इसका ऑपरेशन कैसे करोगे?
ये तो केवल स्वीकृति की सूचनाएं हैं कि हम राजी हैं; हमें भरोसा है।
यह सिर्फ इंगित हैं।
मगर आदमी अधूरा है। और अधूरेपन के भाव को छिपा भी नहीं पाता, वह प्रगट
हो जाता है--किसी न किसी रूप में प्रकट हो जाता है। रोज मैं अनुभव करता हूं, लोग मेरे पास आते हैं, हजारों लोग मेरे संपर्क में आए हैं, देखता हूं उनको, कोई चरण में भी झुकता है तो दोनों बातें एकसाथ दिखाई पड़ती हैं--एक हिस्सा झुकना चाह रहा है, एक नहीं झुकना चाह रहा है। झुकना भी चाहता है, नहीं भी झुकना चाहता। वह जो नहीं झुकना चाहता, वह भी प्रकट है, वह भी जाहिर है। ऐसा हुआ कि एक नेता जी को किसी आदमी ने होटल में उल्लू का पट्ठा कह दिया। नाराज हो गए, मानहानि का मुकदमा चला दिया। मुल्ला नसरुद्दीन को अपनी गवाही में ले गए। जिस आदमी ने उनको उल्लू का पट्ठा कहा था, उसने कहा कि मैंने किसी का नाम नहीं लिया और वहां तो कम से कम पचास आदमी थे, तो यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि मैंने नेता जी को ही उल्लू का पट्ठा कहा?

मैंने किसी का नाम लिया ही नहीं। मैंने तो सिर्फ इतना ही कहा था कि देखो, ये उल्लू के पट्ठे! वहां पचास आदमी थे।
मजिस्टेट को भी बात जमी। उसने मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि तुम गवाह हो, तुम कहते हो कि इस आदमी ने नेता जी को उल्लू का पट्ठा कहा था? नसरुद्दीन ने कहा--निश्चित इसने नेता जी को उल्लू का पट्ठा कहा था। लेकिन मजिस्टेट ने कहा--यह आदमी कहता है वहां पचास आदमी थे और इसने नाम किसी का लिया नहीं, तुम्हें कैसे निश्चयपूर्वक यह भरोसा है कि इसने नेता जी को ही उल्लू का पट्ठा कहा? नसरुद्दीन ने कहाः वहां नेता जी को छोड़ कर उल्लू का पट्ठा कोई था ही नहीं। ये अकेले उल्लू के पट्ठे वहां थे। इसलिए हमें पक्का भरोसा है इसने नेता जी को ही कहा है।
छिपे भाव प्रगट हो जाते हैं। कहां तक बचाओगे? कैसे बचाओगे? तुम्हारे अंतरतम में जो पड़ा है, वह आज नहीं कल बाहर आ जाता है।
ध्यान रखना, सदगुरु से संबंध जोड़ो तो पूरा-पूरा जोड़ना, कहीं भीतर कुछ दबा मत लेना। कुछ दबाने की जरूरत हो तो अभी रुकना, अभी समय नहीं आया, अभी ऋतु नहीं आई, थोड़ी और प्रतीक्षा करना। प्रतीक्षा कर लेना बेहतर है, लेकिन बीच में भाग जाना खतरनाक है। क्योंकि बीच से जो भाग गया, उसकी जिंदगी फिर कभी सुव्यवस्थित न हो पाएगी। पहले की जिंदगी तो मिलेगी ही नहीं--वह तो गई-- और जो मिलने वाली थी, जिसकी आशा में पहली को गँवा दिया, उसकी अब कोई संभावना न रही। क्योंकि वह सदगुरु के द्वारा ही मिल सकती थी। ऐसा समझो कि कपड़ा दर्जी ने काटा और तभी कपड़ा भाग गया। अब इस कपड़े की क्या गति होगी, तुम सोचो! इससे पहले ही ठीक थे, कम से कम थोक थान में तो थे, इकट्ठे तो थे। अब यह चिंदी-चिंदी हो गया। थोड़ा रुको। इसमें रूप आने दो, रंग आने दो, आकृति उभरने दो।
त्यूं रज्जब सतगुरु का खेल। ताते समझि मार सब झेल।।
इसको खेल ही समझना। तो ही झेल पाओगे। गंभीरता से ले लिया, तो जरा सी बात चोट कर जाएगी। क्यों? क्योंकि गंभीरता वस्तुतः अहंकार की ही छाया है।
यह मैं तुमसे कहूं, यह तुम ठीक से ख्याल में पकड़ो--गंभीरता अहंकार का ही एक रूप है। निर-अहंकार सरल होता है, छोटे बच्चे जैसा होता है, सब चीज खेल-खेल में ले लेता है। और खेल-खेल में लो तो हल्का है सब, सरलता से हो जाएगा। दादू दीनदयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर।
शाब्दिक अर्थों में भी यह सच है। दूल्हा अपना मौर उतार कर रख दिया था
और चरण गह लिए थे दादू के, उनको सिरमौर बना लिया था; दुल्हन को लेने जा रहा था, दुल्हन की तो फिकर छोड़ दी थी और असली दुल्हन की तलाश में लग गया था; प्रेम की खोज थी, लेकिन गलत दिशा में बहा जाता था, दादू की आंख मिली और असली प्रेम फलित हो गया। दादू दीनदयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर।
यूं जुज्बे-जिंदगी हुई जाती है तेरी याद
जैसे कोई शराब मिला दे शराब में
ऐसा मिल जाना चाहिए शिष्य को गुरु से कि जरा फासला न रहे--जैसे कोई शराब मिला दे शराब में--जरा सा भी फासला न रहे। शराब और पानी में भी मिलाओ तो थोड़ा-सा फासला रह जाता है।
यूं जुज्बे-जिंदगी हुई जाती है तेरी याद
गुरु की याद ऐसी बैठ जानी चाहिए--
जैसे कोई शराब मिला दे शराब में
फिर घटनाएं घटनी शुरू होती हैं--त्वरा से, तीव्रता से; छलांगें लगनी शुरू होती हैं; इंच-इंच कदम नहीं उठते, मील-मील कदम उठ जाते हैं।
जन रज्जब उनकी दया से वह जगह मिल गई, जहां से कोई भी नहीं डिगा सकता, मौत भी नहीं डिगा सकती। जिसको कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ की अवस्था कहा है--पाई निश्चल ठौर। जैसे दीया जले और हवा का कोई झोंका उसे कँपा न सके, अकंप हो। जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर।।
और रज्जब कहते हैं, अपने कुछ सामर्थ्य से नहीं, उनकी कृपा से। सभी शिष्यों का यही अनुभव है, अपने प्रयास से नहीं होती क्रांति, उनके प्रसाद से।
रज्जब कूं अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।

याद करो दादू के वे वचन जो घोड़े पर सवार रज्जब से उन्होंने कहे थे--
रज्जब तैं गज्जब किया...
घोड़े पर सवार रज्जब जा रहा है, बारात निकली है, दूल्हा बना है, बीच में रोक कर घोड़े को दादू ने कहा था--
रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर।
आए थे हरिभजन कूं, चले नरक की ठौर।।
यह तूने क्या किया? उसका जवाब दे रहे हैं रज्जब--
अज्जब का अर्थ होता है--अलौकिक। यहां है और यहां का नहीं। संसार में
है और संसार का नहीं। लोक में है और अलौकिक। कुछ पार का है। और जिसमें तुम्हें पार की झलक मिले, वही तो गुरु है। उसी के चरण में झुकना। जहां से तुम्हें कोई किरण दिखाई पड़े, जो बहुत दूर से आ रही है, जिसकी आंख में झाँको तो ऐसा सागर दिखाई पड़े कि जिसका कोई किनारा न मिले।
रज्जब कूं अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
सदगुरु देता है, अकारण देता है, इसलिए उसको दातार कहा है। उसे उत्तर में कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं जो तुम उसे दे सको। कोई कीमत भी नहीं है जो चुकाई जा सके। कोई मूल्य भी नहीं है जिससे तुम खरीद सको।
रज्जब कूं अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
दुख दरिद्र तब का गयाष्ठ
तब का। उसी क्षण चला गया। तत छन चला गया। जिस क्षण आंख मिल गई गुरु से, दुख दरिद्र तब का गया, ऐसा नहीं कि फिर धीरे-धीरे गया, उसी क्षण चला गया।
"सुख संपत्ति अपार", और सुख की संपत्ति मिली।
अब ख्याल रखना, इसकी व्याख्या करने वालों ने यही अनुवाद कर दिया है संपत्ति का--धन। संपत्ति का मतलब धन नहीं होता। साधुओं की भाषा में नहीं होता। साधुओं के वचन हैं, यहां तुम सांसारिक अर्थ मत कर लेना।
संपत्ति बड़ा प्यारा शब्द है। इस शब्द को ठीक से समझना हो, तो तुम्हें बहुत से शब्दों का ख्याल करना पड़ेगा। समाधि, समाधान, संबोधि, सम्यकत्व, संपत्ति, ये सब एक ही धातु से बने हैं--सम। सम का मतलब हैः जो ठहर गया, जिसके लिए सब समान हो गया, सुख और दुख बराबर हो गए, सफलता-विफलता बराबर हो गई, जीवन और मृत्यु समतौल हो गए। संपत्ति का अर्थ, समाधि। संपत्ति का अर्थ, सम्यकत्व। संपत्ति का अर्थ, समाधान। संपत्ति का अर्थ, समता, संबोधि। संपत्ति का अर्थ, संपदा। पर सब के भीतर ख्याल रखना एक ही शब्द है--सम। जिसको तुम संपत्ति कहते हो, वह तो विपत्ति है, उसको संपत्ति कहना ही नहीं चाहिए। वहां कहां समता है? वहां कहां सम्यक्त्व है? वहां कहां जीवन की शांति है? जिसको तुम संपदा कहते हो, उसको विपदा कहना चाहिए। तुम विपदा को संपदा कहते हो और विपत्ति को संपत्ति कहते हो। वही तुम्हारी भ्रांति है। इसलिए इस वचन का ऐसा अर्थ मत कर लेना कि एकदम छप्पर टूट गए और वर्षा हो
गई मोहरों की। छप्पर टूटे जरूर, मगर यह छप्पर नहीं, और छप्पर। और मोहरें भी बरसीं जरूर, मगर वे मोहरें नहीं जो सरकारी टकसालों में ढाली जाती हैं, मगर वे मोहरें जो अनंत से उतरती हैं, शाश्वत से उतरती हैं, जो परमात्मा की टकसाल में ढाली जाती हैं।
दुख दरिद्र तब का गया, सुख संपत्ति अपार।।
रज्जब नर-नारी सकल चकवा चकवी जोड़--
यह बड़ा प्यारा वचन है--
गुरु बैन बिच रैन में, किया दुहूं घर फोड़।।
रज्जब कह रहे हैं कि नर-नारी सकल चकवा-चकवी जोड़। सारी प्रकृति दो में बंटी है--स्त्री और पुरुष। स्त्री पुरुष में आकर्षित है, पुरुष स्त्री में आकर्षित है। इसी आकर्षण में परमात्मा चूका जा रहा है। इसी आकर्षण में वस्तुतः जिसे खोजना चाहिए, उसकी खोज नहीं हो पाती। और इस आकर्षण से कुछ मिलता नहीं है। स्त्री को पुरुष मिल जाता है, पुरुष को स्त्री मिल जाती है, लेकिन मिलता कुछ भी नहीं। हाथ कुछ नहीं आता। सब सपना है।
रज्जब नर नारी सकल, चकवा चकवी जोड़।

यह सारी की सारी संसार की जो व्यवस्था है, यह एक को दो में जोड़ कर की गई है। एक को दो हिस्सों में तोड़ दिया गया है। वे दोनों एक-दूसरे से मिलना चाहते हैं, मिलने को आतुर हैं, मिल नहीं पाते। मिलन हो भी जाता है तब भी मिलन नहीं होता। यही तो प्रेमियों का कष्ट है कि कितने ही पास आ जाएं फिर भी मिलन कहां होता है? मिल-मिल कर छूटना हो जाता है। पास आ-आकर दूर हो जाते हैं। विवाह हो-हो कर तलाक हो जाते हैं। क्षणभर को सुख मिलता है और तत्क्षण दुख की वर्षा हो जाती है। जरा प्रेम और फिर घृणा। यह द्वंद्व चलता रहता है, क्योंकि इस द्वंद्व के नीचे मूल द्वंद्व है--नर-नारी सकल चकवा-चकवी जोड़-- विपरीत का द्वंद्व है।
पुरुष-स्त्री, ये दो विपरीतताएं हैं। जैसे ऋण और धन विद्युत। दोनों एक-दूसरे से आकर्षित हो रहे हैं, और विकर्षित भी। पास भी आना चाहते हैं और दूर भी हट रहे हैं। संसार द्वंद्व है। द्वंद्व को दो हिस्सों में तोड़ा जा सकता है--नर नारी।
चीन में इस विचार को बहुत गहनता तक ले जाया गया है--यिन-यांग। ताओवादी परंपरा में इस विचार पर बहुत खोज की गई है कि सारा अस्तित्व द्वंद्व में बंटा है। और जब तक आदमी इस द्वंद्व में ही उलझा रहता है, तब तक कोई निस्तार नहीं है, कोई छुटकारा नहीं है। एक स्त्री से मन ऊब जाता है, फिर दूसरी स्त्री में अटक जाता है। एक पुरुष से मन ऊब जाता है, फिर दूसरे पुरुष में अटक जाता है। यह अंतहीन प्रक्रिया है। तुम्हें दुनिया के सारे पुरुष मिल जाएं और सारी स्त्रियां, तो भी तुम तृप्त न हो सकोगे।
ज्यां पाल सार्त्र का एक पात्र उसके एक नाटक में कहता है कि मुझे अगर दुनिया की सारी स्त्रियां मिल जाएं तो भी मैं तृप्त न हो सकूंगा। तुम भी .जरा सोचना--तृप्त हो सकोगे सारी स्त्रियां मिल जाएं तो? तत्क्षण तुम पाओगे कि नहीं, कुछ फिर भी खाली रहेगा। यह पात्र भरता नहीं, जब तक परमात्मा से न भरा जाए। यह विपरीत से नहीं भरता, यह बाहर दूसरे से नहीं भरता, इसकी खोज तो अंतरतम में करनी होती है।
रज्जब नर नारी सकल, चकवा चकवी जोड़।
गुरु-बैन बिच रैन में...
और बीच आधी रात में, जब कि मिलन होने ही होने को था, ऐसा लगता था अब हुआ,
तब हुआ... और ठीक ही कह रहा है रज्जब, बारात जा रही थी, अभी मिलन हुआ, अभी हुआ, अभी सुख की वर्षा होने को है, और उस बीच गुरु आ गया। "गुरु बैन बिच रैन में"... आधी रात... "किया दुहूं घर फोड़", दोनों घर गिरा दिए। न स्त्री की तरह बचने दिया मुझे, न पुरुष की तरह बचने दिया मुझे। द्वंद्व गिरा दिया। दोनों घर गिरा दिए। मुझे निर्द्वंद्व में पहुंचा दिया। द्वैत मिटा दिया, मुझे अद्वैत में पहुँचा दिया। इसी की तलाश थी। स्त्री के माध्यम से इसी अद्वैत की तलाश हो रही है।
क्या खोजते हो तुम स्त्री के माध्यम से? किसी के साथ होना हो जाए। पुरुष के माध्यम से क्या खोजते हो? एक ऐसा क्षण मिल जाए जहां हम अस्तित्व के साथ लीन हो गए।
यूं जुज्बे-जिंदगी हुई जाती है तेरी याद
जैसे कोई शराब मिला दे शराब में
यही खोज रहे हो। मगर यह होता नहीं। इस तरह तो नहीं होता। बड़ी उलटी प्रक्रिया से होता है। अपने भीतर जाने से मिलना होता है, अपने बाहर जाने से दूरी बढ़ती जाती है। क्योंकि तुम्हारे भीतर अंतरतम में बैठा है परमात्मा। एक विराजमान है तुम्हारे भीतर। बाहर तो दो है। बाहर तो होने ही वाला दो--मैं और तू। भीतर सिर्फ एक है। और जितने तुम भीतर जाओगे, उतने ही तुम पाओगे उसका रूप मैं का रूप नहीं है, क्योंकि मैं के लिए तो तू की जरूरत है। जैसे-जैसे भीतर जाओगे वैसे-वैसे पाओगे तू रहा, न मैं रहा। जहां मैं भी मिट गई, तू भी मिट गई; जहां मैं-तू मिट गई, वहां तत्क्षण उस एक का अनुभव हो जाता है जिसको हम खोज रहे हैं जन्मों-जन्मों से; जिसके लिए यात्रा चल रही है।
... "किया दुहूं घर फोड़।।"

कौन से दो घर फोड़ दिए? मैं और तू के घर फोड़ दिए। मिटा दिया पुरुष-स्त्री का भाव।
गुरु दीरघ गोबिंद सूं, सारै सिष्य सुकाज।
शिष्य जो भी मांगता था, खोजता था, सब गुरु की छाया में पूरा हो जाता है। सारै सिष्य सुकाज। सब हो जाता है। जो कर-कर के नहीं हुआ था, वह सिर्फ गुरु की मौजूदगी में हो जाता है। गुरु दीरघ गोबिंद सूं। क्योंकि गुरु गोविंद से जुड़े हैं। तुम्हें गोविंद से तो जुड़ना मुश्किल है, क्योंकि तुम्हारी गोविंद से अभी कोई पहचान नहीं, लेकिन गुरु से जुड़ सकते हो। गुरु से जुड़ते ही तुम भी गोविंद से जुड़ गए।
रज्जब मक्का बड़ा परि पहुंचे बैठि जहाज।।
बहुत दूर है मक्का, मगर बैठ गए जहाज में तो पहुंच गए। परमात्मा बहुत दूर है, मगर बैठ गए गुरु की नाव में तो पहुंच गए। सारै सिष्य सुकाज।
कामधेनु गुरु क्या कहै, जो सिष निःकामी होइ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मंदभागी सिष जोइ।।
अगर तुम रोते रह जाओ गुरु को पाकर, तो तुम्हीं जिम्मेवार हो।
तुम्हारी जिम्मेवारी कहां है? कि तुम निकम्मे थे। गुरु ने जो कहा, तुमने किया नहीं। गुरु ने जहां चलाया, तुम चले नहीं। तुम निकम्मे थे।
"कामधेनु गुरु क्या कहै।"
गुरु तो कामधेनु है, तुम्हें जो चाहा था सब होनेवाला था, मगर तुम चले नही, उठे नहीं, सुना नहीं, गुना नहीं। तुम आलसी ही बने रहे। तुम अपनी तंद्रा में ही पड़े रहे।
कामधेनु गुरु क्या कहै, जो सिष निःकामी होइ।
तो गुरु कहता रहता है, कहता रहता है, कहता रहता है, शिष्य अपनी अकर्मण्यता में, अपनी निद्रा में सुनता रहता, सुनता रहता--सुनता ही नहीं।
जोड़ बनता नहीं, क्रांति घटती नहीं, आग जलती नहीं।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मंदभागी सिष जोइ।।
रज्जब कहते हैं अगर कोई रोता रह जाए गुरु के पास जाकर, तो मंदभागी है, अभागा है। लेकिन बड़ा उलटा मामला है। अगर तुम गुरु के पास जाकर रीते रह जाओ, तो कहोगे यह गुरु किसी काम का नहीं। हम रीते रह गए। तुम यह नहीं सोचते--जो कि सोचना चाहिए--कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि मेरी मटकी ही उलटी रखी, गुरु बरस रहा है और मैं भर नहीं पाता। या मेरी मटकी फूटी है। भर भी जाता है तो सब बिखर जाता है। या मेरी मटकी गंदी है। मेघ से वर्षा होती है स्वच्छ और मेरी मटकी में आते-आते सब गंदगी हो जाती है, सब नाली का कीचड़ मच जाता है।
मटकी साफ करो। थोड़ा कृत्य तो करना पड़े मटकी साफ करने में। थोड़ी अकर्मण्यता छोड़ो। मटकी में छेदछाद हों, उन्हें भरो। मटकी उल्टी पड़ी हो, उसे सीधा करो। बस ये तीन काम तुम कर लो, भर जाओगे, निश्चित भर जाओगे।
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
इस तरह आई रंगोनूर लिए
जैसे एक सीमपोश दोशीजा
मकबरे में जला रही हो दिए
तुम खुलो तो परमात्मा उतरे। तुम गुरु के लिए खुलो तो गुरु तो उतरे ही उतरे, उसके साथ परमात्मा उतर आए। उसके सहारे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओ, परमात्मा तुम तक पहुंच जाए।
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
इस तरह आई रंगोनूर लिए
जरा खुलो, तो रंग भी बहुत है गुरु की याद में और नूर भी बहुत है। रोशनी
भी बहुत, उत्सव भी बहुत। फूलों के सब रंग हैं वहां, प्रकाश के सब ढंग हैं वहां।
फिर तेरी याद दिल की जुल्मत में
--और तुम्हारा दिल बिल्कुल अंधकार है, अमावस है--
इस तरह आई रंगोनूर लिए
जैसे एक सीमपोश दोशीजा
--जैसे कोई सफेद वस्त्र पहने हुए एक कुआंरी--

मकबरे में जला रही हो दिए
ऐसी पवित्र कुआंरी, सफेद कपड़ों में कोई स्त्री मकबरे में दीया जला रही हो, ऐसी ही तुम्हारे भीतर एक पवित्र गंगा बह जाती है। एक क्वांरी गंगा बह जाती है। अछूते जगत से स्पर्श होता है।
पर तैयारी दिखाओ। मिटने की तैयारी चाहिए। मिटे बिना न कोई कभी हुआ है,
न हो सकता है। धन्यभागी हैं वे जो गुरु के पास मिटने को तैयार हैं, क्योंकि सारे जगत का आनंद उनका होगा। इस जगत के सारे उत्सव उनके होंगे। उनकी अमावस समाप्त हो जाएगी। और उनके जीवन में पूर्णिमा का उदय होगा। पूरा चाँद तुम्हारा है, पूरा आकाश तुम्हारा है, लेकिन हकदार तुम तभी हो पाओगे जब तुम अपने अहंकार से बिल्कुल खाली हो जाओ। उस अहंकार को चढ़ा देने का नाम ही शिष्यत्व है।
आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
चौदहवां प्रवचन

उपासना चेष्टारहित चेष्टा है

पहला प्रश्नः आप सदा अनुभव पर जोर देते हैं। मैं सब कर चुका हूं--पूजा- पाठ, योग-ध्यान, व्रत-उपवास! और कुछ वर्षों तक पुराने ढब का साधु भी रह चुका हूं। मगर इस सब अनुभव से कुछ मिला नहीं। अब मैं क्या करूं?

मैं अनुभव पर निश्चय ही जोर देता हूं। लेकिन अनुभव और अनुभव में भी भेद है। अनुभव अभिनय मात्र भी हो सकता है। तब ऊपर से तो लगता है अनुभव से गुजरे और भीतर से कोई अनुभव घटा नहीं।
कोई कोरी मुद्राओं से गुजर सकता है। तुम मुस्कुरा सकते हो और हृदय में मुस्कुराहट न हो। तो तुम्हें लगेगा मुस्कुराहट के अनुभव से गुजर गए; और हाथ कुछ सुवास लगेगी नहीं। तुम रो भी सकते हो। अभिनेताओं को नाटक के मंच पर रोते देखा न! आंसू भी टपक सकते हैं, झरझर आंसू टपक सकते हैं, और लगेगा कि तुम अनुभव से गुजरे रोने के; लेकिन तुम्हारे हृदय से आंसू न आ रहे हों तो अनुभव से तुम नहीं गुजरे। अक्सर ऐसा हो जाता है कि हम थोथी प्रक्रियाओं से गुजरते हैं और उसको अनुभव मान लेते हैं। फिर हाथ कुछ लगेगा नहीं।
मैंने सुना है, एक अदभुत व्यक्ति हुआ, वह बड़ा व्याकरण-विद था। साठ साल
का हो गया, उसके पिता उसे रोज समझाते--पिता बूढ़े हो गए थे कोई अस्सी वर्ष के--कि अब तो तू राम की सुध ले। अब तो प्रभु का स्मरण कर। मंदिर कब जाएगा? -- तू भी बूढ़ा होने के करीब आ गया, साठ साल पूरे हो गए। वह व्याकरण-विद सदा एक ही बात कहता कि बार-बार क्या राम का नाम लो या बहुवचन में एक दफे राम का नाम लो, काम हो जाएगा। एक बार जाऊंगा, समग्रता से नाम ले लूंगा।
साठवां वर्ष दिन बेटे का मनाया जा रहा था, बाप ने उसे फिर याद दिलाई कि
आज तो तू मंदिर जा ही, आज प्रभु का स्मरण कर! उसके बेटे ने कहा कि आपको मैं देख रहा हूं जीवन भर से मंदिर जाते, प्रभु का स्मरण करते, पूजा-पाठ करते, कुछ होता दिखाई पड़ता नहीं। ऐसे ही मैं भी जाऊंगा-आउँगा, ये धक्के खाने से क्या सार है? जाऊंगा एक दिन! और अगर आप कहते हैं आज ही चला जाऊं तो आज जाता हूं। लेकिन गया तो गया फिर बैठे प्रतीक्षा मत करना। एक बार नाम लूंगा। बाप को तो कुछ समझ में आया नहीं वह क्या कह रहा है, उसने तो बात मजाक में ही ली, कहा--जा, नाम ले!
बेटा मंदिर में गया और कहते हैं उसने एक ही बार नाम लिया राम का और नाम लेते ही गिर गया और समाप्त हो गया।
उस व्याकरण-विद का नाम था, भट्टो जी दीक्षित। एक ही बार नाम लिया! इसको कहते हैं अनुभव! मगर समग्रता से लिया होगा। रोएं-रोएं से लिया होगा। कण-कण पुकारा होगा। स्वास-स्वास स्मरण से भर गई होगी। सब दाँव पर लगा दिया होगा। कह कर गया था एक बार नाम लूंगा और अब प्रतीक्षा मत करना। अब राम में जा रहा हूं तो अब काम की दुनिया में वापस क्या लौटना है? बाप तो मजाक ही समझे थे; क्योंकि बाप तो जीवन भर नाम लेते रहे थे।
तो मैं तुमसे कहता हूं अनुभव अनुभव में भेद है। बाप का भी अनुभव था मंदिर में पूजा करने का, प्रार्थना करने का। रोज गए थे, रोज वैसे ही वापस लौट आए थे। कुछ बदला न था, कुछ नया न हुआ था, कुछ स्पर्श ही नहीं हुआ था। धूल भी नहीं झड़ी थी।
इन दोनों अनुभव का भेद ख्याल में लो।
और जब मैं अनुभव पर जोर देता हूं तो मेरा मतलब--भट्टो जी दीक्षित वाला अनुभव। ऐसी थोथी प्रक्रियाओं से कुछ न होगा कि चले मंदिर, घंटा बजा आए, पूजा कर आए; एक औपचारिकता है रोज बैठ कर अपने एक कोने में स्नान के बाद राम का जप कर लिया; इससे कुछ भी न होगा। अपने को समग्रता से उंड़ेलोगे तब कुछ होगा। राम का नाम असली बात नहीं है, असली बात अपने को समग्रता से उंड़ेलना है। फिर तुमने राम को पुकारा कि कृष्ण को पुकारा कि रहीम को पुकारा, किसको

पुकारा इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वे तो सब नाम गौण हैं। परमात्मा का कोई नाम नहीं है। लेकिन समग्रता से पुकारा, बस, बात हो जाएगी।
तुम कहते होः "मैं सब कर चुका हूं--पूजा-पाठ, योग-ध्यान, व्रत-उपवास! और कुछ वर्षों तक साधु भी रह चुका हूं।"
तुमने कुछ भी नहीं किया है। तुम भट्टो जी दीक्षित के पिता हो। न तुमने पूजा की है, न पाठ किया है; न योग किया है, न ध्यान; न व्रत किया है, न उपवास किया है; कुछ भी नहीं किया। करते तो ऐसा हो ही नहीं सकता था कि हाथ खाली रह जाते। ऐसा कभी हुआ नहीं। आग में हाथ डालोगे तो जलेगा ही। जल पीओगे तो तृप्ति होगी ही। कोई कहे कि मैंने आग में हाथ डाला और हाथ जला नहीं, तो एक ही बात है साफ कि इसने आग की तस्वीर में हाथ डाला होगा, आग में हाथ नहीं डाला होगा। आग की तस्वीर आग जैसी लगती है, आग नहीं है। इसमें "आग" शब्द लिख लिया होगा कागज पर और उसको हाथ में रख लिया होगा। लेकिन "आग" शब्द कागज पर लिखा हुआ अंगारा नहीं बनता। तुम शब्दों से खेलते रहे हो, शास्त्रों से खेलते रहे हो। अनुभव ऐसे नहीं होता। पंडित तुम हो गए होओगे, मगर प्रज्ञा का ऐसे जन्म नहीं होता। महंगी बात है प्रज्ञा। पंडित सस्ता है, दो कौड़ी का है; बाजार में मिलता है, कोई भी खरीद सकता है। पंडित होने से सस्ता दुनिया में कोई दूसरा काम नहीं है। क्योंकि पंडित "आग" शब्द से खेलता है, सिर्फ शब्द से। शब्द का धनी हो जाता है, शब्द के संबंध में सारी जानकारियाँ ले लेता है। आग शब्द की व्युत्पत्ति जानता है--किस धातु से बनी है--सारे "आग" शब्द का इतिहास जानता है--किन-किन भाषाओं से गुजरा है यह शब्द, इसने क्या- क्या अर्थ, रंग, भावभंगिमाएं ली हैं, सब जानता है--मगर आग से इसका कोई परिचय नहीं है।
मैंने सुना है, एक युवक एक युवती के प्रेम में था। बिल्कुल पागल था। मगर युवती थी कि उसकी तरफ कुछ ध्यान नहीं देती थी। बहुत दिनों तक उसके पीछे चक्कर लगाने के बाद भी जब कोई नतीजा नहीं निकला और युवक पूरी तरह निराश हो गया तो एक दिन उसने युवती से साफ-साफ बात कर लेने का निश्चय किया और हिम्मत करके उससे कहाः निष्ठुर, पत्थरदिल, अब मुझे तुझसे एक ही सवाल करना है, बोल जवाब देगी? पूछूं? पूछो, युवती ने लापरवाही से कहा। तो फिर यह बता कि क्या तू जानती है प्रेम किसे कहते हैं? और क्या तूने कभी किसीसे प्रेम किया है? इसके जवाब में युवती ने एक बड़ा संदूक खोल कर दिखाते हुए कहा--यह पूरा संदूक जिन पत्रों से भरा है वे प्रेम-पत्र हैं। इनमें अनेक युवकों के फोटो भी हैं। ये सब फोटो तुझ जैसे दिलफेंक युवकों के ही हैं। और इस संदूक में एक दर्जन के करीब अंगूठियां भी हैं। ये सब मुझे भेंट में मिली हैं। इतना कहने के बाद उस युवती ने युवक से पूछाः अब तू ही बता कि प्रेम के मामले में कौन ज्यादा जानता है? तू ज्यादा अनुभवी है या मैं? तुम्हारी संदूक में भी तुम कहते हो सब है--पूजा-पाठ, योग-ध्यान, व्रत-उपवास, साधुता। लेकिन कुछ कमी रह गई; कुछ मौलिक भूल हो गई; कहीं तुम पहले चरण पर चूक गए, चले तो तुम बहुत, लेकिन दिशा कुछ गलत थी। चले भी बहुत, पहुंचे कहीं नहीं। क्योंकि चलने का एक ही प्रमाण है मेरे पास--पहुँचो। पहुंचना ही प्रमाण है। फल से परीक्षा होती है वृक्ष की। और कोई परीक्षा नहीं है। तुम कहो--मैंने आम बोए और नीम लग गई। तो एक ही बात है जो सिद्ध होती है कि तुमने नीम ही बोई थी, आम समझकर बोई होगी, मगर बोई नीम थी। क्योंकि नीम के कड़वे फल नीम में ही लगते हैं, आम के पौधे में नहीं लगते हैं। फल में पहचान है वृक्ष की।
तुम कहते हो ये सब मैंने किया, इतने अनुभव से मैं गुजरा, कुछ हुआ नहीं;
और आप अनुभव पर जोर देते हैं! तुम्हारा यह अनुभव अनुभव नहीं है, थोथा है, नपुंसक है। तुम फिर से लौट कर विचार करो। सच में तुमने पूजा की? कब की थी पूजा, याद है? कैसे की थी पूजा? पूजा के क्षण में तुम्हारे भाव कहां थे? जब तुम मंदिर में झुके थे परमात्मा की प्रतिमा के सामने, तब तुम वहां थे? सच वहां थे? या कि बाजार में थे? या कि दुकान पर पहुंच गए थे? या कि ग्राहकों से मोल-तोल कर रहे थे? तुम वहां थे जब तुम झुके थे? --या पास में खड़ी कोई सुंदर स्त्री को आंख के कोने से देख रहे थे? तुम वहां थे जब तुम झुके थे? -- कि ख्याल तुम्हारा लगा था कि जूते छोड़ आया हूँ मंदिर के बाहर कोई चुरा न ले

जाए? अक्सर लोग जब मंदिर में झुकते हैं, उनका ध्यान जूतों पर लगा होता है। कोई जूते न ले जाए! इससे तो मुसलमान ही बेहतर, अपना जूता अपने साथ ही रखते हैं। तुम देखते हो, मुसलमानों की नमाज में छपी हुई तस्वीरें देखते हो? सब अपना-अपना जूता अपने सामने रखे हैं। और उसी जूते को सिर झुका रहे हैं। सोच रहे हैं कि खुदा की बंदगी हो रही है!
तुम्हारी पूजा तभी पूजा है, जब तुम्हारा हृदय झुके, तुम्हारा भाव झुके; जब तुम सच में ही झुक जाओ, पूरे-पूरे झुक जाओ। जब तुम वहीं होओ, उस क्षण के अतिरिक्त तुम्हारा कोई अस्तित्व कहीं और न हो, तुम समग्ररूप से वहां उपस्थित होओ, उस उपस्थिति में पूजा है। फिर तुमने फूल कौन से चढ़ाए, यह गौण हैं। चढ़ाए कि नहीं चढ़ाए, यह भी गौण है। हाथ में थाली का दीया जला था कि नहीं जला था, यह भी गौण है। जब हृदय का दीया जला हो तो थाली के दीये महत्वपूर्ण नहीं रह जाते। लेकिन हृदय के दीये की तो फिकर ही नहीं है, थाली का दीया जल रहा है। थाली का दीया जल रहा है और तुम्हारी आरती उतर रही है। स्वभावतः तुम सोचते हो आरती करते-करते थक गया--और आरती एकबार तुमने नहीं की--अब क्या सार है, चलो कुछ और करें। तुम वही के वही। जिस ढंग से तुमने आरती की थी, उसी ढंग से तुम ध्यान करोगे। जिस ढंग से तुमने ध्यान किया, उसी ढंग से योग करोगे--तुम वही के वही। तुम्हारे हाथ की चीजें बदलती जाएंगी, तुम नहीं बदलोगे। तुम सभी अनुभवों से गुजर जाओगे और कोरे के कोरे, खाली के खाली। और एक और उपद्रव तुम्हारे सिर में बैठ जाएगा कि कुछ नहीं होता, अनुभव करके देख लिया।
तुम कहते होः "कुछ वर्षों तक साधु भी रह लिया।"
साधु भी कोई कुछ वर्षों तक रहता है? साधुता फली न होगी। साधुता सहजता
से उमगी न होगी। साधुता एक ढोंग, एक पाखंड रही होगी। ऊपर से आवरण स्वीकार कर लिया होगा। सोचा होगा, चलो यह भी करके देख लें, सब तो करके देख ही लिया, अब यह भी करके देख लें, क्या बना-बिगड़ा जाता है। कुछ हाथ नहीं लगा तो अपने घर वापस लौट जाएंगे।
और फिर तुम घर लौट ही आए।
जो आदमी घर लौटने का ख्याल लेकर गया है, वह लौट ही आएगा। जिसने पीछे अपने सीढ़ियां लगा रखी हैं, वह उतर ही जाएगा। तुम्हारी साधुता क्या थी? वह भी वैसी ही थी जैसी तुम्हारी पूजा थी, जैसे तुम्हारा उपवास था।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः अनुभव का अर्थ बाहरी उपचार नहीं है। अनुभव
का अर्थ आंतरिक अनुभव, आंतरिक अनुभूति, आंतरिक भावोन्माद है। कुछ भी नहीं हुआ है तुम्हें अभी तक। अब तुम यह भ्रांति छोड़ दो कि तुम्हें अनुभव हुआ है, नहीं तो यह तुम्हें अटकाएगी। अगर मैं तुमसे कहूंगा ध्यान में उतरो, तुम कहोगे--सब करके देख चुका। मैं तुम्हें समझाऊंगा पूजा करो, तुम कहोगे--मैं सब करके देख चुका। और तुमने कुछ भी करके नहीं देखा है। लाभ तो नहीं हुआ, तुम्हारे करने से एक हानि हो गई--अब तुम कुछ और करने को उत्सुक नहीं रह गए। इस बात को तुम्हारे हृदय में गहरा बैठ जाने दो--तुमने अभी तक कुछ नहीं किया, तुम्हारा किया-धरा सब मिट्टी में गया है। तुम अ ब स से शुरू करो, तुम कोरी किताब पर लिखना शुरु करो। फिर से समझो, फिर से शुरु करो, बीच में अपने ज्ञान को मत लाओ, क्योंकि तुम्हारे पास ज्ञान कुछ भी नहीं है। तुम ऐसे समझो जैसे छोटे बच्चे हो, सत्य की खोज का भाव फिर से जगा है। तुम पीछे से पर्दा गिरा दो। अतीत को भूल ही जाओ, विस्मृत कर दो। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उतने दिन व्यर्थ गए। अब उन दिनों को आने वाले भविष्य को भी व्यर्थ मत करने दो।
अब तुम फिर से सीखो। और इस बार बाहर की विधि पर जोर मत दो, इस बार अंतर-विधि पर जोर दो। मैं तुमसे नहीं कहता कि मंदिर में जाकर झुको। मैं तुमसे कहता हूँ, जहां झुकने का भाव आ जाए, वहीं झुक जाना। फिर मंदिर हो कि मस्जिद, कि गिरजा हो कि गुरुद्वारा, कि बाजार हो कि दुकान, कि वृक्ष हो सामने कि आकाश, जहां झुकने का भाव आ जाए वहां झुक जाना।
तुम्हें कभी झुकने का भाव नहीं आता? सुबह सूरज को ऊगते देखकर झुकने का भाव नहीं आता? सूरज उग रहा है यहां और तुम चले मंदिर की तरफ! इससे बड़ा मंदिर और कहां पाओगे? इससे ज्यादा रोशन मंदिर और कहां है? इतना विराट

प्रकाश सामने आ रहा है और तुम अभिभूत नहीं होते? तुम्हारे भीतर रोमांच नहीं होता? सुबह के सूरज को ऊगते देखकर तुम्हारे भीतर कुछ नहीं ऊगता? तो मंदिर में क्या खाक होगा! आदमी के बनाए हुए मकानों में क्या होगा? रात तारों से भरी है, आकाश की चादर तारों से सजी है, और तुम्हारा मन नहीं होता कि झुक जाओ इस विस्मय के समक्ष, इस रहस्य को पी लो? हाथ जोड़ने की आकांक्षा नहीं जगती? इन तारों से नमस्कार कर लें। इन तारों से थोड़ी गुफ्तगू कर लें। थोड़ा संवाद हो जाए। दो बातें हो जाएं। जयराम जी हो जाए। तारों को देख कर तुम नहीं झुके, गीता के सामने झुक रहे हो? आदमी के छापेखाने में छपी किताब के सामने झुक रहे हो? इतनी बड़ी विराट किताब आकाश की खुली है और उस पर सब हस्ताक्षर परमात्मा के--ये सब चांद-तारे उसकी लिखावट हैं, इनको पढ़ो, इनको गुनो!
मैं तुमसे कहता हूंः भाव की फिकर लो। और भाव के बहुत क्षण आते हैं। चौबीस घड़ी में ऐसा मौका जरूर आता है एकाध बार, जब अंतरभाव उठता है--झुक जाओ! कैसा अदभुत है जगत! अहोभाव उठता है, एक कृतज्ञता का भाव उठता है, धन्यवाद देने का मन होता है--पता नहीं किसे धन्यवाद दें? किसने बनाया है यह सब रहस्य? नाम भी नहीं है उसका कुछ, उसको पाती भी लिखनी है तो उसका पता भी नहीं है।
झुकने का मतलब क्या होता है? झुकने का मतलब यह होता है कि हमें पता नहीं कि तू किस दिशा में है, हमें पता नहीं तेरा नाम क्या है, हमें पता नहीं तेरा ठिकाना क्या है, हमें पता नहीं कि तू है भी या नहीं, मगर जो दिखाई पड़ रहा है वह इतना विस्मयपूर्ण है कि तू जरूर होगा। कि तू होना ही चाहिए। यह जो संगीत बज रहा है तेरा, यह जो विस्तार फैला है तेरा, यह जो इतनी सुनियोजित जगत की व्यवस्था चल रही है--अर्थपूर्ण, सुसंगत, लयबद्ध--यह जो नृत्य हो रहा है, उत्सव हो रहा है, तू जरूर कहीं इसमें छिपा होगा। हम झुकते हैं तुझ अज्ञात के प्रति, तुझ अनाम के प्रति। ऐसा जब तुम झुकोगे, तो पूजा! वह मंदिर में जो तुम घंटी बजाते हो, वह पूजा नहीं है, वह पूजा का ढोंग है। पूजा का क्षण होगा तो कहां घंटी खोजने जाओ? पूजा का क्षण कोई बंधा-बंधाया क्षण थोड़े ही है कि उठे सुबह, स्नान किया और चले मंदिर कि सात बजे पूजा कर लेंगे। परमात्मा शाश्वत है, समय का उससे कोई संबंध नहीं बनता। और परमात्मा सहज है, जो खुद भी सहज होते हैं उन्हीं का जोड़ बैठता है। तो तुम प्रतीक्षा करो, जब कभी सहज प्रार्थना का क्षण आ जाए, झुक जाना।
मूसा एक जंगल से गुजरते थे और उन्होंने एक आदमी को झुके देखा। सांझ हो
गई थी, सूर्यास्त हो रहा था। वह आदमी गड़रिया था। उसकी भेड़ें भी उसी के पास-पास में-में करती घूम रही थीं और वह उन्हीं के बीच में बैठा प्रार्थना में लीन था। आकाश की तरफ हाथ जोड़े हुए थे उसने। बड़ी मस्ती में बातें कर रहा था। मूसा भी ठिठक गए उसके पीछे कि क्या कह रहा है? जो सुना तो मूसा बहुत घबड़ा गए। यह कोई प्रार्थना है!
वह आदमी कह रहा था कि हे प्रभु, तू बहुत अकेला होगा वहां! मुझे पता है कभी-कभी जब रात अकेले होता हूं, कैसा भय लगता है। तुझे भय नहीं लगता? तुझे भय लगता होगा, मैं आने को राजी हूं, तू मुझे बुला ले। मैं सदा तेरे साथ रहूंगा, तेरी छाया बन जाऊंगा। और कभी-कभी तुझे भूख भी लगती होगी और कोई भोजन देने वाला नहीं होता होगा। मैं तेरा भोजन भी बना दूँगा, मुझे भोजन बनाना भी आता है। और मैं तुझे खूब नहलाऊंगा, धुलाऊंगा; पता नहीं किसी ने तुझे नहलाया-धुलाया कि नहीं; जूं पड़ गई होंगी--मेरी भेड़ों में पड़ जाती हैं। मगर देख लो मेरी भेड़ों को, एक-एक की सफाई कर देता हूँ। रात तेरे पैर भी दबा दूँगा, थक जाता होगा--इतना विराट तेरा विस्तार है, इसका निरीक्षण करते- करते थक जाता होगा, रात तेरे पैर भी दबा दूंगा। तेरे कपड़े भी धो दूँगा। तू जो कहेगा सब कर दूँगा, तू मुझे उठा ले, तू मुझे बुला ले।
मूसा के बरदाश्त के बाहर हो गया जब उसने कहा तेरी जूँ भी बीन दूँगा। मूसा ने कहा--ठहर, नासमझ! यह प्रार्थना कैसी प्रार्थना? बहुत प्रार्थनाएं मैंने सुनीं, यह तूने किससे सीखी, कहां से सीखी? वह तो घबड़ा गया, सीधा-सादा आदमी, उसने कहा--मुझे क्षमा करो, मुझे कुछ पता नहीं, सीखी नहीं, खुद ही बना ली है। यह तो आप जानते ही हैं कि मैं तो गड़रिया हूँ, पढ़ा-लिखा नहीं हूँ,

शास्त्र की मुझे क्या तमीज, संस्कार जैसी चीज मुझपर कोई पड़ी नहीं है, खुद ही बना ली है। अब भेड़ों से बात करता हूं, उतनी ही मेरी भाषा है। उसी भाषा को परिमार्जित करके परमात्मा से बात कर लेता हूँ। आप मुझे सिखा दें। तो मूसा ने ठीक-ठीक यहूदियों की जो प्रार्थना है, वह सिखाई। बड़े प्रसन्न थे मूसा कि एक भटके हुए आदमी को रास्ते पर लाए।
और जब उस आदमी को छोड़ कर मूसा चले, तो जैसे ही एकांत आया, जोर से एक आवाज आकाश में गूंजी कि मूसा, मैंने तुझे भेजा था कि तू लोगों को मेरे पास लाना, तू तो लोगों को मुझसे दूर करने लगा। मेरा प्यारा, तूने उससे उसकी प्रार्थना छीन ली! शब्द नहीं सुने जाते हैं, भाव सुने जाते हैं। तू वापस जा, क्षमा मांग! उससे प्रार्थना सीख! मूसा तो कंप गए। भागे गए, उस गड़रिए को पकड़ा, उसके चरणों में गिरे और कहाः मुझे क्षमा कर दे, भाई! मैंने जो कहा उसे वापस लेता हूं। परमात्मा की नजरों में तेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई है, हमारी प्रार्थना अभी स्वीकार नहीं हुई है। तू जैसा चाहे वैसा ही कर। और मुझे क्षमा कर दे। मुझसे बड़ी भूल हो गई।
यह कहानी मधुर है, प्रीतिकर है, अनूठी है। सहज, स्वाभाविक, तब पूजा का अनुभव होता है। अभी तो तुम्हारी पूजा इतनी ओछी है!
मैंने सुना है, एक नगर में कुछ लोगों ने मिलकर एक मंदिर बनाया। सोचा किसकी मूर्ति स्थापित करें? खूब विचार करने के बाद टस्टियों ने यही तय किया कि राम की मूर्ति स्थापित करें, तो राम की मूर्ति स्थापित कर दी। थोड़े से लोग मंदिर आने लगे जो राम को मानते थे। लेकिन जो कृष्ण को मानते थे, वे मंदिर नहीं आए। तो उन्होंने सोचा कि राम की मूर्ति हटा कर कृष्ण की मूर्ति स्थापित करें। तो कृष्ण की मूर्ति स्थापित की तो राम के माननेवालों ने आना बंद कर दिया। कृष्ण को माननेवाले आने लगे। फिर उन्होंने सोचा कि शिव की मूर्ति स्थापित करें। ऐसे वे हर साल मूर्तियाँ बदलते गए और हर साल आने वाले बदलते गए। मगर संख्या वही थोड़ी-की-थोड़ी रही। फिर उन्होंने सोचा कि मूर्ति हटा दें, मंदिर को मस्जिद बना दें। तो मंदिर को मस्जिद बना दिया। तो हिंदुओं ने आना बंद कर दिया, मुसलमान आने लगे। मगर संख्या वही की वही रही। वे तंग आ गए। वे चाहते थे सारा गांव आए। वे चाहते थे सब आएं। उन्होंने एक बूढ़े बुजुर्ग से सलाह ली कि हम क्या करें? उसने कहाः तुम एक होटल खोल लो। उन्होंने होटल खोली और सब आए।
ऐसी मजेदार दुनिया है। यहां मंदिर-मस्जिद के बीच झगड़ा है, होटल में सब जाते हैं। होटल खोल ली होगी, नाइट क्लब बना दिया होगा, स्विमिंग-पूल डाल दिया होगा, सब आने लगे। हिंदू भी आए, मुसलमान भी आए, ईसाई भी आए, सिख भी आए, पारसी भी आए, जैन भी आए, बौद्ध भी आए। फिर कौन करता है फिकर राम की और कृष्ण की, सब आए। गलत में सब राजी हैं। अद्भभुत है यह दुनिया और सही में बड़े विवाद हैं। झूठ में सब संगी-साथी हैं, सत्य में बड़े संप्रदाय हैं। उपद्रव करना हो, सब इकट्ठे हो जाते हैं। प्रभु को स्मरण करना हो, कोई इकट्ठा नहीं होता।
तुम किस मंदिर में गए थे? कहां तुमने पूजा की? तुम किस मस्जिद में गए, कहां तुमने प्रार्थना की? ये सब आदमी के बनाए हुए खेल हैं। इनके जाल को अनुभव मत समझ लेना। परमात्मा से संबंध जोड़ना है, थोड़ा प्रकृति से संबंध जोड़ो। वही एकमात्र मंदिर है। वही असली मस्जिद है। परमात्मा से पहचान करनी है तो उसका जो निर्माण है, उससे अपने हृदय को आंदोलित होने दो, संवादित होने दो। तुम्हारे भीतर हवाओं का सुर बजने लगे, वृक्षों की हरियाली उतरे, फूलों की लाली आए, चांद-तारों की रोशनी जगे! तब तुम जानोगे पूजा क्या है? मैं उस अनुभव की बात कर रहा हूं। तुम्हारे अनुभव की बात नहीं कर रहा हूँ। तुम्हारी पूजा के थाल सब व्यर्थ हैं और झूठे हैं। तुम्हारे ओंठों से आए शब्द सब सीखे हुए हैं। तुमने परमात्मा के सामने झुक कर कभी सीधी-सीधी बात की है? जैसा यह गड़रिया कर रहा था। सीधी-सीधी बात, आमने-सामने। नहीं, तुम्हारी बात उधार है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। उसको रोज एक प्रेमपत्र लिखता था। स्त्री भी हैरान थी, बड़े अदभुत प्रेम-पत्र लिखता था! फिर प्रेम टूटा तो उस स्त्री को मुल्ला ने जो अंगूठी दी थी उसे

वापस की। मुल्ला ने कहाः और अगर तकलीफ न हो तो मेरे प्रेम-पत्र भी वापस दे दो। उस स्त्री ने कहाः लेकिन प्रेम-पत्र तुम क्या करोगे? उसने कहा यह तुम न पूछो। अब कोई मेरी जिंदगी तुम्हारे साथ खतम थोड़े ही हो गई! अब ये प्रेम-पत्र मुझे फिर लिखने पड़ेंगे। अब सच बात तुम्हें बता दूं, अब तो मामला खत्म ही हो गया, ये प्रेम-पत्र मैं खुद नहीं लिखता हूं, एक पंडित से लिखवाता हूं। इनका पैसा देना पड़ता है! ये कोई मुफ्त नहीं हैं! अब फिर से खर्चा करना पड़ेगा। ये तुम मुझे दे दो, यही मैं दूसरे नाम से चला दूंगा, तीसरे नाम से चला दूंगा, इनसे तो जिंदगी भर काम चल जाएगा इतने पत्रों से। एक प्रेम क्या, न मालूम कितने प्रेम कर लेंगे।
लेकिन जब तुम किसी पंडित से प्रेम-पत्र लिखवाओगे तो झूठा नहीं हो जाएगा?
तुमने प्रार्थना भी तो पंडित से सीखी है। वह भी झूठी हो गई। तुम्हारा अपना कुछ भाव पैदा होता है, या कि तुम बिल्कुल रेगिस्तान हो? तुम्हारे भीतर भाव का कोई मरुद्यान नहीं है? कोई झरना नहीं बहता? तुमने वेद से सीख ली प्रार्थना? तुमने कुरान से सीख ली प्रार्थना? ये प्रार्थनाएं काम नहीं पड़ेंगी। ये तुम्हें असली अनुभव में नहीं ले जाएंगी। तुम्हें अपनी प्रार्थना को जन्म देना होगा। तुम्हें अपनी प्रार्थना बनना होगा। तुम जब बनोगे प्रार्थना, तब सुनी जाएगी, तब अनुभव होगा।
ऐसी ही तुम्हारी बाकी भी सब बातें हैं।
तुम कहते होः "योग भी कर चुका, ध्यान भी, व्रत-उपवास भी।"
तुमने कुछ नहीं किया। उपवास का अर्थ समझते हो? उपवास का अर्थ होता है, परमात्मा के पास होना। उपवास। उसके पास बैठना। भूखे मरने से मतलब नहीं होता। हां ऐसा अक्सर हो जाता है कि उसके पास बैठे-बैठे भूखे भोजन की याद नहीं आती, भोजन भूल जाता है। असली उपवास में भोजन नहीं होता ध्यान में, परमात्मा ध्यान में होता है; लेकिन परमात्मा इतना ध्यान में होता है कि देह की सुध-बुध भूल जाती है, उस दिन भोजन की याद नहीं आती, यह उपवास। तुम जब उपवास करते हो तो ठीक उल्टा ही होता है। तुम्हारे उपवास को उपवास नहीं कहना चाहिए। इसीलिए तो हमारे पास दूसरा शब्द है--अनशन। अनशन करते हो तुम, आज भोजन नहीं लेंगे।
मगर देखा है, जब आदमी उपवास का तय करता है, अनशन करने चलता है तो क्या करता है? --कल भोजन नहीं लेना है, आज रात डटकर ले लेता है। कल तक की कमी आज पूरी कर लेता है। यह कोई उपवास है? और कल तुम दिन-भर क्या करोगे? तुम सिर्फ् भोजन की ही याद करोगे, और क्या करोगे? भूखा आदमी और करेगा क्या? भूखे होने से तुम परमात्मा के पास कैसे बैठ सकोगे? परमात्मा के पास बैठने से कभी-कभी भूल जाता है भोजन, लेकिन भोजन को छोड़ने से कोई परमात्मा के पास नहीं पहुंचता। देखना कितनी सीधी-सीधी बात है और किस तरह आदमी ने उलटी कर ली है। हां, महावीर ने उपवास किए थे, क्योंकि डूब गए ध्यान में, अंतर्वास हो गया, भीतर पहुंच गए, बाहर की याद न रही--दिन आया कब, दिन गया कब, कुछ पता न चला; कब सुबह हुई, कब साँझ हुई, कुछ पता न चला--डूबे मस्ती में, भीतर, तो डूबे ही रहे, मस्ती में किसको पता चले कब भूख लगी, कब प्यास लगी; दिन बीत गए--ये उपवास है।
लेकिन दूसरे जो नकलची हैं, जो अनुकरण करनेवाले हैं, उन्होंने देखा कि महावीर ने आज भोजन नहीं किया--वे बैठे हैं, वे यही देखते रहते हैं कि कौन क्या नहीं कर रहा है--आज महावीर ने भोजन नहीं किया, और महावीर बड़े मस्त मालूम हो रहे हैं, तो उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भोजन न करने से यह मस्ती आ रही है। बस यहीं तर्क की भूल हो जाती है। और ऐसा लगता ऊपर से ठीक मालूम हो रहा है कि आज महावीर मस्त हैं और भोजन नहीं किए हैं, साफ है कि भोजन न करने से मस्ती आ रही है। चले वे भी, उन्होंने कहा--हम भी उपवास करेंगे। ऐसी मस्ती तो हमें भी चाहिए। तुम उपवास कर लोगे, मस्ती तो नहीं आएगी, थोड़ी-बहुत रही होगी मस्ती वह भी चली जाएगी। भूखा आदमी क्या मस्त होगा? खाक मस्त होगा! मस्ती से उपवास आ सकता है--उपवास गौण है, मस्ती प्रमुख है। लेकिन उपवास से मस्ती नहीं आ सकती।

महावीर नग्न हो गए। वह मस्ती में घटी घटना थी। इतने सरल हो गए, इतने निर्दोष हो गए, जैसे छोटा बच्चा होता है; कब वस्त्र गिर गए, पता न रहा। कब वृक्षों, पशु-पक्षियों जैसे हो गए, पता नहीं रहा। इतने सहज, इतने स्वाभाविक, इतने नैसर्गिक, इतने एकरस हो गए जगत से! --गिर गए वस्त्र! अगर ठीक से समझो तो कोई चेष्टा करके इस तरह की नग्नता नहीं ला सकता। क्योंकि चेष्टा में तो निर्दोष हो ही नहीं पाओगे और वही हो रहा है। जैनमुनि नग्न हो जाते हैं। मगर बड़ी चेष्टा से; पांच सीढ़ियां हैं। कोई उनसे पूछे महावीर ने कब ये पांच सीढ़ियां पूरी कीं? पांच सीढ़ियां हैं। पहले इतने वस्त्र रखो। ... वस्त्रों में परिग्रह कर लो; सीमित। फिर लँगोटी रखो। फिर एक ही लंगोटी रखो। फिर ऐसे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अयास करते-करते-करते एक दिन ऐसा आएगा जब तुम सारे वस्त्र छोड़ दोगे। इसमें करीब-करीब जीवन लग जाता है।
यह अयास से आई हुई नग्नता और महावीर की निर्दोषता से आई हुई नग्नता को तुम पर्यायवाची समझते हो? तो तुम बिल्कुल अंधे हो। महावीर को नग्नता का अनुभव हुआ। और ये सज्जन जो जैनमुनि बनकर बैठ गए हैं, इनको सिर्फ नंगेपन का अनुभव हो रहा है। ये बड़ी अलग बात है। महावीर ने दिगंबरत्व जाना।
"दिगंबर" शब्द का अर्थ प्यारा है। इसका मतलब होता है, आकाश ही जिसका वस्त्र हो गया। और ये सज्जन जो अयास कर रहे हैं, ये सिकुड़े-सिकुड़े बैठे हैं। इन्होंने अयास कर लिया, ये सब सर्कसी हैं। जैसे सर्कस में एक अयास होता है, आदमी कोशिश करके अयास कर लेता है तो लोग रस्सियों पर चलना भी सीख लेते हैं, तो नग्नता कोई कठिन बात नहीं है।
तुम कहते होः "मैं साधु भी हो चुका।"
जैसे साधु कोई होने की बात है। और फिर ना भी हो चुके! जैसे यह कोई ऊपर
से ओढ़ने की चीज है कि--ओढ़ ली, उतार दी। जंची तो ओढ़ ली, नहीं जंची तो उतार दी। साधुता अंतरात्मा है। कैसे उतारोगे, कैसे चढ़ाओगे? यह रंग ऐसा नहीं है कि चढ़े तो उतर जाए। यह कोई कच्चा रंग नहीं है। चढ़ता है तो चढ़ता है। हां, लेकिन ऊपर से चढ़ा लिया तो कितनी देर खींचोगे? थोड़े-बहुत दिन में लगेगा, भई, कुछ सार तो हो नहीं रहा है, साधु भी बन कर बैठ गए हैं! कहां है मोक्ष की लक्ष्मी? जैन-शास्त्र कहते हैं--जब मोक्ष की लक्ष्मी मिलेगी। बैठे हैं अब आंख बंद किए, मगर आंख बंद नहीं है, थोड़ी-थोड़ी खुली है, देख रहे हैं कि अब मोक्ष लक्ष्मी आती होगी। अभी तक नहीं आई मोक्षलक्ष्मी! कहां हैं अप्सराएं? बैठे हैं आंख बंद किए, कितनी देर से साधु बने बैठे हैं और सब शास्त्र कहते हैं कि जब साधु बन कर जंगल में बैठोगे तो अप्सराएं आएंगी और नाचेंगी; अभी तक नहीं आईं! बड़ी देर लगा रही हैं! कहां है स्वर्ग का सुख, अभी तक कोई किरण उतरी नहीं!
यह साधुता है? तुम व्यवसाय करने चले। तुम परमात्मा से भी चीजें खरीदने चले। कुछ चीजें तो कम से कम बाजार के बाहर छोड़ो! कुछ चीजें तो ऐसी रहने दो जो खरीदी नहीं जा सकतीं। जिनके लिए जीवन दांव पर लगाना होता है। ये सारे पाठ जो तुमने सीखे थे, गलत थे। तोतारटंत थे। तोतों को रटवा देते हैं न! राम जपो, तो तोता राम ही राम जपता रहता है। रटे की बात है। कोई तोते के हृदय में थोड़े ही राम होता है।
मैंने सुना है, एक तोता एक पंडित के पास था। खूब राम-राम जपता था। राम-राम ही जपता रहता था दिन भर। बड़ा भगत तोता था। पड़ोस में एक महिला रहती थी, उसने भी एक तोता पाला। वह तोता गालियां बकता था। वह बड़ी परेशान थी। उसने पंडित जी को पूछा कि क्या करना? ये बड़ी बेहूदी चीज मैं घर ले आई हूं। देखने में सुंदर था तो मैंने खरीद लिया और यह गालियां बकता है। और ऐसे मौके पर बक देता है; घर में मेहमान आए हों, फिर ये नहीं चूकेगा। यह कुछ न कुछ बीच में छेड़ देगा। भद्द हो जाती है। और मैं इसको लाख समझाती हूं राम-राम जपो, वह मुझे ही गाली देता है। राम-राम जपना तो दूर, मुंहफट जवाब देता है। उस पंडित ने कहा--तू एक काम कर। यह मेरा तोता बड़ा भगत है, ऐसा तोता मैंने नहीं देखा, सुबह बह्ममुहूर्त में उठ आता है और जो राम-राम की गुहार लगाता है! सारे घर को जगा देता है, पास-पड़ोस के लोगों को जगा देता है। फिर उसकी गुहार चलती ही रहती है। यह पिछले जन्म का कोई बड़ा पहुंचा हुआ भगत है। तू ऐसा कर, अपने तोते को यहां ले आ। सत्संग का तो लाभ होता है न! उसको साथ रख दे तो कुछ दिन

रह जाएंगे साथ दोनों तोते, सत्संग से सब ठीक हो जाएगा, यह बड़ा ज्ञानी है। यह तेरे तोते को सुधार देगा।
पंडित का तोता तो नर था और उस महिला का तोता मादा था। उनको एक ही पिंजड़े में रख दिया। मादा तोते ने दूसरे दिन गाली नहीं दी। लेकिन नर तोता भी राम-राम नहीं बोला। पंडित थोड़ा हैरान हुआ। उसने पूछताछ की कि क्या हुआ, भगत जी क्या हुआ? उसने कहाः अब क्यों राम-राम जपें? इसीलिए तो राम-राम जपते थे, एक मादा चाहिए थी। और मादा से कहाः तू क्यों चुप है? उसने कहाः इसीलिए तो गालियां बकते थे, एक नर चाहिए था। न तो राम-राम जपने वाले को राम-राम से कोई मतलब था, न गालियां देने वाले को गालियां देने से कोई मतलब था। दोनों के काम हल हो गए, झंझट मिट गई, भगत जी भगत जी न रहे।
तुम जब राम को स्मरण करते हो किसी आकांक्षा से, तब तुम झूठ हो। जब तुम्हारे भीतर कोई हेतु होता है तब तुम झूठ हो। अहेतुक स्मरण ही पूजा है, पाठ है, प्रार्थना है। अहेतुक स्मरण! किसी और कारण से नहीं, सिर्फ मस्ती से। परमात्मा से और क्या कारण जोड़ना है! उसका नाम ही पर्याप्त आनंददाई है। और फिर तुम सीखे हुए शब्द दोहरा रहे हो! सीखे हुए शब्दों को जाने दो और जो तुमने साधुता ली थी, ले ली थी, वह भी लोभ में ली होगी; कि चलो सब कर के देख लिया, अब साधु होकर देख लें। इस तरह के लोभ में यहां मत संन्यास ले लेना, नहीं तो यह अवसर भी चूकोगे। यहां तो संन्यास मस्ती से आए, तो डूबना। और इसी लोभ में यहां ध्यान मत करने लगना नहीं तो यहां भी चूकोगे। यह द्वार जो कि खुला द्वार है, यह भी तुम्हारे लिए बंद ही रह जाएगा। तुम पर सब निर्भर है। जल्दी मत करना, पुरानी आदतें बड़ी मुश्किल से जाती हैं। तुम तो बैठना यहां, ध्यान करने वाले लोग ध्यान करते हों, नाचने वाले लोग नाचते हों, तुम बैठना। तुम प्रतीक्षा करो जरा, जल्दी मत करना। उठकर नाचने मत लगना अन्यथा तुम्हारा नाच ऊपर-ऊपर होगा। बैठो, गुनो, सुनो, नाचने वालों की भाव-भंगिमाएं देखो। और एक घड़ी आएगी जरूर, जब तुम पाओगे कि भीतर तुम्हारे कोई नाच उठा, एक तरंग उठी, एक उमंग उठी, एक लहर उठी। उसी लहर के नाच में उठ पड़ना और नाचना तब तुम पहली दफा अनुभव करोगे, मैं किस अनुभव की बात कर रहा हूं। उस अनुभव को अनुभव करोगे।
पूछते होः "अब मैं क्या करूं?"
यहां तो तुम प्रतीक्षा करो। सुनो मुझे, समझो मुझे, बैठो यहां पास। ध्यानी ध्यान करते हों, उनके पास बैठो। यहां की मस्ती को जरा तुम्हारे भीतर प्रवेश करने दो। तुम जल्दी न करो। करने की जल्दी न करो। तुम पहले बहुत जल्दी कर चुके हो और उसी में चूक गए हो। इस बार कुछ होने दो, करना नहीं है, होने दो। इस बार ध्यान हो तो होने देना, संन्यास हो तो होने देना, रोकना मत, बस। करना भी मत, रोकना भी मत! मुझे मौका दो।
यह एक प्रयोगशाला है। यहां सब मौजूद किया जा रहा है जो रूपांतरित कर सकता है, तुम सिर्फ खुले भाव से यहां मौजूद रहो। बस, तुम्हारा खुला हृदय चाहिए। इससे ज्यादा की कोई अपेक्षा नहीं। खुले हृदय में सब अपने से हो जाता है।

दूसरा प्रश्न भी संबद्ध है। पूछा हैः उपासना यानी क्या?
जो उपवास का अर्थ है, वही उपासना का अर्थ है। दोनों में जरा भेद नहीं। दोनों एक ही शब्द के निर्माण हैं। उप वास; पास बैठना, उप आसना, पास आसन लगाना।
तुम जो समझते हो उपवास का अर्थ और उपासना का अर्थ, वह मेरा अर्थ नहीं। गुरु के पास बैठ जाना--उपासना। सूरज ऊगता हो, उस ऊगते सूरज के पास तल्लीन हो जाना--उपासना। पक्षी गीत गाते हों, आंख बंद करके उनके गीतों में लीन हो जाना, डूब जाना--उपासना। जहां कहीं सौंदर्य, सत्य और शिवम का आविर्भाव होता हो, वहीं आसन मार कर बैठ जाना, वहीं अपने हृदय के द्वार खोल देना, निमंत्रण दे देना परमात्मा को और प्रतीक्षा करना। उपासना निष्क्रिय प्रतीक्षा है, अनाक्रमक प्रतीक्षा है। चेष्टाशून्य चेष्टा है। उपासना अदभुत कीमिया है।

तुम्हारी चेष्टा से कुछ चीजें नहीं होंगी, नहीं हो सकती हैं। उन चीजों का स्वभाव ऐसा है कि वे चेष्टा से नहीं हो सकती हैं। जैसे रात तुम्हें नींद नहीं आ रही हो, तो तुम जो भी चेष्टा करोगे उससे नींद आने में बाधा पड़ेगी, सहयोग नहीं मिलेगा; क्योंकि नींद चेष्टा से आ ही नहीं सकती। सब चेष्टाएं नींद को तोड़ने वाली हैं। कोई तुमसे कहता है कि गिनो एक से लेकर सौ तक गिनती, फिर सौ से लेकर नीचे की तरफ उतरो एक तक, फिर सौ तक जाओ; तुम रात भर जाते रहोगे ऊपर-नीचे, थोड़ी-बहुत नींद भी जो मालूम हो रही थी वह भी गंवा दोगे। क्योंकि सौ तक जाना, फिर सौ से नीचे उतरना, इसमें तुम्हें और जागरूकता की जरूरत पड़ेगी। यह तोध्यान का उपाय हुआ, नींद का उपाय न हुआ। यह तो ध्यान की विधि है।
क्या करोगे तुम?
तुम जो भी करोगे उसी से बाधा पड़ेगी, क्योंकि कृत्य और निद्रा में विरोध है। निद्रा कृत्य से नहीं आती, क्रिया से नहीं आती। तुम तो पड़े रहो बिस्तर पर निढाल होकर, कुछ मत करो, पड़े रहो, जब आना होगा आ जाएगी, तुम्हारे हाथ में नहीं है, तुम खींच-तान कर नींद को नहीं ला सकोगे; तुम्हारी मुट्ठी में नहींहै। तुम्हारी पहुँच के बाहर है। जब आती है तब आती है। हां, इतना ही तुम कर सकते हो कि अपने को बचाओ मत। अपने को उस स्थिति में छोड़ दो जहां नींद तुम्हें पकड़ सके। इसी स्थिति को पैदा करने के लिए हम व्यवस्था करते हैं।
क्या है हमारी व्यवस्था?
घर में जो कमरा सबसे ज्यादा शांत होता है उसमें आदमी सोता है। पर्दे खींच देते हैं ताकि अंधेरा हो जाए, अंधेरे में नींद के आगमन में सुविधा होती है। नींद बड़ी संकोची है, रोशनी में नहीं आती। नींद जब बिल्कुल अंधेरा होता है तब चुपचाप आती है। जरा भी शोरगुल हो तो नहीं आती। जब सन्नाटा हो तब आती है। फिर तुमने बिस्तर पर अपने को लिटा दिया है--बिस्तर भी हम ऐसा बनाते हैं कि सुविधापूर्ण हो, क्योंकि असुविधा रहे कोई तो नींद नहीं आती। असुविधा में मन जागा रहता है। एक कांटा गड़ रहा हो तो मन जागा रहता है। सिर में दर्द हो तो मन जागा रहता है। तुम बिस्तर पर लेट गए हो, कंबल ओढ़ लिया है, पर्दे गिरा दिए हैं, अंधेरा हो गया, सन्नाटा हो गया, कोई शोरगुल नहीं, दरवाजे-खिड़कियां बंद कर दीं। मगर ये कोई नींद लाने के उपाय नहीं हैं। ये सिर्फ नींद को आने की सुविधा देना है।
बस ऐसी ही उपासना भी है। परमात्मा लाया नहीं जा सकता, आता है। अपनी मर्जी से आता है। आ ही रहा है, सिर्फ हम उपासना का आयोजन नहीं कर पाते। जैसे नींद का आयोजन करते हो, ऐसे ही उपासना का आयोजन करो। सिर्फ अपने को छोड़ दो खाली, मुक्त, शांत, निर्विचार, शिथिल, एक विराम पैदा हो जाए।
फिर कहां तुमने अपने को छोड़ा, इससे फर्क नहीं पड़ता। परमात्मा के लिए कोई जगह ऐसी नहीं जहां वह न पहुँच जाए। तो किसी मंदिर-मस्जिद में विशेषरूप से जाने की जरूरत नहीं है। हां, मंदिर-मस्जिद में जाने का एक उपयोग हो सकता है, अगर और कहीं शांत स्थान ही न मिलता हो। इसलिए मंदिर-मस्जिद बनाए गए थे। उनके बनाने का एक ही आधार था कि बाजार है, भीड़भाड़ है, शांति नहीं है, एक स्थान, जहां कोई जाकर शांत हो जाए--जैसे नींद का एक कमरा होता है, ऐसे ही उपासना का एक भवन। वहां लोग स्वच्छ होकर जाएंगे, ताजे होकर जाएंगे, स्नान करके जाएंगे; शांति होगी वहां, बाजार की भीड़-भाड़ न होगी, लोग जोर-जोर से बात नहीं करेंगे, वहां ज्यादा सुविधा होगी कि कोई आदमी विराम में ठहर जाए, बैठ जाए।
उपासना यानी शांत होकर बैठ जाना। आसन मार दिया, बैठ गए। निमंत्रण दे दिया कि प्रभु तू आ! खींच-तान नहीं की जा सकती। तुम उसका आंचल पकड़ कर उसे खींच नहीं सकते। मगर इतना ही हो जाए तो काफी है, अपने आप आ जाता है। आना ही चाहता है। तुम जितने आतुर हो, तुमसे ज्यादा आतुर परमात्मा है तुमसे मिलने को। तुम्हारी आतुरता तो कुछ भी नहीं है। तुम्हारी आतुरता तो बस नाममात्र की आतुरता है--कामचलाऊ है, कुनकुनी आतुरता है। परमात्मा प्रतिपल आतुर है। सब तरफ से तुम्हें घेर लेना चाहता है, तुम्हें हृदय से लगा लेना चाहता है,

मगर तुम मौका नहीं देते। और तुम्हें हृदय से भी लगा ले तो तुम छूट-छूट जाते हो।
सिर्फ अपने को शिथिल छोड़ो, शांत छोड़ो--कहीं भी! यह... ये पक्षी बोल रहे हैं, किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर शिथिल छोड़ दो। यह धूप तुम्हारे सिर पर पड़ती है, यह हवा का झोंका आता है, ये पक्षी बोलते हैं, ये सब परमात्मा का ही आगमन है, ये उसकी पगध्वनियां हैं, ये उसके ही इशारे हैं।
उपासना बड़ा प्यारा शब्द है। जापान में झाझेन का जो अर्थ है, वही उपासना का अर्थ है। झाझेन का अर्थ हैः बैठना और कुछ न करना। उपासना का भी यही अर्थ हैः बैठना और कुछ न करना। कृत्य के कारण ही हमारे चित्त में चिंताएं पैदा हो जाती हैं। कृत्य के कारण ऊहापोह शुरू हो जाता है। कृत्य के कारण तरंगें उठने लगती हैं। और जब कुछ कृत्य नहीं करना है, सब तरंगें शांत हो जाती हैं।
तो उपासना को तुम कृत्य मत मानना, अकृत्य है; चेष्टा मत मानना, चेष्टारहितता है। कुछ पाने की वासना नहीं है उपासना, सिर्फ अपने को हाथ में छोड़ देना है परमात्मा के। जैसे कोई जल की धार में अपने को छोड़ दे। और जल की धार उसे बहा ले चले। ऐसे जीवन की धार में अपने को छोड़ देने का नाम उपासना है। कुछ कहने की भी बहुत जरूरत नहीं है। कुछ बोलने की भी बहुत जरूरत नहीं है। हां, कभी-कभी बोल सहज उठ जाए तो उठने देना। मगर सहज बोल! और तुम चकित होओगे यह बात जान कर कि जरूरी नहीं है कि सहज बोल में अर्थ हो। कभी-कभी भीतर से हो सकता है सिर्फ नाद उठे। जैसे तुमने शास्त्रीय संगीतज्ञों को कभी आलाप भरते देखा हो ऐसा नाद उठे।
ईसाइयों में एक छोटा सा संप्रदाय है। उनकी एक प्रक्रिया है-- ग्लासोलालिया। बड़ी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उपासना जिसको समझनी हो उसे ग्लासोलालिया समझनी चाहिए। छोटा सा संप्रदाय, बहुत थोड़े से लोग उसको मानने वाले हैं। क्योंकि वह बड़ा पागलपन जैसा मालूम पड़ता है। उस संप्रदाय को माननेवाला शांत बैठ जाता है और प्रतीक्षा करता है। फिर भीतर से कुछ आवाज उठनी शुरू होती है--भीतर से, उठता नहीं। ऐसा नहीं है कि तुम उठाओ--राम-राम, राम-राम या ओम्-ओम्, कुछ उठाता नहीं। भीतर से प्रतीक्षा करता है कुछ उठे--आऽऽऽआऽऽऽ, कुछ भी उठे, अनर्गल उठे, उठने देता है, बोलने लगता है। असंगत, अर्थहीन ध्वनियाँ पैदा होती हैं। पागलपन लगेगा, जो भी दूसरा देखेगा वह कहेगा--यह क्या प्रार्थना हो रही है? तुम पागल हो गए हो? यह हिंदू की प्रार्थना है कि मुसलमान की, कि ईसाई की? यह किसी की भी नहीं है। मैं इसको देववाणी कहता हूं। यह एक विशेष ध्यान है। और मस्ती छाने लगती है। तुम बोलते नहीं, तुमसे कोई बोलता है। तुम सिर्फ माध्यम बन जाते हो, आदमी डोलने लगता है, मस्ती से भरने लगता है, बड़ी मादकता आ जाती है। घंटों बीत जाते हैं, पता नहीं चलता कि समय कहां गुजर गया। मगर सिर्फ एक हिम्मत उसमें रखनी पड़ती है कि लोग पागल समझेंगे। यह सहज उदघोष होगा। लोग तो पागल निश्चित समझेंगे। लोग तो समझेंगे दिमाग गया। यह क्या कर रहे हो? मगर अगर तुम एकांत स्थान खोज सको अपने लिए तो मैं तुमसे कहूंगा--यही असली उपासना है।
और तुम चकित हो जाओगे। एक घंटे भर की देववाणी के बाद तुम ऐसे पाओगे जैसे नहाए जन्मों-जन्मों के बाद। ऐसे ताजे हो गए, हलके हो गए, जैसे उड़ सको, पर लग गए। जैसे जमीन में कोई कशिश न रही। चलोगे और ऐसा लगेगा कि तुममें कोई भार नहीं। मस्तिष्क एकदम शांत हो जाएगा। शांत ही नहीं, शीतल भी हो जाएगा। एक भीतर शीतलता घनी होगी। तुम पाओगे न मालूम कितना बोझ मस्तिष्क से गिर गया। कितनी व्यर्थ की बातें जो सिर में चलती थीं, नहीं चल रही हैं आज। आज भाग-दौड़ नहीं रहेगी। आज तुम्हारे प्रत्येक कदम में एक शालीनता होगी, एक प्रसाद होगा।
तुम इसे करो और देखो। इसको मैं अनुभव कहता हूं। मैं तुम्हें बता नहीं सकता। जैसे मैंने कहा आऽऽऽआऽऽऽआ, ऐसा मत करने लगना, कि मैंने कहा आऽऽऽआऽऽऽकरना है। जो हो, वही होने देना। कभी सार्थक शब्द भी निकल आएगा। कभी निरर्थक शब्द भी आएगा। मगर तुम उसके नियंता मत होना। तुम उसे गहरे अचेतन से उठने देना। पहले तो तुम भी चौंकोगे, जब उठेगा; तुम भी डरोगे, एक भय

व्याप्त हो जाएगा कि यह क्या हो रहा है। गए काम से! यह बंद होगा कि नहीं फिर? इसको चलने देना है कि नहीं! यह स्वाभाविक भय है कि यह उठ रहा है, हम तो उठा नहीं रहे, फिर चलता ही रहा कहीं! पत्नी भी आकर सामने खड़ी हो गई और यह नहीं रुका, फिर क्या करोगे? तो आदमी दबाने की कोशिश करता है। उसके ऊपर बैठ जाना चाहता है दबाकर कि ऐसी झंझट में पड़ना ठीक नहीं है, ये तो बिल्कुल शुद्ध विक्षिप्तता है।
तुम अपनी बहुत सी विक्षिप्तताओं को दबाए बैठे हो। उसी के कारण तुम विक्षिप्त हो, उन्हें निकल जाने दो। उन्हें उड़ जाने दो हवा में। उन्हें मुक्त कर दो। और तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर पहली बार स्वास्थ्य का अनुभव हुआ। एक घंटा अगर कोई सहज उपासना में बैठ जाए; सिर्फ बैठा रहे, कुछ न करे न और जो हो, होने दे।
तो एक तो ग्लासोलालिया महत्वपूर्ण प्रक्रिया है उपासना के लिए। दूसरी प्रक्रिया है इंडोनेशिया में--"लातिहान।" वह भी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। ग्यासोलालिया में ध्वनि को आने देने पर जोर है और लातिहान में मुद्राओं को।
शांत आदमी खड़ा हो जाता है, लातिहान में बैठता नहीं खड़ा होता है, ताकि मुद्रा ठीक से हो सकें। सिर्फ खड़ा रहता है शांत। छोड़ देता है अपने को परमात्मा के हाथ में। सब तरफ से शिथिल कर देता है अपने को। कह देता है--जो तेरी मर्जी हो, कर ले! अचानक पाता है कि एक हाथ ऊपर उठा... अपना ही हाथ ऊपर उठते देखना--बिना उठाए--घबड़ाने वाला है... मुद्रा बनने लगी, या शरीर डोलने लगा। जैसे बीन बजने लगी और सांप नाचने लगा। नाच पैदा हो जाता है, मुद्राएं बनती हैं, सिर घूमने लगता है, आदमी चक्कर खाने लगता है--कुछ भी हो सकता है, सब कुछ संभव है। कूदने लगता है, फांदने लगता है, या कभी कुछ भी न हो; शांत ही खड़ा रहे, कुछ भी न हो, वह भी हो सकता है।
एक घंटे भर का लातिहान और तुम पाओगे जैसे सारे शरीर में जहां-जहां ऊर्जा में अवरोध थे, सब पिघल कर बह गए। एक घंटे भर बाद तुम पाओगे तुम्हारा शरीर ठोस नहीं, तरल है। एक अदभुत नृत्य से तुम गुजर गए। मगर इसमें भी लोग तुम्हें पागल समझेंगे कि यह क्या हो रहा है।
इसीलिए तो जो प्रयोग यहां चल रहे हैं, उनको जो लोग बाहर से देखने आ जाते हैं वे समझते हैं कि सब पागलपन हो रहा है; यह क्या हो रहा है? यह कैसा ध्यान? यह कैसी पूजा, यह कैसी प्रार्थना? क्योंकि उनके पास बंधे ढांचे हैं। वे उन्हीं ढांचों को सोच कर आए हैं कि कुछ ऐसा हो रहा होगा; कि बाबा मुर्दानंद बैठे होंगे और अपनी माला फेर रहे होंगे। यहां कोई बाबा मुर्दानंद नहीं हैं। यहां जीवन है, अपनी पूरी तंरग में, अपनी पूरी मस्ती में, अपने पूरे आह्लाद में। लोग यहां सोच कर आ जाते हैं कि लोग बैठे होंगे बिल्कुल अपने झाड़ों के नीचे, सूख-साखे, जिनसे जीवन जा चुका है, झरने सूख गए हैं। ऐसे लोगों को लोग महात्मा कहते हैं। और जब इन महात्माओं के चेहरे बिल्कुल पीले पड़ जाते हैं, पीतल जैसे हो जाते हैं, तो वे कहते हैं--देखो कैसी स्वर्ण जैसी आभा प्रकट हो रही है! जब ये महात्मा बिल्कुल सूख कर हड्डी-हड्डी हो जाते हैं, वे कहते हैं--यह त्याग, तपश्चर्या! यह है महिमा! तुम खुद भी मूढ़ हो, तुम्हारी मूढ़ता के कारण तुम्हारे महात्मा भी मूढ़ हैं। तुम्हारे पीछे चल रहे हैं। तुम जिस बात की प्रशंसा करते हो, वही करने लग जाते हैं।
यहां हम किसी की धारणाएं तृप्त करने को नहीं हैं। यहां तो हम जीवन के प्रयोग कर रहे हैं। यहां तो जो सहज नैसर्गिक है, उसको सुविधा दे रहे हैं कि प्रकट हो।
उपासना का मेरे लिए यही अर्थ है--जो हो होने देना, तुम तरल हो जाना। तुम कठपुतली हो जाना। और सब धागे उसके हाथ में छोड़ देना। वह नचाए तो नाचना, वह रुलाए तो रोना, वह गवाए तो गाना, वह जो करवाए सो करना। और वह कुछ न करवाए, बिल्कुल बुत बना कर बिठाल दे तो बुत बने बैठे रहना। अपनी तरफ से न करना, इसे मैं दोहराता हूं फिर-फिर, अपनी तरफ से कुछ भी न करना। क्योंकि तुम इतने धोखेबाज हो कि तुम यह सब काम अपनी तरफ से कर सकते हो।

लातिहान में किसी के हाथ-पांव में मुद्राएं आ रही हैं, अब तुम खड़े देख रहे हो, तुम सोचते हो कि यह मामला क्या है, हम क्यों खड़े हैं? सब को कुछ न कुछ हो रहा है, कोई क्या कहेगा कि इन्हें कुछ भी नहीं हो रहा, तुम भी अपने हाथ-पैर हिलाने लगे, मटकाने लगे; बस तुम चूक गए। सबके भीतर से ध्वनियां उठ रही हैं, तुमने देखा कि हम चुप बैठे हैं तो बुद्धू मालूम होते हैं, अब जब पागलों के साथ हो गए हैं तो पागल ही हो जाने में सार है, तुम भी उठाने लगे ध्वनि; तुम चूक गए। और बाहर से देखने वालों को दोनों बातें एक सी मालूम पड़ेंगी, क्योंकि बाहर से कोई भेद नहीं किया जा सकता। कौन अभिनय कर रहा है, कौन अनुभव कर रहा है, इसका बाहर से कुछ भेद नहीं किया जा सकता। मगर तुम्हें अपने भीतर तो साफ पता चलता रहेगा कि यह अनुभव है या अभिनय। अगर अभिनय है, तत्क्षण छोड़ दो। अभिनय से कोई परमात्मा तक न पहुंचा है, न पहुंच सकता है। अनुभव से पहुँचता है।

तीसरा प्रश्न: आंख को निर्मल करने का उपाय बताएं। चारों ओर राम कैसे दिखाई पड़ें?

प्रियंवदा! पूछा है तुमने कि चारों ओर राम कैसे दिखाई पड़ें! राम की कोई धारणा मत रखना मन में कि खड़े हैं धनुर्धारी राम! ऐसी कल्पना लेकर चली, तो जल्दी ही दिखाई पड़ने लगेंगे, मगर वह झूठे राम हैं। राम से धनुर्धारी राम मत समझना, जब भी मैं "राम" शब्द का उपयोग कर रहा हूं तो परमात्मा के लिए उपयोग कर रहा हूं, दशरथ के बेटे राम के लिए नहीं। क्योंकी दशरथ के बेटे की तस्वीर अगर तुम्हारे मन में बैठ गई, तो तुम्हारी कल्पना उस तस्त्वीर में रंग भरने लगेगी।
राम दशरथ के बेटे राम से पुराना शब्द है--इसीलिए तो उनको राम का नाम दिया गया था। वह राम की एक अभिव्यक्ति हैं। जैसे कृष्ण भी राम की एक अभिव्यक्ति हैं। जैसे क्राइस्ट भी राम की एक अभिव्यक्ति हैं। तो पहला तो काम यह तुम्हारे मन में साफ हो जाना चाहिए कि राम से मेरा मतलब सिर्फ परमात्मा से, अल्लाह से।
राम प्यारा शब्द है। मगर राम को धनुषबाण इत्यादि लेकर खड़ा मत कर देना। थक गए होंगे, काफी दिन हो गए खड़े-खड़े। अब उनसे कहो कि धनुषबाण रखो, आप विश्राम में जाओ। कोई रूप मत देना राम को। रूप दिया कि चूक हो गई। रूप दिया कि खेल मन का शुरू हो जाता। आकार दिया कि तुम भटके। राम को निराकार रहने देना, पहली बात। अगर सब जगह राम को देखना हो तो निराकार रहने देना। अगर आकार दिया तो फिर आकार में ही देख सकोगे, सब जगह न देख सकोगे। इसलिए जिसने धनुर्धारी राम को ही राम मान लिया, वह कृष्ण के विपरीत हो जाता है। वह फिर कृष्ण को नहीं मानता। क्योंकि उसने तो एक रूप पकड़ लिया। अब यह कृष्ण तो बिल्कुल दूसरा रूप है। यहां तो बांसुरी है, धनुष नहीं है। फिर वह क्राइस्ट को कैसे माने! यह तो और भी दूर की बात हो गई। फिर वह मोहम्मद को कैसे माने? यह तो फासला और लंबा होने लगा। फिर वो जकड़ गया। फिर उसने एक धारणा राम की बना ली, फिर उसी धारणा में आबद्ध हो गया। वह धारणा उसका काराग्रह हो गई, उसकी जंजीर हो गई। पहली बात।
अगर राम को सब जगह देखना हो तो कोई रूप मत देना, रंग मत देना। नहीं तो वृक्ष में कैसे देखोगे? अब वृक्ष विचारा मजबूर है, धनुषबाण उठा नहीं सकता। मोर नाचेगा, कैसे देखोगे? अब नाचे कि धनुषबाण उठाया! तो तुम मुश्किल में पड़ गए। और जिस राम ने धनुषबाण उठाया था, वह कब के तिरोहित हो चुके। अब तो तुम्हें मंदिर में ही मिलेंगे वह; पत्थर की मूर्ति में मिलेंगे। इसीलिए पत्थर की मूर्ति इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है। तुमने रूप तय कर लिया, उस रूप से मिलने वाली चीज तो पत्थर की मूर्ति ही हो सकती है। क्योंकि मूर्ति भी तुम्हारी बनाई हुई है और रूप भी तुम्हारा बनाया हुआ है। तुम झूठे राम की धारणा में बंधे, सब धारणाएं झूठी हैं। निर्धारणा में राम का अनुभव होता है।
तुम्हारा प्रश्न हैः "आंख को निर्मल करने का उपाय बताएं। चारों ओर राम कैसे दिखाई पड़े?"

तो पहला तो निराकार भाव करो। निराकार का भाव करते ही चारों ओर है ही राम, दिखाई पड़ने का सवाल नहीं है। वही है। उसके अतिरिक्त कोई और नहीं है। सारे आकार उसके हैं। निराकार का मतलब होता हैः सारे आकार उसके हैं। सारी आकृतियां उसकी हैं। तुम भी वही हो। शेष सब भी वही है। मगर यह भी सिद्धांत रहे तो किसी काम का नहीं है, अनुभव बनना चाहिए। और अनुभव के लिए आंख निश्चित साफ करनी जरूरी है।
सरल उपाय है आंख को साफ कर लेने को--प्रेम से भरे हुए आंसू। रोओ। रोने
से प्यारी और कोई प्रक्रिया नहीं है। दुख से मत रोना। दुख से जो रोता है उसके तो रोने की महिमा जानी ही नहीं। आनंद से रोना। आनंद-अश्रु! आंख स्वच्छ होने लगती है आनंद के अश्रुओं से। बाहर की ही आंख शुद्ध नहीं होती, भीतर की आंख भी शुद्ध हो जाती है। दृष्टि निर्मल हो जाती है। नहीं तो परमात्मा सामने खड़ा रहता है और हमें दिखाई नहीं पड़ रहा। हमारी आंखों पर इतनी धूल जमी है।
यह कौनसा मुकाम है, ऐ जज्बे-आर्जू
वे सामने हैं और नजर बेकरार है
परमात्मा सामने खड़ा है और हम तलाश रहे हैं। और नजर बेकरार है और हम पूछ रहे हैं कहां है! अक्सर तो ऐसा हुआ है, तुमने परमात्मा से ही पूछा है है कि कहां है! और किससे पूछोगे? बताने वाला भी वही है। कहां खोजोगे उसे? -- खोजने वाला भी वही है। आंख तो निर्मल निश्चित होनी चाहिए--प्रश्न महत्वपूर्ण है। रोना सीखो! रोना बड़ी कला है। सभी को नहीं आती। पुरुष तो बिल्कुल भूल गए हैं। उन्हें तो याद ही नहीं रही। उन्होंने तो रोने की पूरी प्रक्रिया का दमन कर दिया है। उनकी आंखें तो जड़ हो गई हैं, पथरीली हो गई हैं। उनकी आंखों से रौनक भी चली गई है। उनकी आंखें अंधी हो गई हैं। उनकी आंखें अहंकार से भर गई हैं। अहंकार से भरने के लिए उन्होंने अपनी आंखों को वंचित कर लिया है। क्योंकि अगर आंसू बहते रहें तो अहंकार बह जाएगा। इसलिए हम हर बच्चे को सिखाते हैं कि तू मर्द है, रोना मत, रोने का काम स्त्रियां करती हैं। तू कोई लड़की नहीं है, याद कर।
हम छोटे से छोटे बच्चे में जहर भरने लगे अहंकार का। हम उसे यह कह रहे हैं कि मर्द कुछ खास बात है। स्त्रियां ठीक है रोती रहें, इनका क्या मूल्य है! इनकी कौन गिनती? रोने दो रोना है तो। अच्छा ही हैं उलझी रहें काम में अपने। लेकिन तुम! तुम्हारे ऊपर जिंदगी के बड़े काम हैं। रोना मत। तुम्हें जिंदगी में लड़ाई लेनी है, संघर्ष लेना है, स्पर्धा करनी है। रोने से कहीं चलेगा? ऐसे बीच बाजार में खड़े होकर रोने लगोगे तो भद्द हो जाएगी। हारो तो भी हँसना, टूटो तो भी हँसना, मरो तो भी हँसना, रोना मत। यही मर्द का लक्षण है। टूट जाओ पर झुकना मत।
और रोना तो कैसे शोभा देगा अहंकारी को? अहंकार के बड़े विपरीत है रोना। पुरुष को हमने अहंकार सिखाया है। और उसका परिणाम यह हुआ है कि पुरुष की एक क्षमता ही खो गई है। वह रो ही नहीं पाता। और तुम यह जानकर चकित होओगे कि प्रकृति ने कुछ भेद नहीं किया है। स्त्री की आंख के पीछे उतनी ही आंसू की थैलियां हैं जितनी पुरुष की आंख के पीछे। दोनों में बराबर आंसू की क्षमता है। इसलिए प्रकृति ने पुरुष को नहीं रोना है ऐसा कोई नियम नहीं दिया है। अगर ऐसा नियम दिया होता, तो पुरुष की आंख के पीछे आंसू की ग्रंथियां ही न होतीं। स्त्रियों को ही आंसू की ग्रंथि दी होती। जो चीज जिसको देनी, उसको दी होती। जैसे पुरुष को बच्चे पैदा नहीं होते हैं तो उसको गर्भ नहीं दिया है। स्त्री को गर्भ दिया है। लेकिन पुरुष की आंख में उतनी ही आंसू की ग्रंथियां हैं जितनी स्त्री की आंख में। इसलिए प्रकृति ने चाहा था कि दोनों रोएं, दोनों रोने की कला सीखें।
तो पुरुष तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया है।
मनस्विद कहते हैं कि मनुष्यों में पुरुषों की पीड़ा के बहुत कारणों में एक बुनियादी कारण उनका न रोना भी है। रो ही नहीं सकते। हलके नहीं हो पाते। तुमने कभी देखा है, तुम रो लिए हो, हल्के हो गए हो। कोई भार बह जाता है। दुनिया में दुगुने पुरुष पागल होते हैं स्त्रियों की बजाय। क्योंकि स्त्रियां रो लेती हैं और फुटकर-फुटकर पागल हो लेती हैं। चिल्लड़? जरा सी

बात हुई, चिल्ला ली, नाराज हो ली, रो ली। पुरुष थोक पागल होता है। इकट्ठा करता जाता है, इकट्ठा करता जाता है, इकट्ठा करता जाता है, फिर एक घड़ी आती है जहां सम्हालना मुश्किल हो जाता है। दुगुने पुरुष पागल होते हैं। और दुगुने ही पुरुष आत्महत्या भी करते हैं। हालांकि स्त्रियां धमकी बहुत देती हैं, मगर करतीं नहीं। स्त्रियां कहती हैं कि हम मर जाएंगे, ऐसा कर लेंगे, वैसा कर लेंगे, मगर करती इत्यादि नहीं। कभी-कभी नींद की गोलियाँ भी ले लेती हैं तो हिसाब से लेती हैं कि कहीं मर ही न जाएं।
स्त्रियों में इतना पागलपन इकट्ठा नहीं हो पाता, उनके रोने के कारण। लेकिन पुरुष आत्महत्या कर लेते हैं। और आत्महत्या से भी बड़ी भयंकर बात पुरुष की यह है कि पुरुष पूरे जीवन हत्या के आयोजन करने में लगा रहता है। इसलिए इतने युद्ध होते हैं दुनिया में। युद्ध चलते ही रहते हैं। कोई भी बहाना मिल जाए पुरुष को लड़ने का, वह चूकता नहीं। बस मौका मिल जाए मारने को, कोई आड़ मिल जाए हत्या की कि वह हत्या करने में लग जाता है। और बड़े ऊंचे- ऊंचे नाम देता है। राष्ट के लिए, मातृभूमि के लिए, धर्म के लिए, हिंदू धर्म के लिए, इस्लाम के लिए, बड़े ऊंचे-ऊंचे शब्द देता है, मामला कुल इतना ही है कि मारना है। मारना है तो ऐसे ही मारो, कि मारने के लिए। कम से कम सचाई तो रहेगी, कि हमारा दिल नहीं मान रहा है अब, अब हम किसी को मारेंगे। लेकिन मारना एकदम, सीधा-सीधा मारने लगो एकदम तो झंझट होती है। पहले वह झंडा ऊंचा रहे हमारा, या कुछ और उपाय करता है। सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा! तुम पागल हो गए हो। यही भ्रांति सभी को है। कोई बहाना खोजो। अच्छे-अच्छे बहाने खोज लो, मगर मतलब पीछे एक है। मतलब साफ हो--मारना है। क्योंकि अगर पुरुष न मारे दूसरे को तो फिर उसे आत्महत्या की सूझती है।
ख्याल करना, दूसरे को मारना और अपने को मारने में बुनियादी फर्क नहीं है, ये एक ही ऊर्जा के दो पहलू हैं। अगर दूसरे को मारने का मौका मिल जाए तो आदमी अपने को नहीं मारता। और अगर दूसरे को मारने का मौका मिले ही न, मिले ही न, मिले ही न, तो जो दूसरे को मारने की प्रक्रिया थी, वह अपने पर ही लौट आती है। आदमी आत्महंता हो जाता है, इसलिए तुम जान कर चकित होओगे कि जब भी दुनिया में बड़ा युद्ध होता है, आत्महत्याओं की संख्या एकदम से गिर जाती है। जब पहले महायुद्ध में आत्महत्याओं की संख्या एकदम गिर गई, तो मनोवैज्ञानिक भरोसा ही नहीं कर सके कि युद्ध से इसका क्या संबंध! क्यूं ऐसा हुआ? और दूसरे महायुद्ध में तो फिर और भी जोर से गिरी। तुम और भी चकित होओगे जान कर कि जब युद्ध होता है तो कम लोग पागल होते हैं, कम डाके पड़ते हैं, कम हत्याएं होती हैं, कम अपराध होते हैं। जरूरत ही नहीं है और अपराध करने की, युद्ध इतना बड़ा अपराध हो रहा है। और इतनी शान से हो रहा है! हत्याएं इतनी खुली चल रही हैं, अब अलग-अलग निजी-निजी आयोजन क्या करना, राष्टीय आयोजन हो रहे हैं। बड़े पैमाने पर काम चल रहा है तो अब छोटे-मोटे काम क्या करने हैं। समूह काटे जा रहे हैं, देश के देश बरबाद किए जा रहे हैं, तो अब इक्के-दुक्के आदमी को क्या मारना?
यह दुनिया का एक बड़ा महत्वपूर्ण राज है। जैसे हिंदुस्तान में उन्नीस
सौ सैंतालीस के पहले हिंदू-मुसलमान लड़ते थे। तो हिंदू आपस में नहीं लड़ते थे। लड़ने का मजा मुसलमान से ही मिल गया तो अब आपस में क्या लड़ना? मुसलमान आपस में नहीं लड़ते थे। फिर हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटे। अब वह मजा तो गया तो हिंदू हिंदू से लड़ने लगे। मुसलमान मुसलमान से लड़ने लगे। तुमने देखा, बंगलादेश और पाकिस्तान आपस में लड़ गए। मुसलमान मुसलमान से लड़ गए। भयंकर हत्या हुई। और हिंदू छोटी-छोटी बात पर लड़ते हैं। यह जिला महाराष्ट में रहे कि कर्नाटक में, लड़ो, छुरे भोंक दो। हिंदी राष्टभाषा हो कि न हो, छुरे भोंक दो। छुरा भोंको, कोई भी बहाना लो! भाषा इत्यादि सब गौण बातें हैं। दक्षिण उत्तर का झगड़ा है, भाषा-भाषा का झगड़ा है।
जैसे-जैसे बड़े झगड़े मिटते जाते हैं, छोटे-छोटे झगड़े फैलते जाते हैं। लेकिन मात्रा आदमी को उपद्रव की उतनी ही रहती है। टोटल, सम टोटल, वह जो पूरा जोड़ है, वह उतना का उतना रहता है। बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाए, छोटे झगड़े एकदम बंद हो जाते हैं। तुमने देखा, चीन ने हमला किया, फिर गुजराती-मराठी का कोई झगड़ा नहीं। खतम! जब चीन से ही झगड़ा हो रहा है तो अपने ही आदमियों को आस-पास

क्या मारना! हिंदुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा हो जाए तो पाकिस्तान इकट्ठा हो जाता है। नहीं हो झगड़ा तो पाकिस्तान में भीतर झगड़े शुरू हो जाते हैं। आदमी आदमी से लड़ने को उत्सुक है। कहीं भी लड़ाई चलनी ही चाहिए। और इस सारी लड़ाई के पीछे एक बुनियादी कारण है कि हमने पुरुष को अहंकार सिखाया है। और उसकी आंखों से हमने आंसू छीन लिए हैं। आंसू विनम्र करते हैं। और आंसू पवित्र करते हैं। आंसू हलका करते हैं।
रोओ! रोने की कला सीखो! कभी-कभी अकारण रोओ। रोने के मजे के लिए ही रोओ। कभी शांत बैठ जाओ और आने दो आंसुओं को। तुम सोचोगे ऐसे कैसे आ जाएंगे, कोई कारण तो चाहिए, ऐसे कैसे आ जाएंगे? मैं तुमसे कहता हूँ तुम.जरा प्रतीक्षा तो करो किसी दिन बैठ कर! तुम चकित होओगे, आते हैं। क्योंकि कारण तो जिंदगी भर रहे हैं, तुम आंसू रोक कर बैठे हो। कारण तो कितने आए और चले गए, तुम नहीं रोए हो। और हर बार आंसू भरे थे और निकलना चाहते थे। उनके बाँध तुमने बांध दिए हैं। बांध को टूटने दो।
बैठो और रोओ। सौंदर्य को देखो परमात्मा के और रोओ। संगीत को सुनो परमात्मा के और रोओ। आह्लाद में रोओ। रोओ और नाचो। नृत्य तुम्हारे शरीर को पवित्र कर जाएगा। आंसू तुम्हारी आंखों को पवित्र कर जाएंगे। लेकिन लोग बड़े उल्टे करते रहते हैं।
जब हंसने-हंसाने के दिन थे हम आठ पहर रोते ही रहे
अब वक्त जो आया रोने का हम अश्क बहाना भूल गए
इस दौरे-तलातुम में "वामिक" कितने ही सफीने खे डाले
और अपनी शिकस्ता किश्ती को मौजों से बचाना भूल गए
लोग यहां दूसरों को बचाने में लगे रहते हैं और खुद डूब जाते हैं। न मालूम कितनों की नावें बचा लेते हैं और यह भूल ही जाते हैं कि अपनी किश्ती शिकस्ता होती जा रही है, टूटती जा रही है--डूबी, अब डूबी, तब डूबी। यहां लोग दूसरों को सलाह देते हैं और अपनी ही सलाह अपने काम में नहीं लाते।
जब हंसने-हंसाने के दिन थे हम आठ पहर रोते ही रहे
अब वक्त जो आया रोने का हम अश्क बहाना भूल गए
तुम पूछते होः "आंख को निर्मल करने का उपाय!"
तुम्हें खुद ही ख्याल आ जाना चाहिए था, उपाय तो आंख के साथ जुड़ा है-- आंसू। मगर शायद आंसू की प्रक्रिया भूल गई होगी। जिंदगी सख्त कर गई होगी, पथरीला कर गई होगी; हृदय को सुखा गई होगी, रसधार नहीं बहती होगी। उस रसधार को उमगाओ। फिर से बहने दो, आंसुओं को आने दो, आंखों को गीली होने दो। आंखें गीली होंगी तो हृदय भी गीला होगा। और गीला हृदय परमात्मा के निकट हो जाता है, सूखा हृदय दूर हो जाता है।
भक्त ऐसे ही नहीं रोए। समझ लिया था उन्होंने कि रोना भजन की गहरी से गहरी प्रक्रिया है। भाव जब भीग जाते हैं, शब्द क्या कहेंगे जो आंसू कह सकते हैं! और तुमने ख्याल किया है, जब भी भाव अतिरेक होता है तो आंसू जरूर आते हैं, फिर चाहे भाव दुख का हो, चाहे सुख का हो, आनंद का हो, कोई भी भाव हो। जब भी भाव अतिरेक में हो जाता है, जब उसकी बाढ़ आती है, तो आंसुओं से बहता है।
संगीत को सुनो और रोओ। सूर्यास्त को देखो और बहने दो आंसुओं को।
इस अपूर्व जगत को अनुभव करो। यह हमारे होने का विस्मय, यह हमारा होना कितना विस्मयपूर्ण है! हमारे होने की कोई आवश्यकता नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है, हमारे बिना दुनिया बड़े मजे में होती, कोई अड़चन न आती। यह हमारा होना इतना बड़ा चमत्कार है! इस चमत्कार को नहीं देखते और क्षुद्र चमत्कारों की तलाश में रहते हो--मदारियों की तलाश में रहते हो! किसी ने हाथ से राख निकाल दी, अहहऽ। कितना बड़ा चमत्कार हुआ है कि तुम हो, चैतन्य है, प्रेम है, जीवन है! जो नहीं होना चाहिए था, कोई कारण नहीं जिसके होने का, है। तुमने कमाया नहीं है, अर्जित नहीं किया है, यह तुम्हारा हक नहीं है, यह तुम्हें भेंट मिली है, यह प्रसाद है, अनुग्रह है। इस अनुग्रह में रोओ। जवानी के नग्मे हवाओं ने गाए--मगर तुम न आए
महकने लगे मेरी जुल्फों के साए--मगर तुम न आए
सुनूं अपनी सांसों में आहट तुम्हारी

कहां जा छुपी मुस्कुराहट तुम्हारी
खड़ी हूं मैं पलकों की चिलमन उठाए--मगर तुम न आए इक टीस दिल की सदा बन गई है
नजर हारकर इल्तजा बन गई है
उम्मीदों के लाखों दिए झिलमिलाए--मगर तुम न आए

कभी ले लिया शामे-गम का सहारा
कभी रो दिए नाम लेकर तुम्हारा
कभी हमने राहों में सज्दे बिछाए--मगर तुम न आए
रोओ, रोना सज्दा है।
कभी रो दिए नाम लेकर तुम्हारा
कभी हमने राहों में सज्दे बिछाए--मगर तुम न आए
रोओ, विरह में रोओ, परमात्मा नहीं मिला है अब तक इसलिए रोओ। और फिर जब मिल जाए तो इसलिए रोना कि परमात्मा मिल गया है। रोना दोनों समय काम आता है। जब नहीं मिला तब भी, और जब मिल जाता है तब भी।
डरो मत; भयभीत न होओ। क्योंकि मनुष्य जी रहा है बुद्धि से और बुद्धि
के आंकड़ों की पकड़ में आंसू नहीं आते। आंसू दूसरे ही जगत से आते हैं, उनका बुद्धि से कुछ संबंध नहीं है। आंसू हृदय से आते हैं। इसलिए तुम रोओगे तो दूसरे समझेंगे दुख में हो, पीड़ा में हो। समझाएंगे, सांत्वना देंगे। उनसे कहना कि तुम दुख के कारण नहीं रो रहे हो। क्योंकि परमात्मा का विरह भी बड़ा आनंदपूर्ण है। धन्यभागी हैं वे जो उसके विरह में जलते हैं। क्योंकि उन्हीं का मिलन भी होगा। उसकी याद में बिताई गई घड़ियां कीमती घड़ियां हैं। उसके इंतजार में बिताए पल बहुमूल्य हैं।
कट तो गई है हिज्र की रात
कैसे कटी यह और है बात

यूं आए वे रात ढले
जैसे जल में ज्योत जले
आंख जिन्हें टपका न सकी
सहरों में वे अश्क ढले
विरह की रात भी कट जाती है। कैसे कटी, कहना मुश्किल है। शब्दों में नहीं कहा जा सकता। सिर्फ आंसुओं में ही गीत उतरते हैं। और विरह में जो रोया है, जितना रोया है, उतने ही मिलन को करीब बुला लिया है। तुम अगर समग्रभाव से रो सको तो इसी क्षण भी मिलन हो सकता है। परमात्मा दूर नहीं है। सामने ही खड़ा है। मगर आंखें धूल से भरी हैं।
अगर रो सको, तो उससे सुंदर फिर कुछ और नहीं है। वही तुम्हारी उपासना। अगर न रो सको, तो फिर कुछ और उपाय खोजने पड़ेंगे। रोना प्रेम की विधि है। भक्ति की विधि है। अगर रोना न बन सके, तो फिर ध्यान करना होगा। ध्यान भक्तिशून्य विधि है। प्रेम-रिक्त विधि है। उसका नंबर दो है स्थान। प्रेम से जो वंचित ही हो गए हैं, इस तरह वंचित हो गए हैं अब उन्हें कुछ उपाय नहीं सूझता, उनके लिए ध्यान विधि है।
लेकिन अभी जिनका हृदय प्रेम से भरा है, उन्हें ध्यान की चिंता छोड़ देनी चाहिए। मग्न होओ। कोई अवसर न चूको मग्न होने का। और हजार अवसर आते हैं रोज, अवसर आते ही रहते हैं, तुम्हें पहचान आ जानी चाहिए। फूल खिला बगिया में, नाचो गाओ, रोओ। पत्थरों में फूल खिल रहे हैं, चमत्कार हो रहा है! ओस की बूंद सरकने लगी घास की पत्ती पर, और पूरा सूरज उसमें चमक आया, किरणें- किरणें फूट गईं, इंद्रधनुष रच गया उसके आसपास, नाचो, गाओ, रोओ। तलाशोगे तो हर घड़ी कुछ न कुछ पा लोगे। प्रकृति परमात्मा से भरी है, लबालब भरी है। सागर के गर्जन को सुनो। उसके गर्जन के साथ आत्मसात हो जाओ। जल्दी ही बादल आते होंगे, बिजलियां चमकेंगी, आकाश बादलों से भरेगा, तुम भी उन बादलों के साथ आकाश में तैरो, तिरो। जरा संबंध जोड़ने लगो अपना परमात्मा के रहस्यमय लोक से। यही उसका मंदिर है।

और यहां बहुत बार हंसी भी आएगी, रोना भी आएगा। और ऐसी घड़ियां भी आएंगी
जब आंसू भी बहेंगे और हंसी भी साथ होगी। खिलखिलाहट भी फूटेगी और आंख से आंसू भी झरते होंगे। और जब हंसी और रोना साथ-साथ घटते हैं तो बड़ी रहस्यपूर्ण प्रतीति होती है। बड़ी भाव की दशा आ जाती है।

अंतिम प्रश्नः ध्यान का विश्वव्यापी प्रचार व प्रसार अत्यंत जरूरी
हो गया है। क्या संन्यास का प्रचार भी उतना आवश्यक है?

चिन्मय! ध्यान का प्रचार और प्रसार नहीं करना होता। प्रचार और प्रसार
से ही तो सारी बातें झूठी हो गई हैं। लोग तोते हो गए हैं। ध्यान का तो सिर्फ आचार करना होता है। प्रचार और प्रसार तो आचार के पीछे छाया की तरह चलते हैं।
मैं तुमसे यह नहीं कहता हूं कि तुम जाओ और ध्यान का प्रचार करो, मैं तुमसे कहता हूं--जाओ और कोध्यान जीओ। जोर जीने पर है। उस जीने में जो तुम्हें मिलेगा, जो गंध तुमसे उठेगी, वही अगर प्रचार बन जाए तो बन जाए, लेकिन चेष्टा से कोई प्रचार नहीं करना है। नहीं तो अक्सर यह हो जाता है कि लोग भूल ही जाते हैं कि ध्यान करना है, ध्यान का प्रचार करने में मजा लेने लगते हैं। असल में प्रचार करना इतना सस्ता और सरल है, ध्यान करना कठिन मालूम होता है। यह भूल ही जाते हैं कि अपना ध्यान हुआ या नहीं हुआ। दूसरे को ज्ञान देने का मजा ऐसा है। क्योंकि ज्ञान देने में तुम्हारे अहंकार की बड़ी तृप्ति होती है कि देखो, मैं ज्ञानी और तुम अज्ञानी। जब भी तुम किसी को ज्ञान देते हो, तुम ज्ञानी और वह अज्ञानी।
तो लोग ध्यान के प्रचार में लग जाते हैं, ध्यान के व्यवहार में नहीं।
यह खतरा बहुत बार हो गया है। कितने ईसाई मिसनरी हैं दुनिया में! दस लाख ईसाई पादरी हैं सारी दुनिया में। ये भूल ही गए कि इनको क्राइस्ट होना है। ये क्राइस्ट के प्रचार में ही लगे हैं। ये भूल ही गए कि क्राइस्ट को भीतर बुलाना है। फुरसत कहां? समय कहां? प्रचार से बचें तब! फिर प्रचार के बड़े- बड़े आयोजन किए जाते हैं। फिर प्रचार का शास्त्र निर्मित करना होता है। मुझे एक बार निमंत्रण मिला एक ईसाई कालेज में, जहां वे पादरियों को निष्णात करते हैं। जहां वे पादरी-पुरोहित तैयार करते हैं। उन्होंने मुझे घुमा कर दिखाया, मैं देख कर दंग हुआ। वहां वे हर चीज सिखाते हैं, छोटी-छोटी चीज सिखाते हैं। पाश्चात्य ढंग तो हर चीज के विस्तार में जाता है। हर चीज को कुशल बनाता है। तो मैंने एक कमरे में देखा कि पादरियों को सिखाया जा रहा है कि जब वे बाइबिल के इस वचन को पढ़ें, तो किस शब्द पर ज्यादा जोर देना, किस पर कम जोर देना; किस शब्द को जोर से बोलना, किसको धीरे बोलना; हाथ कब उठेगा, मुद्रा कैसी प्रगट करनी। ये भी सिखाया जा रहा है! अगर जीसस के वचन को बोलते समय तुम्हारे चेहरे पर प्रकाश नहीं आता, तो ही सिखाना पड़ेगा यह कि जब जीसस का यह वचन बोलो तो दिखावा करना है।
मैंने सुना है, ऐसी ही किसी कक्षा में शिक्षक समझा रहा था होने वाले पादरियों को कि जब तुम यह वचन जीसस के पढ़ो, तो आह्लादित हो जाना। चेहरे पर मुस्कान फैल जाए, आंखें चमक उठें। जब तुम यह स्वर्ग का वर्णन करो जो ईश्वर के राज्य का वर्णन है... जीसस ने जगह-जगह स्वर्ग के राज्य का वर्णन किया है... जब तुम यह वर्णन करो, तुम एकदम अलौकिक अवस्था में पहुँच जाना। भावदशा में आ जाना, आंखें ऊपर चढ़ जाएं। और जब नरक का वर्णन करें, एक पादरी ने खड़े होकर पूछा, तब? तब तुम्हारा साधारण चेहरा जैसा है वैसा ही काम दे देगा। कुछ करने की जरूरत नहीं, यही चेहरा ठीक है।
प्रचार जब प्रमुख हो जाए, तो फिर ये बातें महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं।
फिर लोगों को कैसे ईसाई बनाया जाए, कैसे आर्यसमाजी बनाया जाए, कैसे यह बनाया जाए, कैसे वह बनाया जाए, लोग इसी चिंता में आतुर हो जाते हैं।
नहीं, तुम ख्याल रखना।
मिसनरी मेरे लिए गंदा शब्द है। यहां कोई मिसनरी न बन जाए। बचना! जीओ, ध्यान को जीओ। ध्यान संक्रामक है। अगर तुम ध्यान को जीओगे तो तुम अचानक पाओगे कि लोग तुमसे पूछने लगे तुम्हें क्या हो गया है! अगर तुम ध्यान को

जीओगे, तुम पाओगे कि लोगों के पास से गुजरते वक्त लोग एक क्षण गौर से तुम्हें देखते हैं--तुम्हें क्या हो गया है? तुम कुछ भिन्न मालूम होते हो। तुम्हारे आस-पास की तरंग भिन्न मालूम होती है। तुम किसी और लय में आबद्ध मालूम होते हो। अगर लोग पूछें, तो निवेदन कर देना--प्रचार नहीं। क्योंकि प्रचार में तो यह आकांक्षा होती है कि दूसरे को जल्दी अपना अनुयाई बना लो। किसी भी तरह समझा-बुझाकर लोभ-भय देकर, उसे अनुयायी बना लो। नहीं, यह कोई चेष्टा ही मत करना। किसी को अनुयायी बनाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारा आनंद अगर उसे छू ले और वह आतुर हो जाए, तो अपने आनंद की विधि उसे समझा देना। प्रचार नहीं है यह, सिर्फ अपने आनंद में उसे साझीदार बना लेना। कोई भी चेष्टा जानी-अनजानी ऐसी न हो तुम्हारे भीतर कि यह मेरी विचारधारा का हो जाए। क्योंकि ध्यान कोई विचारधारा नहीं है। ध्यान तो समस्त विचारों से मुक्ति है।
तुमने पूछा हैः "ध्यान का विश्वव्यापी प्रचार व प्रसार अत्यंत जरूरी
हो गया है।"
क्यों? तुम सोचते हो पहले आदमी को जरूरत नहीं थी, आज ही जरूरत हो गई है? ध्यान की जरूरत तो सदा से थी। ध्यान की जरूरत सदा है। जैसे स्वास्थ्य की जरूरत सदा से थी। ध्यान है क्या? आध्यात्मिक स्वास्थ्य, आंतरिक स्वास्थ्य। सदा से जरूरत है।
हर समाज, हर समय अपनी सदी को समझता है--बड़ी महत्वपूर्ण, बड़ी महत्वपूर्ण, ऐसी कोई सदी नहीं थी! संकट के दिन आ गए! बड़ी क्रांति हो रही है! मगर तुमको पता है, सदा से यही भाव रहा है लोगों को। जरा किताबें पुरानी उठा कर देखो! हर सदी में लोग यही सोचते हैं कि ऐसी सदी कभी नहीं आई थी। बड़ा संकट, बड़ी क्रांति!
मैंने तो सुना है कि जब अदम को और हव्वा को बहिश्त से निकाला गया तो जो पहले शब्द अदम ने बोले थे वे ये कहे थे उसने कि हम एक बहुत संकटकालीन क्रांतिपूर्ण समय से गुजर रहे हैं। पहले शब्द! पहले मनुष्य ने! और तब से आदमी यह बोलता ही रहा है। हर समय से यही बोलता रहा है। हर समय, हर काल में यही बोलता रहा है कि बस! आने वाली पीढ़ियां भी यही कहेंगी जो तुम कह रहे हो। आदमी की जरूरत सदा एक है। भिन्न कैसे हो सकती है? पौधों को पहले जल चाहिए था, अब भी चाहिए। आदमी को पहले भी स्वास्थ्य चाहिए था, अब भी चाहिए। कल भी चाहिए होगा। कुछ बदल नहीं गया है। आदमी की बुनियादी जरूरतें वही की वही हैं और वहीं की वहीं रहेंगी।
यह भी हमारा अहंकार है कि हम अपने समय को खूब बढ़ा-चढ़ा कर, अतिशयोक्ति करके बताते हैं। और हम भूल ही जाते हैं कि ये अतिशयोक्तियां सदा की गई हैं। जब हम करते हैं तो हमें याद नहीं रहती। जब दूसरे करते हैं तो हमें याद रहती है। तब हमें लगने लगता है कि ये बढ़ी-चढ़ी बात कर रहे हैं। लेकिन सभी अपने अहंकार की तृप्ति के लिए हर बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं।
एक मां अपने बेटे को कह रही थी, क्योंकि उसके बेटे ने आकर उससे कहा कि मां, मां, देख, खिड़की के बाहर एक सिंह चल रहा है। उसकी मां ने कहाः फिर अतिशयोक्ति! मुझे दिखाई पड़ रहा है कि बिल्ली जा रही है; और मैं तुझसे करोड़ बार कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत कर, मगर तू किए ही चला जाता है। करोड़ बार! अब वह इन्हीं माता जी की शिक्षा का परिणाम हैं। सुपुत्र सिर्फ उन्हीं के पीछे चल रहे हैं। डांटा मां ने बहुत और कहाः जा, ऊपर जा और भगवान से प्रार्थना कर और माफी मांग कि अब कभी अतिशयोक्ति नहीं करूंगा। वह बेटा ऊपर गया, थोड़ी देर बाद वापस आया। मां ने कहाः मांगी क्षमा? उसने कहाः मैंने मांगी, लेकिन भगवान ने कहा कि पहले-पहल जब मैंने भी बिल्ली को देखा तो मैंने भी समझा कि सिंह आ रहा है।
आदमी अपनी अतिशयोक्तियां परमात्मा तक फैला देता है। आदमी अपने झूठ परमात्मा तक फैला देता है।
तुम इसकी चिंता में न पड़ो। ध्यान सदा से जरूरी है। सदा जरूरी रहेगा, क्योंकि आदमी सदा चिंतित रहा है। अब भी चिंतित है। कुछ ऐसा नहीं है कि अब का आदमी कुछ ज्यादा चिंतित हो गया है। ये सब भ्रांतियां हैं। इतनी ही चिंता थी। चिंता के कारण बदल गए हैं। आज से हजार साल पहले निश्चित ही कोई

आदमी रात में ये नहीं सोचता था चिंतित होकर कि एक फिएट गाड़ी खरीदनी है। कैसे चिंता करता, फिएट गाड़ी होती ही नहीं थी। तो हमको लगता है कि आदमी निश्चिंत सोता होगा, क्योंकि फिएट गाड़ी की चिंता नहीं। मगर छकड़ा गाड़ी! क्या फर्क पड़ता है? छकड़ा गाड़ी होनी चाहिए एक। एक घोड़ा होना चाहिए मेरे पास शानदार! तुम सोच रहे हो कि एक इम्पाला गाड़ी हो, वह आदमी सोचता था कि एक घोड़ा हो। रात उतनी ही चिंता घोड़े से हो जाती थी, जितनी इम्पाला गाड़ी से होती है। कोई फर्क नहीं पड़ता।
तुम सोचते हो गरीब अमीर की चिंता में कुछ फर्क होते हैं? कोई फर्क नहीं होते। चिंता वही होती है, चिंता के आधार अलग-अलग होते हैं। चिंता के कारण अलग-अलग होते हैं, चिंता वही होती है।
सब सदियों में आदमी चिंतित रहा है। क्योंकि जब तक ध्यान न फल जाए तब
तक चिंता चलती ही रहती है। ध्यान फले तो चिंता जाती है। फिर घोड़े गए, छकड़ा गाड़ी गई, सब गया। ध्यान आया तो सारी चिंताएं गईं। अमीर ध्यान करे तो चिंताएं चली जाती हैं, गरीब ध्यान करे तो चिंताएं चली जाती हैं। ध्यान चिंतामुक्ति है। क्योंकि विचार-मुक्ति है। क्योंकि मन-मुक्ति है।
ध्यान का विश्वव्यापी प्रचार व प्रसार अत्यंत जरूरी हो गया है। चिन्मय, तुम खतरनाक बात पूछ रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि करना पड़ेगा! अत्यंत जरूरी हो गया है! लोगों को बदल कर रखना पड़ेगा! यही चलता रहा है इस दुनिया में। जब इस्लाम आया तो मुसलमानों ने कहा कि दुनिया को मुसलमान बना कर रखना पड़ेगा, इससे कम में काम नहीं चलेगा। ख्याल रखना, उनकी भी बड़ी अच्छी आकांक्षा। क्योंकि इस्लाम के बिना उद्धार कहां? अज्ञानी भटक रहे हैं--कोई हिंदू है, कोई ईसाई है, कोई यहूदी है, इन अज्ञानियों को सबको रास्ते पर लाना है। जरा उनकी करुणा तो देखो! फिर अगर ये रास्ते पर अज्ञानी अपने आप नहीं आते तो भी लाना तो है ही। तो फिर तलवार से भी लाना पड़े तो लाना है। उनकी दया तो देखो! तलवार तक उठाई अज्ञानियों को ज्ञान के रास्ते पर लाने के लिए! अगर जिंदा न आओ तो मुर्दा, मगर लाना तो है।.जरा उनकी अनुकंपा का तो ख्याल करो! लाकर ही रहना है! अच्छी-अच्छी बातों के पीछे बड़े खतरनाक इरादे छिप जाते हैं।
इस्लाम अच्छा, सुंदर भाव है। मगर तलवार उठा ली। इस्लाम का अर्थ होता हैः शांति। शब्द का अर्थ होता हैः शांति। और तलवार उठाई शांति में से। आदमी ऐसा अदभुत है। ध्यान में से तलवार उठा सकता है, जब शांति में से उठा ली। करवा के ही रहना है ध्यान! जिंदा करो तो जिंदा, मुर्दा करो तो मुर्दा, लेकिन ध्यान तो करवा के ही रहेंगे! जिंदा कि मुर्दा, लेकिन बदलाहट तो करवानी है।
ईसाई भी इस चिंता में लगे हैं कि सारी दुनिया को ईसाई बना देना है। क्योंकि जो ईसाई नहीं होगा वह नरक जाएगा। उनका प्रेम तो देखो! .जरा उनका प्रेम परखो! क्योंकि जो ईसाई नहीं, वह नरक जाएगा। स्वर्ग भेजने का एक ही उपाय है--ईसाई! एक ही दरवाजा है। तो जबरदस्ती भी लेकिन भेजना तो पड़ेगा ही! तुम कितने ही चिल्लाओ कि मुझे नहीं जाना है स्वर्ग, वे कहते हैं--हम भेजेंगे। अनिवार्य हो गया है, सभी को जाना पड़ेगा। और जब स्वर्ग भी अनिवार्य हो जाता तो नरक हो जाता है। अनिवार्यता में नरक है। स्वतंत्रता में स्वर्ग है।
इस भाषा में मत सोचो कि अत्यंत जरूरी हो गया है, क्योंकि इससे खतरा पैदा होता है। इससे भीतर तुम्हारे ये भाव उठता है कि जब अत्यंत जरूरी हो गया, अब सब दांव पर लगा दो। अब आदमी को ध्यान करवा के रहेंगे।
मैं एक संस्कृत विद्यालय में कुछ दिन अध्यापक था। जब पहले-पहल वहां गया, संस्कृत विद्यालय था, पुराने ढर्रे का सब हिसाब था वहां और संस्कृत पढ़ने कोई जाता तो है नहीं आजकल, तो सभी विद्यार्थी स्कॉलरशिप पर थे। स्कॉलरशिप की वजह ही से संस्कृत पढ़ने आए थे, नहीं तो कौन संस्कृत पढ़ता है! किसलिए पढ़ेगा? इसी बहाने आ गए थे कि सौ रुपए महीने स्कॉलरशिप मिलती थी तो भर्ती हो गए थे। और जब स्कॉलरशिप मिलती हो तो फिर उनसे जो करवाना हो सो करवाओ; नहीं तो स्कॉलरशिप कट जाए। तो उनको तीन बजे रात उठना पड़ता था। पुरानी व्यवस्था--गुरुकुल की! स्नान करो, प्रार्थना करो, पूजा करो। तीन

बजे रात, सर्दी के दिन! जब मैं पहुंचा... खुद प्रिंसिपल सोए रहते। क्योंकि वह कोई स्कॉलरशिप वाले विद्यार्थी तो थे नहीं! प्रोफेसर सब सोए रहते। मैं सिर्फ यह देखने के लिए उठा कि इन विद्यार्थियों पर क्या गुजर रही है? वे सब मां-बहन की गाली दे रहे--प्रिंसिपल से लेकर परमात्मा तक को। क्योंकि जब प्रार्थना अनिवार्य हो जाए और तीन बजे उठकर स्नान करना पड़े, तो कोई आसान मामला है! और मैं नया-नया था, मुझे वे पहचानते नहीं थे, एक दिन पहले आया था, तो मैं सब कुएं पर बैठकर वे जहां स्नान कर रहे थे--संस्कृत कालेज, तो वहां कुएं पर स्नान करना पड़े--पानी डालते जा रहे और गाली देते जा रहे। मैंने सब सुना, मैं बहुत प्रसन्न हुआ। बिल्कुल ठीक हो रहा है!
मैंने प्रिंसिपल को कहा कि आप इन विद्यार्थियों को परमात्मा का दुश्मन बना रहे हैं। ये एक दफे इस कालेज से छूटे, तो फिर भूलकर परमात्मा का नाम नहीं लेंगे। ये गालियां बकते हैं परमात्मा को। ये जबरदस्ती है। पर उन्होंने कहा कि प्रार्थना तो सिखानी ही पड़ेगी। प्रार्थना तो अच्छी चीज है। मैंने कहाः आप कहां थे तीन बजे? कहने लगे--अब मैं जरा, उम्र भी मेरी हुई, और फिर काम में भी देर लग जाती है रात में, मैं तीन बजे उठूं तो जरा मुश्किल है। मैंने कहाः और कोई प्रोफेसर वहां नहीं था। प्रार्थना इन्हीं बिचारे गरीब विद्यार्थियों के लिए--सब गरीब विद्यार्थी, स्कॉलरशिप पर आए-- इन्हीं के लिए जरूरी है? नहीं, उन्होंने कहा कि आप ऐसा कह रहे हैं, अधिक लोग तो स्वेच्छा ही से करते हैं। तो मैंने कहाः आप ऐसा करें, आज नोटिस-बोर्ड पर लिख देता हूँ कि कल सुबह जिनको स्वेच्छा से करना हो वे आएं और जिनको स्वेच्छा से न करना हो वे न आएं।
मैंने लिख दिया बोर्ड पर। एक भी विद्यार्थी नहीं आया। मैं और प्रिंसिपल, दोनों! मैंने कहाः कहिए, जनाब! कहां गए विद्यार्थी?
चीजें थोपी गई हैं संसार पर। और जिन्होंने थोपी हैं, जरूरी नहीं है कि उन्होंने बुरे कारणों से थोपी हों, कारण अच्छे भी हो सकते हैं, मगर थोपना ही बुरा है।
तो न तो कोई प्रसार करना है, न कोई प्रचार कराना है, सिर्फ जीना है ध्यान को। उस जीने से किसी को सुगंध मिले, कोई चल पड़े तुम्हारे साथ चल पड़े। मगर यह गौण हो, यह परोक्ष हो।
और पूछा हैः "क्या संन्यास का प्रचार भी उतना ही आवश्यक है?"
आवश्यक किसी चीज का प्रचार नहीं है। प्रचार अच्छी बात ही नहीं है।
संन्यास का कैसे प्रचार करोगे? यही तो हुआ, अभी पहला जो मैंने प्रश्न का उत्तर दिया, जो सज्जन कहे कि मैं साधु हो गया था। प्रचार में हो गए होंगे। प्रचार में आदमी कुछ का कुछ हो जाता है। आदमी प्रचार से जीता है। रोज-रोज दोहराते रहो कोई बात, लोगों को लगने लगती है अब करना जरूर है।
तुम रोज अखबार में पढ़ते हो कि नया टूथपेस्ट आ गया बाजार में। पढ़ते रहते, पढ़ते रहते... पहली दफे पढ़ते, तुमको कुछ खास ध्यान नहीं आता, निकल गए, पढ़ लिया। फिर दूसरी दफे, फिर तीसरी दफे। जब दो महीने के बाद तुम पहुंचते हो दुकान पर, टूथपेस्ट खरीदने, तुम्हें अचानक वही नाम याद आता है जो दो महीने से बार-बार तुम पर दोहराया जा रहा है। रेडियो से भी--बिनाका! अखबार में भी-- बिनाका! बाजार में भी--बिनाका! सुंदरियां खड़ी हैं जिनके चेहरों से बिनाका की सुगंध आ रही है! बिनाका गीतमालाएं चल रही हैं? हर तरफ बिनाका! तुम्हारी खोपड़ी में बिनाका भर गया। अब तुम कुछ भी लाख उपाय करो, बस बिनाका ही निकलता है। दुकान पर गए कि बिनाका! तुम सोचते हो कि मैं अपनी स्वेच्छा से चुन रहा हूं। तुम नहीं चुन रहे हो। यह जबरदस्ती हो गई, यह बड़ी सूक्ष्म जबरदस्ती है।
ऐसे ही लोग साधु भी हो जाते हैं, संन्यासी भी हो जाते हैं; ध्यानी भी
हो जाते हैं, पूजा-पाठी भी हो जाते हैं, मगर यह सब झूठ है।
प्रचार से नहीं! तुम्हारे जीवन की ज्योति जले। जो संन्यास तुम्हारे जीवन में आया है, इसकी मस्ती किसी को अगर मोह ले, तो ठीक। बस इसकी मस्ती किसी को मोह ले तो ठीक।
कोई आयोजन नहीं करना है! बहुत आयोजन हो चुके मनुष्यजाति के इतिहास में आदमी को अच्छा बनाने के, सब असफल हो गए हैं। अब कोई आयोजन अच्छा बनाने

का मत करना। आदमी अच्छा है जैसा है। तुम अगर और इससे बेहतर हो सकते हो तो हो जाओ। बस तुम्हारे बेहतर हो जाने ही से कोई क्रांति की प्रक्रिया शुरू होती है,शृंखला शुरू होती है। एक दीये से दूसरा दीया जल जाता है, दूसरे से तीसरा दीया जल जाता है। और हम आशा कर सकते हैं कि अगर असली दीये जलते रहेंगे तो कभी यह पूरी पृथ्वी दीपमालिका बन सकती है। मगर जोर-जबरदस्ती नहीं।
और प्रचार जोर-जबरदस्ती है। वह बड़ी सूक्ष्म प्रक्रिया है लोगों के ऊपर थोपने की। नहीं, थोपना नहीं--न ध्यान, न संन्यास। आविर्भाव होने दो।
अपने आप आने दो।
सहजस्फूर्त जो है, वही सुंदर है, वही सत्य है, वही शिव है।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
पंद्रहवां प्रवचन

बिरहिण बिहरे रैनदिन

सिला संवारी राजनै, ताहि नवै सब कोइ।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै सोइ पूजि किन होइ।।
गुरु ज्ञाता परजापती, सेवक माटी रूप।
रज्जब रज सूं फेरकै, घरिले कुंभ अनूप।।
ज्यूं धोबी की धमस सहि, ऊजल होइ कुचीर।
त्यूं सिष तालिब निरमला, मार सहे गुरु पीर।।
बिरहिण बिहरे रैनदिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार।।
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालै देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहु मोहन मेह।।
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
रज्जब तलफै तबलगै, मिलै न मारनहार।।
जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार।
त्यूं रज्जब भूला सकल, सुनि सनेह दिलदार।।
तन मन ओले ज्यूं गलहिं, बिरह-सूर की ताप।
रज्जब निपजै देखि तूं, यूं आपा गलि आप।।
रज्जब ज्वाला बिरह की, कबहूं प्रगटै माहिं।
तौ सींचनि घृत सों चहौं, करम-काठ जरि जाहिं।।
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
रज्जब बिरह बिबोग बिन, कहां मिलै सो पीव।।

समाअत जब खनकती है तरबखानों की राहों में
तो मंजिल के तसव्वुर से कदम ललचा ही जाते हैं अगर जेबे-ओ-गिरेबां की हम-अहंगी सलामत हो
तो नग्मों की मुरव्वत के मुकामात आ ही जाते हैं

सुनहरी अंगुलियां रुकती हैं साजों की शहरग पर तो नग्मों की चहकती सांस रुक जाती है सीने में दरोगे-मस्लहत आमेज भी एक चीज है लेकिन
छलक जाता है जहराबे-अलम हर आबगीने में

तसव्वुर उम्र की उस हद पै जाके हांप जाता है जहां अहले-हवस बेदाद-पर-बेदाद करते हैं ब-मजबूरी थिरकती है जबानी बर-सरे-महफिल
बदन के मुस्कुराते जाविए फरियाद करते हैं

नजर की नग्मगी, जुल्फों के बल, होठों की शीरीनी यहां हर चीज झूठे प्यार पर मजबूर होती है यहां किरदार के उजले सनम ढाले नहीं जाते
यहां हर जिंदगी गुफ्तार पर मजबूर होती है झरोखों से महकते हैं यहां हंसते हुए फाके
यहां चुकता है सौदा जिंदगी की इल्तिजाओं का
यहां दिन को बदन तुलते हैं मीजाने-हुकूमत में
यहां रातों को जमता है अखाड़ा रहनुमाओं का
खरीदारो! यहां हर रात जश्ने-आम होता है
यह वह मंडी है जिसमें प्यार का नीलाम होता है
संसार है प्रेम की भूल, प्रेम की भ्रांति। प्रेम तो ठीक है, लेकिन गलत
से हो गया है। प्रेम तो सुंदर है, लेकिन व्यर्थ से हो गया है। प्रेम तो शाश्वत है, लेकिन क्षणभंगुर से हो गया है। और जब प्रेम झूठा हो जाए, तो सब

झूठ हो जाता है। क्योंकि प्रेम हमारा प्राण है। प्रेम की ही ऊर्जा से निर्मित है सारा अस्तित्व।
नजर की नग्मगी, जुल्फों के बल, ओंठों की शीरीनी
यहां हर चीज झूठे प्यार पर मजबूर होती है
यहां किरदार के उजले सनम ढाले नहीं जाते
यहां हर जिंदगी गुफ्तार पर मजबूर होती है
मनुष्य जब भी प्रेम करता है, जिससे भी प्रेम करता है, तो वस्तुतः परमात्मा की तलाश में ही करता है। तुम जब किसी स्त्री के सौंदर्य से मोहित हुए हो, तो अनजाने ही सही, उस स्त्री के चेहरे के दर्पण में तुम्हें परमात्मा की कुछ छवि दिखाई पड़ी है। तुम्हें होश हो कि न हो। तुम जब किसी पुरुष के प्रेम में पड़े हो, तो तुम्हें कुछ भनक सुनाई पड़ी है। दूर की आवाज सही, साफ-साफ पकड़ में भी न आती हो, मुट्ठी भी न बँधती हो, लेकिन जब भी तुमने किसीको चाहा है तो मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुमने परमात्मा को ही चाहा है। लेकिन तुम अपनी चाहत के रंग को समझ नहीं पाए, चाहत के ढंग को समझ नहीं पाए। चाहा कुछ, उलझ गए कहीं और।
जैसे खिड़की से किसी ने सूरज को ऊगते देखा और खिड़की के चौखटे को पकड़ कर बैठ गया, और खिड़की की पूजा करने लगा। खिड़की में कुछ बुरा भी नहीं है, सूरज को दिखाया है खिड़की ने, तो धन्यवाद दो; मगर खिड़की की पूजा करने बैठ गए! फिर सूरज का क्या होगा? खिड़की लक्ष्य बन जाती है, माध्यम होती तो ठीक थी।
ऐसे ही हमने किसी मनुष्य के चेहरे में परमात्मा की झलक पाई, किन्हीं आंखों में उसकी शराब उतरती देखी, किसी युवा देह में उसकी बिजली चमकी, उसकी बिजली कौंधी, हम देह को पकड़ कर बैठ गए, हम आंख की पूजा करने लगे, हम रूप के पुजारी हो गए और हम यह भूल ही गए कि सब रूप में अरूप झलकता है, सब आकार में निराकार, सब गुणों में निर्गुण। इतनी भर याद आ जाए, तो जीवन में वह पड़ाव आ जाता है जहां से नई यात्रा शुरू होती है। वह मोड़ आ जाता है, जीवन धर्म का पहनावा पहन लेता है, जीवन धर्म का गीत गाने लगता है।
संसार है तो परमात्मा का ही प्रेम, लेकिन माध्यम से हो गया है। और माध्यम को हम इतने जोर से पकड़ लेते हैं कि माध्यम जिसे दिखाने के लिए है, वह चूक ही जाता है। ऐसा समझो कि किसीसे तुम्हें प्रेम हो जाए और तुम उसके वस्त्रों को ही सब कुछ समझ लो और उसकी देह की तलाश ही न करो, तो तुम्हें लोग पागल कहेंगे। संसार पागल है। तुम्हें किसीसे प्रेम हो जाए और तुम उसकी देह पकड़ लो और उसकी आत्मा की तलाश ही न करो, यह भी पहली ही जैसी भ्रांति है। क्योंकि देह वस्त्र से ज्यादा नहीं है। तुम्हें किसीसे प्रेम हो जाए और तुम उसकी आत्मा को ही पकड़ लो और परमात्मा तक तुम्हारे प्राण न उठें, फिर भी भूल हो गई। खोदे चलो। खोजे चलो। हर जगह से तुम परमात्मा तक पहुंच सकते हो। क्योंकि हर जगह वही छिपा है। आवरण कितने ही हों, आवरण उघाड़े जा सकते हैं। न तो आवरणों को पकड़ना और न आवरणों से भयभीत होकर भाग जाना।
दुनिया में दो तरह के काम होते रहे हैं। कुछ लोग आवरण पकड़ लेते हैं-- किन्हीं ने खिड़की की पूजा शुरू कर दी है। और इनकी मूढ़ता को देखकर कुछ लोग खिड़की को छोड़कर भाग गए हैं। ऐसे भागे हैं कि खिड़की के पास नहीं आते। दोनों ने भूल कर दी है। क्योंकि सूरज खिड़की से ही देखा जा सकता है। न तो पूजनेवाला देख पाएगा और न भगोड़ा देख पाएगा।
संसार परमात्मा की खिड़की है। भोगी भी नहीं देख पाता और जिसको तुम योगी कहते हो, वह भी चूक जाता है। भोगी ने जोर से पकड़ लिया है संसार, योगी इतना घबड़ा गया है भोगी की पकड़ देख कर कि उसने पीठ कर ली और भागा जंगल की तरफ। लेकिन संसार उसका ही है। वही यहां तरंगित है। यह गीत उसका है। इस बांसुरी पर उसीके स्वर उठ रहे हैं। बांसुरी को न तो पकड़ो, न बांसुरी से डरो, बांसुरी से आते हुए अज्ञात स्वरों को पहचानो। फिर बांसुरी का भी सम्मान होगा। सच्चे धार्मिक व्यक्ति के मन में संसार का अनादर नहीं होता, सम्मान होता है। क्योंकि यही तो परमात्मा से जोड़ने का उपाय है, यही तो सेतु है। सच्चा व्यक्ति संसार का भी अनुगृहीत होता है, क्योंकि इसीने परमात्मा तक लाया। सच्चा व्यक्ति अपनी देह का अनुगृहीत होता है, क्योंकि यह देह वाहन है। सच्चा व्यक्ति किसी चीज के विरोध में ही नहीं होता। सब

चीजों का उपयोग कर लेता है। समझदार वही है जो जहर का अमृत की तरह उपयोग कर ले। वही कुशल है, वही बुद्धिमान है।
जहर औषधि बन जाता है समझदार के हाथ में। और नासमझ के हाथ में अमृत भी जहर बन सकता है, यह याद रखना। धर्म भी किन्हीं लोगों के हाथ में जहर हो गया है और संसार भी किन्हीं लोगों के हाथ में परमात्मा का दर्शन बन गया है। इसलिए सवाल यह नहीं है कि तुम कहां हो, सवाल यह नहीं है कि तुम संसार में हो कि पहाड़ पर हो, एकांत में हो कि भीड़ में हो, सवाल यह है तुम्हें कला आती है या नहीं? जीवन का माध्यम की तरह उपयोग करने की कला का नाम धर्म है। यहां हर चीज उसके ही मंदिर की सीढ़ी है। पत्थर मत समझो इन सीढ़ियों को, रुक मत जाओ, अटक मत जाओ, चढ़ो और पार उठो। तब तुम धन्यवाद करोगे इन सीढ़ियों का। लेकिन जब तक यह नहीं होता तब तक यहां हर चीज झूठी हो जाती है।
हर चीज झूठी क्यों हो जाती है? क्योंकि तुम साधन को साध्य समझ लेते हो। बस तभी सब झूठ हो जाता है। जहां प्रेम भ्रांत से अटका, वहीं प्रार्थना का जन्म असंभव हो जाता है और जहां प्रेम ने भ्रांति में अटकाव न पाया और भ्रांति के बीच से अपनी नाव को खेकर आगे निकल गया, वहीं प्रेम प्रार्थना बन जाता है। और जो लोग संसार की भ्रांति में नहीं पड़ते, वे ही सदगुरु की तलाश करते हैं। सदगुरु की तलाश कब शुरू होती है? कौन व्यक्ति सदगुरु के हाथ में अपने को छोड़ेगा? हर कोई नहीं छोड़ता। कौन छोड़ता है? कुछ शर्तें हैं, ख्याल रखना।
पहली बात, जिसने सब तरफ से सिर मार-पटककर देख लिया, जिसने सब तरफ से कोशिश करके देख ली, जो भी उससे हो सकता था कर चुका, और हर जगह हार पाई और हर जगह पराजय मिली, हर जगह दीवाल आ गई और द्वार न मिला, जिस दिशा में खोजा वहीं व्यर्थता हाथ लगी, जिसके भीतर अपनी असफलता का बोध प्रगाढ़ हो जाता है कि मैं मेरे ही कारण खोज न पाऊंगा--क्यों न खोज पाऊंगा? क्योंकि हर असफलता से यह बात दिखाई पड़ने लगती है कि मेरा यह मैं-भाव ही मेरी सारी असफलताओं का आधार है। तो मैं जो भी करता हूं, मेरा मैं-भाव और मजबूत होता है। मैं पूजा करता हूं, तो अहंकार बढ़ता है, मैं त्याग करता हूं तो अहंकार बढ़ता है, मैं दान करता हूं तो अहंकार बढ़ता है, मैं जो भी करता हूं, मेरा कृत्य मेरे अहंकार को और भी सजा जाता है और मजबूत बना जाता है, और यही अहंकार मुझे तोड़ रहा है। अहंकार यानी मैं अलग हूं। निर-अहंकार अर्थात मैं इस विराट के साथ एक हूं। जब तक एक न हो जाएं इस विराट के साथ हम, हम इसे जान न पाएंगे। हम तरसते ही रहेंगे, हम भटकते ही रहेंगे, और अहंकार बाधा है। और जो भी मैं करता हूं उससे अहंकार मजबूत होता है। विनम्रता भी साध लो, तो भी अहंकार मजबूत होता है। विनम्र आदमी का भी बड़ा गहन अहंकार हो जाता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं। मुझसे ज्यादा निर-अहंकारी और कोई नहीं। यह भी अकड़ वही है पुरानी, कुछ फर्क न पड़ा। तब धन की अकड़ थी, पद की अकड़ थी, अब भी अकड़ है। अकड़ ने नये रूप ले लिए, अकड़ नये द्वार से प्रवेश कर गई। सामने के दरवाजे से दिखाई भी पड़ती थी, अब पीछे के दरवाजे से आ गई। सामने थी तो बचने का उपाय भी था, अब उसने पीछे से गर्दन पकड़ी। अब पहचान मुश्किल हो जाएगी। इसीलिए तुम्हारे तथाकथित महात्माओं में जितना अहंकार होता है, उतना किसी और में नहीं होता। ये ऐसे ही नहीं है, अकारण नहीं है, इसके पीछे पूरा विज्ञान है। महात्मा ने बड़ी कोशिश की है। सब त्यागा, सब सुख छोड़े, सुविधा छोड़ी, सुरक्षा छोड़ी, सब तरह से अपने को कष्ट दिए, तप किया, व्रत-उपवास किए, योग किया, साधन बिठाए, सब किया, इस करने में ही अहंकार मजबूत हुआ। तुम ऐसा समझो, कर्त्ता का जहां-जहां भाव उठता है, वहां-वहां अहंकार को भोजन मिलता है; अहंकार में नया खून पड़ता है--जब यह बात दिखाई पड़ती है कि मैं बाधा हूं और मैं जो भी करता हूं उससे मैं मजबूत होता है, इसलिए अब मेरे किए कुछ भी न होगा, तब आदमी सदगुरु की खोज में निकलता है। तब हम उसे खोजें जिसके किए कुछ हो सके। हम किसीके चरणों में अपने को गिरा दें। हम कह दें कि मैं तो हार गया, अब मैं समर्पित हूं। अब मुझे तोड़ो, मुझे मिटाओ, मुझे फिर से बनाओ। पहली बात स्मरण रखना, जो अपने मैं की यात्रा से बुरी तरह पराजित हो गया है, वही व्यक्ति सदगुरु के चरणों में जाता है।

दूसरी बात, जो व्यक्ति संसार और जीवन के अनुभव से इतना ज्यादा व्याकुल हो गया है कि अब अगर यह पूरा संसार भी उसे मिलता हो, तो वह लेने को राजी नहीं है। जिसने देख लिया है कि यहां मिल जाएं चीजें तो भी दुख है, न मिलें तो भी दुख है; जीतो तो दुख है, हारो तो दुख है; जिसे हार ही नहीं पकड़ ली है बल्कि जिसे जीत में भी हार दिखाई पड़ गई है; जिसने सब आशाएं छोड़ दी हैं, जो आशा से शून्य हो गया है, वही व्यक्ति सदगुरु के चरणों में जा सकता है।
क्यों?
क्योंकि सदगुरु के चरणों में जाना मृत्यु के चरणों में जाना है। सदगुरु तो उठाएगा तलवार और टुकड़े-टुकड़े कर देगा। टुकड़े-टुकड़े करे तो ही तुम्हारा नया जन्म हो, पुनर्जन्म हो। टुकड़े-टुकड़े करे तो ही जन्मों- जन्मों का कचरा जो तुम्हारे ऊपर इकट्ठा हो गया है, जिसे तुम समझते हो कि मैं हूं, उससे तुम्हारा छुटकारा हो। लेकिन टुकड़े-टुकड़े होने को, मरने को वही राजी हो सकता है जिसे अब जीवन में कोई आशा नहीं रही। अगर जीवन में थोड़ी भी आशा रही, तो तुम कहोगे--अभी थोड़ी और कोशिश कर लूँ; शायद अब तक नहीं हुआ है, कल हो जाए; थोड़ा और दौड़ लूं, थोड़े और उपाय बिठा लूँ, कौन जाने सफलता मिल ही जाए! तो तुम भाग जाओगे, फिर तुम मरने को राजी नहीं हो सकते, फिर तुम अपने को दांव पर नहीं लगा सकते।
पुराने शास्त्र कहते हैंः आचार्यो मृत्युः। गुरु तो मृत्यु है। गुरु
के पास जाना तभी संभव है, जब जीवन तुम्हें मृत्यु जैसा मालूम पड़ने लगे। जब तुम्हें ऐसा लगे, अब अपने पास गंवाने को कुछ है ही नहीं; या जो भी है सब व्यर्थ है, यह तो कोई ले ले तो अच्छा, कोई लूट ले तो अच्छा, कोई छीन ले तो अच्छा। जब तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ने लगे कि तथाकथित जीवन मृत्यु-जैसा है, तभी तुम्हें मृत्यु जीवन जैसी मालूम पड़ेगी। इतनी बड़ी क्रांति जब घटती है, तो कोई सदगुरु के चरणों में जाता है।
ये आज के वचन सदगुरु के चरणों में पहुंच कर जो घटनाएं घटती हैं उस संबंध में हैं। महत्वपूर्ण हैं, गहरे इशारे इनमें भरे हैं। एक-एक इशारे को पकड़ना।
सिला संवारी राजनै, ताहि नवै सब कोइ।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ।।
राज पत्थर से एक मूर्ति बनाता है, एक मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है--राम की, कृष्ण की, बुद्ध की, महावीर की--हजारों लोग उसकी पूजा करते हैं। पत्थर की मूर्ति की पूजा करते हैं। जानते हैं भलीभांति--आदमी ने गढ़ी है; जानते हैं भलीभांति--पत्थर पत्थर है; चाहे कितने ही सुंदर रूप दो, प्राण नहीं डाले जा सकते। बुद्ध की मूर्ति में कितना ही खोजो, बुद्ध को न पा सकोगे। वहां कहां बुद्ध? वहां कहां चेतना? वहां कहां समाधि? पत्थर की मूर्ति में खोजने चलोगे तो पत्थर ही पत्थर पाओगे। धोखा है।
प्रसिद्ध झेन गुरु इक्कू एक मंदिर में ठहरा। रात थी सर्द, उसे सर्दी
लग रही थी, उसने बुद्ध की एक मूर्ति उठा ली--लकड़ी की मूर्ति थी--और जलाकर ताप ली। जब वह आग जलाकर ताप रहा था, मंदिर के पुजारी ने मंदिर में अचानक आग जली देखी तो वह जागा, भागा हुआ आया, देखा तो भरोसा नहीं आया उसे! इस आदमी को साधु समझ कर ठहर जाने दिया था, यह ऐसा दुष्कृत्य करेगा कि भगवान की मूर्ति को जला देगा, इसकी तो कल्पना भी न थी! और इक्कू जाहिर साधु था, सारा देश उसे जानता था। पुजारी भौचक्का खड़ा रह गया। इक्कू ने पूछाः इतने भौचक्के क्यों खड़े हो? बैठो। आंच ताप लो, सर्दी बहुत है। उस पुजारी ने कहाः तुम पागल तो नहीं हो गए हो? भगवान की मूर्ति जला दी, महापाप किया है, इससे बड़ा पातक नहीं हो सकता। उसकी बात सुन कर इक्कू ने पास में पड़ी अपनी लकड़ी उठाई, अपना डंडा उठाया--और अब मूर्ति जो जल चुकी थी, अब राख ही राख थी--राख में डंडा घुमाने लगा, जैसे कुछ खोजता हो। पूछा उस पुजारी नेः अब क्या कर रहे हो? अब क्या खोज रहे हो? उसने कहाः मैं बुद्ध की अस्थियां खोज रहा हूं। पुजारी को भी हंसी आ गई। उसने कहाः तुम निश्चित पागल हो। तुम्हारा कोई कसूर नहीं, मेरी ही गलती हो गई जो मैंने तुम्हें भीतर ठहराया। लकड़ी की मूर्ति में कहां बुद्ध की अस्थियां? अब इक्कू के हंसने की बारी थी। वह खिलखिला कर

हंसा। उसने कहाः तो फिर दो मूर्तियां और हैं मंदिर में, उनको भी ले आओ, अभी रात बहुत बाकी है। तापेंगे, गपशप करेंगे।
जो मूर्ति बुद्ध की है, उसमें बुद्ध की अस्थियाँ भी नहीं हैं, बुद्ध
की आत्मा तो कहां! उसमें तो कुछ भी नहीं है, पत्थर ही है। लेकिन हमारी आंखें रूप से अंधी हो गई हैं। आकृति से हम इस तरह से जुड़ गए हैं कि पत्थर में भी आकृति होती है तो धोखा हो जाता है। हमने आकृतियों से इतना प्रेम किया है--कभी स्त्री से, कभी पुरुष से, कभी बेटे से, पत्नी से, पति से, माँ से, बाप से, भाई से, मित्र से--हमने आकृतियों से इतना प्रेम किया है, और धीरे-धीरे हमें आकृति की ऐसी पकड़ हो गई है कि हम पत्थर की मूर्ति को भी नमस्कार करने लगते हैं। क्योंकि आकृति वहां दिखाई पड़ती है। हम भूल ही गए कि आकृति के पीछे आत्मा से प्रेम किया जाता है। हमारी भ्रांति इतनी लंबी है, सदियों पुरानी है, जन्मों-जन्मों पुरानी है, भ्रांति ऐसी गहन होकर बैठ गई है कि कोई भगवान की मूर्ति बनाकर रख देता है, आकृति दिखाई पड़ती है, हम झुके! कैसी हम मूढ़ता कर रहे हैं, इसका हमें बोध भी नहीं होता! होगा भी नहीं, क्योंकि और भी हजारों झुक रहे हैं। जब इतने लोग झुक रहे हैं तो हम सोचते हैं--ठीक ही होगा, इतने लोग गलत नहीं हो सकते।
जार्ज बर्नार्ड शॉ से किसी आदमी ने कहा--उसने कुछ वक्तव्य दिया था; वक्तव्य ऐसा था कि कोई राजी न हो। बर्नार्ड शॉ को ऐसे वक्तव्य देने की आदत थी। जैसे उसने घोषणा कर दी कि वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है यह बात गलत है। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। अब बर्नार्ड शॉ कोई वैज्ञानिक नहीं है, उसे कहने का यह कोई हक नहीं है। किसीने जाकर कहा कि यह आप क्या कहते हैं? सारी दुनिया अब मानती है, सारे वैज्ञानिक मानते हैं, कि पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है। इतने लोग मानते हैं तो गलत न मानते होंगे। बर्नार्ड शॉ ने कहा--इतने लोग मानते हैं, तो बात सही हो ही नहीं सकती। इतने लोग मानते हैं तो गलत ही होगी। भीड़ गलत के साथ ही इकट्ठी होती है। सत्य के साथ भीड़ इकट्ठी हो नहीं पाती। सत्य को विरले चुनते हैं। रही मेरे वक्तव्य की बात, तो उसने कहा--मेरे वक्तव्य का कारण है। मैं यह मान ही नहीं सकता कि मैं जिस पृथ्वी पर रहता हूं, वह पृथ्वी किसी का चक्कर लगाए। जब मैं यहां रहता हूं, जब तक मैं यहां हूं कम-से-कम, तब तक सूरज ही इस पृथ्वी का चक्कर लगाएगा।
वह आदमी के अहंकार की मजाक उड़ा रहा है। उसने तो व्यंग्य में यह बात कही थी, लेकिन एक बात उसने बड़ी सार्थक कही कि इतने लोग मानते हैं, तो सही नहीं हो सकता। हमारा तर्क यही है कि इतने लोग मानते हैं तो सही होगा। इसलिए सारे दुनिया के धर्म इस कोशिश में लगे रहते हैं कि उनकी संख्या कैसे बढ़ जाए। क्योंकि संख्या के बल से ऐसा लगता है, उनकी मान्यता सच हो जाएगी। तुम भी इसी कोशिश में होते हो। तुम्हें डर होता है कि अगर अपनी बात को मानने वाले तुम अकेले हो तो तुम्हें खुद ही संदेह होता है कि जरूर कुछ गलती होगी। कोई और नहीं मानता, मैं अकेला मानता हूं। अकेला मैं ही ठीक! सारी दुनिया गलत! ऐसे कैसे हो सकता है? इतने लोग गलत नहीं हो सकते। इसीलिए हर आदमी अपने विचार से दूसरे आदमी को राजी करने की कोशिश करता है। क्यों? अगर दूसरा राजी हो जाए तो भरोसा आता है कि मेरी बात जरूर ठीक होगी, देखो दूसरे ने भी मानी। तुम्हें अपनी बात पर खुद भरोसा नहीं है, दूसरे में भरोसा पैदा हो जाए तो तुम्हें अपनी बात पर भरोसा आ जाता है। फिर भीड़ बढ़ने लगे, तो भरोसा और बढ़ने लगता है। ईसाई चाहते हैं सारी दुनिया ईसाई हो जाए, मुसलमान चाहते हैं सारी दुनिया मुसलमान हो जाए, हिंदू चाहते हैं सारी दुनिया हिंदू हो जाए। मतलब क्या है? किसी को अपनी बात पर भरोसा नहीं है। भीड़ हो तो भरोसा आए। जितनी बड़ी भीड़ हो जाए उतना भरोसा आ जाए। इतने लोग मानते हैं तो ठीक ही मानते होंगे।
तुम जरा ख्याल रखना, सावधान रहना, सत्य बहुत थोड़े लोगों के पल्ले पड़ता है। क्योंकि सत्य को अपने आंचल में लेने के लिए मिटने की तैयारी चाहिए।
झूठ सभी के पल्ले पड़ जाता है, क्योंकि झूठ तुमसे कोई माँग ही नहीं करता।
झूठ तो कहता है, मैं मुफ्त मिलने को तैयार हूं; मैं यह रहा, तुम बस मुझे ले लो। और झूठ सब तर्क देता है कि मैं सच क्यों? सत्य कोई तर्क ही नहीं देता।

सत्य तो सिर्फ घोषणा करता है। और घोषणा महंगी है। जो भी उसे लेने जाता है, जल जाता है, राख हो जाता है। राख हो जाता है, तभी ले पाता है।
तुम देखते हो रोज, आदमी मूर्ति गढ़ रहा है, फिर मूर्ति एक दिन बन कर तैयार हो गई, फिर मंदिर में उसकी स्थापना हो गई, फिर चले तुम पूजा करने! तुम्हें कभी यह भी ख्याल नहीं आता आदमी की बनाई हुई मूर्ति में कहां परमात्मा होगा? कैसे परमात्मा होगा? परमात्मा शायद मिल भी जाए वहां जो परमात्मा का बनाया हुआ है--किसी वृक्ष में मिल जाए भला, किसी पक्षी में मिल जाए भला, किसी आदमी में मिल जाए, किसी स्त्री में मिल जाए, मगर पत्थर की मूर्ति जो एक राज ने बनाई है, उसमें कैसे मिलेगा? राज में मिल भी जाता, मगर मूर्ति में नहीं मिल सकता। लेकिन तुम मूर्ति की ही पूजा करते हो। लाखों लोग कर रहे हैं, और लाखों जन्मों से तुम कर रहे हो, आदत हो गई है।
आदत का निचोड़ क्या है?
निचोड़ इतना है, हम आकृति से बंध गए हैं। आकृति के भीतर आत्मा है या नहीं, इसकी भी हमें चिंता नहीं रही। आकृति पूरी हो तो बस सब ठीक हो गया। और मजा यह है कि आकृति भी कहां कोई पूरी होती है! तुमने परमात्मा देखा नहीं, कैसे तुम उसकी मूर्ति बना रहे हो? तुम्हारी सब मूर्तियां सुंदर पुरुषों की मूर्तियां हैं; जिनमें कभी-कभी परमात्मा की झलक उतरी थी। मगर खिड़की को पकड़ लिया तुमने। राम की मूर्ति खिड़की का ढांचा है। राम जब जिंदा चलते थे इस जमीन पर, थोड़े से लोगों ने उनमें देख पाया होगा परमात्मा। बहुत थोड़े से लोगों ने। कुछ थोड़े से भक्तों ने, कुछ थोड़े से शिष्यों ने, जो झुक गए होंगे समग्ररूप से। इस खिड़की में से झांका होगा, परमात्मा का अनुभव हुआ होगा, उन्होंने घोषणा की कि राम प्रभु के अवतार हैं, राम भगवान हैं। तब से तुम खिड़की की पूजा कर रहे हो। तबसे धनुर्धारी राम की मूर्ति बना ली। यह खिड़की है। बांसुरी बजाते हुए कृष्ण की मूर्ति खिड़की है। समाधि में बैठे बुद्ध की मूर्ति खिड़की है। और कई बार ऐसा होता है कि बुद्ध सामने खड़े हों तो तुम न पहचानोगे और बुद्ध की मूर्ति रखी हो, तुम जल्दी झुक जाओगे, तत्क्षण झुक जाओगे।
कुछ और भी मनुष्य के मन की बात समझ लेनी जरूरी है।
मुर्दा चीज के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं होती। अहंकार को चोट नहीं लगती। जीवित व्यक्ति के सामने झुकने में अहंकार को चोट लगती है। अपने ही जैसे व्यक्ति के सामने झुकना! आखिर बुद्ध होंगे भगवान, हैं तो हमारे जैसे--हड्डी-मांस-मज्जा! हमारी जैसी देह, हमारी जैसी भूख लगती, प्यास लगती, रात थकते और सोते। बच्चे थे, जवान हुए, बूढ़े हुए, मरे--हमारे जैसे। बीमार भी होते थे। बुद्ध के साथ एक वैद्य हमेशा चलता था। वैद्य का नाम जीवक था। वह बुद्ध की देह की चिंता करता था। तुम अगर बुद्ध को देखने जाते और तुम जीवन को देखते, तुम कहते--यह कैसे भगवान? इनको भी बीमारी होती है! भगवान को कैसे बीमारी? यह भी थक जाते हैं! यह भी बूढ़े होने लगे! इनके भी हाथ-पैर कांपने लगे! यह तो फिर हम जैसे ही मनुष्य हैं।
हां, तुम्हारी पत्थर की मर्ति में एक खूबी है--बीमार नहीं होती, भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती; मूर्ति थकती नहीं, बैठी है सो बैठी है; दिन आ जाए, रात आ जाए, बैठी ही रहती है! हिंदू दया करके उसको लिटा कर सुला देते हैं। कि अब महाराज, सोओ! तुम्हारे बैठे-बैठे हम थके जा रहे हैं! अब आप विश्राम करो! झूले पर लिटा देते हैं, रजाई ओढ़ा देते हैं सर्दी हो तो, पट बंद कर देते हैं कि अब झंझट छूटे, नहीं तो यह बैठे ही हैं, यह अपनी बांसुरी बजाए ही चले जा रहे हैं! आखिर हमें घर भी जाना है, और भी हजार काम हैं, कोई यही काम थोड़े ही है! तो रात को पट इत्यादि बंद करके ताला इत्यादि लगाकर भगवान को लिटा कर वह अपने काम में गए। सुबह फिर मंदिर खुलेगा, फिर उनको उठाएंगे, दतौन करवा देंगे, हाथ-मुंह धुला देंगे, नहला देंगे, स्नान करवाके फिर बैठा देंगे।
एक बात तुमने देखी, पत्थर की मूर्ति में तुम्हें एक बात साफ हो जाती है--तुम जैसी नहीं है। जीवित आदमी तो तुम जैसा होता है। तुम जैसा और तुम जैसा नहीं। लेकिन वह जो दूसरा हिस्सा है, वह तो शिष्य को दिखाई पड़ता है।
तुम जैसा सभी को दिखाई पड़ता है।

बुद्ध जब बुद्ध होकर अपने घर वापस लौटे तो बुद्ध के बाप को भी दिखाई नहीं पड़ा कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं। कैसे दिखाई पड़े? अक्सर ऐसा हो जाता है, जिनसे हमारे बहुत लगाव हैं, आसक्तियां हैं, जिनको हमने सदा जाना है, उनमें तो दिखाई पड़ना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। बुद्ध के बाप को कैसे दिखाई पड़े? जानते हैं सदा से इस छोकरे को! उनके ही घर में पैदा हुआ, उनसे ही पैदा हुआ, बचपन से जानते हैं। बुद्ध द्वार पर आकर खड़े हैं और बाप नाराज है। और बाप अपने गुस्से में बके जा रहे हैं--जैसे सब बाप बकते हैं। बाप यानी जो बके! वह बक रहे हैं, एकदम गुस्से में हैं कि तूने धोखा दिया, तूने गद्दारी की, मैं बूढ़ा हो गया हूं और मुझे छोड़ कर भाग गया, यह कोई बात है? एक ही तू मेरा बेटा है, इकलौता है, यह सारा राज्य तेरे लिए है, तेरे ही साथ मेरी सारी आशा जुड़ी है, मैं तुझे माफ कर दूंगा, तू अब भी लौट आ, अभी भी क्षमा मांग ले, मेरे पास बाप का दिल है, मैं तुझे प्रेम करता हूं, तेरी सब भूल-चूक माफ कर दूंगा, चल तू आ गया है, ठीक, घर लौट आया है, ठीक, यह क्या भिक्षापात्र इत्यादि लिए खड़ा है! हमारे परिवार में कभी किसीने भिक्षा नहीं मांगी, हम सदा-सदा से सम्राट होते रहे हैं। क्यों हमारी बेइज्जती करवा रहा है? तू इस गांव में भीख मांगेगा! यह तेरी राजधानी है, यहां गांव के गरीब-गुरबे तुझे भीख देंगे! --जो हमसे पलते हैं। थोड़ी शर्म खा, थोड़ी हमारी प्रतिष्ठा का ख्याल कर, थोड़ा मेरे बुढ़ापे की तरफ देख! बुद्धत्व दिखाई नहीं पड़ रहा, बेटा दिखाई पड़ रहा है। बाप नाराज है।
बुद्ध ने पता है क्या कहा? सब सुना और जब बाप थोड़े थक गए, तब बुद्ध ने कहा कि एक बार गौर से मुझे तो देखें! जो आपका घर छोड़कर गया था, वही मैं वापस नहीं लौटा हूं। तब से गंगा का बहुत पानी बह गया। मैं कोई और ही होकर लौटा हूं। मैं आपसे कुछ माँगने नहीं आया हूं, कुछ देने आया हूं; ऋण चुकाने आया हूं। मुझे कोई संपदा मिल गई है। आपका साम्राज्य ठीक, मुझे कोई और बड़ा साम्राज्य मिल गया है, मैं उसमें आपको भागीदार बनाने आया हूं। लेकिन बाप तो बाप! बाप ने कहाः छोड़, मैं तुझे सदा से जानता हूं! क्या मैं तुझे पहचानता नहीं? तू किसी और को कहना कि तू दूसरा होकर आया है, तू वही है। मेरा बेटा।
तुम समझते हो, कठिनाई क्या हो रही है?
कठिनाई यह हो रही है--बाप सिर्फ आकृति को देख रहे हैं। भीतर जो घटना घट
गई है, जो नया आकाश खुला है, जो प्राण ने नया निखार लिया है, जो भीतर नया नाच उठा है, ऊर्जा का, जो नया स्वरनाद उठ रहा है, जो भीतर ओंकार का जन्म हुआ है, यह जो भीतर आज परमात्मा विराजमान हुआ है--यह मंदिर अब खाली नहीं है, इस मंदिर का भगवान आ गया है--लेकिन इसको देखने के लिए तो शिष्यत्व चाहिए। देखा, बाप ने भी देखा, धीरे-धीरे झुके, धीरे-धीरे समझे, देखा, लेकिन पहले तो इतना ही दिखाई पड़ा कि यह मेरा बेटा वापस लौट आया। मेरा बेटा--इतना ही दिखाई पड़ा।
जिंदा आदमी के सामने झुकने में अड़चन है। पहली अड़चन, तुम्हारे ही जैसा। तुमसे भिन्न कहां? इसलिए सारे दुनिया के धर्म अपने शास्त्रों में अपने सदगुरुओं को भिन्न बताने की कोशिश में एक-दूसरे से बिल्कुल होड़ करते हैं। ईसाई कहते हैं कि जीसस का जन्म क्वाँरी कन्या से हुआ। अब यह मूढ़ता की बात है। निपट मूढ़ता की बात। मगर इसके पीछे कारण क्या है? कारण यही है कि सिद्ध करना चाहते हैं कि तुम्हारे कृष्ण, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे महावीर कुछ खास नहीं! खास हैं जीसस, देखो कुआंरी कन्या से जन्म हुआ! हुआ कृष्ण का कुआंरी कन्या से जन्म? जैसे और आदमी जन्मते हैं, ऐसे ही कृष्ण जन्मे। अब बड़ा मुश्किल है, हिंदू एकदम अपनी कहानी बदल भी नहीं सकते! कृष्ण के संबंध में कहानी वे पहले ही लिख चुके। जीसस की कहानी नई है। महावीर की कहानी लिखी जा चुकी थी। अब बदलाहट की नहीं जा सकती। मगर उसने भी अपने-अपने जी तोड़ कोशिश की है। यह बात उनको ख्याल में नही आई थी। उनको दूसरी बातें ख्याल में आई थीं। उनसे तुम पूछो तो वे अपनी दूसरी बातें बताते हैं।
जैन कहते हैं कि महावीर को सर्प ने काटा तो उनके शरीर से खून की जगह दूध बहा। जब जीसस को सूली लगी थी तो खून बहा था। आदमी जैसे आदमी! क्या खूबी! खूबी थी महावीर को, काटा सांप ने, दूध बहा! पागलपन की बात है। अगर

शरीर में दूध भरा हो तो कभी का दही बन जाए। कोई साँप के काटने तक रुका रहता! कभी के सड़ गए होते महावीर। दही-ही-दही की बास आने लगती। भक्त भी दूर-दूर बैठते।
शरीर से कहीं दूध निकलते हैं? लेकिन विशिष्टता बतानी है। आदमी के मन
की कमजोरी।
बुद्ध भी बौद्धों के हाथ में पड़ गए तो उन्होंने भी छोड़ा नहीं, उन्होंने भी कहानियां गढ़ लीं; विशिष्टता सिद्ध करनी ही होगी। बौद्धों ने लिखा है कि बुद्ध का जन्म हुआ, खड़े-खड़े मां के पेट से पैदा हुए। खड़े-खड़े! और एकदम--पैदा ही हुए खड़े-खड़े, इतना ही नहीं--सात कदम चले भी। और सात कदम चल कर अपने बुद्धत्व की धोषणा की। पागलपन की बातें हैं!
लेकिन ये कहानियां गढ़नी पड़ीं। ये कहानियां इसलिए गढ़नी पड़ीं ताकि तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि तुम्हारे जैसे नहीं हैं, तुमसे भिन्न हैं। तुमसे बिल्कुल अनूठे हैं।
मोहम्मद अपने घोड़े पर चढ़े-चढ़े सीधे स्वर्ग चले गए। कम से कम घोड़ा तो छोड़ जाते! घोड़ा भी ले गए। कुछ न कुछ हमें बनाना पड़ेगा।
लेकिन जब आदमी जिंदा होता है, तब ये बातें नहीं बना सकते तुम। क्योंकि जिंदा आदमी तुम्हारी इन सारी कहानियों को खंडित कर देगा। अगर बुद्ध होते तो खुद ही हंसते, वह कहते--यह क्या पागलपन है? अगर जीसस होते तो खुद ही हंसते। अगर महावीर होते तो यह खुद ही हंसते--जैसा मैं हंस रहा हूं ऐसे ही महावीर हंसते, वह खुद ही कहते--मैं दही हो जाता।... यह मैं महावीर से पूछ कर ही कह रहा हूं। यही उन्होंने कहा होता।
लेकिन जब एक सदगुरु विदा हो जाता है, तो शिष्यों के हाथ में तूलिका होती है, फिर वे रंग देते हैं। फिर मूर्ति को गढ़ते हैं सब तरह से, ऐसा बनाते हैं कि वह भिन्न दिखाई पड़ने लगे, पृथक दिखाई पड़ने लगे, सामान्य न रह जाए, अद्वितीय हो जाए। भेद जितना हो जाए तुम में और मूर्ति में, उतना ही शुभ है, तुम्हें झुकने में उतनी ही आसानी हो जाती है। फिर, मुर्दा गुरु के सामने झुकने में बड़ा रस होता है क्योंकि मुर्दा गुरु तुम्हारा कुछ कर नहीं सकता। जिंदा गुरु तुम्हें मार डालेगा। मुर्दा गुरु तुम्हें क्या मारेगा! मुर्दा गुरु के तो मालिक तुम हो, जिंदा गुरु तुम्हारा मालिक हो जाएगा। जिंदा गुरु के सामने झुकना उसके हाथ में अपनी गर्दन देना है। मुर्दा गुरु के सामने झुकने में कुछ अड़चन नहीं है। मुर्दा गुरु तुम्हारे हाथ में है। जब सुलाओ, सोएगा; जब उठाओ, उठेगा; जब बिठाओ, बैठेगा; तुम जो करवाओगे वैसा करेगा। मुर्दा गुरु तुम्हारे पीछे चलेगा, जिंदा गुरु के पीछे तुम्हें चलना होगा। वहां अड़चन है। वहां कठिनाई है। इसीलिए लोग मूर्ति की पूजा करते हैं, अतीत की पूजा करते हैं, मुर्दों की पूजा करते हैं। जीवित सामने खड़ा रहे, तो निंदा करते हैं, विरोध करते हैं, इंकार करते हैं। जिंदा को नहीं मान सकते।
सिला संवारी राजनै, ताहि नवै सब कोइ।
रज्जब कह रहे हैं, यह मजा देखो! किसी मूर्तिकार ने मूर्ति बना दी है और
सब उसके सामने झुक रहे हैं।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै...
और गुरु शिष्य को गढ़ता है, शिष्य की शिला को गढ़ता है; तोड़ता है, काटता है, नया रूप देता है--नई आत्मा!
... सोइ पूजै किन होइ।।
मुश्किल से कोई इसको पूजने वाला मिलता है। मुश्किल से! देखने वाला मिलता है, पूजनेवाले की तो बात ही छोड़ो! पहचानने वाला मुश्किल से मिलता है। तुमने अपने मन की यह वृत्ति देखी? अगर कोई किसी की निंदा करता हो तो तुम तत्क्षण स्वीकार कर लेते हो बिना विवाद के। निरीक्षण करना! कोई आकर कहता है कि फलां आदमी बड़ा बेईमान है, तो तुम यह नहीं कहते कि भई, पहले प्रमाण दो तब मानूंगा। कोई कहता है कि फलां आदमी बड़ा जालसाज है, चोर, लुच्चा; तुम बिल्कुल मान लेते हो--तुम एकदम ऐसा सत्संग करने लगते हो इस आदमी का, एकदम कान ही कान हो जाते हो; तुम कहते हो, क्या बात कही! कुछ और सुनाओ! यह तो मुझे पता ही था कि यह आदमी ऐसा है, आज तुमने बिल्कुल सिद्ध कर

दिया। तुम प्रमाण नहीं मांगते। और तुम यही बात दूसरे से कहोगे, थोड़ा और मिर्च-मसाला मिलाओगे। लेकिन अगर कोई किसीकी प्रशंसा करता हो, कोई आकर कहे कि फलां आदमी बड़ा साधु है; बड़ा सच्चरित्र; ध्यानी, प्रभु का प्यारा, तुम कहोगे--छोड़ो बकवास, देख लिए बहुत प्रभु के प्यारे, सब धोखाधड़ी है! सब पाखंड है! कहां के साधु? कहां की बात कर रहे हो, सतयुग में होते थे साधु, अब यह कलियुग चल रहा है! यह पंचमकाल चल रहा है, अब कहां साधु! भ्रांति में मत पड़ो, सावधान रहना; सब छुपे लुटेरे हैं, जरा नींद लग गई, जेब कट जाएगी। तुम लाख प्रमाण पूछोगे कि प्रमाण क्या है?
और कठिनाई यह है कि साधुता के लिए क्या प्रमाण हो सकता है? कठिनाई यह
है कि भीतर किसी के परमात्मा की छवि उतरी, इसका क्या प्रमाण हो सकता है? कोई प्रमाण नहीं हो सकता है और तुम प्रमाण पूछते हो। फिर प्रमाण दिया नहीं जा सकता, तो तुम हँसते हो, तुम कहते हो--हम पहले ही कहते थे!
अपने मन के इस खेल को समझना--निंदा तुम स्वीकार कर लेते हो, प्रशंसा तुम स्वीकार नहीं करते। क्यों? क्योंकि जब भी किसीकी निंदा होती है, तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। तुम कहते हो--इससे तो हम ही भले! सारी दुनिया गंदी है। इसकी तुम जो घोषणा करते हो, उसका यह मतलब नहीं होता कि सारी दुनिया की गंदगी से तुम्हें कोई एतराज है, तुम यही कह रहे हो कि मेरे सिवाय यहां सब गड़बड़ है। इसलिए तुम रोज जल्दी से सुबह उठ कर अखबार पढ़ते हो। और जिस अखबार में जितनी ज्यादा हत्याओं की, चोरियों की, बेईमानियों की खबरें हों, उसको उतने ही रसविमुग्ध होकर पढ़ते हो। अखबार पढ़ कर तुम निश्चिंत हो जाते हो, चित्त हल्का हो जाता है। तुम कहते हो--इनसे तो हम ही बेहतर! इससे तो हम ही ज्यादा सच्चरित्र! इतना बुरा तो हमने भी नहीं किया। लेकिन अगर कोई किसीकी प्रशंसा करता हो तो तुम्हारे मन में चोट पड़ती है। तो हमसे भी कोई बेहतर है इस दुनिया में! अहंकार को अड़चन आती है। तुम स्वीकार नहीं करना चाहते। तुम्हारे मन में सहज भाव अस्वीकार का उठता है। रज्जब कह रहे हैं कि बड़ी अजीब बात है, कोई राज पत्थर की मूर्ति बना देता है, लोग पूजने चल पड़ते हैं; और कोई गुरु जीवंत परमात्मा को उतार देता है शिष्यों में, तो भी पूजा करने वाला मुश्किल है। पूजा करने वाला दूर, स्वीकार करने वाला मुश्किल, अंगीकार करने वाला मुश्किल। स्वीकार-अंगीकार करने वाला दूर, जो विपरीत न हो जाए, विरोध न हो जाए, ऐसा आदमी मुश्किल। जो मिटाने को तैयार न हो जाए, ऐसा आदमी मुश्किल। कोई मानने को राजी नहीं होता कि तुम ध्यान को उपलब्ध हो गए। कोई मानने को राजी नहीं होता कि तुम प्रार्थना को उपलब्ध हो गए, कि तुम्हें समाधि उपलब्ध हुई।
गुरु ज्ञाता परजापती सेवक माटी रूप।
शिष्य तो मिट्टी की तरह आता है गुरु के पास। तोड़ता गुरु, निर्माण करता, परमात्मा को आवाहन करता, स्थिति बनाता परमात्मा को पुकारने की, शिष्य की क्यारी को तैयार करता है, बीज बोता है, आकाश से बादलों को पुकारता है, सूरज को पुकारता है, सारे अस्तित्व को निमंत्रण देता है कि क्यारी तैयार हो गई है, बीज भी डाले जा चुके हैं, आओ मेघ, बरसो; आओ सूरज, फेंको अपनी किरणें! इधर शिष्य को तैयार करता है, उधर परमात्मा को आमंत्रित करता है। गुरु का यही दो काम है। इस तरफ शिष्य की तैयारी कि वह पात्र बन जाए और उधर परमात्मा को पुकार, कि जब शिष्य पात्र बन कर तैयार हो तो परमात्मा उसमें बरसे और परमात्मा उसमें भर जाए। पत्थरों की मूर्तियों में नहीं परमात्मा उतरता है। मृण्मय में परमात्मा नहीं उतरता, चिन्मय में परमात्मा उतरता है।
किसी में तेरे खदो-खाल का जमाल न था
बना बना के मिटाता रहा हूं तस्वीरें
तुम बनाते रहो तस्वीरें, तुम्हारी सब तस्वीरें तुम्हें गलत मालूम पड़ेंगी, क्योंकि किसी में भी उसका नक्श न उतरेगा, उसका रूप न उतरेगा, उसका सौंदर्य न उतरेगा।
किसी में तेरे खदो-खाल का जमाल न था
किसीमें वह सौंदर्य नहीं है।
बना बना के मिटाता रहा हूं तस्वीरें

कितनी मूर्तियां आदमी ने परमात्मा की गढ़ी हैं, मिटाई हैं, फिर बनाई हैं? कितने चित्र रंगे हैं, फिर रंग भरे, फिर रंग भरे, सदियों से आदमी यही करता रहा। गुरु कुछ और प्रक्रिया करता है। शिष्य को सिर्फ भूमिका बनाता है। शिष्य की मिट्टी से सिर्फ घड़ा तैयार करता है। परमात्मा भर जाता है, जब भी तुम्हारी पात्रता पूरी होती है। तत्क्षण घटना घट जाती है, एक क्षण का भी व्यवधान नहीं होता है।
गुरु ज्ञाता परजापती...
इसलिए रज्जब कहते हैं कि गुरू न केवल ज्ञाता है, जानने वाला है, प्रजापति भी है, निर्माता भी है।
सेवक माटी रूप।
रज्जब रज सूं फेरिकै, घड़िले कुंभ अनूप।।
मिट्टी को फेर-फेर कर, मिट्टी को निर्मित कर-कर के उस अदभुत कुंभ को बना लेता है, उस अदभुत घड़े को बना लेता है--घड़िले कुंभ अनूप--जिसमें निराकार उतर आता है, अरूप उतर आता है, उस अद्वितीय घड़े को भर लेता है। कुंभ का अर्थ यही होता है। जिस दिन शिष्य का घड़ा तैयार हो गया, जिस दिन शिष्य की पात्रता तैयार हो गई, जिस दिन शिष्य कुंभ हो गया, अब अपनी तरफ से कोई कमी न रही, अब सिर्फ उसकी प्रतीक्षा है, अपनी तरफ से कोई अड़चन-अटकाव नहीं है, अपनी तरफ से सब बाधाएं हटा दी हैं। कुंभ भीतर के पात्र का निर्माण है। ज्यूं धोबी की धमस सहि, ऊजल होइ कुचीर।
और जैसे धोबी पीटता है कपड़ों को और गंदे कपड़े स्वच्छ होने लगते--
त्यूं सिष तालिब निरमला, मार सहे गुरु पीर।।
जो गुरु की मार सहने को तैयार हो जाता है, वही निर्मल हो जाता है। वही खोजी कुंभ बन पाता है। त्यूं सिष तालिब निरमला, मार सहे गुरु पीर।
बड़ी तैयारी चाहिए, बड़ा साहस चाहिए, जोखिम उठाने की कूबत चाहिए। जोखम भारी है! कौन जाने कुंभ बनेगा कि नहीं बनेगा? बना-बनाया मिट जाए, हाथ की आधी रोटी छूट जाए और पूरी रोटी न मिले, क्या पता? दुनिया भी समझदारी कहती है--हाथ की आधी रोटी भी दूर की पूरी रोटी के लिए मत छोड़ना। हाथ की आधी भली। लेकिन शिष्य के पास जाकर तो गणित पूरा उलटना पड़ता है। वहां दूसरे गणित लागू होते हैं। अगर वहां पूरा-पूरा छोड़ोगे, तो ही पूरा-पूरा फिर पाने के हकदार बनोगे। वहां जरा सी कंजूसी की, उतनी ही कमी रह जाएगी। उतना ही घड़े में छेद रह जाएगा। निन्यानबे प्रतिशत गुरु के साथ रहे और एक प्रतिशत साथ न रहे, उतना ही छेद रह जाएगा। उतना ही छेद काफी है--घड़े में कोई हजार छेद थोड़े ही जरूरी हैं उसे खाली रखने को! एक छेद भी काफी है। नाव में हजार छेद थोड़े ही चाहिए डुबाने के लिए, एक छेद भी काफी है। अछिद्र होना पड़ेगा। सौ प्रतिशत गुरु के साथ होना पड़ेगा।
सौ प्रतिशत साथ होना कठिन मामला है। दुर्गम है। सौ प्रतिशत साथ वे ही
हो सकते हैं, जो अपने अहंकार को पूरा झुकाने को राजी हों। अहंकार कहेगा-- थोड़ा सम्हाल कर चलो, थोड़ा बचा कर चलो, थोड़े दूर-दूर रहो, अड़चन ज्यादा आ जाए तो निकल भागने का अवसर रहे, एकदम पास मत चले जाओ कि निकल न सको बाहर... यहां मैं जानता हूं ऐसे लोग भी संन्यस्त हो जाते हैं जो फासला रखते हैं, जो दूरी-दूरी रखते हैं, जो होशियारी से संन्यासी हैं, जो कहते हैं कुछ होता हो तो देख लें, कुछ न होता हो तो निकल भागेंगे; हमेशा वहां खड़े रहते हैं परिधि पर, केंद्र तक नहीं आते, क्योंकि केंद्र पर आ जाएंगे तो फिर नहीं भाग सकेंगे।
यहां कभी हो जाता है, ऐसा होता है, जिनको जाना है, या सोच कर आए हैं कि पता नहीं सत्संग जमे न जमे, वे दूर बैठ जाते हैं, किनारे पर बैठ जाते हैं, क्योंकि वहां से निकलने में सुविधा रहेगी। अगर जाना हो बीच सत्संग से उठकर तो किनारे से निकल जाने में आसानी रहेगी। ऐसे ही लोग किनारे पर खड़े रहते हैं, इस ख्याल में कि क्या पता? दोनों नाव में पैर रखते हैं। एक पैर गुरु के हाथ में रख देते हैं, एक पैर अपना पुराना संसार में जमाए खड़े रहते हैं, कि अगर गड़बड़ हो जाए तो ऐसा न हो कि न घर के रहे न घाट के! कहीं ऐसा न हो कि दोनों गए, माया मिली न राम। राम मिलते हों तो ठीक, न मिलते हों तो कम से कम माया बची रहे।

इतनी होशियारी से जो गुरु के पास आएगा, वह नहीं आ पाएगा। होशियार और गुरु का संबंध नहीं बनता। चतुर चूक जाते हैं। गुरु से संबंध उनका बनता है, जो सरल हैं, भोले-भाले हैं। जो कहते हैं, बहुत से बहुत यही होगा न कि मिटेंगे, ऐसे रह कर भी क्या पाया है? चलो, अच्छे हाथों से मिटे, यह भी कम सौभाग्य नहीं! ऐसे प्यारे हाथों से मिटे, यह भी कुछ कम सौभाग्य नहीं! मिटना तो था ही, मरना तो था ही, यमदूत आते, उनके हाथ से मिटते, सदगुरु के हाथ से मिट गए, यह अच्छा! कम से कम मरने में एक प्रसाद तो होगा, एक सौंदर्य तो होगा! कम से कम परमात्मा को खोजने की राह पर मिटे, यह तो आनंद होगा। धन को खोजते-खोजते भी मिटते हैं लोग, हम परमात्मा को खोजते-खोजते मिटे। अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, अगर कहीं भी कोई संभावना है, तो यह भी क्या कम है कि हम उसे खोजते थे। यह भी क्या कम सौभाग्य है!
बिरहिण बिहरे रैनदिन, बिन देखे दीदार।
शिष्य तो रात-दिन गुरु के साथ हो जाता है। रात-दिन विरह में जीने लगता है। और गुरु सिखाएगा क्या? गुरु उसके मिलन की बातें करेगा, ताकि तुम्हारे भीतर विरह पैदा हो। इस कीमिया को समझ लेना।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप परमात्मा के मिलन की, मोक्ष की, निर्वाण की ऐसी बात करते हैं, इतनी बात करते हैं, क्यों? सिर्फ विधि की बात करें कि उस तक हम कैसे पहुंचे। पहुंचेंगे तब हम देख लेंगे कि क्या होगा? यह विधि ही है। तुम्हें पता भी नहीं चल रहा है। यह परमात्मा के मिलन की, निर्वाण की, मुक्ति की, यह जो रस की बात कर रहा हूं, यह तुम्हारे भीतर विरह जगे, इसलिए। मिलन में जब रस जगेगा, तो ही तो विरह में अग्नि पैदा होगी। जब तुम दीवाने होने लगोगे उसे पाने को, जितने तुम दीवाने होने लगोगे उतने ही तुम्हारे भीतर दिन-रात एक सतत अंतर्धारा बहने लगेगी, आंसू बहने लगेंगे। बिरहिण बिहरे रैनदिन, बिन देखे दीदार। खूब उसकी तस्वीर खींचता हूं, जानते हुए कि उसकी कोई तस्वीर नहीं बन सकती; खूब उसके रूप-रंग और सौंदर्य और आनंद का वर्णन करता हूं, जानते हुए कि कोई भी शब्द उसके साथ न्याय नहीं कर सकते, पर इसी कारण करता हूं--तुम्हारे भीतर उसके दीदार का भाव पैदा हो; तुम्हारे भीतर यह महत्वाकांक्षा पैदा हो, यह अभीप्सा जगे कि देखना है, कि सब भी दांव पर लगता हो तो भी देखना है; कि परमात्मा को बिना देखे इस संसार से नहीं जाना है; ये आंखें उसे देख कर ही बंद होंगी, ऐसी उत्कंठा जगे।
कुछ मोहब्बत के गम, कुछ जमाने के गम
यूं भी नाशाद हम, यूं भी नाशाद हम
जिंदगी का सफर है कि वादा तेरा
जिस जगह से उठे थे वहीं हैं कदम
कौन जाने मुलाकात फिर हो न हो
आज ही क्यों न खोलें फरेबे-करम
दिल की दूरी तो है खेल तकदीर का
फासले क्या नजर के भी होंगे न कम
चलो दूरी रहे परमात्मा से, अनंत दूरी रहे तो रहे, कम से कम नजर में तो परमात्मा आ जाए। रात दूर के तारे भी देखकर एक रसधार बह जाती है। तारों को कुछ हाथ में ही लेना तो जरूरी नहीं है।
दिल की दूरी तो है खेल तकदीर का
फासले क्या नजर के भी होंगे न कम
दीदार का अर्थ होता है, कम से कम नजर का फासला तो उठे, कम से कम नजर से नजर तो मिले। अनंत रहा आए फासला कोई बात नहीं, एक बार यह भरोसा तो आ जाए, यह अनुभव तो आ जाए कि परमात्मा है। परमात्मा शब्द ही न रह जाए, कहीं छोटी सी किरण कौंध जाए, अनुभव बन जाए।
आप दिल के करीब हैं फिर भी
आंख दीदार को तरसती है
याद गुजरे हुए जमाने की
एक नागिन है दिल को डसती है
"आप दिल के करीब हैं फिर भी, आंख दीदार को तरसती है।"

और परमात्मा पास है, पास से भी पास, तुम भी अपने इतने पास नहीं हो जितना परमात्मा तुम्हारे पास है, लेकिन फिर भी आंख दीदार को तरसती है। देखना चाहते हैं, पहचानना चाहते हैं, छूना चाहते हैं, उसकी सुगंध लेना चाहते हैं, उसका स्वाद लेना चाहते हैं। यह स्वाद कैसे जगेगा? यह स्वाद की अभीप्सा कैसे पैदा होगी?
सत्संग का एक ही प्रयोजन है, जिसने पा लिया है उसे, वह कुछ-कुछ उसकी कहानी तुमसे कहे, उसका गुणगान करे; उसको पाकर जो उसे मिल गया और जो खोया है वह तुमसे कहे कि व्यर्थ खोया है, सार्थक पाया है, अपना दिल तुम्हारे सामने खोल कर रखे। मगर दिल तो उन्हीं के सामने खोल कर रखे जा सकते हैं जो झुक गए हों। शिष्य के अतिरिक्त सत्संग नहीं हो सकता। सुनने वालों से सत्संग नहीं होता, सत्संग कोई मनोरंजन नहीं है, सत्संग कोई सभा नहीं है, कोई व्याख्यान इत्यादि नहीं है, सत्संग तो जो खोज रहा है उसके बीच और जिसे मिल गया है उसके बीच एक नृत्य है ऊर्जा का। एक अंतर्मिलन है, एक भांति का अंतर्संभोग है--आत्मा से आत्मा का, अस्तित्व से अस्तित्व का।
बिरहिण बिहरे रैनदिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार।।
सत्संग में विरह जगना शुरू होता है। आग जलती है फिर, ऐसी आग जो फिर बुझाए नहीं बुझती, ऐसी आग फिर जिसे कोई और जल नहीं बुझा सकता जब तक कि परमात्मा का जल ही न बरसे। तो सदगुरु पर नाराजगी भी होती है। शिष्य क्रुद्ध भी होता है। कई बार लगता है, पहले ही अच्छे थे, चल तो रहे थे, अपनी जिंदगी एक ढांचे में बंधी जाती थी, न ज्यादा होश था, न ज्यादा फिकिर थी, सब ठीक-ठाक था, औरों जैसे ही थे, यह नई अभीप्सा जगा दी, यह नई आग पैदा कर दी। और एक ऐसी प्यास जिसको बुझाने का इस संसार में कोई उपाय नहीं, कोई सरोवर नहीं जो इस प्यास को बुझा दे। सत्संग में तुम्हें याद दिलाई जाती है कि तुम हंस हो और मानसरोवर चलना है। उड़ चल हंसा वा देश। तुम मजे से रहने लगे थे बगुलों के साथ, भूल ही गए थे अपना हंस होना, सोचते थे मैं भी बगुला हूं, बगुलों के साथ बगुला भगत होकर खड़े हो गए थे, पूजा भी कर लेते थे, प्रार्थना भी कर लेते थे, मंदिर-मस्जिद भी हो आते थे, गुरुद्वारा भी हो आते थे, सब कर लेते थे, मगर थे बगुला भगत! ऊपर-ऊपर सब था, भीतर आकांक्षा मछली को पकड़ने की थी। ऊंची- ऊंची उड़ानें भी भरते थे, लेकिन नजर नीचे ही लगी रहती थी।
रामकृष्ण कहते थे, चील बड़ी ऊंची उड़ती है, मगर नजर नीचे लगी रहती है; कहीं कूड़ा-करकट के ढेर पर कोई चूहा मरा पड़ा हो, नजर वहां लगी रहती है। बड़ी ऊंची उड़ती है और नजर बड़ी नीची लगी रहती है। लोग मंदिरों में बैठे होते हैं, नजर दुकानों पर लगी होती है। हाथ में माला जपते रहते हैं, भीतर राम का कोई पता ही नहीं होता, सब तरह की कामनाएं उठती रहती हैं।
सत्संग का अर्थ है, तुम्हें झकझोर कर जगा देना कि तुम क्या कर रहे हो?
यह तुम्हारे योग्य नहीं। तुम मानसरोवर के लिए बने हो। तुम हंस हो। मगर तब अड़चन शुरू होती है। अड़चन यह शुरू होती है, अगर हम हंस हैं, मानसरोवर कहां है? मानसरोवर तो बहुत दूर लंबी यात्रा है, दुर्गम यात्रा है, पहुंच पाओ न पहुंच पाओ। मानसरोवर की प्यास जग गई, अब यह ताल-तलैयों के पास रस नहीं आता, हंसों की जमघट में बैठने का ख्याल आ गया, अब ये बगुले जंचते नहीं, अब बड़ी मुश्किल हो गई। अब बड़ी फांसी लग गई। शिष्य की यही फांसी है। जीसस ने कहा है, जो अपनी सूली को अपने कंधे पर लेकर चलेंगे, वे ही पहुंच पाएंगे। इसी फांसी की चर्चा की है, इसी सूली की चर्चा की है।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार।।
ऐसा विरह जगता है जिसका कोई पार नहीं है। अपार को पाने चले तो अपार विरह से कीमत चुकानी पड़ती है।
तेरी उल्फत की चिंगारी ने जालिम! इक जहां फूंका
इधर चमकी, उधर सुलगी, यहां फूंका वहां फूंका
सब तरफ आग जल जाती है। फिर यहां कोई वसंत मालूम नहीं पड़ता, सब पतझड़-ही- पतझड़ हो जाता है।
देखा तो खुशी के फूल खिले, सोचा तो गमों की धूल उड़ी
कहते हैं बहारां लोग जिसे, वह एक साया पतझड़ का है

जब समझ आनी शुरू होती है, जब गुरु की वाणी उतरनी शुरू होती है, जब गुरु वाणी के अर्थ भीतर खुलने शुरू होते हैं, जब उन शब्दों की बूंदें भीतर धीरे- धीरे, धीरे-धीरे हृदय तक पहुंचने लगती हैं, तो पता चलता है--यहां वसंत जिसको समझा था, वह पतझड़ का अंग था। वह केवल पतझड़ का ही एक ढंग था। उसके बिना पतझड़ नहीं हो सकता था, इसलिए था। वसंत भी इसीलिए था ताकि पतझड़ हो सके। यहां जिंदगी मरने का एक ढंग है। यहां जिंदगी एक लंबा मरण है, एक लंबी मौत का सिलसिला, धीमे-धीमे मरते जाना, रोज-रोज मरते जाना। यहां प्रेम प्रेम का धोखा है। यहां प्रकाश बस बाहर-बाहर है और भीतर गहन अंधेरा है। यहां की सब रोशनी दो कौड़ी की है।
"बिरहिण बिहरै रैनदिन।"
जब यह समझ में आए, तो फिर न दिन है न रात है, फिर तो विरह-ही-विरह है। बड़ी कठिनाई होती है विरह के इन क्षणों में। बड़े अनूठे अनुभव होते हैं। पल भर, घड़ी भर नींद भी नहीं लग पाती कि विरह जगा जाता है।
आहटों के फरेब में मत आ
उनका क्या एतबार सोने दे
जरा सी आहट होती है, लगता है कि शायद आ गया जिसकी तलाश थी; जरा ध्यान में एक तरंग उठती है, लगता है आ गया जिसकी तलाश थी; जरा प्रार्थना में रस उमगता है, लगता है आ गया जिसकी तलाश थी।
आहटों के फरेब में मत आ
उनका क्या एतबार सोने दे
नींद लगती ही नहीं। नींद लग ही नहीं सकती। जब विरह जलता है, तो कैसी नींद? सबसे पहले नींद जल जाती है। कैसा विश्राम? सबसे पहले विश्राम जल जाता है। कहां विराम? मनुष्य एक धधकती आग हो जाता है।
बिरहा-पावक उर बसैष्ठ
आग हृदय में बस जाती है।
बिरहा-पावक उर बसै, नख सिख जालै देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसौ मोहन मेह।।
आग लग गई हृदय में, एक ही स्वर गूँजता रहता है--
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसौ मोहन मेह।।
हे प्रभु, अब बरसो। अब बरसो। और कब तक तड़फाओगे? और कब तक रुलाओगे?
लाते नहीं जो मुझको तसव्वुर में भी कभी
आते हैं किसलिए मेरे बज्में-ख्याल में?
और आते नहीं हो, तो फिर ख्याल में क्यों आते हो? और जब मेरी तुम्हें याद नहीं, तो फिर मेरी याद में क्यों आते हो?
लाते नहीं जो मुझको तसव्वुर में भी कभी, तुम्हारे सपनों में तो तुम मुझे कभी नहीं आने देते, तुम्हारे विचारों की तरंगों में तुम मुझे कभी याद भी नहीं करते हो, तुम्हें तो मेरी सुध भी नहीं है--
लाते नहीं जो मुझको तसव्वुर में भी कभी
आते हैं किसलिए मेरे बज्में-ख्याल में?
--तो फिर मेरा क्यों पीछा कर रहे हो? फिर मेरे ख्यालों की दुनिया में क्यों आए चले जाते हो? रोता है भक्त, गिड़गिड़ाता है भक्त, जलता है, तड़फता है, जैसे कोई मछली को पानी से निकाल दे, भर दोपहरी में आग सी जलती रेत पर पटक दे, ऐसे भक्त की दशा हो जाती है। इतने विरह से जो गुजरता है, वही उस परम मिलन को उपलब्ध होता है। भक्ति सस्ती नहीं है।
तुमने सुना होगा, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को कहते हुए कि यह कलियुग चल रहा है और भक्ति का उपाय बड़ा सुगम है; इस जमाने के लिए, इस समय के लिए भक्ति का उपाय ही एकमात्र उपाय है। तुम भ्रांति में मत पड़ जाना। कौन नासमझ कह रहा है कि भक्ति का उपाय सुगम है? सिर्फ इसलिए सुगम है कि इसमें सिद्धासन मारकर नहीं बैठना पड़ता? इसलिए सुगम है कि शीर्षासन नहीं करना पड़ता? इसलिए सुगम है कि प्राणायाम इत्यादि नहीं करना पड़ता? प्राणायाम और शीर्षासन और सिद्धासन कौन से कठिन हैं! महीने, दो महीने के अयास से आ जाएंगे। शरीर की कवायदें हैं, उनमें क्या कठिनाई हो सकती है! क्या इसीलिए कठिन है कि इसमें व्रत-उपवास इत्यादि का आग्रह नहीं है? करोड़ों लोग बिना

व्रत-उपवास किए अधभूखे हैं और जी रहे हैं, कोई बहुत कठिन बात नहीं हो सकती। थोड़ा अयास करोगे, यह भी हो जाएगा।
अफ्रीका में एक जाति सिर्फ एक ही बार भोजन करती है। जब तक वे सयता के
और दूसरे रूपों के संपर्क में नहीं आए थे, उन्हें पता ही नहीं था कि लोग दो दफे भोजन करते हैं। भारत में हम दो दफे भोजन करते थे, जब से पश्चिम के संपर्क में आए तब से पता चला कि कम से कम पांच बार किया जा सकता है। आस्टेलिया में एक कबीला दो दिन में एक ही बार भोजन करता है। सदियों से यही उनकी आदत है। शरीर हर स्थिति में समायोजित कर लेता है अपने को। एक बार भोजन करो तो भी धीरे-धीरे अयास हो जाता है--फिर एक ही बार भूख लगती है। और पांच बार करो तो पांच बार भूख लगती है। शरीर और मन आदतों से जीते हैं। इसलिए तुम यह मत सोचना कि उपवास-व्रत इत्यादि में कोई बड़ी भारी दुर्गमता है। कोई भी कर ले सकता है। बड़ी बुद्धिमत्ता की भी जरूरत नहीं है। सच तो यह है, जिनमें जितनी बुद्धि कम है, उतनी आसानी से कर लेते हैं। बुद्धि है ही नहीं, सिर के बल खड़े भी हो गए तो तुम्हारा हर्जा क्या होने वाला है? क्योंकि जिसके पास बुद्धि है, अगर ज्यादा देर सिर के बल खड़ा होगा तो बुद्धि गंवा बैठेगा। तुमने कभी सिर के बल खड़े लोगों को बहुत बुद्धिमान देखा? कोई उनके जीवन में तुमने कोई प्रतिभा की चमक देखी?
वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सिर की तरफ खून का प्रवाह बहुत जयादा हो जाए--जोकि शीर्षासन में हो जाता है, क्योंकि खून जमीन की तरफ बहता है, एकदम से तीव्र धार खून की सिर की तरफ बहती है, सारा खून सिर की तरफ जाने लगता है। साधारण स्थिति में तुम जब खड़े होते हो तो सिर में सबसे कम खून पहुंचता है, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण के विपरीत खून को चलना पड़ता है, उलटा जाना पड़ता है, कठिन चढ़ाई हो जाती है। चढ़ाई कठिन है। जब तुम सिर के बल खड़े होते हो, खून पूरा का पूरा सिर की तरफ जाता है। खून की अगर जोर से बाढ़ चली जाए सिर की तरफ तो सिर बड़े छोटे तंतुओं से मिल कर बना है--सात करोड़ तंतुओं से मिल कर बना है--बड़े छोटे तंतु! इतने बारीक हैं कि बाल भी तुम्हारा बहुत मोटा है। एक लाख तंतुओं को एक के ऊपर एक रखें तो एक बाल के बराबर होता है। जरा तुम सोचो! और उनसे तुम्हारी प्रतिभा है, जितने शुक्ष्म तंतु होते हैं जिस आदमी के पास उसकी प्रतिभा उतनी ही महान होती है। सिर के बल खड़े वह तंतु टूट जाते हैं खून के प्रवाह में, वे तंतु नहीं बच सकते। इसलिए अक्सर तुम्हारे योगी जड़ और बुद्धिहीन दिखाई पड़ते हैं। कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत भी नहीं है।
तुम यह तथाकथित साधुओं की बात में मत पड़ जाना, जो कहते हैं--कलयुग में भक्ति ही एकमात्र उपाय है क्योंकि सुगम है। सुगम तो नहीं है। प्रेम सुगम है? पागल हुए हो? होश की बातें कर रहे हो? कुछ प्रेम का पता है? प्रेम से दुर्गम और कुछ भी नहीं है। क्योंकि प्रेम जलाता है, तड़फाता है, आग में डाल देता है--मछली की तरह तड़फाता है।
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालै देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसौ मोहन मेह।।
कुफ्रो ईमां की कोई बात नहीं है इसमें
रास दुनिया न जिन्हें आई वह दीदार बने
जिनको पीने का सलीका है वे प्यासे हैं "कतील"
जितने कम-जर्फ थे इस दौर में मैख्वार बने
जो यहां की छोटी-मोटी चीजें पीने में लगे हैं--शराब इत्यादि--कमजर्फ हैं। उनकी कोई पात्रता नहीं है, योग्यता नहीं है। जो असली पियक्कड़ हैं, वे तो परमात्मा को पीने के लिए आतुर हैं। और किसी प्यास को बुझाने की उनकी आकांक्षा नहीं, किसी और चीज से प्यास को बुझाने की उनकी आकांक्षा नहीं। जिनको पीने का सलीका है वे प्यासे हैं "कतील"
जो पीना सच में जानते हैं, वे उसके मधु को तलाश कर रहे हैं, वे उसकी मधुशाला खोज रहे हैं; इस संसार की कोई मधुशाला उन्हें तृप्त नहीं कर सकती। जिनको पीने का सलीका है वे प्यासे हैं "कतील"
जितने कम-जर्फ थे इस दौर में मैख्वार बने

जिनकी कोई पात्रता नहीं, योग्यता नहीं, बुद्धि नहीं, समझ नहीं, वे यहां छोटी-छोटी चीजें पी कर मैख्वार बन गए हैं, पियक्कड़ कहला रहे हैं। अगर पीना हो तो परमात्मा को पीओ। बहुत बैठे रह चुके गंदे नदी-तालाबों के किनारे, अब मानसरोवर चलो! उठो हंस, फैलाओ अपने पंख--उड़ चल वा देश! यह देश तुम्हारा देश नहीं है। यह घर तुम्हारा घर नहीं है। सराय को घर समझ लिया है। तलैयों को मानसरोवर समझ लिया है। मर्त्य को अमृत समझ लिया है। क्षुद्र को विराट समझ लिया है। फिर अगर दुखी हो रहे हो तो आश्चर्य कैसा?
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार।।
बिरहिण बिहरे रैनदिन, बिन देखे दीदार।
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालै देह।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसौ मोहन मेह।।
जरूर वर्षा होती है परमात्मा की, लेकिन तभी होती है जब तुम अपनी परिपूर्णता में तड़फते हो। जब तुम सब दांव पर लगा देते हो। जब तुम कुछ भी नहीं बचाते। सब चतुराई छोड़ देते हो। सब सौदेबाजी छोड़ देते हो।
गुनगुनाती हुई आती हैं फलक से बूंदें
कोई बदली तेरे पाजेब से टकराई है
फिर छनाछन! तुम्हारी तड़फ पूरी हो जाए कि बस! यहां तुम्हारी तड़फ अपनी पूर्णता पर पहुंचती है--सौ डिग्री--और वहां से वर्षा शुरू होती है। गुनगुनाती हुई आती हैं फलक से बूंदें
आकाश से बूंदें उतरने लगती हैं--गुनगुनाती हुईं, गीत गाती हुईं, रक्स करती हुईं, नाचती हुईं।
कोई बदली तेरे पाजेब से टकराई है
परमात्मा के पाजेब से टकरा कर कोई बादल संगीत बरसा जाता है, अमृत बरसा जाता है। लेकिन पात्रता विरह से उत्पन्न होती है। कुंभ बनता है पहले तो, कुम्हार पीटता मिट्टी को, चक्के पर चढ़ाता, ठोकता--एक हाथ से चोट करता है बाहर से और भीतर एक हाथ से सँभालता है; हर चोट को भीतर से सम्हालता है--ऐसे घड़ा निर्मित होता है। फिर निर्मित हुआ घड़ा भी कच्चा होता है जब तक आग में न डाला जाए। विरह की आग में शिष्य पकता है। विरह की आग में ही घड़ा पक्का होता है, मजबूत होता है।
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
यह वचन बड़ा प्यारा है। रज्जब कहते हैं, जब से तुमने मेरी छाती में भाला भोंक दिया... भलका लाग्या भाव का--जब से तुमने भाव का भाला मेरी छाती में भोंक दिया... सेवक हुआ सुमार--तब से हमारी भी गिनती हो गई। तब से हम भी कुछ हो गए। तब से हम भी हैं, उसके पहले हम नहीं थे। उसके पहले हमारी क्या सुमार थी। हमारी कौन गिनती थी! हमारी कहां गणना थी! उसके पहले होना न होने के जैसा था।
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
तबसे हम भी कुछ हैं। मिट कर कुछ हुए। भाला लगा तब कुछ हुए। समर्पित हुए, तब से हम कुछ हैं। जब तक अकड़े थे, ना-कुछ थे। अहंकार छोड़ा तो कुछ हुए, अहंकार था तो कुछ भी नहीं थे।
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार
शब्द बड़े प्यारे हैं। अब हमारी भी गिनती है। देर-अबेर होगी, मेघ हमारा
कब आएगा पता नहीं, मगर गिनती है, कतार में हम भी खड़े हैं, अब हम यूं ही व्यर्थ नहीं हैं, कच्चे नहीं हैं कि मेघ बरसेगा तो मिट्टी बह जाएगी, अब हम पक गए हैं। तुमने भाला क्या मारा पका दिया!
रज्जब तलफै तब लगै मिलै न मारनहार।।
बड़ा प्यारा वचन है। हीरों से तौलो तो भी कीमत न हो। "रज्जब तलफै तब लगै, मिलै न मारनहार।" जब तक मारने वाला नहीं मिला था, तभी तक तलफ थी। अब तो मिल गए मारनेवाले! यह गुरु का अर्थ--मारनहार। तुमने मिटा दिया और बना दिया।
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
रज्जब तलफै तब लगै, मिलै न मारनहार।।

तब तक ही अड़चन थी जब तक मारने वाला न मिला था। अब तो राह से लग गए, अब तो गिनती अपनी भी हो गई। अब देर-अबेर हो सकती है, कौन चिंता करता है! प्रतीक्षा करनी होगी, कर लेंगे। कितना ही समय बीते अब, अब कोई घबड़ाहट नहीं है। भाला चुभ गया है अहंकार मारा गया है, मारने वाला मिल गया है--गुरु को मारनहार कहा। लेकिन जो मारनहार है, वही जियावनहार भी है। इधर मारता है, उधर जिलाता है। एक हाथ से ठोंकता है, दूसरे हाथ से सँभालता है।
जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार।
त्यूं रज्जब भूला सकल, सुनि सनेह दिलदार।।
गुरु की आवाज सुन कर सब भूल गया, रज्जब कहते हैं, कि मैं सब भूल गया।
जैसे नारी नाह बिन भूली सकल सिंगार।
जैसे कोई अपने प्यारे की प्रतीक्षा करती हो स्त्री, तोशृंगार करती है। लेकिन पति प्यारा न आता हो, न आने वाला हो, तो सबशृंगार भूल जाता है।
शृंगार के लिए तो कोईशृंगार नहीं करता, प्यारे के लिएशृंगार किया जाता है।
जैसे नारी नाह बिन भूली सकल सिंगार।
जैसे प्रियतम नहीं आया, नहीं आता है, तो साराशृंगार भूल जाता है, ऐसे ही--"त्यों रज्जब भूला सकल।" सारा संसार भूल गया उसी क्षण जब से गुरु की आवाज सुनी। क्योंकि तभी से एक बात पक्की हो गई कि जिस प्यारे को हम खोज रहे हैं, वह संसार में नहीं है। हम वहां खोज रहे हैं जहां वह नहीं है। और हमने वहां अब तक खोजा ही नहीं, जहां वह है। त्यूं रज्जब भूल्या सकल, सुनि सनेह दिलदार। यह स्नेह से भरे हुए गुरु के वचन सुने, यह भाला दिल में लगा, सेवक हुआ सुमार।
मुझको अब तक खुदा से है शर्मिंदगी
ऐ सनमखानए-दिल के पहले सनम
कुछ तो होंगी मुहब्बत की मजबूरियाँ
कौन सहता है वर्ना किसी के सितम
हम "कतील" अपनी धुन में न कुछ सुन सके
रोकते रह गए हमको दैरो-हरम
सदगुरु जब तुम्हें पुकारेगा, तो मंदिर रोकेंगे, मस्जिद रोकेंगे, दुकान रोकेंगी, बाजार रोकेगा, घर रोकेगा, परिवार रोकेगा, सब रोकेंगे, सारा संसार तुम्हें घेरा बांध कर खड़ा हो जाएगा। तुम बड़े चकित होओगे, इस संसार ने कभी तुम्हारी चिंता न की थी, लेकिन जिस दिन तुम गुरु की आवाज सुनोगे, सारा संसार तुम्हें रोकेगा। लेकिन फिर रुकना असंभव है।
हम "कतील" अपनी धुन में न कुछ सुन सके
रोकते रह गए हमको दैरो-हरम
फिर कुछ नहीं रुकता, फिर कोई नहीं रोक सकता, फिर कोई नहीं रोक सकता। एक बार आवाज पड़ जाए कान में। तो आते रहो जाते रहो, जहां सत्संग चलता हो बैठते रहो, आज, कल, परसों, कौन जाने कब शुभ घड़ी आ जाए, कब तुम्हारे कान खुले हों, कब तुम्हारा हृदय कान के करीब हो, बात पड़ जाए? एक बार भाला लग जाए, सेवक हुआ सुमार।
तन मन ओले ज्यूं गलहिं, बिरह-सूर की ताप।
और जैसे ओले गल जाते हैं सूरज के ताप में, ऐसे ही विरह की अग्नि जब जलती है--तन मन ओले ज्यूं गलहिं। तन भी गल जाता है, मन भी गल जाता है। जो नहीं गल सकता, बस वही शेष रह जाता है।
तन मन ओले ज्यूं गलहिं, बिरह-सूर की ताप।
रज्जब निपजै देखि तूं, यूं आपा गलि आप।।
रज्जब कहते हैं कि मैंने इस तरह अपने को गलते भी देखा और अपने को निकलते भी देखा। अपने को मिटते भी देखा और अपने को बनते भी देखा।
रज्जब निपजै देखि तूं यूं आपा गलि आप।
यह चमत्कार देखा। एक तरफ अपने को मरते देखो और एक तरफ अपने को पुनरूजीवित होते देखा। एक तरफ देखा कि गल गया सब--देह गल गई, मन गल गया, जिसको कल तक माना था कि मैं हूं, वह सब गल गया और पहली दफे पहचान आई अपने असली आपा की। जिसकी अब तक पहचान ही न थी; अब तब तो यही जानते थे कि मन और देह

का जोड़ मैं हूं। वे दोनों तो गल गए और वह भी गए विरह की अग्नि में, और तभी भीतर से कुछ तीसरा उठा। तीसरा जो अदृश्य है।
मनुष्य त्रिवेणी है। प्रयाग तीर्थ है, जहां गंगा, यमुना और सरस्वती
का मिलन है। गंगा दिखाई पड़ती है, यमुना दिखाई पड़ती है, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। ये सिर्फ प्रतीक हैं। यह प्यारा प्रतीक है। देह दिखाई पड़ती है, मन का भी अनुभव होता है, आत्मा का कहां पता चलता है? वह सरस्वती है। दोनों उड़ जाते हैं, देह और मन और तभी जो शेष रह जाता है, जिसके उड़ने का कोई उपाय नहीं, वही तुम हो--तत्वमसि श्वेतकेतु।
रज्जब निपजै देखि तूं, यूं आपा गलि आप।
रज्जब ज्वाला विरह की, कबहूं प्रगटै माहिं।
रज्जब कहते हैं, कभी-कभी सौभाग्य से विरह की ज्वाला तुम्हारे भीतर के मंदिर में प्रकट होती है। यह हवन की अग्नि जलती है। रज्जब ज्वाला बिरह की कबहूं प्रगटे माहिं, कभी-कभी ऐसा सौभाग्य का क्षण आता है। और जब ऐसा क्षण आ जाए तो चूक मत जाना। उसे बुझ मत जाने देना। उसे बुझा मत देना। उसे भुला मत देना।
तौ सींचनि घृत सों चहौं...
सींच देना अपने जीवनघृत से कि भभक उठे, कि समग्ररूपेण तुम्हें घेर ले।
तौ सींचनि घृत सों चहौं, करम-काठ जरि जाहिं।।
अगर ठीक से विरह की अग्नि को जल जाने दिया, तो वह भक्ति का सूत्र समझ लेना--
ज्ञानी कहते हैं, ध्यान से, बड़े गहरे ध्यान से व्यक्ति कर्म के जाल से मुक्त होगा। कर्म को मानने वाले कहते हैं, शुभ कर्मों को कर-कर के अशुभ कर्मों को काट-काट कर व्यक्ति कर्म के जाल से मुक्त होगा। भक्त कहते हैं, विरह की अग्नि, ऐसे कर्म जल जाते हैं जैसे लकड़ी जल जाती है आग में। विरह शुद्ध कर जाता है, जैसे अग्नि शुद्ध करती है स्वर्ण को, कुंदन बना देती है। तौ सींचनि घृत सों चहौं, करम-काठ जरि जाहिं।
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मिलै सो पीव।।
और अगर तुम्हारे भीतर उसे देखने की आकांक्षा नहीं है, तो तुम क्या हो! फिर तुम्हारी कोई गिनती नहीं। तुम थे, नहीं थे, बराबर हो। परमात्मा को देखने की आकांक्षा से ही तुम्हारा वास्तविक जन्म शुरू होता है। इससे पहले तो तुम यों ही जीए, नाममात्र को, सपने में जीए। जब भी कोई बुद्ध से संन्यास लेता था तो वह कहते थे, आज से अब अपनी उम्र गिनना। सेवक हुआ सुमार।
एक बार सम्राट बिंबिसार उनसे मिलने आया। और एक भिक्षु दर्शन करने आया था। सम्राट बैठा था। बुद्ध ने भिक्षु से पूछाः तेरी उम्र कितनी है? उसने कहाः चार वर्ष। वह था कोई सत्तर वर्ष का। बिंबिसार बड़ा चौंका। सोचा, यह क्या हो रहा है? या तो मैंने गलत सुना। उसने पूछा बुद्ध सेः मैंने गलत तो नहीं सुना, यह आदमी कहता है चार वर्ष? चालीस भी कहता तो भी मैं भरोसा नहीं करता, क्योंकि यह निश्चित सत्तर से कम का नहीं है, ज्यादा भले हो; चार वर्ष? बुद्ध ने कहाः आपको पता नहीं, हम गणना इसी तरह करते। यह चार वर्ष पहले संन्यस्त हुआ। उसके पहले तो जीया कि नहीं जीया, उसकी कौन गिनती? उसकी हम गिनती ही नहीं करते। वे तो रात में बीत गए, सपनों में बीत गए।
तुम रात के सपनों की गिनती तो नहीं करते। अगर कोई तुमसे पूछेगा, कितना
धन तुम्हारे पास है? तो तुम उतना ही बताओगे जितना बैंक में है। तुम उतना नहीं गिनोगे जितना तुमने सपनों में भी देखा है। वह उसमें तुम गिनती नहीं करोगे। कोई पूछेगा--तुम्हारे पास क्या है? तो तुम सपनों को छोड़ देते हो। जब कोई व्यक्ति जागता है, तो उसे पता चलता है कि अब तक जो जीवन था वह नींद ही था। सोए थे, सपने देखे थे, उनकी कोई गिनती नहीं करता।
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव।
जब तक उस परमात्मा को पाने की आकांक्षा नहीं जगी है, जब तक उसकी खोज ने तुम्हें आतुर नहीं किया है, जब तक तुमने उसकी पुकार नहीं सुनी है और तुम उसकी खोज पर नहीं निकल पड़े हो, तब तक तुम क्या हो! तब तक अपनी गिनती मत कर

लेना। तब तक हो सकता है तुम्हारे पास बहुत धन हो, बड़ा पद हो, मगर तुम कुछ भी नहीं। दो कौड़ी तुम्हारा मूल्य नहीं है। हां, जब तुम उसकी खोज से भरते हो, तभी तुम्हारे भीतर जीवन की शुरुआत है।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मिलै सो पीव।।
और जो विरह के वियोग से भर गया है, जो देखता है कि मैं हकदार हूं परमात्मा को पाने का, यह सागर मेरा है और मैं किनारे पर तड़प रहा हूं, जो देखता है कि मानसरोवर मेरा है और मैं गंदी तलैया के किनारे क्यों बैठा हूं, जिसे यह दिखाई पड़ती है अवस्था कि मेरी आत्यंतिक संभावना परमात्मा होने की है, उससे कम पर मैं राजी नहीं होऊंगा, उसको वियोग पैदा होगा।
अब फर्क समझना।
एक शास्त्र है हमारे पास, जिसको हम योग कहते हैं--कैसे परमात्मा से जुड़ें? मगर योग के पहले वियोग पैदा होना चाहिए। अगर वियोग ही पैदा न हो तो जुड़ने का सवाल ही कहां उठता है? जो आदमी बिना वियोगी बने योगी बन गया है, उस आदमी ने गलत कदम उठा लिया। पहले वियोग, फिर योग। और जितनी तुम्हारे वियोग की गहराई होगी, उतनी ही तुम्हारे योग की गहराई होगी। अक्सर लोग योगी बन बैठे हैं और वियोग ने उनको जलाया ही नहीं था, दग्ध ही नहीं किया था, वियोग के कांटे अभी चुभे ही नहीं थे और योग के फूल खिलाने में लग गए हैं, ये फूल कभी नहीं खिलेंगे। ये फूल खिलने असंभव हैं। वियोग से बचना मत। और वियोग बड़ी पीड़ा है, सच है बड़ी आग है, लेकिन आग के बिना कौन निखरा है?
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मिलै सो पीव।।
किसको कब मिला है प्यारा बिना विरह के, वियोग के? अग्नि में जले बिना
वह प्यारा किसी को मिला नहीं, क्योंकि हम उस प्यारे के योग्य नहीं हो पाते। वह तो मिलने को उत्सुक है प्रतिपल, पर हमारी पात्रता नहीं है। उसका मेघ तो घिरा ही हुआ है, आकाश पर तना ही हुआ है, राजी है बरसने को, मगर कुंभ तैयार नहीं है।
करो तैयार अपने को! जागो विरह में! वियोग को पकड़ने दो तुम्हें एक आंधी
और झंझावत की तरह! उसीसे तो वास्तविक योग का जन्म होगा। तड़फोगे तो जरूर पाओगे। जो भी तड़फे हैं, उन्होंने पाया है। और जिस दिन तुम्हारी गिनती हो जाए, उसी दिन तुम संन्यासी हुए। जिस दिन संन्यासी हुए, उसी दिन गिनती हई-- सेवक हुआ सुमार। धन्यभागी हैं वे जो सुमार हो जाते हैं! धन्यभागी हैं वे जो कह सकें कि मिल गया मारनहार!
सदगुरु के बिना कौन तुम्हें मिटाएगा? और तुम जब तक मिट ही न जाओ, तब तक बाधा है। तुम बाधा हो। तुम्हारी दीवाल हट जाए, तो आकाश अभी प्रवेश कर जाए। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
मेरे पास लोग आते हैं, पूछते हैं कि परमात्मा और हमारे बीच बाधा क्या है? मैं उनसे कहता हूंः तुम ही बाधा हो। मैं-भाव बाधा है। वे कुछ और सुनना चाहते हैं। वे सुनना चाहते हैं कि पाप बाधा है; तो पुण्य करें। वे सुनना चाहते हैं कि अज्ञान बाधा है; तो ज्ञानी हो जाएं, पंडित हो जाएं। और जब मैं उनसे कहता हूं तुम ही बाधा हो, तो उन्हें भला नहीं लगता। इतनी दूर जाने की उनकी तैयारी नहीं थी। मैं पापी था तो मैं को पुण्यात्मा बनाने को तैयार थे वे, लेकिन मैं को छोड़ने को नहीं। मैं काला था तो उसे सफेद रंगने को तैयार थे वे, लेकिन मैं को छोड़ने को नहीं। मैं अज्ञानी था तो ज्ञान से थोप देने को तैयार थे वे, मैं भोगी था तो मैं को योगी बना देने को तैयार थे वे, लेकिन मैं को छोड़ देने को नहीं।
भक्ति का सार-सूत्र स्मरण रखो--मैं बाधा है। न तो पाप बाधा है, न अज्ञान बाधा है, मैं बाधा है। मैं ही पाप है और मैं ही अज्ञान है। इस द्वार से मैं गया, उस द्वार से परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है।
तुम हटो, राह दो। तुम भी एक दिन कह सकोगे--
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार।
रज्जब तलफै तब लगै, मिलै न मारनहार।।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
सोलहवां प्रवचन

गुरु दर्पण है

पहला प्रश्नः आपके बिना इस जिंदगी से कोई शिकवा तो न था, लेकिन आपके बिना यह जिंदगी जिंदगी भी तो न थी। अब जी में आता है, तेरे दामन में सिर छिपा कर रोता रहूं, रोता रहूं!

अगेहानंद, धन मिलता है तभी निर्धनता का पता चलता है। स्वास्थ्य का अनुभव हो तो बीमारी की पहचान आती है। जो सदा बीमार ही रहा हो, उसे बीमारी भूल जाती है। जो जंजीरों में ही रहा हो और जिसने कभी स्वतंत्रता का स्वाद न चखा हो, उसे जंजीरें याद नहीं रह सकतीं। जंजीरों को जानने के लिए स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि चाहिए। नहीं तो जंजीरें आभूषण मालूम होने लगती हैं। आदमी अपनी जंजीरों को सजा लेता है, संवार लेता है, सुंदर बना लेता है। कारागृह में ही अगर पैदा हुए, वहीं पहली बार आंख खोली और खुला आकाश कभी देखा नहीं, तो कारागृह कारागृह है यह कैसे जानोगे? स्वतंत्रता का अनुभव ही, थोड़ा सा अनुभव, एक बूंद भर अनुभव भी बेचैन कर जाएगा। फिर कारागृह में एक क्षण रुकना कठिन है। फिर खुले आकाश की आकांक्षा पैदा होती है।
इसलिए धार्मिक व्यक्ति अधार्मिक व्यक्ति से ज्यादा अशांत हो जाता है। अधार्मिक व्यक्ति की तो कोई खास अशांति नहीं है, क्षुद्र की अशांति है। उसकी शिकायतें ही क्या हैं? थोड़ा पैसा और मिल जाए, थोड़ा बड़ा मकान हो, थोड़ी बड़ी दुकान हो। यह सब हो सकता है। हो रहा है। उसकी जगत से कोई बड़ी शिकायत नहीं क्योंकि जगत से उसकी कोई बड़ी मांग नहीं। थोड़ा बैंक में उसका पैसा बढ़ जाएगा, उसकी अशांति शांत मालूम होती पड़ेगी।
असली अशांति तो धार्मिक व्यक्ति को पैदा होती है। क्योंकि उसकी अभीप्सा अनंत की है, असीम की है, विराट की है, अमृत की है। थोड़े से, छोटे से वह राजी नहीं है। उसका असंतोष बड़ा व्यापक है। उसकी अतृप्ति इस पृथ्वी पर पूरी हो सके, ऐसा संभव नहीं है। आकाश ही उसे तृप्ति दे सकता है। इसलिए धार्मिक व्यक्ति अधार्मिक व्यक्ति से ज्यादा अड़चन में पड़ जाता है। और तब तुम्हें यह भी समझ में आ जाएगा कि लोग धर्म से डरे हुए क्यों हैं? उनके डरने के पीछे अचेतन कारण हैं। भय है। ऐसे ही जिंदगी मुश्किल मालूम पड़ती है, और इस जिंदगी में परमात्मा की आकांक्षा को भी अगर जन्मा लिया, फिर क्या होगा? क्षुद्र तो मिलता नहीं है, शाश्वत को कहां खोजने जाएंगे? क्षुद्र ही तो हाथ में नहीं आ रहा है, विराट को कैसे पा सकेंगे? इंकार ही कर दो कि विराट है ही नहीं।
नास्तिक ईश्वर को इंकार नहीं करता, सिर्फ इतना ही कहता है कि तुम न होओ तो अच्छा! मैं वैसे ही मुश्किल में हूं, मैं ऐसे ही मुश्किल में हूं और अगर तुम भी हो और तुम्हें भी पाने की अभीप्सा जग गई, कि मेरा क्या होगा? अभी ही सोना मुश्किल है, अभी ही नींद नहीं आती, लेकिन तुम्हारी अगर खोज पैदा हो गई, तो फिर कहां पलकें लगा पाऊंगा? नास्तिक अपनी आत्मरक्षा में ईश्वर को इनकार करता है। नास्तिकता का कोई संबंध ईश्वर से नहीं है, उसका संबंध सिर्फ अपनी रक्षा से है। नास्तिक यह कहता है कि न तुम हो, न मुझे तुम्हें खोजने की कोई जरूरत है। यह छोटा सा आंगन सब कुछ है। बस इस छोटे से आंगन पर कब्जा हो जाए, मालकियत हो जाए, तो सब पा लिया। नास्तिक यह कह रहा है, इस आँगन के पार और कुछ भी नहीं है। वह यह कह रहा है कि न होगा बांस न बजेगी बांसुरी। वह पहले से ही अपनी रक्षा कर रहा है।
नास्तिक भयभीत आदमी है। आमतौर से लोग उलटा समझते हैं। आमतौर से लोग समझते हैं कि नास्तिक बड़ा निर्भीक है। देखो, ईश्वर तक को इंकार कर रहा है। मैं तुमसे कहता हूं, बात बिल्कुल उलटी है। नास्तिक निर्भीक नहीं है। निर्भीक होता तो इस जगत को इंकार करता और ईश्वर की खोज पर निकलता। क्षुद्र की खोज में रखा क्या है? निर्भीक होता तो अनंत की तलाश करता, दुर्गम की तलाश करता; जो आसानी से नहीं मिलता है, उस शिखर को पाने की यात्रा पर निकलता, जिसे पाने में बड़ी चढ़ाई है और चढ़ाई कठिन है।

नहीं, नास्तिक निर्भीक नहीं है, भयभीत है। यद्यपि उसने अपने भय के लिए बड़ा तर्कजाल खोज रखा है। वह कहता है--ईश्वर है ही नहीं, खोज पर जाएं तो जाएं किसकी? पुकारें तो पुकारें किसे? होता तो जरूर पुकारते, है ही नहीं। ऐसे उसने आंख बंद कर ली। कारागृह में जो आदमी कहता है--आकाश है ही नहीं, आकाश में उड़ने वाले पंख हैं ही नहीं, आकाश में कोई कभी उड़ा नहीं, ये सब व्यर्थ की बातें हैं, वह सिर्फ इतना ही कह रहा है--मुझे चैन से सोने दो, मुझे मेरी जंजीरों में रहने दो, यह कारागृह नहीं है, यह मेरा घर है, मुझे कुछ और नहीं चाहिए, इससे ज्यादा की मेरी मांग नहीं है।
तुमने साधारणतः यह भी सुना है कि धार्मिक आदमी बड़ा संतुष्ट होता है, मैं तुमसे कहता हूं कि गलत है बात। धार्मिक आदमी संसार की दृष्टि से संतुष्ट मालूम होता है, क्योंकि उसका सारा असंतोष परमात्मा की तरफ लग गया है। उसके पास असंतोष बचा नहीं कि दुकान में लगा दे, इसलिए संतुष्ट मालूम होता है, इसलिए नहीं कि संतुष्ट हो गया है वह संसार से। संसार से कौन कब संतुष्ट हुआ है? लेकिन असंतोष की एक मात्रा है, एक सीमा है। उसने अपना सारा असंतोष सत्य की खोज में लगा दिया है। उसकी अतृप्ति आंतरिक है। सांसारिक की अतृप्ति बाह्य है। उसकी नजरें बाहर खोज रही हैं। धार्मिक की नजरें भीतर खोज रही हैं। और भीतर की खोज कठिन है। चांद-तारों पर पहुंच जाना आसान है, अपने भीतर पहुंचना कठिन है।
क्यों कठिन है?
क्योंकि चांद-तारों और हमारे बीच फासला है। फासला हो तो तय किया जा सकता है। स्वयं के और स्वयं के बीच कोई फासला नहीं है, तय कैसे करो? इसलिए तीर्थयात्रा बड़ी कठिन है। और जब मैं कहता हूं--तीर्थयात्रा, तो मेरा मतलब काबा और काशी से नहीं है, तुम्हारे अंतरतम में विराजमान परमात्मा से है, तुम्हारे भीतर जलते हुए चैतन्य के दीये से है। दूरी ही नहीं है, यात्रा कैसे हो, यही अड़चन है। जो मिला ही हुआ है, उसे कैसे पाएं, यही अड़चन है। न मिला होता तो पाने की कोशिश कर लेते। जो हमारा ही है, उसे कैसे जानें? जो सदा से हमारा है, जैसे मछली सागर में है, कैसे सागर को जानें? ऐसी हमारी दशा है।
तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। तुमने पूछा हैः "आपके बिना इस जिंदगी से कोई शिकवा तो न था।"
हो भी नहीं सकता था। जब तक सदगुरु से मिलना न हो जाए, जिंदगी से कोई शिकवा होता ही नहीं। जिंदगी सब कुछ मालूम होती है, खिलौने ही सब कुछ मालूम होते हैं, कूड़ा-करकट ही धन मालूम होता है, शिकवा हो भी क्या सकता है? और तुम्हारे चारों तरफ तुम्हारे जैसे ही लोग होते हैं, तुम भी व्यर्थ को पाने में लगे हो, वे भी व्यर्थ को पाने में लगे हैं। सब तुम्हारे जैसे लोग, तुम्हारी ही दौड़, एक ही दिशा की खोज, भीड़ में आदमी चलता चला जाता है। याद कहां आती है कि हम अपनी जिंदगी का क्या उपयोग कर रहे हैं? क्या जिंदगी इसी के लिए है कि थोड़ा सा धन इकट्ठा करके मर जाएं? कि थोड़ा बड़ा मकान बनाकर मर जाएं? कि दो-चार बच्चे पैदा करें और मर जाएं? जिंदगी इसीलिए है? प्रश्न ही नहीं उठ पाते। प्रश्नों की सुविधा ही नहीं है। ऐसे प्रश्न संगत भी नहीं मालूम पड़ते। जिंदगी के संगत प्रश्न दूसरे हैं। सफलता कैसे मिले? धन कैसे कमाया जाए? पद कैसे मिले? प्रतिष्ठा कैसे मिले?
नहीं, तुम्हें शिकवा हो भी नहीं सकता था। मेरे पास आए हो तो अब तुम्हें जिंदगी से असंतोष शुरू होगा। अब तुम्हें लगेगा, अब तक जो किया है, व्यर्थ सब; अब तक जो किया, मिट्टी हो गया। अगर पचास साल जिए हो, तो नाली में बह गए वे पचास साल। उनसे कोई उपलब्धि नहीं हई। घबड़ाहट होगी, बेचैनी होगी। इसलिए सदगुरु से लोग बचते हैं। पंडित-पुजारी के पास जाने से नहीं डरते, क्योंकि पंडित-पुजारी तो तुम्हारी ही दुनिया का हिस्सा है। उसमें और तुममें कोई भेद नहीं है। पंडित-पुजारी तुम्हारे भीतर अभीप्सा का दीया नहीं जला सकता है, असंतोष की आग पैदा नहीं कर सकता है। सदगुरु वही है जो तुम्हें ऐसा असंतुष्ट कर दे कि जब तक परमात्मा न मिले तब तक संतोष न मिले। जीसस ने ठीक कहा है कि मैं शांति का संदेश लेकर नहीं आया, मैं तलवार लेकर आया हूं। कल सुनते थे रज्जब को, कि गुरु ने भाला छेद दिया मेरी छाती

में। जहां भाला छिद जाए छाती में, वहीं समझना रूपांतरण की संभावना है। तुम्हें यहां आकर कुछ नये का आभास हुआ, भनक पड़ी कान में, जिंदगी ऐसी भी हो सकती है, जिंदगी यह रूप, यह रंग भी ले सकती है, जिंदगी ऐसा गीत भी गा सकती है, जिंदगी में ऐसे फूल भी खिल सकते हैं, तुम्हें थोड़ी सी सरसराहट मालूम हुई। तुम जिस जिंदगी को जी रहे थे, वही जिंदिगी को जीने का एकमात्र विकल्प नहीं है, और भी विकल्प हैं। तुम जिसे धन मानते थे, वही धन नहीं है, और भी धन हैं। और तुम जिसे पद मानते थे, वही पद नहीं है, और भी पद हैं। नया आयाम खुला। आंख जरा ऊपर उठी। कारागृह की दीवाल के पार तुमने आकाश की तरफ देखा। चांद-तारों से भरा आकाश दिखाई पड़ा। तुम्हारे पंख फड़फड़ाने लगे। कारागृह से शिकायत शुरू हो गई।
सदगुरु से मिलने का अर्थ है, ऐसे व्यक्ति से मिल जाना, जिसे स्वतंत्रता का अनुभव हुआ है। स्वतंत्रता का अनुभव संक्रामक है। उसका उपदेश नहीं दिया जाता, उसका उपदेश दिया भी नहीं जा सकता, लेकिन अगर तुम स्वतंत्रता से भरे हुए व्यक्ति के पास बैठोगे, तो कुछ बूंदें छलक जाएंगी उसके भीतर से तुम्हारे भीतर। कब छलक जाएंगी, पता भी नहीं चलेगा। संक्रामक है इसलिए कहता हूं। प्रेम से भरे व्यक्ति के पास बैठोगे, कुछ प्रेम की बूंदें तुम्हारे कंठ से उतर जाएंगी, तुम्हारे बावजूद।
और तुमने यह अनुभव भी किया है कभी-कभी।
अगर उदास आदमी के पास बैठो तो अनायास तुम उदास हो जाते हो। और चिंतित आदमी के पास बैठो तो चिंताओं की तरंगें तुम्हारे चित्त को घेर लेती हैं। हंसते आदमी के पास बैठो तो चाहे तुम उदास भी क्यों न रहे होओ, एकबारगी भूल जाते हो उदासी और हंसने लगते हो। दस आदमी आनंदित बैठे हों, मस्त हों और तुम उनके पास बैठ जाओ तो उनकी मस्ती का प्रवाह तुम्हें भी बहा ले चलता है किसी नई दिशा में। थोड़ी देर को तुम किसी और लोक के यात्री हो जाते हो। यह तुम्हारे भी अनुभव में आता है कि हमें एक-दूसरे की तरंगें छू लेती हैं। सत्य की तरंग तो बड़ी से बड़ी तरंग है, बाढ़ है। जिसको सत्य मिला हो, उसके पास बैठोगे तो तुम्हें पहले तो यही अड़चन आएगी कि तुम्हारी सारी जिंदगी असत्य मालूम होने लगेगी, उसकी तुलना में।
तुमने एक प्रसिद्ध कहानी सुनी है न, कि अकबर ने एक लकीर खींच दी अपने दरबार में एक दिन आकर और कहा, कोई इसे छुए न और छोटी कर दे। बिना छुए छोटी कर दे। अब लकीरें बिना छुए कैसे छोटी की जाएं? दरबारियों ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, जितना सोचा हेगा उतनी ही उलझन बढ़ गई होगी, क्योंकि बिना छुए कैसे लकीर छोटी हो सकती है। छोटी करने का मतलब यह होता है--छूनी पड़ेगी, मिटानी पड़ेगी, पोंछनी पड़ेगी; इधर से, उधर से काटनी पड़ेगी। छूने की आज्ञा नहीं। और तब बीरबल हंसा, और उसने एक बड़ी लकीर उस छोटी लकीर के नीचे खींच दी। छोटी लकीर को छुआ नहीं और लकीर छोटी हो गई। बिना छुए छोटी हो गई। एक तुलना जगी। एक पृष्ठ भूमि खड़ी हो गई।
तुम जब मेरे पास आए, मैं तुम्हारी पृष्ठभूमि बना। शिकायत शुरू हुई। जिंदगी ऐसी ही जीनी जैसी तुम जी रहे थे, व्यर्थ है। और जब यह ख्याल आता है कि जिंदगी ऐसा जीना व्यर्थ है, तभी दूसरा भी ख्याल आता है कि फिर सार्थक क्या होगा? और एक बार असार असार की भांति दिख जाए, तो सार को खोजना कठिन नहीं है। असत्य असत्य की तरह अनुभव में आ जाए, तो सत्य तो हाथ के पास ही है-- जब जरा गर्दन झुकाई देख ली। सत्य तो तुम्हारे भीतर है, असत्य में आंखें उलझी रहती हैं, इसलिए सत्य का अनुभव नहीं हो पाता। तो मेरे पास आओगे, असंतोष जन्मेगा, शिकायत भी पैदा होगी और आनंद के द्वार भी खुलेंगे। यह विरोधाभास एकसाथ घटित होगा। एक तरफ से तुम एकदम उदास हो जाओगे, अपनी जिंदगी को देखोगे तो उदास हो जाओगे, और जिंदगी की नई संभावना की थिरक देखोगे, यह नई पायल का बजना सुनोगे, तो परम आनंद से भर जाओगे। नये सपने तुम्हारे हृदय में नीड़ बना लेंगे।
धार्मिक होने का यही अर्थ है, यह पृथ्वी काफी नहीं। यह देह काफी नहीं।
यह मन काफी नहीं। इस मन, इस देह, इस पृथ्वी का सीढ़ी की तरह उपयोग कर लेना है। अतिक्रमण करना है, पार जाना है, इसके ऊपर उठना है। इसके ऊपर उठने के ही भाव के कारण बड़ी भ्रांति हो गई भ्रांति यह हो गई कि जब देखा महावीर को,

बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को ऊपर उठते, इस जिंदगी से पार जाते, एक नई जिंदगी का आविर्भाव करते, एक नये आकाश को आमंत्रित करते और उनका उत्फुल्ल भाव देखा, उनकी समाधि देखी, उनका उन्माद देखा, उनका हर्ष देखा, उनके चारों तरफ बहती हुई आनंद की शराब देखी, उनके पास बनती नई मधुशाला देखी--बहुत लोग दीवाने हुए और झूमे और मस्त हुए।
जो सदगुरु की जीवित अवस्था में जुड़ जाते हैं वे तो मस्त हो जाते हैं, लेकिन पीछे बड़ी अड़चन हो जाती है। पीछे संसार से ऊपर उठना है, यह बात ही लोग इस तरह अनुवादित करते हैं कि संसार दुश्मन है, देह दुश्मन है; ऊपर उठने की तो बात भूल जाती है, दुश्मनी की बात पकड़ जाती है। ऊपर कुछ है उसे पाना है, यह तो स्मरण में नहीं रहता, जो नीचे है उसे छोड़ना है, यह स्मरण में हो जाता है। विधायक नकारात्मक हो जाता है। जब बुद्ध जीवित होते हैं तो उनके साथ विधायक होता है धर्म। बुद्ध की मौजूदगी उसे विधायकता देती है, पाजिटिविटी देती है। बुद्ध की मौजूदगी में तुम चूक नहीं कर पाते। वह प्रकाश सामने है, कैसे भूल होगी? तुम उस प्रकाश में लीन होने लगते हो, तुम धीरे-धीरे उस प्रकाश से नाता जोड़ लेते हो, तुम अपने दीये को बुद्ध के दीये के पास सरकाते चलते हो--यही शिष्यत्व है--एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारा बुझा दीया बुद्ध के इतने करीब आ जाता है कि बुद्ध के दीये से लपट झपकती है, एक क्षण में क्रांति हो जाती है, तुम भी जल उठते हो। तुम पहली दफा जीवित होते हो। तुम्हारा असली जन्म होता है। तुम द्विज बनते हो।
बुद्ध के पास गए बिना कोई द्विज नहीं बनता। द्विज कोई पैदा नहीं होता। द्विज का अर्थ है, दुबारा जन्मा। एक जन्म मां से मिलता है, पिता से मिलता है, एक जन्म गुरु से मिलता है। गुरु के पास गए बिना कोई द्विज नहीं होता। जनेऊ इत्यादि पहन कर सोच मत लेना कि तुम द्विज हो गए। ब्राह्मण के घर में पैदा हुए तो द्विज हो गए। जब तक ब्रह्म को जाननेवाले के पास पैदा न होओ फिर से, तब तक तुम द्विज नहीं हो सकते। वही ब्राह्मण है ब्राह्मण याने जिसने ब्रह्म को जाना। जब तक ब्राह्मण, ब्रह्म को जाननेवाला तुम्हारी दाई न बन जाए और तुम्हें फिर से नया जन्म न दे दे, तब तक तुम शूद्र हो।
सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं और सभी को ब्राह्मण की तरह मरना चाहिए। सभी मरते नहीं ब्राह्मण की तरह। कभी-कभार। दुर्भाग्य की बात है।
सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं और अधिकतर सभी शूद्र की तरह ही मरते हैं।
ब्राह्मण तो कभी-कभी कोई होता है--कोई नानक, कोई रज्जब, कोई कबीर। मगर जब भी कभी कोई ब्राह्मण जीवित होता है, तो उसके पास धर्म की विधायकता होती है।
तुम उसके पास सरकते-सरकते उसकी विधायक ज्योति से जुड़ जाते हो।
लेकिन जैसे ही दीया उड़ जाता है--उड़ियो पंख पसार--जैसे ही बुद्ध और कबीर चले जाते हैं, घना अंधकार छूट जाता है, पहले से भी ज्यादा घना अंधकार। तुमने कभी देखा, रात अंधेरी रात तुम राह से जा रहे हो, अंधेरा है, बहुत अंधेरा है, लेकिन फिर भी चल रहे हो तो कुछ-कुछ दिखाई पड़ता है, नहीं तो चलते कैसे! और तभी एक कार पूरा प्रकाश फैलाती हुई, तुम्हारी आंखों को जगमगाती हुई पास से निकल जाती है। फिर कार के बाद में एकदम डगमगा जाते हो। अंधेरा और अंधेरा हो जाता है। पैर लड़खड़ा जाते हैं। यह वही अंधेरा है, तुम भी वही हो, कुछ बदला नहीं है, मगर बीच में जो रोशनी चमक गई आंख में, वह अब और अंधेरा खड़ा कर गई। हर बुद्ध के मरने के बाद जगत में धर्म की विधायकता खो जाती है, नकारात्मकता पैदा हो जाती है।
नकारात्मक धर्म का अर्थ होता है, संसार गलत है, इसे छोड़ो। विधायक धर्म
का अर्थ होता है, परमात्मा सही है, उसे पाओ। नकारात्मक धर्म का अर्थ होता है, यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह त्यागो, वह त्यागो। विधायक धर्म का अर्थ होता है, हाथ फैलाओ, हृदय खोलो, रोशनी से भरो, परमात्मा का धन बरस रहा है, तुम वंचित न रह जाओ; द्वार-दरवाजे खोलो, उसे भीतर आने दो, अतिथि द्वार पर दस्तक दे रहा है।
फर्क समझ लेना।
इसीके कारण मनुष्यजाति बड़ी झंझट में पड़ गई है, क्योंकि हर बुद्ध के बाद नकारात्मकता फैल जाती है। यह कुछ अनिवार्य है। इससे बचा भी नहीं जा सकता। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, जब तक बन सके जीवित बुद्ध का साथ खोज

लेना, नहीं तो बहुत संभावना है कि तुम नकारात्मक धर्म में ही उलझे रहोगे। और नकारात्मक धर्म तुम्हें परमात्मा को तो देगा ही नहीं, तुमसे संसार भी छीन लेगा। तुम धोबी के गधे हो जाओगे, न घर के न घाट के। वही तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्माओं की जिंदगी है--धोबी के गधे, न घर के न घाट के। परमात्मा मिला नहीं है और संसार छोड़ दिया है। स्वतंत्रता तो मिली ही नहीं, कारागृह भी गया। अब हाथ में कुछ भी नहीं है। पंख तो मिले ही नहीं, वह जो पिंजड़े की सुरक्षा थी वह भी गई।
तुमने कभी देखा, घर में अगर तुम्हारे तोता हो और बहुत दिन पिंजड़े में
रह चुका हो तो उसे एकदम पिंजड़ा खोल कर मुक्त मत कर देना, वह मारा जाएगा। वह उड़ न सकेगा। क्योंकि पिंजड़े में बंद रहते-रहते उसकी पंख की क्षमता खो गई है, उसे अपने पंख पर भरोसा ही खो गया है। भरोसा तो प्रयोग में आता है। इतने दिनों से उड़ा नहीं, भूल ही गया है कि उड़ सकता है। पंख जरूर हैं, मगर अब सब दिखावे के हैं, औपचारिक हैं। अब पंखों के भीतर आस्था नहीं है। और आस्था के बिना हर चीज निर्जीव हो जाती है। अब तोते को अपने पंखों पर आस्था नहीं है-- वर्षों से उसे याद ही नहीं है कि वह उड़ सकता है। हां, दूसरों को उड़ते देखा है, मगर मैं तो उड़ नहीं सकता। यह सम्मोहन उसमें गहरा हो गया है--मैं उड़ नहीं सकता, मैं उड़ नहीं सकता। यह सोच-सोच कर धीरे-धीरे अपने पंखों से अपना संबंध खो दिया है। आज उसे अचानक निकाल दोगे पिंजड़े के बाहर, मारा जाएगा। स्वतंत्रता तो मिलेगी नहीं, खुले आकाश का आनंद भी न मिलेगा, चांद-तारों सें बात करने का मजा भी नहीं, वह जो पिंजड़े की सुरक्षा थी और जीवन था, वह भी गया।
ऐसे तुम्हारे साधु-संन्यासी हैं। नकारात्मक। संसार में थोड़ी तरंग भी है, थोड़ी रसधार भी बहती है क्योंकि परमात्मा संसार में मौजूद है। कितने ही कीचड़ में पड़ा हो मगर हीरा हीरा है। और कितना ही देह में भटक गई हो आत्मा लेकिन आत्मा आत्मा है। परमात्मा संसार में मौजूद है--इन वृक्षों में, इस कोयल की आवाज में, इन सूरज की किरणों में, इन हवाओं के झोंकों में, मुझमें, तुम में, परमात्मा मौजूद है। गिर गया है हीरा, कीचड़ में गिर गया है, साफ कर लेना है, उठाना है, धो डालना है।
विधायक धर्म सदगुरु से संबंध जोड़ने से उपलब्ध होता है। शास्त्र से जो धर्म को खोजते हैं उनको नकारात्मक धर्म हाथ मिलता है।
यह दो शब्द खूब याद रखना--शास्ता और शास्त्र। शास्ता का अर्थ होता है, सदगुरु, जहां अभी शास्त्र जन्म रहा है, जहां शास्त्र अभी साँसें ले रहा है, जहां शास्त्र में अभी खून की धार बहती है, हृदय धड़कता है, जहां वेद का जन्म हो रहा है, जहां कुरान की आयतें उठ रही हैं। शास्ता ऐसा द्वार, जहां से परमात्मा फिर जगत में झांक रहा है--स्पष्ट, प्रगाढ़ होकर, पुंजीभूत होकर, समग्रीभूत। फिर एक दफा संसार में आदमी की तलाश कर रहा है। फिर आदमी को पुकार रहा है। फिर आवाहन दे रहा है कि आओ, मैं प्रतीक्षातुर हूं। शास्त्र, जब शास्ता जा चुका। शब्द अब श्वास नहीं लेते, किताब में स्याही बन कर पड़ गए। कहां रोशनी थी उन शब्दों में--जब बुद्ध बोलते हैं तो शब्दों में प्रकाश होता है--फिर शास्त्र में स्याही रह जाती है। स्याही यानी अंधेरापन। कालापन रह जाता है। कहां उज्ज्वल शब्द थे, कहां धड़कते शब्द थे, कहां नाचते शब्द थे, कहां फिर किताबों में पड़े हुए मुर्दा शब्द! लाशें रह गईं। किताबों पर पड़े दाग, फिर तुम उसमें सत्य को खोजते रहना; तुम्हें जो मिलेगा वह नकारात्मक होगा। उस नकारात्मक में तुम फंसोगे, कहीं जाओगे नहीं। यह जिंदगी भी खराब होगी और वह जिंदगी भी न मिलेगी।
विधायक धर्म का अर्थ होता है, जो है, उससे ऊपर उठना है--उसके विपरीत नहीं, उसका उपयोग करना है।
तुम मेरे पास आए, तुम कहते हो--लेकिन आपके बिना यह जिंदगी जिंदगी भी तो
न थी। जिंदगी हो भी नहीं सकती बिना किसी जीवित व्यक्ति से जुड़े। और सब यहां जीवित नहीं हैं। रास्तों पर लाशें चल रही हैं, मुर्दे बाजारों में बैठे हैं। जिन्हें अपने जीवन का कुछ भी पता नहीं है, उनको जीवित कैसे कहोगे? ऐसा ही समझो कि तुम्हारी जेब में कोहनूर हीरा रखा है, लेकिन तुम्हें पता नहीं है। तो तुम्हें धनी कहा जा सकता है? कोहनूर हीरा जरूर

तुम्हारी जेब में है, मगर तुम्हें पता नहीं है, तो तुम्हें धनी कहा जा सकता है? तुम तो राह पर खड़े भीख मांग रहे हो! और यह भी सच है कि कोहनूर हीरा तुम्हारी जेब में है। मगर उस कोहनूर हीरे का क्या करें? उसका होना न होना बराबर है।
पश्चिम का एक अदभुत सदगुरु जॉर्ज गुरजिएफ लोगों से कहता था--तुम्हारे भीतर आत्मा है ही नहीं। कोई आदमी आत्मा के साथ पैदा नहीं होता। उसने बड़ी अनूठी बात कही, क्योंकि सब शास्त्र यही कहते हैं कि आदमी आत्मा के साथ पैदा होता है--बिना आत्मा के पैदा ही कैसे होओगे? बिना आत्मा के जिओगे कैसे? लेकिन गुर्जिएफ का प्रयोजन समझना। गुर्जिएफ कोई सिद्धांतवादी नहीं है, वह कोई आत्मवादी नहीं है, उसकी दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक है। वह यह कह रहा है कि आत्मा तुम्हारे पास नहीं है, तब तक हो भी कैसे सकती है जब तक तुम्हें उसका पता नहीं है? कोहनूर तुम्हारी जेब में पड़ा है लेकिन तुम भीख मांग रहे हो, हम कैसे कहें कि तुम्हारे पास कोहनूर है, कि तुम धनी हो। आत्मा सिर्फ संभावना है। तलाशो तो शायद पा लो।
मेरे पास आए हो तो मैं तुम्हें परमात्मा नहीं देना चाहता, मैं तुम्हें जीवन देना चाहता हूं। और जिसके पास भी जीवन हो, उसे परमात्मा मिल जाता है। जीवन परमात्मा का पहला अनुभव है। और चूंकि मैं तुम्हें जीवन देना चाहता हूं, इसलिए तुम्हें सिकोड़ना नहीं चाहता, तुम्हें फैलाना चाहता हूं। तुम्हें मर्यादाओं में बांध नहीं देना चाहता; तुम्हें अनुशासन के नाम पर गुलाम नहीं बनाना चाहता हूं; तुम्हें सब तरह की स्वतंत्रता देना चाहता हूं, ताकि तुम फैलो, विस्तीर्ण होओ। तुम्हें बोध देना चाहता हूं, आचरण नहीं। तुम्हें अंतश्चेतना देना चाहता हूं, अंतःकरण नहीं। तुम्हें एक समझ देना चाहता हूं जीने की, जीने को हजार रंगों में जीने की, तुम्हें जिंदगी एक इंद्रधनुष कैसे बन जाए इसकी कला देना चाहता हूं; तुम कैसे नाच सको और तुम्हारे ओंठों पर बांसुरी कैसे आ जाए, इसके इशारे देना चाहता हूं। और मेरी समझ और मेरा जानना ऐसा है, जो आदमी गीत गाना जान ले, उसके मुंह से गालियां निकलनी बंद हो जाती हैं। मैं तुम्हें गालियां छोड़ने पर जोर देना ही नहीं चाहता गीत गाना सिखाना चाहता हूं। यह विधायकता है।
गीत जो गाता है, वह गाली कैसे देगा? जिसके जीवन में फूल खिलने लगे, जिसकी ऊर्जा फूल बनने लगी, उसकी ऊर्जा फिर काँटे नहीं बनेगी। नहीं बन सकती है। जिसके भीतर अमृत झरने लगा, उसके भीतर जहर झरना बंद हो जाता है क्योंकि एक ही ऊर्जा है। जब गलत हो जाती है तो जहर हो जाती है, जब ठीक हो जाती है तो अमृत हो जाती है। जब नीचे की तरफ बहती है, अधोगामी होती है, तो जहर हो जाती है। जब ऊपर की तरफ उठने लगती है, तो ऊर्ध्वगामी हो जाती है, तो अमृत हो जाती है। ऊर्जा तो एक ही है।
मैं तुम्हें जीवन देना चाहता हूं। और जीवन नृत्य करता हुआ, गीत गाता हुआ, जीवन उत्सवपूर्ण। एक बार तुम्हारे जीवन में उत्सव आ जाए, एक बार तुम्हें पंख पसारने की कला आ जाए, एक बार धीरे-धीरे तुम्हें फिर पंख फैलाने का आभास आ जाए, फिर आस्था आ जाए, फिर तुम थोड़े प्रयोग करके पंख उड़ाना सीख लो, फिर तुम्हें कौन रोक सकेगा? फिर यह सारा आकाश तुम्हारा है। परमात्मा तो तुम्हें मिल जाएगा, बस तुम जीवित हो जाओ। या इसे और दूसरी भाषा में कहें तो यूं--परमात्मा तो तुम्हें मिल जाएगा, तुम आत्मवान हो जाओ। असली बात आत्मा है। जो भी आत्मवान है, परमात्मा उसकी संपदा है। आत्मवान को पुरस्कार मिलता है परमात्मा का। तुम्हारे भीतर आत्मा नहीं है, जिंदगी कैसे हो सकती थी?
अगेहानंद, तुम सौभाग्यशाली हो! अब जिंदगी में शिकवा भी होगा, शिकायत
भी होगी, यह जिंदगी पर्याप्त नहीं मालूम होगी, सब तरफ सीमा आ जाएगी। और एक नई जिंदगी का आविर्भाव हो रहा है, एक नई किरण तुम्हारे भीतर समा रही है, उसे नई किरण को सम्हालो। जेल की दीवालों से लड़ने में मत लग जाना। तुम जेल के भीतर भी अगर नाचना सीख लो तो दीवालें गिर जाएंगी। मेरी मान्यता यह है कि जो ठीक से नाचता है, आंगन टेढ़ा भी हो तो सीधा हो जाता है। जो ठीक से प्रसन्न हो जाता है, उसकी दीवालें गिर जाती हैं। तुम्हारे विषाद ने तुम्हारी दीवालें खड़ी की हैं। जो उत्फुल्ल हो जाता है, जिसके भीतर एक

उत्फुल्लता की बाढ़ आ जाती है, सब कारागृह बह जाते हैं, सब जंजीरें बह जाती हैं। मैं तुम्हें जंजीर तोड़ने पर जोर नहीं दे रहा हूं, मैं तुम्हें नाचना आ जाए इस पर जोर दे रहा हूं। जो नाचना सीख गया उसकी जंजीरें टूट जाती हैं। टूट ही जाती हैं। नाचते पैरों में कहीं जंजीरें टिक सकती हैं।
शिकायत आएगी अब जिंदगी से। और साथ-ही-साथ एक विरोधाभास भी घटित होगा, परम जिंदगी के प्रति एक श्रद्धा का भाव आएगा, अनुग्रह का भाव आएगा, कृतज्ञता का भाव आएगा।
धर्म जब नकारात्मक हो जाता है तो सिर्फ लोगों को नष्ट करता है, रुग्ण करता है।
कतील अहले-हरम हैं नजर झुकाए हुए
किस एहतराम से बेचा गया है यजदां को
जरा गौर से देखो मंदिर के पुजारियों और पुरोहितों को, मस्जिदों के रख वालों को--
कतील अहले-हरम हैं नजर झुकाए हुए
.जरा काबे के पुजारियों को गौर से देखो, तुम उन्हें नजर झुकाए हुए पाओगे। तुम उन्हें शर्मिंदा पाओगे। उन्हें तुम अपराधी पाओगे।
कतील अहले-हरम हैं नजर झुकाए हुए
किस एहतराम ले बेचा गया है यजदां को
कितने आदरपूर्वक और निष्ठा से और कुशलता से परमात्मा को बेच दिया है उन्होंने, अपराध का भाव न होगा तो क्या होगा? परमात्मा के नाम से न-मालूम क्या चल रहा है! जो नहीं चलना चाहिए। मौत चल रही है परमात्मा के नाम से। जहर चल रहे परमात्मा के नाम से। परमात्मा के नाम से थोथे क्रियाकांड चल रहे। परमात्मा के नाम से सब तरह की मूढ़ताएं चल रहीं, अंधविश्वास चल रहे। कुछ बे-रिया अगर है तो दरबाने-मैकदा
देरो-हरम में बे-सरो-सामान जाइए
यह कवि ने ठीक सूचन दिया है। मंदिर-मस्जिद में जाओ तो बिना सामान के जाना, वहां लुटेरे हैं।
कुछ बे-रिया अगर है तो दरबाने-मैकदा
और अगर कहीं थोड़ी बहुत ईमानदारी बची है, छलरहित, निष्कपटता बची है, तो
वह सिर्फ मधुशाला में बची है। वहां तुम्हारी चीजें बच जाएंगी, तुम भी बच जाओगे। लेकिन मंदिर-मस्जिद में तुम बेच दिए गए हो, तुम बिक गए हो। वहां तुम्हारा सौदा कर लिया गया है। कोई हिंदू होकर बिक गया है, कोई मुसलमान होकर बिक गया है, कोई ईसाई होकर बिक गया है। विशेषण रह गए हैं लोगों के हाथों में। राख रह गई है लोगों के हाथों में। अब हिंदू होने से क्या होता है? मुसलमान होने से क्या होता है? आदमी होने से कुछ होता है जरूर। मगर मुसलमान जो है, वह आदमी नहीं हो पाता, क्योंकि मुसलमान है तो आदमी कैसे हो? और हिंदू जो है तो आदमी नहीं हो पाता। जो भारतीय है, वह कैसे आदमी हो? जो पाकिस्तानी है, वह कैसे आदमी हो?
आदमी के ऊपर पहले और दूसरी शर्तें लगी हैं। हजार बंधन लगे हैं। इन बंधनों में तुमने अपने को घेर लिया है, तुम बिक गए हो किन्हीं के हाथों में। तुम्हें पता भी नहीं तुम कब बिक गए हो। तुम उतने बचपन में बिक गए हो जब तुम्हें होश भी नहीं था। जब तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें बेच दिया है, तब तुम्हारे परिवार ने तुम्हें बेच दिया है--वे भी बिके हुए लोग थे। उनको उनके मां-बाप बेच गए थे। ऐसे पीढ़ी दर पीढ़ी लोग बेचते चले जाते हैं। तुम्हें पता ही नहीं है कि तुमने अभी धर्म की तलाश नहीं की है, खोज ही नहीं की है और तुम धार्मिक बन बैठे। हिंदू बन सकते हो तुम बिना खोजे, धार्मिक नहीं बन सकते। धार्मिक बनने के लिए दुस्साहस चाहिए, खोज करने की हिम्मत चाहिए। अंधेरे में जाने की जोखिम उठानी पड़ती है। भटक भी सकते हो। वह खतरा भी मौजूद है। लेकिन जो भटकने का खतरा लेते हैं, वे ही पहुंच पाते हैं। और जो भटकने का खतरा लेते हैं, परमात्मा उन्हें नहीं भटकने देता, उनके सहारे को आ जाता है। असहाय जो है, उसे परमात्मा का सहारा सदा उपलब्ध है।

मगर तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों ने तुम्हें बड़ा आश्वस्त कर दिया है कि तुम्हें सब मालूम है। इसलिए जिंदगी से भी कोई शिकवा पैदा नहीं होता, क्योंकि बड़ी जिंदगी का कोई अनुभव पैदा नहीं होता।
अब इस अवसर को चूकना मत। अब यह जो थोड़ी सी उत्फुल्लता तुम्हारे हृदय में जग रही है और थोड़ी गर्मी तुम्हारे प्राणों में आ रही है, इसको साथ दो, सहयोग दो।
जिंदगी की कद्र सीखी शुक्रिया तेगे-सितम!
हां हमीं थे कल तलक जीने से उकताए हुए
सैरे-साहिल कर चुके ऐ मौजे-साहिल सर न मार
तुझसे क्या बहलेंगे तूफानों के बहलाए हुए
साज उठाया जब तो गरमाते फिरे जर्रों के दिल
जाम हाथ आया तो महरो-महके हमसाए हुए
तुम्हारे हाथ में मैंने एक जाम दे दिया है, तुम्हारे हाथ में मैंने मधु से भरी हुई प्याली दे दी है, अगर पीने की हिम्मत की तो जल्दी ही तुम चांद-तारों के पड़ोसी हो जाओगे।
जाम हाथ आया तो महरो-महके हमसाए हुए
चांद-तारों के साथ तुम्हारी दोस्ती बन सके, इसका उपाय कर रहा हूं। बस तुममें थोड़ी सी हिम्मत होने की जरूरत है। और स्वभावतः चांद-तारों से दोस्ती करनी हो तो हिम्मत चाहिए पड़ेगी। इतना फैलने की हिम्मत चाहिए पड़ेगी। चांद-तारों को अपने भीतर लेने की हिम्मत चाहिए पड़ेगी। छोटे-छोटे होने से काम न चलेगा। सब क्षुद्रताएं, सब संस्कार छोड़ देने होंगे। असंस्कारित होकर ही तुम स्वतंत्र हो पाओगे। संस्कारमुक्त होकर ही तुम स्वतंत्र हो पाओगे। मैं तुम्हें स्वतंत्रता ही नहीं देना चाहता, स्वच्छंदता देना चाहता हूं। ठीक-ठीक अर्थों में स्वच्छंदता। तुम्हारे भीतर के स्वयं के छंद को जगाना चाहता हूं।
स्वच्छंदता का अर्थ उच्छृंखलता मत कर लेना। तुम्हारे भीतर सोया हुआ
है छंद। वह जग सकता है, वह जगने को आतुर है, बीज की तरह तड़फ रहा है कि कब तुम उस पर ध्यान दो वह फूटे, अंकुरित हो, वृक्ष बने; कब उसमें फूल खिलें, आकाश को सुगंध से भर दे। और जब तक तुम आकाश को सुगंध से भरने के योग्य न हो जाओ, तब तक जानना कुछ कमी है, कुछ कमी है।

दूसरा प्रश्न: कृपया बताएं कि गुरु कब तक मारनहार रहता है और कब वह तारनहार बन जाता है? यह बात शिष्य पर निर्भर है या गुरु पर?

रज्जब ने गुरु को मारनहार कहा। कहा कि तब तक तलफ न मिटेगी जब तक मारनहार न मिल जाए। तब तक पीड़ा न मिटेगी जब तक मारनहार न मिल जाए। तब तक यह वेदना से छुटकारा नहीं है जब तक मारनहार न मिल जाए। मारनहार कहा गुरु को। बड़े गहरे अर्थों से कहा। गुरु वही, जहां तुम्हारा अहंकार मरे; जहां तुम्हारा आपा मिटे; जहां तुम राख हो जाओ जलकर; गुरु की अग्नि में गुरु के प्रेम में तुम ना हो जाओ; इसलिए मारनहार कहा।
लेकिन वही जो एक तरफ से मृत्यु है, दूसरी तरफ से तर जाना है। अहंकार मरे तो आत्मा की उपलब्धि हो। जो एक तरफ से सूली है, वही दूसरी तरफ से सिंहासन है।
जब गुरु से पहली दफा मिलना होता है तब वह मारनहार होता है। और इसलिए लोग गुरु से मिलने से डरते हैं। गुरु से दूर-दूर रहते हैं। हजार तरह के तर्क खोज लेते हैं दूर-दूर रहने के। कि क्यों किसीके चरणों में झुकना? हम परमात्मा से सीधे-सीधे ही जुड़ लेंगे। क्या जरूरत है कि हम किसी से सीखने जाएं? इस जिंदगी में तुमने जो भी सीखा है, औरों से सीखा है। तब तुमने यह सवाल नहीं उठाया। लेकिन जब परमात्मा को सीखने की बात आती तो यह सवाल उठना शुरू हो जाता है। अहंकार जाल खड़े कर रहा है। अहंकार कह रहा है--यह उचित नहीं; तुम और झुको! तुम और शिष्य बनो! तुम और समर्पण करो! अहंकार अपने को बचाएगा। और अहंकार सदगुरुओं के खिलाफ हजार तरह के विचार खड़े करेगा। बड़े

तर्कसंगत भी। और कठिनाई नहीं है विचार खड़े करने में। किसी भी चीज के विरोध में तुम्हें विचार करना हो, तुम कर सकते हो।
तुम.जरा एक दिन प्रयोग करके देखना कि यह जो आदमी रास्ते पर जा रहा है, कोई भी आदमी, अ ब स--इसके खिलाफ मुझे सोचना है। फिर तुम उसके पीछे लग जाना। फिर दो-चार दिन उसका निरीक्षण करना। और एक जिद्द पर अड़े रहना कि इसके खिलाफ मुझे कुछ पता लगाना है। तुम्हें हजारों तथ्य मिल जाएंगे। और फिर अगर तुम यह तय कर लो कि इस आदमी की अच्छाइयों का पता लगाना है तो तुम उसी आदमी के पीछे पड़ जाना, दो-चार दिन कोशिश करते रहना, तुम हजारों अच्छाइयां पता लगा लोगे।
सूफी फकीर हुआ, जुन्नैद। एक रात उसने सपना देखा कि वह परमात्मा के सामने खड़ा है। परमात्मा ने उससे कहा, कुछ पूछना तो नहीं? उसने कहा, एक ही जिज्ञासा है, बस एक ही जिज्ञासा है। मेरे गांव में सबसे ज्यादा सात्विक आदमी कौन है? तो परमात्मा से आवाज आई उसे कि तेरा पड़ोसी। नींद खुल गई उसकी--उसे धक्का इतना लगा। पड़ोसी! पड़ोसी ही तो सबसे बुरा आदमी होता है दुनिया में। पड़ोसी से बुरा तो कोई होता ही नहीं। पड़ोसी में कभी कोई अच्छाई दिखाई पड़ती ही नहीं किसी को।
प्रसिद्ध वचन है जीसस का कि अपने पड़ोसी को अपने ही जैसा प्रेम करो। और
एक दूसरा वचन कि अपने शत्रु से अपने ही जैसा प्रेम करो। एक ईसाई पुरोहित से मैं बात कर रहा था, मैंने कहा इन दोनों का एक ही अर्थ है, क्योंकि पड़ोसी और दुश्मन दो नहीं होते। वह तो एक ही आदमी का नाम है। पड़ोसी ही तो दुश्मन होता है।
जुन्नैद की नींद खुल गई। पड़ोसी! यह तो कभी उसने सोचा ही नहीं था। वह तो सोच रहा था, उसके गुरु के संबंध में कहेगा परमात्मा। और भीतर कहीं यह भी आशा थी कि शायद मेरा ही नाम ले दे कि जुन्नैद, तेरे सिवा और कौन सात्विक आदमी तेरे गांव में? कहीं भीतर वह आकांक्षा थी। पड़ोसी! इस आदमी में तो इसने कभी कुछ अच्छा देखा ही नहीं था। मगर जब परमात्मा कहता है तो ठीक ही कहता होगा। लाख समझाने का उपाय किया, लेकिन नहीं समझा पाया कि पड़ोसी ही सबसे ज्यादा सात्त्विक है।
दूसरे दिन जब सोया, संयोग की बात फिर उसे सपना आया, फिर वह परमात्मा के सामने खड़ा है--शायद दिन भर सोचता रहा था कि अब अगर मिलना हो जाए तो फिर पूछ ही लूं ठीक से। तो उसने कहा कि वह तो ठीक है, आपने जो कहाः एक सवाल और है, मेरे गांव में सबसे बुरा आदमी कौन है? तो परमात्मा ने फिर कहाः तेरा पड़ोसी। अब तो और उलझन हो गई। पड़ोसी तो एक ही था। परमात्मा हंसा और उसने कहा, तू घबड़ा मत और बेचैन मत हो, सब देखने की बात है। तू चाहे तो बुरे से बुरे आदमी को पड़ोसी में देख सकता है, और तू चाहे तो भले से भले आदमी को पड़ोसी में देख सकता है।
यह दुनिया वैसी ही हो जाती है जैसा तुम देखते हो, देखना चाहते हो। जब कोई गुरु से बचना चाहता है तो सब तरह की बुराइयां खोज लेता है। आसान है। कोई अड़चन नहीं।
जुन्नैद के जीवन में एक और उल्लेख है। वह बगीचे में अपने काम कर रहा था, खुरपी लिए कुछ खोद रहा था कि बीच में ही कुछ काम से उसे अंदर जाना पड़ा, खुरपी वहीं छोड़ गया, लौट कर आया खुर्पी नदारद थी। तभी उसने चारों तरफ देखा, वही पड़ोसी जा रहा था। उसने कहा, हो न हो! उसने उसे गौर से देखा कि अगर चोरी इसने की होगी तो इसकी चाल से पता चलेगा। उसकी चाल बिल्कुल पक्के चोर की मालूम पड़ी। उसने गौर से देखा, जाकर और किनारे खड़ा हो गया दीवाल के, उसको बिल्कुल आंखें गड़ा कर देखा, और उसे लगा कि पड़ोसी घबड़ा भी रहा है, आंखें झुकाए है, शामदा है, उसे बिल्कुल पक्का हो गया। फिर दो-चार दिन वह देखता ही रहा, पड़ोसी जब भी निकले, यहां-वहां जाए; और हमेशा उसका भरोसा मजबूत होता चला गया कि इसी ने चुराई है। हर बात ने इसी की गवाही दी। उसका चलना, उसका उठना, उसका बैठना, उससे जयरामजी भी की तो जैसे उसने डरकर जयराम जी का उत्तर दिया, हर चीज से पता चला कि चोर यही है।
पांचवें दिन वह बगिया में फिर काम कर रहा था कि मिट्टी में ही गड़ी हुई उसे अपनी खुरपी मिल गई। अरे, उसने कहा कि मैंने भी नाहक बेचारे पड़ोसी को

दोष दिया--तभी पड़ोसी जा रहा था, रास्ते से निकल रहा था, उसने उसे गौर से देखा, ऐसा भला और प्यारा आदमी! चाल तो देखो, बिल्कुल साधुओं जैसी है! चेहरे का भाव तो देखो, कैसा प्रसादपूर्ण है!
तुम जो देखना चाहते हो, देख लोगे। तुम्हें आदमी में शैतान मिल सकता है, तुम्हें आदमी में भगवान मिल सकता है। फिर तुम्हें जिसके साथ रहना हो, उसे खोजो। कुछ लोग शैतानों में ही रहना पसंद करते हैं, वे सबमें शैतान खोजते रहते हैं। उनकी दुनिया नरक हो जाती है। उनको हर आदमी बुरा दिखाई पड़ता है, फिर उन्हीं बुरे आदमियों के बीच रहना पड़ता है--जाओगे कहां, यही तो आदमी है! इन्हीं आदमियों के बीच कोई-कोई स्वर्ग में रह लेता है, क्योंकि वह हर आदमी में भला देखता है। हर आदमी में भला देखा जा सकता है।
और सदगुरु तो बड़ी विरोधाभासी घटना है। सदगुरु में तो एक अतिक्रमण है--
इस जगत का है सदगुरु और इस जगत के पार का भी। उसमें बड़ा विरोधाभास है। शरीर में है और शरीर के बाहर है। संसार में है और संसार उसके भीतर नहीं है। उसमें दो गणित का मेल हो रहा है। दो बिल्कुल अलग गणित, दो बिल्कुल अलग जीवन-नियम उसमें मिल रहे हैं, जो बिल्कुल एक-दूसरे के विपरीत हैं। तुम जो भी देखना चाहो।
जो उसके विरोध में देखना चाहेगा, वह इस जगत के नियम को उसमें देख लेगा। जो उसके पक्ष में देखना चाहेगा, वह उस जगत के नियम को उसमें देख लेगा। अहंकार तर्क खोज लेता है। तुम बुद्ध के पास होते हो तो तुम तर्क खोज लेते हो। तुमने खोजे थे--शायद तुम में से कुछ रहे भी हों। क्योंकि तुम नये नहीं हो। यहां कोई नया नहीं। ये सब पुराने यात्री हैं। ये सब यहां चल ही रहे हैं, चलते ही रहे हैं। तुम्हारे सिर पर इतनी धूल है सदियों की, जन्मों- जन्मों की। तुम बुद्ध को भी बच कर आ गए हो, तुम महावीर को भी बचकर आ गए, तुम कृष्ण को भी बच कर आ गए, तुमने हर एक में कुछ न कुछ भूल निकाल ली।
.जरा सोचो, अगर तुम्हें भूल निकालनी है, कृष्ण में कोई कमी है भूल निकालने की! कितनी भूलें न तुम निकाल लोगे! न निकालना चाहो, एक बात। मगर अगर निकालना चाहो तो कितनी भूलें न निकाल लोगे। भूल की दृष्टि से भी कृष्ण पूर्णावतार हैं। औरों ने भूलें की हैं तो छोटी-छोटी की हैं। राम ने भी की होंगी और बुद्ध ने भी की होंगी, मगर उनकी भूलों की मर्यादा है। राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, भूल भी मर्यादा में करते हैं! कृष्ण ने तो ऐसी भूलें कीं कि अमर्याद हैं। कितनी भूलें तुम नहीं निकाल लेते कृष्ण की, जरा एक बार सोचना एकांत में बैठ कर और हो सकता है तुम कृष्ण के भक्त होओ और मंदिर में खड़ी मूर्ति की पूजा करते हो और घर में तुमने कृष्ण का झूला बना रखा हो और उनको झूला झुलाते हो--जरा एक बार बैठ कर, झूला रोक कर, आंख बंद करके सोचना, किसको झूला झुला रहे हो? सोलह हजार स्त्रियां थीं इनकी। ये सब स्त्रियां इनकी अपनी भी नहीं थीं, इनमें कई तो दूसरों की पत्नियां थीं जिनको वे भगा लाए थे। फिर झूला न हिलाओगे! फिर ऐसा होगा कि अब इस झूले-सहित इन सज्जन को घर के बाहर कैसे निकालें?
नहीं, लेकिन तुम सोचते नहीं, मुर्दा से क्या लेना-देना, मुर्दा को झूला झुलाते रहो। असली कृष्ण के पास होते तो तुम्हें दिक्कतें आ जातीं। बुद्ध के पास दिक्कतें आ गई थीं। कृष्ण में तो भूलें साफ-साफ दिखाई पड़ती हैं। कोई बहुत खोज-बीन की जरूरत नहीं है। कृष्ण तो बड़े प्रकट हैं, सीधे-साफ हैं। कृष्ण में तो जिसको श्रद्धा करने की जिद्द ही हो गई हो, वही कर सकता है। जिसने तय ही कर लिया हो कि करो जो तुम्हें करना हो मगर हम श्रद्धा करेंगे।
और यही कृष्ण की खूबी है। क्योंकि इतनी चुनौती देते हैं तुम्हारी श्रद्धा को, फिर भी अगर तुम श्रद्धा कर लोगे तो तर जाओगे। यह कृष्ण की खूबी है। इतना बड़ा सदगुरु कभी हुआ नहीं, क्योंकि श्रद्धा को इतनी चुनौती किसी ने कभी दी नहीं। जो कर सकें श्रद्धा, वे तर ही जाएंगे, अब और क्या बचा? कृष्ण पर श्रद्धा कर ली तो अब किस पर अश्रद्धा रह जाएगी? आखिरी कदम उठा लिया, आखिरी परीक्षा पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए।
बुद्ध पर श्रद्धा करना ज्यादा आसान है। लेकिन बुद्ध पर भी अश्रद्धा करने वाले लोग हैं। छोटी-छोटी बात में भूल निकाल लेते हैं। जिनको

अश्रद्धा करने की ही जिद है, वे बुद्ध में भी भूल निकाल लेते हैं। वे कहते हैं कि अगर बुद्ध परम ज्ञानी हैं तो बीमार क्यों होते हैं? बुद्ध की मृत्यु हुई विषाक्त भोजन करने से। जो विरोधी हैं वे कहते हैं, जिनको इतना भी पता न चला कि जो भोजन हम कर रहे हैं यह विषाक्त है, इनको त्रिकालज्ञ कैसे कहोगे? त्रिकालज्ञ का तो अर्थ होता है, जो तीनों काल जानता है। जो पहले हुआ है वह भी जानता है, जो अभी हो रहा है वह भी जानता है जो आगे होगा वह भी जानता है। जैनों ने यही संदेह उठाया है बुद्ध पर कि बुद्ध सर्वज्ञ नहीं हैं। तीनों काल की तो छोड़ो, भोजन पर बैठे हैं थाली पर और जो भोजन है वह विषाक्त है, इसका भी पता नहीं चल रहा, विषाक्त भोजन कर गए और मारे गए उसी से। यह कैसी सर्वज्ञता है?
अब देखना यह घटना, तुम्हें भी लगेगी कि बात तो ठीक है, अगर सर्वज्ञता बुद्धत्व का लक्षण है, तो यह कैसी सर्वज्ञता है? लेकिन जिसको श्रद्धा है, वह क्या देखता है? वह देखता है बुद्ध की अनुकंपा। वह कहता है कि बुद्ध को दिख रहा है कि यहां जहर है, लेकिन जिस आदमी ने भोजन तैयार किया है उसने इतने प्यार से तैयार किया है कि अब उसके सामने यह कहना कि इसमें जहर है, उसके हृदय को आघात पहुंचाना होगा। इससे तो जहर को पी जाना ही बेहतर है। उसको आघात नहीं पहुंचाना चाहते।
वह एक गरीब आदमी था। वर्षों से बुद्ध को निमंत्रण दे रहा था। फिर जब बुद्ध उसके गांव आए, तब वह सुबह तीन बजे रात ही आकर बुद्ध के दरवाजे पर खड़ा हो गया--नहीं तो और लोग आ जाते थे, पहले निमंत्रण दे जाते थे--वह तीन बजे जब बुद्ध उठे, आँख खोली, तो पहले उसे ही खड़ा पाया। पूछा कि तू भई, इतनी रात? उसने कहा कि आज तो मैं निमंत्रण पहला मेरा है, अभी कोई दूसरा आया नहीं है-- जब वह निमंत्रण दे ही रहा था तभी सम्राट प्रसेनजित भी आ गए, लेकिन बुद्ध ने कहा अब देर हो गई। पहला निमंत्रण तो उसका है। अब तो मैं उसके घर भोजन करूंगा।
निमंत्रण तो दे आया, लेकिन उसके घर भोजन तो कुछ था नहीं। बिहार का गरीब आदमी! ... बिहार कोई आज ही गरीब नहीं है, वह पहले ही से गरीब है। बिहार के लोग कुशल हैं गरीब होने में। सदियों से उन्होंने उसका अयास कर रखा है। ... उसके पास खिलाने को तो कुछ था नहीं। बिहार में गरीब आदमी उन दिनों--और शायद अब भी यह करते हों--बरसात में जो कुकुरमुत्ते पैदा हो जाते हैं, उनको इकट्ठा कर लेते हैं। उनको सुखा कर रख लेते हैं। फिर उनकी साल भर सब्जी बनाते हैं। अब कुकुरमुत्ता कोई खाने की चीज नहीं है, मगर पेट बिल्कुल खाली हो तो कुछ भी खाने की चीज हो जाती है! कुकुरमुत्ते कभी-कभी विषाक्त होते हैं, क्योंकि कहीं भी उगते हैं, अक्सर तो गंदी जगह में उगते हैं--इसीलिए तो कुकुरमुत्ता उसका नाम है, कि कुत्ता वहां पेशाब कर गया है। लोग समझते हैं कुत्ते के पेशाब करने से उगता है। मगर अक्सर गंदी जगहों में उगते हैं-- कूड़ा-करकट भरा हो, लकड़ी इत्यादि पड़ी हों पुरानी, सीली, उनमें उग आते हैं। कुकुरमुत्ते की सब्जी बनाई उसने--और तो उसके पास सब्जी थी भी नहीं--वह विषाक्त थी। जिनको बुद्ध से प्रेम है, जिनको बुद्ध से श्रद्धा है, जो सदगुरु के साथ होना चाहते हैं, वे कहते हैं--बुद्ध ने देखा, लेकिन बिना कुछ कहे चुपचाप भोजन कर लिया। विषाक्त था, जहरीला था, कड़वा था। इतना ही नहीं कि भोजन कर लिया, उसे धन्यवाद दिया। उसके प्रेम को देखा, उसके भोजन को नहीं। भोजन कड़वा हो, लेकिन प्रेम ने उसे मधुर बनाया था। और कभी-कभी ऐसा होता है, सम्राटों के घर भोजन करो और मीठा नहीं होता, क्योंकि प्रेम का माधुर्य नहीं होता।
लौटकर जब अपने झोंपड़े पर आ गए तो उन्होंने जो पहली बात कही अपने संन्यासियों से, वह यही कही कि जाकर गांव में खबर कर दो कि उस गरीब आदमी का बड़ा भाग्य है--दुनिया में दो सबसे बड़े भाग्यशाली हैं, वह मां जो सबसे पहला भोजन देती है बुद्धपुरुष को और वह व्यक्ति जो अंतिम भोजन देता है--यह बड़ा भाग्यशाली है, इसने अंतिम भोजन दे दिया। आनंद ने कहाः आप यह क्या कह रहे हैं? बुद्ध ने कहाः तू जा और गांव में डुंडी कर, नहीं तो मेरे मर जाने के बाद लोग उसे मार डालेंगे। उसे क्षमा नहीं कर सकेंगे। जाकर गांव में खबर कर दे कि वह धन्यभागी है।

अब जिसको श्रद्धा है, उसे यह दिखाई पड़ता है। यह जिसको श्रद्धा है, उसने यह कहानी लिखी। उसने यह बुद्ध का भीतरी भाव लिखा। जिसको श्रद्धा नहीं है, उसे लगता है यह अज्ञानी। इनको यह भी पता नहीं चल रहा है कि सामने रखा भोजन विषाक्त है, करने-योग्य नहीं है। यह सर्वज्ञ कैसे? यह त्रिकालज्ञ कैसे? इनका ज्ञान कैसा? अज्ञानी हैं, जैसे और सब अज्ञानी हैं वैसे ही अज्ञानी हैं। जिनको सामने खड़ी मौत नहीं दिखाई पड़ रही है, अपनी मौत नहीं दिखाई पड़ रही है, वे दूसरों को क्या अमृत के दर्शन करा सकेंगे?
अब तुम देखते हो, आदमी तरकीबें खोज ले सकता है! सदा से यह हुआ है। सदा
यह होता रहेगा।
गुरु तो मारनहार है! उसके पास तो वे ही आ सकते हैं जिन्हें गर्दन कटाने की तैयारी है। जो कहते हैं, देख लिया अपनी तरह से जीकर, कुछ पाया नहीं, अब किसी के चरणों में सिर रख दें और उसके इशारे से जीकर देख लें, शायद कुछ मिल जाए। अपनी तरफ से जीए, दुःख पाया, पीड़ा पाई, विषाद पाया। अब किसी और के इशारे से चलकर देख लें, हम तो हार गए हैं, शायद कोई और जीत जाए। किसी और के भाग्य से अपना भाग्य जोड़कर देख लें, हमारा भाग्य तो अमावस बन गया है, शायद किसी और के भाग्य के साथ पूर्णिमा हो जाए। तो जो मरने को तैयार है, वही गुरु के पास आ पाता है। पहला अनुभव तो गुरु का मारनहार की तरह ही होता है। और गुरु चोट करना शुरू करता है। और गुरु सब तरफ से काटता है। तुम्हारे धर्म को काटेगा, तुम्हारे शास्त्र को काटेगा, तुम्हारी धारणा को काटेगा, तुम्हारे सिद्धांत को काटेगा, तुम्हें सब तरफ से मारेगा। वही तुम नहीं समझ पाओगे तो चूक जाओगे।
छोटी सी बात तुम्हारे धर्म के खिलाफ कह देगा--और तुम्हारा धर्म क्या है? तुम्हारे पास धर्म ही होता तो तुम्हें गुरु के पास आने की जरूरत न थी! थोड़ी सी बात तुम्हारे खिलाफ कह देगा कि बस तुम बेचैन हो गए, कि तुम चले, कि यह जगह अपने लिए नहीं है। तुम अपना सहारा खोजने आए थे? तुम अपने तर्कों के लिए और तर्क खोजने आए थे? तुम चाहते होगुरु तुम जैसे हो उसको और मजबूत कर दे? गुरु तुम्हारा दुश्मन नहीं है। तुम वैसे ही काफी मजबूत हो, इसीलिए काफी दिन से भटक रहे हो। अब तुम्हें कमजोर करना है। अब तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच लेनी है।
इसलिए ख्याल रखना, गुरु अगर तुम मुसलमान हो और मुसलमान धर्म के खिलाफ कुछ कहे, तो उसे मुसलमान धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है, वह सिर्फ तुम पर चोट कर रहा है। उसका प्रयोजन कुछ और है। अगर गुरु हिंदू धर्म के खिलाफ कुछ कहे तो वह हिंदू धर्म के खिलाफ कुछ भी नहीं कह रहा है, उसे क्या लेना-देना हिंदू धर्म से, वह तो सदा ही धर्म के पक्ष में है, मगर तुम्हारे हिंदूपन के खिलाफ कुछ कह रहा है। वह यह कह रहा है, तुम्हारा यह हिंदूपन का जो आग्रह है, यह तुम्हें अटका रहा है, इसे जाने दो, इसे बह जाने दो, तुम इससे मुक्त हो जाओ, यह दीवाल गिरा दो। तो तुम्हारी बहुत-बहुत धारणाओं पर चोट करनी पड़ेगी। कल ही मैंने तुमसे कहा कि महावीर को सांप ने काटा, जैन कहते हैं दूध निकला, तो मैंने कहा कि दूध तो निकल नहीं सकता क्योंकि जब साँप ने काटा तब उम्र महावीर की कम से कम पचास साल थी! तब तक तो दही जम गया होगा। बस, किसी जैनी को दुख हो गया। उसने पत्र लिख दिया। उनसे मैं कहता हूं कि मेरी बात गलत थी। असल में दही नहीं निकला, घी निकला था। पचास साल, दही तो कब का जम गया होगा, मेरी बात गलत है, जमा-जमा दही के ऊपर मक्खन की पर्त भी जम गई होगी। और महावीर नंग-धड़ंग धूप में खड़े रहते थे, घी बन गया होगा। मैं अपनी बात वापस लेता, कल जो मैंने कहा था वह गलत था, उसमें सुधार कर लो--घी निकला था। इससे दिल प्रसन्न होता है!
तुम पर चोट कर रहा हूं, महावीर से क्या लेना-देना है? जब महावीर पर चोट
कर रहा हूं तब भी तुम्हारे महावीर पर चोट कर रहा हूं। मेरे भी महावीर हैं। वह प्रतिमा और है। उस प्रतिमा पर चोट नहीं कर रहा हूं। उस प्रतिमा को ही निखारने के लिए तुम्हारी प्रतिमा पर चोट कर रहा हूं। मेरे महावीर तुम्हें दिखाई पड़ सकें, इसलिए तुम्हारे महावीर को मुझे छीनना पड़ेगा। कठिन होगा, पीड़ादाई होगा, जैसे कोई चमड़ी उधेड़ रहा हो तुम्हारी ऐसा होगा। कितने-कितने प्रेम से तुमने अपनी प्रतिमा सजाई है और मैं उठा कर हथौड़ी उसे तोड़ने लगा!

मैं मूर्तिभंजक हूं। लेकिन वस्तुतः जिनकी मूर्तियां तोड़ी जा रही हैं उनकी मूतियां नहीं तोड़ी जा रही हैं, उनके बहाने तुम्हारी मूर्ति तोड़ी जा रही है। वे तुम्हारी मूतियां हैं, तुम ही उनके नियंता हो। तुम्हीं उनके केंद्र हो। तुम्हारी सब मूतियां तोड़ दी जाएं तो तुम्हारा अहंकार टूट जाएगा।
मैं तुम्हारे हाथ से पूजा के थाल छीन लूंगा, तुम्हारे ओंठों पर आई हुई प्रार्थनाएं छीन लूंगा। छीनना ही पड़ेगा। तभी तो उस सहज प्रार्थना को जन्म मिल सकता है जो तुम्हारे हृदय में दबी पड़ी है, जो मुझे दिखाई पड़ रही है कि दबी पड़ी है। मैं देख रहा हूं कि एक बीज पड़ा है और उसके ऊपर एक चट्टान को हटाना पड़ेगा। तो बीज उमगे। तुम्हारे भीतर प्रार्थना पड़ी है, मगर तुम हो कि सीखी हुई प्रार्थना में अटके हो। हरे कृष्णा हरे रामा कर रहे हो! उधर राम तुम्हारे भीतर पड़े हैं, वे कहते हैं--चट्टान तो हटाओ, तुम कहते हो--चुप भी रहो, हम अभी भजन कर रहे हैं, भजन में बाधा मत डालो!
मैं इस चट्टान को हटाऊंगा। तो स्वभावतः जो मेरे पास आया है, उसे मैं पहले अगर मृत्यु जैसा मालूम पडूं तो आश्चर्य नहीं है। मृत्यु को जानकर भी जो टिक जाएगा, वही तारनहार रूप देख पाता है।
तुमने पूछा हैः "कृपया बताएं कि गुरु कब तक मारनहार रहता है और कब वह तारनहार बन जाता है?"
जब शिष्य मरने को राजी हो जाता है, तभी गुरु तारनहार बन जाता है। जब तक शिष्य मरने से बचता है, तब तक मारनहार रहता है। तुम्हारे मरने से बचने के कारण ही मारनहार रहता है। जब तुम खुद ही राजी हो जाते हो मरने को, फिर कौन मारने की तुम्हें जरूरत रही! फिर कोई प्रयोजन न रहा। जब तक तुम लड़ते हो तब तक मारनहार रहता है। जब तुम सब प्रतिरोध छोड़ देते हो, समर्पित हो जाते हो, तुम कहते हो--यह रहीगर्दन!
सैकड़ों वर्ष पहले भारत का एक अदभुत ज्ञानी बोधिधर्म चीन गया। उसने चीन में जाकर घोषणा कर दी कि मैं दीवाल की तरफ मुँह करके बैठा रहूंगा, जब तक कि असली शिष्य न आ जाएगा। वह नौ साल तक दीवाल की तरफ मुंह करके बैठा रहा। अपनी किस्म का आदमी था, झक्की था। दुनिया के सभी सदगुरु झक्की होते हैं। झक्की का मतलब यह कि वे अपने तरह के होते हैं। उन जैसा आदमी फिर दुबारा नहीं होता। अद्वितीय होते हैं, बेजोड़ होते हैं। फिर बोधिधर्म दुबारा नहीं होता। वैसा रंग और रूप परमात्मा एक ही बार लेता है।
वह नौ साल तक बैठा रहा दीवाल की तरफ मुंह करके! न मालूम कितने लोग आए, सम्राट आया देश का, उसने प्रार्थना की कि आप मेरी तरफ मुंह करें। आप दीवाल की तरफ मुंह क्यों किए हुए हैं? बोधिधर्म ने कहा कि मैंने सब चेहरों में सिर्फ दीवालें देखीं, थक गया, इससे यह दीवाल बेहतर। जब कोई चेहरा आएगा जिसमें मैं पाऊंगा दीवाल नहीं है, द्वार है, तो मैं मुंह फेरूंगा। तुम वह चेहरे नहीं हो, जाओ! रफा-दफा हो जाओ! बड़े-बड़े पंडित आए--होड़ लग गई, कौन बोधिधर्म का मुंह अपनी तरफ फिरवा लेगा? बड़े ज्ञानी आए, मगर बोधिधर्म था कि दीवाल की तरफ बैठा रहा सो बैठा रहा।
फिर आदमी आया नौ साल के बाद। उस आदमी का नाम था, हुई नेंग। बर्फ पड़ रही थी, सर्दी के दिन थे, बर्फ जमी थी, बोधिधर्म बैठा है, उसके चारों तरफ बर्फ जम गई है, और वह दीवाल की तरफ देख रहा है। हुई नेंग उसके पीछे आकर खड़ा हो गया, बोला भी नहीं। उसने यह भी नहीं कहा कि मेरी प्रार्थना है, मेरी तरफ देखिए। वह खड़ा ही रहा, खड़ा ही रहा, चौबीस घंटे खड़ा रहा। आखिर बोधिधर्म को ही पूछना पड़ा कि भाई, तुम यहां क्या कर रहे हो? पूछना ही पड़ेगा, चौबीस घंटे से यह आदमी खड़ा है, बोलता ही नहीं, बोधिधर्म भी डरा होगा कि मामला क्या है? कोई हमसे भी ज्यादा पागल आदमी आ गया! बर्फ जमी जा रही है, सर्द हुआ जा रहा है और यह खड़ा है। हुई नेंग ने कहा कि कुछ भेंट लेकर आया हूं आपके लिए। और तलवार निकाली और अपना हाथ काट कर भेंट कर दिया। कटा हुआ हाथ, लहू की धार और हुई नेंग ने कहाः फिरो मेरी तरफ, अन्यथा गर्दन उतार दूंगा। और कहते हैं तत्क्षण बोधिधर्म फिरा और कहा कि रुक भाई, गर्दन मत उतार देना। तेरी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। जो गर्दन देने को तैयार है, उसकी गर्दन लेने की कोई

जरूरत नहीं है। जो गर्दन देने को तैयार नहीं है, उसकी गर्दन लेने की जरूरत है।
इस भेद को ख्याल रखना, इस बात को ख्याल रखना। गुरु तब तक मारनहार है,
जब तक तुम लड़ रहे हो, बचा रहे हो अपनी गर्दन। अपने हाथ में डाल लिए हो, वह जहां से चोट करता है वहीं से बचा लेते हो। जब तक तुम बचाव कर रहे हो, गुरु मारनहार है। जब तुम ढाल फेंक दोगे, गर्दन सामने रख दोगे, कहोगे--उठाओ तलवार और काट दो मेरी गर्दन, उसी क्षण गुरु तारनहार हो जाता है।
पूछा तुमनेः "यह बात शिष्य पर निर्भर है या गुरु पर?"
यह बात शिष्य पर निर्भर है। गुरु पर निर्भर नहीं है। गुरु तो सदा तारनहार है। गुरु का तो अर्थ ही होता है, जो तारनहार है। और क्या गुरु का अर्थ होता है? जो पार ले जाए, जो उतार दे पार। गुरु तो सदा ही तारनहार है। लेकिन चूंकि शिष्य अभी डरता है, नाव में बैठने से, डरता है क्योंकि नाव में बैठने की शर्तें पूरी नहीं कर पाता; गुरु कहता है--तुम तो नाव में बैठ जाओ लेकिन यह जो तुम झोली साथ में लिए हो, यह वहीं रख दो। झोली में वह अशर्फियां लिए हुए है। वह कहता है कि झोली के साथ ही नाव में आ जाने दो। गुरु कहता है--नाव में तुम तो आ जाओ, मगर यह शास्त्र जो तुम सिर पर रखे हो, इन्हें किनारे पर रख दो। यह नाव डुबानी नहीं है। शास्त्र वजनी हैं, ये नाव को डुबा देंगे। वह कहता है कि मैं कैसे शास्त्र को छोड़ कर आ सकता हूं? यह तो रामायण है! यह कोई साधारण किताब थोड़े ही है, यह कुरान है! यह कोई साधारण किताब थोड़े ही है, पवित्र बाइबिल है! मैं इसको कैसे छोड़ सकता हूं? मैं तो इसको साथ ही लेकर जाऊंगा। तो गुरु मारनहार लगता है। लेकिन जो राजी है, जो कहता है--यह छोड़ी किताब, यह छोड़ी मूर्ति, जो सब छोड़ने को राजी है, उसके लिए तत्क्षण गुरु तारनहार हो गया।
गुरु तो तारनहार था ही, सिर्फ शिष्य के देखने में परिवर्तन होते हैं।
जब तक तुम गुरु से बच रहे हो, जब तक तुम गुरु के साथ चतुरता का व्यवहार कर रहे हो, तब तक मारनहार है। जब तक तुम गुरु के साथ चालबाजियां कर रहे हो, बचाव कर रहे हो, होशियारियां कर रहे हो; जब तक तुम गुरु के साथ राजनीतिज्ञ का व्यवहार कर रहे हो, कूटनीतिज्ञ का व्यवहार कर रहे हो, तब तक मारनहार है। जैसे ही तुम सरल हो जाते हो, निर्दोष हो जाते हो, तुम्हें उसका तारनहार रूप दिखाई पड़ जाता है।
और जिंदगी जिसको समझ में आ गई हो, जिंदगी के दुख जिसने देख लिए हों और जिंदगी की व्यर्थता पहचान ली हो, वह गुरु से लड़ेगा नहीं। लड़ने का यहां है क्या तुम्हारे पास?
रात-भर जब जहन में बोता हूं फनपारा कोई
काटता हूं सुबह दम टूटा हुआ तारा कोई
रोशनी किसको मिली है किरमके-शबताब में
किसने इत्मीनान पाया है फसूने-ख्वाब में
सुबह से जब शाम तक कंगाल हो जाता हूं मैं
आप अपने माल का दल्लाल हो जाता हूं मैं
कौड़ियों के मोल बिक जाते हैं फनपारे मेरे
बुझ गए हैं बारहा कीचड़ में अंगारे मेरे
जब तुम्हें जिंदगी दिखाई पड़ती है सपना ही सपना है, और जब तुम जिंदगी
की कीचड़ में अपने सारे अंगारों को बुझते हुए देखते हो, अपनी सारी आशाओं को मरते हुए देखते हो, तो तुम फिर बचाव नहीं करोगे सदगुरु से। तुम्हारे पास बचाने को कुछ बचा ही नहीं। तुमने खुद ही देख लिया है कि तुम्हारे सिद्धांत तुम्हें पार नहीं कर पाए। तुम उन्हें तुम खुद ही छोड़ दोगे। गुरु को कहना भी नहीं पड़ेगा कि छोड़ दो। तुमने खुद ही देख लिया है कि तुम्हारे तिलक-चंदन तुम्हें बचा नहीं पाए, तुम खुद ही छोड़ दोगे। तुमने खुद ही देख लिया है तुम्हारा औपचारिक धर्म, क्रियाकांड, मंदिर-मस्जिद तुम्हें बचा नहीं पाए। रोशनी किसको मिली है किरमके-शबताब में
किसने इत्मीनान पाया है फसूने-ख्वाब में

किसने सपने में शांति पाई है? किसने सपने में आनंद पाया है? और मिल भी जाए सपने में आनंद तो सुबह जागकर पता चलता है कि हाथ में कुछ नहीं है, राख भी नहीं।
कौड़ियों के मोल बिक जाते हैं फनपारे मेरे
बुझ गए हैं बारहा कीचड़ में अंगारे मेरे
.जरा देखो अपनी जिंदगी को, तुम्हारे सारे अंगारे कीचड़ में पड़े हैं और
सब बुझ गए हैं, रोज बुझे जा रहे हैं, रोज तुम बुझे जा रहे हो, रोज मौत करीब आ रही है; जल्दी ही यह अंगारा जो जिंदगी है, बुझ जाएगी। जिसको यह बात दिखाई पड़ जाती है इस जिंदगी की व्यर्थता, वह लड़ता नहीं, वह बिना लड़े हथियार रख देता है। समर्पण का वही तो अर्थ है--हथियार रख देना। वह जाकर गुरु के चरणों में कहता है कि मैंने जीकर देख लिया, सब उपाय कर लिए, सब दौड़-धाप, आपा-धापी कर ली, कुछ हाथ लगता नहीं, अब आप जैसा कहें! आप जो कहें! अब आपकी आज्ञा ही मेरा जीवन होगा। अब मेरा मन मेरा मालिक नहीं होगा, आप मेरे मालिक हैं। अब मेरे मन की मैं नहीं सुनूंगा; मेरा मन लाख कुछ कहे, मैं आपकी सुनूंगा। मेरा मन विरोध में रहे, रहा आए, मैं आपकी गुनूँगा। उसी क्षण गुरु तारनहार हो गया।
दीपमाला की यह बेचैन बिलगती हुई रात
इसके दामन में मेरे अश्केरवां पलते हैं
हमसफर कोई नहीं है मेरी तन्हाई का
चंद साए हैं जो हमराह मेरे चलते हैं
डबडबाई हुई आंखों में है सावन की झड़ी
और दिल में मेरे यादों के शजर फलते हैं
देख मैंने भी मनाई है यहां दीवाली
मेरी पलकों पे भी अश्कों के दीये जलते हैं
और क्या है तुम्हारी दीवाली! तुम्हारी आंखों पर तुम्हारे आंसुओं के अतिरिक्त तुम्हारे पास और कोई दीये नहीं हैं।
दीपमाला की यह बेचैन बिलगती हुई रात
इसके दामन में मेरे अश्केरवां पलते हैं
जिंदगी भर तुमने दामन में भरा क्या है? तुमने अपने आंचल में भरा क्या है? तुम जरा झोली तो खोलो! जिसमें तुम हीरे-जवाहरात समझे हो, सिवाय तुम्हारे आंसुओं के और कुछ भी नहीं हैं। जहां तुमने मोती समझे हैं, वहां बस तुम्हारे आँसू हैं और कुछ भी नहीं है।
दीपमाला की यह बेचैन बिलगती हुई रात
इसके दामन में मेरे अश्केरवां पलते हैं
हमसफर कोई नहीं है मेरी तन्हाई का
चंद साए हैं जो हमराह मेरे चलते हैं
क्या है तुम्हारे पास? तुम्हारी छाया ही है, बस और कुछ भी नहीं।
चंद साए हैं जो हमराह मेरे चलते हैं। यहां कौन संगी है, कौन साथी है? यहां कौन मित्र है? यहां कौन अपना है? नहीं, तुम्हारी पत्नी भी तुम्हारी अपनी नहीं और तुम्हारा पति भी तुम्हारा अपना नहीं। तुम्हारा बेटा भी तुम्हारा अपना नहीं। तुम्हारा मित्र भी तुम्हारा अपना नहीं। जब तुम देखोगे कि जिंदगी के सब नाते झूठे हैं, तब एक नया नाता पैदा होता है, वही गुरु और शिष्य का नाता है। उसके पहले पैदा नहीं होता। जब तक तुम्हें लग रहा है कि और सब नाते ठीक हैं, उन्हीं में एक नाता यह भी है, तब तक गुरु मारनहार है। क्योंकि वह तुम्हारे नातों को तोड़ेगा। वह तुम्हारे झूठे नाते झूठे हैं, ऐसा तुम्हें जगाएगा और दिखाएगा। अड़चन होगी। पीड़ा होगी। वह तुम्हारे घाव उघाड़ेगा। वह तुम्हें ऐसे बच नहीं जाने देगा। गुरु यह मानने को राजी नहीं हो सकता कि तुम्हारी पत्नी है, भाई है, माँ है, पिता है, ऐसे सब नातों में यह भी एक नया नाता है--यह गुरु और शिष्य का नाता। यह सब नातों में एक नाता नहीं है। सब नाते एक तरफ, यह नाता एक तरफ। अगर सब नाते भी गँवाना पड़ें, तो भी इस नाते के लिए गंवाए जा सकते हैं। तो ही गुरु तारनहार हो जाता है।
दीपमाला की यह बेचैन बिलगती हुई रात

इसके दामन में मेरे अश्केरवां पलते हैं
हमसफर कोई नहीं है मेरी तन्हाई का
अकेले हो तुम बिल्कुल, एकदम अकेले हो--तन्हा हो।
हमसफर कोई नहीं है मेरी तन्हाई का
चंद साए हैं जो हमराह मेरे चलते हैं
यहां छायाओं के अतिरिक्त तुम्हारा संगी-साथी कौन है? जिसको यह दिखाई पड़ता है, वह किसी रोशन व्यक्ति का हाथ पकड़ लेता है। वह कहता है--सायों के साथ, छायाओं के साथ बहुत चल लिए, अपनी ही परछाइयों के साथ बहुत चल लिए, अब किसी रोशनी का साथ करने की आकांक्षा जगी है। किसी रोशनी से मित्रता बना लेनी ही तो शिष्यत्व है।
डबडबाई हुई आंखों में है सावन की झड़ी
और दिल में मेरे यादों के शजर फलते हैं
देख मैंने भी मनाई है यहां दीवाली
मेरी पलकों में भी अश्कों के दीये जलते हैं
कुछ और तुम्हारे पास है भी नहीं, बस यादें हैं। अतीत की यादें हैं और भविष्य की कल्पनाएं हैं। और आंखें तुम्हारी आंसुओं से डबडबाई हैं। तुम्हारा जीवन एक लंबी मरुयात्रा है, जहां कहीं कोई मरूद्यान नहीं। जिस दिन यह दिखाई पड़ता है, उस दिन ही तुम समग्रभाव से झुकते हो। उसी झुकने में मारनहार गुरु तारनहार हो गया। वह तो तारनहार था, लेकिन तुम्हारे झुकने में तुम्हें दर्शन होता है।
गुरु तो एक दर्पण है। तुम जो शक्ल लेकर आते हो, वही शक्ल उस दर्पण में दिखाई पड़ती है। तुम डरे-डरे आते हो, गुरु मारनहार दिखाई पड़ता है। तुम निर्भय आते हो, अभय आते हो, गुरु तारनहार हो जाता है। गुरु तो एक दर्पण है। वह तो तुम्हारी ही तस्वीर को तुम्हारे पास वापस लौटा देता है। तुम अपने ही चेहरे उसमें देखते हो।
यूं झुका है नदी पै एक शहतूत
देखता हो वह जैसे आईना
पेड़ का अक्स है कि सब्ज आंचल
जिसमें लिपटा हो नुकरई सीना
डालियां लद गई हैं फूलों से
खुशबुओं से महक उठे साए
जैसे गिर कर दुल्हन के हाथों से
नागहां इत्रदां उलट जाए
गुरु को तो झील समझो। उसके किनारे खड़े हुए दरख्त हो जाओ। झुको, झांको। गुरु को दर्पण समझो। पास आओ, निकट आओ, अपने चेहरे को पहचानो। गुरु तो तुम जैसे हो वैसा ही तुम्हें दिखलाता है। इसलिए अगर तुम्हें गुरु में सिर्फ मारनहार दिखाई पड़े, तो समझना कि तुम्हारा भय प्रतिबिंबित हो रहा है। तुम्हें तारनहार दिखाई पड़े, तो समझना कि तुम्हारा अभय प्रतिबिंबित हो रहा है। मारनहार दिखाई पड़े तो समझना कि अभी इस मरने वाली जिंदगी में तुम्हारे कहीं मोह अटके हैं। तारनहार दिखाई पड़े तो समझना कि अमृत की झलक तुम्हें उसमें मिलनी शुरू हो गई, इस जिंदगी से तुम्हारे सब नाते-रिश्ते टूट गए हैं।
और ख्याल रखना, फिर दोहरा दूं, मैं तुमसे यही नहीं कह रहा हूं कि जिंदगी से नाते-रिश्ते तोड़ लेना, सिर्फ इतना कह रहा हूं कि जान लेना जिंदगी के नाते-रिश्ते बस कामचलाऊ हैं। तोड़ने में भी क्या रखा है! तोड़ते तो वे ही हैं जो इनको बहुत मान लेते हैं कि बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। एक आदमी कहता है पत्नी बड़ा महत्वपूर्ण नाता है; और एक आदमी पत्नी छोड़ कर भाग जाता है, वह कहता है कि पत्नी के रहते मैं परमात्मा को न पा सकूंगा--वह भी मान रहा है कि पत्नी का नाता बड़ा महत्त्वपूर्ण है, इतना महत्वपूर्ण कि परमात्मा से मिलने से रोक देगा। ये दोनों एक-से मूढ़ हैं। इनमें जरा भेद नहीं है। एक-दूसरे से उलटे चल रहे हैं, मगर इनकी मूढ़ता एक ही है। एक पैर के बल खड़ा है--गृहस्थ को मैं कहता हूं, पैर के बल खड़ा हुआ आदमी, प्राकृतिक

आदमी। और जिसको तुम साधु-महात्मा कहते हो, वह शीर्षासन करता हुआ आदमी। मगर वही आदमी शीर्षासन कर रहा है। कुछ फर्क नहीं है, कुछ भेद नहीं है।
तो मैं तुमसे जिंदगी के नाते-रिश्ते छोड़ कर भाग जाने को नहीं कह रहा हूं। उनमें कुछ मूल्य ही नहीं है, छोड़ कर क्या भागोगे? सपनों का त्याग क्या करोगे? इतना जानना भर है कि खेल है, अभिनय है। अभिनय को बड़ी सरलता से निभाओ, आनंद से निभाओ। अभिनय ही है तो गंभीरता की कोई जरूरत नहीं है। मौज से निभाओ। जैसे आदमी ताश खेलता है और ताश में राजा होते, रानी होते, और सब होते। मगर वे सब राजा-रानी ऐसे ही होते जैसे इंग्लैंड की रानी। कोई खास उसका मतलब नहीं होता। लेकिन जब तुम ताश खेलते हो तो राजा-रानी बड़े महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। या शतरंज खेलते हो तुम--हाथी-घोड़े, वजीर, राजा बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कुछ भी नहीं है वहां गरीब की शतरंज हो तो लकड़ी के, अगर अमीर की हो तो समझो हाथीदांत के, या सोने-चांदी के, मगर वहां कुछ भी नहीं है। मगर खेलने वाले खूब डूब जाते हैं।
कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि शतरंज में तलवारें खिंच जाती हैं। ऐसे गंभीर हो जाते हैं। गर्दनें कट जाती हैं। वहां कुछ था ही नहीं, .जरा सोचो। वह जो राजा और वजीर और हाथी और घोड़े, सब हंसते होंगे जब तुम तलवार खींच लेते होंगे कि हद हो गई; हद हो गई, हमारे भीतर कुछ भी नहीं है, न कोई राजा है, न कोई वजीर है, न कोई घोड़ा है, न कोई हाथी है, यहां तलवारें खिंच गईं। जिंदगी को गंभीरता से लो तो मैं तुम्हें सांसारिक कहता हूं। जिंदगी
को गैर-गंभीरता से लो, मैं तुम्हें संन्यासी कहता हूं। मेरा संन्यास और संसार में बस यही बुनियादी भेद है। जिंदगी एक खेल है। न इस तरह मूल्यवान है, न उस तरह मूल्यवान है। न इसमें कुछ रखा है पकड़ने में, न रखा है कुछ छोड़ने में।
तो जहां हो, वहीं जाग जाओ। और जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ जाए कि यह
सब खेल है--खेल तो है ही। और तुम जानते भी हो, ऐसा भी नहीं कि तुम जानते नहीं; छिपाते हो अपनी जानकारी क्योंकि तुम डरते हो इस जानकारी से, कहीं यह दिखाई न पड़ जाए कि यह खेल है। क्योंकि इस खेल में तुमने खूब जिंदगी गंवाई है। और इस खेल में तुमने काफी दाँव लगा दिए हैं। अब यह दिखाई न पड़ जाए कि यह खेल है!
मेरे एक मित्र जापान में एक घर में मेहमान थे। बूढ़े आदमी, एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, वहां एक दर्शनशास्त्र के सम्मेलन में भाग लेने गए थे। घर में बड़ा शोरगुल था एक दिन, बड़ी तैयारियां हो रही थीं, तो उन्होंने पूछाः क्या मामला है? तो जिसके घर मेहमान थे उस मेहजबा ने कहा कि आज शादी है। आप भी सम्मिलित हों। तो वे भी बेचारे नहाए-धोए, अच्छे कपड़े पहने, तैयार हुए--जब शादी है तो ढंग से तैयार हो जाना! और जब भीतर से बाहर आए और बारात देखी तो बड़े हैरान हुए! बारात गुड्डा-गुड्डियों की थी। इस घर के बच्चों ने अपने गुड्डे का विवाह पड़ोस की गुड्डी से किया हुआ था। मगर बड़े बैंड-बाजे बज रहे थे! और बड़ा उत्सव मनाया जा रहा था! और बारात भी चली और गांव के बड़े-बूढ़े भी सम्मिलित हुए। यह भी चले साथ, मगर बड़ी बेचैनी। और दूल्हे की जगह सिर्फ एक गुड्डा है--जापानी गुड्डा बनाने में कुशल होते हैं, बड़ा शानदार गुड्डा है--घोड़े पर सवार है। घोड़ा असली है, गुड्डा झूठा है। जब दूसरे पड़ोस में जहां बारात जानी थी पहुंच गई, वहां भी बड़ा साज-सामान है, वहां भी लोग इकट्ठे हैं, स्वागत बारात का किया गया--जैसे असली बारात चल रही हो!
बरदाश्त के बाहर हो गया तो पूछा कि मामला क्या है, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। और बच्चे अगर निकालते यह जुलूस तो ठीक भी था, मगर बड़े-बूढ़े भी इसमें सम्मिलित हुए हैं। तो जिस बूढ़े के घर वे मेहमान थे, उसने कहा कि सभी बारातें खेल हैं। यह भी खेल है। तुम जिन असली बारातों में सम्मिलित हुए हो, वे भी खेल है। इसमें हर्ज क्या है? इसमें इतने परेशान क्यों हुए जा रहे हो? बच्चों को मजा आ रहा है, हम सम्मिलित हो गए हैं तो उनको और भी मजा आ रहा है। हम सम्मिलित हो गए हैं तो उनके खेल को बड़ी गंभीरता आ गई है; खेल में बड़ा प्राण आ गया, बल आ गया। हम जान कर सम्मिलित हुए हैं कि खेल है। इसलिए हम

सम्मिलित भी हैं और नहीं भी हैं। बच्चे अभी अनजाने हैं, उनको खेल नहीं है, असली बात हो रही है। वे भी बड़े हो जाएंगे तब समझ लेंगे कि खेल है।
इतना ही फर्क है। संसारी अभी बचकाना है, उसने खेल को असली समझ लिया है। संन्यासी जाग गया, थोड़ा होश से भरा, प्रौढ़ हुआ, उसने खेल को खेल की तरह पहचान लिया। अब भागना कहां है, अब जाना कहां है? और अभी बहुते बच्चे हैं जो खेल में उलझे हैं, तुम भी उनके साथ खड़े हो। पर फर्क हो गया।
मुझसे लोग पूछते हैं--आप अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को क्यों नहीं कहते? मैं क्यों कहूं छोड़ने को? परमात्मा ने ही नहीं छोड़ा है अभी तक संसार, संन्यासी क्यों छोड़े! कोई संन्यासी को परमात्मा से ऊपर जाना है! कोई परमात्मा से भी बड़े होने की आकांक्षा है! परमात्मा खेल खेल रहा है। इसलिए हम परमात्मा के खेल को लीला कहे हैं।
लीला का मतलब समझो।
लीला का मतलब समझ गए कि तुम सारे धर्मों का सार समझ गए। खेल है, बस गंभीरता से मत लो। जिस दिन तुम खेल को खेल की तरह जान लोगे, उस दिन इस जगत में गंभीरता से लेने की एक ही बात रह जाती है--वह गुरु और शिष्य का संबंध। वह पर खेल नहीं है।
क्यों?
वह भर खेल नहीं है, क्यों, क्योंकि उसके माध्यम से सत्य का अनुभव होगा। बाकी तो सारे माध्यम और-और असत्यों में ले जाएंगे। तो खेल की और गैर-खेल की मेरी परिभाषा भी समझ लो। खेल वह है जो और खेलों में ले जाए। वह खेल नहीं है जो खेलों के बाहर ले जाए। यहां एक ही द्वार है, गुरु-शिष्य का संबंध, जो संसार के पार ले जाता है।

आखिरी प्रश्न: भगवान, आपसे इस दास का निवेदन है कि आप प्रवचन में जब
भी कहते हैं, "इस दुनिया से जाने के पहले", या, "जब मैं नहीं रहूंगा," तब मेरे कलेजे को चीर देते हैं। बहुत वेदना होती है। कृपया इन शब्दों को मत कहें।

सतपाल! इसीलिए ये शब्द कहे जाते हैं कि कलेजे को चीरें। अभी कोई जा थोड़े ही रहा हूं! मगर ऐसा न हो कि मैं चला जाऊं और तुम्हारा कलेजा न चिर पाए। तुम्हारे कलेजे को चीरकर जा सकूं, इसीलिए बार-बार हर तरह से चोट करता हूं। यह भी चोट का एक हिस्सा है।
अब अगर महावीर पर चोट करता हूं, तो जैन पर चोट होती है। मगर तुममें यहां बहुत हैं जिनको अब महावीर से कुछ लेना नहीं, बुद्ध से कुछ लेना नहीं, मुझसे ही सब लेना है, तो मुझ पर भी चोट करता हूं। तो मैं कहता हूं कि अब जाता हूं, कि अब सम्हलो, कि अब यह दीया बुझा, कि अभी देखना हो तो देख लो, रोशनी मौजूद है, इस रोशनी में आँख खोल लो, तुम इसी मस्ती में मत पड़े रहना कि अब क्या करना है, गुरु तो मिल गए! गुरु मिले, तब कुछ करना है। अक्सर लोग सोचते हैं कि गुरु तो मिल गए, अब क्या करना है?
मेरे पास आकर कहते हैं कि अब आप मिल गए, अब क्या करना है? मैं उनसे कहता हूं--मेरे भाई, अब करना शुरू करना है। वह तो निश्चिंत हो जाते हैं, वे कहते हैं--बात खत्म हो गई, अब आप मिल गए, अब क्या करना है? आदमी बड़ा कुशल है। पहले भी कुछ नहीं कर रहे थे वह--ऐसा नहीं है कि पहले कुछ कर रहे थे--पहले भी परमात्मा की खोज के लिए कुछ नहीं कर रहे थे--अब उनकी तरकीब देखो, अब वह कहते हैं--अब आप मिल गए, अब क्या करना है? पहले भी नहीं कर रहे थे, अब भी नहीं करना है। फिर करोगे कब? फिर करोगे कैसे?
कुछ करना है। नींद नहीं तो टूटेगी नहीं। तुमने कभी एक अनुभव किया? जब सपना कभी-कभी बहुत दुख-स्वप्न हो जाता है तो नींद अपने आप टूट जाती है। तुम कोई सपना देख रहे हो कि तुम भागे जा रहे हो और तुम्हारे पीछे एक चीता लगा है--अब तुम कोई शिकारी भी नहीं हो, पता नहीं यह चीता तुम्हारे पीछे क्यों लगा है, मगर उसको शिकार करना है! अब तुम भागे जा रहे हो, बेतहाशा, पहाड़ी ऊँची होती जाती है और चीता करीब आता जाता है, चढ़ाव मुश्किल होता जाता है, हांफ रहे हो, पसीना-पसीना हो रहे हो, दोपहर है, भरी धूप है, और चीता पास आता

जाता है, तुम उसकी श्वास भी अपनी पीठ पर अनुभव कर पा रहे हो, अब मारे गए, तब मारे गए, और चीता बढ़ा चला आ रहा है--और उसने एक पंजा दिया, और तुम्हारी नींद खुल गई। अभी भी दिल धड़कता रहता है थोड़ी देर, नींद खुल जाने के बाद भी। अपनी पीठ भी तुम देखते हो कि मामला क्या है। कहीं कोई चीता नहीं हैं। सिर्फ तुम्हारी पत्नी का हाथ तुम्हारी पीठ पर है। कुछ मामला नहीं है, यह तो सभी का मामला चल रहा है, जो रोज दिन में चलता है, वही रात में चल रहा है, शिकार किया जा रहा है, मगर छाती धड़क रही है, पसीने-पसीने हो रहे हो, हांप रहे हो। थोड़ी देर में हंस कर शांत होकर सो जाते हो। जब सपना कभी बहुत दुख-स्वप्न जैसा हो जाता है, पीड़ा इतनी हो जाती है कि नींद नहीं बच सकती। मनोवैज्ञानिक से अगर तुम पूछोगे, तो तुम चकित होओगे जानकर कि मनोविज्ञान की जो आधुनिकतम खोजे हैं, वे कहती हैं कि सपने के आने का प्रयोजन ही एक है--नींद को बचाना। यह तुम चकित होओगे जान कर, आमतौर से तुम सोचते हो कि सपने के कारण हम सो नहीं पाए। आमतौर से लोग कहते हैं कि रात भर सपने आते रहे, सो नहीं पाए। उनको पता नहीं वे उल्टी बात कह रहे हैं। अगर सपने न आते तो वे बिल्कुल नहीं सो सकते थे। सपना नींद को बचाने का उपाय है। जैसे समझो उदाहरण के लिए, तुमने सपने में देखा कि तुम्हें खूब भूख लगी है। अब असलियत हो सकती है कि तुम्हें भूख लगी है। हो सकता है जैन हो, पर्यूषण के दिन चल रहे हों और व्रत कर लिया है--तुम्हें भरोसा न हो, तुम सोहन से पूछ सकते हो, वह व्रत करती रही है पहले--व्रत कर लिया, अब रात सो तो गए हैं--अब नींद में तो कोई व्रत-भ्रत भूल जाता है, भूख लगी है तो भूख याद रहती है, असली चीजें याद रहती हैं, नकली चीजें भूल जाती हैं; स्वाभाविक याद रहता है--पेट में तो कड़की है, पेट तो मांग रहा है कि कुछ मिल जाए। अब अगर पेट की भूख जारी रहे तो नींद नहीं आ सकती। तो नींद में तुम्हारा मन तुम्हें एक भुलावा देता है--चले, नींद में उठे, चले, खोल लिया फ्रिज, खड़े हैं फ्रिज के सामने, सब चीजें रक्खी हैं; आइस्क्रीम निकाल ली--उपवास इत्यादि के दिन ऊंची चीजें याद आती हैं, रूखी-सूखी रोटी कौन खाता है रात, उपवास के दिन बातें ही ऊंची चलती हैं--तुम मजे से आइस्क्रीम खा रहे हो, सपना चल रहा है, यह तुम्हारी नींद को बचा रहा है। आइस्क्रीम खा-पी कर तुम मजे से सोए रहोगे, क्योंकि तुम्हें एक भरोसा दिला दिया सपने ने कि अब तो आइस्क्रीम भी खा ली, अब क्या है? अब तो मामला खत्म हो गया, छूट गए पर्यूषण से, अब तो सो जाओ शांति से!
तुम्हें जोर से पेशाब लगी है और तुम चले सपने में कि तुम बाथरूम में चले गए हो, पेशाब कर आए, आकर सो गए। नींद में सपना देख रहे हो। वह जो तुम्हारे ब्लेडर पर जोर का दवाब पड़ रहा है, वह नींद तोड़ देगा; सपना सिर्फ तुम्हारे लिए भुलावा दे रहा है। एक कल्पना का जाल खड़ा कर रहा है। वह कह रहा है--ठीक है, हो तो आए, मामला खत्म हो गया, अब सो जाओ। वह जो तुम्हारे ब्लेडर पर दबाव पड़ रहा था, सपने ने उस दबाव को रोक दिया।
सपना इस तरह काम करता है जैसे कार में लगे स्प्रिंग काम करते हैं। कार
जा रही है, गड्ढा पड़ता है तो स्प्रिंग गड्ढे को पी जाता है; तुम अंदर बैठे हो, चलते रहते हो। जितनी कीमती कार हो, उतने बहुमूल्य स्प्रिंग होते हैं। रेलगाड़ियों के दो डिब्बों के बीच में बफर लगाए होते हैं। वे बफर इसलिए लगाए होते हैं कि अगर कोई टकराहट हो जाए, एकदम से रेलगाड़ी रोकनी पड़े, कुछ हो जाए, तो दो डिब्बे टकरा न जाएं। बफर धक्का पी जाते हैं।
सपना एक "बफर" है। सपना तुम्हें रात भर बचाए रखता है, नहीं तो हजार उपद्रव आते हैं। एक मच्छर आकर कान के पास गुनगुनाने लगा, तुम सोचते हो कि लता मंगेशकर! सपने ने तुमको बचा दिया। लता मंगेशकर गा रही है! सपने ने एक तुमको तरकीब पकड़ा दी; सपने ने कहा, तुम कहां परेशान हो रहे हो, कोई मच्छर-वच्छर नहीं है, लता मंगेशकर गा रही है। जरा गौर से गीत सुनो! तुम एक फिल्मी धुन सुनने लगे। मच्छर की धुन फिल्मी धुन में दब गई। बफर आ गया। बीच में बफर ने आकर गड्ढे को पी लिया। रात भर सपना तुम्हें बचा रहा है। तुम्हारी नींद को बचा रहा है।

लेकिन, जब सपना ऐसा होता है कि जिसको नींद नहीं समा सकती, जिसको नींद नहीं अपने भीतर आत्मसात कर सकती, जब सपना इतना भयंकर हो जाता है, तो नींद टूट जाती है।
सदगुरु जो तुम्हें चोट करता है, वह इसीलिए कि तुम्हारी नींद टूट जाए, तुम्हारे "बफर" टूट जाएं, तुम्हारे स्प्रिंग टूट जाएं, तुम्हें जिंदगी के गड्ढे समझ में आ जाएं।
तुम पूछते होः "आपसे इस दास का निवेदन है, आप प्रवचन में जब भी कभी कहते हैं, "इस दुनिया से जाने से पहले", या "जब मैं नहीं रहूंगा," तब मेरे कलेजे को चीर देते हैं।"
मगर तुम चिरने कहां देते हो। मैं तो चीरता हूं, मगर तुम चिरने नहीं देते। तुम बचाव कर जाते हो। तुम इधर-उधर हो जाते हो। तुम किनारा काट जाते हो, तीर निकल जाता है, तुम बच जाते हो। थोड़ी-बहुत खरोंच लग रही है अभी, उस खरोंच को ही तुम हृदय का चीर देना कह रहे हो। हृदय चीर जाए तो काम हो जाए। नींद टूट जाए। सब सपने समाप्त हो जाएं। तुम जाग जाओ।
यह चोट तो मैं करता रहूंगा। यह चोट तो मुझे करने ही होगी। यह चोट तो मेरा काम है। यह घाव तो मैं तुम्हारा उघाड़ता रहूंगा। घावों को सांत्वना नहीं देनी है, मलहम-पट्टी नहीं करनी है, उनको उघाड़ना है। चोट तुम्हारे सामने जितनी गहन और जितनी साफ हो जाए उतना अच्छा है।
वह चोट जो दिल पर खाई थी उस चोट का अब एहसास कहां
इक दाग-सा बाकी है जिसको, हम याद बनाए बैठे हैं
मैं तुम्हें याद नहीं बनाने दूंगा। मैं चोट-पर-चोट करता रहूंगा। मैं घाव को ताजा और हरा रखूंगा। यही सत्संग का अर्थ है कि तुम आओ रोज और चोट खाओ रोज। कब तक सोए रहोगे? एक दिन तो आएगा कि जागोगे! तुम्हारी नींद और मेरे बीच संघर्ष चल रहा है। यही तो सत्संग है।
हजारों माहताब आए, हजारों आफताब आए
मगर हमदम! वही है जुल्मते-गमखाना बरसों से
कितने चांद उतरे जमीन पर, कितने सूरज उतरे जमीन पर; कितने बुद्ध, कितने कृष्ण चले जमीन पर, मगर तुम बचते रहे। अंधेरा वैसा का वैसा बना है। चांद-तारे उतरते हैं, चले जाते हैं, तुम वैसे के वैसे रह जाते हो। चोट खाओ। मिटने की तैयारी दिखाओ। इस बार ऐसा न हो कि मैं चोट करता रहूं और तुम बचते रहो। इस बार तीर को कलेजे में लग ही जाने दो। किसी भी बहाने से हो, तुम्हें जगाना है।
मस्जिद की अजां हो कि शिवाले का गजर हो
अपनी तो यह हसरत है कि किसी तरह सहर हो
सुबह हो जाए, फिर किस बात से तुम जगे--
मस्जिद की अजां हो कि शिवाले का गजर हो
अपनी तो यह हसरत है कि किसी तरह सहर हो
सब उपाए किए जाएंगे। सब तरफ से तुम्हें छेदा जाएगा। जितने जल्दी तुम तीरों का स्वागत कर लो, सम्मानपूर्वक अपने भीतर ले लो, अपने हृदय को खुद ही खोल दो, उघाड़ दो, उतने ही जल्दी काम पूरा हो जाए।
सतपाल, मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम भी मेरी तकलीफ समझो! तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं, चोट हो जाती है। तुम्हें मुझसे प्रेम है, तुम्हें मुझसे लगाव है, लेकिन अगर यह लगाव तुम्हें जगत के पार न ले जाए, तो यह लगाव भी फिर सांसारिक हो गया और व्यर्थ हो गया। फिर यह भी एक रिश्ता था, जैसे और रिश्ते थे--यह भी एक झूठा रिश्ता हो गया। यह लगाव तो तभी सच्चा लगाव होगा, यह रिश्ता तो तभी सच्चा रिश्ता होगा, जब तुम्हें जगाए, जब तुम्हें मिटाए। यहां तुम्हारी मृत्यु का आयोजन चल रहा है। सत्संग यानी मृत्यु का आयोजन। और धन्यभागी हैं वे जो मरने को राजी हो जाते हैं। क्योंकि अमृत की मालकियत उनकी ही है। मृत्यु का मूल्य चुका कर ही अमृत का पुरस्कार मिलता है।
आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
सत्रहवां प्रवचन

परमात्मा के बिना कोई भराव नहीं

जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुडी गगन कूं जाय।।
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
यह तुम्हरा तुमकूं मिल्या, तुम क्यूं मिले न पीव।।
जैसे छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूं राखिए, मन मनसा हरि माहिं।।
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
वै घर बैठ्या एक कै, तू घर-घर फिरहि अनेक।।
साबुन सुमिरण जल सतसंग। सकल सुकृत करि निर्मल अंग।।
रज्जब रज उतरै इहि रूप। आतम अंबर होइ अनूप।।
हिंदू पावेगा वही, वोही मूसलमान।
रज्जब किणका रहम का, जिसकूं दे रहमान।।
रज्जब हिंदू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार।
पखापखी सूं प्रीति करि, कौन पहूंचा पार।।
हिंदू तुरक दून्यूं जलबूंदा। कासूं कहिये बांमण सूदा।।
रज्जब समता ज्ञान बिचारा। पंचतत्त का सकल पसारा।।
नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक।
कोई आवै कहीं दिसि, आगे अस्थल एक।।
मुल्ला मन बिसमिल करो, तजौ स्वाद का घाट।
सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट।।
एक गए नट नाचि कै, एक कछे अब आय।
जन रज्जब इक आइसी, बाजी रची खुदाय।।

एक मित्र ने पत्र लिखा है और पूछा है कि संसार में इतना दुख है, दीनता है, दरिद्रता है, क्या यह समय है ध्यान और भक्ति की बात करने का? पहले दुख मिटे दुनिया का, शोषण मिटे दुनिया का, फिर ही भगवान की खोज हो सकती है। उनकी बात सच है। दुनिया में दुख है, बहुत दुख है। शोषण है, बहुत शोषण है। लेकिन यह दुख सदा से है। और मन माने चाहे न माने, यह दुख सदा रहेगा। यह दुख संसार का स्वभाव है। हम थोड़े-बहुत हेर-फेर कर ले सकते हैं, हम थोड़ा रंग-रोगन कर ले सकते हैं, ऊपर-ऊपर थोड़े अंतर हो जाएंगे, भीतर सब वैसा है, वैसा ही रहेगा।
आदमी बदलता रहा है समाज की व्यवस्था को, राज्य की व्यवस्था को, अर्थ
की व्यवस्था को, लेकिन कोई बदलाहट जीवन से दुख का अंत नहीं कर पाई। कोई बदलाहट ऐसी नहीं आ पाई, जिसे हम क्रांति कहें। क्रांतियां होती रही हैं, क्रांति पर क्रांति आती रही हैं और आदमी जैसा है वैसा है। जीवन के आधारभूत नियम छुए भी नहीं जा सके हैं--कोई क्रांति नहीं छू सकी है, सारी क्रांतियां हार गई हैं।
इस जगत में क्रांति से ज्यादा असफल और कोई धारणा नहीं है। गरीब-अमीर
को मिटा दो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। नये वर्गभेद पैदा हो जाते हैं। फिर शासक और शासित का भेद हो जाता है। मालिक और गुलाम को मिटा दो, तो मालिक और नौकर आ जाता है। जैसा आदमी है, इसके रहते दुनिया की दुख-व्यवस्था बदल नहीं सकती। और तुम्हारा तर्क ऊपर से बिल्कुल ठीक लगता है कि जब इतना दुख है, इतनी पीड़ा है, तो कैसे राम को खोजें? पहले दुख मिटाएंगे, पहले क्रांति तो आने दें, पहले सब ठीक तो हो जाने दें, फिर राम को खोज लेंगे। यह तर्क सुंदर लगते हुए भी बड़ा खतरनाक है। फिर तुम राम को कभी खोज न पाओगे। अच्छा हुआ बुद्ध ने ऐसा न सोचा कि पहले दुख मिट जाए, फिर सत्य की तलाश करूंगा। नहीं तो बुद्ध अब भी बुद्धू होते। अब भी तुम-जैसे होते। अच्छा हुआ सदियों-सदियों में कुछ लोग होते रहे जो इस तर्क से प्रभावित नहीं हुए।

इस तर्क से प्रभावित होने के पीछे अचेतन कारण हैं। सबसे बड़ा कारण यह
है कि तुम परमात्मा की खोज टालना चाहते हो। तुम कोई मजबूत कारण चाहते हो जिसके आधार पर खोज टाली जा सके, और टालने का अपराध भी अनुभव न हो। इससे बढ़िया और कोई तरकीब नहीं है जो तुमने सोची है। दुनिया में दुख है, पहले दुख मिटे। न मिटेगा दुख, न राम की खोज की झंझट पैदा होगी तर्क ऐसा सुंदर है कि राम भी सामने खड़े हों तो उनको भी उत्तर न सूझे। दुख मिटे, फिर याद कर लेंगे। दुख मिटेगा नहीं। दुख संसार की नियति है। यह कोई दुर्घटना नहीं है दुख; जैसे वृक्ष हरे हैं, यह कोई दुर्घटना नहीं है कि वृक्ष हरे हैं। अब तुम कहो कि जब वृक्ष हरे नहीं होंगे, तब हम राम का स्मरण करेंगे। तो फिर राम का स्मरण कभी नहीं होगा। फिर छोड़ दो बात, न वृक्ष बदलेंगे, न राम का स्मरण होगा। तुम कहो जब आग गरम नहीं होगी, तब हम राम का स्मरण करेंगे, अभी कैसे करें स्मरण, अभी आग बहुत गरम है! ठीक वैसी ही बात है, संसार स्वरूपतः दुख है।
बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है कि संसार सांयोगिक रूप से दुख है, संसार दुख है। बेशर्त कहा है। और संसार दुख है। यहां होने का ढंग दुख में आवृत है। इसलिए तुम दुख को न बदल सकोगे। संसार में पैदा ही जो लोग होते हैं, वे दुख की पूरी की पूरी आयोजना लेकर आते हैं। जन्मों-जन्मों के दुख के घाव लेकर आते हैं। जिस व्यक्ति के दुख के घाव भर जाते हैं, वह फिर संसार में पैदा नहीं होता। तुम ऐसा ही समझो किअस्पताल में स्वस्थ आदमी नहीं जाते हैं, बीमार ही जाते हैं। इसलिए तुम अगर प्रतीक्षा कर रहे हो कि जिस दिन अस्पताल में सब लोग स्वस्थ ही स्वस्थ होंगे, उस दिन हम राम का भजन करेंगे, तो फिर भजन हो गया! अस्पताल में आता ही बीमार आदमी है। और जैसे ही स्वस्थ हो जाता है, अस्पताल से मुक्त हो जाता है। स्वस्थ आदमी अस्पताल में रुकते नहीं। बीमार आते हैं, स्वस्थ रुकते नहीं, स्वस्थ होते ही अस्पताल से छुट्टी हो जाती है।
इस संसार को तुम अस्तित्व का अस्पताल समझो। यहां दुख भोगने को हम आते हैं और जैसे ही कोई व्यक्ति यहां दुख के पार हो जाता है, जाग जाता है, वैसे ही इस संसार से उसका संबंध टूट जाता है। इसलिए ज्ञानी दुबारा पैदा नहीं होता। ज्ञानी के दुबारा पैदा होने का उपाय नहीं है।
संसार दुख है। इसी बात को संसार के क्रांतिकारी अब तक नहीं समझ पाए हैं और व्यर्थ दीवाल से सिर फोड़ रहे हैं। क्रांतियां होती रही हैं और क्रांतियां हारती रही हैं। और क्रांतियां होती रहेंगी और क्रांतियां हारती रहेंगी। क्रांति कभी जीत नहीं सकती। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि संसार दुख न हो। हां, दुख के ढंग बदल जाएंगे, रंग बदल जाएंगे; इधर से चोट खाते थे, उधर से चोट खाने लगोगे; इधर से पीटे जाते थे, उधर से पीटे जाने लगोगे; एक आदमी छाती पर बैठा था, वह उतरेगा तो दूसरा छाती पर बैठ जाएगा।
अभी तुमने देखा नहीं? इस देश में समग्र क्रांति अभी-अभी होकर चुकी है। समग्र क्रांति! इस देश में छोटी चीजें तो होतीं ही नहीं। और दूसरे देशों ने क्रांतियां कीं, इस देश ने समग्र क्रांति की। यहां तो गांव में कोई छोटी-मोटी सभा हो जाए तो अंतर्राष्टीय सम्मेलन कहते हैं। समग्र क्रांति अभी-अभी होकर चुकी है। क्या बदला? जरा भी कुछ नहीं बदला। एक तरह के लोग छाती पर बैठे थे, दूसरे तरह के लोग छाती पर बैठ गए। और अगर गौर से उनको खोजो तो तुम फर्क भी न कर पाओगे कि उनमें फर्क क्या है। वे उसी तरह के लोग हैं। उनके लिए क्रांति हो गई, क्योंकि अब वे छाती पर बैठे हैं। मगर जिसकी छाती पर बैठे हैं उसके लिए तो कभी क्रांति नहीं होती। छाती पर बैठ गए जो, वे जीत गए, उनके लिए क्रांति हो गई। जो छाती से उतर गए, वे हार गए, अब फिर क्रांति होगी। तुम जल्दी ही देखोगे फिर क्रांति, महा क्रांति! फिर ये छाती पर बैठे लोग उतर जाएंगे और दूसरे बैठ जाएंगे। तीसरी आजादी जल्दी ही आने को है! जल्दी ही फिर आयोग बैठेंगे और जल्दी ही सवाल फिर खोज-बीन शुरू हो जाएगी कि मोरारजी भाई, आपने "जीवनजल" का प्रचार क्यों किया? इससे देश की संस्कृति को हानि पहुँची। इसका जवाब चाहिए। क्रांतियाँ होती रही हैं। और क्रांतियां होती रहेंगी। दर्जनों क्रांतियाँ हो गयीं, आदमी के चेहरे से धूल जरा भी नहीं हटी। हर क्रांति और धूल जमा जाती है। लेकिन तुम इस तरह से

अपने को धोखा दे सकते हो। तुम एक बड़ा प्रबल तर्क खोज ले सकते हो, आड़ बना ले सकते हो।
चंद रोज और मेरी जान! फकत चंद ही रोज
जुल्म की छाँव में दम लेने पै मजबूर हैं हम
और कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रो लें
अपने अजदाद की मीरास है माजूर हैं हम
जिस्म पै कैद है, जज्बात पै जंजीरें हैं फिक्र महबूस है, गुफ्तार पै ताजीरें हैं अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिए जाते हैं जिंदगी क्या किसी मुफलिस की कबा है जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं
लेकिन अब जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं इक.जरा सब्र कि फरियाद के दिन थोड़े हैं अर्सए-दहर की झुलसी हुई वीरानी में
हमको रहना है, पै यूं ही तो नहीं रहना है अजनबी हाथों का बेनाम गरांबार सितम
आज सहना है, पै यूं ही तो नहीं सहना है
यह तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की गर्द
अपनी दोरूजा जवानी की शिकस्तों का शुमार
चांदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द
दिल की बेसूद तड़प जिस्म की मायूस पुकार
चंद रोज और मेरी जान! फकत चंद ही रोज
मगर वे चंद रोज कभी समाप्त नहीं हुए और समाप्त नहीं होंगे। प्रेमी कहे कि मैं प्रेम करूंगा जब सारी दुनिया में शांति होगी, सुख होगा, शोषण नहीं होगा, वर्गहीनता का राज्य होगा, रामराज्य होगा तब प्रेम करूंगा, तो प्रेम नहीं कर पाएगा। वह कितना ही कहे--
लेकिन अब जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं
इक जरा सब्र कि फरियाद के दिन थोड़े हैं
--समझा ले अपने को, लेकिन जुल्म के दिन थोड़े नहीं हैं, फरियाद के दिन थोड़े नहीं हैं। कितना ही तुम कहो--चंद रोज और मेरी जान, फकत चंद ही रोज, मगर अब तक का सारा इतिहास दुख का इतिहास है। क्या उससे तुम कुछ सीख न लोगे? अनंत काल से संसार में दुख है, तुम चंद रोज में मिटा सकोगे? फिर दुख क्या कोई दुर्घटना है। अगर दुर्घटना हो तो मिट जाए, दुख दुर्घटना नहीं है, दुख संसार का अंतरंग स्वभाव है। ऐसे ही समझो जैसे मृत्यु। तुम कहो कि जब दुनिया में मृत्यु नहीं होगी, तब हम परमात्मा को याद करेंगे; अभी कैसे याद करें, मौत द्वार पर खड़ी है? लाशें उठ रही हैं, लोग मर रहे हैं, मृत्यु का भयंकर अंधकार छाया है; इस मृत्यु की भयावनी रात में हम कैसे प्रभु को याद करें? कैसे हम कठोर हो जाएं? और कैसे हम भजन करें? कैसे हम नाचें? कैसे हम गाएं? कैसे हम शांत हों? मौत दरवाजे पर दस्तक दे रही है! जब मौत नहीं होगी, तब।
मौत कोई जीवन में दुर्घटना नहीं है। मौत जीवन का अंग है, अनिवार्य अंग है। जन्म के साथ ही जुड़ा है। जन्म है तो मौत है। शुरुआत है तो अंत होगा। प्रारंभ है तो तुम दूसरे छोर से बच नहीं सकोगे। धक्का-धुक्की देकर थोड़ा- बहुत टाला जा सकता है कि आदमी सत्तर साल में न मरे, अस्सी में मरे; अस्सी में न मरे, नब्बे में मरे, सौ में मरे। मगर तुमने यह देखा कि आदमी की उम्र जितनी हम धक्का देते हैं पीछे, उतना ही दुख बढ़ता है, घटता नहीं। जो आदमी सत्तर साल में मर जाता है, कम दुखी मरता है। वह जो आदमी सौ साल जी जाता है, तीस साल और दुख झेल कर मरता है। और जबरदस्ती जिंदगी को बड़ा देने का परिणाम यह होता है कि लोग अक्सर अस्पतालों में टंगे रह जाते हैं।
अमरीका जैसे देश में जहां दवाओं का बहुत विकास हुआ है, सैकड़ों लोग अस्पतालों में टंगे हैं। किसी की टांग बंधी है, किसी के हाथ बंधे, किसी को आक्सीजन दी जा रही है, किसी को ग्लूकोज दिया जा रहा है। यह कोई जिंदगी है!

मगर बस जीने का नाम ही अगर सब कुछ है--जी जरूर रहे हैं, क्योंकि श्वास लेते हैं; शायद बोल भी नहीं सकते--यह कोई जिंदगी है!
अमरीका में एक आंदोलन चलता है वृद्धों की तरफ से कि हमें आत्महत्या
का अधिकार मिलना चाहिए। यह कभी तुमने सोचा था दुनिया में कभी ऐसा वक्त आएगा कि लोग कहेंगे हमें आत्महत्या का अधिकार मिलना चाहिए? मगर यह वक्त आ गया। और ज्यादा दिन नहीं है, इस सदी के पूरे होते-होते दुनिया के सभी संविधानों में आत्महत्या का अधिकार जन्मसिद्ध अधिकार स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि जब तुम आदमी को जबरदस्ती जिलाने लगोगे और वह नहीं जीना चाहता, क्योंकि जीने का अब कोई कारण नहीं है, कोई अर्थ नहीं है, उसका जीवन सिर्फ नरक है, मरना चाहता है, तुम मरने नहीं देते, तुम जबरदस्ती उसे आक्सीजन दिए जाते हो, तुम जबरदस्ती नकली हृदय से उसके हृदय को धड़काए जाते हो, तुम जबरदस्ती दूसरे का खून उसके खून में डाले जाते हो--यह कोई जिंदगी हुई! यह जबरदस्ती हुई। लेकिन मौत को टाला नहीं जा सकता, मौत फिर भी द्वार पर खड़ी है। तुमने और कुरूप कर दी जिंदगी, बस इतना ही किया। कुछ लाभ नहीं हुआ।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जीवन जैसा है, करीब-करीब ऐसा ही रहेगा। यह बात हमारा मन स्वीकार करने को नहीं होता, मगर हमारा मन स्वीकार करे कि न करे, तथ्य तथ्य हैं। उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। यहां मौत घटती ही रहेगी, यहां बीमारी घटती ही रहेगी। यहां सब क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर में सुख कैसे घट सकता है? यहां दुख घटता ही रहेगा। यहां हर चीज मिटने को बनी है। जहों हर चीज मिटने को बनी है, वहां कैसे सुख का साम्राज्य हो सकता है? असंभव है।
अगर राम को याद करना हो तो कर लो, टालो मत। यह संसार ऐसा ही चलता रहेगा, तुम यहां नहीं रहोगे। तुम्हें जो थोड़े से दिन मिले हैं, वे चूको मत। तुम उन दिनों का उपयोग कर लो। और इस जीवन में एक ही बात उपयोग करने जैसी मालूम पड़ती है, वह यह कि राम से संबंध जुड़ जाए। क्रांतियों का भरोसा छोड़ो, काफी क्रांतियाँ हो चुकीं!
सुर्ख इंकिलाब आया, दौरे-आफताब आया
मुंतजिर थीं ये आंखें जिसकी इक जमाने से
अब जमीन गाएगी हल्के साज पर नग्मे
वादियों में नाचेंगे हर तरफ तराने से
आ चुके सुर्ख इंकलाब--रूस में घट चुका, चीन में घट चुका--न तो वादियों में तराने गूंजे, न लोग नाचे; उलटी हालत हो गई, रूस में लोग जितने गुलाम हैं उतने कहीं भी नहीं। पैर में इतनी जंजीरें हैं जितनी कहीं भी नहीं। चीन में जितने लोग भयभीत हैं इतने कहीं भी नहीं। सुर्ख इंकलाब आ गए, फूल खिले नहीं, नाच जगे नहीं, गीत उठे नहीं; और वीणा के तार टूट गए। मगर आदमी है कि इसी तरह की बातों में भरोसा किए जाता है। और इस तरह की बातों के भरोसे--व्यर्थ के भरोसों में--जीवन की वास्तविक खोज को टालता चला जाता है।
मेरा तुमसे निवेदन है कि जीवन का उपयोग कर लो। और इस जीवन के दो ही उपयोग हो सकते हैं--या तो इस जीवन को प्रेम से भर लो, या इस जीवन को ध्यान से भर लो। ये दो मार्ग हैं। और एक से तुम अपने को भर लो तो दूसरा अपने आप-आ जाता है।
रज्जब का मार्ग तो प्रेम का मार्ग है। रज्जब का मार्ग भक्ति का मार्ग है। उनके सूत्र अदभुत हैं।
असली क्रांति एक ही है; वह भीतर घटती है, बाहर नहीं। सुख का द्वार एक
ही है; वह भीतर है, बाहर नहीं। बहाने मत खोजो, चालबाजियां मत खोजो, क्योंकि नुकसान तुम्हारा है, किसी और का नहीं। अच्छे-अच्छे तर्कों के जाल में अपने को लुभाओ मत, क्योंकि धोखा तुम्हीं खा रहे हो, कोई और नहीं। यह मत कहो कि रात अंधेरी है हम दीया कैसे जलाएं? रात अंधेरी है, इसीलिए तो दीया जलाओ मैं तुमसे कहता हूं। और दुनिया में दुख है, इसीलिए परमात्मा को पुकारो मैं तुमसे कहता हूं। और दुनिया में पीड़ा है, परेशानी है, इसीलिए थोड़े से परमात्मा के झरोखे खोलो मैं तुमसे कहता हूं। और दुनिया तो ऐसी ही रहेगी,

लेकिन अगर परमात्मा का द्वार जीवंत रूप से खुला रहे तो जिनको भी दुख से पार होना है, वे हो सकते हैं।
दुख से पार होना व्यक्तिगत है। सभी बहुमूल्य जीवन की संपदाएं व्यक्तिगत हैं। क्रांति भी वैयक्तिक है। समूह के पास न तो कोई आत्मा है, न समूह के पास कोई बोध है, न समूह के पास कोई संभावना है। तुम समूह से बचो। तुम अपने समय का उपयोग कर लो। ये जो थोड़ी सी घड़ियां तुम्हारे हाथ में हैं, इनसे अगर किसी तरह भी परमात्मा से संबंध जुड़ जाए तो चूको मत, संबंध जोड़ लो। एक भी नग्मा सलासल से न पैदा कर सके
आज जिंदादिल असीरों को न जाने क्या हुआ
अगर तुम जिंदा हो, तो माना कि जिंदगी में कैद है, लेकिन अगर तुम जिंदा
हो तो जंजीरों से भी गीत पैदा कर सकते हो।
एक भी नग्मा सलासल से न पैदा कर सके।
अगर जंजीरों से गीत पैदा नहीं कर सकते, अगर जंजीरों से ध्वनि पैदा नहीं कर सकते, अगर जंजीरों से संगीत पैदा नहीं कर सकते, तो तुम पैदा ही नहीं कर सकोगे संगीत कभी। और तुमसे मैं एक राज की बात कहना चाहता हूं--अगर तुम अपनी जंजीरों से संगीत पैदा कर लो, तो जंजीरें उसी संगीत में ढल जाती हैं, गल जाती हैं; जंजीरें उसी संगीत में टूट जाती हैं, बिखर जाती हैं। संगीत जितना जंजीरों को गलाने में समर्थ है, उतनी कोई अग्नि नहीं। उत्सव जितना जीवन की पीड़ा से मुक्त करने में सहयोगी है, उतना कोई और नहीं। और भक्त उत्सव जानता है। और ध्यानी उत्सव जानता है। जगत में दुख है, माना, मगर तुम नाचो। और यहां चारों तरफ दीवालें हैं कठोर, मगर तुम नाचो। और तुम्हारे पैर में जंजीरें हैं, मगर तुम नाचो। और तुम अचानक हैरान हो जाओगे, अगर तुम परमात्मा का हाथ पकड़ कर नाचना शुरू कर दो, कैद से तुम मुक्त हो गए, उसी नाच में तुम मुक्त हो गए। दीवालें गिर गयीं, जंजीरें गल गईं, दुख गया--संसार गया--और तुम्हारी आंखों में एक नये आकाश का अवतरण शुरू हो जाता है। वही क्रांति है। बाकी सब समग्र क्रांतियां क्रांतियां ही नहीं हैं, समग्र तो बात ही छोड़ दो! कूड़ा-करकट है, सब व्यर्थ की दौड़-धूप है, सब आदमी की आशाओं का शोषण है।
दुनिया के शोषक तुम्हारी आशाओं के आधार पर जीते हैं। दो-चार-पांच साल में तुम एक तरह के शोषकों से थक जाते हो, तुम दूसरे तरह के शोषकों को मौका देने को तैयार हो जाते हो। एक राजनेता चुनाव में खड़ा हुआ था, वह लोगों को समझा रहा था कि विरोधियों ने आपका इतना शोषण किया, इतनी ज्यादती की, इतना अत्याचार किया, तिजोड़ियां भर ली हैं संपत्ति से, तुम्हारे खून को पी गए हैं, भाइयो, एक अवसर हमें भी दो! और भाई अवसर देते हैं। वे एक से थक गए हैं, वे दूसरे को अवसर देते हैं। पांच साल बाद इससे थक जाएंगे, शायद पहले को फिर अवसर देंगे।
आदमी की आशा का शोषण हो रहा है। तुम्हारी आशा बनी है कि कुछ न कुछ ठीक होने वाला है। आज नहीं तो कल सब ठीक हो जाएगा। यहां कुछ ठीक होता ही नहीं। इस बात को तुम सौ प्रतिशत अपने हृदय में उतर जाने दो कि यहां कुछ कभी ठीक होता ही नहीं। यहां से तुम पूरे निराश हो जाओ तो ही तुम्हारी अंतर्यात्रा शुरू हो, तो तुम आंखें ऊपर उठाओ। यहीं अटके रहते हो कि अब दरवाजा खुला, तब दरवाजा खुला, अब दीवाल हटेगी, अब ये आ गए दीवाल को हटाने वाले असली क्रांतिकारी, अब ये तोड़ देंगे सब जंजीरें! ये नई जंजीरें ढालेंगे। ये जंजीरें लेकर आए हैं। रंग शायद अलग होगा, शायद जंजीरें अलग कारखानों में ढली होंगी, मगर ये नई जंजीरें ढालेंगे। तुम्हारे पैर, तुम्हारी गर्दन कभी फांसी से मुक्त होने वाली नहीं है, जब तक कि तुम ही अपने भीतर उसको न खोज लो जो अमृत है। उसी क्षण क्रांति घट गई। फिर कोई कारागृह नहीं है। फिर कोई दुख नहीं है।
इस दुख से भरे संसार में भी कोई ऐसे जी सकता है कि उसके लिए दुख ही नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह कठोर है। उसके भीतर करुणा है। लेकिन करुणा का यह मतलब नहीं होता कि एक आदमी बीमार पड़ा है तो तुम करुणा में उसके पास बीमार पड़े रहो। कि एक आदमी रो रहा है तो तुम भी उसके पास बैठ कर करुणा में रोने लगो। कि एक आदमी नदी में डूब रहा है तो करुणा में तुम भी नदी में

डूब जाओ। करुणा का अर्थ होता है, दूसरे को बचा सको तो बचाओ, लेकिन दूसरे को बचाने की पहली शर्त ख्याल रखना--अपने को बचाना है। दूसरे को बचाने की पहली शर्त अपने को बचाना है। तुमने अगर अपने को नहीं बचाया, तुम किसी को भी नहीं बचा सकोगे। दूसरे का दीया जले, इसकी पहली शर्त अपना दीया जलाना है। क्योंकि तुम्हारे पास ज्योति हो तो शायद तुम दूसरे के अनजले दीये को भी जला दो। ध्यान और भक्ति उसी ज्योति को जलाने का नाम है।
इन सूत्रों को समझो--
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
बड़ा प्यारा वचन है। सारगर्भित भी बहुत। भक्ति की जैसी सारी की सारी साधना को एक छोटे से वचन में निचोड़ दिया है। संतों की यह खूबी है कि वे सरलता से बात कह देते हैं, तुम्हें पता भी न चले कि कैसी गहरी बात कह गए हैं। इतनी सरलता से कह देते हैं कि शायद तुम सुनो ही न, शायद तुम्हारे कान में बात पड़े ही न। क्योंकि बात कठिन हो तो आदमी जरा होश से सुनता है, कि कठिन है कहीं चूक न जाऊं। जब बात बिल्कुल सरल होती है, तो यूं ही सुन लेता है कि इसमें क्या खास बात है! अब यह सूत्र तुम देखते हो! सीधा-सादा है--
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
कोई खास बात नहीं, पढ़ लोगे, आगे बढ़ जाओगे। सत्य सरल ही होता है।
कहते हैं--बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वे सात दिन तक चुप रहे। क्योंकि उन्होंने सोचा कि मैं जो कहूंगा लोगों से, कौन समझेगा? क्या तुम सोचते हो बुद्ध ने यह सोचा कि मुझे जो अनुभव हुआ है वह बहुत कठिन है, जटिल है, उलझाव भरा है, कौन समझेगा? नहीं, अनुभव इतना सरल था कि बुद्ध ने सोचा कि कौन समझेगा? इतना सीधा-साफ था कि उलझे हुए लोग, जटिल लोग कैसे समझेंगे? इसलिए सात दिन चुप बैठे रहे। रास्ता न मिलता था कि सीधी-सादी बात को कैसे कह दें? दार्शनिक कठिन बातें कहते हैं। और जितनी कठिन बात हो, समझ लेना उतनी
ही झूठ है। कठिनता झूठ का अंतरंग है। असल में झूठ को कठिन और जटिल होना ही पड़ता है। तुमने वकीलों के दस्तावेज देखे? कैसे जटिल होते हैं, कि समझ में नहीं आता कि क्या कह रहे हैं, वे शर्त पर शर्त लगाए जाते हैं; क्लाज पर क्लाज, एक वाक्य के पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे तीसरा, और इतना गोल-मोल कर देते हैं कि समझ में ही न आए कि बात क्या है। समझ में आनी ही चाहिए। क्योंकि लोगों की समझ में आ जाए कि बात क्या है तो झूठ बच नहीं सकता। दार्शनिक इस तरह लिखते हैं कि तुम्हारी पकड़ में ही नहीं आएगा, पन्ने के पन्ने पढ़ जाओगे, उन्होंने क्या कहा है हाथ कुछ लगेगा नहीं। ऐसा लगता रहेगा कि कुछ बड़ी गहरी बात कही जा रही है। कोई बड़ी उंची बात कही जा रही है। और खाली के खाली रहोगे। और जिस दिन समझ में आ जाएगा, उस दिन हैरान होओगे कि कुछ भी नहीं था, सिर्फ लफ्फाजी थी, सिर्फ बातों का जाल था। सिर्फ सुंदर शब्द थे, उनके पीछे कोई आत्मा नहीं थी।
लेकिन संतों की बात और है। अनुभवियों की बात और है। सीधी-साफ होती है।
अब यह बिल्कुल सीधी सी बात है कि--"जे तुम राम बुलायल्यौ", रज्जब कहते हैं कि मेरी तरफ से मैं कोशिश भी करूं तो क्या कोशिश करूं? मेरे हाथ बड़े छोटे हैं। तुम बड़े दूर हो। तुम पता नहीं कहां हो--दूर कि पास, यह भी कहना मुश्किल है। तुम्हारा कोई पता-ठिकाना भी तुमने नहीं दिया है। कहां खोजूं? किस दिशा में खोजूं? कहां पुकारूं? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा धाम क्या है? तुम्हारा नाम भी पता नहीं है। तुम अचानक राह पर मिल जाओ तो मैं पहचान भी न पाऊंगा। क्योंकि मैंने तुम्हें पहले कभी देखा भी नहीं। "जे तुम राम बुलायल्यौ।" तब एक ही उपाय है कि तुम ही बुला लो। मेरे आने से तो बात रही, मेरा आना तो नहीं हो पाएगा, मैं तो जन्म-जन्म से खोज रहा हूं, टटोल रहा हूं, भटकता ही चला जाता हूं जितना ही खोजता हूं उतना ही खोता चला जाता हूं, मेरे से तो न हो सकेगा--यह भक्ति का बुनियादी सूत्र है, कि राम बुलाए तो ही कुछ हो।
ध्यान का बुनियादी सूत्र है--मेरे किए होगा, भक्ति का बुनियादी सूत्र है--उसके किए होगा। ध्यान का भरोसा स्वयं पर है, भक्ति का भरोसा प्रसाद पर

है, अनुकंपा पर, अनुग्रह पर। बस यही भेद है। यहां दो ही हैं, एक मैं और एक तू। अब दो ही उपाय हो सकते हैं। या तो मैं मैं की सीढ़ियां उतरूं और मैं में गहरा जाऊं--वही ध्यान है। और या तू की अनुकंपा हो, उसकी अनुकंपा हो, उसकी वर्षा हो--वही भक्ति।
रज्जब भक्त हैं। उन्होंने चेष्टा से, तप और व्रत से, साधना से परमात्मा को नहीं पाया। उन्होंने तो सिर्फ पुकार कर, रोकर, आंसुओं से परमात्मा को पाया है। उन्होंने तो छोटे बच्चे की भांति पुकार कर परमात्मा को पाया है। वे खोजने नहीं गए, परमात्मा उन्हें खोजने आया है। पुकार होनी चाहिए। जैसे छोटा बच्चा रोने लगता है--और करेगा भी क्या? अभी झूले पर पड़ा है, झूले से निकल भी नहीं सकता, उठ भी नहीं सकता, चल भी नहीं सकता, भूख लगी है, करेगा क्या? रोता है, चिल्लाता है, शोरगुल मचाता है।
बच्चे के शोरगुल का अर्थ समझते हो?
उसका केवल इतना ही अर्थ है कि मां का ध्यान आकर्षित हो जाए। मां कहीं काम में लगी होगी, चौके में होगी, बर्तन मलती होगी, कपड़े सीती होगी, घर बुहारती होगी, पड़ोसियों से बात करती होगी, बगीचे में होगी--मां कहीं काम में लगी होगी--बच्चा और तो कुछ कर नहीं सकता, मां का नाम भी उसे पता नहीं है, अभी मां कह कर भी नहीं बुला सकता, अभी जा भी नहीं सकता, अभी कोई उपाय उसके पास नहीं, बिल्कुल निरुपाय है, लेकिन फिर भी एक उपाय है--बच्चा जानता है, वह जैसे स्वभाव से ही जानता है--शोरगुल मचाने लगता है, रोने लगता है, चिल्लाने लगता है। इतना ही कर सकता है वह कि कहीं मां हो तो उसका ध्यान आकर्षित हो जाए।
"जे तुम राम बुलायल्यौ।"
भक्त भी यही करता है। भक्त छोटे बालक की भांति परमात्मा को पुकारता है। ज्ञानी, ध्यानी प्रौढ़ आदमी का प्रयोग है। भक्ति बालक जैसी सरलता का प्रयोग है। इसलिए भक्तों में जो भोलापन मिलेगा, वह भोलापन ध्यानियों में नहीं मिलेगा। भक्तों में जो सरलता और निष्कपटता मिलेगी, वैसी सरलता और निष्कपटता औरों में नहीं मिलेगी। भक्त में जैसा निर-अहंकार भाव मिलेगा-- भक्त में अकड़ हो ही नहीं सकती! अकड़ क्या, अपने किए तो कुछ हुआ नहीं, उसकी अनुकंपा से हुआ है। उसकी अनुकंपा थोड़ी-बहुत अकड़ भी हो, उसको भी बहा ले गई। उसकी अनुकंपा ऐसी आई बाढ़ की तरह कि सब बहा ले गई।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
रज्जब कहते हैं, मैं तो तैयार खड़ा हूं, तुम पुकारो भर! तुम्हारी पुकार
भर आ जाए, तुम्हारा संदेश, तुम्हारा इशारा भर आ जाए, इतना भर मुझे अनुभव में हो जाएकि किस दिशा में तुम हो, कहां तुम हो, तुम्हारा रूप क्या, तुम्हारा रंग क्या, तुम्हारा ढंग क्या, बस जरा सी मेरे कान में भनक पड़ जाए तो मैं चल पडूं। मगर तुम बुलाओ तो ही यात्रा शुरू हो!
ध्यानी का अपना एक जगत है। ध्यानी कहता है--
अपना जमाना आप बनाते हैं अहले-दिल
हम वे नहीं कि जिसको जमाना बना गया
ध्यानी कहता है--
हमें पतवार अपने हाथ में लेनी पड़े शायद
यह कैसे नाखुदा हैं, जो भंवर तक जा नहीं सकते
ध्यानी कहता है--
मेरे हाथ हैं तो बनूंगा खुद मैं अब अपना साकीए-मैकदा
खुमे-गैर से तो खुदा करे, लबे जाम भी मेरा तर न हो
मैं खुद ही पियक्कड़ बनूंगा और खुद ही अपना साकी बनूंगा--खुद ही पिलाने वाला, खुद ही पीने वाला।
मेरे हाथ हैं तो बनूंगा, खुद मैं अपना साकीए-मैकदा
मधुशाला भी मैं बनूंगा, मधु भी मैं, पीने वाला भी मैं, पिलाने वाला भी मैं।
खुमे-गैर से तो खुदा करे, लबे जाम भी मेरा तर न हो
दूसरे के हाथ से तो मैं अपनी मदिरा की प्याली भी छुआ जाना पसंद नहीं करता।

ज्ञानी की सारी यात्रा अंतर्यात्रा है, स्व-यात्रा है। स्वाध्याय उसकी प्रक्रिया है। वह अपना अध्ययन करता है, अपने भीतर उतरता है।
अहले तक्दीर! यह है मौजिजए-दस्ते अमल
जो खजफ मैंने उठाया वह गुहर है कि नहीं?
हम रिवायत के मुन्किर नहीं, लेकिन "मजरूह!"
सबकी और सबसे जुदा अपनी डगर है कि नहीं?
ज्ञानी अपनी डगर बनाता है। अपने मार्ग पर चलता है, अपनी पगडंडी चुनता है। राजमार्गों पर नहीं चलता, औरों की बनाई डगर पर नहीं चलता।
जिसको वैसा रुचिकर लगे, वैसा करे। यह लंबी यात्रा है, ध्यान रखना। सौ ज्ञानी चलते हैं, एकाध सफल होता है। सौ भक्त चलें, निन्यानबे सफल हो जाते हैं। जितने भक्तों ने परमात्मा को जाना है, उतने ध्यानियों ने नहीं जाना। क्योंकि ध्यानी बिल्कुल अकेला है। उसे कोई सहारा नहीं है। वह खुद ही खोजता फिर रहा है। भक्त को सहारा है। भक्त को आश्वासन है। भक्त किसी की शरण गया है। भक्त को अस्तित्व पर भरोसा है। भक्त कहता है कि हम इस अस्तित्व के अंग हैं, तो अस्तित्व हमारी परवाह करता है। हम पुकारेंगे तो अस्तित्व से कोई ऊर्जा उठेगी, मार्गदर्शक बनेगी।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
देखा तुमने? अदृश्य हवा के सहारे पतंग आकाश में उठ जाती है। हवा दिखाई नहीं पड़ती।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
पतंग आकाश में उठ जाती है, अदृश्य हवा के सहारे। मैंने कहा--यह सूत्र बड़ा कीमती है। उसकी अनुकंपा अदृश्य है, जैसे हवा, भक्त बड़े आकाशों की यात्रा कर लेता है--जथा पवन परसंगि ते--बस उसकी अनुकंपा का सहारा मिल जाता है उसे। हाथ दिखाई नहीं पड़ते, मगर भक्त के हाथ में आ जाते हैं। किसी और को दिखाई नहीं पड़ते, मगर भक्त को स्पर्श अनुभव होने लगता है। जो पतंग चढ़ाता है, उसकी डोर पर हवा का बल मालूम होने लगता है, उसकी अंगुलियों पर हवा का बल मालूम होने लगता है। किसी और को हवा दिखाई नही पड़तीं, लेकिन जिसने पतंग चढ़ाई है उसको पता होता है, कि हवा में कितना बल है! ठीक वैसा ही भक्त को परमात्मा का बल अनुभव होना शुरू हो जाता है। किसी दूसरे को दिखाई नहीं पड़ता। किसी दूसरे को भक्त दिखाना भी चाहे तो दिखा नहीं सकता। लेकिन भक्त को अनुभव होने लगता है कि उसके हाथ में मेरे हाथ पड़ गए। सब ठीक होने लगता है। कदम ठीक राह पर पड़ने लगते हैं। सुख गहन होने लगता है। प्रतिपल शीतलता और शांति बढ़ती चली जाती है। आनंद उमगने लगता है। भक्त जानता है ठीक रास्ते पर हूं। उसके हाथ में मेरे हाथ हो गए हैं। और भक्त को उसके हाथ का स्पर्श होता है। ख्याल रखना, भक्त को अंतस में पूरी प्रतीति होने लगती है, साफ होने लगता है कि अब मैं अकेला नहीं हूं, कोई सदा साथ है।
ऐसा हुआ। मोहम्मद के पीछे उनके दुश्मन पड़े थे। एक पहाड़ पर भागते हुए
एक गुफा में मोहम्मद छिप गए। उनके साथ उनका एक दार्शनिक शिष्य है--बड़ा विचारक है, पंडित है। दोनों हैं, गुफा में छिपे बैठे हैं, दुश्मनों की घोड़ों की टाप पास आने लगी, घबड़ाहट बढ़ती जाती है, पर मोहम्मद निश्चिंत बैठे हैं। वह जो, वह बड़ा परेशान हो रहा है, पसीना-पसीना हो रहा है--यद्यपि सर्दी है, ठंडी है, गुफा बहुत शीतल है, मगर उसको पसीना बह रहा है। मोहम्मद निश्चिंत बैठे हैं। वह मोहम्मद से पूछता हैः हजरत, आप बड़े शांत बैठे हैं, घोड़ों की टाप सुनाई नहीं पड़ती? मौत ज्यादा दूर नहीं है, यह वक्त शांत बैठने का नहीं है, हम दो हैं और दुश्मन कम से कम हजार है, बचना संभव नहीं है। मोहम्मद ने कहाः दो! हम तीन हैं। उस दार्शनिक ने चारों तरफ गुफा में देखा कि कोई और अंधेरे में तो नहीं छुपा बैठा है? वहां कोई भी नहीं है। उसने कहाः आप क्या कह रहे हैं, कोई नहीं है यहां! मोहम्मद ने कहाः तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा और मैं दिखाना चाहूं तो दिखा भी न सकूंगा। इसीलिए मैं निश्चिंत हूं और तुम निश्चिंत नहीं हो। परमात्मा है। हमारे होने न होने का कोई मूल्य ही नहीं है, उसके होने का मूल्य है। हजार नहीं दस हजार दुश्मन

हों तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मित्र साथ है। और उसकी अकेली मित्रता काम आती है, बाकी कोई चीज काम नहीं आती।
मगर दार्शनिक को इससे आश्वासन नहीं आया। तुमको भी नहीं आता। ये कवियों की बातें ठीक जब कविता करते हो, लेकिन यहां खतरा है जिंदगी को, यहां कहां कविता काम आएगी? यहां तलवारें चाहिए। यहां कविताओं से लड़ाई नहीं हो सकती। और टापें बढ़ती जाती हैं, आवाज करीब आती जाती है, ज्यादा देर नहीं है-- भागने को कोई उपाय भी नहीं है क्योंकि आगे रास्ता समाप्त हो गया है, भयंकर खड्ड है, यह गुफा आखिरी है। और दुश्मन को भी यह गुफा दिखाई पड़ जाएगी, क्योंकि दुश्मन भी यहीं आकर रुकने वाला है, इसी द्वार पर, क्योंकि इसके आगे खड्डा है। आगे दुश्मन भी जा नहीं सकता और यह बात असंभव है कि दुश्मन को यह गुफा दिखाई न पड़े। लेकिन थोड़ी ही देर में दिखाई पड़ा कि आवाज धीमी होने लगी घोड़ों की टापों की। दुश्मन किसी और रास्ते पर मुड़ गया, गुफा तक पहुंचा ही नहीं।
और मोहम्मद हंसने लगे, और उन्होंने कहाः देखा, तीसरे को देखा?
हवा की तरह है, लेकिन भक्त को अनुभव होने लगता है। अनुभव करने की क्षमता आ जाए। वह क्षमता रो-रो कर कमाई जाती है। वह क्षमता विरह से कमाई जाती है।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
मैं तो कुछ भी नहीं हूं, पतंग हूं, कागज की पतंग। लेकिन पतंग भी आकाश में उठ जाती है हवा के सहारे। तुम्हारा सहारा मिले तो मैं भी क्या न कर दिखाऊं? फिर मोक्ष भी दूर नहीं है। फिर बैकुंठ मेरे हाथ में है। तुम्हारा सहारा चाहिए। तुम्हारे बिना तो दुख ही दुख है, तुम्हारा सहारा होते ही सब रूपांतरित हो जाता है। इस जगत में एक ही क्रांति है और क्रांति है कि तुम अनुभव कर लो कि तुम अकेले नहीं हो, परमात्मा तुम्हारे साथ है।
तुम्हारी चिंताएं क्या हैं? मोहम्मद निश्चिंत क्यों थे? साथी था दूसरा, वह चिंतित क्यों था? दोनों की परिस्थिति एक थी। वह साथी भी कह सकता था कि पहले परिस्थिति बदलो, फिर निश्चिंत बैठना। यह किस तीसरे की बात कर रहे हो? दुश्मन सामने है, अभी मुसीबत आ रही है, पहले इसका कुछ इलाज निकालो ये बातें काम नहीं आएंगी। लेकिन दोनों की मनोदशा अलग है। दोनों की भाव-दशा अलग है, परिस्थिति तो एक है कि दुश्मन आ रहा है, मौत सामने खड़ी है, खतरा है, भाव-दशा में भेद है। एक पतंग जमीन पर पड़ी है क्योंकि उसे हवा का सहारा नहीं है और एक पतंग आकाश में चढ़ गई क्योंकि उसे हवा का सहारा है। दोनों पतंग हैं। भक्त की पतंग में और तुम्हारी पतंग में जरा फर्क नहीं है, सिर्फ भक्त की पतंग को उसकी अदृश्य शक्ति का सहारा है। उस सहारे को पाने की तलाश करो। वही प्रार्थना है। उस सहारे को पाने की तलाश प्रार्थना है। उसे पुकारो! रोओ उसके लिए! उसकी प्रतीक्षा करो।
उफक के उस पार जिंदगी के उदास लम्हे गुजार आऊं
अगर मेरा साथ दे सको तुम तो मौत को भी पुकार आऊं
कुछ इस तरह जी रहा हूं जैसे उठाए फिरता हूं लाश अपनी
जो तुम.जरा भी दे दो सहारा तो बारे-हस्ती उतार आऊं
बदल गए जिंदगी के महवर तवाफे दैरो-हरम कहां का
तुम्हारी महफिल अगर हो बाकी तो मैं भी परवाना बार आऊं
बस, तुम्हारा पता चल जाए, तो आ जाऊं परवाने की तरह। तुम्हारी ज्योति दिखाई पड़ जाए, तो आ जाऊं परवाने की तरह। फिर कौन फिकर करता है मंदिर और मस्जिद की?
बदल गए जिंदगी के महवर...
फिर तो जिंदगी का दृष्टिकोण बदल जाता है।
... तवाफे दैरो-हरम कहां का
अब कहां का मंदिर, कहां की मस्जिद, कहां की परिक्रमा? कहां की काशी कहां का काबा?
बदल गए जिंदगी के महवर तवाफे दैरो-हरम कहां का
तुम्हारी महफिल अगर हो बाकी तो मैं भी परवाना बार आऊं

बस, तुम्हारी ज्योति की जरा सी झलक मिल जाए, तो परवाने की तरह आ जाऊं।
वह झलक कैसे मिले? किसको मिलती है? जो भी पुकारता है, उसको मिलती है। तुम्हें नहीं मिली, तो तुमने पुकारा नहीं। और कभी पुकारा भी तो अधुरे दिल से पुकारा। और कभी पुकारा भी तो अनास्था से पुकारा। जानते हुए पुकारा कि कौन है उत्तर देने वाला? आकाश खाली है। पुकारा भी तो पुकारा नहीं। पुकार तो आस्थापूर्ण हो तभी सच होती है। पुकार तो समग्र हो, तुम्हारा पूरा हृदय पुकार में डूब जाए और पुकार बन जाए, तो पुकार सार्थक होती है।
रज्जब कहते हैं--
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
यह तुम्हरा तुमकूं मिल्या, तुम क्यूं मिले न पीव।।
वे कहते हैं कि माना कि मैं कोई ऐसा योग्य नहीं हूं कि तुम मेरी सुनो,
कि तुम मेरी गुनो, कि तुम मेरी तलाश करते हुए आओ, ऐसा मुझमें कुछ भी नहीं है, मेरी कोई पात्रता का दावा नहीं है... यह भी भक्ति का अनिवार्य अंग है।
ज्ञानी पात्रता का दावा करता है, भक्त अपनी अपात्रता की घोषणा करता है।
भक्त कहता है, मुझसे ज्यादा अपात्र और कौन होगा? मुझसे बुरा कोई भी नहीं है, भक्त कहता है। जो मैं खोजने गया, तो मुझसे बुरा कोई और पाया नहीं।
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
जो मैंने भला-बुरा किया है, वैसा मैं हूं। मगर भला हूं कि बुरा हूं, तुम्हारा हूं। इस सत्य से कोई इनकार नहीं किया जा सकता। यह भक्त का दावा है। भक्त अपनी पात्रता का दावा नहीं करता, भक्त तो इतना ही दावा करता है कि मैं तुम्हारा हूं। चाहे बुरा हूं, चाहे भला हूं; सुंदर हूं, असुंदर हूं; साधु हूं, असाधु हूं, ये गौण बातें हैं, मगर एक बुनियादी बात की घोषणा भक्त जरूर करता है, वह कहता है--कुछ भी हूं, जैसा भी हूं तुम्हारा हूं। इससे इनकार नहीं कर सकोगे। इससे इनकार करने का कोई कारण भी नहीं है। जो मैंने किया था बुरा, तो मैं बुरा हो गया हूं और भला किया था तो भला हो गया हूं, वह मेरा कृत्य है। मेरे कृत्य की पूरी जिम्मेवारी मुझ पर है। लेकिन मैं तुम्हारा मेरे कृत्य के पहले हूं। मेरा कृत्य जब पैदा नहीं हुआ था, तब भी मैं तुम्हारा था, और जब मेरे सारे कृत्य समाप्त हो जाएंगे तब भी मैं तुम्हारा होऊंगा। तो कृत्यों के कारण अड़चन मत डालना।
ज्ञानी, ध्यानी कर्मवादी होता है। उसका आग्रह होता है, आदमी के कर्म
के अनुसार सब होगा। उसके सोचने का ढंग तार्किक है। वह कहता है--जैसा कर्म करोगे वैसा फल पाओगे। भक्त का बड़ा अनूठा दृष्टिकोण है। भक्त कहता है, कर्म जैसा मैं करूंगा वैसा मैं हो गया, ठीक, इससे कोई एतराज नहीं है। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, मैं तुम्हारा हूं, यह बात फिर भी वैसी की वैसी बनी रहती है। अच्छा बेटा और बुरा बेटा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, दोनों बेटे तो होते ही हैं। जीसस ने तो यहां तक कहा है--और जीसस भक्ति के मार्ग पर अनूठे प्रकाश-स्तंभ हैं--जीसस ने तो यहां तक कहा है कि अक्सर यह हो जाता है--और तुम भी जीवन में अनुभव करोगे जीसस की बात का और जीसस की बात की सचाई का-- अक्सर यह हो जाता है कि बाप अपने बिगड़े बेटे के संबंध में ज्यादा सोचता है। जो ठीक ही ठीक है, उसके संबंध में सोचने की जरूरत भी क्या है? मां अपने बिगड़े बेटे के संबंध में ज्यादा चिंतातुर होती है। साधु तो भुलाया जा सकता है, लेकिन असाधु को कैसे भुलाओगे? स्वस्थ तो भुलाया जा सकता है, लेकिन अस्वस्थ को कैसे भुलाओगे।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है कि जैसे कोई गड़रिया सांझ को अपनी भेड़ों को लेकर लौटता है, गिनती करता है और पाता है कि एक भेड़ कहीं रास्ते में खो गई, तो निन्यानबे भेड़ों को अंधेरे जंगल में, खतरे में छोड़ कर--क्योंकि भेड़िये भी हैं, चीते भी हैं, सिंह भी हैं, खतरा है--लेकिन निन्यानबे भेड़ों को अंधेरे में छोड़ कर उस एक भेड़ को खोजने निकल जाता है जो भटक गई है। जो कहीं दूर कहीं अँधेरे में खो गई है। और इतना ही नहीं, जीसस ने यह भी कहा है कि जब वह उस भेड़ को खोज लेता है, तो उसे कंधे पर रखकर लौटता है।
जीसस ने ठीक कही बात। भक्ति का यह अनुभव है।
जीसस की और एक प्रसिद्ध कहानी है।

एक बाप के दो बेटे थे। बड़ा तो बड़ा योग्य था, कुशल था, साधुचरित्र था, आचरणवान था, पिता का बड़ा आदर करता था, छोटा एकदम लंपट था, जुआरी था, शराबी था, पिता के प्रति कोई आदर का भाव भी नहीं था, सुनता भी नहीं था, किसीकी मानता भी नहीं था, बगावती था, उपद्रवी भी था। अंततः एक दिन छोटे बेटे ने कहा कि हमें अलग-अलग कर दें क्योंकि मैं यह बकवास रोज-रोज नहीं सुनना चाहता कि तुम क्या करो और क्या न करो! मुझे जो करना है वही मैं करूंगा। मुझे जो होना है वही मैं होऊंगा। हमारा बंटवारा कर दें। बाप ने भी सोचा कि झगड़ा होगा मेरे जाने के बाद, इन दोनों बेटों में बहुत उपद्रव मचेगा, क्योंकि दोनों बिल्कुल दो अलग दिशाओं की तरफ यात्रा कर रहे हैं, उसने बंटवारा कर दिया। छोटा बेटा तो धन लेकर शहर चला गया। क्योंकि धन गांव में अगर हो भी तो क्या करो? छोटे-मोटे गांव में धन का करोगे क्या? गांव का धनी और गाँव के गरीब में कोई बहुत फर्क नहीं होता। हो ही नहीं सकता, क्योंकि वहां उपाय नहीं है। धन का फर्क तो शहर में होता है, जहां उपाय है।
जैसे ही उसे धन हाथ लगा, वह तो शहर की तरफ चला गया, दस साल फिर लौटा ही नहीं। खबरें आती रहीं कि सब बरबाद कर दिया उसने जुए में, शराब में, वेश्यालयों में। फिर खबरें आने लगीं कि अब तो वह भीख मांगने लगा। फिर खबरें आने लगीं कि अब तो रुग्ण हो गया है, देह जर्जर हो गई है, अब मरा तब मरा की हालत है। बाप बड़ा चिंतित है। रात उसे नींद नहीं आती। सोचता ही रहता है। एक दिन खबर आई कि बेटा वापस आ रहा है। बेटे ने सोचा एक दिन--भीख मांगने खड़ा था एक द्वार पर और इंकार कर दिया गया; बड़ा महल था, महल देख कर उसे अपने घर की याद आई, उसके पास भी बड़ा महल था, ऐसे ही नौकर-चाकर उसके पास भी थे, और आज यह दशा हो गई उसकी कि भीख मांगने खड़ा है और नौकर-चाकर भगा दिए हैं--उसने सोचा लौट जाऊं। क्षमा मांग लूंगा और पिता से कहूंगा, तुम्हारा बेटा होने के तो मैं योग्य नहीं हूं, इसलिए बेटे की तरह वापस नहीं आया हूं, एक नौकर की तरह मुझे भी रख लो; इतने नौकर हैं तुम्हारे घर में, एक मैं भी तुम्हारे नौकर की तरह पड़ा रहूंगा। ऐसा सोच घर की तरफ वापस चला। बाप को पता चला तो बाप ने बड़े सुस्वादु भोजन बनवाए और सारे गांव को भोज पर आमंत्रित किया-- बेटा वापस लौट रहा है। बैंड-बाजे बजवाए, संगीत का आयेजन किया, जो भी श्रेष्ठतम संभव हो सकता था--गांव में दीये जलवा दिए, फूलों से द्वार सजाया। बड़ा बेटा तो खेत पर काम करने गया है, वह जब सांझ को लौट रहा था उसे गांव में बड़ा शोरगुल और बड़ा उत्सव मालूम पड़ा, उसने लोगों से पूछाः बात क्या है? किसी ने कहाः बात क्या है, अन्याय है, बात क्या है! तुम्हें जिंदगी हो गई इस बूढ़े का पैर दबाते-दबाते, इसकी ही सेवा में रत रहे, तुम्हारा कभी स्वागत नहीं किया गया--न बंदनवार बांधे गए, न बाजे बजे, न तुम्हारे लिए भोजन बनाए गए, न तुम्हारे लिए भोज दिए गए, आज सुपुत्र घर आ रहा है! तुम्हारे छोटे भाई वापस लौट रहे हैं! राजकुमार वापस लौट रहे हैं!-- सब बरबाद करके। और यह अन्याय है। यह उसके स्वागत में इंतजाम किया जा रहा है।
बड़े भाई को भी चोट लगी। बात सीधी-साफ थी, गणित की थी, कि यह अन्याय है। गुस्से में आया घर, बाप से जाकर कहा कि मैं कभी आपसे मुंह उठा कर नहीं बोला, लेकिन आज सीमा के बाहर बात हो गई, आज मुझे कहना ही होगा, आज मेरी शिकायत सुननी ही होगी, यह मेरे साथ अन्याय हो रहा है। बाप ने कहा--तू नाहक गरम हो रहा है। तू तो मेरा है, तू तो मेरे साथ एक है। तेरी मैंने कभी चिंता नहीं की। चिंता का कोई कारण तूने नहीं दिया। इसलिए तेरा कभी स्वागत भी नहीं किया--स्वागत की कोई जरूरत न थी। तेरा तो स्वागत है ही। लेकिन जो भटक गया था, वह वापस लौट रहा है। तू अन्याय मत समझ। जो भटक गया था उसका वापस लौटना स्वागत के योग्य है। वह इस घर में ऐसा भिखमंगे की तरह, तो शुभ न होगा। अपना सारा मान, अपनी सारी मर्यादा खोकर लौट रहा है, उसे मान वापस देना है, मर्यादा वापस देनी है। उसका सम्मान उसे वापस देना है, उसका आत्म-गौरव उसे वा.पस देना है। अन्यथा वह इस घर में गौरवहीन होकर आएगा।
सब बर्बाद कर के आ रहा है, मुझे मालूम है। उचित तू जो कहता है वही था, गांव भी यही कह रहा है कि उचित यही था कि उसके साथ यह सद्भ व्यवहार न किया जाए, लेकिन मैं कुछ और देखता हूं। यह सद्-व्यवहार उसकी आत्म-प्रतिष्ठा बन

जाएगा, वह फिर अपने गौरव को पा लेगा। वह फिर अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा।
और एक बात का उसे भरोसा आ जाएगा कि बुरे हो कि भले, इसका बाप को फर्क नहीं पड़ता। प्रेम बुरे और भले का फर्क नहीं करता। प्रेम बेशर्त है। जीसस की इस कहानी को याद रखना।
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
यह तुम्हरा तुमकूं मिल्या, तुम क्यूं मिले न पीव।।
शिकायत करते हैं रज्जब, वह कहते हैं--मैं भला-बुरा, लेकिन तुम्हारा, और मैं तुम्हें पुकारता चला जाता हूं, और मैंने तुम्हें अपना मान लिया है, तुम मुझे कब अपना मानोगे? "तुम क्यूं मिले न पीव।" प्यारे, तुम मुझे कब मिलोगे? और यह मैं दावा नहीं करता कि मैं योग्य हूं।
फर्क समझ लेना।
आग्रह यह नहीं है कि मैं पात्र हूं, योग्य हूं, मुझे मिलो, आग्रह यह है
कि तुम रहमान हो, रहीम हो, अनुकंपा वाले हो, तुम्हारी अनुकंपा को क्या हुआ? मैं तो भला-बुरा जैसा हूं, ठीक, फिर भी तुम्हें याद करता हूं; तुमने मुझे क्यों याद नहीं किया? तुम मुझे क्यों नहीं पुकारे? मैं तो तुम्हें पुकार रहा हूं। ये ओंठ तुम्हारे नाम लेने के योग्य नहीं, फिर भी तुम्हें पुकार रहा हूं। तुमने मुझे क्यों न पुकारा? "तुम क्यूं मिले न पीव।" तुम एक, एक बार मेरी तरफ देख दो, तो फूल ही फूल खिल जाएं, मरुस्थल उद्यान हो जाएं। नहीं जागी तो इससे मेरी किस्मत ही नहीं जागी
जगाने को सितमगर ने कई फित्ने जगाए हैं
यह दुनिया अहले-गम पर तो हमेशा मुस्कराती है
हम अपने आप पर भी बेतकल्लुफ मुस्कराए हैं
कई गुंचे चटक उट्ठे कई कलियां महक उट्ठीं
गुलिश्तां मुस्कराया है, वे जब भी मुस्कराए हैं
तुम जरा सा मुस्कुरा दो, तुम्हारे ओंठ जरा मुझे हंसते हुए दिखाई पड़ जाएं, तुम्हारी आंख मुझे देख रही है यह मेरे अनुभव में आ जाए, तुमने मेरी तरफ देखा, तुमने मेरी तरफ आंख उठाई, बस काफी है। और कुछ ज्यादा भी मांग नहीं है।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते गुड़ी गगन कूं जाय।।
और मुझे कुछ पता नहीं है। अपने घर का पता नहीं है, तुम्हारे घर का तो कहां से पता होगा!
कुछ बता तू ही नशेमन का पता
मैं तो ये बादे-सबा! भूल गया
हे सुबह की हवा, मुझे तो यह भी पता नहीं कि मेरा घर कहां है? मैं तो ऐसा
खो गया हूं संसार में, तू ही बता। कुछ बता तू ही नशेमन का पता।
ऐसा भक्त रोता, पुकारता। ऐसा भक्त बातें करता, प्रश्न उठाता, जवाब भी देता। भक्ति का मार्ग बड़े अंतरंग वार्तालाप का मार्ग है। शुरू-शुरू में तो भक्त को दोनों काम करने पड़ते हैं--अपनी तरफ से भी बोलना पड़ता है, भगवान की तरफ से भी बोलना पड़ता है। लेकिन जल्दी ही वह घटना घटती है, एक दिन स्पष्ट अनुभव में आ जाता है कि अब मैं भगवान की तरफ से नहीं बोल रहा, भगवान ही बोल रहा है। वह तो स्वाद का भेद है। समझाया नहीं जा सकता। लेकिन इतना साफ भेद हो जाता है कि अब मेरा ही हाथ मेरे हाथ में नही है, कोई दूसरा हाथ मेरे हाथ में है। क्योंकि ऐसी ऊर्जा की तरंग पूरे जीवन में फैल जाती है, सब तरफ सुगंधित फूल खिल जाते हैं।
उनकी आंखों को दिए थे जो मेरी आंखों ने
किससे पूछूं कि वे पैगाम कहां तक पहुंचे
भक्त किसी से पूछ भी नहीं सकता कि मैं जो प्रार्थनाएं कर रहा हूं, वे कहीं पहुंच भी रही हैं कि नहीं पहुंच रही हैं? कहीं यह मैं मन का ही खेल तो नहीं कर रहा हूं? भक्त को यह सवाल बार-बार उठता है। मुझे लोग पूछते हैं कि कहीं यह हमारे मन का ही खेल तो नहीं है? शुरू में मन का ही खेल है। लेकिन अगर तुम खेलते ही चले गए, अगर तुम इस खेल में रचते-पचते ही चले गए, तो एक दिन तुम अचानक पाओगे कि खेल असलियत बन गया। एक दिन तुम अचानक पाओगे, अब

तुम्हारी आवाज इस तरफ, उस तरफ कोई दूसरी आवाज उठी। और वह आवाज इतनी भिन्न है तुम्हारी आवाज से कि तुम पहचान ही लोगे। कोई चिंता नहीं आएगी, कोई विचार खड़ा नहीं होगा, कोई संदेह खड़ा नहीं होगा, निस्संदिग्ध पहचान लोगे कि वह आवाज कोई और है। क्योंकि उस आवाज के साथ ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाएगी। जहां कांटे थे, वहां फूल हो जाएंगे। फिर कैसे न पहचानोगे? और जहां अंधेरा था, वहां दीये जल जाएंगे। फिर कैसे न पहचानोगे? और जहां मृत्यु खड़ी थी, वहां अमृत की घटा घिर जाएगी। फिर कैसे न पहचानोगे? और जहां केवल शोरगुल ही शोरगुल था, वहां ओंकार का नाद उठेगा। कैसे न पहचानोगे? जरूर पहचान लोगे। तुम्हारे सिर में दर्द होता है, तब तुम पहचान लेते न कि सिर में दर्द है। और जब दर्द चला जाता है, पहचान लेते न कि सिर में दर्द चला गया। हालांकि अगर कोई तुमसे पूछे, कैसे पहचानते हो, क्या प्रमाण है कि सच में सिर में दर्द चला गया, तो तुम कोई प्रमाण न दे सकोगे। न तो सिरदर्द है, यह प्रमाण दे सकोगे।
मैं छोटा था तो मेरे स्कूल में एक मुसलमान शिक्षक थे। बड़े सख्त। कुछ
भी हो जाए, वह छुट्टी न दें। और जब वह कक्षा शुरू करें तो पहली बात यह बता दें कि देखो, सिरदर्द, पेटदर्द, इस तरह के दर्द तो बताना ही मत! हां, बुखार चढ़ा हो तो बता सकते हो। क्योंकि जो दर्द तुम दिखा नहीं सकते, वह मैं मानता ही नहीं। कि सिरदर्द हो रहा है, तो इसका क्या प्रमाण कि हो रहा है कि नहीं हो रहा है? कि तुम्हें सिर्फ जाकर बाहर गिल्ली-डंडा खेलना है? कि पेटदर्द हो रहा है, यह मैं मानता ही नहीं। इस तरह के दर्द मैं मानता ही नहीं। कुछ मित्रों ने मिल कर, गांव में एक वैद्य थे उनसे जाकर प्रार्थना की कि कुछ ऐसी दवा दे दो जो हम बड़े मियां के भोजन में मिला दें। एक दफा इनके पेट में दर्द हो जाए। पहले तो वह कुछ जरा हैरान हुए वैद्य, फिर उनको यह बात जंची कि जब मैंने उनसे यह कहा कि आप सुनो तो, यह कहते हैं कि इसका प्रमाण क्या? अब प्रमाण और कुछ हो नहीं सकता। कुछ ऐसी दवा दे दो! उनसे दवा ले ली। और उनका एक रसोइया था--शादी उन्होंने की नहीं थी--वह रसोइया ही; उसको थोड़ी रिश्वत खिलाई, वह भी प्रसन्न हुआ, उसने वह गोली उनके भोजन में मिला दी।
जब वे दूसरे दिन स्कूल आए और बीच पढ़ाई में जब उनको जोर का दर्द उठा, तो बिल्कुल गोल होने लगे। तो मैंने उनसे पूछाः आप यह क्या कर रहे हैं? बोलेः पेट में दर्द है। मैंने कहाः हम मानते ही नहीं, कोई नहीं मानता पेट का दर्द। प्रमाण? तब उनको समझ में आया कि उनके साथ कुछ शडयंत्र किया गया है। उन्होंने कहाः मुझे शक तो हो रहा था, क्योंकि मुझे कभी पेटदर्द होता नहीं। मगर तुमने ठीक किया। क्योंकि मैंने जिंदगी में पेटदर्द जाना ही नहीं, तो मैं मानता भी नहीं था। और मैंने कहाः सिरदर्द के बाबत आपका क्या ख्याल है? कुछ उपाय करने पड़ेंगे? ये चीजें भी होती हैं, बुखार ही एक बीमारी नहीं है। उस दिन से उन्होंने कहना बंद कर दिया कि पेटदर्द, सिरदर्द, उन्हें मैं नहीं मानता।
जब हो जाए तो ही अनुभव। और अनुभव हो तो ही प्रमाण। अनुभव के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है। तुम्हें जब होगी यह घटना कि उसका हाथ तुम्हारे हाथ में पड़ेगा, तत्क्षण तुम जान लोगे। स्वयंसिद्ध है यह अनुभूति। लेकिन जब तक यह न हो, तब तक भक्त को प्रार्थना का रंग अपने मन पर फैलाना पड़ता है।
हम किया करते हैं अश्कों से तवाजा क्या क्या
जब ख्यालों में वो आ जाते हैं महमां की तरह
तब तक तुम आंसुओं से उनका स्वागत करते रहो। प्रेम के स्वर जगाते रहो।
और यह चिंता ही मत करना कि यह मन का खेल है। शुरू में तो यह मन का खेल होगा ही, क्योंकि मन में हम खड़े हैं। तो पहले कदम तो हमारे मन के ही ऊपर पड़ेंगे।
धीरे-धीरे चलते-चलते मन के पार जाना होगा। मन से ही मन के पार जाना है। मन का ही सीढ़ी की तरह उपयोग कर लेना है। मन का सोपान बनाना है।
जैसे छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूं राखिये, मन मनसा हरि माहिं।।
रज्जब कहते हैं, हरि को ऐसा बसा लो अपने भीतर जैसे गहरे कुएं की छाया देखी? बाहर नहीं निकलती। जैसे छाया कूप की। बाहर भरी दुपहरी, आग पड़ रही है, कभी गहरे कुएं में गए हो? वहां बड़ी घनी छाया है। शीतल है। मगर उस छाया को,

उस शीतलता को तुम कुएं के बाहर न ला सकोगे। वैज्ञानिक तो कहते हैं अगर कुआं काफी गहरा हो--समझो दो सौ फीट गहरा हो--तो तुम दिन में भी आकाश के तारे देख सकते हो। अगर तुम गहरे कुएं में चले जाओ, दो सौ फीट गहरे, तो दो सौ फीट की छाया तुम्हारी आंख पर पड़ जाएगी और तुम्हें आकाश में तारे दिखाई पड़ जाएंगे। तारे तो हैं ही, सूरज की रोशनी में दब गए हैं। सूरज की रोशनी में दिखाई नहीं पड़ते। तारे कहीं जाते नहीं कि रात आ जाते हैं, दिन चले जाते हैं, जहां के तहां हैं, सूरज की रोशनी में उनकी रोशनी लीन हो जाती है। अगर तुम गहरे कुएं में उतर जाओ और तुम्हारी आंख और तारों के बीच में थोड़ी छाया का विस्तार हो जाए, तो दिन में भी तारे दिखाई पड़ जाते हैं।
जैसे छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूं राखिये, मन मनसा हरि माहिं।।
वैसे हरि में मन को लगाए रखो। और वैसे हरि को मने मन में बसाए रखो।
जैसे छाया कूप की। अपनी गहरी से गहरी अंतरंग दशा में हरि को पुकारते रहो।
अपने रोएं-रोएं में बस जाने दो। अपनी धड़कन-धड़कन में समा लेने दो। जितनी गहराई तक ले जा सको अपने भीतर, ले जाओ हरि के स्मरण को। गहरे से गहरे उतारते जाओ। यही भजन की प्रक्रिया है।
भजन की प्रक्रिया के चार तल हैं। चार गहराइयां हैं। एक, जब तुम ओंठ से भगवान का नाम लेते हो। जब तुम ओंठ से पुकारते हो--राम, राम। दूसरा तल, जब तुम ओंठ से नहीं पुकारते, सिर्फ कंठ से गुनगुनाते हो--राम, राम। ओंठ बंद हैं, कंठ में ही आवाज चल रही है। तीसरा तल, जब तुम कंठ पर भी नहीं लाते, सिर्फ चित्त में ही विचार चलता है--राम, राम। कंठ भी कंपता नहीं। और चौथा, जब चित्त भी नहीं कंपता। सिर्फ भाव में ही राम की दशा होती है। न राम शब्द होता है, न वाणी होती है, न स्वर होता है, सिर्फ भाव होता है। एक गहन भाव। उस चौथी दशा में तुम कुएं की आखिरी गहराई में पहुंच गए--जैसे छाया कूप की। वहां जब राम उतर जाता है, फिर तुमसे उसे कोई छीन नहीं सकता। जब तक वहां नहीं उतर गया है, तब तक तो मन का ही संबंध रहेगा। वहां उतरते ही मन के बाहर का संबंध हो जाता है, मनातीत संबंध हो जाता है। उस जाप को ही अजपा कहा है।
जाप तो गया, लेकिन स्मरण है। अब बोल नहीं उठते, लेकिन भाव है।
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
वै घर बैठ्या एक के, तू घर-घर फिरहि अनेक।।
रज्जब कहते हैंः "साध, सबूरी स्वान की।" सीखना चाहो तो किसी से भी सीख लो, कुत्ते से भी सीख लो। देखा, कुत्ता एक ही घर, एक को मालिक बना लेता है। साध, सबूरी स्वान की; वैसा ही संतोष चाहिए, एक को ही चुन लिया। एक यानी परमात्मा। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और सब अनेक हैं। यहां पुरुष बहुत हैं, यहां स्त्रियां बहुत हैं; यहां पद बहुत हैं, प्रतिष्ठाएं बहुत हैं; यहां एक तो सिर्फ परमात्मा है। हालांकि आदमी इतना मूढ़ है कि उसने परमात्मा को भी बहुत ढंग दे रखे हैं। वह हर चीज को अनेक बनाने में कुशल हो गया है। उसने परमात्मा तक को अनेक कर लिया है। वह कहता है--मस्जिद का परमात्मा अलग और मंदिर का अलग। तभी तो मस्जिद वाला मंदिर को जला देता है, मंदिर वाला मस्जिद को जला देता है। यह भी हद्द हो गई बात! परमात्मा तो एक है। इस जगत में और सब चीजें अनेक हैं। रज्जब कहते हैं, कुत्ता भी एक मालिक चुन लेता है, तो फिर संतोष से उसके द्वार पर बैठा रहता है।
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
इतना तो सीख ही लो, इतना तो साध ही लो, इतना विवेक तो करो कि एक को पकड़ लो। जन्मों-जन्मों से अनेक के पीछे चल रहे हो।
वै घर बैठ्या एक के, तू घर घर फिरहि अनेक।।
कितने लोगों के साथ तुमने संबंध जोड़े? कितनी पत्नियां? कितने पति? कितने बेटे? कितनी बेटियां? अगर तुम्हें सारे जन्मों का हिसाब मिले तो तुम घबड़ा जाओ। आंकड़े सम्हालने मुश्किल हो जाएं। कितने तुमने संबंध बनाए! और संबंध बना ही नहीं। तुम संबंध बनाते चले गए और संबंध बिखरते चले गए। तुमने कितनों को बेटा बनाया, कितनों को पिता बनाया, कितनों को मां बनाया, पत्नी, पति, मित्र; सब संबंध बने और जैसे पानी पर खींची लकीरें मिट जाती

हैं ऐसे मिट गए। कितने लोगों के साथ तुमने हाथ जोड़े, झोली फैलाई? कितनों के आगे तुमने भीख मांगी और क्या मिला? क्या पाया?
यहां तुम मांग क्या रहे हो?
हर एक व्यक्ति दूसरे से प्रेम मांग रहा है। और प्रेम केवल परमात्मा
से मिलता है। प्रेम एक से मिलता है; अनेक से नहीं। प्रेम एक के आस-पास पैदा होने वाले संगीत का नाम है। अनेक के आस-पास तो झगड़ा है, झंझट है क्रोध है, घृणा है, वैमनस्य है, ईर्ष्या है, प्रेम नहीं। तुम क्या मांग रहे हो एक-दूसरे से? तुम मांग रहे हो--पति पत्नी से मांग रहा है--मुझे भर दो, मैं खाली हूं। पत्नी पति से मांग रही है कि मुझे भर दो, मैं खाली हूं। मगर कोई किसी को भर नहीं सकता। सिवाय परमात्मा के। उसके अतिरिक्त और कोई भराव नहीं है। तुम खाली ही रहोगे, तुम माँगते रहो, हाथ जोड़ते रहो, घुटने टेके रहो!
और इसीलिए तो कलह पैदा होती है। तुम मांगते हो और मिलता नहीं। तो तुम सोचते हो, शायद दूसरा कृपण है, दे नहीं रहा है। सभी प्रेमियों के बीच एक कलह चलती रहती है। पति सोचता है--पत्नी जितना प्रेम देना चाहिए उतना नहीं देती। मेरी जरूरत के अनुकूल प्रेम नहीं मिल रहा है। पत्नी सोचती है--मेरी जरूरत के अनुकूल प्रेम नहीं मिल रहा है। दोनों यह सोचते हैं कि दूसरा धोखा दे रहा है। कोई किसी को धोखा नहीं दे रहा है। जरा सोचो तो, दूसरे के पास होता तो वह तुमसे मांगता? यह बड़े मजे की बात है!
मैंने सुना, एक गांव में दो ज्योतिषी रहते थे। वे सुबह-सुबह अपने घर
से निकलते--पड़ोस में ही रहते थे--एक-दूसरे के सामने हाथ कर देते कि जरा देखना भाई, आज कुछ धंधा ठीक चलेगा कि नहीं? अब जब तुम खुद ही दूसरे से पूछ रहे हो, अपना हाथ दिखा रहे हो और दूसरा तुमको दिखा रहा है कि जरा तू भाई मेरा देख, कि आज धंधा चलेगा कि नहीं?
एक ज्योतिषी को जयपुर में मेरे पास लाया गया। उनकी फीस एक हजार एक रुपया है। उन्होंने मुझसे कहा कि फीस एक हजार एक रुपया है मेरी। मैंने कहा--बिल्कुल ठीक। हाथ देखा, बड़े प्रसन्न थे--उनको मुश्किल से मिलता है कोई एक हजार रुपया देने वाला। जब हाथ देख-दाख कर वे सब बातें बता चुके, तो मैंने कहा कि ठीक। उन्होंने कहा कि मेरी फीस का क्या? मैंने कहाः जब तुम्हें यही पता नहीं चला कि यह आदमी फीस देने वाला नहीं है, तो तुम्हें क्या खाक पता चलेगा! तुम मेरा भविष्य बता रहे, अपना भविष्य तुम्हें पता नहीं, इतने निकट का भविष्य पता नहीं कि अभी पांच मिनट के बाद यह आदमी एक पैसा देने वाला नहीं! तुम अपना हाथ घर से देख कर चला करो।
दो ज्योतिषी एक-दूसरे को हाथ दिखाएं, या दो भिखमंगे एक-दूसरे के सामने झोली फैलाएं, मिलेगा क्या? तुम दूसरे से मांग रहे हो प्रेम वह तुमसे मांग रहा है प्रेम--तुम पर होता तो तुम मांगते क्यों, उस पर होता तो वह मांगता क्यों? और फिर नाराज हो रहे हो, फिर क्रोध हो रहा है, फिर एक-दूसरे पर लांछना लगा रहे हो कि धोखा दिया गया, कि मेरे साथ जैसा होना था वैसा नहीं हुआ, अन्याय हुआ! कोई अन्याय नहीं कर रहा है, यहां सब भिखमंगे हैं, यहां सब खाली हैं। जो खाली है वह तुम्हें कैसे भरेगा? भरे से माँगो। और सिवाय परमात्मा के यहां कोई भरा नहीं है।
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक।
वै घर बैठया एक कै, तू घर घर फिरहि अनेक।।
साबुन सुमिरण जल सत्संग। सकल सुकृत करि निर्मल अंग।।
रज्जब रज उतरै इहि रूप। आतम अंबर होइ अनूप।।
"साबुन सुमिरण", परमात्मा का स्मरण साबुन जैसा। सत्संग जल जैसा है।
इसमें बड़ी गहरी बात छिपी है। सत्संग पहले तो तुम्हारे भीतर जो बुरा है उससे तुम्हें छुड़ा देता है। फिर तुम्हारे भीतर जो भला है, उससे भी तुम्हें छुड़ा देता है। तुम्हारे भीतर जो रोग है, उससे भी तुम्हें छुड़ा देता है सत्संग। और जो औषधी दी थी छुड़ाने की उससे भी छुड़ा देता है। इसलिए उसको जल कहा है।
कपड़ा गंदा है, साबुन घिसी। तो साबुन कपड़े की गंदगी को छुड़ा देगी; लेकिन तब साबुन में फंस गए। अब साबुन से भी छूटना होगा। नहीं तो कपड़ा गंदा था की नहीं बराबर हो गया। अब यह साबुन से छुटकारा चाहिए। जल दोनों काम कर

देता है। पहले बीमारी से छुड़ा देता है, फिर औषधि से छुड़ा देता है। पहले संसार से छुड़ा देता है, फिर मोक्ष की वासना से भी छुड़ा देता है। पहले बुराई, फिर भलाई से। पहले पाप से, फिर पुण्य से। और जब तुम दोनों से छूट गए, तभी जानना कि छूटे। नहीं तो एक से छूटे और दूसरे में फंस जाते हो।
पाप अगर लोहे की जंजीर है तो पुण्य सोने की जंजीर है, मगर जंजीर तो जंजीर है। पाप अगर जेल की थर्ड क्लास की कोठरी है, तो पुण्य फर्स्ट क्लास की होगी--बड़े नेताओं के लिए सुरक्षित रखी गई होगी। मगर भेद नहीं है, दोनों जेल के भीतर हैं। पाप में थोड़ी असुविधा ज्यादा है, पुण्य में थोड़ी सुविधा ज्यादा है, मगर दोनों जेल के भीतर हैं। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि पापी जल्दी जाग जाता है क्योंकि असुविधा होती है, पुण्यात्मा सोया ही रह जाता है, क्योंकि सुविधा में नींद आती है। पापी कभी-कभी क्षण में पहुंच गए हैं परमात्मा तक, पुण्यात्मा को बड़ी देर लगती है।
तुमने कोई ऐसी कहानी सुनी है, पुण्यात्मा के संबंध में जैसी वाल्मीकि
के संबंध में सुनी, या अंगुलिमाल के संबंध में सुनी? अंगुलिमाल हत्यारा था और एक क्षण में बुद्ध की आंख से आंख मिली कि मुक्त हो गया। वाल्मीकि लुटेरे थे, हत्यारे थे, चोर थे, नारद से मिलन हो गया कि बात हो गई। फिर मरा- मरा जप कर--वे पढ़े-लिखे थे, वाल्या उनका नाम था, भील थे--राम तो भूल गए, मरा- मरा जप कर मुक्त हो गए। ऐसा तुमने किसी पुण्यात्मा के संबंध में सुना जिसने धर्मशाला बनवाई हो, मंदिर बनवाया हो, प्याऊ खुलवाई हो, अस्पताल बनवाया हो, ऐसी तुमने कोई कहानी ऐसे आदमियों के संबंध में सुनी कि क्षण में मुक्त हो गए? मैंने तो नहीं सुनी! ऐसा होता ही नहीं, क्योंकि पुण्य में आदमी सो जाता है। पुण्य का मजा लेने लगता है। अब धर्मशाला बनवा दी, अब करना क्या है और? जिसने धर्मशाला बनवा दी, उसको अगर बुद्ध मिल भी जाएं तो वह बुद्ध को देखता ही नहीं। उसने धर्मशाला बनवाई है! वह धर्मशाला बीच में खड़ी हो जाती है।
बोधिधर्म चीन गया तो चीन के सम्राट ने उससे पहली बात यह कही कि मेरा पुण्य कितना है और मेरा परिणाम क्या होगा? मैंने बुद्ध के हजारों मंदिर बनवाए, मैंने बहुत सी धर्मशालाएं बनवाईं, मैंने बौद्ध भिक्षुओं के लिए विहार बनवाए, एक लाख भिक्षु राजमहल से रोज भोजन पाते हैं, सारे चीन को मैंने बौद्ध धर्म में रूपांतरित कर दिया है, मेरा पुण्य का फल क्या है? बोधिधर्म खड़ा रहा, कठोरता से देखा उसने वू की तरफ और कहाः कुछ भी नहीं; नरक जाओगे। सम्राट वू तो चौंका, क्योंकि इसके पहले जितने बौद्ध भिक्षु आए थे, सब उसका गुणगान करते थे। सब कहते थे, धन्यभागी हो आप! आपका महापुण्य! सातवें स्वर्ग में आप जन्मोगे। अप्सराएं चंवर ढलेंगी। सोने का सिंहासन होगा। और न मालूम क्या-क्या कहानियां गढ़ते होंगे! यह बोधिधर्म आया है भारत से, यह कुछ अजीब सा आदमी मालूम होता है। पुण्य का कोई फल नहीं, उलटा कहता है नरक जाओगे। और बोधिधर्म ने कहाः जितने जल्दी इस पुण्य से छूट जाओ, उतने अच्छे।
सदगुरु यही करता है। सत्संग यही है। सम्राट वू चूक गया। वह तो नाराज
हो गया। पुण्यात्मा था! पुण्यात्मा की तो अकड़ होती है। मुड़ा और राजमहल की तरफ चला गया। उसने जाते वक्त बोधिधर्म को नमस्कार भी नहीं किया। बोधिधर्म ने उसकी राजधानी छोड़ दी। उसकी सीमा के बाहर निकल गया। बोधिधर्म के शिष्यों ने कहाः आप यह राजधानी क्यों छोड़ रहे हैं? उन्होंने कहा कि यहां बहुत ज्यादा पुण्य का उपद्रव है। मैं पहाड़ी पर रहूंगा।
और जब सम्राट वू मर रहा था, तब उसे याद आई। तब धीरे-धीरे उसे अनुभव आया मरणशय्या पर पड़े हुए अब मेरे पुण्य कुछ काम नहीं आ रहे। तब उसे अपने भीतर की हालतें दिखाई पड़नी शुरू हुईं कि मेरे पुण्य मेरे अहंकार के हीशृंगार थे। मैं अकड़ रहा था पुण्य कर-कर के। अकड़ के कारण ही मैं बोधिधर्म से चूक गया। मैं देख नहीं पाया कि यह आदमी कितना अदभुत था। क्योंकि अब खबरें आने लगीं कि जो भी बोधिधर्म के पास पहुंच रहा है, उसके जीवन में क्रांति घट रही है। अब तड़फा। बोधिधर्म खुद ही आया था, द्वार आए मेहमान को विदा कर दिया। सच में ही मेहमान जैसा मेहमान आया था, उसको विदा कर दिया। उसका स्वागत न कर पाया मैं। बहुत कष्ट में सम्राट वू मरा। मरते वक्त उसने खबर भेजी थी--एक

बार और आ जाओ! लेकिन जब तक खबर पहुंची, बोधिधर्म तो छोड़ चुका था, भारत के लिए वापस लौटने की यात्रा पर निकल गया था।
लेकिन आश्चर्य की बात है कि बोधिधर्म संदेश छोड़ गया था वू के लिए। संदेश यही था कि अगर मरते वक्त तक भी तुम पुण्य से मुक्त हो जाओ तो पर्याप्त है।
पुण्य का एक ही उपयोग है कि पाप से मुक्त करा दे। लेकिन फिर पुण्य से कौन मुक्त कराएगा? वही सत्संग में घटता है। सदगुरु वही है जो पुण्य से भी मुक्त करा दे। नहीं तो बीमारियां छूट जाती हैं और लोग दवाइयों की बोतलें छाती से लगाए घूमने लगते हैं। सब पुण्य दवाइयों से ज्यादा नहीं है। लोग विधियां पकड़ लेते हैं। फिर विधियां नहीं छोड़ते।
इसलिए यह वचन प्यारा है--"साबुन सुमिरण।" राम का स्मरण, राम नाम का स्मरण, राम जप, यह साबुन है। "जल सत्संग।" इसका मतलब समझे इसका मतलब यह हुआ कि यह स्मरण भी एक दिन जाना चाहिए। सदगुरु के साथ में यह स्मरण भी चला जाएगा। यह राम-राम ही जपते रहे, तो अटक जाओगे। इससे यात्रा शुरू होती है, अंत नहीं होता। अंत में तो अजपा काम आता है। सब जाप से मुक्त हो जाना चाहिए। साबुन मैल छुड़ा देगी, जल मैल को भी छुड़ा देगा और साबुन को भी छुड़ा देगा।
सकल सुकृत करि निर्मल अंग।।
में नहाकर सर्वांग स्वच्छ हो जाता है।
रज्जब रज उतरै इहि रूप।
ऐसे ही मिट्टी उतरती है। ऐसे ही धूल-धवांस उतरती है। और अभी तुम मिट्टी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो। अभी तुम मिट्टी ही हो। अभी तुमने देह को ही अपना सब कुछ मान रखा है। सत्संग का अर्थ है, जहां तुम्हें स्मरण आए कि तुम देह नहीं हो। जहां यह मिट्टी से तुम्हारा छुटकारा हो। यह मिट्टी तो यहीं की है और यहीं पड़ी रह जाएगी। इस मिट्टी के भीतर कोई छिपा है, कुछ अदृश्य, उससे पहचान कर लो, उससे संबंध जोड़ लो।
आतम अंबर होइ अनूप।।
सत्संग में ही आत्मा का वस्त्र स्वच्छ होकर दिखाई पड़ता है। सारी मिट्टी छूट जाती है। देह छूट जाती है, देह की आसक्ति छूट जाती है, देह से संबंध छूट जाता है, असंग आत्मा का अनुभव होता है। और जहां तुम्हें अपनी असंग चेतना का अनुभव हो जाए, जहां तुम्हें याद आ जाए कि मैं चैतन्य हूं, अमृत हूं, सच्चिदानंद हूं, वही मंदिर, वही तीर्थ। उसने अन्यथा तुमने जो मंदिर और तीर्थ बना रखे हैं, सब उधार, सब बासे।
... हिंदू पावेगा वही, वो ही मूसलमान।
इसलिए रज्जब कहते हैं, इस अनुभूति का कोई संबंध हिंदू और मुसलमान से नहीं है। यह अनुभूति तो एक है।
हिंदू पावेगा वही, वो ही मूसलमान।
रज्जब किणका रहम का, जिसकूं दे रहमान।।
जिसके ऊपर उसकी कृपा हो जाएगी, वही पा लेगा। और कृपा उस पर हो जाएगी जो रोएगा और पुकारेगा।
शैख तेरे खुदा की रहमत को
हर गुनाहगार से मोहब्बत है
इस कदर मैं से मुझको प्यार नहीं
जितनी मैख्वार से मोहब्बत है
दोस्त भी हैं अजीज दुश्मन भी
गुल तो गुल खार से मोहब्बत है
कांटों से भी प्रेम है उसे। बुरों से भी प्रेम है उसे। यह मत सोचना कि परमात्मा सिर्फ साधुओं के लिए है। यह मत समझना कि प्रमात्मा सिर्फ् सज्जनों के लिए है। परमात्मा सब के लिए है। यह मत सोचना कि हिंदुओं के लिए है, मुसलमानों के लिए है, परमात्मा सबके लिए है। यह भी मत सोचना कि सिर्फ आदमियों के लिए है; पशु-पक्षियों के लिए, पौधों के लिए, पहाड़ों के लिए, परमात्मा सबके लिए है। जहां से भी पुकार उठती है, उसी तरफ उसकी ऊर्जा दौड़ जाती है। बुलाओ भर, हृदय से बुलाओ और तुम खाली न रहोगे।

रज्जब हिंदू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार।
इसलिए रज्जब कहते हैं, छोड़ो हिंदू-मुसलमान होना, जिसने सबको रचा है उसकी याद करो; जो सबका स्रष्टा है उसे गुनगुनाओ।
पखापखी सूं प्रीति करि, कौन पहूंचा पार।।
अब व्यर्थ के पक्षपातों में मत पड़ो, पखापखी के, यह पक्ष ठीक है, कि वह पक्ष ठीक। सिद्धांतों का सवाल नहीं है परमात्मा से, प्रार्थना का सवाल है। प्रार्थना से सिद्धांत का क्या लेना-देना? आंसुओं का सवाल है। आंसुओं का सिद्धांत से क्या लेना-देना? पुकार का सवाल है, पुकार का क्या हिंदू- मुसलमान से लेना-देना?
पखापखी सूं प्रीति करि, कौन पहूंचा पार।।
कोई पक्षपातों में पड़ कर पार नहीं पहुंचा है। पक्षपातों में पड़े लोग पक्षपातों में ही डूब गए हैं। तुम सारे पक्षपात छोड़ो, तुम निष्पक्ष हो जाओ। निष्पक्ष जो है, वही निर्मल है। निष्पक्ष जो है, जिसकी कोई धारणा नहीं, जिसकी कोई आग्रह की वृत्ति नहीं, जो यह नहीं कहता कि मैं हिंदू, कि मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन, कि बौद्ध, जो कहता है कि बस मैं उसका बनाया हुआ, वह मेरा बनाने वाला; जो मंदिर में भी झुक जाता है, मस्जिद में भी झुक जाता है; जो कुरान की आयत को भी गुनगुना लेता है आनंद से और जो गीता को भी गुनगुना लेता है आनंद से; जिसने कोई भेद नहीं रखे हैं, जिसने सब भेद तोड़ दिए हैं, जिसने सब सीमाएं अलग कर दी हैं, जो असीम के साथ संबंध जोड़ रहा है। ऐसे ही असीम को पुकारने को यहां आयोजन हो रहा है! यहां हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, पारसी हैं, सिक्ख हैं, यहूदी हैं; शायद ही दुनिया का कोई धर्म हो जिसका प्रतिनिधि यहां नहीं है, यहां एक मिलन हो रहा है, एक संगम हो रहा है। यहां पक्षपात से मुक्त होने का उपाय चल रहा है। कठिन होता है मुक्त होना, क्योंकि बचपन से ही हम कस दिए गए हैं पक्षपात में। लेकिन जो पक्षपात से मुक्त नहीं होता है, वह पार नहीं होता है, यह याद रखना। हिंदू की तरह कभी कोई परमात्मा को नहीं जाना है और न मुसलमान की तरह कोई परमात्मा को जाना है। जाना तो उसने हैं जिसने यह जाना कि हम भीतर शून्य हैं, खाली हैं। शून्य की क्या पहचान? जो खाली घड़े की तरह हैं, परमात्मा के जल से भर गए हैं। जो भरे ही हैं पहले से, कुरान से, बाइबिल से, गीता से, वे खाली रह जाते हैं। यह विरोधाभास याद रखना, जो भरे हैं पहले से, वे खाली रह जाते हैं; जो खाली हैं, वही भर पाते हैं। वर्षा होती है पहाड़ पर, पहाड़ खाली रह जाते हैं, झीलें भर जाती हैं। क्योंकि झीलें खाली हैं और पहाड़ अकड़े, भरे हैं।
हिंदू तुरक दून्यूं जलबूंदा। कासूं कहिये बांमण सूदा।।
दोनों जल बूंद हैं, पानी के बबूले। रज और वीर्य से बने हुए पानी के बबूले ही तो होंगे। रज और वीर्य पानी के ही बबूले हैं।
हिंदू तुरक दून्यूं जनबूंदा। कासूं कहिये बांमण सूदा।।
और किसको ब्राह्मण कहो, किसको शूद्र कहो? सभी समान रूप से बने हैं।
कोई उपाय है, किसी का खून जांच करके बताया जा सकता है कि यह ब्राह्मण का खून है कि शूद्र का? कभी मरघट चले जाना, वहां हड्डियां इकट्ठी कर लेना फिर तय करना कि कौन सी ब्राह्मण की है और कौन सी शूद्र की? तुम पता न लगा पाओगे। हड्डियां तो बस हड्डियां हैं, खून तो बस खून है, देह तो बस देह है। यहां कौन ब्राह्मण, कौन शूद्र? कहां की छोटी बातों में लोग उलझ गए हैं! और छोटी में उलझ गए हैं इसलिए विराट को गंवा दिया है। व्यर्थ में उलझ गए हैं, इसलिए सार्थक से वंचित हैं।
रज्जब समता ज्ञान बिचारा।
रज्जब कहते हैं, जो जानते हैं उन्होंने समता का भाव सिखाया है। जो जानते हैं, जिन्होंने पहचाना है, उन्होंने सबको समान देखा है।
पंचतत्त का सकल पसारा।।
यह तो पांच तत्वों का खेल चल रहा है। इसमें कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ब्राह्मण, कौन शूद्र?
नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक।

जैसे एक ही नगर के आने के बहुत से रास्ते होते हैं। ऐसे ही नारायण के नगर के भी बहुत से रास्ते हैं।
नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक।
कोई आवै कहीं दिसि, आगे अस्थल एक।।
किसी दिशा से आओ, किसी मार्ग से आओ, किसी वाहन पर चढ़कर आओ--घोड़े पर, रथ पर, पैदल, स्वर्ण के रथ पर, कि बैलगाड़ी पर--कैसे आओ, इससे फर्क नहीं पड़ता।
किस वाहन पर, किस दिशा से, किन वस्त्रों में इससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अंतिम मंजिल एक है। उस एक को ही ध्यान में रखो। शेष सब उलझाव में मत पड़ना, अन्यथा रास्ते पर उलझाने वाली चीजें बहुत हैं। सौ चलते हैं, एकाध पहुंच पाता है, क्योंकि निन्यानबे रास्ते में उलझ जाते हैं।
"मुल्ला मन बिसमिल करो।" मुल्ला अर्थात पंडित। "मुल्ला मन बिसमिल करो," मन को विलीन करो, मन को मारो, मन को जाने दो। पंडित तो मन को भरता है, मजबूत करता है; शास्त्रों से सजाता है, मन को रोज-रोज मजबूत करता चला जाता है। "मुल्ला मन बिसमिल करो," जाने दो मन को, यही मन तो उपद्रव है। और यही मन हिंदू बनाए है, यही मन मुसलमान बनाए है। यही मन कहता है कि मैं ब्राह्मण, तुम शूद्र।
मुल्ला मन बिसमिल करो, तजौ स्वाद का घाट।
मन को जाने दो। मन याने संस्कार समाज के द्वारा दिए गए। उधार संस्कार। तुम पैदा हुए थे, तुम्हें कुछ पता न तुम कौन हो। ब्राह्मण घर में पैदा हो गए, सिखा दिया गया ब्राह्मण हो। अगर ब्राह्मण घर में पैदा हुए थे तो भी शूद्र के घर में बड़ा किया गया होता तो तुम समझते कि तुम शूद्र हो। यह तो मन का संस्कार मात्र है। यह तुम नहीं हो।
मुल्ला मन बिसमिल करो, तजौ स्वाद का घाट।
दो चीजें छोड़ देने जैसी हैं। एक तो संस्कारों का जो जाल हमारे भीतर है, वह छोड़ देने जैसा है। और बाहर? इंद्रियां हमें बाहर लिए जा रही हैं, हमेशा बाहर लिए जा रही हैं, दौड़ा रही हैं, बाहर और भीतर मालिक बैठा है, और हम बाहर दौड़े चले जा रहे हैं; आंख कहती है रूप देखो, और रूप का बनाने वाला भीतर बैठा है; कान कहता है संगीत सुनो, और संगीतों का संगीत भीतर छिपा पड़ा है; हाथ कहते हैं सुंदर चीजों को स्पर्श करो, और जिसके स्पर्श से सदा के लिए तृप्ति हो जाएगी, जिसके दरस-परस से सदा के लिए तृप्ति हो जाएगी, वह भीतर खड़ा राह देख रहा है कि कब आओगे; सारी इंद्रियों के स्वाद बाहर ले जा रहे हैं और तुम उन्हीं का पीछा कर रहे हो।
राबिया अपने झोपड़े में बैठी थी। उसके घर एक फकीर हसन ठहरा हुआ था। सुबह हुई हसन बाहर आया, सूरज निकला था, पक्षी गीत गाते थे, सुंदर सुबह थी, उसने जोर से आवाज दी कि राबिया, तू भीतर क्या करती है? बाहर आ, परमात्मा ने बड़ा सुंदर सबेरा निकाला है। बड़ी सुंदर सुबह हुई है। बड़ा प्यारा सूरज ऊग रहा है, बाहर आ! राबिया ने जो उत्तर दिया, हसन का सिर झुक गया। राबिया ने कहाः हसन, तू बाहर का सौंदर्य देख रहा है--सुबह का, सूरज का, पक्षियों का-- मैं भीतर उसे देख रही हूं जिसके हाथ से यह सूरज बना, जिसने यह सौंदर्य रंगा, जिस चितेरे ने यह रंग आकाश पर फैलाए और जिस चितेरे ने यह रूप बनाया। तू ही भीतर आ, हसन! बाहर तो बहुत दिन हो गए सूरज को उगते-डूबते देख कर। अब ऐसे सूरज को देख जो न कभी उगता है, न कभी डूबता है। तू भीतर आ! बनाने वाले मालिक को देख!
इंद्रियां बाहर ले जाती हैं। इसलिए दो चीजें करने जैसी हैं। एक तो मन संस्कार से मुक्त हो जाए और इंद्रियों की बाहर की दौड़ धीरे-धीरे शांत हो जाए। आंख बंद हो, कान बंद हों, हाथ शिथिल हो जाएं।
मुल्ला मन बिसमिल करो, तजौ स्वाद का घाट।
सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट।।
और सभी रंग-रूप उसीके हैं। और धर्म के नाम पर खूब गला काटे जाते रहे।
हिंदू ने मुसलमान काटा, मुसलमान ने हिंदू काटे; ईसाइयों ने मुसलमान काटे, मुसलमानों ने ईसाई काटे; यह काट चलती रही--धर्म के नाम पर! यह चमत्कार है जगत का सबसे बड़ा। उस परमात्मा के नाम पर कितना खून बहा है, और सबके भीतर वही था। हम उसी को काटते रहे हैं। हम अब भी उसी को काट रहे हैं।

सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट।।
एक गए नट नाचिकै, एक कछे अब आय।
यह नाटक उसी का है। एक गया खेल खेल कर और दूसरा तैयार होकर आ गया। नाटक जारी है। मगर नाटक के पीछे छिपा हुआ एक ही व्यक्ति है। एक ही का यह सारा खेल है।
एक गए नट नाचिकै, एक कछे अब आय।।
वही आता है, वही जाता है, पहचानो उसे। वस्त्र में मत उलझ जाओ। कभी-कभी
तो ऐसा हो जाता है, एक ही अभिनेता कई पार्ट अदा करता है और तुम पहचान नहीं पाते, क्योंकि कभी वह दाढ़ी लगा कर आता है, कभी पगड़ी बांध कर आता है, कभी सिर घुटा आता है, कभी इस रंग में आता है, कभी उस रंग में आता है--एक ही अभिनेता कभी बहुत से पार्ट करता है और तुम पहचान नहीं पाते। तुम वस्त्रों में ही अटक जाते हो। एक ही है यहां खेल का खेलने वाला। तुम्हारे भीतर, मेरे भीतर, सबके भीतर। जो आकर जा चुके हैं, उनके भीतर भी वही था। जो आए हैं, उनके भीतर वही है, जो आने वाले हैं, उनके भीतर वही है। यह जगत एक नाटक है, एक रंगमंच। एक गए नट नाचिकै, एक कछे अब आय।
जन रज्जब इक आइसी, बाजी रची खुदाय।।
मगर वस्तुतः वह एक ही आता-जाता है। "जन रज्जब इक आइसी," वह एक ही आता है, "बाजी रची खुदाय," परमात्मा का यह खेल, यह लीला।
लीला में छिपे लीलाधर को पहचानो। रूप में व्याप्त अरूप को पहचानो।
धीरे-धीरे उससे संबंध जोड़ो जो अंतरंग है, वाह्य में मत उलझे रह जाओ। और पुकारो। और प्रार्थना करो। और रोओ। और नाचो। और ध्यान रखो सदा, तुम्हारे किए कुछ भी न हो सकेगा।
जे तुम राम बुलायल्यौ, तो रज्जब मिलसी आय।
जथा पवन परसंगि ते, गुड़ी गगन कूं जाय।।
यह तुम्हारी पतंग आकाश जा सकती है। यह आकाश तुम्हारा है। उड़ियो पंख पसार। फैलाओ पंख, उड़ जाओ। मगर उसकी हवा के सहारे के बिना यह न हो सकेगा। और उसकी हवा अदृश्य है। और उसकी हवा का दृश्य अगर बनाना हो, उसकी हवा को अगर पहचानना हो, तो जैसे पतंग अपने को हवा के ऊपर छोड़ देती है, ऐसे ही तुम भी समर्पित हो जाओ।
रामकृष्ण कहते थे कि नदी पार करने के दो ढंग हैं। एक तो है पतवार लो हाथ में, नौका खेओ। यह ज्ञानी का, ध्यानी का ढंग है। और एक, पतवार लेने की कोई जरूरत नहीं, नाव के पाल खोल दो, उसकी हवाएं तुम्हें उस पार ले जाएंगी। फिर पतवार भी नहीं चलाना पड़ता। तो रामकृष्ण कहते थे, जब उसकी हवाएं तुम्हें ले जाने को तैयार हैं तो तुम नाहक पतवारें उठाकर मेहनत कर रहे हो। परमात्मा तुम्हें ले जाने को तत्पर है, तुम्हारी नियति तक ले जाने को तत्पर है, तुमने ही नहीं छोड़ा है, तुमने समर्पण नहीं किया है।
भक्ति का सार-निचोड़ है एक शब्द--समर्पण। समर्पण वहां पहुंचा देता है जहां साधनाएं नहीं पहुंचा पातीं। या पहुंचा भी पाती हैं तो बड़े लंबे चक्कर से पहुंचा पाती हैं। साधना ऐसे है जैसे कोई अपने ही हाथ को घुमा- फिरा कर कान को पकड़े। समर्पण सीधा-सीधा है। रज्जब ने कहा है, ये किसी विचारक के द्वारा दिए गए सूत्र नहीं हैं, एक अनुभवी, एक भक्त की भाषा है। ये कोई शास्त्र नहीं, सिद्धांत नहीं, ये तो एक प्रेमी के उदगार हैं। तुम भी इन्हें इसी भांति लेना। इनके साथ विवाद में मत पड़ जाना। रज्जब कोई विवादी नहीं है, पखापखी की बात ही नहीं है, रज्जब किसी के खिलाफ कुछ नहीं कह रहे हैं, न किसी के पक्ष में कुछ कह रहे हैं, रज्जब तो सिर्फ उनके लिए कुछ इशारे दे रहे हैं जो सच में ही परमात्मा को पाना चाहते हैं।
और फिर तुम्हारी बात से ही अंत करूं, बैठे मत रह जाना यह सोच कर कि संसार में बहुत दुख है, इसलिए मैं कैसे भक्ति करूं, कैसे प्रार्थना करूं? नहीं तो बैठे ही रह जाओगे। दुख चलता रहेगा, दुख चलता रहा है। तुम चाहो तो दुख से मुक्त हो सकते हो। व्यक्तिगत रूप से तुम चाहो तो इस दुख के पार हो सकते हो। यह कारागृह तो चलता रहेगा ऐसे ही, लेकिन कैदी मुक्त हो सकते हैं। यह कारागृह नहीं मिटेगा। और मजा यह है कि अगर तुम मुक्त हो जाओ, तो तुम दूसरों को मुक्ति का कारण बन सकते हो। अगर तुम्हारे भीतर प्रार्थना का फल

लगे, तो दूसरे भी थोड़ा स्वाद ले सकें। तुम्हारे भीतर अगर दीया जले, तो दूसरों तक भी उसकी रोशनी पहुंच सकती है।
तुम प्रार्थना करो, तुम भजन-भाव में भीगो, शायद इसी माध्यम से तुम दूसरों के जीवन में भी सुख की थोड़ी सी बूंद लाने में सहयोगी हो सको। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरे की सेवा करने का उपाय नहीं। तुम सच्चिदानंद को पा लो, तो तुम सेवा भी कर पाओगे। सेवा की नहीं जाती, जिसके भीतर परमात्मा सघन हो जाता है, उससे होने लगती है।
और मैं तो एक ही क्रांति को जानता हूं--वह अंतक्रांति है। शेष सब क्रांतियां झूठी हैं। भुलावे में मत पड़ना, अन्यथा तुम इस जीवन को भी गंवाओगे। बहुत तुमने पहले गंवाए हैं। अब जरा होश सम्हालो। अब जरा सावचेत हो जाओ। इस जीवन को मत गँवा देना। यह बहुमूल्य अवसर है। और एक बार गंवाओ तो कब दुबारा ठीक-ठीक ऐसा अवसर मिलेगा, कहना कठिन है।
जागो और पुकारो उसे, बचने के बहाने न खोजो।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
अठारहवां प्रवचन

मैं स्वागत हूँ

पहला प्रश्न: कल रात दर्शन के समय जब आपने एक संन्यासी को कहा कि मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं, और उसके मुख के सामने अपना हाथ फैलाया, उस पर दृष्टिपात किया, तो मेरे भीतर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। रोआं-रोआं कुछ कहने लगा, आंखें अश्रुकण बरसाने लगीं, भीतर एक वाक्य गूंजा--या इलाही, यह माजरा क्या है?

शुक्ला! मैं तुम्हारा भी स्वागत करता हूं। मैं सबका स्वागत करता हूं। मैं स्वागत हूं। मैं देने को राजी हूं, बस तुम्हारी लेने की तैयारी चाहिए। तुम देने में ही कृपण नहीं हो गए हो, तुम लेने में भी कृपण हो गए हो। कृपणता की आखिरी सीमा वही है जब आदमी लेने में भी कृपण हो जाता है।
मैं देना चाहता हूं। क्योंकि जो मुझे मिला है, वह बंटने को आतुर है।
पर हर किसी को नहीं दिया जा सकता। किसी पर थोपा नहीं जा सकता। यह संपदा ऐसी नहीं है कि किसी को जबरदस्ती दी जा सके। जो लेने को तत्पर हैं, आतुर हैं, प्यासे हैं, बस वे ही केवल इसके मालिक हो सकते हैं। लेकिन आदमी लेने में भी डरता है। कई कारण हैं डरने के।
पहला कारण यह है कि लेने में अहंकार को चोट लगती है। तो कई बार तो ऐसा
हो जाता है, देने में आदमी राजी हो जाए, लेने में राजी नहीं होता। क्योंकि लेने में लगता है--मैं और क्यों लूं? सिकुड़ता है अहंकार, अहंकार हाथ खींच लेता है। अहंकार लेने में प्रतिरोध करता है। तो जिन्होंने अहंकार छोड़ा है, केवल वे ही ले सकेंगे।
मैं तो द्वार हूं लेकिन केवल वे ही पार हो सकेंगे जो अहंकार को द्वार
पर ही छोड़ देने को राजी हों, द्वार के बाहर ही छोड़ देने को राजी हों। दूसरा, लेने में भय लगता है, क्योंकि जो मैं तुम्हें दे रहा हूं वह अनजाना है, अपरिचित है। उसे तुमने कभी देखा नहीं, सुना नहीं। उससे तुम्हारा कोई संबंध कभी बना नहीं। यद्यपि जो मैं तुम्हें दे रहा हूं, वह तुम्हारा ही स्वभाव है। मैं तुम्हें कोई नई बात नहीं दे रहा हूं। जो तुम्हें मिला ही हुआ है, उसकी ही प्रत्यभिज्ञा दे रहा हूं, उसकी ही पहचान दे रहा हूं। मेरे हाथ से तुम्हारे हाथ में कुछ जाने वाला नहीं है। तुम्हारे प्राणों में जो पड़ा है, वही जाग जाने वाला है। यह देना देने जैसा नहीं है, जगाने जैसा है। बीज हो तुम। मुझे मौका दो तो अंकुरित हो जाओ।
जिस दिन तुम्हारे फूल खिलेंगे, उस दिन ऐसा नहीं होगा कि किसी ने कुछ दिया--तुमने लिया जरूर और किसी ने कुछ दिया नहीं; प्रत्यभिज्ञा आई, पहचान आई; जो पड़ा ही था हीरा तुम्हारे प्राणों में, वह दिखाई पड़ा। हीरा तो तुम्हारे पास है, आंख तुम्हारी बंद है। जो मैं दे रहा हूं, उससे तुम्हारी आंख खुलेगी लेकिन तुम्हारी बंद आंख के साथ बहुत से सपने जुड़ गए हैं और आंख खोलने में तुम्हें डर है कि कहीं सपने न टूट जाएं। सपने टूटेंगे। सत्य को जिसे लेना है, उसे सपनों को तोड़ने की क्षमता रखनी पड़ेगी। उतना साहस, उतना जोखम चाहिए। इससे भय होता है कि प्यारे-प्यारे सपने चल रहे हैं, कहीं ये टूट न जाएं, कहीं ये खंडित न हो जाएं, कहीं ये स्वप्न भंग न हो जाएं। मूंदे रहो आंखें, बंद रखो आंखें, जीते रहो अपने सपनों में। पर सपने कहां ले जाएंगे? सपने सपने हैं। आज नहीं कल जागना ही पड़ेगा।
और अच्छा हो कि किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाग जाओ जहां से कोई धार तुम्हारी तरफ बहने को आतुर है। धार को अगर तुम अपने भीतर समा लो, तुम्हारा बीज अभी टूट जाए। जब मैं तुमसे कहता हूं तुम्हारा स्वागत है, तो मैं तुम्हें एक निमंत्रण दे रहा हूं, मेरे साथ यात्रा पर आने का। लंबी है यह यात्रा, क्योंकि परमात्मा की यात्रा है, तीर्थयात्रा है। और कठिन भी है। पहाड़ की चढ़ाई है, उतार नहीं। और तुम्हें सारा बोझ छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि जैसे-जैसे पहाड़ पर कोई चढ़ता है, वैसे-वैसे बोझ कम करना पड़ता है। अपने को ही लेकर पहुंचा जा सकता है। और तो सब छोड़ देना होगा। भय लगता है--सब छोड़ देना!

जिसको संपदा माना, जिसको अब तक सब कुछ जाना--ज्ञान, धर्म, मंदिर-मस्जिद, हिंदू-मुसलमान, सब छोड़ देना है! तो मैं तो स्वागत करता हूं, लेकिन तुम सिकुड़ जाते हो।
पूछा तुमने कि जब आपने कहा--"मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं, तो मेरे भीतर तीव्र प्रतिक्रिया हुई।"
शुभ हुआ। होना ही चाहिए। जो जीवित है, उसे होगी ही। पुकार आएगी तो जो सुन सकता है उसके कान झंकार से भरेंगे ही। सिर्फ बहरे वंचित रह जाएंगे। सूरज निकेलगा तो जिसके पास आंखें हैं वह सुबह की किरणों से आह्लादित होगा ही। प्रतिसंवेदना होगी ही। सिर्फ तुमने शब्द गलत उपयोग किया है--अनजाने किया होगा, तुम्हें प्रतिक्रिया और प्रतिसंवेदना का शायद भेद समझ में नहीं है। प्रतिक्रिया नहीं है वह, प्रतिसंवेदना है। दोनों में फर्क है। भाषाकोश में तो दोनों का एक ही अर्थ लिखा है, इसीलिए शुक्ला से यह भूल हो गई। लेकिन जीवन के कोश में बड़ा भेद है।
प्रतिक्रिया का अर्थ होता हैः बंधा-बंधाया। जैसा तुमने सदा किया था,
जो तुम सदा से करने की आदत बना लिए हो, जब वही होता है तो वह प्रतिक्रिया। जैसे किसी ने पूछा कि ईश्वर है? और तुम सदा कहते रहे हो कि हां, है--क्योंकि आस्तिक घर में पैदा हुए, वही उत्तर तुम्हें सिखाया गया। उत्तर है कोरा, तुम्हें ईश्वर का कुछ पता नहीं है; झूठा है तुम्हारा उत्तर, लेकिन भरोसा रख कर चलते रहे हो, विश्वास करते रहे हो। झूठ को बहुत बार दोहरा लेने से सच जैसा मालूम होने लगता है। भूल ही जाता है कि शुरुआत में झूठ था। किसी ने कहा है--पिता ने कहा, मां ने कहा, गुरु ने कहा--किसी ने कहा है, कहीं से सुन लिया है कि ईश्वर है। आज किसी ने पूछाः ईश्वर है? और तुमने कहाः हां, ईश्वर है। यह प्रतिक्रिया। लेकिन किसी ने पूछाः ईश्वर है? और तुम अपने भीतर उतरे, और तुमने झांका, और तुमने टटोला, और तुमने पहचानने की कोशिश की कि मैं ईश्वर को जानता हूं? कोई दरस-परस हुआ है? मेरी काई पहचान है? कभी मेरी आंख में उसकी रोशनी पड़ी? मैंने उसकी आभा देखी? उसका सौंदर्य देखा? उसकी गरिमा से कभी मैं आप्लावित हुआ हूं? कभी उसका नृत्य मेरे हृदय में उतरा है? कभी मैंने उस गीत को सुना है जिसका नाम ईश्वर है? और सब सन्नाटा हो गया, क्योंकि तुमने वह गीत सुना नहीं। और तुमने आंख खोली और कहा--मुझे पता नहीं। यह प्रतिसंवेदना है, प्रतिक्रिया नहीं। यह सजग उत्तर है। यह सहज उत्तर है।
प्रतिक्रिया का अर्थ होता है, एक बंधी हुई लकीर। प्रतिसंवेदना का अर्थ होता है, उस क्षण में ही चुनौती का स्वीकार और चुनौती का वैसा-वैसा उत्तर जैसा चेतना से उठे। प्रतिक्रिया आती है स्मृति से, प्रतिसंवेदना आती है चेतना से।
मैं कल शुक्ला को देख रहा था, कुछ जरूर हुआ है। प्रतिक्रिया नहीं थी वह, प्रतिसंवेदना थी। क्योंकि मैंने जब किसीके स्वागत के लिए कहा, तो उसीमें तुम्हारा स्वागत भी सम्मिलित है। जो मैं एक से कह रहा हूं, वह एक से ही थोड़े कह रहा हूं, अनेक से कह रहा हूं। एक तो बहाना है। जिससे कहा वह तो बहाना मात्र था, निमित्त मात्र था। जिसके पास भी कान हैं सुनने के, वह सुन लेगा। और जिसके पास भी आंख है, वह देख लेगा। और जिसके पास भी हृदय है वहां संवेदना होगी। वैसी संवेदना हुई, तुम्हारा रोआं-रोआं कंपा, मैंने देखा तुम्हारे रोएं-रोएं को कंपते। मैं आह्लादित हुआ।
जब भी मैं किसी संन्यासी के रोएं-रोएं को कंपते देखता हूं तो खूब आह्लादित होता हूं। वसंत आ गया। अब फूल खिलने में ज्यादा देर न होगी। वीणा कस कर तैयार हो गई, अब चोट पड़ने की बात है और झंकार उठेगी।
शुक्ला ने कहाः "रोआं-रोआं कुछ कहने लगा, आंखें अश्रुकण बरसाने लगीं, भीतर एक वाक्य गूंजा--या इलाही!"
यह प्रतिसंवेदना है, प्रतिक्रिया नहीं। ऐसा पहले तो कभी हुआ ही नहीं
था तुम्हें, यह अनुभव अनूठा था, इसलिए प्रतिक्रिया तो हो नहीं सकती। प्रतिक्रिया तो अतीत के अनुभव से होती है। यह तो इतना नया था--यह रोमांच, यह रोएं-रोएं का कंपना, ये आंखों से आंसुओं का भर जाना, ये आंसू तुम्हारे पुराने परिचित आंसू नहीं हैं। यद्यपि यह सच है कि अगर तुम चिकित्सक के पास

जाकर आंसुओं की जांच करवाओगे, कोई रासायनिक जांच करवाओगे तो पुराने आंसू और इन आंसुओं में कोई भेद न होगा। लेकिन अनुभवी से पूछो--एक दुख का भी आंसू होता है, एक सुख का भी आंसू होता है। मगर इस भेद को रसायनशास्त्र के द्वारा पकड़ा नहीं जा सकता। वह भेद आध्यात्मिक है। तुम जब दुख में रोते हो तब भी आंसुओं का स्वाद वही होता है रासायनिक तल पर--खारे। और जब तुम आनंद में रोते हो तब भी आंसुओं का स्वाद वही होता है--खारा। लेकिन भीतर एक और स्वाद है जो मीठा हो गया है। वह स्वाद तो भीतर से ही पकड़ में आता है। उसे बाहर से पकड़ने का कोई उपाय नहीं।
कल तेरी आंखों में शुक्ला जो आंसू आ गए वे भी नये थे। वे किसी दुख के कारण नहीं आए थे। वे किसी अपूर्व द्वार के खुल जाने के कारण आए। भीतर गहरी चोट लगी। तेरे तार-तार झनझना गए। कुछ सोया जगा। कुछ बंद आंख खुली। कोई कली चटकी। उस उत्सव में आंसू बहे। और जब उत्सव में आंसू बहते हैं तो उनसे सुंदर इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं। जब उत्सव में आंसू बहते हैं तो आंसू इस पृथ्वी के होते हैं और नहीं होते। पारलौकिक होते हैं। उन आंसुओं की कीमत मोतियों से बहुत ज्यादा है। मोती कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि उन आंसुओं में कहीं स्वाद परमात्मा का आना शुरू हो जाता है। इसीलिए तो भक्त खूब रोए हैं। जी भर कर रोए हैं। भक्तों ने रोने को प्रार्थना बना लिया है। क्योंकि भक्तों के एक बात समझ में आ गई--जहां शब्द नहीं पहुंचते, वहां आंसू पहुंच जाते हैं। जहां पुकार नहीं पहुँचती, चिल्लाना नहीं पहुंचता, वहां मौन आंसू पहुंच जाते हैं।
आंसुओं की गति बड़ी तीव्र है। आंसुओं की गति ऐसी है जैसी किसी और चीज
की गति तुम्हारे भीतर नहीं है। आंसुओं पर सवार हो जाओ तो परमात्मा बहुत दूर नहीं है। विचारों पर सवार रहे तो अनंत दूर है। उपनिषद कहते हैं--वह परमात्मा दूर भी है और पास भी। यह बात तो विरोधाभासी मालूम पड़ती है--दूर भी और पास भी। दूर है, अगर विचारों पर चढ़ कर चले। पास है, अगर भाव पर चढ़कर चले। आंसू यानी भाव।
अतर्क था जो हुआ। अतर्क था इसीलिए प्रश्न उठा है। क्योंकि शुक्ला बूझ नहीं पाई। सोच-विचार वाली स्त्री है। सोचा होगा--क्या हुआ? क्यों हुआ? ऊहापोह किया होगा और पकड़ में कुछ भी न आया, क्योंकि बुद्धि के बाहर कुछ हुआ, बुद्धि से गहरा कुछ हुआ, बुद्धि के पार कुछ हुआ। इसीलिए प्रश्न उठा। अब ध्यान रखना जब बुद्धि के पार कुछ हो, बुद्धि से गहरा कुछ हो, तो उसे स्वीकार कर लेना। उसका विश्लेषण मत करना। उसे अंगीकार कर लेना। क्योंकि जीवन में कुछ चीजें हैं जो विश्लेषण करने से मर जाती हैं। जैसे फूल खिला बगीचे में--गुलाब का फूल खिला, प्यारा फूल खिला--और तुम्हारे मन में उठा इस सौंदर्य का विश्लेषण करें, यह सौंदर्य क्या है? तो क्या करोगे? पंखुड़ियां तोड़ लोगे फूल की, खोजने लगोगे सौंदर्य कहां है, सौंदर्य कहां छिपा बैठा है, उसके मूल उदगम को पकड़ लूं। या ले जाओगे वैज्ञानिक के पास और फूल की वह जांच-पड़ताल करके रख देगा। वह बता देगा कि कितना इसमें मिट्टी है, कितना इसमें पानी है, कितना सूरज, कितनी हवा, सब छांट कर पांचों तत्त्व रख देगा कि यह-यह इसमें है। और तुम उससे अगर पूछोगे--सौंदर्य कहां है? तो वह कहेगा-- सौंदर्य तो इसमें कहीं पाया नहीं। ये-ये पांच तत्व इसमें थे, वे सामने रख दिए हैं। और इसके अतिरिक्त इसमें कुछ भी नहीं था। वजन चाहो तो तोल लो, इन पांचों तत्त्वों का वजन उतना ही है जितना फूल का था।
वैज्ञानिक सौंदर्य को इंकार करता है। क्यों? क्योंकि उसके विश्लेषण में सौंदर्य नहीं आता। यह ऐसा ही है जैसे एक नाचते-कूदते गीत गाते बच्चे को तुमने देखा और काट-पीट कर बच्चे का गीत खोजना चाहा कहां है, नाच कहां है, इसकी आत्मा कहां है? तोड़ दिए अंग, उखाड़ दिए हाथ, काट दी गर्दन, चीर-फाड़ की। सब खो जाएगा; हाथ में हड्डी-मांस-मज्जा रह जाएगी। वजन उतना ही होगा जितना नाचते, प्रफुल्लित होते, हंसते बच्चे का था--उतना ही वजन होगा। लेकिन कुछ कमी हो गई। अब न तो हंसी है, न नाच है। अब जीवन नहीं है, यह मुर्दा लाश है। विश्लेषण हर चीज को मार डालता है। विश्लेषण मरी चीजों पर बिल्कुल काम करता है, ठीक काम करता है, लेकिन जिंदा चीजों को मार डालता है। इसलिए किसी जिंदा चीज का विश्लेषण मत करना।

आदमी ने विश्लेषण कर-कर के खूब तकलीफ पा ली है। परमात्मा का विश्लेषण किया, मार डाला। आत्मा का विश्लेषण किया, मार डाला। सौंदर्य का विश्लेषण किया, मार डाला। प्रेम का विश्लेषण किया, मार डाला। प्रार्थना गई, सब गया, जो भी बहुमूल्य था चला गया, आदमी के हाथ में कूड़ा-करकट रह गया, क्योंकि विज्ञान केवल कूड़े-करकट को ही सिद्ध कर सकता है। मुर्दा को सिद्ध कर सकता है। जीवन उसकी पकड़ के बाहर है। उसके जाल में नहीं आता। जीवन बड़ा सूक्ष्म है। मोटी-मोटी बातें पकड़ में आ जाती हैं विज्ञान के, सूक्ष्म बातें छूट जाती हैं। और सूक्ष्म बातें ही मूल्यवान हैं।
तो तेरे मन को ऐसा हुआ होगा--क्या हुआ? बाद में नहीं, उसी समय हो गया, इसलिए सवाल उठा--या इलाही, यह क्या माजरा है? क्योंकि मैं किसी और को कह रहा हूं कि तेरा स्वागत है और सुनाई तुझे पड़ गया। मैंने किसी और को कहा है और तेरे भीतर गूंज हो गई। तार मैंने किसी और के हृदय के छेड़ने चाहे थे और तेरे तार छिड़ गए। हाथ मेरे किसी और के हृदय पर फैले थे और तेरे हृदय पर चले गए। इसलिए उठा सवाल--या इलाही, यह क्या माजरा है? क्योंकि न मुझे कहा गया है, न मेरी तरफ इशारा है, न इंगित है, न मेरी तरफ आंख है, यह मुझे क्या हो रहा है? मैं क्यों रोमांचित हो उठी हूं? मेरा रोआं-रोआं क्यों आनंदमग्न हुआ? ये मेरी आंखें क्यों तर हो गयीं? ये आंसू मेरे क्यों बहे? उसी क्षण विचार आ गया। विचार से सवाल उठा--या इलाही, यह क्या माजरा है? तू थोड़ी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। आदमी जिस-जिस बात को समझ लेता है, उससे परेशान नहीं होता। क्योंकि जिसको हमने समझ लिया, उसके हम मालिक हो गए। उस पर हमारी मुट्ठी बंध गई। जिसको हम नहीं समझ पाते, उससे बेचैनी हो जाती है। क्योंकि वह हमसे बड़ा, और हमसे दूर और रहस्यमय। आदमी की जिज्ञासा यही है। आदमी की जिज्ञासा के पीछे मालकियत की दौड़ है।
तुम छोटे-छोटे बच्चों को देखते हो? --या बड़े-बूढ़ों को? सब बराबर एक जैसे हैं--छोटा बच्चा चला जा रहा है, देखता है एक चींटा जा रहा है, उसको जल्दी मार डालता है। वह क्या कर रहा है? बड़ा वैज्ञानिक है बच्चा। वह मार कर यह देख रहा है कि माजरा क्या है? या इलाही, यह चींटा चल रहा है! कौन चला रहा है इसे? कहां से यह गति आ रही है? तुम यह मत समझना कि बच्चा कोई हिंसा कर रहा है, कि चींटे से कोई दुश्मनी है।
तितली पकड़ ली। यह उड़ी जाती थी। यह उड़ती तितली बच्चे के लिए चुनौती है। उसे पकड़ेगा तो ही मान पाएगा। भागा, दौड़ा, पकड़ा; पकड़कर बड़ा खुश होता है। फिर तोड़ डाले उसके पर। अब वह देखने चला--जिज्ञासा--देखने चला कि भीतर क्या छिपा है? बच्चा अकेला घर में छूट जाए, घड़ी खोल लेता है कि भीतर जो टिक-टिक हो रही है, वह क्या है? वैज्ञानिक में और इस बच्चे में कुछ भेद नहीं है। विज्ञान बड़ा बचकाना है। और हमारी सारी बुद्धि के व्यायाम बस जिज्ञासा के व्यायाम हैं।
कुछ हुआ था अपूर्व, तेरी बुद्धि नहीं समझ पाई। समझ नहीं सकती है। तेरी बुद्धि का वह काम नहीं। इसलिए प्रश्न उठ आया। इसलिए सोचा होगा कि पूछ लेना चाहिए।
ख्याल रखो, मेरे पास हो तो ऐसा बहुत कुछ घटेगा, रोज-रोज घटेगा, उसको स्वीकार करना सीखो, अंगीकार करना सीखो। बुद्धि से व्याघात न करो। बुद्धि को बीच में मत लाओ। तर्क न करो, विश्लेषण न करो, खंडन मत करो, तोड़ो मत चीजों को। तोड़ने में सब बिखर जाता है। अहोभाव से आंख बंद करके स्वीकार कर लो। समा जाओ, उन घटनाओं को तुममें समा जाने दो। आत्मसात कर लो। बुद्धिसात करने की कोशिश मत करो, आत्मसात कर लो। रहस्य को रहस्य ही रहने दो। जरूरत नहीं है कि हम रहस्य को जानें ही। जानना आवश्यक नहीं है। सच तो यह है कि जानने ने ही आदमी को बड़ी मुश्किल में डाला। जितना आदमी जानने लगता है उतना ही उसके जीवन से धर्म तिरोहित हो जाता है।
तुम देखते नहीं, शिक्षित आदमी अधार्मिक होने लगता है। विश्वविद्यालय
से लौटता है विद्यार्थी तो अधार्मिक होने लगता है। जितनी दुनिया शिक्षित होती जाती है उतनी अधार्मिक होती जाती है। क्या कारण होगा? शिक्षा एक तरह की विधि देती है, चिंतन की, मनन की, विचार की, विश्लेषण की। शिक्षा तर्क का शास्त्र देती है। और इतना बल देती है पच्चीस साल तक तर्क के शास्त्र पर कि

पचहत्तर साल की जिंदगी में एक तिहाई तो तर्क के शास्त्र को समझने में बीत जाता है। फिर तर्क गहरा बैठ जाता है। फिर तुम हर चीज को तर्क से ही पकड़ने में लग जाते हो। और जब कोई चीज पकड़ में नहीं आती, तो तर्क के पास एक ही उपाय है कि जो पकड़ में नहीं आता, वह होगा नहीं। फिर अगर हो जाए, तो तर्क कहता है यह पागलपन है।
अगर तुम बुद्धि से पूछोगे, तो यह अचानक हो गया रोमांच, यह आंखों में भर
आए आंसू, यह हृदय में दौड़ गई बिजली, यह कौंध गया अनुभव, बुद्धि कहेगी पागलपन है। और जिसको तुमने पागलपन कहा, उसको तुम दबाने में लग जाते हो। क्योंकि कोई पागल नहीं होना चाहता। हम उसको दबाते हैं, हम उसको झुठलाते हैं, हम अपने को बचाते हैं। धीरे-धीरे हमारे जीवन के जो मूलस्रोत हैं, उनसे ही हम टूट जाते हैं। अपनी ही जड़ों से टूट जाते हैं।
ख्याल रखना, यहां रोज-रोज ये घटनाएं बढ़ने वाली हैं। यहां तुमसे बड़ा तुम्हारे भीतर आमंत्रित किया जा रहा है। यहां तुम्हें एक द्वार पर खड़ा किया गया है जहां से खुला आकाश उपलब्ध है, जहां से चांद-तारे तुम्हारे भीतर झांकेंगे। और तुम्हारी बुद्धि यह सब समझ नहीं पाएगी। बुद्धि को हटा दो। बुद्धि को सरका दो। बुद्धि को कहना--यह तेरा काम नहीं; बाजार में तू ठीक है, मंदिर में तू ठीक नहीं। दुकान पर तू ठीक है, हिसाब-किताब में तू ठीक है, मगर कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो हिसाब-किताब के बाहर हैं--और सच तो यह है, वे ही मूल्यवान हैं। उन्हीं के लिए जिआ जा सकता है, उन्हीं के लिए मरा जा सकता है। जो हिसाब-किताब में आ जाता है, उसके लिए कौन जीएगा, कौन मरेगा? एक ऐतिहासिक घटना तुमसे कहूं। सुकरात अपने सत्य के लिए मरा। क्योंकि सत्य इतना मूल्यवान था कि जीवन भी उसके लिए चुका देना कोई महंगा सौदा नहीं था। जीसस अपने सत्य के लिए सूली चढ़े। क्योंकि सत्य इतना मूल्यवान था कि एक जिंदगी क्या, हजार जिंदगियां सूली चढ़ जाएं तो भी सत्य को छोड़ा नहीं जा सकता। मंसूर ने अपने हाथ-पैर कटवा डाले, जब उसके हाथ-पैर काटे जा रहे थे तो वह आकाश की तरफ देख कर हंसा। भीड़ इकट्ठी थी, लोगों ने पूछा कि मंसूर, तुम क्यों हंसते हो? तो उसने कहा मैं इसलिए हंस रहा हूं, मैं परमात्मा को कहना चाहता हूं कि तू मुझे धोखा न दे पाएगा। तू जीवन चाहे जीवन ले ले, मगर मैंने तुझे देख लिया है, अब मैं तुझे भुला नहीं सकता। मैंने तुझे पहचान लिया, अब तू सब छीन ले तो भी मैं तुझे छोड़ नहीं सकता। मैं तुझे हर हालत में पकड़े रहूंगा। इसलिए हंस रहा हूं, कि यह मेरी कसौटी हो रही है, परीक्षा ले रहा है वह। और परीक्षा में जीत रहा हूं, वह हार रहा है। क्योंकि उसका उपाय व्यर्थ हुआ जा रहा है।
लेकिन गैलीलियो ऐसा नहीं कर सका। गैलेलियो ने कहा कि सूरज जमीन का चक्कर नहीं लगाता। गैलीलियो के पहले तक आदमी मानते रहे थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है--ऐसा दिखाई भी पड़ता है रोज हमें; सुबह उगता है, फिर आधा चक्कर लगा कर सांझ डूब जाता है; उगता पूरब में, डूब जाता पश्चिम में। चक्कर बिल्कुल साफ लग रहा है, सीधा है। पृथ्वी ठहरी मालूम पड़ती है, सूरज चक्कर लगाता हुआ मालूम पड़ता है। यह हमारा सामान्य अनुभव है। इसी सामान्य अनुभव के आधार पर मनुष्य जाति सदा से सोचती रही थी कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगा रहा है।
गैलेलियो ने उलटा अनुभव पाया। वैज्ञानिक प्रयोग से पाया कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा रही है। और चूंकि पृथ्वी इतनी बड़ी है और हम इतने छोटे हैं इसलिए हमें पृथ्वी की गति का पता नहीं चलता। और भ्रांति हमें पैदा हो रही है। कभी-कभी तुम्हें हो जाती है, तुम टेन में बैठे हो, स्टेशन पर खड़ी है गाड़ी, बगल की गाड़ी चलती है और तुम्हें लगता है--अपनी गाड़ी चली। या अपनी गाड़ी चलती है और तुम्हें लगता है--बगल की गाड़ी चली। ऐसी भ्रांति अक्सर हो जाती है। चल तो रही है पृथ्वी, लग रहा है कि सूरज चल रहा है। गैलेलियो ने बड़े प्रमाणिक रूप से सिद्ध कर दिया कि सूरज नहीं चल रहा है, पृथ्वी चल रही है। मगर चर्च बरदाश्त नहीं कर सका, क्योंकि बाइबिल कहती है--सूरज चल रहा है। गैलीलियो को अदालत में बुलाया गया और उससे कहा गया कि तुम क्षमा मांग लो। उसने क्षमा मांग ली।
उसकी क्षमा बड़ी विचारपूर्ण है।

यह सत्य कुछ ऐसा नहीं था जिसके लिए जीवन गंवाया जाए। गैलेलियो क्यों जीवन गंवाए? मेरे भी बात समझ में आती है--क्यों जीवन गँवाए? सूरज लगाए चक्कर कि पृथ्वी लगाए, इससे गैलेलियो का क्या बनता-बिगड़ता है? इस सत्य में गैलीलियो के प्राण नहीं समाए हुए हैं। यह सत्य जीसस जैसा सत्य नहीं है; न सुकरात जैसा, न मंसूर जैसा; जो अपने से भी मूल्यवान है। यह वैज्ञानिक सत्य है। वे धार्मिक सत्य थे।
फर्क समझना, यह गणित का सत्य है, वे हृदय के सत्य थे। गैलीलियो ने कहाः मैं क्षमा मांग लेता हूं। उसने घुटने टेक कर क्षमा मांग ली। क्षमा में उसने जो वचन कहे वे बड़ी होशियारी के हैं। गणित का आदमी था। उसने कहाः मैं क्षमा मांग लेता हूं कि मैंने जो वक्तव्य दिया वह ठीक नहीं है, यद्यपि मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे कहने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, चक्कर तो पृथ्वी ही लगा रही है। मैं क्षमा मांगता हूं, इसमें मैं कोई एतराज नहीं करता कि मुझसे भूल हो गई जो मैंने यह कहा, मगर यह सिर्फ मेरी भूल है, कि मैंने ये कहा ये मेरे कहने की भूल है, अब मैं इसमें क्या कर सकता हूं, अगर पृथ्वी चक्कर लगा रही है तो यह तुम पृथ्वी से क्षमा मँगवा लो, मगर लगा तो रही है पृथ्वी ही चक्कर। लेकिन उसने बार-बार याद दिला दिया अदालत को कि याद रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं क्षमा नहीं मांगता। मैं तो क्षमा मांगने को तैयार हूं, मेरा क्या लेना-देना, कोई लगाए चक्कर, क्या फर्क पड़ता है मुझे, मैं जिंदगी गँवाने को तैयार नहीं हूं। और मुझे लगता है कि बात ठीक है। गैलेलियो क्यों जिंदगी गंवाए?
यह कोई सत्य बड़ा सत्य नहीं है। इसको सत्य कहना भी ठीक नहीं है। मेरे हिसाब से तो सत्य तो वही है जिसके लिए तुम जीवन देने को तैयार हो जाओ। सत्य तो वही है जिसके लिए आदमी जीए और जरूरत पड़े तो मरे। शेष सब तथ्य हैं, सत्य नहीं।
और सत्य और तथ्य का भेद समझ लेना। तथ्य गणित के होते हैं, सत्य हृदय के होते हैं।
तो कल तुझे एक सत्य घटना शुरू हुआ। लेकिन बुद्धि कहती है--इसे जल्दी
से तथ्य बनाओ। जल्दी इसको समझो; पकड़ो, पहचानो; अगर पकड़ में न आता हो तो बंद करो। अगर पहचान में आता हो तो इसको ठीक-ठीक कोटि में बांटो कि यह क्या है। इसीलिए तेरे मन में यह विस्मयजनक भाव उठा--या इलाही, यह माजरा क्या है? यही माजरा धर्म का आत्यंतिक रूप है। यही माजरा असली धर्म है। असली धर्म का अर्थ होता है, उस रहस्य में उतरना जो समझ के पार है।
अब दुबारा जब ऐसा हो, प्रश्न मत उठाना, निष्प्रश्न मन से स्वीकार कर लेना। इतना ही नहीं है कि स्वीकार कर लेना, सहयोग भी करना। क्योंकि अगर .जरा भी असहयोग हो तो ये बड़ी सूक्ष्म संवेदनाएं हैं, जरा सा असहयोग हो कि समाप्त हो जाती है। रोमांचित हो रही थी देह, रोआं-रोआं जग रहा था और तुम अगर.जरा सिकुड़ गए तो बंद हो जाएगा। ये बड़ी नाजुक बातें हैं। जरा सा भाव का परिवर्तन और रोमांच विदा हो जाएगा। आंख से आंसू बह रहे थे और तुम.जरा कठोर हो गए, कि आंखें सूख जाएंगी। सहयोग भी करना। जब शरीर रोमांचित होने लगे, तो शिथिल, विराम में आ जाना। साथ दे देना, कहना मैं पूरा राजी। मैं तुम्हारे साथ। रोओ, नाचो, मैं समग्ररूपेण तुम्हारे साथ। मैं तुम्हारे पीछे। मेरी ऊर्जा लो। आंसुओं बहो, मैं तुमसे बहूंगी। और बुद्धि को कह देना--तू अभी चुप रह! यह तेरी घड़ी नहीं। जैसे हम मंदिर में जाते हैं, जूते उतार देते हैं, ऐसे ही बुद्धि को भी उतार देना चाहिए। बुद्धि भी बासी है और गंदी है, उधार है। मंदिर के बाहर जो बुद्धि को उतार कर रख आता है वही मंदिर में प्रवेश पाता है।
कल, शुक्ला, तू मंदिर के बिल्कुल द्वार पर खड़ी थी। क्षण में कुछ का कुछ
हो सकता था। लेकिन विचार जग गया। विचार जग गया, तोड़ गया धारा को। प्रश्न उठ गया, रहस्य को खंडित कर गया। सोच-विचार में पड़ गई, उसी में चूक गई। अब दुबारा मत चूकना--और यह बहुत बार होगा। पहली बार सभी चूक जाते हैं। क्योंकि पहली बार याद ही नहीं होता क्या करना है। पुरानी आदत, जो सदा करते रहे हैं वही कर देते हैं।

यह ख्याल रखना, पहली बात जो उठी, रोएं रोमांचित हुए, आंख से आंसू बहे,
वह तो प्रतिसंवेदना, रेस्पांस; और या इलाही, यह क्या माजरा है, यह प्रतिक्रिया, रिएक्शन। जब भी तेरी जिंदिगी में कोई चीज तेरी समझ-बूझ में न आती होगी तभी यह सवाल उठता रहा होगा। जब भी तूने अपने को किंकर्तव्यविमूढ़ पाया होगा, तभी यह सवाल उठता रहा होगा। फिर मत चूकना। फिर होगा, बार-बार होगा।
और स्मरण रखना कि जब मैं दूसरों से भी बोल रहा हूं तब कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जिससे मैं बोल रहा हूं वह चूक जाता है, क्योंकि वह सुनने को इतना ज्यादा तनावग्रस्त होता है, इतना एकाग्र होता है, इतना उद्वेलित होता है--मेरे अनुभव में यह बात बार-बार आई है; और कई बार आई है; और कई बार मुझे अ से जो बात कहनी हो वह मुझे ब से कहनी पड़ती है, क्योंकि ब से जब मैं कहता हूं तो ब तो तना हुआ रहता है, वह सुनने को रहता है कि कहीं चूक न जाए क्या कहा जा रहा है और अ शांत बैठा होता है--उससे तो कुछ कहा नहीं जा रहा है, यह उसका सवाल नहीं है--कभी-कभी ब के सिर पर मारी चोट ब तो बचा जाता है, अ को लग जाती है। उनको ख्याल ही नहीं था, बचाने का मौका ही नहीं मिला।
तो मैं तीर किस तरफ चलाता हूं, यह दिशा से ही मत सोच लेना। चिट्ठियां किसको लिखता हूं, यह पते से ही मत सोच लेना। कई बार तुमसे मुझे बात कहनी होती है, किसी और से कहता हूं। दूसरा तो निश्चिंत बैठा होता है, उसका कुछ लेना-देना नहीं इसलिए एक विराम की अवस्था होती है। इसलिए जिससे मैं यह कह रहा था कि मैं तेरा स्वागत करता हूं, उसे तो रोमांच नहीं हुआ कल, उसकी आंख से आंसू नहीं बहे और शुक्ला को रोमांच हुआ और आंख से आंसू बहे। चलो तीर किसीको तो लगा! कहीं तो लगा! कहीं तो झरना बहा! दुबारा जब ऐसा हो, तो सहयोग करना।

दूसरा प्रश्नः अब बार-बार ऐसा लगने लगा है कि कुछ भी तो नहीं पाना है, कहीं भी तो नहीं जाना है; जीवन है, जीना है। हे सद्गुरु, हे परमगुरु! यह मन का छलावा है या... ?

अपनी शिष्या की पग-पग पर रक्षा करना। आज जहां हूं, जैसी हूं, आपकी ही कृपा का फल है!
नहीं, मन का भुलावा नहीं है। मन का छलावा नहीं है। यह बात मन से नहीं आ रही है। यही तो मेरा संदेश है। यह बात मुझसे तुम्हारे पास तक पहुंच गई। यही तो मैं कह रहा हूं निरंतर। हजार-हजार ढंगों से और हजार-हजार शैलियों में और हजार-हजार उपाय से एक ही बात तो कह रहा हूं तुमसे कि कहीं जाना नहीं है, परमात्मा यहां है--यहीं है--अभी है, कल पर नहीं छोड़ना, आज है, इसी क्षण है। परमात्मा कोई लक्ष्य नहीं है, परमात्मा एक मौजूदगी है। अभी इन वृक्षों में, इन पक्षियों की आवाज में, इन हवाओं में मौजूद है।
लेकिन सदियों तक ऐसा समझाया गया है कि परमात्मा वहां आकाश में है, मरने के बाद मिलेगा। और मैं तुमसे कहता हूं जो जीवन में नहीं मिल सकता, वह मरने के बाद नहीं मिलेगा। और जो मरने के बाद मिल सकता है, मिलने वाला है, वह जीवन में ही मिल जाए तो ही मिल सकता है; क्योंकि जीवन और मृत्यु में कोई विरोध नहीं है। एक ही सिलसिला है। मृत्यु जिंदगी का ही एक कदम है। मृत्यु जिंदगी का अंत नहीं है, जिंदगी का ही एक कदम है। मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं है, मृत्यु जीवन के मध्य में घटी एक घटना है। बहुत बार घटती है मृत्यु और जीवन बहता चला जाता है। मृत्यु एक मोड़ है ज्यादा से ज्यादा, इससे ज्यादा नहीं। एक पड़ाव है, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन तुम्हें सदियों से समझाया गया है कि परमात्मा मिलेगा मृत्यु के बाद। टालने का उपाय है यह। कल पर टालने की व्यवस्था है यह। यह मन का छलावा है। कल पर छोड़ दो तो मन कहता है--अभी तो जो करना है वह कर लो, अभी संसार और परमात्मा कल। इससे तरकीब मिल जाती है, सुविधा मिल जाती है। अभी तो दुनिया में जी लो, फिर कल तो पड़ा है, अनंत काल पड़ा है, फिर कभी परमात्मा में जी लेंगे। यह मन का छलावा है।

जिन्होंने कहा है परमात्मा कल है, उन्होंने तुम्हें धोखा दिया। उनकी बात तुम्हारा मन पकड़ कर बैठ गया। तुम भी चाहते हो कि परमात्मा कल हो, आज नहीं।
मैंने सुना है, लंका का एक बौद्ध भिक्षु मरने के करीब आया--अस्सी साल
का हो गया था, बूढ़ा हो गया था। उसके हजारों शिष्य थे और सदा एक ही बात कहता रहा--निर्वाण, समाधि। अंतिम दिन भी उसने सारे शिष्यों को इकट्ठा किया, सारे शिष्य दूर-दूर से इकट्ठे हुए, उसने कहा कि अब मैं जा रहा हूं, मेरी घड़ी जाने की आ गई, मेरी नाव किनारे लग गई और मैं तुम्हें जिंदगी भर समझाता रहा निर्वाण और मैंने जिंदगी भर तुम्हें समाधि की शिक्षा दी मगर तुममें से कोई भी समाधिस्थ होने को तैयार नहीं है, तुम कहते हो--कल। अब मैं जा रहा हूं, कल नहीं होगा, क्योंकि कल मैं नहीं होऊंगा, जिसको भी मेरे साथ चलना हो, जो निर्वाण के लिए उत्सुक हो, खड़ा हो जाए। कोई खड़ा नहीं हुआ। सिर्फ एक आदमी ने जरा हाथ हिलाया--खड़ा वह भी नहीं हुआ, बैठे ही बैठे हाथ हिलाया। उस भिक्षु ने कहा कि क्या पूछना चाहते हो? उसने कहा कि मैं यही पूछना चाहता हूं कि आना तो मुझे जरूर है निर्वाण, लेकिन अभी नहीं। अभी तो लड़की की शादी करनी है और अभी तो दुकान नहीं खोली है और बेटा विश्वविद्यालय से पढ़ कर लौटा है, आऊंगा, जरूर आऊंगा, और आप जा रहे हैं इसलिए विधि बता दें। विधि याद रखूंगा और जब जरूरत होगी तब विधि का उपयोग कर लूंगा। तुम कभी सोचे हो इस बात पर कि विधियों की तलाश कहीं मन का छलावा तो नहीं है? मन यह भी मानना नहीं चाहता कि मैं परमात्मा में उत्सुक नहीं हूं। मन कहता है, हमारी तो बड़ी उत्सुकता है; हम जैसा धार्मिक कौन, लेकिन अभी नहीं। जब भी तुम कहते हो अभी नहीं, तभी समझ लेना कि तुम अपने को धोखा दे रहे हो। या तो अभी या कभी नहीं।
और परमात्मा किसी दूसरे लोक में नहीं है। यह भी तुम्हें समझाया गया
है कि परलोक में है। एक ही लोक है। यह और वह किसी दीवाल से विभाजित नहीं हैं। इन दोनों के बीच में कोई सीमा नहीं है। यहां बैठे-बैठे कोई उसमें हो सकता है। जमीन पर चलते हैं बुद्ध और जमीन पर उनके पैर नहीं पड़ते। भोजन करते हैं और भोजन नहीं करते। भीड़ में होते हैं और एकांत में होते हैं। बाजार में खड़े होते हैं और बाजार उनके भीतर नहीं होता। यहां होकर कोई वहां हो सकता है और यही होने की असली कला है। यहां और वहां में कोई विरोध नहीं है, कोई शत्रुता नहीं है।
बहुत सियाह है यह रात लेकिन
इसी सियाही में रूनुमां है
वह नहरे-खूं जो मेरी सदा है
इसी के साए में नूरगर है
वह मौजे-जर जो तेरी नजर है
वह गम जो इस वक्त तेरी बाहों-- के गुलसितां में सुलग रहा है वह गम जो इस रात का समर है कुछ और तप जाए अपनी आहों-- की आंच में तो यही सरर है हर-इक सियह शाखकी कमांसे जिगर में टूटे हैं तीर जितने जिगर से नीचे हैं और हर-इक-- का हमने तेशा बना लिया है अलमनसीबों, जिगर फिगारों-- की सुबह अफलाक पर नहीं है जहां पै हम-तुम खड़े हैं दोनों सहर का रोशन उफक यहीं है
यहीं पै गम के शरार खिल कर शफकका गुलजार बन गए हैं
यहीं पै कातिल दुखों के तेशे कतार अंदर, कतार करनों--

के आतिशीं हार बन गए हैं
"अलमनसीबों"... दुखियों का... "जिगर फिगारों की सुबह"... जिगर के जख्मियों की सुबह... "अफलाक पर नहीं है"... आकाश पर नहीं है।
जहां पै हम तुम खड़े हैं दोनों,
सहर का रोशन उफक यहीं है
इसी जमीन पर, यहीं, अभी सारे प्रकाश का स्त्रोत छिपा है।
यही पै गम के शरार खिल कर
यहीं दुख के अंगारे खिल जाते हैं; फूल बन जाते हैं।
शफक का गुलजार बन गए हैं
उद्यान बन जाते हैं। दुख के अंगारे ही सुख के फूल बन जाते हैं, यहीं पर। कीमिया आनी चाहिए, कला आनी चाहिए।
यहीं पै गम के शरार खिल कर
शफक का गुलजार बन गए हैं
यहीं पै कातिल दुखों के तेशे
कतार अंदर, कतार करनों--
के आतिशीं हार बन गए हैं
सब यहीं घटा है। सब यहीं घटता है।
तो ऐसा मत सोचो कि अब बार-बार ऐसा लगने लगा है कि कुछ भी तो नहीं पाना है, कहीं भी तो नहीं जाना है; जीवन है, जीना है; तो कहीं यह मन का छलावा तो नहीं? जरा भी नहीं। यही अंतरात्मा की आवाज है। कहीं नहीं जाना है। कुछ नहीं पाना है। जिसे हम पाने की सोचते हैं उसे हमने पाया हुआ है। वह हमारा अंतरंग है। जिसे हम बाहर देख रहे हैं, वह भीतर मौजूद है। जिसे हम पाने चले हैं, उसे हम पाकर ही चले हैं। प्रथम दिन से हमारे साथ है।
सूफियों ने ईश्वर को दो नाम दिए हैं। एक नाम--अव्वल और दूसरा नाम-- आखिरी। जो पहला है, वह भी ईश्वर और जो अंतिम है, वह भी ईश्वर। दोनों ही ईश्वर हैं। तुम पहले ही दिन से ईश्वर हो। ऐसा नहीं है कि अंतिम दिन ईश्वर हो जाओगे। अगर पहले दिन से ईश्वर नहीं हो तो अंतिम दिन भी ईश्वर कैसे हो पाओगे? जो नहीं है, वह नहीं हो सकेगा। जो है, वही हो सकता है। ख्याल रखना इस विरोधाभास को, तुम वही हो सकते हो जो तुम हो। तुम्हें वही होना है जो तुम हो। अन्यथा का कोई उपाय नहीं है। और जो अन्यथा हो जाओगे, वह झूठ होगा, स्वभाव नहीं होगा। ऊपर-ऊपर से थोपा हुआ होगा। बाहर-बाहर होगा, वस्त्रों की तरह होगा, आवरण होगा, तुम्हारा अंतस नहीं होगा।
मैं तुमसे फिर कहता हूं--तुम ईश्वर हो। जरा भी तुममें कमी नहीं है। सिर्फ आंख झपक गई है और सपने देखने लगे हो। तुम्हारी सारी कमियां तुम्हारे सपनों में देखी गई कमियां हैं। तुम्हारे सारे पाप और पुण्य तुम्हारे सपनों में किए गए कृत्य हैं। जागो और न तुमने कुछ बुरा किया है और न तुमने कुछ अच्छा किया है। जागो तो कृत्य से संबंध छूट जाता है। अस्तित्व से संबंध जुड़ जाता है।
सोने और जागने की यह परिभाषा समझ लेना।
सोने का अर्थ होता है, कृत्य से संबंध जुड़ गया। कर्ता हो गए। फिर कोई पापी हो गया, फिर कोई पुण्यात्मा हो गया, कोई साधु हो गया, कोई असाधु हो गया, फिर हजार ढंग हो गए कर्ता के। जागे, अकर्ता हो गए, साक्षी हो गए, सारा संबंध कर्म से छूट गया। जागते ही न कोई साधु है, न कोई असाधु है। जागते ही केवल परमात्मा है, और उस पर कोई आवरण नहीं है, नग्न परमात्मा है।
नहीं, कहीं भी नहीं जाना है, अपने ही घर आना है। कहीं तलाशना नहीं, खोजना नहीं, खोजने वाले को ही पहचान लेना है। खोजनेवाले में ही वह छिपा है जिसे हम खोज रहे हैं।
जीवन है और जीना है। ठीक भाव उठ रहा है। कुछ करने का नहीं है, बहने का है। जीवन है और जीना है, श्वास चल रही है और श्वास लेनी है। जब श्वास चले तो श्वास लो आनंद से मग्न भाव से और जब श्वास रुक जाए, तो आनंद और मग्न भाव से उसे रुक जाने दो। जब तक जीवन है, जीओ, जब मौत आए तो मरो।
झेन फकीर कहते हैं, "जब भूख लगे तो भोजन कर लो और जब नींद आ जाए तो सो जाओ।" जब तक जीवन चले, चलो और जब जीवन बिखरने लगे, बिखर जाओ। जो घटे, उसे

सहज स्वीकार कर लो, उससे अन्यथा की चेष्टा न करो। अन्यथा की चेष्टा से तनाव पैदा होता है, अशांति पैदा होती है, चिंता पैदा होती है, दुख पैदा होता है, विषाद पैदा होता है। जो हो, जैसे हो, उसमें ही मग्न हो जाओ। यही मेरा तुम्हारे लिए संदेश है--प्रथम और अंतिम। इस एक छोटे से सूत्र को तुमने समझ लिया तो सब समझ लिया। फिर कुछ समझने को नहीं रह जाता, तुम्हारे हाथ में सारे शास्त्रों का सार लग गया।

तीसरा प्रश्न: आपने कल तीसरी आजादी की बात कही। उस संबंध में कुछ और कहें।

आजादी तो पहली भी नहीं आई अभी। तो दूसरी और तीसरी का तो सवाल कहां है? आजादी कभी आई ही नहीं। बाहर से आजादी आती भी नहीं। आ भी नहीं सकती। बाहर से तो केवल गुलामियों के ढंग बदलते हैं, रंग बदलते हैं, बस आवरण बदलते हैं। कभी इस ढंग की गुलामी, कभी उस ढंग की गुलामी। आजादी तो आंतरिक घटना है। तुम आजाद हो सकते हो, तुम्हें कोई आजाद नहीं कर सकता। और तुम आजाद हो सकते हो, कितनी ही बड़ी कारागृह हो वहीं आजाद हो सकते हो। बाहर जाने की भी जरूरत नहीं है। क्योंकि आंतरिक अनुभव है स्वतंत्रता। ध्यान है स्वतंत्रता, प्रेम है स्वतंत्रता। मगर आदमी बड़े धोखे का इंतजाम करता रहता है। भीतर की आजादी खोजने में तो हिम्मत नहीं है, तो बाहर की छोटी-मोटी आजादियां खोजता रहता है--राजनैतिक आजादी, आर्थिक आजादी।
जो आदमी धन कमा रहा है वह क्या कर रहा है, तुम्हें पता है? वह क्या खोज रहा है? आर्थिक आजादी खोज रहा है। वह यह कहता है--गरीबी में बड़ा बंधन है। यह कार खरीदनी है, नहीं खरीद सकते। पैसा होता, आजादी होती। जो खरीदना होता वह खरीद लेते। जिस मकान में रहना चाहते उस मकान में रहते। जो करना होता वही करते। आजादी में कमी है। इसलिए आदमी धन खोजता है। धन से सोचता है आजादी बढ़ेगी। बढ़ती नहीं, घटती है। जितना धन हो जाता है उतनी ही मुश्किल हो जाती है। क्योंकि जितना धन बढ़ने लगता है, उसकी रक्षा करनी पड़ती है, उसकी चिंता करनी पड़ती है। गरीब तो रात सो भी जाए, अमीर रात सो भी नहीं सकता। कैसी आजादी! अमीर रात भर सोचता ही रहता है। उसके पास सोचने को काफी है, चिंता करने को काफी है। फिर जितना धन आ जाता है, उतना ही अनुभव होता है कि सीमा थोड़ी तो बढ़ गई, अब जो कार खरीदनी है वह खरीद सकते हैं, जो मकान लेना हो वह ले सकते हैं, लेकिन जो हवाई जहाज लेना है वह नहीं ले सकते। तो नई गुलामी मालूम होने लगी। थोड़ा धन और हो तो फिर हवाई जहाज भी जो लेना है वह ले लें। फिर ऐसे बढ़ता जाताहै।
इस संसार के फैलावे का कोई अंत नहीं, यह दुकान फैलती चली जाती है। रोज-रोज नई-नई गुलामी अनुभव होने लगती है। जो गुलामी गरीब ने कभी अनुभव नहीं की थी, वह अमीर अनुभव करता है। अमीर ही अनुभव कर सकता है। अब एक गरीब को इसमें कोई गुलामी नहीं मालूम होती, वह मजे से अपने झाड़ के नीचे बैठा टिका दोपहरी में विश्राम कर रहा है--कारें निकली जा रही हैं, वह यह भी फर्क नहीं करता कि कौन सी कार कौन सी? उसे मतलब? उसे यह सवाल ही नहीं है। उसे यह भी नहीं लगता कि कार खरीद लूँ। ऐसा विचार भी उठेगा तो हंस कर झिड़क देगा कि कहां की बातें कर रहे हो? होश में हो? लेकिन कोई साइकिल निकलती है तो सोचता है कि फिलिप्स है कि रेले है, कौन सी साइकिल है? इसको यह साइकिल खरीदने जैसी है! उसके पास भी एक फटीचर है; किसी तरह उसको घसीटता है। उसमें घंटी वगैरह बजाने की जरूरत नहीं पड़ती, वह खुद ही इतनी बजती है कि जहां भी जाता है, दूर से ही लोगों को पता चल जाता है कि आ रहे हैं! थक गया है।
कार की बात नहीं सोच सकता है, लेकिन साइकिल की सोच सकता है। तो साइकिल नई-नई देख कर उसकी गुलामी का अनुभव होता है, लेकिन कार नई-नई देख कर उसे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। कारें उसे दिखाई नहीं पड़तीं। हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हम चाहते हैं। ख्याल रखना, जो हम चाहते हैं वही हमारे अनुभव में आता है। हमारी चाह के प्रकाश में ही हमें चीजें दिखाई पड़ती हैं। जो मिल ही नहीं सकता, उसे हम देखते ही नहीं। उसके देखने की झंझट में भी नहीं पड़ते। तो जितनी-जितनी तुम्हारी अमीरी बढ़ती जाती है, उतनी-उतनी तुम्हारी गुलामी

बढ़ती जाती है। सोचते थे आजादी बढ़ेगी, लेकिन अब और नई-नई बातें मालूम पड़ने लगती हैं कि यह भी खरीद सकता था अगर पैसा होता, वह भी खरीद सकता था अगर पैसा होता।
राजनीतिक आजादी भी एक भ्रम है, छलावा है। आदमी खुद तो आजाद नहीं हो सकता, क्योंकि वहां महंगा सौदा है, साधना है, उतरना पड़ेगा अपनी गहराइयों में, खाइयों में। तो छोटी-मोटी आजादियां खड़ी कर लेता है कि राजनीतिक रूप से आजाद हो गए। तो मैंने जो तुमसे कल तीसरी आजादी की बात कही, वह तो यूं ही मजाक में कही थी। एक कहानी पढ़ रहा था, उससे वह मुझे ख्याल में आ गया। कहानी एक पढ़ रहा था--"तीसरी आजादी।" कहानी प्यारी है। तीसरी आजादी हो गई। ऐसी आजादियां होती ही रही हैं, होंगी, तीसरी भी होगी। अब यह दूसरी में बुड्ढे-ठुड्डे सब चढ़ कर बैठ गए, अब तीसरी में जवान उनको खींच कर नीचे लाएंगे। काम शुरू हो गया है। क्योंकि इन मुर्दों से कहीं आजादी आती है, मुर्दों से कहीं क्रांति होती है! जयप्रकाश ने ऐसी क्रांति की कि दुनिया में कभी किसी ने न की थी। बिल्कुल मुर्दे मरघट से निकाल कर बिठा दिए। और उसको समग्र क्रांति! है, समग्र क्रांति है। मुर्दे को सत्ता में बिठाना कोई छोटा-मोटा काम नहीं है। और अब मुर्दे सत्ता के बल पर चल रहे हैं। सत्ता में बल होता है। सत्ता मिल जाए तो मुर्दा भी चलने लगता है, ख्याल रखना। और जिंदा आदमी की भी सत्ता चली जाए तो एकदम मर जाता है। श्वास ही बंद हो जाती है। तीसरी आजादी ज्यादा दूर नहीं है, बस समझो रास्ते के किनारे पर ही, तैयारी हो रही है। तैयारी शुरू हो गई है, उपद्रव शुरू हो गए हैं। दूसरी से लोग थक गए, क्योंकि आई नहीं, अब तीसरी लाएंगे। और तीसरी से ही थोड़े चुक जाएगा मामला, चौथी आएगी, पांचवीं आएगी--आजादियां आती रहेंगी।
तो यह कहानी मैं पढ़ रहा था कि तीसरी आजादी आ गई। फिर आजादी के बाद सबसे बड़ा जो काम होता है वह हुआ। कई कमीशन बिठाए गए। आजादी के बाद सबसे बड़ा काम यही होता है कि पहले जो सत्ता में थे, वे गलत थे। खुद को सही करने का और कोई उपाय नहीं सूझता, कुछ करके दिखाने की कूबत नहीं मालूम होती। दूसरा गलत था, यह सिद्ध करने का एक ही उपाय है कि तुम कुछ सही करके बताओ। यह जरा झंझट का मामला है। सही होता नहीं, तो कमीशन बिठाओ। दूसरा गलत था, कम से कम इतना तो सिद्ध करो।
दुनिया में दूसरे को गलत सिद्ध करने वाले लोग हमेशा नपुंसक होते हैं। सही सिद्ध करने का अपने को उपाय करना चाहिए कि मैं कुछ करके बताऊं कि यह मैंने किया। उसकी तुलना में अपने-आप दूसरा गलत हो जाएगा। बड़ी लकीर खींच दूं, दूसरे की लकीर अपने आप छोटी हो जाएगी। साफ हो जाएगा कि किसने क्या किया? मगर वह जरा महंगा मामला है। उलझनें बड़ी हैं, समस्याएं बड़ी हैं। चुनाव में आश्वासन देना एक बात है और उनको पूरा करना बिल्कुल दूसरी बात है--कोई कभी नहीं कर पाया। इसीलिए तो चुनाव में आश्वासन देने में लोग संकोच ही नहीं करते। संकोच ही क्या करना है, पूरा तो कोई आश्वासन कभी होता नहीं, पूरा किसीको करने का विचार भी नहीं है। आश्वासन की सीढ़ी पर चढ़ कर लोग सत्ता तक पहुंच जाते हैं। एक दफे पहुंच गए, फिर सब आश्वासन भूल जाते हैं। फिर उन्हें याद ही नहीं रहता, सीढ़ी को भी गिरा देते हैं, क्योंकि सीढ़ी को बचाना भी ठीक नहीं रहता, नहीं तो दूसरे उस पर से चढ़ कर आ जाएं। इसलिए होशियार आदमी सीढ़ी चढ़ कर गिरा देता है कि कोई और दूसरा न चढ़ आए।
तो तीसरी आजादी आई; कई कमीशन बैठे, मुकदमे शुरू हुए। क्योंकि अब जो सत्ता में आ गए, वे सिद्ध करेंगे कि तुमने कुछ भी नहीं किया। उसी कहानी को पढ़ रहा था, इससे तीसरी आजादी का ख्याल आ गया। मोरारजी देसाई को पूछा जा रहा है--जस्टिस रे का कमीशन बैठा हुआ है--वह मोरारजी देसाई को पूछते हैं कि आपने क्या किया अपने कार्यकाल में? तो उन्होंने कहाः मैंने जनता की सेवा की। न्यायाधीश ने पूछाः आपने जनता की सेवा कैसे की? तो मोरारजी देसाई ने कहाः मैंने प्रधानमंत्री बन कर जनता की सेवा की। न्यायाधीश ने पूछा कि आप थोड़ा साफ करके बताइए कि आपने किस तरह सेवा की प्रधानमंत्री बन कर? आपने किया क्या? उन्होंने कहाः मैं प्रधानमंत्री बना और क्या करना है? जिंदगी भर मेहनत करके प्रधानमंत्री बना, अस्सी साल की उम्र में प्रधानमंत्री बना, जनता की सेवा की। न्यायाधीश ने कहाः यह सेवा हमारी कुछ समझ में नहीं

आती, आप थोड़े विस्तार से कहें। तो उन्होंने कहाः विस्तार यह है कि साठ करोड़ आदमी प्रधानमंत्री बनना चाहते थे, मैंने उनको बचाया और मैं प्रधानमंत्री बना। फांसी अपने गले में लगवाई और क्या सेवा चाहिए? सिंहासन पर बैठा, सूली पर चढ़ा और क्या सेवा चाहिए? इतने लोगों को झंझट से बचाया। ऐसा कमीशन प्रश्न पूछता है। कमीशन पूछता है कि और जयप्रकाश नारायण का क्या हाथ था इस क्रांति में? तो मोरारजी देसाई कहते हैं--कोई हाथ नहीं था। पर न्यायाधीश कहता है कि हमने तो सुना कि उन्होंने ही क्रांति की, कि वह महात्मा गांधी जैसे महात्मा हैं। और मोरारजी देसाई कहते हैं--हुस्ट! मेरे अतिरिक्त महात्मा गांधी जैसा और कोई महात्मा नहीं। तो फिर आप उनको लोकनेता क्यों कहते थे? तो मोरारजी देसाई कहते हैं कि उनको कुछ तो देना ही था। प्रधानमंत्री उनको बना नहीं सकते थे, राष्टपति वे बनने को तैयार नहीं थे, उनको कुछ तो देना ही था। जेल तो वह गए ही थे, तो उनको हमने "लोकनेता"-- इसमें कुछ देना भी नहीं पड़ा--"लोकनेता" का नाम दे दिया। कई सवालों के जवाब में वह कहते--हुस्ट! हुस्ट! हुस्ट! और वह न्यायाधीश पूछता है कि आप यह क्या हुस्ट-हुस्ट लगा रखे हैं, मोरारजी भाई? आप ठीक जवाब क्यों नहीं देते? और वह कहते हैं--अब तो मैं कोई भी जवाब नहीं दे सकता, क्योंकि यह मेरी अंतरात्मा कह रही है कि अब छुहारे लेने और "जीवनजल" पीने का समय हो गया। तीस मिनट की मुझे सुविधा चाहिए। घबड़ाकर कि कहीं वहीं वह "जीवनजल" न पीने लगें, बगल के कमरे में उनको ले जाया जाता है और दरवाजा बंद कर दिया जाता है। ऐसी वह कहानी चलती है। वह मैं पढ़ रहा था, इसलिए तीसरी आजादी की याद आ गई।
मगर आजादी न कभी आई है, न कभी आती है, यह सपनों में मत पड़ो। अगर सच में चाहते हो स्वतंत्रता, तो उस शब्द में ही राज छिपा है। स्वतंत्रता का अर्थ होता है, "स्व" जो है तुम्हारे भीतर, उसका तंत्र स्थापित हो जाए, उसका विस्तार स्थापित हो जाए।... हमने इस देश में जो शब्द चुने हैं, ऐसे ही नहीं चुन लिए हैं। आजादी में वह मजा नहीं है, जो स्वतंत्रता में है। क्योंकि उस "स्व" में ही सारा राज है। स्वयं के भीतर मालकियत पैदा हो जाए। इसलिए हम संन्यासी को "स्वामी" कहते हैं। जो स्वतंत्र है, वही स्वामी है। जो स्वतंत्रता की खोज पर चला है, वही स्वामी है। स्वामी का मतलब है, जो अपनी मालकियत घोषित कर रहा है। जो अब किसी चीज की गुलामी स्वीकार नहीं करता। और वह कौन है जो किसी चीज की गुलामी स्वीकार न करेगा? वह वही है जो अपने भीतर बैठे मालिक को पहचान ले।
मालिक तुम्हारे भीतर बैठा है और तुम बाहर हाथ फैलाए हो। और तुम कभी इधर, कभी उधर खोजते हो। और एक जगह तुम खोजते ही नहीं जहां सदा से उसे पाया जाता रहा है। आंख बंद करो, भीतर चलो, थोड़ी अंतर्यात्रा करो और तुम्हें आजादी मिलेगी--वही पहली आजादी है। वही दूसरी, वही तीसरी। सारी आजादियां वहां हैं। आजादी का मूल उद्गम तुम्हारे भीतर है।
बुद्ध हुए स्वतंत्र, जीसस हुए स्वतंत्र, महावीर हुए स्वतंत्र, कृष्ण हुए स्वतंत्र। यह किसी बाहरी आजादी के कारण नहीं। बाहर तो सारा जैसा है वैसा ही चलता रहा है। बाहर का उपद्रव तो ऐसा ही चलता रहेगा। आजादियां होती रहेंगी और कुछ भी नहीं होगा। तुम इस उलझाव में न पड़ो। तुम बाहर के उपद्रव से अपनी व्यस्तता को मत जोड़ो। तुम धीरे-धीरे बाहर के जितने उपद्रवों से मुक्त हो सको, उतना अच्छा। जो जरूरी हो बाहर, उतना ही करो। गैर-जरूरी में जरा भी समय मत लगाना। और लोग गैर-जरूरी में बड़ा समय लगाते हैं। गैर-जरूरी से समय बचाओ और शक्ति बचाओ। तो वही बची हुई शक्ति तो भीतर की यात्रा कर सकती है।
भीतर लोग जाने में हार क्यों जाते हैं? इसीलिए हार जाते हैं कि जाने लायक ऊर्जा नहीं है। सब बाहर ही गंवा बैठते हैं। कुछ धन में गई, कुछ पद में गई, कुछ प्रतिष्ठा में गई, कुछ यहां, कुछ वहां, सब बँट जाता है। खाली रह जाते हैं भीतर, भीतर जाने योग्य कोई सामर्थ्य नहीं बचती।
थोड़ी सामर्थ्य बचाओ। बाहर तुम उतना ही करो, न्यूनतम, जितना जरूरी है।
दो रोटी चाहिए, कर लो। छप्पर चाहिए, काम कर लो। कपड़े चाहिए, काम कर लो।
बच्चों के लिए इंतजाम चाहिए, काम कर लो। मगर बस उतना ही जितना जरूरी है।
उससे शेष सारा समय अंतर की खोज में लगाओ। निखारो अपने को। अभी तुम एक अनगढ़

पत्थर हो। लेकिन पत्थर में परमात्मा छिपा है। जरा मूर्ति प्रगट होने लगेगी, तुम्हारे भीतर आनंद-उत्सव पैदा होगा। वही असली आजादी है।

चौथा सवाल: आपने कहा कि दुख है और दुख रहेगा, क्योंकि संसार के होने में ही दुख निहित है। यदि ऐसा ही है तो फिर किसी ऋषि की यह प्रार्थना-- सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्भ दुखभाग भवेत
--क्या मात्र शुभेच्छा है?

नहीं, मात्र शुभेच्छा नहीं। संसार दुख है, इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हें दुखी रहना अनिवार्य है। संसार दुख है, तुम दुख नहीं हो। तुम दुख से मुक्त हो सकते हो। तुम दुख में फंसे हो, यही चमत्कार है। यही आश्चर्यजनक है कि तुमने संसार के दुख से अपने को कैसे जोड़ लिया है। ऐसा ही समझो कि एक आदमी कीचड़ के डबरे में पड़ा है और वह कहता है कि कीचड़ का डबरा है, अब मैं क्या करूं? हम उससे कहते हैं--तू तो बाहर निकल सकता है! तू कीचड़ नहीं है। तू तो कमल है, तू तो कीचड़ से ऊपर उठ सकता है। कीचड़ कीचड़ है, तू तू है। असल में "सर्वे भवन्तु सुखिनः", सब लोग सुखी हों, इसका मतलब यह नहीं है
कि संसार सुखी हो जाएगा। इसका मतलब इतना ही है कि संसार में सभी लोग जागें, पहचानें कि हमारा स्वभाव दुख नहीं है, हम सुखस्वरूप हैं, हम सच्चिदानंद हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि इस तरह की व्याख्या इस सूत्र की की नहीं गई है। क्योंकि सूत्र की व्याख्या करने वाले सांसारिक लोग हैं। वे सूत्र की भी व्याख्या अपनी कामना के अनुकूल करते हैं। जब तुम ऋषियों को उदघोषित करते पाते हो कि--
सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः
--कि सब दुख के पार हो जाएं, कि सब सुख को उपलब्ध हों, कि सबको मंगल मिले, तो स्वभावतः तुम सोचते हो कि वे कह रहे हैं कि तुम्हें धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, सबको मिले। बस तुम चूक गए वहां। ऋषि अपनी भाषा बोल रहा है, तुम अपनी भाषा समझ रहे हो।
मैंने सुना है, एक बिल्ली इंग्लैंड की यात्रा को गई। जब लौट कर आई तो बिल्लियों ने उसे घेर लिया और कहा--क्या देखा, इंग्लैंड में क्या-क्या देखा? रानी के दर्शन किए कि नहीं? उसका सिंहासन देखा कि नहीं? कोहनूर-जड़ा उसका मुकुट देखा कि नहीं? और उसने कहा--गई थी देखने, देख नहीं पाई, क्योंकि रानी सिंहासन पर बैठी थी, सिंहासन सुंदर था, मुकुट भी बड़ा प्यारा था, मुकुट में हीरा भी चमक रहा था, मगर मैं मुश्किल में पड़ गई, क्योंकि एक चूहा सिंहासन के नीचे बैठा था। उस चूहे को देखने के कारण मैं कुछ और देख नहीं पाई। मैं तो चूहे को ही देखती रही--बड़ा प्यारा चूहा था। बड़ा गजब का चूहा था! एकदम लार टपकने लगी थी। अब बिल्ली अगर इंग्लैंड जाए, तो और देखे भी क्या? कोहनूर भी पड़ा रहे और उसी के पास एक चूहा बैठा हो, तो बिल्ली क्या देखे? भाड़ में जाए कोहनूर! कोहनूर का करोगे क्या? खाओगे, पीओगे कि पहनोगे? जब चूहा मौजूद हो तो कौन कोहनूर की फिकिर करता है!
ऋषि अपनी भाषा बोलते हैं, हम अपनी भाषा समझते हैं। वहीं चूक हो जाती है। जब ऋषि ने कहा--सब सुखी हों, तो ऋषि यह कह रहा है कि जैसा मैं सुखी हुआ, ऐसे सब हों। तुमने सुना, तुमने कहा कि ठीक है, तो ऋषि यह कह रहे हैं कि कार मिले, बड़ा मकान मिले, कि सुंदर पत्नी मिले--तुम अपना सुख सुनने लगे, तुम अपना सुख समझने लगे। ऋषि तो अपने सुख की बात कर रहा है।
ऋषियों का सुख क्या है? कि सबको परमात्मा मिले। वहीं तो पहुंच कर सारे लोग दुख के पार होते हैं। इस संसार में तो दुख ही दुख है। मगर तुम्हें दुखी होने की कोई आवश्यकता नहीं है, अनिवार्यता नहीं है, तुम सुखी हो सकते हो।
मैं सुखी हूं और तुमसे कहता हूं कि तुम भी ऐसे हो सकते हो--मैं गवाह हूं।

सारे ऋषि गवाह हैं। लेकिन तुम तो ऋषियों के पास भी जाते हो तो आशीर्वाद वही मांगते हो कि चूहा मिल जाए।
मेरे पास भी लोग आ जाते हैं और वे कहते हैं, आपके पास आशीर्वाद लेने आए हैं, चुनाव में खड़े हुए हैं। मुझसे भी पाप करवाएंगे वे, चुनाव में वे खड़े हुए हैं! आशीर्वाद लेने आ गए हैं कि चुनाव जीत जाएं! कि मुकदमा लड़ रहे हैं, आशीर्वाद लेने आ जाते हैं कि आशीर्वाद दें। मेरे पास जब लोग आते हैं कभी- कभी और कहने लगते हैं आशीर्वाद दें, तो मैं कहता हूं--पहले ठीक-ठीक बता दें कि तुम्हारी मंशा क्या है? आशीर्वाद किसलिए चाहते हो? क्योंकि जहां तक सौ में निन्यानबे मौके पर तुम गलत चीज के लिए ही आशीर्वाद मांगते होओगे। वह मैं नहीं दे सकता हूं।
संसार तो दुख है। और तुम जिसे सुख मान कर दौड़ रहे हो, उसमें और-और दुख बढ़ता जाएगा क्योंकि वहां सुख नहीं है, मृगमरीचिका है।
खौफ के नाग हर-इक सिम्त हैं फन फैलाए
जुल्मतें बाल बखेरे हुए फिरती हैं यहां
कितनी मद्दूक तमन्नाओं के सूखे ढांचे
एक खामोश से लहजे में है फरियादकनां

वक्त इक भूक की मारी हुई डायन की तरह
चाटता जाता है एहसास के लाशे का लहू और इन तीराफजाओं में घुली जाती है
जहर में लिपटी हुई इक सुबक रंग-सी बू

देख कर इतनी सियह और भयानक राहें
कौन समझेगा भला किसको यह आएगा ख्याल
जगमगाते हुए आरिज की शुआएं लेकर
इन पै गुजरे हैं कुछ माहवशो-बर्के-जमाल
अगर तुम गौर से देखोगे इस जिंदगी के दुख को, तो भरोसा ही नहीं आएगा कि यहां सौंदर्य हो सकता है! यहां सुख हो सकता है! इस मरुस्थल को देख कर ख्याल भी आ सकता है कि यहां कहीं मरूद्यान होंगे? इन कांटों को देख कर सपना भी देखना मुश्किल हो जाएगा कि यहां फूल खिल सकते हैं। बाहर फूल खिलते भी नहीं। फूल भीतर खिलते हैं। बाहर दुख है, भीतर सुख है। बाहर अर्थात दुख, भीतर यानी सुख।
तो जब ऋषि कहते हैं--सबको सुख मिले, तो वे यह कह रहे हैं, सब अपने भीतर लीन हों, सब अपने भीतर जागें, सब अपने भीतर आएं, सब अपने घर में विराजें, सब अपने मालिक को पहचानें, सब अपने स्वभाव में जीएं। यह मेरी परिभाषा। हालांकि मुझे पक्का ख्याल है कि मैत्रेय ने प्रश्न पूछा है तो इसीलिए पूछा है कि अब तक इस सूत्र की जो भी परिभाषाएं की गई हैं वे गलत हैं। वे परिभाषाएं तुम्हारी परिभाषाएं हैं। और तुम्हारे पंडित ही इनके अर्थ करते रहते हैं। पंडितों के हाथ में शास्त्र पड़ गए हैं। और पंडितों के हाथ में पड़ कर ही शास्त्र कारागृह में पड़ गए हैं। उनके कुछ के कुछ अर्थ हो गए हैं। शास्त्र कुछ कहते हैं, पंडित कुछ समझाता है। पंडित तुम्हारी कामनाओं का दलाल है। पंडित तुम्हारा नौकर है। पंडित को तुमसे संबंध है, शास्त्रों से कोई संबंध नहीं, ऋषि से कोई संबंध नहीं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक नवाब के घर नौकरी पर था। नौकरी पर क्या था, चमचा था। उसमें कुशल भी है। और नवाबों को तो जरूरत होती है। दोनों साथ खाना खाने बैठे, नई-नई भिंडी बाजार में आई है, भिंडी बनी है। नवाब ने कहा कि बड़ी स्वादिष्ट बनी है। मुल्ला ने कहा--स्वादिष्ट होगी ही, भिंडी से ऊंची कोई सब्जी दुनिया में नहीं है। यह तो रानी है रानी! इसमें तो बड़े गुण हैं। वनस्पतिशास्त्री क्या-क्या कहते हैं, यह सब उसने बताया, कि भिंडी में कितने-कितने गुण हैं, और भिंडी कितनी अदभुत है, कितनी स्वास्थ्यदायी है--भिंडी अमृत है! जब आदमी अतिशयोक्ति करता है तो फिर कोई कंजूसी तो करता नहीं। सम्राट ने सुना। सम्राट के रसोइए ने भी सुना। फिर उसने दूसरे दिन भी भिंडी बनाई। फिर तीसरे दिन भी भिंडी बनाई। जब सातवें

दिन फिर भिंडी बनाई तो सम्राट ने थाली फेंक दी कि भिंडी, भिंडी, भिंडी, क्या मेरी जान लेना है? मुल्ला ने कहा कि यह खतरनाक है आदमी, यह मार डालेगा आपको, भिंडी जहर है। इससे बदतर तो कोई चीज नहीं, यह तो जानवरों को भी नहीं खिलानी चाहिए। नवाब ने कहाः हद्द हो गई नसरुद्दीन, तुम तो कहते थे अमृत है; अब कहने लगे जहर है। नसरुद्दीन ने कहाः हुजूर, मैं भिंडी का नौकर नहीं, आपका नौकर हूं। जो आप कहें, मैं तो उसी की प्रशंसा के पुल बांधूंगा।
वह जो पंडित है, तुम्हारा नौकर है, उसका ऋषियों से कुछ लेना-देना नहीं है। ऋषियों से तो सिर्फ ऋषियों का ही लेना-देना हो सकता है। और किसी की लेन-देन हो ही नहीं सकती। जो उस चैतन्य की दशा में पहुंचे हैं, वही उसका ठीक अर्थ कर सकते हैं। क्योंकि वह अर्थ शब्दों में नहीं छिपा है, अनुभव में छिपा है। जिन्होंने प्रेम जाना है, वे प्रेम का अर्थ करेंगे। और जिन्होंने परमात्मा जाना है, वे परमात्मा का अर्थ करेंगे। लेकिन जिन्होंने केवल प्रेम शब्द पढ़ा है और परमात्मा शब्द सुना है, वे भी अर्थ कर सकते हैं; मगर वह अर्थ शब्द का ही होगा। इसलिए भूल हो रही है।

आखिरी प्रश्नः भगवान, आखिरी सवाल। सवाल भी आप, जवाब भी आप, पूछने वाले
भी आप, उत्तर देने वाले भी आप; यह कैसी लीला? मैं तो यहां से भाग ही जाऊंगी। बहुत खुश होकर तीस तारीख को जा रही हूं। हमेशा आपके चरणों में मुझे रख लेना।

योगिनी, अब भाग न पाओगी। और भागकर जाओगी कहां? मैं पीछा करूंगा। मैं पीछे-पीछे आऊंगा। मैं छाया की तरह। एक बार किसी ने मुझसे संबंध जोड़ा तो फिर भागने का उपाय नहीं है। फिर मैं तुम्हारे सपनों में उतरूंगा, तुम्हारी नींद को झकझोरूंगा, तुम्हारे भावों में तैरूंगा। मैं तुम्हारी स्मृति बन जाऊंगा। मैं तुम्हारी कल्पना बन जाऊंगा। बचने का कोई उपाय नहीं है, योगिनी! भागने का कोई उपाय नहीं है। भागने का मन भी होता है, यह भी मैं जानता हूं। घबड़ाहट भी लगती है। यह प्रेम बड़ा है। इसमें डूबे तो डूबे। यह मझधार में डूबना है।
लोग तो उतरने आए और मैं उन्हें डुबाता हूं। लोग सोचकर आए थे उस पार जाना है और मैं कहता हूं--मझधार के अतिरिक्त और कोई पार नहीं है! मझधार तक समझा-बुझा कर ले आता हूं कि चल रहे हैं उस पार--वह केवल समझाना है, योगिनी-- जब मझधार आ जाती है, तो मैं कहता हूं--आ गई जगह, अब लगाओ डुबकी, अब डूबो, अब मिटो! वह तो प्रलोभन है केवल। वह तो किनारे को पकड़े हुए लोग हैं, वह वह किनारा छोड़ नहीं सकते, उनको दूसरे किनारे की पूरी की पूरी आस्था दिलानी पड़ती है कि दूसरा किनारा है, इससे भी बड़ा सुंदर किनारा है, वहां सोने-चांदी के फूल खिलते हैं, वहां हीरे-जवाहरात कंकड़ों की तरह पड़े हैं, वहां हजार-हजार सूरज निकले हुए हैं, वहां अमृत की वर्षा हो रही है। वह तो दूसरे किनारे के सब्जबाग दिखाने पड़ते हैं, नहीं तो तुम इस किनारे को छोड़ने को राजी नहीं, तुम कहते हो--फिर हम जाएं क्यों? यहीं ठीक हैं, क्षणभंगुर फूल हैं मगर खिलते तो हैं; सोने-चांदी के नहीं, मगर क्या फिकर!
लेकिन एक बार तुम चल पड़े मेरे साथ, तो मझधार में पहुंच कर मैं तुमसे कहता हूं--कोई किनारा नहीं। और लौट कर जाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो मझधार में आ गया, वह किनारा भी खत्म हो गया उसका जो छोड़ चुका है। वह भी सपने में था, वह तो टूट चुका। और दूसरा किनारा एक कांटे की तरह था। एक कांटा तुम्हारे पैर में लगा था, दूसरा कांटा हम लाए कि तुम्हारे पैर में लगे कांटे को निकाल लें। फिर दोनों को फेंक देना है। दोनों किनारे छूट जाते हैं, मझधार में आदमी डूबता है। और जो मझधार में डूब गए, वे धन्यभागी हैं। क्योंकि वही तरे, वही तिरे। जो डूबे, वही तिरे।
जीसस का अदभुत वचन है--मिटोगे तो पाओगे।

पूछा हैः आखिरी सवाल।

आखिरी कोई सवाल हो नहीं सकता, लगता है बहुत बार कि आखिरी सवाल आ गया।
एक सवाल से दूसरा सवाल पैदा हो जाता है। सवाल से न पैदा हो तो जवाब से पैदा हो जाएगा। मगर आखिरी नहीं हो पाता। तुमने कुछ पूछा, तुम्हें लग रहा था कि आखिरी है, अब और कुछ पूछने को नहीं बचा, लेकिन मैं कुछ कहूंगा उत्तर में, उसमें से दस सवाल उठ आएंगे। हर उत्तर नये प्रश्न जन्मा जाता है।
आखिरी सवाल तो उस दिन होगा जब तुम पूछोगे ही नहीं। जब तुम्हें समझ में
आ जाएगा कि हर सवाल जवाब बनता है, हर जवाब नये सवाल बन जाता है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा, पूछना छूट जाएगा; निःप्रश्न मेरे पास बैठे होओगे; बस यहां मैं, वहां तुम; और धीरे-धीरे न मैं यहां, न तुम वहां, खो गए दोनों, एक लय बंधी, एक तार जुड़ा, एक संगीत उठा। उस उपस्थिति में सारी उपलब्धि है।
ये सवाल-जवाब तो सब बहाने हैं। यह तो तुम्हें यहां उलझाए रखने की व्यवस्था है। तुम शायद अभी तैयार नहीं हो कि खाली-खाली यहां बैठ सको रोज-रोज। एकाध दिन बैठ सको, रोज-रोज न बैठ सकोगे। चुपचाप मेरे पास बैठ सको, तो कहने की जरूरत नहीं है; क्योंकि जो कहना है मुझे, कहा नहीं जा सकता और जो मैं कह रहा हूं, उसे कहने की कोई जरूरत नहीं है। मगर तुम चुप न बैठ सकोगे। तुम्हारे चंचल मन के लिए कुछ चाहिए जिससे वह खेलता रहे। ये शब्द खिलौने हैं। जैसे छोटा बच्चा ऊधम करता है, उपद्रव मचाता है, उसको खिलौना दे देते हैं, वह खिलौने में लीन हो जाता है; ऐसा तुम्हारा मन है, चंचल है, उपद्रवी है, तुम्हें कुछ शब्द देता हूं, शब्द खिलौने हैं, तुम्हारा मन उनसे उलझ जाता है। इधर तुम्हारा मन उलझा रहता है, वहां असली काम किनारे-किनारे चल रहा है, परोक्ष में चल रहा है। मन उलझा है, तुम मेरे करीब सरक रहे हो, मैं तुम्हारे करीब आ रहा हूं। धीरे-धीरे यह राज तुम्हें समझ में आ जाएगा। इसीलिए तो तुम देखते हो कि बहुत लोग जो हिंदी नहीं समझते, वे भी सुनने बैठे हैं। तुम सोचते भी हो कभी-कभी कि ये लोग क्या सुन रहे हैं? इनको राज समझ में आ गया है कि सवाल सुनने का नहीं है, सवाल गुनने का है; सवाल सुनने का नहीं है, सवाल साथ होने का है, सत्संग का है। तो मैं क्या कर रहा हूं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। किस भाषा में कह रहा हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन कुछ मेरी मौजूदगी कह रही है, जो अभाष्य है, जो भाषातीत है, वे उस मौजूदगी को पी रहे हैं। उसी मौजूदगी को तुम जब पीने लगोगी, फिर सवाल आखिरी आया। नहीं तो सब सवाल नये जवाब, नये सवालों कीशृंखला, सिलसिला शुरू करते हैं।
तुम पूछती होः "आखिरी सवाल। सवाल भी आप, जवाब भी आप, पूछने वाले भी आप, उत्तर देने वाले भी आप; यह कैसी लीला?"
क्योंकि एक ही है, दो हैं नहीं, दो हमारी भ्रांति है। और यहां तुम्हें इसकी प्रतीति हो जाए, इसीलिए रुका हूं, इसीलिए ठहरा हूं तुम्हारे पास कि तुम्हें इस बात की प्रतीति हो जाए कि सवाल और जवाब दो के नहीं हैं; बोलने वाला और सुनने वाला यहां दो नहीं हैं, यहां सुनने वाला और बोलने वाला एक ही है। धीरे-धीरे यह भाव उमगेगा, प्रगाढ़ होगा, गहरा जाएगा। और जैसे-जैसे यह भाव गहरा जाएगा, तुम चकित होकर जागोगे कि दो तो कभी भी न थे।
यहां मैं और तू नहीं हैं। जहां मैं-तू खो जाते हैं, फिर जो शेष रह जाता है--वह--वही है। रसो वै सः। वही रसधार है। उसीकी तलाश है। उसीकी खोज है। यह कोई व्याख्यान नहीं हो रहा है यहां। यह सत्संग है। उसके रस को हम कैसे अपने में स्वीकार कर पाएं, इसकी आयोजना हो रही है। यह आयोजना वैसी है जैसे कभी तुम शास्त्रीय संगीत सुनने गए? तो घड़ी-आधा घड़ी तो संगीतज्ञ अपने वाद्य को ही बिठाने में समय लगा देता है। साज जमाता रहता है। इधर तार कसता, उधर ढीला करता, इधर तबले को ठोंकता, उधर तबले को ठोकता। जो लोग शास्त्रीय संगीत नहीं जानते, उनको बड़ी हैरानी होती है कि घर से ही ठोक-पीट कर क्यों नहीं ले आते? यहीं बैठ कर यह खटर-पटर क्यों मचाते हो? लेकिन जिन्हें पता है वह जानते हैं कि तार ता.जा-ता.जा कसने होते हैं; बासे हो जाते हैं। बासे हो जाते हैं, फर्क पड़ जाता है। प्रतिपल ताजा होने चाहिए। वहीं तुम्हारे सामने बैठ कर--बड़ा बेहूदा लगता है, कि ठोकने लगे तार, तार कसने लगे, ढीले करने लगे; यह पर्दे के पीछे ही कर लेते, यह घर से ही कर लाते। नहीं, यह नहीं

हो सकता। शास्त्रीय संगीत जीवंत संगीत है। जैसे जीवन प्रतिपल नया है और प्रतिपल तैयार करना होता है, प्रतिपल जीना होता है, ऐसे ही। घड़ी-आधा घड़ी इसीमें लगा देता है संगीतज्ञ। कभी-कभी तो बड़ी भूल-चूक हो जाती है।
ऐसा हुआ लखनऊ में नवाब वाजिद अली के जमाने में।
एक अंग्रेज गवर्नर उसके यहां संगीत सुनने आया। वाजिद अली बड़ा प्रेमी
था संगीत का। उसके पास बड़े-बड़े संगीतज्ञ थे। उसने अपने बड़े से बड़े संगीतज्ञों को निमंत्रित किया--गवर्नर आया था। बैठे संगीतज्ञ, बैठक जमी, महफिल बैठी। अब संगीतज्ञ लगे ठोकने--कोई अपना तबला ठोक रहा है, कोई अपनी सारंगी जमा रहा है, कोई अपना सितार कस रहा है! आधी घड़ी बीत गई, गवर्नर ने कहा कि मुझे बड़ा आनंद आ रहा है, यही संगीत जारी रहे। उसे कुछ पता तो है नहीं, वह तो इस ठोकने-पीटने को समझा कि संगीत है--यही संगीत जारी रहे! वाजिद अली तो पागल था, उसने कहा, फिर यही जारी रहे। उसने आज्ञा दे दी कि यही करते रहो। तीन घंटे तक यही जारी रहा। और गवर्नर बड़ा संतुष्ट गया।
तुम ख्याल रखना कि जो मैं बोल रहा हूं, यह तो केवल तारों का कसा जाना है। तुम उस अंग्रेजी गवर्नर जैसी मूढ़ता मत कर लेना, इसी को संगीत मत समझ लेना; यह तो केवल साज बिठाया जा रहा है। और जब साज बैठ जाता है, तो फिर चुप्पी है। और वही चुप्पी संगीत है। शब्द ही मत सुनना, शब्दों के बीच में जो अंतराल है उन्हें सुनना। जो मैं कह रहा हूं वही मत सुनना, जो मैं हूं, उसे सुनना। जो मैं नहीं हूं, उसे सुनना। शून्य को पकड़ना, मौन को पकड़ना। ये जो उत्तर दे रहा हूं, यह तो केवल साज बिठाया जाना है।
रवींद्रनाथ मरते थे। तो उनके एक मित्र ने कहा कि तुम तो धन्यभागी हो! तुमने छह हजार गीत लिखे। इससे बड़ा महाकवि पृथ्वी पर कभी हुआ नहीं। इंग्लैंड में लोग शैली को महाकवि समझते हैं, उसने भी दो हजार गीत लिखे हैं, तुमने छह हजार लिखे। और ऐसे गीत लिखे कि सब संगीत में बंध जाते हैं। तुम्हें तो आनंद से जाना चाहिए। तुम्हारी आंख में आंसू क्यों हैं? रवींद्रनाथ ने आंख खोली और कहाः आंसू इसलिए हैं कि मैं परमात्मा से शिकायत कर रहा हूं कि अभी तो मेरा साज ही बैठ पाया था, अभी असली गीत गाया कहां? अभी तो ठोक-पीट कर रहा था। ये छह हजार गीत तो बस साज बिठाने में लिखे हैं। अब जरा बैठ रहा था, बैठने के करीब आ रहा था और यह विदा का क्षण आ गया। अब ऐसा लगता था कि शायद गा पाऊंगा जो गाने आया था, करीब आ रही थी बात, जबान पर आ रही थी बात और जाने का वक्त आ गया; यह क्या मजाक है! अब तो तैयार हो रहा था, अब तो वीणा कस गई थी, संगीत उतरने ही उतरने को था।
जो मैं कह रहा हूं, वह तो केवल वीणा का कसना है। जो अनकहा छोड़ा जा रहा है, वही असली संगीत है। उसे सुनो। उसीमें डूबो। वही रस है। वही परमात्मा है।
पूछा हैः "बहुत खुश होकर तीस तारीख को जा रही हूं, हमेशा आपके चरणों में मुझे रख लेना।"
रख लिया। तेरा हृदय यहीं रखे ले रहे हैं। संन्यास का यही अर्थ है कि तुम्हारा हृदय ले लेता हूं और मेरा हृदय तुम्हें दे देता हूं। इस लेन-देन का नाम संन्यास है। इस संवाद का नाम संन्यास है।

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
उन्नीसवां प्रवचन

रज्जब आपा अरपिदे

नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।
रज्जब रिधि कुआंरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग।।
छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधू-संत।
रज्जब यह संतोषी चाल, मांगहि नाहिं मुलक औ माल।।
जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं।
रज्जब आपा अरपि दे, तौ आवै हरि माहिं।।
करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहां मिलै रहिमान।।
हाथघड़े कूं पूजता, मोललिए का मान।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान।।
माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग।
सो दिल दादू-पंथ में, परम पुरुष सूं लाग।।
पराकिरत मधि ऊपजै, संसकिरत सब भेद।
अब समझावै कौनकरि, पाया भाषा भेद।।
बीजरूप कछु और था, बिरछरूप भया और।
त्यूं प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर।।
बेद सु बाणी कूपजल, दुखसूं प्रापति होइ।
सबद साखि सरबर सलिल, सुख पीवै सब कोइ।।
चाकी चरखा घसि गए, भ्रमि-भ्रमि भामिनी हाथ।
तौ रज्जब क्यूं होहिंगे, नरे निहचल तिनसाथ।।
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप।।

हमने सुना था सहने-चमन में कैफ के बादल छाए हैं।
हम भी गए थे जी बहलाने अश्क बहा कर आए हैं।।
फूल खिले तो दिल मुरझाए शम्अ जले तो जान जले।
एक तुम्हारा गम अपना कर कितने गम अपनाए हैं।।
एक सुलगती याद, चमकता दर्द, फरोजा तन्हाई।
पूछ न उसके शहर से हम क्या-क्या सौगातें लाए हैं।।
सोए हुए जो दर्द थे दिल में आंसू बन कर बह निकले।
रात सितारों की छाओं में याद वो क्या-क्या आए हैं।।
आज भी सूरज डूब गया बेनूर उफक के सागर में
आज भी फूल चमन में तुझको बिन देखे मुरझाए हैं।
वह दिन जो प्रभु को बिन देखे बीत गया, व्यर्थ गया।
आज भी सूरज डूब गया बेनूर उफक के सागर में।
आज भी फूल चमन में तुझको बिन देखे मुरझाए हैं।।
और जिंदगी ऐसे ही रीतती चली जाती है। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं।
और भरे बिना तृप्ति नहीं। रोना ही रोना है। चेतना पर आनंद के कमल नहीं खिलेंगे। उसकी मौजूदगी में ही खिलते हैं, उसकी उपस्थिति में ही खिलते हैं। परमात्मा की प्रतीति होने लगे, जो तुम्हारा बीज है फूट पड़ता है। उसके बिना तुम लाख कुछ करते रहो--धन इकट्ठा करो, पद-प्रतिष्ठा कमाओ--आखिर में पाओगे सब राख के ढेर लगा लिए हैं। और ऐसी ही बहुत जिंदगियां बीत गई हैं। हाथ कुछ भी नहीं लगा है।
और यहाँ दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं जो कमजोर हैं--इतने कमजोर हैं, इतने भयभीत हैं कि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, लेकिन भय के कारण अटके हुए हैं। विराट का भय है, अज्ञात का भय है, अनंत का भय है। सीमा तो टूटेगी उसके साथ। मैं तो मिटेगा उसके साथ। मैं को बचाने के कारण, मैं को बचाने में लगे रहने के कारण हम परमात्मा से वंचित होते हैं। और मैं सिवाय एक कांटे के क्या है? मैं सिवाय एक पीड़ा के क्या है? मैं ही तो दुखों का दुख है। उसको

ही हम बचाने में लगे रहते हैं। और उसको बचाने में उसे गंवा देते हैं जो मिल जाता तो सब मिल जाता। शर्त पूरी नहीं कर पाते हम।
शर्त एक ही है परमात्मा को पाने की--अपने को मिटाए जो, वही उसे पा सकता है। जो अपने से भरा है, वह परमात्मा से खाली रह जाएगा। बांस की पोली पोंगरी की भांति जब तुम हो जाओगे, मैं-भाव भीतर कहीं भी भरा न होगा, तब उसके स्वर तुमसे गूंजेंगे। तब उसकी वाणी तुमसे उतरेगी। उसकी वाणी उतरने को प्रतिपल राजी है, तुम राजी नहीं। और ध्यान रखना, तुमने किन्हीं कर्मों के कारण उसे नहीं गंवाया है, तुमने गंवाया है उसे भय के कारण। मगर आदमी बड़ा कुशल है। वह अपने बचाव की तरकीबें खोज लेता है--बड़ी दार्शनिक तरकीबें खोज लेता है। लोग कहते हैं--क्या करें, जन्मों-जन्मों के कर्म बाधा बन रहे हैं। कोई कर्म बाधा नहीं बन रहा है। कर्म की सामर्थ्य बाधा बनने में नहीं है--यह भक्तों की घोषणा है कि कोई कर्म बाधा नहीं बन रहा है; पापी से पापी अभी इसी क्षण परमात्मा को याद करे तो पहुँच जाए। जैसे अँधेरा रोशनी के पैदा होने में बाधा नहीं बनता, ऐसे ही कोई कर्म बाधा नहीं बनता।
क्या तुम्हारे जागने में तुम्हारे सपने बाधा बन सकते हैं? अगर कोई जगाइगा तो क्या तुम जागोगे नहीं क्योंकि तुम सपना देख रहे हो? क्या तुम यह कहोगे कि इतने सपने मैं देख रहा हूं, मैं जागूं कैसे? जागने में सपने बाधा नहीं बनते। हां, अगर तुम सोए रहो तो सपने जारी रहते हैं। कर्म स्वप्न से ज्यादा नहीं है। तुमने जो भी किया है, सब स्वप्न है। कृत्य मात्र स्वप्न हैं। कर्ता का भाव स्वप्न है। कर्ता का भाव ही अहंकार है। मैंने यह किया, मैंने यह किया, उसी से मैं मजबूत हुआ है। फिर मैं पापी का हो या पुण्यात्मा का, कुछ भेद नहीं पड़ता। सुंदर हो कि कुरूप, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुमने अपनी बांसुरी में मिट्टी भर रखी है कि सोना भर रखा है इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसकी वाणी के उतरने में बाधा पड़ जाएगी। उसके स्वर तुमसे नहीं उतर सकेंगे। तुम हटो तो परमात्मा आए। तुम उसके हाथ में अपनी बागडोर दो। स्मरण करो गीता का, यह प्रतीक महत्त्वपूर्ण है कि कृष्ण सारथी बने, अर्जुन रथ में बैठा, कृष्ण के हाथ में बागडोर है। इस प्रतीक को ठीक समझो। तुम बागडोर उसके हाथ में दो। तुमने अपने हाथ में रखकर बागडोर खूब भटक लिया है। मगर भय रोकता है। एक तो भय रोकता है, मनुष्य को परमात्मा से मिलने से। दूसरा तुम्हारा तथाकथित ज्ञान रोकता है, तुम्हारा पांडित्य रोकता है। इन दो चीजों के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं रोकती। तुमने ज्ञान के नाम पर उधार बातें इकट्ठी कर ली हैं। उधार तुम्हारे जीवन में दीए नहीं जलेंगे। जीवन का दीया तो तुम्हें भीतर ही जलाना होगा।
बुद्ध का अंतिम वचन था अपने भिक्षुओं को--"अप्प दीपो भव।" अपने दीये बनो। बुद्ध जब विदा होने लगे तो शिष्य स्वभावतः रोने लगे। आनंद तो बिल्कुल रोने लगा, आंख से आंसू के धारे बहने लगे। बुद्ध ने पूछाः तू क्यों रोता है? आनंद ने कहाः आपके रहते मैं मुत्त न हो सका, आपके रहते दीया न जला, अब मेरा क्या होगा? बुद्ध ने कहाः जीवन भर मैंने तुझसे यही कहा है कि कोई दूसरा तेरा दीया नहीं जला सकता। दीया तो तुझे स्वयं जलाना होगा। और शायद यह अच्छा ही है, मेरी मृत्यु हो जाए तो तेरा दीया जल जाए। क्योंकि मैं जब तक मौजूद हूं, तब तक तू इसी आशा में बैठा है कि मैं तेरा दीया जलाऊंगा।
और ऐसा ही हुआ। बुद्ध की मृत्यु के चौबीस घंटे बाद आनंद का दीया जल उठा। वह जो आशा बना रखी थी कि कोई दूसरा दीया जला देगा; जब बुद्ध हैं, तो मैं क्यों फिकिर करूं? उनकी सेवा करूँगा, वे दीया जला देंगे। लेकिन कोई दीया बाहर से जलाया नहीं जा सकता। और अच्छा है कि जलाया नहीं जा सकता, नहीं तो वह रोशनी भी गुलाम हो जाती। कोई जला देता, कोई बुझा देता। जो चीज बाहर से जलाई जा सकती है, वह बाहर से बुझाई भी जा सकती है, याद रखना। और जो चीज बाहर से जलाई नहीं जा सकती, बाहर से बुझाई भी नहीं जा सकती। ज्ञान न तो दिया जा सकता है और न छीना जा सकता है।
लेकिन तुम्हारे पास तो ज्ञान है, वह ऐसा ही है कि दिया गया है। और छीना
भी जा सकता है। इसीलिए तो लोग एक धर्म को मानते हैं तो दूसरे धर्म का शास्त्र पढ़ने से डरते हैं। डरते हैं क्योंकि जो ज्ञान मानकर रखा है, कहीं गलत न हो जाए। उन्हें कोई तर्क ऐसा न मिल जाए कि अपना ज्ञान गलत हो जाए।

आस्तिक नास्तिक से बात करने में डरता है। यह कोई आस्तिकता हुई! यह नपुंसक आस्तिकता दो कौड़ी की है।
यह भय क्या है? यह भय यही है कि कोई तर्क ऐसा न हो कि मेरे तर्कों का जो मैंने जाल बना रखा है वह टूट जाए। आत्म-अनुभव तो है नहीं, शब्द इकट्ठे कर रखे हैं। बाहर से शब्द मिले हैं, कोई बाहर से.जरा कुशल होगा तो तुम्हारे शब्दों को अस्त-व्यस्त कर देगा। जो बाहर से आया है, बाहर से छीना जा सकता है। भीतर का भरोसा करना।
तो एक तो भय रोकता है, क्योंकि भय खुलने नहीं देता। और दूसरा ज्ञान रोकता है। इन दो के अतिरित्त और कोई बाधा नहीं है।
भत्ति का भरोसा कर्म में नहीं है, और भत्ति का भरोसा ज्ञान में भी नहीं है।
भक्ति का भरोसा प्रेम में है।
प्रेम अद्भभुत जादू है। प्रेम का अर्थ ही यह होता है--विचार नहीं, मस्तिष्क नहीं, हृदय, भाव। और प्रेम का अर्थ ही यही होता है कि मैं नहीं, तू। मैं कर्ता नहीं, तू कर्ता। तुम लाख दोहराते हो कि ईश्वर स्रष्टा है, उसने जगत को बनाया, लेकिन भीतर गहरे में तुम यही भाव रखते हो कि मैं कर्ता हूं। अगर ईश्वर स्रष्टा है तो तुम कर्ता कैसे हो सकते हो? फिर वही कर रहा है। और अगर तुम कर्ता हो तो ईश्वर स्रष्टा नहीं हो सकता। फिर तुम कर रहे हो। इन दो के बीच स्पष्ट बोध हो जाए तो भक्ति आसान हो जाती है।
रज्जब के साथ ये थोड़े-से दिन हमने बिताए, ये दिन प्यारे थे। रज्जब रोज-रोज नई सौगात लाए, नई भेंट लाए; रोज-रोज बहुमूल्य हीरों-जैसे वचन उन्होंने दिए। इनमें से कोई एक वचन की भी चोट तुम पर पड़ जाए तो तुम्हारी वीणा झंकृत हो जाएगी। एक वचन भी अगर तुम्हारी समझ में आ जाए--ख्याल रखना, मैं कह रहा हूं समझ में आ जाए। समझ में आना बड़ी और बात है। साधारणतः जिसको तुम समझ कहते हो, वह समझ नहीं है। सीधी-सादी भाषा है, समझ में तो आ ही जाती है। कुछ ऐसी कठिन बात तो कही नहीं है, सरल-सरल बात है। नगद बात है। दो और दो चार, ऐसी सीधी बात है। समझ में तो आ ही जाती है। यह समझ नहीं है। यह बुद्धि की समझ है।
एक और समझ है जो बुद्धि से नहीं होती; जो तुम्हें दिखाई पड़ती है। सुनते-सुनते रज्जब को कोई बात दिखाई पड़ जाती है। जैसे कोई भाला चुभ गया।
रज्जब ने कहा न--धन्य मैं कि मेरे गुरु ने मेरी छाती में भाला भोंक दिया।
उसी भाले के भोंकने से भजन का भाव जगा। उसी भाले के भोंकने से मैं मिटा और परमात्मा का मुझे अनुभव हुआ। ये शब्द नहीं हैं, तीर हैं। इनकी व्याख्या तो सिर्फ एक बहाना है कि तुम्हारा हृदय खुला हो, कोई तीर तुम्हें चुभ जाए। नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।
इस संसार में नामर्द वे हैं, जो भोग ही नहीं पाते। संसार को ही नहीं भोग पाते। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में निन्यानबे नामर्द हैं; भगोड़े हैं। बिना भोगे भाग गए हैं। और बिना भोगे जो भागता है, भोग उसका पीछा नहीं छोड़ता। वे पहाड़ों में बैठ जाएं, वे गुफाओं में छिप जाएं, भोग उनका पीछा नहीं छोड़ सकता। समझ से तो गए नहीं, जीवन अभी व्यर्थ नहीं हुआ था, अभी जीवन में सब सार्थकता दिखाई पड़ती थी, शायद जीवन से भी डर गए और भाग गए। ख्याल रखना, जीवन से भी डर पैदा होता है। बाजार में संघर्ष है, गलाघोंट प्रतियोगिता है, भागने का मन होता है, कहीं छिप जाओ।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब भी दुकानदार, व्यवसाई, कामकाज में लगे लोग बहुत चिंता से घिर जाते हैं, तो बीमार हो जाते हैं। बीमारी आती नहीं, उनका मन पैदा करता है। ताकि बीमारी की आड़ में छिप जाएं। अब इतना भारी हो गया बाजार, जिंदगी जीनी कठिन हुई जा रही है, रात नींद नहीं है, दिन चैन नहीं है, तनाव बढ़ता जा रहा है, तो मन एक उपाय करता है, कि अब इससे भागने का तो सीधा उपाय नहीं है, बीमार हो जाओ। मन एक नई बीमारी बना लेता है। बीमार के पीछे आदमी छिप सकता है। फिर कोई यह नहीं कहेगा कि तुम भगोड़े हो। अब तुम क्या करोगे, अगर तुम्हें पक्षाघात हो जाए तो बिस्तर पर लेटना ही होगा। ऐसे लेटोगे तो सारी दुनिया तुम्हें कहेगी कि तुम कमजोर हो, अभी संघर्ष का मौका था तो भाग गए, तो आदमी पक्षाघात पैदा कर लेता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं

कि सत्तर प्रतिशत पक्षाघात झूठे होते हैं; पैदा किए होते हैं, मानसिक होते हैं।
ऐसा हुआ, एक घर में एक आदमी को दस साल से पक्षाघात की बीमारी थी, लकवा लगा था और घर में आग लग गई। जब सारे लोग भागे, वह भी भाग कर बाहर आ गया। कोई देखकर भरोसा ही नहीं कर सका कि वह तो चलता ही नहीं था, वह तो उठता ही नहीं था बिस्तर से, वह भाग कैसे सकता है? मगर आग लग गई तो उसे याद भी न रहा होगा। आग लग गई तो अचेतन मन ने जो बीमारी पैदा की थी वह वापिस ले ली होगी। यह खतरा भारी था। बाजार का खतरा तो ठीक है, मगर आग का खतरा और बड़ा खतरा था। अचेतन मन ने तत्काल बीमारी वापिस ले ली। वह आदमी भाग ही गया। उसने सोचा भी नहीं, विचार भी नहीं आया, मौका भी नहीं था, समय भी नहीं था। बाहर जब पहुँचा और भीड़ ने कहा--अरे तुम, और दस साल से तुम चले नहीं! वह वहीं तत्क्षण गिर पड़ा। वापिस लौट आया भाव।
तुम चकित होओगे यह जानकर कि मनोवैज्ञानिकों का यह कहना कि सत्तर प्रतिशत लोग मानसिक पक्षाघात से घिरे रहते हैं सौ में से, बड़ी खोजबीन पर आधारित है। और इसका सीधा-सा परीक्षा का उपाय है। जो आदमी पक्षाघात से भरा है, उसको सम्मोहित कर दिया जाता है और सम्मोहन अवस्था में कहा जाता है-- उठो, चलो। वह चलने लगता है। लेकिन अगर शरीर में खराबी होती तो चल ही नहीं सकता चाहे सम्मोहन हो और चाहे सम्मोहन न हो। शरीर में कोई खराबी नहीं है, मूर्छा की अवस्था में चलने लगता है। कभी-कभी गहरे नशे में चलने लगता है। खूब शराब पिला दी और चलने लगता है। आदमी बीमारियाँ पैदा करता है।
तुम जानते हो पश्चिम में इस तरह की बीमारियाँ ज्यादा पैदा होती हैं बजाय पूरब के। क्योंकि पूरब ने धर्म की आड़ में पलायन का उपाय खोज लिया है। पूरब में जिसको बहुत घबड़ाहट हो जाती है संसार से, डर लगने लगता है, वह संन्यासी हो जाता है। हमने ज्यादा सुंदर उपाय खोजा। किसी को बीमार होने की जरूरत नहीं, संन्यासी हो सकता है, पहाड़ जा सकता है। लोग सम्मान करेंगे। लोग शोभा-यात्रा निकालेंगे। लोग कहेंगे--मुनि महाराज आए हुए हैं। स्वामी जी आए, महात्मा जी आए हुए हैं। ये सब भगोड़े हैं। और ये वहाँ बैठकर गुफाओं में भी भोग का ही चिंतन करते हैं। कुछ और चिंतन कर भी नहीं सकते। तुम जो शास्त्रों में पढ़ते हो कि ऋषि-मुनियों को अप्सराएं सताती हैं, कोई अप्सराएं कहीं हैं नहीं सताने को। अप्सराओं को फुरसत कहाँ? कहाँ से अप्सराएं आती हैं? वही अधूरा भोग, अनजिआ भोग।
यह वचन अद्भभुत है। रज्जब कहते हैं--
नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।
जो कमजोर हैं, उन्होंने तो भोगा ही नहीं। और जिन्होंने भोगा नहीं, उन्होंने जाना नहीं। और जिन्होंने भोगा नहीं, उनका त्याग व्यर्थ। भोग से जिसके जीवन में त्याग आता है, उसको मर्द कह रहे हैं रज्जब। "मरद गए करि त्याग।" उन्होंने भोगा भी और भोगकर देखा भी, जूझे भी, लड़े भी, जिंदगी को पहचाना भी और देखा कि सब राख है। किसी के कहने से नहीं मान लिया। नहीं कि कोई महात्मा कहता था कि सब व्यर्थ है, असार है, छोड़ो संसार, त्यागो संसार। किसी की बातों में पड़ कर नहीं, अपने निजी अनुभव से, चल-चलकर, संसार की मृग-मरीचिकाओं के पीछे दौड़-दौड़ कर, पहुंच-पहुंच कर पाया कि वहां कुछ नहीं, रेगिस्तान है। सिर्फ भ्रम पैदा होता है। सब सपना है। यह जो अपने निजी अनुभव से बात पकती है तो फिर एक त्याग फलित होता है, वह त्याग मर्द का त्याग है।
उपनिषद कहते हैंः तेन त्यक्तेन भु182ाथाः। उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। यह बड़ा अद्भभुत वचन है। यह थोड़े से अद्भभुत वचनों में से एक है--तेन त्यक्तेन भु182ाथाः, जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। बिना भोग के त्यागोगे कैसे? क्योंकि बिना भोग के ज्ञान कहां? बिना भोग के अनुभव कहां? और जो संसार को ही नहीं भोग सका, वह परमात्मा को भोगने की तो आशा ही छोड़ दे। क्योंकि वह इसके आगे का कदम है। जो झूठ को नहीं भोग सका, वह सच को क्या भोगेगा? जो झूठ के भीतर उतरने का सामर्थ्य नहीं रखता था, वह सत्य के भीतर उतरने की सामर्थ्य नहीं जुटा पाएगा।
नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।

यह संसार में जो रस है, इस संसार में छिपी हुई जो ऋद्धि-सिद्धि है--बड़ी ऋद्धियां-सिद्धियां छिपी हैं, बाहर की भी और भीतर की भी। यह संसार बड़ा जादू है। यहां बाहर के बड़े आकर्षण हैं, बड़े लुभावने, बड़े मनभावने। यहां भीतर के भी आकर्षण हैं। किसी आदमी के पास धन है और किसी दूसरे आदमी के पास किसी के विचार पढ़ लेने की कला है। एक आदमी के पास पद है और किसी दूसरे आदमी के पास जमीन से उठ जाने की कला है। ये दोनों एक ही जगत की बातें हैं। इसलिए पतंजलि ने पूरा एक अध्याय लिखा है अपने सूत्रों में साधकों को समझाने के लिए कि ऋद्धि-सिद्धियों से सावधान रहना, वे भी सांसारिक हैं। बाहर के प्रलोभन से बचता है आदमी तो भीतर के प्रलोभन आ जाते हैं। और भीतर के प्रलोभन ज्यादा गहरे हैं। स्वभावतः तुम अगर भीतर की किसी सिद्धि को पा लो तो तुम बाहर की कोई सिद्धि छोड़ने को तैयार हो जाओगे। जरा सोचो, कितना धन छोड़ने को तुम राजी न हो जाओगे अगर तुम आकाश में पक्षी की भांति उड़ सको। तुम कहोगे--सारे धन पर लात मार दूंगा। क्योंकि ऐसा अद्वितीय काम, कोई दूसरा तो कर ही नहीं सकता, धन तो बहुतों पर है, यह पक्षी की उड़ान तो सिर्फ् मेरी विशिष्ठता होगी, हालांकि पक्षी की उड़ान से तुम्हें कुछ मिलेगा नहीं। परमात्मा तुम्हें उड़ाना चाहता तो कौवा बनाता। उसने तुम्हें आदमी बनाया सोच-विचारकर। तुम उसका अपमान मत करो।
एक आदमी रामकृष्ण के पास आया। वे बैठे थे दक्षिणेश्वर के मंदिर के बाहर गंगा के किनारे। उस आदमी ने कहा कि चलें--योगी था, प्रसिद्ध योगी था-- चलें जरा गंगा की सैर कर आएं। दोनों गंगा के किनारे सैर करने गए। वह योगी बोलाः चलें जरा गंगा के ऊपर भी सैर कर आएं। मुझे पानी पर चलना आता है। रामकृष्ण ने कहाः वह यही दिखाने उनको गंगा के किनारे ले गया कि मुझे पानी पर चलना आता है--रामकृष्ण ने कहाः कितने दिन लगे सीखने में? उस योगी ने कहाः अठारह साल लगे। बड़ी कठिन तपश्चर्या से यह कला हाथ लगी। रामकृष्ण खूब खिलखिलाकर हंसे। उन्होंने कहाः इस कला की कीमत दो पैसा। क्योंकि मैं दो पैसे में नदी पार हो जाता हूं। उन दिनों सस्ती दुनिया थी, दो पैसों में माझी उस तरफ ले जाता। दो पैसे की कला में अठारह साल गंवाए तूने? तुम होश में हो? तुम पागल तो नहीं हो गए हो? पानी पर भी चलोगे तो क्या होगा? हवा में भी उड़ोगे तो क्या होगा?
बाहर की उपलब्धियां हैं, भीतर की उपलब्धियां हैं। लेकिन, दोनों के पार वही जा सकता है जो दोनों को भोग लेता है। पहले संसार को भोग लेना, भोग को भोग लेना, फिर योग को भी भोग लेना, और तभी तुम जानोगे त्याग क्या है। नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।
एक तो नामर्द है, वह भोगा ही नहीं है। और एक मर्द है, उसने भोग भी लिया, देख भी लिया, व्यर्थता भी पा ली और चला भी गया। और मजा यह है कि बहुत बार दोनों एक जैसे मालूम पड़ेंगे, इससे भ्रांति होती है। क्योंकि नामर्द भी जाकर गुफा में बैठ सकता है और मर्द भी गुफा में बैठ सकता है। और दोनों एक जैसे मालूम पड़ेंगे। एक ने भोगा नहीं है, डरकर आ गया है, एक ने भोगा है, देख कर, समझ कर, अनुभव से आ गया है। दोनों में फर्क बड़ा होगा। जमीन-आसमान का फर्क होगा।
यही छोटे बच्चे और संत का भेद है। छोटा बच्चा संत जैसा ही होता है-- सरल, निर्दोष। संत भी छोटे बच्चों जैसा होता है--सरल, निर्दोष। लेकिन छोटे बच्चे ने अभी भोगा नहीं है। अभी भोगेगा। अभी भोग में जाना पड़ेगा। संत भोग कर आ चुका। छोटे बच्चे की यात्रा अभी शुरू भी नहीं हुई है, संत की यात्रा पूरी हो गई है। इसलिए कभी-कभी बच्चों में संतत्व लगेगा और संतों में बच्चों जैसा बालपन लगेगा।
रज्जब रिधि कुआंरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग।।
इस रज्जब संसार में जो भी छिपा है, वह किसी के भी हाथ नहीं लगता। क्यों नहीं लगता? क्योंकि--नामरदां भुगती नहीं। नामर्द के तो हाथ लगता ही नहीं इस संसार में जो छिपा है, क्योंकि वह भोगता ही नहीं। वह भोग ही नहीं पाता, अपनी कमजोरियों में छिपा रह जाता है। वह सफलता से डरता है, भयभीत होता है। तुम यह जानकर चकित होओगे कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सफलता का भी भय है। यह तुम मानोगे भी नहीं। पचास साल लग गए मनोवैज्ञानिकों को यह बात

सिद्ध करने में कि सफलता में एक तरह का भय है। लोग सफल नहीं होना चाहते। तुम कहोगे यह बात जंचती नहीं, क्योंकि हर आदमी सफल होना चाहता है; हर आदमी कहता है--मैं सफल होना चाहता हूं। लेकिन जैसे-जैसे सफलता करीब आती है, आदमी घबड़ाने लगता है। सफलता आदमी चाहता है तब तक जब तक मिलती नहीं। और कभी हजार में एकाध को मिलती है। इसलिए नौ सौ निन्यानबे इसी भ्रांति में जीते हैं कि सफलता चाहते थे। जिसको मिल जाती है, उसको पता चलता है कि हाथ तो कुछ लगा नहीं। यह दौड़धूप व्यर्थ गई। तब उसे पता चलता है कि पहले ही मन में कोई स्वर कह रहा था कि मत दौड़ो, मत दौड़ो, व्यर्थ है। भीतर कोई वृति है हमारे, जो कहती है--व्यर्थ के पीछे मत दौड़ो। हालांकि सारे लोग दौड़ रहे हैं इसलिए हम भी दौड़ते हैं। क्योंकि हम अनुकरण से जीते हैं।
रज्जब रिधि क्वाँरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग।।
आदमी के हाथ लगी नहीं, इस जगत में जो संपदा छिपी है वह किसी आदमी के हाथ नहीं लगी। नामर्द को नहीं लगी क्योंकि उसने भोगा नहीं, मरद को नहीं लगी क्योंकि उसने भोगा और जाना कि व्यर्थ है, इसलिए छोड़ कर चला गया। "रज्जब रिधि कुआंरी रही।" यह संसार कुआंरा का कुआंरा है। नामर्द विवाहते नहीं, मर्द जान लेते हैं यहां कुछ विवाह योग्य नहीं है। यह संसार कुआंरा का कुआंरा है।
कितने ही यहां ऐसे कंवल होते हैं
खिलते नहीं और वक्फे-अजल होते हैं
यह बात जुदा है कि वह तामीर न हो
हर जिह्न में कुछ ताजमहल होते हैं
"कितने ही यहां ऐसे कंवल होते हैं, खिलते नहीं और वक्फे-अजल होते हैं।" मौत आ जाती है, बिना खिले। "यह बात जुदा है कि तामीर न हो"। निर्मित न हो सके भला, यह बात अलग है, मगर हर मस्तिष्क में--"हर जिह्न में कुछ ताजमहल होते हैं।" सभी अपने ताजमहल बना नहीं पाते, कभी कोई एकाध बना पाता है। लेकिन जो बना पाता है, वह बना कर पाता है कि व्यर्थ गया; व्यर्थ हुई मेहनत! जो नहीं बना पाता, वह तो थोड़ी आशा भी रखता है, जो बना पाता है, उसकी आशा भी मर जाती है। इस जगत में सफल आदमी से ज्यादा असफल आदमी दूसरा नहीं होता। इसलिए बुद्ध ने महल छोड़ दिया। वह सफल आदमी का अनुभव है। महावीर ने साम्राज्य छोड़ दिया। वह सफल आदमी का अनुभव है। राख पाई, छोड़ते न तो क्या करते! तुम्हें दिखाई पड़ता है महल छोड़ दिया, उन्हें दिखाई पड़ता है कि उन्होंने राख छोड़ी।
जब बुद्ध महल छोड़ कर गए और उनका सारथी उन्हें जंगल में छोड़ा तो सारथी
ने कहाः मुझे कहना नही चाहिए, मैं तो आपका दास, लेकिन एक बात कहे बिना नहीं रह सकता और यह आखिरी मौका है, फिर शायद मिलना हो, न हो। यह मैं कहना चाहता हूं कि आप गलती कर रहे हैं। मुझ गरीब की बात सुनें। इतने सुंदर राजमहलों को छोड़ कर आप कहां जा रहे हैं? बुद्ध ने कहाः राजमहल? पीछे लौट कर देखा और कहा--मैं तो केवल आग की लपटें देखता हूं। सारथी को राजमहल दिखाई पड़ता है, बुद्ध को लपटें दिखाई पड़ती हैं। सारथी महलों के भीतर गया नहीं है, बुद्ध महलों के भीतर जी लिए हैं, व्यर्थता देख ली है। सफलता जैसी असफल होती है और कोई चीज असफल नहीं होती।
इसलिए मेरा तुमसे कहना है--संसार से भगोड़ों की तरह मत भागना। त्यागी
की बात और है। त्याग भोग की अंतिम निष्पत्ति है। त्याग भोग का ही फूल है। भोग से ही खिलता है। जैसे कीचड़ में कमल खिलता है, ऐसे भोग में त्याग खिलता है। कीचड़ से भाग गए तो फिर कमल कभी नहीं खिलेगा। कीचड़ में ही खिलता है और कीचड़ से उठ कर खिलता है। कीचड़ में ही खिलता है और कीचड़ के पार चला जाता है। और जब यह दिखाई पड़ जाता है कि यहां पाने को कुछ भी नहीं है, तो एक नई यात्रा शुरू होती है। फिर जंगल जाने की जरूरत नहीं रह जाती। वह तो प्रतीक मात्र है। एकांत का प्रतीक है। और एकांत भीतर है। वे गुफाएं जो बनी हैं हिमालय में, वे तो सिर्फ प्रतीक हैं। कृष्ण ने कहा है--हृदय की गुफा। वही असली गुफा है। जैसे ही बाहर सब वयर्थ हो जाता है, बाहर से आदमी संतुष्ट हो जाता है। दौड़-धूप बंद हो गई। अब एक नया असंतोष जागता है, अंतर-खोज का।

धन्यभागी हैं वे जिनके जीवन में अंतर-खोज का असंतोष जागता है। एक दिव्य अतृप्ति।
दुनिया उलटी है। यहां लोग बाहर से असंतुष्ट हैं और भीतर से संतुष्ट हैं। संत वही है जो बाहर से संतुष्ट और भीतर से असंतुष्ट होता है। जो परमात्मा से कम पर राजी नहीं होता। जो कहता है--परमात्मा मिले। जिसके भीतर विरह की आग जलनी शुरू होती है।
छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधू संत।
बाहर बस अब उसकी इतनी ही मांग है--छाजन भोजन दे भगवंत। भगवान इतना दे दे, छप्पर हो, भोजन मिल जाए। सोने को कोई रात जगह मिल जाए, दिन को शरीर के लिए दो रोटी मिल जाएं।
छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधू संत।
और वही साधु है, जिसकी वासना अधिक की नहीं है।
अब अधिक शब्द को समझना बहुत उपयोगी है। "अधिक न बाछैं।" मनुष्य धन से नहीं फंसा है, "अधिक" से फंसा है। धन नहीं बांधता तुम्हें, अधिक का भाव बांधता है। तुम्हारे पास पांच हजार हैं, मन कहता है दस हजार चाहिए। तुम्हारे पास दस हजार हो जाएंगे, मन कहता बीस हजार चाहिए। तुम्हारे पास बीस हजार भी हो जाएंगे और मन कहेगा--पचास हजार चाहिए। धन से नहीं बँधा है मन, मन बँधा है अधिक से। और, और, और। मन का रूप है--और चाहिए। इसलिए गरीब भी उतना ही बँधा है, अमीर भी उतना ही बँधा है। यह मत सोच लेना कि गरीब मुक्त है। क्योंकि वह भी और मांग रहा है। जिसके पास पाँच कौड़ी हैं, वह दस कौड़ी माँग रहा है। जिसके पास पाँच करोड़ हैं, वह दस करोड़ माँग रहा है। दोनों की मांग बराबर है, अनुपात बराबर है, दोनों दुगुना करना चाहते हैं, दोनों में जरा भी भेद नहीं है।
इसलिए तुम यह मत सोच लेना कि गरीब होने में कोई गुण है। जैसा कि इस देश में भ्रांति हो गई कि गरीब होने में कुछ गुणवत्ता है। गरीब होने में कोई गुण नहीं है। गुण तो "अधिक" से मुक्त होने में है। जो है, जितना है, पर्याप्त है। और अधिक की आकांक्षा नहीं है।
"अधिक न बाछैं।" यह सूत्र प्यारा है। यह सूत्र गहरा है। रज्जब कह सकते थे--धन न बाछैं साधू संत। लेकिन नहीं, धन नहीं कहा, "अधिक न बाछैं साधू संत"। क्योंकि कोई धन छोड़ सकता है और धन की आकांक्षा न करे और पद की आकांक्षा करने लगे। तो फिर डिप्टी मिनिस्टर मिनिस्टर होना चाहता है, फिर मिनिस्टर चीफ मिनिस्टर होना चाहता है, फिर "अधिक" की दौड़ शुरू हो गई। तुम्हारे पास थोड़ा सा ज्ञान है, यह ज्यादा हो जाए, "अधिक" की दौड़ शुरू हो गई। तुम्हारा थोड़ा सा त्याग है, थोड़ा और अधिक त्याग हो जाए, "अधिक" की दौड़ शुरू हो गई। "अधिक" किसी भी चीज पर सवार हो सकता है--धन पर, पद पर; त्याग पर भी, ज्ञान पर भी--"अधिक" किसी भी चीज पर सवार हो सकता है। "अधिक" को ध्यान में रखना। "अधिक" जहाँ चला गया, और की माँग न रही, जो है पर्याप्त है, जैसा है वैसा पर्याप्त है, ऐसी चित्त-दशा का नाम साधुता है। यह बड़ी और बात है। किसी आदमी ने महल छोड़ दिया, तुम कहते हो--बड़ा साधू। मगर यह हो सकता है उसने त्याग की अशर्फियां इकट्ठी करनी शुरू कर दीं। उसके मन में त्याग की गणना शुरू हो गई। अब वह सोचने लगा--स्वर्ग में मुझे कौन सा स्थान मिलेगा? तुम्हारे शास्त्र भरे पड़े हैं इसी तरह की बातों से, कि इतना त्याग यहाँ करोगे तो वहाँ कितना होगा। यहां एक रुपया छोड़ोगे, वहां एक करोड़ गुना मिलेगा। यह तो लॉटरी हो गई। यह तो पुराने ढंग की, धार्मिक किस्म की लॉटरी हो गई। यह तो प्रलोभन ही हुआ। एक रुपया इसलिए छोड़ा कि करोड़ रुपए मिलेंगे। यह तो "अधिक" की दौड़ हो गई। इससे बड़ी और क्या दौड़ होगी? संसार में भी इतना नहीं मिलता है। एक से एक करोड़ कहीं मिलता है! "स्मगलिंग" करो तो बात और है। मगर एक से कोई एक करोड़ नहीं मिलता। स्वर्ग में यहां एक का त्याग करो वहां करोड़ गुना मिलता है, ऐसा जिन्होंने सोचकर त्याग किया, उन्होंने त्याग किया? उन्होंने त्याग किया ही नहीं। उन्हें कुछ समझ में आया नहीं। वे एक नये जाल में पड़ गए।
छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधू संत।

ये "अधिक" के फूल ही हमें भटका रहे हैं। ये दूर से बड़े लुभावने लगते हैं और जब पास जाओ तो कुछ नहीं मिलता।
ऐसे जीता हूं जैसे शीशे के,
टूटे हिस्से को जोड़ता है कोई,
या तरसती हुई उमंग के साथ,
ख्वाब में फूल तोड़ता है कोई।
बस सपने के फूल हैं, झूठे फूल हैं, इनको ही तोड़ते रहो और इकट्ठा करते रहो--और अधिक, और अधिक, और अधिक। और तुम भटकते रहोगे। "अधिक" की व्यर्थता से जो जाग गया, वही साधु है।
रज्जब यह संतोषी चाल, मांगहि नाहिं मुलक औ माल।।
कुछ भी नहीं मांगता। संतोषी की यही चाल है कि उसकी माँग चली गई। और जहाँ माँग चली गई, वहाँ तुम भिखारी न रहे, मँगने न रहे। जहां मांग गई, वहीं तुम सम्राट हुए।
स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। जब वह अमरीका गए और वहाँ भी उन्होंने अपने को बादशाह कहना जारी रखा--यहाँ तो लोग समझते हैं, यहाँ तो लोग सदियों से पहचानते हैं कि हम बादशाह किसको कहें--अमरीका में भी जब उन्होंने अपने को बादशाह कहना जारी रखा तो लोगों ने पूछा कि यह जरा समझ के बाहर है, आपके पास कुछ नहीं है, दो लंगोटियां हैं, आप बादशाह किस हैसियत से कहते हैं अपने को? आपका साम्राज्य कहां है? राम ने अपनी छाती पर हाथ रखा और कहाः यहां। खिलखिला कर हंसे और उन्होंने कहा कि तुमने ठीक याद दिलाया, ये जो दो लंगोटियां हैं, इनकी वजह से मेरी बादशाहत थोड़ी कम है। यह भी न होतीं तो मेरी बादशाहत पर कोई सीमा ही न रह जाती, बस यह दो लंगोटियों की सीमा है। मैं इसीलिए अपने को बादशाह कहता हूं कि मेरी कोई मांग नहीं है। मैं मंगना नहीं हूं, भिखारी नहीं हूं। रही साम्राज्य की बात, वह मेरे भीतर है। यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक डायोजनीज नग्न रहता था और एक भिक्षापात्र रखता था। जैसा बुद्ध रखते थे, महावीर रखते थे। एक दिन जा रहा था नदी के किनारे, प्यास लगी थी, नदी के पास पहुंचा, भिक्षापात्र में पानी भरने को ही था, तभी एक कुत्ता भागा हुआ आया, छलांग लगाकर नदी में कूदा, दिल भर कर पानी पिया और जाने लगा। डायोजनीज उसे गौर से देखता रहा, उसने भिक्षापात्र नदी में छोड़ दिया और बहा दिया और कहा--जब एक कुत्ता बिना भिक्षापात्र के पानी पी लेता है, तो मैं नाहक इसको ढोता फिरता हूं। मैं भी ऐसे ही पी लूँगा। जब कुत्ता पी लेता है तो मैं भी पी लूंगा। यह भिक्षापात्र भी किसलिए ढोए फिरूं?
संतोष की एक चाल है, एक ढंग है, एक शैली है। क्या है वह शैली? उसका आधारभूत नियम क्या है? माँग नहीं। जो भी है, जैसा भी है, ठीक है। यहां सब ठीक ही होता है। क्योंकि परमात्मा रखवाला है। छाजन भोजन दे भगवंत। वह देता ही है। वृक्षों को देता है, पशु-पक्षियों को देता है, आदमी को न देगा! आदमी उसकी श्रेष्ठतम कृति है, उसकी चिंता न लेगा? यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उपेक्षा से भरा नहीं है। यह अस्तित्व तुम्हें भी उतना ही प्रेम करता है जितना पशु-पक्षियों को, वृक्षों-पहाड़ों-नदियों को। देगा भगवान, जो जरूरत है देगा।
इसका यह भी मतलब नहीं है कि तुम आलसी हो जाओ। क्योंकि कर्म की भी जरूरत है; वह भी भगवान दे रहा है। कुछ करना है, वह भी भगवान करा रहा है।
अब यह ख्याल रखना कि इन सूत्रों से कभी-कभी गलत अर्थ निकाल लिए गए हैं। यह पूरा देश गलत अर्थ निकाल कर बड़ी झंझटों में पड़ गया है। इस देश ने कहा कि सब ठीक है, जब भगवान ही देगा तो फिर हमें क्या करना है! अजगर करै न चाकरी... विश्राम करेंगे... पंछी करैं न काम, दास मलूका कह गए सबके दाता राम। अब करना क्या है? अब चादर ओढ़ कर सोएंगे। इसने इस देश को गरीब से गरीब बना दिया, दीन से दीन बना दिया। तुमने देखा पक्षी चादर ओढ़कर सोए हैं? काम में लगे हुए हैं। सुबह से काम में लग जाते हैं, साँझ तक काम चलता है। लेकिन फर्क इतना ही है कि काम से कर्ता का भाव पैदा नहीं होता। अजगर चाकरी करने तो नहीं जाता, लेकिन भोजन की तलाश करता है। लेकिन तलाश मैं कर रहा हूं, ऐसा नहीं, परमात्मा ही कर रहा है।

जो भी तुम कर रहे हो, वह परमात्मा कर रहा है। और तब अनावश्यक कृत्य अपने आप विलीन हो जाएंगे। आवश्यक बच रहेगा। उस आवश्यक की सूचना ही इन शब्दों में दी है--छाजन, भोजन। इतना ही आवश्यक है कि छप्पर मिल जाए, कि रोटी मिल जाए।
फिर ये आवश्यकताएं भी भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। फिर दूसरी भूल मत कर लेना--नहीं तो वह भूल भी हुई है--कि जब छाजन और भोजन की बात हो गई, तो हर आदमी को बस इतने पर राजी होना चाहिए। लेकिन लोगों की जरूरतें अलग हैं। किसी को बांसुरी चाहिए और गीत गूंजना चाहता है। उसको छाजन-भोजन से काम न चलेगा। उसे बांसुरी भी चाहिए। किसी को वीणा बजानी है, उसके भीतर कोई स्वर छिपे हैं जो प्रकट होना चाहते हैं, कोई छंद मुक्त होना चाहता है, तो उसे वीणा भी चाहिए होगी। मगर यही छाजन-भोजन है उसका। इसलिए इस भ्रांति में मत पड़ना कि सब लोग लंगोटी लिए ही खड़े हैं--अपना एक-एक डंडा रख लिया है! नहीं तो फिर भ्रांति हो जाएगी।
प्रत्येक व्यक्ति की निजता है। और परमात्मा क्या करवाना चाहता है, उससे करवाएगा। मगर तुम करनेवाले मत रह जाना। तुम सिर्फ होने देना। तुम अपने को उसके हाथ में छोड़ देना--इतनी ही बात है। नहीं तो बड़ी भूलें हो जाती हैं।
एक जैन-मुनि मेरे पास मेहमान थे। उन्हें कहीं पत्र लिखना था, वह मुझसे बोले--आप पत्र लिख दें। क्योंकि जैन-मुनि को पत्र लिखने की आज्ञा नहीं है। क्योंकि पत्र लिखो तो कलम रखनी पड़ती है पास, कागज रखना पास। अब कागज-कलम पास रखो तो संन्यास में बाधा पड़ जाती है। मैंने कहाः कागज-कलम से बाधा पड़ जाएगी संन्यास में! तो दो कौड़ी का यह संन्यास हुआ। पर उन्होंने कहाः शास्त्र में लिखा है कि कुछ भी रखना नहीं है पास में। कागज-कलम तो लिखा ही नहीं है शास्त्र में कि रखना है! साफ निर्देश है, क्या-क्या रखना है, उसमें कागज-कलम का निर्देश नहीं है।
तो मैंने कहाः पत्र मत लिखवाओ। मैं क्यों पत्र लिखूं तुम्हारा? कहां शास्त्र में लिखा है कि किसी और से पत्र लिखवाना। जब पत्र लिखने की जरूरत है, जब पत्र लिखा जाना चाहता है, तो लिखो। लिखना तुम्हीं को पड़ेगा, मैं कागज-कलम दे सकता हूं। मैं लिखने वाला नहीं हूं। मैं क्यों लिखूं तुम्हारा पत्र! मुझे अपना पत्र लिखना है, तुम्हें अपना पत्र लिखना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना गीत गाना है, अपना नृत्य नाचना है। दूसरे के कंधों पर बंदूकें मत रखो।
तो मैं यह तुमसे नहीं कह रहा हूं कि तुम सब बैठ जाना घरों में जाकर कि--"छाजन भोजन दे भगवंत," अब क्या करना? बहुत नासमझी हो चुकी है उस तरह की। नहीं, दुकान तुम चलाना, लेकिन जब भोजन मिले तो जानना भगवान ने दिया है। नौकरी तुम करना, मजदूरी तुम करना, पत्थर तुम तोड़ना, लेकिन जब पुरस्कार मिले तो आकाश की तरफ आंख उठाकर धन्यवाद देना, अनुग्रह का स्वीकार करना--"छाजन भोजन दे भगवंत"। जो भी मिलता है, उसकी तरफ से मिलता है। और ऐसी भावदशा में तुम पाओगे कि व्यर्थ की दौड़-धूप बंद हो गई।
सार्थक बहुत थोड़ा है। सार्थक बहुत सीमित है। निरर्थक का कोई अंत नहीं है। लोग निरर्थक चीजें इकट्ठी करते रहते हैं। जिनकी उन्हें जरूरत ही नहीं है। मगर क्या करें, पड़ोसी खरीद लाया है। पड़ोसी ने कार ले ली, अब तुम्हारी छाती पर उसकी कार घर्र-घर्र करती है। जब भी उसकी कार स्टार्ट होती है, तुम्हारी छाती कंपती है। तुम्हारा चित्त बेचैन हो जाता है। तुम्हें कोई जरूरत नहीं है, कल तक तुम्हें जरूरत की याद भी न थी, मगर यह पड़ोसी कार क्या ले आया, मुश्किल खड़ी कर दी। तुम्हें कार खरीदनी पड़ेगी। चाहे उधार लेकर खरीदो, चाहे जीवन की अनिवार्य जरूरतों को काट कर खरीदो, मगर कार खरीदनी पड़ेगी। अब तुम्हारे पोर्च में कार खड़ी होनी चाहिए। चाहे उस कार को खड़ा करने में तुम बिक जाओ, कोई फिकर नहीं, मगर कार खड़ी होनी चाहिए।
फिर कार अकेली थोड़े आती है--इस दुनिया में कोई बीमारी अकेली नहीं आती है, बीमारी के साथ और बीमारियां आती हैं--कार ही खड़ी कर लोगे पोर्च में तो तुम अचानक पाओगे कि यह पोर्च जँचता नहीं। यह पोर्च साइकिल टिकाने के लायक था, इसमें साइकिल टिकती थी और भली लगती थी, अब यह कार खड़ी हो गई, मगर पोर्च

नहीं जमता। अब बड़ा मकान चाहिए। फिर बड़े मकान के लायक तुम्हारे पास फर्नीचर नहीं। जो फर्नीचर था वह उस छोटे मकान में खूब मौजूं था, बड़े मकान में बिल्कुल फटीचर हो गया। अब उसका कोई मूल्य नहीं है, अब नया फर्नीचर चाहिए। अब नया फर्नीचर है, नया मकान है, नई कार है, इस पत्नी का क्या करो? यह बिल्कुल जमती नहीं। यह गांव की गंवार। इसको कार में बिठा कर कहां ले जाओ। सब गड़बड़ हो गया! और कार किसलिए लाए थे? क्योंकि पड़ोसी ले आया था। पड़ोसी इसलिए ले आया होगा कि उसके दफ्तर में किसी आदमी ने खरीद ली थी। उसने दफ्तर में किसी और को देख लिया होगा। या फिल्म में देख ली होगी एक कार और दिल को भा गई होगी।

आदमी व्यर्थ को इकट्ठा करने में लग जाता है। तब उसकी जीवन-धारा मरुस्थल में खो जाती है।

तो मैं तुमसे यह नहीं कहता हूं कि तुम कुछ करना मत। अकर्मण्यता मैं नहीं सिखा रहा हूं। लेकिन जो भी तुम करो, वह सार्थक हो। और यह भी नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा सार्थक दूसरों जैसा ही होना चाहिए। हर एक व्यक्ति की निजता है। उसको निजता से सोचना और जीना है।

कृष्ण की जरूरत थी तो उन्होंने बांसुरी बजाई। कृष्ण बांसुरी न बजाते तो पृथ्वी बड़ी खाली रह जाती; समृद्धि पृथ्वी की कम होती। .जरा सोचो, कृष्ण न हुए होते और बांसुरी न बजाई होती और राधा न नाची होती। इस जगत में कुछ कमी रह जाती। कुछ अधूरा-अधूरा रह जाता। कोई स्थान खाली रह जाता। अब तुम कृष्ण को जबरदस्ती महावीर बना कर नग्न खड़ा मत करो। नहीं तो राधा नाचेगी नहीं। और नग्न कृष्ण के आसपास राधा नाचेगी तो बात जंचेगी भी नहीं। मोर-मुकुटवाला कृष्ण ही चाहिए। बांसुरी बजाता कृष्ण चाहिए। रास रच सके, ऐसी सुविधा।

लेकिन मैं यह नहीं कर रहा हूं कि महावीर भी बांसुरी बजाएं। वह भी जंचेगी नहीं। नंग-धड़ंग खड़े होकर बांसुरी बजाएंगे, ऐसे ही पागल मालूम होते थे और पागल मालूम होंगे, कि अब बांसुरी तो न बजाओ कम से कम! चुपचाप खड़े रहो। बांसुरी बजाते तो मत निकलो रास्ते से! बांसुरी ही बजानी है तो कम से कम कपड़े तो पहन लो। और ये रास तो रचाओ; अगर नग्न खड़े हो तो चुपचाप अकेले खड़े रहो।

महावीर न होते तो भी कुछ कमी रह जाती। उनकी नग्नता ने भी एक पवित्रता दी है, एक निर्दोष भाव दिया है। उन्होंने अपना गीत गाया है।

इसलिए मैं तुम्हें यह भी याद दिला दूं कि अपनी निजता से जीओ। अपने भीतर खोजो--परमात्मा कौन सा गीत तुमसे गाना चाहता है? उसे गाने दो, तुम बाधा न बनो।

रज्जब यह संतोषी चाल, मांगहि नाहिं मुलक औ माल।।

न तो मूल्क मांगो, न माल मांगो। मांगो ही मत। जीओ। मांगना क्या है, वस्तुतः दो। दो ढंग हैं इस दुनिया में जीने के। एक मांगने का ढंग है, मांगने वाले, भिखमंगे का; और एक सम्राट का ढंग है, देने वाले का। तुम्हारे पास इतना है कि तुम दोगे तो चुकेगा नहीं। तुम जरा अपना गीत गाओ और नये गीत आने लगेंगे। तुम जरा अपना स्वर छेड़ो और नये स्वर उठने लगेंगे। तुम जरा नाचो और तुम पाओगे पैर में नई-नई ध्वनियां आती जा रही हैं, उतर रही हैं। तुम जरा देना शुरू करो--अपना प्रेम दो, अपना आनंद दो, अपना रस बांटो, और तुम पाओगे जितना तुम बांटते हो उतना तुम्हारे भीतर कुएं से बहाव बढ़ रहा है, बाढ़ आ रही है। देने वाला पाता है कि बढ़ता जाता है। मांगने वाला पाता है कि घटता जाता है। मांगने वाले के पास सामान इकट्ठा होता जाता है, आत्मा कम होती जाती है। देने वाले के पास सामान हो या न हो, आत्मा बड़ी होती चली जाती है। और वही असली तत्व है।

रज्जब यह संतोषी चाल, मांगहि नाहिं मुलक औ माल।।

और यह केवल मर्द ही कर सकते हैं--देने की हिम्मत, लुटाने की हिम्मत।

नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।

त्याग को अगर तुम मेरी भाषा में समझो, जो मैं त्याग को अर्थ देता हूं। मैं अर्थ देता हूं त्याग को बांटने का। देने का जोर इस बात पर नहीं है कि तुमने छोड़ा, जोर इस बात पर होना चाहिए कि तुमने दिया।

फर्क समझ लेना दोनों बातों में।
छोड़ने वाले का जोर सिर्फ छोड़ने पर होता है कि मैंने संसार छोड़ दिया। देने वाले का जोर इस बात पर होता है कि जो मेरे पास था, मैंने बांटा। जिसको जरूरत थी उसको दिया। जो ले जाना चाहता था, उसको दिया। देने वाले का जोर वस्तु में कोई बुराई है इसमें नहीं है, कि वस्तु को छोड़ देने से ही, त्याग कर देने से ही सब कुछ हो जाएगा। देने वाले का जोर प्रेम में है। दोनों में फर्क बड़ा है। एक आदमी है जो सारा धन छोड़ कर जंगल चला गया। लेकिन इस धन का क्या हुआ? त्याग तो दिया इसने, बांटा नहीं।
इस देश में बहुत त्यागी हुए, लेकिन बांटने वाले नहीं हुए। अगर कोई छोड़
कर चला गया धन, तो उसके परिवार में रहा, उसके लोगों के पास रहा, उसके बेटों के पास रहा, उसकी पत्नी के पास रहा। बांटा नहीं। त्यागी बन गया, बिना बांटे। त्याग में कहीं चूक हो गई। बांट देना था, उछाल देना था।
इसलिए मैं महावीर को त्यागी नहीं कहता। क्योंकि महावीर ने बांटा, उछाला। महावीर को मैं दाता कहता हूं, त्यागी नहीं। दिया, सब बांट दिया। सारे गांव को इकट्ठा कर लिया और जो उनके पास था, सब बांट दिया। जिसको जो ले जाना था, ले जाए। गांव के बाहर जब जा रहे थे तो आखिरी गांव का आदमी जो पहुंच नहीं पाया महल तक, किसी काम में उलझ गया होगा; उसे कुछ पता नहीं था क्या हो रहा है, खेत पर रह गया होगा, गाय भटक गई होगी उसको खोजने चला गया होगा--एक आदमी भर नहीं पहुंच पाया था, वह महावीर को अंत में मिला जब वे गांव छोड़ रहे थे, उसने कहा--और मेरा क्या? सब को कुछ-कुछ मिल गया। तो उनके पास जो चादर थी, वह दे दी। इस तरह वह नग्न हुए। नग्नता कोई साधी गई बात नहीं थी, सहज फलित हुई। यह आदमी न आया होता, तो शायद महावीर ने चादर न छोड़ी होती। अब कुछ और था नहीं देने को, और यह आदमी भीतर की कोई बात नहीं समझ सकता था, महावीर इसको उपदेश देते, इसकी समझ के बाहर थे। यह ऐसा ही होता जैसे छोटा बच्चा खिलौना मांग रहा है और तुम उसे भगवद्गीता दे रहे हो। वह फेंक देगा उठाकर कि रख लो अपनी किताब! मुझे गुड्डा चाहिए, कि गुड्डी चाहिए। यह आदमी आया था, यह कहता था कि सबको सब कुछ मिल गया, मुझे कुछ भी नहीं मिला, क्या मैं खाली हाथ रह जाऊँ? अपनी चादर उतार कर दे दी। चादर बहुमूल्य थी--सम्राट की चादर थी। फिर लँगोटी ही रह गई। जंगल से गुजरते थे, गुलाब की झाड़ी में लंगोटी का
एक हिस्सा फंस कर रह गया, तो हंसे, तो तू यह भी ले ले। सोचा कि गुलाब की झाड़ी कह रही है कि अब मुझे क्या? सब दे आए थे, यह गुलाब की झाड़ी मांगती है कि और मेरा क्या? तो कहा--यह तू ले ले। अब उस लंगोटी को भी क्या निकालना गुलाब की झाड़ी से! तो लंगोटी भी छोड़ दी। मगर यह छोड़ना सिर्फ त्याग नहीं है! मैं फिर जोर देकर कहना चाहता हूं--महावीर दाता थे। दिया, यह गुलाब की झाड़ी को दिया। इसमें जोर देने पर है। इसकी महिमा और है। मर्द ही कर सकेंगे।
मौत अपनी न अमल अपना न जीना अपना
खो गया शोरिशे-गेती में करीना अपना
नाखुदा दूर, हवा तेज, करीं कामे-नहंग
वक्त है फेंक दे लहरों में सफीना अपना
हिम्मत चाहिए।
मौत अपनी न अमल अपना न जीना अपना
यहां कुछ भी अपना नहीं है, फिर तुम डरते क्या हो? यहां सब चला ही जाएगा, फिर तुम डरते क्या हो? यहां पकड़ कर क्या बैठे हो, सब छिन जाएगा। मौत अपनी न अमल अपना न जीना अपना
खो गया शोरिशे-गेती में करीना अपना
और जीवन की भाग-दौड़ में तुम यह बात भूल ही गए हो, यह जिंदगी की शैली ही भूल गए, यह संतोष की चाल ही भूल गए कि यहां कुछ भी अपना नहीं है, पकड़ना क्या है?
खो गया शोरिशे-गेती में करीना अपना
तुम्हें जीवन का ढंग ही भूल गया है, जीवन को जीने की शैली ही भूल गई है, करीना भूल गया। भीड़-भाड़, संसार की आपा-धापी, दौड़-धूप, तुम उसमें ऐसे उलझ गए हो कि तुम्हें एक सीधा सा सत्य भी दिखाई नहीं पड़ता कि यहाँ कुछ भी अपना नहीं है। इसको अपना कहने में ही भूल है।

"नाखुदा दूर," माझी का कुछ पता नहीं है, "हवा तेज," तूफान तेज है, आंधी उठी है, "करीं कामे-नहंग," बड़ी लहरें उठ रही हैं, सब तरफ से तूफान घिर रहा है, "वक्त है फेंक दे लहरों में सफीना अपना," और यही समय है जब नाव को छोड़ना पड़ता है। सिर्फ मर्द ही कर पाते हैं। नामरदां भुगती नहीं, मरद गए करि त्याग।
छोड़ दो अपनी नाव। माझी नहीं है, किनारे का कुछ पता नहीं है, लेकिन इस किनारे को छोड़ने से मत डरो, क्योंकि इस किनारे पर कुछ भी अपना नहीं है। रज्जब यह संतोषी चाल।
जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं।
बस तुम्हारी मौजूदगी के कारण वह रसधार नहीं बह रही है--तुम चट्टान हो, तुम अटकाए हो झरने को। परमात्मा झरना चाहता है, बहना चाहता है, तुम्हारे द्वार खटका रहा है, लेकिन तुम द्वार-दरवाजे बंद किए, सांकल चढ़ाए, ताला मारे बैठे हो। कितने रूपों में तुम्हारे पास आना चाहता है, मगर तुम्हारे भीतर जगह नहीं, अवकाश नहीं। तुम्हारे भीतर इतनी भी जगह नहीं है कि एक हवा का झोंका भी तुम्हारे भीतर आ जाए। इतने तुम मैं से भरे हो। और मैं को तुम फुलाए चले जाते हो।
जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं।
वह परमात्मा रस है। बहे तो जगह तो लगे न! थोड़ा अवकाश दो, थोड़ा स्थान रिक्त करो, सिंहासन से उतरो, सिंहासन उसे दो, तुम सिंहासन पर बैठे-बैठे भिखमंगे ही हो गए हो और कुछ भी नहीं हुआ, उसे बिठाओ, उस राजा को बिठाओ, उस राजा के साथ तुम भी राजा हो जाओगे। उसके सत्संग में, उसका पारस पत्थर तुम्हें छू ले तो तुम भी सोने हो जाओगे। और सोना भी ऐसा कि जिसमें सुगंध हो।
जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं।
रज्जब आपा अरपि दे, तौ आवै हरि माहिं।।
और कुछ तुमसे भगवान मांगता नहीं। और तुम सब चढ़ाते हो। कभी आरती उतारते, कभी फूल चढ़ाते, कभी बकरे काटते, कभी गाएं काटते--आदमी भी काटे हैं तुमने--तुम और सभी चढ़ा आते हो अपने को छोड़ कर, आपे को छोड़ कर। और वही मांगा जा रहा है। तुम भुलावे दे रहे हो। तुम परमात्मा के साथ भी प्रवंचना के खेल खेलते हो। वृक्षों के फूल तोड़ कर चढ़ा देते हो; अपने फूल चढ़ाओ! दूसरों को चढ़ा देते हो।
बुद्ध एक गांव से गुजरते थे। वहां एक वेदी पर एक बकरा काटा जा रहा था। बड़ा शोरगुल मच रहा था। बड़ी भीड़-भाड़ थी। लोग बड़े आनंदित थे--इनको लोग धार्मिक कृत्य समझते रहे हैं। अब भी चल रहे हैं। मनुष्य का अभाग्य! अब भी चल रहे हैं और इनको धार्मिक कृत्य समझा जा रहा है। बीसवीं सदी आ गई, बुद्ध को गुजरे पच्चीस सौ साल हो गए, अभी भी बकरे काटे जा रहे हैं! बुद्ध ने पूछा काटने वाले से कि.जरा एक मिनट रुक जाओ, मुझे एक छोटी सी बात का जवाब दे दो, इस बकरे को क्यों काटा जा रहा है? ब्राह्मण कुशल था, होशियार था--ब्राह्मण ही था, पंडित था--उसने कहा कि इसलिए काटा जा रहा है कि इस बकरे की आत्मा को स्वर्ग मिलेगा। धर्म में जो बलि जाता है, स्वर्ग जाता है। तो बुद्ध ने कहाः फिर तू अपने बाप को क्यों नहीं काटता? अपने को क्यों नहीं काटता? ला, तलवार दे, तेरी गर्दन उतारे देते हैं। तू अपने को ही काट ले, जब स्वर्ग जाने का इतना सरल उपाय है--और बकरा बेचारा जाना भी नहीं चाहता, वह कह रहा है कि मुझे नहीं जाना! जबरदस्ती बकरे को स्वर्ग भेज रहा है! और तुझे जाना है। तो वह ब्राह्मण घबड़ाया। उसने सोचा नहीं था कि बात इस ढंग से हो जाएगी। बुद्धों के पास बातों के ढंग बदल जाते हैं। कुछ और उसे सूझा नहीं तो बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने कहा--यह अब कुछ मतलब की बात हुई। ऐसा ही तू अगर चरणों में गिरे परमात्मा के, परम सत्य के--चरणों में गिरने की बात है-- तो सब हो जाएगा।
आपे को काटना है। और यह काटना ऐसा है कि खून की एक बूंद भी नहीं गिरती।
यह काटना ऐसा है कि वस्तुतः कुछ काटना नहीं पड़ता, आपा है ही नहीं, सिर्फ भ्रांति है। तुम हो कहां? तुमने सिर्फ एक भ्रांति बना ली है कि मैं हूं।

है तो परमात्मा ही, तुम तो सिर्फ उसी के सागर में एक तरंग हो; आज हो, कल नहीं हो जाओगे; कल नहीं थे, कल फिर नहीं हो जाओगे; सागर सदा है। आपे को जाने दो।
रज्जब आपा अरपि दे, तौ आवै हरि माहिं।।
तो अभी इसी क्षण परमात्मा तुममें प्रवेश कर जाए।
मिट-मिट कर मोहब्बत में तेरी, यूं तुझको पुकारे जाते हैं।
कट-कट के दरिया की तह में जिस तरह किनारे जाते हैं।।
ऐसा ही भक्त को करना पड़ता है।
कट-कट के दरिया की तह में जिस तरह किनारे जाते हैं।।
जैसे किनारा कटता जाता है, कटता है, ऐसे भक्त कटता जाता है, कटता जाता है, एक दिन पाता है--सारा आपा बह गया। जिस क्षण आपा नहीं बचता, उसी क्षण परमात्मा अनुभव में आता है। परमात्मा था ही, शायद आपे ने आंखों पर पर्दा डाल रखा था।
इक बार मुझे अक्ल ने चाहा था भुलाना।
सौ बार जुनूं ने तेरी तस्वीर दिखा दी।।
ऐसा पागलपन चाहिए कि आपे को चढ़ा दो। "रज्जब आपा अरपि दे"। यह होशियारी जिनके जीवन में हो गई है उनसे नहीं हो सकेगा। इसके लिए तो हिम्मतवर चाहिए, मर्द चाहिए, पागल चाहिए, जुनून चाहिए।
इक बार मुझे अक्ल ने चाहा था भुलाना।
और अक्ल तुम्हें भुलाएगी, अक्ल तुम्हें कहेगी--यह क्या कर रहे हो? अपने को चढ़ा रहे हो! अक्ल तुमसे कहेगी--मत करो ऐसा। बुद्धं शरणं गच्छामि! मत करो ऐसा, अपने को मत चढ़ाओ। क्यों चढ़ो तुम किसी के चरणों में? बुद्धि सब तरह से तुम्हें अटकाएगी, भरमाएगी। अगर जुनून हो, अगर दीवानगी हो, तो ही चढ़ा पाओगे। दीवानगी हृदय की भावना है, बुद्धि सांसारिक समझ है।
करणी कठिन रे बंदगी...
और वही बंदगी है--आपा को अरपि दे।
करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहां मिलै रहिमान।।
बंदगी कठिन है, क्योंकि झुकना कठिन है। अहंकार झुकना नहीं चाहता, झुकाना चाहता है। सारी दुनिया को झुकाना चाहता है, झुकना नहीं चाहता।
करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
इसलिए लोगों ने करनी तो छोड़ दी है, कहनी शुरू कर दी है। लोग प्रार्थना
की बातें करते हैं। मंदिर में जाते हैं और कहते हैं--हे प्रभु, तुम्हारी शरण आया हूं। और प्रभु देख रहे हैं कि न तो तुम यहां आए हो--शरण की तो बात ही दूर, तुम यहां आए ही नहीं हो, तुम्हारा मन बाजार में है, कि और हजार दूसरी जगहों पर है, कि तेरे चरणों में सिर झुकाता हूं। मगर सिर ही झुकता है, भीतर तुम अकड़े खड़े रहते हो। सब झूठ है। लोगों ने बातें करनी शुरू कर दी हैं। लोग कहते हैं--हे पतितपावन! मुझ पापी का उद्धार करो। मगर यह तुम कह रहे हो सिर्फ होशियारी से। तुमने एक क्षण को भी अपने को पापी स्वीकार नहीं किया है। और अगर कोई बाजार में तुमसे कह दे कि ऐ पापी, कहाँ जा रहे हो? तो तुम उस पर अदालत में मानहानि का मुकदमा चलाओगे, कि इसने मुझे पापी कहा। यह कौन है मुझे पापी कहने वाला? तुम परमात्मा के सामने जब अपने को पापी घोषणा करते हो, तब तुमने सोचकर किया है? कि भजन कंठ कर लिया है, कंठस्थ कर लिया है, कहते रहते हो, मशीन की तरह, ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह?
करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान।
इसलिए लोगों ने प्रार्थना को करना तो बंद कर दिया है, कहना शुरू कर दिया है। प्रार्थना करना तो जीवंत घटना है प्राण की घटना है--शब्द की नहीं, वाणी की नहीं। बोल खो जाते हैं प्रार्थना में--बोल कहां बचेगा? कहने को है क्या? लेकिन लोग बड़े लफ्फाज हो गए हैं, वे परमात्मा से भी बड़ी गुफ्तगू कर लेते हैं, बड़ी बातें कर लेते हैं; ऊंची-ऊंची बातें, सिद्धांत की बातें करके घर लौट आते हैं। ये प्रार्थनाएं झूठी हैं।
सच्ची प्रार्थना तो मौन होगी। तुम झुक जाओ, एक गहन भाव में, अहंकार तिरोहित हो जाएगा, मन थिर हो जाएगा, सब रुक जाएगा, जैसे जगत का सारा प्रवाह रुक गया--मन का प्रवाह रुका तो जगत का प्रवाह रुक ही जाता है, क्योंकि मन का

प्रवाह ही जगत का प्रवाह है--उस घड़ी में कोई नहीं बचा, तुम नहीं बचे अपने भीतर, आपा चढ़ गया, वहीं हरि का आगमन हो जाता है।
जन रज्जब रहणी बिना, कहां मिलै रहिमान।।
मगर कहने से कुछ भी न होगा। कितने ही जोर से चिल्लाते रहो, नमाज करो, प्रार्थना करो--कबीर ने कहा है, "क्या बहरा हुआ खुदाय," इतने जोर-जोर से चिल्ला रहे हो? और अब तो लोग लाउडस्पीकर लगा लेते हैं, अखंड कीर्तन करवा देते हैं--कीर्तन कम ही होता हैं, अखंड कीरंतन--सारे मोहल्ले को उपद्रव में डाल देते हैं, शोरगुल मचा देते हैं--अखंड शोरगुल--और माइक भी लगा देते हैं, जैसे भगवान को सुनने में अड़चन आ रही होगी। अब कोई चुपचाप थोड़े ही प्रार्थना करता है, प्रार्थना का बड़ा आयोजन करना पड़ता है, बड़ा शोरगुल मचाना पड़ता है--विज्ञापन करना पड़ता है। यह सब धोखा है। असली प्रार्थना मौन है। दो आंसू गिर जाएं मौन में, बस बहुत हैं। आंखें गीली हो जाएं, बस बहुत है।
टपके जो अश्क, बलवले शादाब हो गए।
कितने अजीब इश्क के आदाब हो गए।।
बस दो आंसू पर्याप्त हैं, वे पहुंच जाएंगे, वे सुन लिए जाएंगे।
इक हर्फ इक तवील शिकायत से कम नहीं,
इक बूंद इक बहरकी वुसअत से कम नहीं,
निकले खुलूसे-दिल से अगर वक्ते नीमशब,
इक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं।
"इक आह," बस एक आह निकल जाए भाव से भरी, "इक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं"। और तुम सौ साल इबादत करते रहो, दो कौड़ी की है।
बात बस से निकल चली है
दिल की हालत सम्हल चली है
अब जुनूं हद से बढ़ चला है
अब तबीयत बहल चली है
जैसे-जैसे प्रार्थना का पागलपन बढ़ेगा--पागलपन ही है, क्योंकि मौन निवेदन करना है, चुपचाप कह देना है, शब्दों को बीच में नहीं लाना है, भाव से भाव की बात हो जाए, भाव से भाव का सेतु जुड़ जाए।
हाथ घड़े कूं पूजता, मोल लिए का मान।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान।।
रज्जब कहते हैं--मूढ़ो, हाथ घड़े कूं पूजता? आदमी ने परमात्मा की मूर्तियां गढ़ ली हैं, हाथ से गढ़ी हुई मूर्तियों को पूज रहा है, अपनी ही बनाई हुई मूर्तियों को पूज रहा है, खिलौनों के सामने झुक रहा है। तो पहले तो वाणी--शब्द--की कोई जरूरत नहीं, और तुम्हारे मंदिर-मस्जिद, इनकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारी मूर्तियां तुम्हारी ही बनाई हुई मूर्तियां हैं। तुम्ही गढ़ लेते हो। "मोल लिए का मान," फिर बाजार से खरीद लाते हो और उसका बड़ा सम्मान करने लगते हो। किसको धोखा दे रहे हो?
हाथ घड़े कूँ पूजता, मोल लिए का मान।
रज्जब अघड़ अमोल की...
अगर खोजना ही हो, तो अघड़, जो आदमी का बनाया हुआ नहीं है। जिसने आदमी को बनाया है, उसको खोजो। आदमी के बनाए हुए में क्या हो सकता है?
"रज्जब अघड़ अमोल की"। और उसे खोजो जिसका कोई मोल चुकाया नहीं जा सकता। हमारे पास है क्या जो हम उसका मूल्य चुका दें? "खलक खबर नहीं जान," इस दुनिया को उसकी कुछ खबर ही नहीं रही, अपने बनाए हुए खिलौनों में भटक गई यह दुनिया।
माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग।
सो दिल दादू-पंथ में, परम पुरुष सूँ लाग।।
रज्जब कहते हैं, मालाएं फेरते रहो बैठे हुए, कुछ भी न होगा। मन का फेरा रोको। परमात्मा को तुम्हारे भीतर फिरने दो। "तीरथ मूरति त्याग," क्या करोगे जाकर तीरथ? काशी जाओ कि काबा जाओ, क्या पाओगे? सब आदमी के बनाए हुए हैं। तीरथ मूरति त्याग।
सो दिल दादू-पंथ में, परम पुरुष सूं लाग।।

जो इतनी हिम्मत करता है--"मरद गए करि त्याग"--कि मूरत छोड़ दी, तीरथ छोड़ दिए, शास्त्र छोड़ दिए, शब्द छोड़ दिए, जो ऐसे मर्द हैं, साहसी हैं, "सो दिल दादू-पंथ में," ऐसे दिल वालों का ही सदगुरूओं के मार्ग पर स्वागत हो सकता है। "सो दिल दादू-पंथ में, परम पुरुष सूं लाग"।। और ऐसे ही लोग उस परमपुरुष को पा सकेंगे।
उसकी याद तभी आएगी जब आदमी के बनाए हुए परमात्माओं से तुम मुक्त हो जाओगे। और वह तुम्हारे भीतर बैठा है और तुम आदमी की बनाई हुई चीजों के सामने उसे झुका रहे हो! अगर झुकना ही हो, वृक्षों के सामने झुक जाना--कम से कम उसके बनाए तो हैं, कम से कम उसके हाथ तो इन पर लगे हैं, उसकी तूलिका ने तो इनमें रंग भरे हैं--पहाड़ों के सामने झुक जाना, आकाश के तारों के सामने झुक जाना, पशु-पक्षियों के सामने झुक जाना, आदमियों के सामने झुक जाना--कम से कम उसकी कुछ भनक तो है। लेकिन नहीं, तुम अपने बनाए परमात्मा के सामने झुकते हो। वह सस्ता है, उसमें कुछ हिम्मत की जरूरत नहीं, उसकी तुमसे कोई मांग नहीं है। मुर्दा मूरत मांगेगी भी क्या, तुमसे कहेगी भी क्या? जब उठाओगे, उठ आएगी, जब सुलाओगे, सो जाएगी; नहलाओगे, नहा लेगी, भोग लगा दोगे, बैठी रहेगी, और फिर भोग तुम्हीं उठा कर कर लोगे--खूब खेल रचा है! धर्म के नाम पर कैसी मूढ़ता चल रही है, इसका अंत नहीं।
आप मुश्किल था सम्हलना ऐ दोस्त।
तू मुसीबत में अजब याद आया।।
इस मुसीबत की घड़ी में परमात्मा तुम्हें याद आ जाए तो ही कुछ सम्हलना
हो सकता है।.जरा आंख खोलो! .जरा उसकी छवि देखो!
बेरंग फजाओं में सितारे घोलें
जुल्मत की लगाई हुई गिरहें खोलें
इस सम्त जरा कीजिए चेहरा अपना
हम चश्मा-ए-महताब में आंखें धो लें
उसका चांद जैसा प्यारा मुख--चांद में उसका ही मुख है--सूरज जैसा जलता हुआ ज्वलंत मुख--सूरज में उसका ही मुख है--भले थे लोग जो सूरज के सामने झुक गए, भले थे वे लोग जो चांद के सामने झुक गए। आदमी विराट के सामने झुकना ही भूल गया है। अब तो तुम अपने बनाए मंदिरों में झुक रहे हो; और तुम्हें याद भी नहीं आती कि तुम क्या कर रहे हो?
पराकिरत मधि ऊपजै, संसकिरत सब बेद।
अब समझावै कौन करि, पाया भाषाभेद।।
तुम भाषाओं के भेद में ऐसा झगड़ रहे हो जिसका हिसाब नहीं! असली काम कब करोगे? लोग इसी में लड़ रहे हैं कि संस्कृत के लिखे वेद सच हैं, कि प्राकृत में बोले गए महावीर के वचन सच हैं, कि पाली में बोले गए बुद्ध के वचन सच हैं, कि अरबी में लिखी कुरान सच है, कि अरेमैक में कहे गए जीसस के वचन सच हैं? कौन सच है, कौन सी भाषा सच है? सब भाषाओं के भेद हैं, पीछे सत्य एक है। और उस सत्य को इन भाषाओं से नहीं पकड़ा जा सकता। हां, उस सत्य को तुम समझ लो तो ये सब भाषाएं तुम्हें समझ में आ जाएं। ये सब कहने के ढंग हैं, मगर जिसको कहा गया है, वह एक है। हजार अंगुलियां चांद को दिखा रही हैं, अंगुलियों को मत पकड़ो, चांद को देखो। चांद एक है, अंगुलियां हजार हैं। लेकिन अंगुलियों को लोग पकड़ कर बैठ गए हैं। कोई ने वेद पकड़ लिया है, किसी ने कुरान, किसी ने बाइबिल। ये अंगुलियां हैं। फिर अंगुलियों की पूजा चल रही है।
बीजरूप कछु और था, वृक्ष रूप भया और।
त्यूं प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर।।
रज्जब कहते हैं--ब्यौरे को समझो। ब्यौरे में ही भेद है, मूल तो एक ही है। "बीजरूप कछु और था।" जब बुद्ध बोले तो जो उनके भीतर था बीज, वह कुछ और था। जब बोले तो कुछ और हो गया। क्योंकि बुद्ध तो अपनी भाषा में बोलेंगे। स्वभावतः, बुद्ध राजा के बेटे थे, तो उनकी भाषा बड़ी परिष्कृत थी--सम्राट की भाषा थी। कबीर तो अपनी भाषा में बोलेंगे। जुलाहे थे तो जुलाहे की भाषा थी। अब यह तो तुम सोच ही नहीं सकते कभी कि बुद्ध ऐसा भजन लिख सकते थे जैसा कबीर ने लिखा कि--झीनी झीनी बीनी रे चदरिया। बापदादे कभी बीने थे चदिरया?

चदरिया बीनने का कुछ पता था बुद्ध को? कबीर ही कह सकते हैं ये--झीनी झीनी बीनी रे चदरिया।
तुम देखोगे, प्रत्येक संत की वाणी उसके अनुभव से आएगी। जीसस बोलते हैं बढ़ई के बेटे की तरह। स्वाभाविक। शंकराचार्य की वाणी और है--परिष्कृत है, सूक्ष्म है, दार्शनिक की है। कबीर की वाणी बेपढ़े-लिखे आदमी की है। कबीर कहते हैं--मसि कागद छूआ नहीं। कभी छूआ ही नहीं कागज और स्याही। तो जिसने कागज और स्याही कभी नहींं छुई उसकी वाणी और ही तरह की होगी--गांव की होगी, ठेठ देहात की होगी, किसान की होगी, मजदूर की होगी--और उस की वाणी में एक बल होगा, जो पंडित की वाणी में नहीं होता। पंडित की वाणी सूक्ष्म होती, नाजुक होती है, सुंदर होती है, मगर उतनी जीवंत नहीं हो सकती। कबीर तो ऐसा है जैसे सिर पर कोई डंडा मार दे। बुद्ध ऐसे हैं जैसे कोई फूलझड़ी तुम्हारे सिर पर मारे। जैसे कोई फूल बरसा दे। चोट दोनों करते हैं, मगर दोनों की चोटों में भेद हो जाता है। बुद्ध से वे ही लोग आकर्षित होंगे जो उस परिष्कृत भाषा को समझ सकते हैं। सारे भाषा-भेद हैं।
फिर स्वभावतः जब संस्कृत में एक बात कही जाएगी तो उसका एक ढंग होगा, हिब्रू में और ढंग होगा। एक देश में एक ढंग होगा, दूसरे देश में दूसरा ढंग होगा। एक परंपरा में एक, दूसरी परंपरा में दूसरा। मगर बीज एक है। बुद्ध के भीतर जो हुआ और कबीर के भीतर जो हुआ और रज्जब के भीतर जो हुआ, बीज एक है।
बीजरूप कछु और था, बिरछरूप भया और।
त्यूं प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर।।
ब्यौरे में भेद है, मगर मूल में भेद नहीं है। और जो ब्यौरे में ही पड़
गए और ब्यौरे की ही नकल करने लगे, वे चूक गए, वे नकली हो गए।
बांसुरी हाथ में पकड़े मुंह पर छिड़के नीला रंग
सब ही किसन बनें तो राधा नाचे किसके संग
उधार कृष्ण हैं। बांसुरी हाथ में पकड़ी है, और मुँह पर नीला रंग भी छिड़क लिया है--
बांसुरी हाथ में पकड़े मुंह पर छिड़के नीला रंग
सब ही किसन बनें तो राधा नाचे किसके संग
इसीलिए तुम्हारे साथ राधा नहीं नाच पा रही है। तुम्हारा रंग झूठा है। कच्चा रंग है, भीतर से नहीं आया है।
अंतरयामी के दर्शन को अंतरज्ञानी जाए
"सहबा जी" बनबास से कोई राम नहीं बन पाए
सिर्फ वनवास चले जाने से कोई राम नहीं बन जाता। कि चले गए वन, रख लिए धनुषबाण, ले ली सीता जी भी साथ अपनी और लक्ष्मण जी को भी कहा--आओ तुम, और चक्कर काटते रहे जंगल में, इससे कुछ तुम राम नहीं हो जाओगे। मगर यही हो रहा है। लोग वेद कंठस्थ करते हैं और सोचते हैं ज्ञान के स्रोत पर पहुंच गए। वेद तो उच्छिष्ट है। वेद से तो सिर्फ इतना ही पता चलता है कि कोई पहुंच गए थे, उनकी थोड़ी सी भनक उन शब्दों में है। अगर ब्यौरों में गए तो चूक जाओगे, अगर मूल में गए तो शायद पकड़ लो। और मूल में जाने के लिए भीतर जाना पड़ता है।
बीजरूप कछु और था, बिरछरूप भया और।
त्यूं प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर।।
बेद सु बाणी कूपजल, दुखसूं प्रापति होइ।
रज्जब प्यारी बात कहते हैं--"बेद सु बाणी कूपजल।" जैसे कोई बहुत गहरे कुएं में पानी भरा हो, ऐसी वेद की वाणी है। बड़ी मुश्किल से मिलती है--उतरो कुएं में, जाओ कुएं में या बाल्टी लाओ, या रस्सियां इकट्ठी करो। "बेद सु बाणी कूपजल।" कबीर का भी एक वचन है, जिसमें उन्होंने कहा है--भाषा बहता नीर। वेद तो ऐसा है, कुएं के जल जैसा। संस्कृत तो ऐसी है, कुएं के जल जैसी। और जो सामान्य भाषा है, जिसमें सारे संत बोले--नानक, कबीर, दादू, रज्जब-- जिसमें सारे संत बोले, वह तो बहता हुआ नीर है।
कुएं के जल की कुछ खराबियाँ हैं। एक तो यह, वह बहता हुआ नहीं है इसलिए
सड़ जाता है। बहता हुआ नीर स्वच्छ रहता है। फिर कुएं से जल को पाना हो तो उपाय करने होते हैं; बह रहा है, जो पानी बह रहा है उसमें कुछ उपाय नहीं करने होते, जब चाहो तब पी लो--सीधा-सीधा पी लो। वेद को समझना हो तो व्याख्या में

जाना पड़ता है, वेद को समझना हो तो व्याख्या में जाना पड़ता है, वेद को समझना हो तो मध्यस्थ चाहिए।
वेद सु बाणी कूपजल, दुखसूं प्रापति होइ।
बड़े दुख से मिलना होता है। सार खोजने में बड़ी मुश्किल होगी।
सबद साखि सरबर सलिल, सुख पीवै सब कोइ।।
लेकिन ये जो संतों के शब्द हैं, सामान्यजन जो परमात्मा को पाए हैं इनके जो शब्द हैं, ये शब्द ऐसे हैं जैसे सरिता तुम्हारे गांव के पास से बहती हो। "सबद साखि सरबर सलिल," या सरोवर, "सुख पीवै सब कोइ," कोई भी पी सकता है। किसी पांडित्य की, किसी पुरोहित की, किसी बीच में मध्यस्थ की कोई जरूरत नहीं।
मध्यस्थ बड़े खतरे पैदा करते हैं। गीता पर एक हजार टीकाएं हैं। अगर एक हजार टीकाएं पढ़ो, तो एक बात पक्की है कि फिर गीता तुम्हें कभी समझ में न आएगी। तुम पागल ही हो जाओगे एक हजार टीकाएं पढ़ते-पढ़ते। तुम होश ही गंवा दोगे। इतना कूड़ा-करकट तुम्हारे सिर में इकट्ठा हो जाएगा कि किसी शब्द का अर्थ निश्चित नहीं रह जाएगा। सब अनिश्चित हो जाएगा। इतने वाद और विवाद उठ आएंगे कि तुम उस जंगल में खो जाओगे। इसलिए संतों ने सीधी-सादी बोलचाल की भाषा का उपयोग किया है। ताकि बीच में पुरोहित की जरूरत न रह जाए।
चाकी चरखा घसि गए, भ्रमि-भ्रमि भामिनी हाथ।
तौ रज्जब क्यूं होहिंगे, नर निहचल तिनसाथ।।
जरा देखो तो अपने हाथों की तरफ, घट्टे पड़ गए हैं, चरखे और चक्कियां चलाते रहे हो जन्मों-जन्मों से। "चाकी चरखा घसि गए", सब घस गया है, "भ्रमि- भ्रमि भामिनी-हाथ"। अब कब तक इसी चाकी को चलाते रहना है? कब तक यही आटा पीसते रहोगे? कब तक यही पत्थर तोड़ते रहोगे? कब तक यही संसार के ताने-बाने बुनते रहोगे?
चाकी चरखा घसि गए, भ्रमि-भ्रमि भामिनी हाथ।
रज्जब कहते हैं--मैं तो सम्हल गया। मैंने तो ये हाथ चक्की से हटा लिए। मैंने तो ये हाथ परमात्मा के हाथ में दे दिए।
तौ रज्जब क्यूं होहिंगे नर निहचल तिनसाथ।।
अब तो परमात्मा मेरे साथ है, मैं परमात्मा के साथ हूं, अब दुबारा मैं नहीं होऊंगा। अब लौटूंगा नहीं। अब आऊंगा नहीं। अब इस चक्की को चलाने आने की कोई जरूरत नहीं है। अब ये चरखा मेरे लिए समाप्त हुआ। यह तुम्हारे लिए भी समाप्त हो सकता है।
रज्जब सीधे-साधे आदमी हैं--साधारण-जन--इसलिए बार-बार कहते हैं, "जन रज्जब।" साधारण-जन, कोई विशिष्टता नहीं है, सामान्य हैं, सामान्य से भी सामान्य। फिर भी पा लिया, परम पा लिया। तुम भी पा सकते हो।
राम ने पाया, तो पक्का नहीं है कि तुम पा सकोगे, क्योंकि राम के संबंध में कहानी जुड़ी है कि अवतार हैं। वह तो पाए ही हुए हैं। पहले से, वह तो आए ही ऊपर से हैं--उतरे हैं ऊपर से। हम सामान्यजन! बुद्ध ने पाया, महावीर ने पाया, ये सब तीर्थंकर, अवतार, ये बड़े-बड़े लोग, विशिष्ट लोग। रज्जब कहते हैं--"जन रज्जब।" मैं कुछ विशिष्ट नहीं हूं, तुम्हारे जैसा ही साधारणजन, मैंने भी पा लिया, तुम भी पा सकते हो।
ध्यान रखना, संतों की उदघोषणा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इस उदघोषणा ने तुम्हें मुक्ति का द्वार खोल दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए मुक्ति का द्वार खोल दिया है। धर्म को विशिष्टों से छीन लिया संतों ने और सामान्यजनों को बांट दिया।
आखिरी सूत्र हृदय में सम्हाल लेना--
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप।।
दुख आएगा, सुख आएगा; जीवन आता, मौत आती; सब आते, जाते। द्वंद्व का यह खेल चलता रहता है--जैसे रात-दिन, अंधेरा-उजाला। इसको चुपचाप देखो साक्षी बन कर। "समये मीठा बोलना", एक समय होता है जब मीठा बोलो और एक समय होता है जब चुप रह जाओ। जैसे बोलने और चुप रहने में एक लय है, ऐसे ही जीवन और मृत्यु में एक लय है।

"उनहाले छाया भली।" और जब धूप के दिन हों, तो छाया में बैठ रहो। यह साधना का सूत्र दे रहे हैं। यह आखिरी सूत्र अति बहुमूल्य है। जब धूप हो, छाया में बैठ जाओ, --"उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप"--और जब सर्दी पड़ती हो, तब धूप में बैठते रहो। ऐसा सरल जीवन चाहिए।

झेन फकीरों की याद करो।
बोकोजू से किसी ने पूछा है कि तुम्हारी साधना क्या है? तो वह कहता हैः मेरी साधना कुछ और नहीं है; जब भूख लगती है, भोजन कर लेता हूं, जब नींद आती है तब सो जाता हूं। उस आदमी ने कहाः लेकिन ये तो सभी करते हैं। बोकोजू ने कहाः सभी यह करें, तो सभी पा लें। लोग भोजन भी करते हैं और हजार काम उनके मन में चलते रहते हैं। सोते भी हैं और हजार सपने उनमें डालते रहते हैं। मैं जब सोता हूं तो बस सोता हूं। और जब भोजन करता हूं तो बस भोजन करता हूं। यही मेरी साधना है।
एक दूसरे झेन फकीर से किसी ने पूछा कि जब तुम ज्ञान को उपलब्ध न हुए थे, तब क्या करते थे? वह कहता थाः मैं गुरु के चरणों में रहता था, लकड़ियां काटता था आश्रम के लिए, पानी भर लाता था कुएं से। उस आदमी ने पूछा कि अब तो तुम स्वयं संबोधि को उपलब्ध हो गए, अब तुम क्या करते हो? उस आदमी ने कहाः अब भी मैं लकड़ी काटता हूं। उस आदमी ने पूछाः फिर फर्क क्या है? उस फकीर ने कहाः फर्क बहुत है और ऐसे कुछ भी नहीं। तब मैं सोया-सोया सब कर रहा था, अब सब जागे-जागे कर रहा हूं। बस इतना ही फर्क है। ऐसे बाहर से देखो तो कुछ फर्क नहीं, तब भी लकड़ी काटता था, कुएं से पानी भर लाता था।
यह सूत्र सारे झेन-जीवन का सार-सूत्र बन सकता है--
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप।
जैसी घड़ी हो, वैसे हो जाना। चुपचाप, बिना संघर्ष किए, सहज भाव से। जब बोलने की जरूरत हो, बोल देना, जब चुप रहने की जरुरूरत हो तब चुप रह जाना। "उनहाले छाया भली"... और जब धूप पड़ती हो तो वृक्ष की छाया में बैठ गए... "रज्जब सियाले धूप"... और जब सर्दी आ जाए, तो धूप में बैठ गए। बस इतना ही सरल जीवन होना चाहिए--इतना ही सहज जीवन होना चाहिए। यह सहजता ही धर्म का सार है--सहजयोग। साधो, सहज समाधि भली!

आज इतना ही।

संतो, मगन भया मन मेरा
बीसवां प्रवचन

प्रभु की खोज को एक लपट बनाओ

पहला प्रश्नः सत्संग क्या है? सत्संग की महिमा क्या है?

मैं यहां हूं, तुम यहां हो, दोनों के बीच कोई बाधा नहीं, अवरोध नहीं, यही सत्संग है। विवाद नहीं, संवाद है, यही सत्संग है। एक शून्य यहां, एक शून्य वहां, दो शून्यों का मिलन सत्संग है। एक दीया यहां, एक दीया वहां, दो दीयों का साथ-साथ जल उठना सत्संग है।
सत्संग भाव की एक दशा है। विचार की नहीं। सत्संग हृदय का खुला होना है, जैसे सुबह कमल खिल जाए सूरज के लिए। सूरज और कमल के बीच सत्संग है--सूरज दे रहा है बेशर्त, कमल ले रहा है बेशर्त। न देने में कोई संकोच है, न लेने में कोई संकोच है। न देने वाला कृपण है देने में, न लेने वाला कृपण है लेने में। न देने वाला है, न लेने वाला है, दोनों तरफ सन्नाटा है, निर-अहंकार भाव है, वही सत्संग है। ये सुबह के चुपचाप खड़े वृक्ष, ये सूरज की बरसती हुई किरणें, यह पक्षियों का कलरव, यह चुपचाप तुम्हारा यहां बैठे होना, जब भी तुम्हारे भीतर विचार की धार बंद हो जाती है, तभी सत्संग हो जाता है।
मैं शून्य हूं, जब तुम विचार से भरे होते हो, तुम मुझसे दूर होते हो।
शून्य के पास आने का उपाय शून्य होना ही है। समान ही समान के पास आ सकेगा।
तुम जब विचार से भरे हो, तुम बहुत दूर हो। चांद-तारों पर कहीं, यहां नहीं।
कहीं और, कहीं और। हजार स्थान होने के हो सकते हैं। मगर.जरा-सी विचार की तरंग उठी कि तुम यहां नहीं हो, एक बात सुनिश्चित है। कहीं और होओगे।
सत्संग टूट गया। धागा टूट गया। सेतु न रहा। हम दो अलग दुनियाओं में हो गए। हमारे बीच कोई संबंध न रहा। विचार गया--एक क्षण को चला जाए--निर्विचार सघन हुआ, तुम सिर्फ मौन वहां बैठे रहे, खुले, उन्मुत्त, स्वागत करते, जरा भी तुमने अवरोध न दिया, जरा भी तुमने बाधा खड़ी न की, मैं-भाव निर्मित न हुआ--एक क्षण का अंतराल काफी है--वहीं सत्संग घट जाता है। और एक क्षण का सत्संग इतना दे जाता है, जितना विचार का एक पूरा जीवन भी न दे सकेगा। अनंत-अनंत जीवन न दे सकेंगे जो, एक क्षण का सत्संग दे जाता है।
पर सत्संग कभी-कभी घटता है। इसलिए मैं रोज बोले जाता हूं। आज नहीं, घटेगा कल घटेगा, कल नहीं परसों घटेगा; कौन जाने किस घड़ी में घट जाए? कौन जाने कौन सा शब्द चोट कर जाए? कौन जाने किस भाव-दशा में तुम खुल जाओ-- तुम्हारा कमल खुले और तुम सूरज को पी लो? एक बार सत्संग लग जाए, एक बार जोड़ बैठ जाए, फिर तो बार-बार बैठने लगता है। एक बार समझ आ जाए, स्वाद आ जाए, फिर तो बार-बार लेने में अड़चन नहीं रह जाती, क्योंकि सूत्र तुम्हारे हाथ आ गया। गणित पर तुम्हारी पकड़ हो गई। फिर तो तुम चुपचाप अपने भीतर उस भाव-दशा को कभी भी बुला ले सकते हो। फिर यहां बैठने की भी जरूरत नहीं है, तुम दूर हो कहीं, तो भी सत्संग बन सकता है। ऐसा सत्संग बन सके इसीलिए संन्यास का आयोजन किया है। तुम दूर रहकर भी जुड़ सको, यही संन्यास के पीछे सूत्र है। तुम दूर रहकर भी मेरे पास हो सको।
ख्याल रखना, पास होकर भी कोई दूर हो सकता है। यहां कोई बैठा हो हजार विचारों से भरा हुआ, सोचता हो, विवाद करता हो, तर्क संदेह करता हो, अपने पक्षपात, अपनी धारणाएं बीच में लाता हो, तो दूर है। और कहीं दूर, हजारों कोसों दूर, सात समंदर पार तुम बैठे चुपचाप और तुम निर्विचार हुए और तुमने कोई तरंग न उठाई, तुम निस्तरंग हुए, तुम्हारी भीतर की अंतर-ज्योति कंपी नहीं, ठहर गई, उसी क्षण सत्संग हो जाएगा। दूरी मिटी, समय मिटा, काल मिटा, फासले मिटे, तत्क्षण तुम करीब आ गए। सत्संग करीब आने की कला है। दूर रहकर भी करीब आने की कला है। बिना छुए छूने की कला है। सत्संग एक बड़ी कीमिया है। इसलिए उसकी बहुत महिमा गाई गई है।
गुरु के पास तो हम पाठ सीखते हैं सत्संग का, फिर सत्संग तो परमात्मा
से ही होना है। एक बार राज हाथ में आ जाए, फिर तो तुम कभी भी खुल जाओ, कहीं भी खुल जाओ--खुलने का साहस आ जाए और यह समझ में आ जाए कि खुलने से कुछ खोता

नहीं, खुलने से मिलता है, बंद रहने से खोता है--यह महत्वपूर्ण नियम तुम्हारी सूझ-बूझ में प्रविष्ट हो जाए कि विचार से कुछ मिलता नहीं, विचार नपुंसक हैं, निर्विचार से मिलता है, निर्विचार संपदा है; विचार भिखारी हैं, निर्विचार सम्राट हैं, ऐसी तुम्हें प्रतीति हो जाए--गुरु के पास बैठना बस इस प्रतीति के लिए है--एक बार यह प्रतीति हो गई, तो जब गुरु के पास खुलने से इतना मिल जाता है, तो परम के लिए खुलना, सर्व के लिए खुलना, सारे आकाश के लिए खुलना, फिर कितना न मिलेगा! फिर संपदा ही संपदा है। फिर कभी कोई दीनता नहीं है। फिर कोई दुख नहीं, फिर कोई दारिद्र 216ा नहीं। फिर तुम सम्राट हो, फिर तुम स्वामी हो।
यह तो सत्संग का अंतर्तम है।
इस सत्संग तक पहुंचने के लिए प्रभु की चर्चा, संतों के वचन, सद्गुरुओं
की अनुभूतिसिक्त वाणी, उस पर विचार, उसमें डोलना, उसके साथ नाचना, मस्त होना, वेद-कुरान-बाइबिल से थोड़े से मदिरा के घूंट पीना, वह भी औपचारिक अर्थों में सत्संग है। जैसे छोटे बच्चे को हम स्कूल में पाठ पढ़ाते हैं तो कहते हैं--"ग" गणेश का। ग का गणेश से कुछ लेना-देना नहीं है। ग तो गधे का भी है, कोई गणेश की बपौती नहीं है। कहते हैं आ आम का; आ तो आदमी का भी है, आम से कुछ अनिवार्यता नहीं है। लेकिन कुछ भी बहाना चाहिए बच्चे को समझाने के लिए। बच्चा आ को तो जानता नहीं, आम को जानता है, आम का स्वाद उसे मालूम है। और छोटी होने लगती है। आम की तस्वीर देखी है, आम को जानता है। आम का स्वाद उसे मालूम है, आ का स्वाद उसे मालूम नहीं। आम की तस्वीर देखी है, आम का रंग देखा है, आम उसकी प्रतीति में है, आम को बहाना बना रहे हैं ताकि आम के सहारे, आम की सीढ़ी पर चढ़ कर वह अ से परिचित हो जाए। फिर जिंदगी भर थोड़े ही "आ" आम का, ऐसे ही करते रहना है! कि जब भी किताब पढ़ी, आ आया तो कहा "आ" आम का। और ग आया तो "ग" गधे का। फिर तो तुम गधों और आमों में डूब जाओगे, फिर कुछ पढ़ नहीं पाओगे। क्योंकि हर शब्द आएगा और वह किसका? तो जो लिखा गया है, वह तो पकड़ में ही नहीं आएगा।
फिर तो भूल जाता है बच्चा। एक बात समझ में आ गई, एक बात पहचान में आ गई, फिर उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता। साधन की तरह उपयोग कर लिया, वह साध्य नहीं था। देखी हैं, छोटे बच्चों की किताबें? उनमें तस्वीरें बड़ी होती हैं; फिर जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है, तस्वीरें छोटी होने लगती हैं। तस्वीरें बड़ी रंगीन होती हैं बच्चों की किताबों की। क्योंकि रंग उसे आकर्षित करता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है, तस्वीरें बिना रंग की होने लगती हैं। स्कूल में पहुंचते-पहुंचते तस्वीरें नदारद होने लगती हैं। यूनिवर्सिटी में पहुंचते-पहुंचते तस्वीरों का कोई संबंध ही नहीं रह जाता। अब बच्चा सीधा-सीधा पढ़ने लगा।
तो औपचारिक रूप से, साधन रूप से, प्रभु-चर्चा सत्संग है। जहां भजन होता हो, भजन के भाव में लोग भीगते हों, वहां सत्संग है। लेकिन औपचारिक रूप से ही समझना। भजन के पार जाना है, क्योंकि भजन वैसे ही है जैसे "आ" आम का। वैसे ही "भजन" भगवान का। उसके पार जाना है। होना तो अंततः मौन है। लेकिन सत्संग की दृष्टि से सभी बच्चे हैं, बूढ़े भी बच्चे हैं।
शामे फिराक अब न पूछ, आई और आ के टल गई
दिल था कि फिर बदल गया, जां थी कि फिर सम्हल गई
बज्मे-ख्याल में तेरे हुस्न की शम्मअ जल गई।
दर्द का चांद बुझ गया, हिज्र की रात ढल गई।।
जब तुझे याद कर लिया, सुबह महक-महक उठी।
जब तेरा गम जगा लिया, रात मचल-मचल गई।।
दिल से तो हर मुआमला करके चले थे साफ हम।
कहने में उनके सामने बात बदल-बदल गई।।
आखिरे-शब के हमसफर "फैज" न जाने क्या हुए।
रह गई किस जगह सबा, सुबह किधर निकल गई।।
बहुत मुकाम आते हैं, बहुत पड़ाव आते हैं।
दिल से तो हर मुआमला करके चले थे साफ हम।
कहने में उनके सामने बात बदल-बदल गई।।

भजन से शुरू करोगे, हजार-हजार रंगों में प्रार्थना करोगे, हजार तैयारियाँ करोगे, सोचोगे प्रभु का मिलन हो जाए तो ऐसा कहेंगे, ऐसा कहेंगे, यह कहेंगे, वह कहेंगे, लेकिन बात बदल-बदल जाने वाली है। और अखीर में बात बचेगी ही नहीं। जब प्रभु के सामने खड़े होओगे, सन्नाटा रह जाएगा। शून्य ही बचेगा।
दिल से तो हर मुआमला करके चले थे साफ हम।
कहने में उनके सामने बात बदल बदल गई।।
न तो वेद की ऋचा का उल्लेख कर सकोगे, न कुरान की आयत गुनगुना सकोगे।
नहीं, कुछ काम न आएगा; उसका काम पूरा हो चुका, वह वर्णमाला की शुरुआत थी।
वर्णमाला की शुरुआत--विचार, शब्द, शास्त्र। अंत कहां है? अंत निर्विचार में है। अंत है ध्यान में। अंत है प्रेम में।
शामे फिराक अब न पूछ, आई और आके टल गई
मत पूछो विरह की रात! जब भी भक्त भगवान को याद कर लेता है, विरह की रात होती भी है और टल भी जाती है।
शामे फिराक अब न पूछ, आई और आके टल गई
दिल था कि फिर बदल गया, जां थी कि फिर सम्हल गई
जैसे ही याद परमात्मा की कर लेता है भक्त--वह सत्संग की शुरुआत--वैसे
ही सब बदल जाता है। दिल था कि फिर बदल गया। एक दिल है जब परमात्मा की याद नहीं। यह अंधेरा दिल है। यह अमावस की रात है। और परमात्मा की याद उठी, रोमांच हुआ, आंख में आंसू भर आए, गदगद भाव हुआ, "दिल था कि फिर बदल गया," फिर अमावस की रात पूर्णिमा हो गई, "जां थी कि फिर सम्हल गई," वह जो दुख से .जार-.जार हुए जाते थे, कुछ राह न सूझती थी, सब उलझा-उलझा दिखता था, सब सुलझ गया। जरा सी याद की किरण क्या आ गई! याद की किरण से भी यह हो जाता है, साक्षात से क्या होगा, उसका तो हिसाब लगाना मुश्किल है।
बज्मे-ख्याल में तेरे हुस्न की शम्मअ जल गई।
बस ध्यान में, अभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ है, "बज्मे-ख्याल में"... सिर्फ ध्यान में... "तेरे हुस्न की शम्मा जल गई"... तेरे सौंदर्य का दीया जला।
सिर्फ ख्याल में, सिर्फ विचार में।
दर्द का चांद बुझ गया, हिज्र की रात ढल गई।
उसी क्षण विरह की रात ढल गई। दर्द का चांद भी समाप्त हो गया। तुम दूसरी दुनिया में रूपांतरित हो गए। तुम एक-दूसरे लोक में प्रवेश कर गए।
जब तुझे याद कर लिया, सुबह महक-महक उठी।
एक सुबह है, जो उसने जानी है जिन्होंने परमात्मा को बिना याद किए सुबह
को गुजारा है। एक और सुबह है, जो केवल वे ही भाग्यशाली जानते हैं जो सूरज के उगने के साथ परमात्मा की याद को भी अपने भीतर उगाते हैं। जो सुबह तुमने परमात्मा को बिना जाने जानी है, वह सुबह ऐसी है जैसे अंधे आदमी ने सूरज की तरफ आंखें उठाई हैं। वह सुबह ऐसी है, जैसा बहरा आदमी शास्त्रीय संगीत सुनने चला गया हो। उपक्रम दिखाई पड़ेगा, बहरा आदमी जाएगा शास्त्रीय संगीत सुनने तो उसे भी दिखाई पड़ेगा साज है, संगीतज्ञ है, तारों को खींचता है, मरोड़ता है, कुछ हो रहा है, उसे दिखाई पड़ेगा, लेकिन संगीत देखने की चीज तो नहीं है, संगीत तो सुनने की चीज है, आंख वहां काम नहीं आती, दिखाई तो सब पड़ेगा, समझ में कुछ भी न आएगा कि हो क्या रहा है? शायद थोड़ी बेचैनी भी होगी कि लोग क्या बैठे हैं, क्या देख रहे हैं? एक आदमी तार खींचे जा रहा है, एक आदमी तबले को पीटे जा रहा है, कुछ और हो नहीं रहा है; एक आदमी मुंह में बांसुरी लगाए हुए फूंके जा रहा है, कुछ परिणाम नहीं आता दिखता, सब असंगत होगा, अर्थहीन मालूम होगा। अर्थ तो कान हो तो होगा। सुनाई पड़ जाए तो अर्थ समझ में आएगा।
जिन्होंने परमात्मा को बिना याद किए सुबह के उगते सूरज को देखा, वे बहरे आदमी की तरह हैं जिसने किसी को बांसुरी बजाते देखा। उन्हें बात समझ में नहीं आएगी। उन्हें सूरज के पीछे छिपे हुए हाथों का कोई अनुभव नहीं होगा। उन्हें सूरज के पार भी कोई महासूर्य है, जहां से सूरज में रोशनी उतरती है, जिसके बिना सूरज चुक जाता कभी का, उसका उन्हें कोई एहसास नहीं होगा। वे आदमी को देखेंगे, हड्डी-मांस-मज्जा दिखाई पड़ेगी, भीतर आत्मा का

अनुभव नहीं होगा। जिन्हें जगत में परमात्मा का अनुभव नहीं हो रहा है, उन्हें मनुष्य में आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। उन्हें चीजें तो दिखाई पड़ेंगी, लेकिन चीजों के बीच कोई जोड़ नहीं दिखाई पड़ेगा। जीवन एक दुर्घटना मालूम होगी।
सत्संग जीवन को सार्थकता देता है। देखने का नया ढंग, सुनने का नया ढंग। ऐसा ढंग जो बिखरी-बिखरी चीजों को जोड़ देता है। सबके बीच तारतम्य बिठा देता है। एक प्रसंग और संदर्भ परमात्मा का आ जाता है, सब चीजों के अर्थ बदल जाते हैं। तुमने देखा? किसी से तुम्हारा प्रेम है, और वह तुम्हें एक चार आने का रूमाल भेंट कर दे, तो ऐसे बाजार में तुम किसी को दिखाओगे तो वह कहेगा--चार आने का रूमाल है, क्या इतना सम्हाल कर चल रहे हो, कोई कोहनूर हीरा समझ लिया है? लेकिन तुम्हारे लिए कोहनूर हीरा फीका है। तुम्हारे पास एक संदर्भ है प्रेम का, जो उस दूसरे आदमी के पास नहीं है, उसे सिर्फ चार आने की चीज दिखाई पड़ रही है। तुम्हारे लिए चार आने का सवाल ही नहीं है, मूल्य की बात ही नहीं है, किसी ने प्रेम से दिया है--भेंट है--तुम्हारा प्यारा उस छोटे-से रूमाल में समाया है। उसकी सुगंध कोई और न ले सकेगा, तुम्हीं ले सकोगे।
भक्त को यह जगत पदार्थ नहीं रह जाता। चार आने की चीज नहीं रह जाता।
इसमें उसका प्यारा समाया हुआ है। यह उसके प्यारे की भेंट है। सत्संग उसी दिशा में कदम उठाना है।
बज्मे-ख्याल में तरे हुस्न की शम्मअ जल गई।
दर्द का चांद बुझ गया, हिज्र की रात ढल गई।।
जब तुझे याद कर लिया, सुबह महक-महक उठी।
जब तेरा गम जगा लिया, रात मचल-मचल गई।।
उसका मिलन तो दूर, उसका विरह भी बड़ा प्यारा है। उसके विरह में भी बड़ी मस्ती है। उसके मिलन का तो हिसाब लगाना मुश्किल है! गणित बिठाना मुश्किल है! लेकिन धन्यभागी हैं वे, जिन्हें उसकी याद भी आने लगी।
सत्संग का प्राथमिक अर्थ है, जहां चार दीवाने इकट्ठे होते हों, जहां चार दीवाने बैठ कर दीवानगी की बातें करते हों, जहां चार प्यारे बैठ कर उस प्रियतम का गुणगान गाते हों, उसकी याद जगाते हों, उसका रस बिखेरते हों--और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि उनके रस बिखेरने में उस तक भी रस पहुंच जाता है जो खाली आया था। उनकी गागर से कुछ उसमें भी छलक जाता है।
दोस्तो, उस चश्म-ओ-लब की कुछ कहो, जिसके बगैर।
गुलिस्तां की बात रंगीं है न मयखाने का नाम।।
फिर नजर में फूल महके, दिल में फिर शम्में जलीं।
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म में जाने का नाम।।
मोहतसिब की खैर, ऊंचा है उसीके फैज से।
रिंद का, साकी का, मय का, खुम का, पैमाने का नाम।।
दोस्तो, उस चश्म-ओ-लब की कुछ कहो,
सत्संग का अर्थ होता है, जो जानता हो, जिसे कुछ खबर मिली हो, वह उसे खबर
दे दे जिसे अभी खबर नहीं मिली। जो दो कदम आगे गया हो, वह उसे खबर दे दे जो दो कदम पीछे है। पुकार दे दे कि चले आना, कि बढ़े आना, कि आगे और रसधार है, कि आगे और सौंदर्य है। जिसे दिखा हो, वह उसके हृदय में देखने की प्यास जगा दे जिसे अभी दिखा नहीं। जिसने पाया हो, वह बाँटे। तो सत्संग दोहरा है। गुरु की तरफ से बांटना है, शिष्य की तरफ से पीना है।
दोस्तो, उस चश्म-ओ-लब की कुछ कहो, जिसके बगैर।
गुलिस्तां की बात रंगीं है न मयखाने का नाम।।
परमात्मा के बगैर फूल फूल नहीं रह जाते। क्योंकि फूलने वाला ही नहीं बचा। वृक्ष हरे होते हैं और हरे नहीं होते, क्योंकि हरियाली तो सब उसकी है। उसके बिना तो सब सूखा-साखा है। उसके बिना भी चांद निकलता है, लेकिन मालिक के बिना होता है, उदास-उदास होता है। उसकी मौजूदगी में, उसके अनुभव के साथ चांद एक नया ही अर्थ ले लेता है, नई भावभंगिमा ले लेता है। छोटी- छोटी बातें सार्थक हो उठती हैं। जिंदगी के छोटे-छोटे अनुभव बहुमूल्य और गहरे हो जाते हैं।

दोस्तो, उस चश्म-ओ-लब की कुछ कहो, जिसके बगैर।
गुलिस्ताँ की बात रंगीं है न मयखाने का नाम।।
उसके बिना शराब में भी नशा नहीं। नशा तो वही है, असली नशा तो वही है।
जिसने उसे पिआ, उसने ही जाना कि असली नशा क्या है। अंगूरों से ढलनेवाली शराब में वह बात नहीं। यह तो केवल धोखा है। यह तो प्रवंचना है। यह तो झूठा सिक्का है। असली सिक्के की तलाश करो। तो सत्संग तो पियक्कड़ों की जमात है। एक मधुशाला है। वहां कोई है जिसकी सुराही भर गई है, बह रही है, जो भी पीने को आतुर हैं पी सकते हैं।
महिमा तो बड़ी है सत्संग की। सत्संग की महिमा तो परमात्मा से भी बड़ी है। क्योंकि सत्संग से ही परमात्मा मिलेगा। सत्संग के बिना कोई परमात्मा को अनुभव नहीं कर पाया है। यह यात्रा सत्संग में ही पूरी हो पाती है। संन्यास सत्संग का एक रूप है--एक ही रंग में रंग जाना। बाकी तो प्रतीक हैं। एक साथ किसी यात्रा पर निकल पड़ना, एक दिशा में उन्मुख हो जाना।
सत्संग ही घट रहा है यहां। तुम जीवंत अनुभव से गुजर रहे हो। तुम्हें शाब्दिक व्याख्या की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें शब्दकोश में सत्संग का अर्थ देखने की आवश्यकता नहीं है। आंख बंद करो, अपने भीतर देखो। चुप हो जाओ और समझो। चुप हो जाओ और सुनो।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी
ले गया छीन के कौन आज मेरा सब्रो-करार
बेकरारी तुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी
उनकी आंखों ने खुदा जाने क्या किया जादू
कि तबियत मेरी मायल कभी ऐसी न थी
चश्मे कातिल मेरी दुश्मनी थी हमेशा लेकिन
जैसे अब हो गई कातिल कभी ऐसी तो न थी

तरु! तू अब पागल होने लगी। सत्संग का यही परिणाम है। जहां पागल हो जाना बुद्धिमत्ता है, ऐसा विरोधाभास है सत्संग। बात करनी मुश्किल हो जाएगी।
बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
इस बात को ख्याल में लेना। जिनके पास बात करने को कुछ नहीं है, उन्हें बात करनी मुश्किल होती ही नहीं। वे बे-बात में से बात निकाले चले जाते हैं। जिनके पास बात करने को कुछ नहीं है, वे दिन भर बात करते रहते हैं। जब बात करने को कुछ होता है, तभी बात करनी मुश्किल होती है। क्योंकि जो बात करने को मिलता है जब, तब पता चलता है कि इसे शब्दों में कहना कठिन है; इसका निवेदन न हो सकेगा, इसे रूप न दिया जा सकेगा। जब कुछ कहने को होता है तो कहना मुश्किल हो जाता है। जब तक कहने को नहीं है तब तक कह लो जो कहना है। बतिया लो। समझ लो, समझा लो। जब कुछ कहने को आएगा, तो गूंगे हो जाओगे, बोलते न बनेगा। फिर से बोलना सीखना पड़ता है। शब्दों पर नये अर्थों की कलमें बिठानी पड़ती हैं। सामान्य शब्दों को असामान्य अर्थ देने पड़ते हैं। भाषा का ऐसा उपयोग करना पड़ता है जिससे भाषाशास्त्री राजी नहीं होगा। तुम्हारा एक अनुभव है, उस अनुभव के अनुकूल तुम्हारी भाषा है। जब अनुभव बदलेगा, तब क्या करोगे? तब तुम्हें नई भाषा चाहिए। उस भाषा को कोई समझेगा नहीं। भाषा तो तुम्हें यही बोलनी पड़ेगी जो लोग बोलते हैं। फिर इस ढंग से बोलनी पड़ेगी कि लोग समझ भी लें। अड़चन आएगी।
अगर लोग बिल्कुल समझ लेंगे तुम्हारी बात, तो तुम पाओगे तुम कुछ कह नहीं पाए। अगर लोग बिल्कुल नहीं समझ पाएंगे, तो लोग कहेंगे, क्या बकवास लगा रखी है! तुम्हें कुछ बीच का रास्ता खोजना पड़ेगा। कुछ-कुछ समझ में आए, कुछ-कुछ समझ में न आए। यही सारे संतों को अनुभव करना पड़ा है। इसलिए संतों की भाषा को भाषाशास्त्री सधुक्कड़ी कहते हैं। सधुक्कड़ी का अर्थ होता है-- कुछ-कुछ यहां की, कुछ-कुछ वहां की। थोड़ी-थोड़ी यहां की, थोड़ी-थोड़ी वहां की।

एक कदम इस जमीन पर और एक कदम आकाश में। इसीलिए जो बहुत सहानुभूति से समझते हैं, वे ही समझ पाएंगे। जो सहानुभूति से समझने को राजी नहीं हैं, वे कहेंगे, बकवास है। वे कहेंगे, हमारी कुछ समझ में नहीं आता। ये रहस्य की बातें बंद करो। सीधी-साफ बात कहो। दो और दो चार होने चाहिए, ऐसी बात कहो। मगर मुश्किल है संत की, दो और दो-चार उसकी दुनिया में होते नहीं। यहां
एक और एक मिल कर दो हो जाते हैं, संत की दुनिया में एक और एक मिलकर एक ही रहता है, दो होते ही नहीं। सच तो यह है--पहले दो थे, मिलकर एक हो जाते हैं। पुराना गणित काम नहीं आता। तुम्हारे पास जितने शब्द हैं, सब द्वंद्व से भरे हैं। अगर प्रेम कहो, तो उसके पीछे घृणा खड़ी है। क्योंकि तुम्हारे प्रेम में कोई अर्थ ही नहीं होता बिना घृणा के। घृणा प्रेम की सीमा बनाती है। जैसे पड़ोसी का मकान तुम्हारे घर की सीमा बनाता है। अगर तुम्हारा कोई पड़ोसी न हो, तो तुम कहां अपनी दीवाल उठाओगे? कैसे तय करोगे कि यह मेरा मकान? मुश्किल में पड़ जाओगे। पड़ोसी चाहिए। वह सीमा बना देता है। दोनों मिल कर बीच में एक रेखा खींच लेते हैं। प्रेम का अर्थ--बड़ा बेबूझ मालूम पड़ता है--घृणा से आता है। अगर कोई तुमसे पूछे, प्रेम क्या है? तो तुम कहोगे, जो घृणा नहीं। और क्या कहोगे? और फिर घृणा क्या है? जो प्रेम नहीं। यह तो बड़ी चक्करदार बात हो गई। न प्रेम का पता मालूम होता है, न घृणा का पता मालूम होता है। रात क्या है? दिन नहीं। और दिन क्या है? रात नहीं। फिर दिन क्या है और रात क्या है? दोनों साथ-साथ खड़े हैं। तुम्हारे जीवन का अर्थ तुम्हारी मृत्यु में छिपा है। और संत एक ऐसे जीवन को जानता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं, अब वह कैसे कहे? अगर तुम्हारा शब्द उपयोग में करे--"जीवन," तो झंझट है, क्योंकि तुम्हारे शब्द में मौत अंतर्गर्भित है। तुम्हारे शब्द का मतलब ही यह होता है--जीवन, जो मौत में समाप्त होता है। मौत उसकी सीमा बनाती है। मौत उसको परिभाषा देती है। मौत में उसका अर्थ छिपा है।
संत कैसे कहे कि जो मैंने जाना है, वह जीवन है? क्योंकि वहां मौत है ही नहीं। संत कैसे कहे कि जो मैंने जाना है वह प्रेम है? क्योंकि वहां घृणा है ही नहीं। और संत कैसे कहे कि जो मैंने जाना है वह करुणा है? क्योंकि वहां क्रोध है ही नहीं। बड़ी अड़चन हो जाती है। तुम्हारे किसी भी शब्द का उपयोग करो, द्वंद्व खड़ा होता है। और संत का अनुभव निर्द्वंद्वता का है, अद्वैत का है। इसलिए वह चुप रह जाता है। या फिर उसे शब्दों का ऐसा उलटा- सीधा उपयोग करना पड़ता है, जिससे भाषाशास्त्री, दार्शनिक राजी नहीं होते। बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
होती जाएगी रोज-रोज मुश्किल तरु, अब। यह मुश्किल बढ़ने वाली है। यहां
जो मुझे ठीक-ठीक सुन रहे हैं, उनमें से अधिक गूंगे हो जाएंगे। बोल ही न पाएंगे। मुस्कराएंगे, कुछ पूछोगे तो। हंसेंगे, कुछ पूछोगे तो। मगर कह न सकेंगे। हंसेंगे तुम पर, हंसेंगे अपने पर भी। तुम्हारा प्रश्न भी व्यर्थ मालूम होगा, कोई उत्तर देना भी सार्थक नहीं मालूम होगा। यह गूँगे का गुड़ है।
बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी
महफिल तो सदा से ही ऐसी है, सिर्फ तरु तू बदल गई। और जब आदमी बदलता है
तो महफिल बदल जाती है। सब ऐसा ही है, मगर जब तुम्हारे पास देखने की नई आंख आती है, तब अचानक लगता है कि यह क्या हुआ? यह तो कुछ और का और है! ऐसा तो कभी दिखा नहीं था! ऐसी तो कभी पहचान न हुई थी! सोचो जरा, एक दिन अचानक तुम पाओ कि सारे वृक्ष जीवंत हैं। कल तक इनके पास से गुजरे थे, कभी सोचा भी न था कि इनको जयरामजी कर लें, इनका विचार भी न किया था। और एक दिन तुम्हें दिखाई पड़ा कि सब जीवंत हैं, आत्मवान हैं, तुम्हारी तरफ टकटकी लगा कर देख रहे हैं, संवेदनशील हैं, तुम जयरामजी कहो तो उत्तर देंगे--अपनी भाषा में देंगे, मगर अब तुम उस भाषा को समझ पाओगे। तुमने सुनी हैं ना संतों की बहुत सी कहानियां! वे कहानियां ही नहीं हैं, और जैसा तुमने उनको पकड़ा है वैसे वे कहानियां ही हो गई हैं।
तुमने सुना होगा, संत फ्रांसिस पक्षियों से बात करता, पौधों से बात करता, मछलियों से बात करता। इसका मतलब ठीक से समझ लेना। इसका मतलब यह नहीं

है कि वह कुछ बात करता है, जैसे तुम एक-दूसरे से बात करते हो। इसका मतलब यह है कि अब पक्षी, पौधे, वृक्ष, सब जीवंत हैं। सबके पास व्यक्तित्व है। अब उनकी संवेदना उसे दिखाई पड़ने लगी है। अब वह पहचान लेता है कि वृक्ष उदास है, कि वृक्ष प्रसन्न है, कि आज वृक्ष को उदास देख कर फ्रांसिस वृक्ष के पास आ जाता है, उस पर हाथ रखता है, जैसे कोई उदास आदमी के कंधे पर हाथ रखे, कि कहता है कि भाई, उठो, जागो, कैसी उदासी में खो गए हो! क्यों इतने उदास बने हो? सुबह ज्यादा दूर नहीं है, रात सदा न रहेगी, इतने हताश न हो जाओ। सत्संग हो गया। वृक्ष से सत्संग हो गया। कभी पक्षियों से बात कर रहा है फ्रांसिस। ऐसा नहीं है कि पक्षी और फ्रांसिस एक ही भाषा बोलते हैं, अलग-अलग भाषा बोलते हैं, लेकिन फ्रांसिस अब जानता है कि व्यक्तित्व है।
तुमने कभी देखा, तुम अगर किसी ऐसे देश में चले जाओ जहां की तुम भाषा नहीं समझते और तुम्हें प्यास लग आए तो भी तुम कुछ मुद्रा तो प्रकट कर ही सकते हो। हाथ की चुल्लू बना लोगे, मुंह के पास ले जाओगे, कहोगे कि प्यास लगी है। और दूसरा आदमी समझ लेगा। बिना भाषा के समझ लेगा। आखिर गूंगे भी तो अपना काम चला लेते हैं। बिना बोले बोल लेते हैं। ऐसा ही अर्थ है संतों की इन कहानियों का।
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी
ऐसी ही थी तरु, सदा से ऐसी थी, सदा से ऐसी ही है। यह सभा ऐसे ही जमी है।
यह संसार ऐसी ही रंगरेलियों में डूबा है, ऐसी ही मस्ती में डूबा है। यहां होली-दीवाली चल ही रही है--रोज, रोज होली, रोज दीवाली। हमारे पास आंखें नहीं हैं, तो हम देख नहीं पाते कितने दीये जल रहे हैं, कितनी ज्योतियां जल रही हैं। हम देख नहीं पाते कितनी पिचकारियां चल रही हैं। कितनी गुलाल उड़ाई जा रही है। कितनी मस्ती है, कितना रास चल रहा है, हम नहीं देख पाते। ऐसा ही समझो कि कृष्ण नाचते हैं, राधा नाचती है, गोपियां नाचती हैं, गोप नाचते हैं और कोई एक आदमी वहीं वृक्ष के नीचे सोया है। रास चल रहा है, उसी के पास चल रहा है, रास की मदमाती तरंगें उस पर भी पड़ रही हैं, मगर वह गहरी नींद में सोया है। न बांसुरी सुनाई पड़ती, न कृष्ण के नूपुर सुनाई पड़ते, न राधा का गीत सुनाई पड़ता, न गोपियों का नृत्य सुनाई पड़ता; न कुछ सुनाई पड़ता, न कुछ दिखाई पड़ता, वह आदमी गहरी निद्रा में सोया है। यह जग जाए तो यह जग कर कहेगा--
बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
जैसे अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी
यह क्या हो रहा है? यह मुझे कुछ पता ही नहीं था कि ऐसा भी होता है! अगर अचानक एक रात तुम आंख खोलो और अपने कमरे में देखो कृष्ण को नाचता हुआ, तो तुम चौंकोगे। मगर नाच चल रहा है, मैं तुमसे कहता हूं। कृष्ण घर-घर में नाच रहे हैं। द्वार-द्वार पर नाच रहे हैं। अनंत-अनंत रूपों में नाच रहे हैं। मगर तुमने एक शकल बना रखी है, तुम कहते हो जब वह मोरमुकुट बांधे, इस रंग के, इस ढंग के खड़े होंगे, इस मुद्रा में, तब हम पहचानेंगे। जरा वृक्षों को गौर से देखो, मोरमुकुट बांधा हुआ है। जरा चांद-तारों को गौर से देखो, बांसुरी बज रही है।.जरा पक्षियों को गौर से सुनो, यही घूंघर है, यही उनकी पायल। गौर से देखो। तुमने बहुत छोटी प्रतिमा बना ली है, प्रतिमा बहुत बड़ी है। प्रतिमा इतनी बड़ी है कि तुम पूरी प्रतिमा को एकसाथ न देख पाओगे, अंग-अंग को ही देख पाओगे। ऐसी प्रतिमाएं हैं, विशाल प्रतिमाएं। वे इसी कारण बनाई गई हैं।
बड़वानी में एक जैन प्रतिमा है, बावन गज ऊंची। बावन गज! बड़ी प्रतिमा है। छह फीट की तो छिंगली है पैर की--एक आदमी की लंबाई के बराबर। तुम जब नीचे से देखोगे तो पैर ही पैर दिखाई पड़ते हैं; सिर उठाते-उठाते जब तुम सिर तक पहुंचोगे, टोपी गिर जाएगी। सीढ़ी चढ़ कर जाना पड़ता है, ऊपर चेहरे को देखने, आंख को देखने। आंख भी उतनी बड़ी है! यह किन लोगों ने इतनी बड़ी प्रतिमा बनाई थी? किसलिए बनाई थी? यह प्रतीक है।
यह प्रतीक है कि परमात्मा को छोटी-छोटी प्रतिमाओं में मत खोज करना, उसकी प्रतिमा बड़ी है। उसकी प्रतिमा इतनी बड़ी है कि सारा ब्रह्मांड उसकी प्रतिमा है। इसमें सीढ़ियां और सीढ़ियां चढ़ते रहोगे, चढ़ते रहोगे--इकट्ठा तो

तुम इसे कभी न देख पाओगे; कभी छिंगली दिख गई तो बहुत, कभी पैर हाथ में आ गए तो बहुत धन्यभागी हो तुम। कभी एक आंख दिख गई तो बहुत है, क्योंकि वह एक आंख भी एक महासागर होगी। वह पैर भी हिमालय होंगे। यह पूरा ब्रह्मांड रास है। यहां नृत्य चल ही रहा है। यह महफिल जमी ही है। यह उखड़ती ही नहीं। यह शाश्वत है।
ले गया छीन के कौन आज तेरा सब्रो-करार
बेकरारी तुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी
इसकी जरा झलक पड़ेगी तो अड़चन तो आएगी, बेचैनी तो आएगी, सब्र और करार तो जाएगा। फिर कैसा चैन? जहां इतना मधुमय आनंद बरस रहा हो, वहां तुम इससे वंचित बैठे हो--फिर कैसे शांत बैठे रहोगे? एक ज्वाला धधकेगी, विरह का तूफान उठेगा। वही तूफान उठ रहा है। वही तूफान उठे, यह मेरा प्रयास चल रहा है। मैं तुम्हें शांति नहीं देना चाहता, मैं तुम्हें ऐसी अशांति देना चाहता हूं कि परमात्मा को पाए बिना तुम्हें शांति मिले ही नहीं। मैं तुम्हें चैन नहीं देना चाहता--अगर तुम चैन की तलाश में आए हो तो तुम गलत जगह आ गए--मैं तुम्हें बेचैन करना चाहता हूं। ऐसा बेचैन कि तुम्हारी नींद टूट जाए, तुम्हारी सब व्यवस्था उखड़ जाए; ऐसा बेचैन कि जब तक तुम परमात्मा को ही अनुभव न कर लो, दुबारा फिर विश्राम न कर सको, विराम न कर सको। एक दिव्य अतृप्ति तुममें जगाने की आयोजना चल रही है। यही है सत्संग।
उनकी आंखों ने खुदा जाने क्या किया जादू
कि तबियत मेरी मायल कभी ऐसी तो न थी
तुम्हारी आंख खुले, तो तुम चकित पाओगे कि परमात्मा की आंख तुम्हारी तरफ सदा से टकटकी लगाए देख ही रही थी। वह साक्षी है, वह परम साक्षी है, उसकी आंख तुम्हारा पीछा कर रही है। तुम कहीं भी हो, वह तुम्हें देख रहा है। एक क्षण को भी तुम उसकी आंख से ओझल नहीं हो। तुम चाहे उसकी तरफ पीठ करो, चाहे मुंह करो, चाहे उन्मुख, चाहे विमुख, मगर उसकी आंख सदा तुम्हारी तरफ है। इसलिए शास्त्र कहते हैं--उसके हजार हाथ हैं, उसकी हजार आंखें हैं।
क्यों?
जिन्हें इन प्रतीकों की सहानुभूतिपूर्ण परीक्षा में उतरने की आकांक्षा नहीं है, वे कपोल-कल्पना कह कर टाल देते हैं। हजार हाथ? हजार हाथ सिर्फ प्रतीक है। हजार का मतलब होता है--अनंत। वह तो प्रतीक है, अब इससे ज्यादा बनाना मुश्किल हो जाएगा पत्थर में, हजार ही मुश्किल से बनते हैं, वह तो प्रतीक है, मगर बात इतनी है कि उसके इतने हाथ हैं जितने यहां लोग हैं। ताकि हर आदमी को उसका हाथ मिल सके। तुम्हारे लिए भी उसका एक विशेष हाथ है, जो तुम्हें तलाश रहा है, जो तुम्हारे पीछे चल रहा है। तुम जिस दिन चाहोगे, उसी दिन हाथ उसका हाथ में आ जाएगा। तुम्हारे लिए भी उसकी एक आंख है, जो सिर्फ तुम्हारे लिए है और किसी के लिए नहीं। तुम अद्वितीय हो, तुम महिमावान हो, तुम्हारे लिए एक विशिष्ट आंख है, जो तुम्हारा ही पीछा कर रही है, जो तुम्हारा ही साक्षी बनी है, जो तुम्हें देखती जा रही है--तुम्हारे अच्छे कर्म, तुम्हारे बुरे कर्म, तुम्हारा विचार, तुम्हारा निर्विचार, सब देखा जा रहा है। जिस दिन तुम शांत होकर, निर्विचार होकर, मौन होकर ध्यान की आंख खोलोगे, उसी दिन तुम पाओगो--अरे, यह आंख मेरा पीछा कबसे कर रही है? और फिर तुम्हारी जिंदगी में एक जादू छाएगा, जो इसके पहले कभी भी नहीं था। तुम्हारी आंख में भी थोड़ी उसकी आँख का रंग आ जाएगा। तुम्हारी आंख में उसकी आंख झलक गई, तुम्हारी आंख की गहराई बढ़ जाएगी। तुम्हारी आंख आकाश जैसी हो जाएगी।
उनकी आंखों ने खुदा जाने किया क्या जादू
कि तबियत मेरी मायल कभी ऐसी तो न थी
चश्मे-कातिल मेरी दुश्मन थी हमेशा लेकिन
जैसी अब हो गई कातिल कभी ऐसी तो न थी
परमात्मा को जानने की यात्रा में वह घड़ी आती है--मिटने की घड़ी--जब उसकी तलवार गिरती है और वह कातिल की तरह तुम्हें काट कर दो टुकड़े कर देता है। जब तुम टूटते हो, तभी तुम उससे मिल पाते हो। तुम्हारा होना बाधा है।
तेरा जमाल निगाहों में ले के उट्ठा हूं,

निखर गई है फजा तेरे पैहरन की सी।
नसीम तेरे शबिस्तां से होके आई है,
मेरी सहर में महक है तेरे बदन की सी।।
.जरा अनुभव होने लगे, फिर सुबह की हवा में उसके बदन की महक होगी; झरते
फूलों में उसकी मुस्कुराहट, रात के तारों में उसकी ही मस्ती का राग।
देर लगी आने में तुमको, शुक्र है फिर भी आए तो।
आस ने दिल का साथ न छोड़ा वैसे हम घबड़ाए तो।।
शफक, धनक, महताब, घटाएं, तारे, नग्मे, बिजली, फूल।
उस दामन में क्या-क्या कुछ है वो दामन हाथ में आए तो।।
चाहत के बदले में हम तो बेच दें अपनी म.र्जी तक।
कोई मिले तो दिल का गाहक कोई हमें अपनाए तो।।
सुनी सुनाई बात नहीं ये, अपने ऊपर बीती है।
फूल निकलते हैं, शोलों से, चाहत आग लगाए तो।।
उसको पाने की अभीप्सा की आग जगे कि उस आग में ही फूल खिलते हैं।
सुनी सुनाई बात नहीं ये अपने ऊपर बीती है।
फूल निकलते हैं शोलों से चाहत आग लगाए तो।।
बस, चाहने के लिए दीवानापन चाहिए। छोटी-मोटी चाहत से काम न चलेगा, पूरी-पूरी चाहत चाहिए। समग्रीभूत। सारी आकांक्षाएं एक ही आकांक्षा में बच जाएं, नियोजित हो जाएं; सारी आकांक्षाओं की सरिताएं, एक ही आकांक्षा का सागर बन जाएं कि परमात्मा को पाना है, कि पाना ही है। देर तो लगेगी--
देर लगी आने में तुमको, शुक्र है फिर भी आए तो।
देर तो लगेगी, क्योंकि सारी जीवन-सरिता को, सारे जीवन की सरिताओं को समग्रीभूत करना, सब को एक धारा में ले आना--अभी तो हम हजार धाराओं में बह रहे हैं। पश्चिम भी जा रहे हैं, पूरब भी जा रहे हैं, दक्षिण भी जा रहे हैं, उत्तर भी जा रहे हैं; ऊपर, नीचे, सब तरफ जा रहे हैं; अभी तो हम खंड-खंड हैं, एक पैर इस तरफ जा रहा है, एक पैर दूसरी तरफ जा रहा है; इसलिए तो हम कहीं नहीं पहुंच पाते हैं, जहां के तहां गिर जाते हैं और मर जाते हैं। फिर उठते हैं, फिर जन्मते हैं, फिर वहीं खड़े-खड़े मर जाते हैं।
.जरा सोचो, एक बैलगाड़ी जिसमें चारों तरफ बैल जोत दिए हैं, सब बैल अपनी- अपनी दिशा में खींच रहे हैं, बैलगाड़ी कहीं भी न जाएगी, अस्थि-पंजर ढीला हो जाएगा बैलगाड़ी का, यात्रा हो ही नहीं सकती। यात्रा तो तभी होती है जब बैल एक दिशा में जाते हों। और कभी तुम ऐसी बैलगाड़ी में बैठे हो जिसमें दो बैल हों लेकिन आपस में जिनमें विरोध हो। एक चले तो दूसरा न चले। दूसरा चले तो पहला रुक जाए। जिनमें दुश्मनी हो। तो भी बड़ा मुश्किल हो जाती है। ऐसी ही तुम्हारी हालत है, एक मन करना चाहता है एक काम, मन का ही दूसरा हिस्सा नहीं करना चाहता। एक हाथ से मकान बनाते हो, एक हाथ से गिरा देते हो। पहुँचोगे कहां? और परमात्मा को पाने के लिए समग्रीभूत हो जाना जरुरी है। योग का यही अर्थ है, जुड़ जाना, इकट्ठे हो जाना।
देर लगी आने में तुमको, शुक्र है फिर भी आए तो।
आस ने दिल का साथ न छोड़ा वैसे हम घबड़ाए तो।।
बड़ी घबड़ाहटें भी आएंगी। बीच-बीच में बहुत ऐसे स्थान भी आ जाएंगे जहां लगेगा, मैं भी किस पागलपन में पड़ गया? मैं भी किस रास्ते पर चल पड़ा? पता नहीं कुछ मिलने को है भी या नहीं? क्योंकि धीरे-धीरे अकेले हो जाओगे--वहां कुछ मिलने को है भी या नहीं? क्योंकि धीरे-धीरे अकेले हो जाओगे--वहां कुछ भीड़ तो जाती नहीं, वहां कोई लाखों-करोड़ों लोग तो जाते नहीं, विरले लोग जाते हैं। जल्दी ही तुम पाओगे कि दस-पांच जो साथ चले थे, वे भी धीरे-धीरे छूट गए। अकेले रह गए।
तिब्बत की एक प्राचीन कथा है। एक गुरु ने अपने शिष्य को दूर पहाड़ों में एक आश्रम खोलने भेजा। जब आश्रम बन गया, उस शिष्य ने खबर भेजी कि मुझे एक सहायक की जरूरत है। खबर आई, महीनों लगे खबर आने में क्योंकि पहाड़ बड़ा दूर था और पैदल ही यात्रा होती थी। जब खबर पहुंची तो गुरु ने कहाः ठीक। उसने अपने सारे शिष्य इकट्ठे किए और सौ शिष्य चुने। जो संदेशवाहक संदेश लेकर आया था, वह हैरान हुआ क्योंकि संदेश तो सिर्फ इतना था कि एक साथी और

भेज दें। सौ भेज रहा है यह गुरु! उसने पूछा कि आप क्या कर रहे हैं, आपने पत्र ठीक से पढ़ा? एक मांगा है। गुरु ने कहाः सौ चलेंगे, तब एक पहुंचेगा। अगर एक को पहुंचाना हो तो सौ चुनने पड़ते हैं। बात उसे बिल्कुल जंची नहीं, हद्द हो गई, जरूरत से ज्यादा हो गई! अगर इतना भी कहता कि दो चुन लेते हैं कि चलो एक तो कम से कम पहुंच जाए--कोई बीमार पड़ जाएगा, रास्ते में कोई शेर, सिंह खा जाएगा, कुछ झंझट हो जाए, न पहुंच पाए। सौ? यह जरा अतिशयोक्ति हो गई। लेकिन जब गुरु कह रहा है तो संदेशवाहक कुछ बोल नहीं सका। सौ आदमियों को लेकर चला।
और जल्दी ही गुरु की बात प्रमाणित होने लगी। पहले ही गांव में सम्राट
मर गया था--जहां वे रुके पहली रात--उसके बेटे का सिंहासन-आरोहण होने को था। नब्बे भिक्षुओं की जरूरत थी आशीर्वाद देने के लिए। परंपरागत उनका नियम था। नब्बे भिक्षु खोजना बहुत मुश्किल था। मगर उस दिन धर्मशाला में जब पहुंचे तो देखा सौ भिक्षु रुके हैं। सम्राट ने खबर भेजी कि नब्बे भिक्षु तो रुक जाएं; जो भी तुम पुरस्कार मांगोगे, दूंगा। बड़ी मुश्किल पड़ी। कई डांवाडोल हो गए। पुरस्कार इतना बड़ा था--जो भी मांगोगे! तो उन्होंने सोचा, अब जाने में सार क्या? और फिर उन्होंने कहाः संदेश एक के लिए आया था, यह तो अतिशयोक्ति है सौ को भेजना, यह फिजूल, बेमानी बात है, इसमें कुछ अर्थ नहीं है, यह गुरु झक्की है। उन्होंने हजार बहाने खोज लिए; और उन्होंने कहा कि फिर पुरस्कार लेकर हम पहुंच जाएंगे, महीने-पंद्रह दिन की देर सही! देर से क्या बना-बिगड़ा जा रहा है? और फिर दस तो जा रहे हैं! नब्बे तो वहां रुक गए। दूसरे गांव में पड़ाव पड़ा। उस गांव का पुजारी मर गया था। और बहुत दिन
से वे तलाश में थे कि कोई योग्य व्यक्ति मिल जाए; दस भिक्षु! गांव के लोगों ने प्रार्थना की कि पुजारी की जरूरत है। नौकरी भी अच्छी थी, रहने की सुविधा भी अच्छी थी, एक वहां रुक गया।
और ऐसे ही यात्रा चलती रही, आदमी खोते गए। आश्रम के पहुँचने के पहले आखिरी पड़ाव पर दो ही आदमी बचे। संदेशवाहक अब आश्वस्त होने लगा कि गुरु झक्की नहीं है। दो ही बचे जितना उसने सोचा था कि दो ही भेजना काफी है। मगर उस रात उनमें से एक कट गया। गांव में एक नास्तिक था, उसने आकर दोनों को चुनौती दे दी कि मैं यह कुछ नहीं मानता। यह बुद्ध-धर्म, यह बुद्ध, यह सब बकवास है। मैं चुनौती देता हूं तुम्हें शास्त्रार्थ की। एक ने तो दूसरे से कहा कि इस झंझट में मत पड़ो, हमें पहुंचना है अपने गुरु तक, यह शास्त्रार्थ कितने दिन चलेगा, क्या पता? अट्ठानबे साथी तो छूट ही गए हैं, अब और तुम न छूट जाना मगर एक तो बोला कि चाहे अब कुछ भी हो जाए! बुद्ध को कोई लांछना लगाए, यह मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। यह जीवन-मरण का सवाल है। अगर यह पूरी जिंदगी भी लग गई इसी शास्त्रार्थ में तो भी कोई हर्ज नहीं है! तुम जा सकते हो। मैं तो इसको हरा कर ही आऊंगा। वह वहीं रुक गया। उसके साथी ने बहुत समझाया कि गुरु ने सौ भेजे हैं, कम से कम दो तो पहुंच जाओ। मगर उसने कहा अब कोई उपाय नहीं है, मैं चुनौती अंगीकार कर लिया हूं, यह हमारे धर्म पर हमला है, यह हमारी आत्मा पर चोट है, मैं नपुंसक नहीं हूं--वह बड़ी-बड़ी बातें करने लगा! उसने कहा कि मैं तो यहीं रुकूंगा। वह रुक ही गया।
जब संदेशवाहक पहुंचा, तो एक ही व्यक्ति पहुंचा था। लेकिन उस आश्रम को बनाने वाले गुरु ने कहा--तो एक साथी आ गया। यह तो बताओ गुरु ने भेजे कितने थे? संदेशवाहक ने कहाः क्या आपको भी यह ख्याल था कि गुरु ज्यादा भेजेगा? उसने कहा कि निश्चित। क्योंकि सौ चलते हैं तब कहीं एक पहुंचता है। मैंने एक मांगा था, क्योंकि अगर मैं सौ मांगता तो वह हजार भेजता। इसलिए मैंने एक मांगा था कि सौ तो वह भेजने ही वाला है।
ऐसी ही यात्रा है। दुर्गम है। पहाड़ों की है। यहां अगर सौ साथी चलेंगे, तुम पाओगे एकाध बच जाए तो बहुत।
जार्ज गुरजिएफ के जीवन में उल्लेख है कि तीस मित्रों ने--जो बड़े खोजी
थे सत्य के--यह तय किया कि हम सारी दुनिया की यात्रा करेंगे, अलग-अलग धर्मों में प्रवेश करेंगे--कोई तिब्बत जाएगा, कोई भारत, कोई ईरान, कोई मिस्र, कोई चीन, कोई जापान--और हम सारे धर्मों का सार लेकर फिर इकट्ठे होंगे बारह वर्ष बाद। और जो-जो एक आदमी सीख कर आएगा, वह हम तीसों मिल कर

संगृहीत करेंगे। और उस संग्रह में से हम समन्वय निकालेंगे। हम सारे धर्मों का निचोड़ खोजना चाहते हैं।
तीस निकल तो गए, लेकिन कोई लौटा नहीं। जब गुर्जिएफ लौटा बारह साल के बाद तो अकेला ही पहुंचा। वहां कोई आया ही नहीं। वे संगी-साथियों का कुछ पता ही नहीं चला कि वे कहां गए। कोई किसी के प्रेम में पड़ गया, खबर आई कि उसने तो विवाह कर लिया, उसके तो अब चार-पांच बच्चे भी हैं। कहां का सत्य? किसी ने दुकान कर ली, कमाई भी कर ली। कोई अच्छी नौकरी में लग गया है। कोई कुछ हो गया, कोई कुछ हो गया। तीस साथियों में से एक भी वापिस नहीं आया। बारह साल लंबा मौका है।
यहां रोज ऐसा मौका होता है। कोई व्यक्ति मुझे वचन देकर जाता है कि मैं नार्वे जा रहा हूं, कि स्वीडन जा रहा हूं, बस पंद्रह दिन में आता हूं। तीन साल बाद लौटता है। तेरे पंद्रह दिन का क्या हुआ? आपसे क्या कहना, हवाई जहाज पर एक स्त्री मिल गई, उसके मैं प्रेम में पड़ गया। बड़ी झंझट हो गई, तीन साल लगे निकलने में।
किसी झंझट में उतरना तो आसान है, झंझट से निकलना उतना आसान नहीं है। कठिन मामला है। उलझाव से उलझाव आते हैं।
कोई जाता है, लौटता ही नहीं। पता ही नहीं चलता कहां गया? फिर किसी से खबर आती है कि वह तो जेल में है। क्या हो गया? आदमी आया था, भला था, ध्यान करने आया था, संन्यस्त हुआ था, जेल में कैसे पहुंच गया? कि उसने कुछ जालसाजी करके पैसा कमाने की कोशिश की थी। अब वह तीन साल के लिए जेल में है। उसके बाद आएगा। आदमी करीब-करीब दुर्घटनाओं से जीता है। इसलिए बड़ा कठिन है अपने को समग्रीभूत रूप से एक दिशा में नियोजित कर देना। इसलिए देर लग जाती है।
देर लगी आने में तुमको, शुक्र है फिर भी आए तो।
आस ने दिल का साथ न छोड़ा वैसे हम घबड़ाए तो।।
कई बार ऐसा लगने लगेगा--अब रुक जाएं। अब और आगे कहां जाना है? अब कोई संगी-साथी भी नहीं बचा। कई बार निराशा पकड़ेगी, कई बार विषाद आएगा, असफलता ऐसी लगेगी कि सफल होना संभव नहीं है, लेकिन अगर लगे ही रहे--जैसे तरु लगी ही रही है--आस ने दिल का साथ न छोड़ा वैसे हम घबराए तो, घबराई भी खूब है, मगर लगी रही है, लगी रही है, लगी रही तो घड़ी आने के करीब है।
बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी
शफक, धनक, महताब, घटाएं, तारे, नग्मे, बिजली, फूल।
उस दामन में क्या-क्या कुछ है वो दामन हाथ में आए तो।।
परमात्मा के दामन में सब है। उसका दामन हाथ में आ जाए तो सारा संसार हाथ में आ गया। और जो यहां दूसरी चीजों को तलाशने चल पड़े हैं, उनके हाथ में कुछ भी न आएगा। एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय। तुम उसके दामन को पकड़ लो, तुम उसको पकड़ लो, शेष सब अपने आप आ जाता है।

चाहत के बदले में हम तो बेच दें अपनी मर्जी तक।
बस, इतनी तैयारी चाहिए। अपनी मर्जी। जीसस का अंतिम वचन था सूली पर कि प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो। उसी क्षण रूपांतरण हुआ। जीसस जीसस न रहे, क्राइस्ट हो गए। उसी क्षण बुद्धत्व फलित हुआ। उसके एक क्षण पहले उन्होंने कहा था--यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? यह तू क्या कर रहा है मेरे साथ? क्या तूने मुझे त्याग दिया? उसमें शिकायत थी। उसमें यह बात थी कि मेरी मर्जी के अनुकूल नहीं हो रहा है। यह जो हो रहा है, यह मेरे हिसाब से जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। यह तो कुछ गलत हुआ जा रहा है, क्या तूने मेरा साथ छोड़ दिया? क्या तूने मुझे त्याग दिया? लेकिन तभी उन्हें होश आ गया कि यह मैं क्या कर रहा हूं? यह तो मेरी मर्जी आ गई। कभी-कभी एक छोटा सा वचन। ये चार छोटे से शब्द--"तेरी मर्जी पूरी हो," जीसस के जीवन को बदल गए; समाधि लग गई, समाधान हो गया।
चाहत के बदले में हम तो बेच दें अपनी मर्जी तक।
कोई मिले तो दिल का गाहक कोई हमें अपनाए तो।।

सुनी सुनाई बात नहीं यह अपने ऊपर बीती है।
फूल निकलते हैं शोलों से चाहत आग लगाए तो।।
चाहत की आग जहां लग जाए, वहीं सतसंग है। मैं आग लिए बैठा हूं। तुम.जरा पास आओ, तुम डरो मत, तुम पास आते चले जाओ, यह भभक, यह लपट तुम्हें पकड़ लेगी।
आग के रंग के कारण ही यह गैरिक रंग संन्यास का रंग रहा है। यह लपटों का रंग है। यह क्रांति का रंग है। तुम्हें पता नहीं तुम कौन हो। जलो तो पता चले। क्योंकि जलने में वही जल जाएगा जो तुम नहीं हो। और वह शेष रह जाएगा जो तुम हो। कचरा जल जाएगा, हीरा बच जाएगा। सोना कुंदन होकर निकल आएगा।
इक इक अंग उजाला नाचे किरनें चूमें गात
हम सूरजबंसी होते तो करते तुझसे बात
मैं तुमसे कहता हूं, तुम सूरजबंसी हो। सूरज से बातें करो, किरणों से दोस्ती बनाओ, रोशनी से विवाह करो, प्रकाश से विवाह रचाओ। भांवर ही डालनी हो तो परमात्मा से ही डालनी। उससे कम क्या भांवर डालनी। उससे कम पर तो तलाक पर तलाक होने वाले हैं। विवाह तो बस उसी से होता है।
हिम्मत चाहिए, जोखम उठाने का साहस चाहिए--दुस्साहस कहना चाहिए--और तब
यह घड़ी आती है, जब कुछ कहने को होता है और कहने को शब्द नहीं मिलते। जब भीतर गीत उठता है और जबान लड़खड़ाती है। जब भीतर नाच उठता है और पैर यहां के वहां पड़ते हैं। कहीं धरो, कहीं पड़ते हैं।
शुभ घड़ी है। ऐसी घड़ी सभी को खोजनी है। मेरे पास यह हो सके, तो ही तुम मेरे पास थे। अन्यथा तुम आते रहे, जाते रहे, मगर पास नहीं थे।

तीसरा प्रश्नः भगवान, कब तक उलझना होगा मुझे इन कीचड़ों में? मुक्ति के द्वार तक ले जाने में मुझे आप सहाय नहीं करेंगे क्या? मेरा होश जगाओ, लो अब मैं तैयार हूं मिट जाने को। लो अब मैं सूखा पत्ता बन गई, जिधर जी चाहे उड़ा कर ले चलो मुझे। लो मैं पोंगरी बन गई, तुम्हीं उसमें से सुर निकालो। मेरी जीवन-नैया के पतवार तुम हो! अगर तुमसे आस न करूं तो किससे करूं? तुम कुछ न करो, बस मुझे दीवानी बना दो। अब इसके सिवा तुमसे कोई आशा नहीं।
मर कर भी दिखाएंगे तिरे चाहने वाले
तिरे प्यार में मरना कोई जिनसे बड़ा काम नहीं

मीरा! कीचड़ कहोगी संसार को तो निकल न पाओगी। कीचड़ में निंदा छिपी है। निंदा के कारण तुम कीचड़ से जो कमल निकलते हैं उनसे वंचित रह जाओगी। कीचड़ कीचड़ ही होती, तो मामला बड़ा सीधा-साफ था, इतनी उलझन न होती। कीचड़ में कमल छिपे हैं। तो बड़ी उलझन है। जो कीचड़ से भागा, वह कमल से वंचित रह जाएगा। और कमल को ही पाने चला था, कमल को पाने के लिए कीचड़ छोड़ी थी! तो दुविधा में हो जाता है, बड़ी अड़चन में हो जाता है, बड़े द्वंद्व में पड़ जाता है।
तुम कहती हो--कब तक उलझना होगा मुझे इन कीचड़ों में? जब तक तुम कीचड़ समझोगी तब तक उलझना होगा। मेरी सारी चेष्टा यहां यही है कि संसार को कीचड़ मत समझो, संसार में परमात्मा व्याप्त है; कीचड़ भी कीचड़ नहीं है, कीचड़ में भी वही छिपा है। जिस दिन तुम्हें यह प्रतीति गहन होने लगेगी, उस दिन कहां छूटना, कहां जाना है, कहां भागना है! मुक्ति तुम्हें खोजती आए, तो मजा है! तुम मुक्ति को खोजने कहां जाओगे? हिमालय में कुछ कीचड़ कम है? किसी आश्रम में जाकर बैठ जाओगे वहां कुछ कीचड़ कम है? कीचड़ से ही बना है सब कुछ, यह देह भी कीचड़ से बनी है। भागो, कहां भागोगे? इसी कीचड़ के सहारे भागोगे न! यही पैर तुम्हें ले जाएंगे दूर-दूर तीर्थयात्राओं पर और यही कीचड़ से भरा हुआ सिर झुकेगा मंदिरों में, मस्जिदों में। जाओगे कहां, मंदिर-मस्जिद भी कीचड़ से बने हैं।
कीचड़ सिर्फ कीचड़ नहीं है, तुम्हारे देखने में अभी भ्रांति है। अभी तुमने ऊपर-ऊपर से देखा। जरा कीचड़ के भीतर गौर से झांको, छिपे हुए कमल हैं, पर्त दर पर्त कमल ही कमल हैं।.जरा कीचड़ को अपना सुर गाने दो। कीचड़ को जरा अपने कमल निकालने में सहायता दो।
मैं तुम्हें कहीं और नहीं ले जाना चाहता, यहीं, जहां तुम हो, वहीं जगाना चाहता हूं। मैं संसार-विरोधी नहीं हूं। लेकिन मैं तुम्हारी अड़चन

समझता हूं, धर्म ने तुम्हें सदा से संसार-विरोधी बातें सिखाई हैं। तो जब तुम मेरे पास आते हो, वे ही धार्मिक बातें तुम्हारे सिर में घूमती रहती हैं।
पूछा हैः "कब तक उलझना होगा मुझे इन कीचड़ों में?"
और यही मैं समझा रहा हूं रोज सुबह-सांझ कि कीचड़ नहीं है यहां, कमल छिपे हैं। कमल में कोई उलझना होता है? कमल का रस लो। प्रभु ने जो भी दिया है, उसे प्रसाद की तरह स्वीकार करो, कीचड़ मत कहो, यह प्रभु का अपमान है, क्योंकि उसका दान है, उसकी भेंट है, तुम्हें। जीवन उसकी भेंट है। इतने बहुमूल्य जीवन को तुम कीचड़ कह रहे हो।
तुम्हारे महात्माओं ने तुम्हें विषाक्त कर दिया है। तुम्हारे तथाकथित साधु-संतों ने तुम्हारे मन को बुरे जहर से भर दिया है, निंदा से भर दिया है। हर चीज की निंदा कर दी है। तुम्हारे जीवन को विस्तार नहीं दिया है, सिकोड़ दिया है। तुम्हें सड़ा दिया है। और तुम्हारे देखने का ढंग ऐसा गलत हो गया है, ऐसा निषेधात्मक हो गया है, कि हर चीज में तुम्हें बुराई दिखाई पड़ने लगी है, तुम बस कांटे गिनते हो, फूल देखते ही नहीं। तुम रातें गिनते हो, दिन देखते ही नहीं।
मैंने सुना है एक झेन कहानी--
एक झेन फकीर, किसी भूल-चूक में पकड़ लिया गया और जेल में डाल दिया गया।
एक राजनेता भी जेल में बंद था। दोनों साथ-साथ ही जेल में पहुंचे। पूर्णिमा की रात थी, चांद निकला, दोनों सींखचों के पास खड़े हैं। राजनेता बोलाः हद की गंदगी है यहां! क्योंकि सामने एक डबरा है और डबरे में कूड़ा-करकट है। स्वभावतः राजनेता नाराज था। राजनेता जीता ही नाराजी से है। जब उसके पास पद होता है, तब दूसरे उस पर नाराज होते हैं जो पद चाहते हैं; और जब उसका पद छिन जाता है तब वह नाराज होता है उन पर, जिनके पास पद है। वह एकदम नाराज था कि यह शासन गलत, यह व्यवस्था गलत, यह सरकार गलत; यह क्या मामला है, इतनी गंदगी मचा रखी है, यहां डबरा भरा हुआ है, इसकी सफाई भी नहीं है। डबरे में पड़े टीन के कनस्तर उसे दिखाई पड़े हैं।
और उस फकीर ने कहाः मेरे भाई, डबरा बहुत छोटा है, आकाश बहुत बड़ा है, आकाश की तरफ क्यों नहीं देखते? और चांद निकला है, पूरा चांद, और रात बड़ी प्यारी है! और तुम्हें डबरे में कनस्तर दिखाई पड़ रहा है टूटा-फूटा और वहां चांद का प्रतिबिंब बन रहा है वह नहीं दिखाई पड़ रहा है! कनस्तर से अपनी किस्मत क्यों बांधे हो? फकीर ने कहाः तुम मुझे याद न दिलाते तो मुझे डबरे का पता ही न चलता, मैं चांद से मोहित हो गया था। चांद को देखते, आकाश को देखते मुझे यह भी याद न रही थी कि सामने सींखचे हैं और मैं सींखचे पकड़े खड़ा हूं और मेरे हाथ में जंजीरें हैं। पूरे चांद को देखते समय किसको जंजीरें याद रह जाती हैं? और जिसको जंजीरें याद हों, वह पूरा चांद कैसे देख सकेगा? ये देखने के ढंग हैं। दोनों एक जगह खड़े हैं, दोनों के सामने डबरा है और दोनों के सामने चांद भी है।
कीचड़? मीरा कीचड़ मत कहो। कीचड़ कहोगी तो कीचड़ हो गई। तुम अपनी जिंदगी
और अपनी दुनिया खुद बनाती हो। जरा गौर से देखो, कीचड़ में चांद का प्रतिबिंब बन रहा है। जरा गौर से देखो, कीचड़ में कमल फूलने के करीब है। जरा और गौर से देखो, और कीचड़ में तुम्हें परमात्मा मिलेगा। यहां सब कुछ उसी से व्याप्त है। इस अनुभव को मुक्ति कहता हूं। जिस दिन तुम्हें हर चीज परमात्मा का ही रंग मालूम पड़ने लगे, उस दिन मुक्ति।
और पूछा हैः "मुक्ति के द्वार तक ले जाने में मुझे आप सहाय नहीं करोगे क्या?"
मैं दूसरी ही बात कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं--मुक्ति को कैसे तुम्हारे द्वार तक ले आऊं? तुम्हें मुक्ति के द्वार तक जाने की कोई जरूरत नहीं। और मुक्ति का ऐसा कोई द्वार है कहां जहां तुम जाओ।
यहूदी फकीर ठीक कहते हैं--खास कर हसीद फकीर--कि परमात्मा को खोजना संभव नहीं है। तुम राजी हो जाओ, तो परमात्मा तुम्हें खोज लेता है। परमात्मा तुम्हें खोज रहा है। हसीद फकीर कहते हैं कि तब से खोज रहा हूं जब से अदम परमात्मा को छोड़ कर संसार में आ गया। कहानी प्यारी है!

परमात्मा ने कहा था अदम को, पहले आदमी को, कि तू इस वृक्ष के फल मत खाना। उस वृक्ष का नाम है, ज्ञान का वृक्ष। यह कहानी अद्भभुत है। इससे ज्यादा अदभुत और दूसरी कोई भी कथा दुनिया के किसी शास्त्र में नहीं है। क्योंकि इसके अनूठे अर्थ हैं, और इसमें बड़े जीवन का सार-निचोड़ छिपा है। ज्ञान के वृक्ष के फल मत खाना, नहीं तो तू मुझसे वंचित हो जाएगा।
मगर उसने ज्ञान के वृक्ष के फल खाए। और जब उसने ज्ञान के वृक्ष के फल खाए तो पीड़ित हुआ, परेशान हुआ, अपराध अनुभव हुआ, डरा कि अब क्या होगा, मैंने आज्ञा का उल्लंघन किया है! और परमात्मा उसे खोजता आया--जैसे वह रोज आता था; जैसे रोज साथ चलते थे दोनों, गपशप भी करते थे, गीत भी गाते थे, पास बैठते थे, उठते थे--लेकिन आज अदम एक झाड़ी के पीछे छिप गया। और परमात्मा चिल्लाता फिरता है--अदम, तू कहां है? और अदम झाड़ों के पीछे छिपा फिर रहा है। वह परमात्मा से बच रहा है। आज परमात्मा के सामने निर्दोष भाव से खड़े होने की सामर्थ्य उसकी नहीं रही। आज उसने पाप किया है।
अब यह बड़े मजे की बात है, ज्ञान का फल पाप का कारण बना! मेरी भी प्रतीति यही है। जितना आदमी ज्ञानवान होता गया है उतना परमात्मा से दूर होता गया है। यह कहानी पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास की कहानी है। जितना आदमी ज्ञान से भर जाता है, जितना उसकी खोपड़ी में ज्ञान भर जाता है, उतना ही प्रेम कम हो जाता है। अब यह मीरा तू भी ज्ञान की बातें कर रही है--संसार कीचड़, और संसार बंधन; ये सब ज्ञान की बातें हैं। निर्दोष हो! और परमात्मा तब से ही खोजता फिर रहा कि अदम तू कहां है? मीरा तुझे भी खोज रहा है, क्योंकि सभी अदम हैं। और सब छिपे हैं। सबने आड़ें बना ली हैं--कोई मस्जिद में छिपा है, कोई मंदिर में, कोई शिवालय में; सब छिपे हैं, सब डरे हैं। और मजा यह है कि घंटे बजा रहे हैं, प्रार्थनाएं कर रहे हैं, अजान कर रहे हैं और पुकार रहे हैं कि हे परमात्मा, तुझसे मिलन कैसे हो? और परमात्मा तुम्हें खोज रहा है! और तुम सब तरह के उपाय कर रहे हो कि वह तुम्हें खोज न ले।
तुम्हें कहीं जाना नहीं है, तुम्हें सिर्फ प्यास जगानी है। तुम्हें सिर्फ प्रार्थना से भरना है। तुम्हारे भीतर प्रार्थना की अग्नि जल उठे, परमात्मा तुम्हें खोजता आ ही रहा है। उस अग्नि में बाधाएं जल जाएंगी, अवरोध जल जाएंगे, ज्ञान जल जाएगा। वह जो ज्ञान का फल खाया है, उसका वमन हो जाएगा। तुम पुनः निर्दोष हो जाओ छोटे बच्चे की भांति, मुक्ति तुम्हें खोजती आ जाए।
जोग-बिजोग की बातें झूठीं, सब जी का बहलाना हो।
फिर भी हमसे जाते-जाते, एक गजल सुना जाना हो।।
सारी दुनिया अक्ल की बैरी, कौन यहां पर सयाना हो।
नाहक नाम धरें सब हमको, दीवाना दीवाना हो।।
तुमने तो एक रीत बना ली, सुन लेना शरमाना हो।
सबका एक न एक ठिकाना, अपना कौन ठिकाना हो।।
नगरी-नगरी लाखों द्वारे, हर द्वारे पर लाख सखी।
लेकिन जब हम भूल चुके हैं, दामन का फैलाना हो।।
हम भी झूठे, तुम भी झूठे, एक उसी का सच्चा नाम।
जिससे दीपक जलना सीखा, परवाना मर जाना हो।।
बस उतना तुम सीख लो--दीपक का जलना, परवाने का मर जाना; आंचल फैलाना
सीखो, वही प्रार्थना है।
नगरी-नगरी लाखों द्वारे, हर द्वारे पर लाख सखी।
लेकिन जब हम भूल चुके हैं, दामन का फैलाना हो।।
परमात्मा तो खड़ा है द्वार-द्वार पर, मगर हम झोली नहीं फैलाते। हमने हृदय बंद कर रखा है। हमने ताले जड़ रखे हैं हृदय पर। हम दामन का फैलाना भूल गए, हम झुकना भूल गए। झुकना प्रार्थना है, दामन का फैलाना प्रार्थना है।
जरा झोली फैलाओ, जरा मांगो उससे, मिलेगा; मिला है, नियम बदले नहीं हैं।
जीसस का वचन है--मांगो और मिलेगा, द्वार खटखटाओ और द्वार खुलेंगे, पूछो और उत्तर पाओगे।
नगरी-नगरी लाखों द्वारे, हर द्वारे पर लाख सखी।
लेकिन जब हम भूल चुके हैं, दामन का फैलाना हो।।

बस उतनी कमी है। मुक्ति के द्वार इत्यादि नहीं जाना है, दामन फैलाना सीखो। और जहां तुम दामन फैलाओगे, वहीं पाओगे संपदा बरस गई और दामन भर गया है।
हम भी झूठे, तुम भी झूठे, एक उसी का सच्चा नाम।
जिससे दीपक जलना सीखा, परवाना मर जाना हो।।
बस उतनी बात सीख लो, दीपक जैसे जलो, परवाने जैसे मरने की तैयारी रखो।
तुम्हारी प्रार्थना पक जाए, परमात्मा अभी है, यहीं है। कठिनाइयां हैं, अड़चनें हैं, मुझे भी पता है। उलझनें हैं, मुझे भी पता है। मगर कीचड़ मत कहो।
अपमान मत करो, निंदा मत करो। जो है, उसे स्वीकार करो; उसी स्वीकृति में से रास्ता मिलेगा। तूफान हैं, मगर उनको तूफान कहकर दुश्मनी मत बना लो, उन्हें चुनौती समझो।
सदमे झेलूं जान पे खेलूं इससे मुझे इनकार नहीं।
लेकिन तेरे पास वफा का कोई भी मेयार नहीं।।
ये भी कोई बात है आखिर दूर ही दूर रहें मतवाले।
हरजाई है चांद का जोबन या पंछी को प्यार नहीं।।
अगर प्यार है तो दूरी मिट जाएगी। अगर प्रेम है तो दूरी मिट ही गई,
प्रेम के होने में ही मिट गई।
ये भी कोई बात है आखिर दूर ही दूर रहें मतवाले।
हरजाई है चांद का जोबन या पंछी को प्यार नहीं।।
लोग बातें करते हैं प्रार्थना की, प्रार्थना नहीं करते। लोग कहते परमात्मा को पाना है, लेकिन जरा गौर से छाती पर हाथ रख कर सोचना--सच में पाना है? और अगर परमात्मा खड़ा हो और एक तरफ सोने का ढेर लगा हो, और यह विकल्प तुम्हारे सामने हो कि चुन लो एक, तो जरा पूछना अपने हृदय से क्या चुनोगे? तुम कहोगे, परमात्मा को फिर देखेंगे, इतनी जल्दी क्या है, पहले सोना चुन लें। चार दिन की जींदगी है जरा भोग ले फिर परमात्मा तो शाश्वत है, फिर मिल जाएगा। तुम चुन लोगे सोना। जरा सोचना, परमात्मा सामने खड़ा हो और पद रखा हो एक तरफ कि राष्टपति बन जाओ, चुन लो कोई एक, और तुम परमात्मा को ठुकरा दोगे। यह कोई प्यास नहीं है।
एक जरा सा दिल है जिसको तोड़ के तुम जा सकते हो।
ये सोने का तौक नहीं ये चांदी की दीवार नहीं।।
मल्लाहों ने साहिल-साहिल मौजों की तौहीन तो कर दी।
लेकिन फिर भी कोई भंवर तक जाने को तैयार नहीं।।
और भंवर में जाए बिना कोई रास्ता नहीं है।
फिर से वही सेलाबे-हवादिस जाने दो ऐ साहिल वालो।
या इस बार सफीना डूबा या अबके मझदार नहीं।।
एक दफा तय करना होता है।
या इस बार सफीना डूबा या अबके मझधार नहीं।।
अब दो में से कुछ एक। या तो डूबेंगे, या पार उतरेंगे। या तो नाव नहीं बचेगी, या मझधार को नहीं बचने देंगे। आज दो में से कुछ एक। ऐसा संकल्प जब उठता है, ऐसी विराट ऊर्जा तुम्हारे भीतर जब सघनीभूत होकर उठती है, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो जाता है। तुम मांगो तो! मिलेगा। तुम खटखटाओ तो! द्वार खुलेगा।
सदमे झेलूं जान पे खेलूं इससे मुझे इनकार नहीं।
लेकिन तेरे पास वफा का कोई भी मेयार नहीं।।
ये भी कोई बात है आखिर दूर ही दूर रहें मतवाले।
हरजाई है चांद का जोबन या पंछी को प्यार नहीं।।
एक जरा सा दिल है जिसको तोड़ के तुम भी जा सकते हो।
ये सोने का तौक नहीं ये चांदी की दीवार नहीं।।
मल्लाहों ने साहिल-साहिल मौजों की तौहीन तो कर दी।
लेकिन फिर भी कोई भंवर तक जाने को तैयार नहीं।।
फिर से वही सेलाबे-हवादिस जाने दो ऐ साहिल वालो।
या इस बार सफीना डूबा या अबके मझधार नहीं।।

और मैं तो तैयार हूं साथ देने को। मेरी मौजूदगी और क्या है? इसलिए यह
तो सोचो ही मत कि मैं तुम्हें साथ नहीं दे रहा हूं। मेरा तो हाथ फैला हुआ है, मगर मीरा, तू ही अपने हाथ को बचा रही है। और होशियारी से बचा रही है। और यह भी बचाने की एक तरकीब है कि हम तो जाने को राजी हैं, कोई ले जाने वाला नहीं। भूल वहीं हो रही है, तेरी जहां तूने संसार को कीचड़ कहा। संसार को कीचड़ जिसने कहा, उससे मेरा संबंध नहीं जुड़ पाएगा। क्योंकि मैं संसार को कीचड़ नहीं कह रहा हूं। मैं तो संसार को परमात्मा ही कह रहा हूं। अंधी आंखों से देखा गया परमात्मा संसार मालूम होता है, जब आंख मिल जाती है तो संसार ही परमात्मा मालूम होता है। संसार और निर्वाण दो नहीं हैं। यहां एक ही अस्तित्व है, उसको देखने के दो ढंग हैं। एक अंधे आदमी का ढंग है, आंख बंद किए आदमी का ढंग है और एक होश वाले आदमी का ढंग है।
मैंने यहीं, इसमें ही हजार-हजार कमल खिलते देखे हैं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं--कीचड़ मत कहना। और जिसने इसे कीचड़ कहा, उसने परमात्मा के हाथ की निंदा कर दी। तुम पिकासो की तस्वीर की निंदा करोगे तो पिकासो की निंदा हो गई। तुम तानसेन के संगीत की निंदा करोगे तो तानसेन की निंदा हो गई। तुम बगीचे की निंदा करोगे तो माली की निंदा हो गई।
संसार की निंदा चल रही है धर्म के नाम पर। और लोग सोचते हैं, यह धार्मिक बात है। और संसार उसकी कृति है--और ये वही लोग कहे चले जा रहे हैं। लोगों का मस्तिष्क साफ-सुथरा नहीं है। ये वही लोग कहे चले जा रहे हैं कि संसार को परमात्मा ने बनाया और साथ ही यह भी कहे जा रहे हैं कि संसार कीचड़ है, इससे बचना, इससे सावधान रहना! जो परमात्मा ने बनाया है तो बचना सावधान रहना! यह बात फिर शोभा नहीं देती। या तो परमात्मा ने नहीं बनाया, शैतान ने बनाया है, शैतान स्रष्टा है, तब बचने की बात समझ में आती है। और अगर परमात्मा ने बनाया है तो इसमें डूबो, उतरो, गहरे जाओ। उसकी कृति में उतर कर ही तुम कृतिकार को पा सकोगे। और कोई उपाय नहीं है।

चौथा प्रश्नः संन्यासी जीवन के लक्षण क्या हैं? कृपया समझाएं।
लक्षण नहीं हैं, बस लक्षण है। जल में कमलवत। बहुवचन में मत पूछो, बहुत लक्षण नहीं हैं संन्यासी के, बस एक ही लक्षण है, एकवचन में पूछो। जल में रहे और जल छूए न।

आखिरी प्रश्न: मैं प्रभु को पाना चाहता हूं, लेकिन मार्ग में हजार बाधाएं खड़ी हैं। एक बाधा पार करता हूं तो दूसरी आ खड़ी होती है। मुझे आशीष दें!

बाधाएं नहीं हैं, चुनौतियां हैं। तुम्हारे भीतर सोए हुए परमात्मा को जगाने के लिए मौके हैं, अवसर हैं। तुम कब विधायक ढंग से सोचना सीखोगे? तुम कब तक नकारात्मक में ही उलझे रहोगे? इधर मैं रोज चेष्टा करता हूं कि किसी तरह नकार से तुम मुक्त हो जाओ और विधेय तुम्हारी जीवन-दशा बन जाए, लेकिन तुम खिसक-खिसक कर नकार में फंस जाते हो। "नहीं" तुम्हारे जीवन की शैली बन गई है। और मैं चाहता हूं, "हां" तुम्हारे जीवन की शैली बने। राह पर पत्थर पड़ा है, इसको बाधा क्यों कहते हो, सीढ़ी क्यों नहीं मानते? इस पर चढ़ो, इस पर चढ़ कर तुम ऊंचाई पर पहुंच जाओगे। हर तूफान मौका है छाती को बड़ा करने का। हर कठिनाई अवसर है जीत के लिए, जागने के लिए! बाधाएं कहीं भी नहीं हैं। जरा देखो, जरा मेरे ढंग से देखो, जरा मेरी आंख से झांको, बाधाएं कहीं भी नहीं हैं।
किसी ने तुम्हें गाली दी, बाधा आ गई। क्योंकि इससे ध्यान में बाधा पड़ती है, चित्त डांवाडोल हो जाता है। बाधा मान ली तो बाधा। किसी ने गाली दी, खुश हो जाओ कि आज गाली दी, अब देखें कि ध्यान में बाधा पड़ती है कि नहीं? आज तो तय ही करना है कि बाधा नहीं पड़ने देंगे। गाली दी गई है, मगर हम गाली नहीं लेंगे। गाली दी गई है, मगर हम अछूते रहेंगे। गाली आए और घूमे चारों तरफ और धुएं की तरह उठे और घेर ले, मगर भीतर हम अस्पर्शित रहेंगे। आज इस अवसर को न जाने देंगे, इस आदमी ने बड़ी कृपा की सुबह-सुबह गाली दे दी, अब तो

बैठ ही जाओ ध्यान में, आज ध्यान और गाली के बीच तय कर लो कि कौन तुम्हारा मालिक है? यह अवसर हो गया। और ध्यान तुम्हारा मालिक है और गाली का कोई परिणाम न हुआ, तो तुम अनुग्रह करोगे उस आदमी के प्रति जिसने गाली दी थी? सुबह-सुबह एक मौका दे गया, बिन मांगे मौका दे गया, बड़ी कृपा की, जाकर धन्यवाद कर आना।
सुना नहीं कबीर ने कहा हैः "निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय।" समझ
गए होंगे राज कि अगर निंदक पास ही रख लो--और आंगन कुटी भी छवा देना, कहीं चला न जाए; ठीक से सेवा-सत्कार करना उसका कि भाई, यहीं रह, और रोज सुबह-सुबह गाली दिया कर, और रोज सुबह-सुबह हम ध्यान करेंगे। तू रोज जितनी मजबूत गाली दे सके उतनी देना, जितनी वजनी दे सके उतनी देना, तू कंजूसी मत करना, तू दिल खोल कर देना, तू बरस पड़ना एकदम सुबह ही सुबह और उसी वक्त हम ध्यान करेंगे, उसी वक्त हम भजन में लगेंगे। देखेंगे गाली जीतती कि भजन जीतता? जिताएंगे भजन को, हराएंगे गाली को। यह बल चाहिए।
तुम बैठ गए रोने, कहने लगे कि बाधा हो गई। और तुम्हें तो ऐसी छोटी-छोटी बातों में बाधा पड़ जाती है! तुम ध्यान करने बैठे, उधर बच्चे ने खिलौना गिरा कर आवाज कर दी, बाधा हो गई। निकल आए, हो गए दुर्वासा ऋषि एकदम, देने लगे अभिशाप पूरे घर को! मुझे लोग कहते हैं कि घर में एकाध आदमी धार्मिक हो जाए तो सारा घर संकट में पड़ जाता है। बुड्ढे-बुड्ढे अक्सर हो जाते हैं। माला- वाला फेरने लगे, किसी ने कुछ गड़बड़ कर दी--कोई बोल दिया जोर से, कोई चीज गिर गई, कहीं कुछ हो गया कि बस, उनका पारा चढ़ गया। वह सारा घर सिर पर उठा लिया, उपद्रव मचाने लगे। धार्मिक आदमी बड़े क्रोधी हो जाते हैं। यह तो बड़ी उलटी बात हो गई। धार्मिक आदमी और क्रोधी हो, तो फिर करुणावान कौन होगा? नहीं, चूक वहां हो रही है कि तुम चीजों को बाधा समझ रहे हो। और देखने के ढंग पर सब निर्भर है, देखने का ढंग तुम्हारी दुनिया का निर्माता है।
मैं एक विश्राम-गृह में मेहमान था। एक राजनेता, एक मिनिस्टर भी उस रात वहां रुके थे। कुछ बात थी कि सारे गांव के कुत्ते उस विश्रामगृह के आसपास लड़ रहे, झगड़ रहे। नेता को नींद न आए। मैं सो गया तो वह उठ कर मेरे कमरे में आए और उन्होंने कहा कि आप--मुझे हिलाया--कहा, आप सो रहे हैं! मैं तो सो ही नहीं पा रहा, एक बज गया और कुत्ते हैं कि शोरगुल मचाए जा रहे हैं। कई दफे जाकर इनको बाहर आदमी को जगा कर भगवा भी आया, लेकिन वे फिर वापिस लौट आते हैं। आज की रात नींद संभव नहीं है। आप किस भांति सो रहे हैं? मैंने उनसे कहा--आप क्या समझते हैं कुत्ते अखबार पढ़ते हैं कि उनको पता है कि आज राजनेता यहां रुके हैं, चलो घेराव करें, कि हड़ताल करें, कि नारेबाजी करें, कि फलाने जी मुर्दाबाद? उनको कुछ पता नहीं है, वे अपने काम में लगे हैं, तुम्हारे लिए विशेष कोई उन्होंने आयोजन नहीं किया है यह, कल भी मैं इसी विश्राम-गृह में था तब भी वे यहां थे, तुम नहीं रहोगे तो भी यहां ही रहेंगे, तुम चिंता न करो, उन्हें तुम्हारी कोई चिंता नहीं है, उन्हें पता भी नहीं है। तुम ये जो भाव लिए बैठे हो कि कुत्ते तुम्हें बाधा डाल रहे हैं, इससे तुम्हें अड़चन आ रही है। तुम स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, तुम मौज से सुनने लगो उनकी आवाज जैसे संगीत को कोई सुनता है। उन्होंने कहाः संगीत? ये कुत्तों की आवाज और संगीत? मैंने कहाः सुनने-सुनने की बात है। जो शास्त्रीय संगीत नहीं समझता और जब संगीतज्ञ करता है--आऽऽऽ, तो वह भी सोचता है यह क्या मामला हो रहा है?
मैंने उनसे कहा मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा गया था और जब संगीतज्ञ बहुत आऽऽऽ करने लगा, तो उसकी आंख से एकदम आंसू गिरने लगे! उसके पड़ोसी ने पूछा कि मैंने कभी मुल्ला सोचा नहीं था कि तुम संगीत के इतने प्रेमी हो। आंख से आंसू? उसने कहाः संगीत जाए भाड़ में, मैं तुम्हें कहे दे रहा हूं कि यह आदमी मरेगा। क्योंकि ऐसे ही मेरा बकरा मरा था--आऽऽऽआऽऽऽ। मुझे आंसू अपने बकरे की याद से आ रहे हैं, संगीत से मुझे क्या लेना-देना?
अगर शास्त्रीय संगीत किसी को बकरे का आऽऽऽऽ मालूम पड़ सकता है, तो कुत्ते की आवाज में शास्त्रीय संगीत सुनने में कौन सी अड़चन है? मैंने कहाः तुम कोशिश तो करो, हर्जा भी क्या है? ऐसे भी नहीं सो रहे, वैसे भी नहीं सो पाओगे और क्या होगा? तुम जरा कोशिश करो। तुम स्वीकार कर लो, शिथिल भाव से,

शांत भाव से लेट जाओ, कहो कि ठीक है, कुत्तो, भौंको। तुम लोरी गा रहे हो।
गाओ, बड़ा आनंद दे रहे हो।
मजबूरी--उनका दिल तो मेरी बात मानने का नहीं हो रहा था, लेकिन और कोई उपाय भी नहीं था--कहा, अच्छा करके देखते हैं।
सुबह जब उठे, मैंने पूछाः क्या हुआ? उन्होंने कहाः आश्चर्य की बात है, हालांकि मैंने आधे ही मन से किया, मगर जैसे ही मैंने किया कुछ फर्क पड़ गया।
थोड़ी देर तो मुझे आवाज सुनाई पड़ती रही, फिर मैं कब सो गया मुझे पता नहीं। वह जो विरोध का भाव था, उसके गिरते ही अंतर पड़ जाता है। तब बाजार में भी ध्यान हो सकता है।
ये गाते जलजले, नाचते तूफान के धारे
हवा की नियतों से बेखबर मल्लाह बेचारे
वो तूफानों के हल चलने लगे सय्याल खेती में
वो किश्ती आके डूबी गौहरी कतरों की रेती में
वो टूटीं मौज की शफ्फाक दीवारें सफीनों पर
वो फिर लहरें उभर आईं इरादों की जबीनों पर वो टकराने लगी आवाज नीले आसमानों से
वो खत्ते-रहगुजर पर जल उठीं शमाएं तरानों से हवाएं थम नहीं सकतीं, रुक नहीं सकतेे
मगर मौजोहवा के सामने सर झुक नहीं सकते
सफीने हैं कि तूफां के थपेड़े खाए जाते हैं
मगर मल्लाह गीत अपने बराबर गाए जाते हैं
हैं कितने गम कि जिनकी मय सरूर-अंगेज होती है
हैं कितने गीत जिनकी लौ हवा से तेज होती है
खिंचा हो जिनका खत्ते-रहगुजर तूफां के धारों पर
बड़ी मुश्किल से उनको नींद आती है किनारों पर
तूफानों में सोना सीखो। तूफानों में जीना सीखो। "हवाएं थम नहीं सकतीं," और यह तुम ख्याल रखना कि तुम्हारे लिए हवाएं रुकेंगी नहीं, तुम्हें मौका नहीं कि सब तूफान रुक जाएं, सब हवाएं रुक जाएं, सब उपद्रव मिट जाएं दुनिया से, कि आप ध्यान करने बैठे हैं! कुछ नहीं रुकेगा, दुनिया अपने ढंग से चलती रहेगी।
हवाएं थम नहीं सकतीं, तलातुम रुक नहीं सकते
और न आंधियां रुकेंगी। तुमने दीया जलाया है ध्यान का, इसलिए आंधियां नहीं रुक जाएंगी। सच तो यह है कि दीया जला देख कर आंधियां और आकर्षित होती हैं।
हवाएं थम नहीं सकतीं, तलातुम रुक नहीं सकते
मगर मौजो-हवा के सामने सर झुक नहीं सकते
लेकिन जरा हिम्मत करो, ऐसे जल्दी-जल्दी क्या झुक जाना।
सफीने हैं कि तूफां के थपेड़े खाए जाते हैं
नावें थपेड़े खाएंगी तूफान के। इससे कुछ बाधा नहीं आ रही है। इसको आनंद-उत्सव समझो। नाचते हुए आगे बढ़ो।
सफीने हैं कि तूफां के थपेड़े खाए जाते हैं
मगर मल्लाह गीत अपने बराबर गाए जाते हैं
तुम अपना गीत गाओ, दुनिया जो कर रही है उसे करने दो। तुम अपने गीत की दुनिया की सारी अव्यवस्था के बीच गा सको, तो ही गाया जानना।
हैं कितने गम कि जिनकी मय सरूर-अंगेज होती है
हैं कितने गीत जिनकी लौ हवा से तेज होती है
छोटे-छोटे दीये बुझ जाते हैं, बड़ी-बड़ी लपटें आग की हवा से और तेज हो जाती हैं। तुम परमात्मा को खोजना चाहते हो, इसे लपट बनाओ।
हैं कितने गीत जिनकी लौ हवा से ते.ज होती है
खिंचा हो जिनका खत्ते-रहगुजर तूफां के धारों पर
और एक बार तुम्हें जब यह पता चल जाएगा कि जिंदगी का असली आनंद तूफानों
के बीच निर्द्वंद्व होने का आनंद है, तब तुम चकित होओगे, हैरान होओगे कि

असली शांति किनारों पर नहीं है, मझधारों में है, जहां तूफान हैं। असली ध्यान बाजार में है। असली संन्यास संसार में है।

आज इतना ही।